इकाई 1 मानव पर्यावरण का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
1.2 पर्यावरण क्या है?
प्राकृतिक पर्यावरण और उसके घटक
मानव-निर्मित पर्यावरण
सामाजिक पर्यावरण
1.3 हमें पर्यावरण की चिंता क्यों होनी चाहिए?
1.4 विकासीय गतिविधियों में लापरवाही का संभावित संकट
भोपाल त्रासदी
चेरनोबिल दुर्घटना
1.5 सारांश
1.6 अंत में कुछ प्रश्न
1.7 उत्तर

1.1 प्रस्तावना

हम पृथ्वी पर तरह-तरह के परिवेशों में रहते हैं। यह परिवेश ही हमारा पर्यावरण है। हम खाते हैं, साँस लेते हैं, कपड़े पहनते हैं, बच्चे पैदा करते हैं और अंत में मर जाते हैं। उसके बाद अगली पीढ़ी आती है और इस तरह जीवन चक्र चलता रहता है, और मानव प्रजाति इस पृथ्वी पर फलती-फूलती है। पृथ्वी का भौतिक पर्यावरण जीवों के विभिन्न रूपों के अस्तित्व और वृद्धि के अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करता है जिसमें मनुष्य भी शामिल है। जीवित प्राणी जैविक पर्यावरण बनाते हैं। भौतिक और जैविक पर्यावरण परस्पर क्रिया करके चिरस्थाई तंत्र का निर्माण करते हैं।

प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य प्रकृति के साथ ताल-मेल बनाकर रहता था, लेकिन जैसे-जैसे वह विकसित होता गया, वैसे-वैसे एक नए तरह का पर्यावरण विकसित करता गया। यही मानव-निर्मित पर्यावरण है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इनके साथ सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस इकाई में आप निम्न तीन प्रकार के पर्यावरणों के विषय में अध्ययन करेंगे :

- प्राकृतिक,
- मानव-निर्मित, और
- सामाजिक पर्यावरण।

अगली इकाई में आप विश्व की जलवायु के बारे में सामान्य तौर पर तथा विशेष रूप से भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों की जलवायु और संसाधनों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

पर्यावरण लगातार बदल रहा है यह बदलाव पृथ्वी पर जीवन को भी प्रभावित करता है, इनमें से कुछ प्रभावों का असर कभी समाप्त नहीं होता और न ही वे बेअसर किए जा सकते हैं। इसलिए हमें यह समझना चाहिए कि हमें अपने पर्यावरण की चिंता क्यों करनी है? अंत में हम चेतावनी के रूप में पर्यावरणीय दुरुपयोग के दो उदाहरणों—भोपाल त्रासदी और चेरनोबिल दुर्घटना का वर्णन कर रहे हैं।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- पर्यावरण की परिभाषा बता सकेंगे, प्राकृतिक, मानव-निर्मित और सामाजिक पर्यावरण की सूची बना सकेंगे और उनका वर्णन कर सकेंगे;
- मानव-निर्मित पर्यावरण के लक्षणों (विशेषता) को जान सकेंगे और प्राकृतिक और मानव-निर्मित पर्यावरण में अंतर कर सकेंगे;

- वे तरीके जान सकेंगे, जिनके द्वारा मनुष्यों को पर्यावरण के बारे में जागरूक बनाया जा सके; और
- ऐसे उदाहरण बता सकेंगे जो औद्योगिकीकरण के संभावित खतरों से हो सकते हैं जबकि उसका सही ढंग से रख-रखाव न किया गया हो।

1.2 पर्यावरण क्या है?

प्रत्येक जीव का एक विशिष्ट परिवेश या माध्यम होता है, जिसके साथ वह लगातार पारस्परिक क्रिया करता है और जिसके लिए वह पूरी तरह से अनुकूलित होता है। यही परिवेश प्राकृतिक पर्यावरण है। प्राकृतिक पर्यावरण शब्द हमारे मस्तिष्क में भू-दृश्य (landscape) जैसे—मिट्टी, पानी, रेगिस्तान या पहाड़ का सामान्य रूप उपस्थित करता है। इसका वर्णन भौतिक प्रभावों जैसे—नमी, तापमान, पदार्थ की बनावट में अंतर और जैव-प्रभावों के रूप में अधिक सही तरीके से किया जा सकता है। **इस प्रकार पर्यावरण जैव (सजीव) और अजैव (निर्जीव) घटकों और किसी जीव के आस-पास के व्यवहार, प्रभाव और घटनाओं का कुल योग है।** जीवित घटक **जैव** (biotic) कहलाते हैं, तथा अजीवित घटकों को **अजैव** (abiotic) घटक कहते हैं।

कोई भी जीव दूसरे जीव के साथ पारस्परिक क्रिया किए बिना अकेला नहीं रह सकता। इस तरह वह एक-दूसरे के पर्यावरण का जरूरी हिस्सा है। हम जानते हैं कि सभी प्राणी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हरे पौधों पर निर्भर रहते हैं। लेकिन कुछ बातें ऐसी हैं जिनके लिए पौधे भी प्राणियों पर निर्भर रहते हैं, जैसे—फूलों का परागण (pollination) और बीजों या फलों का प्रकीर्णन (dispersal)।

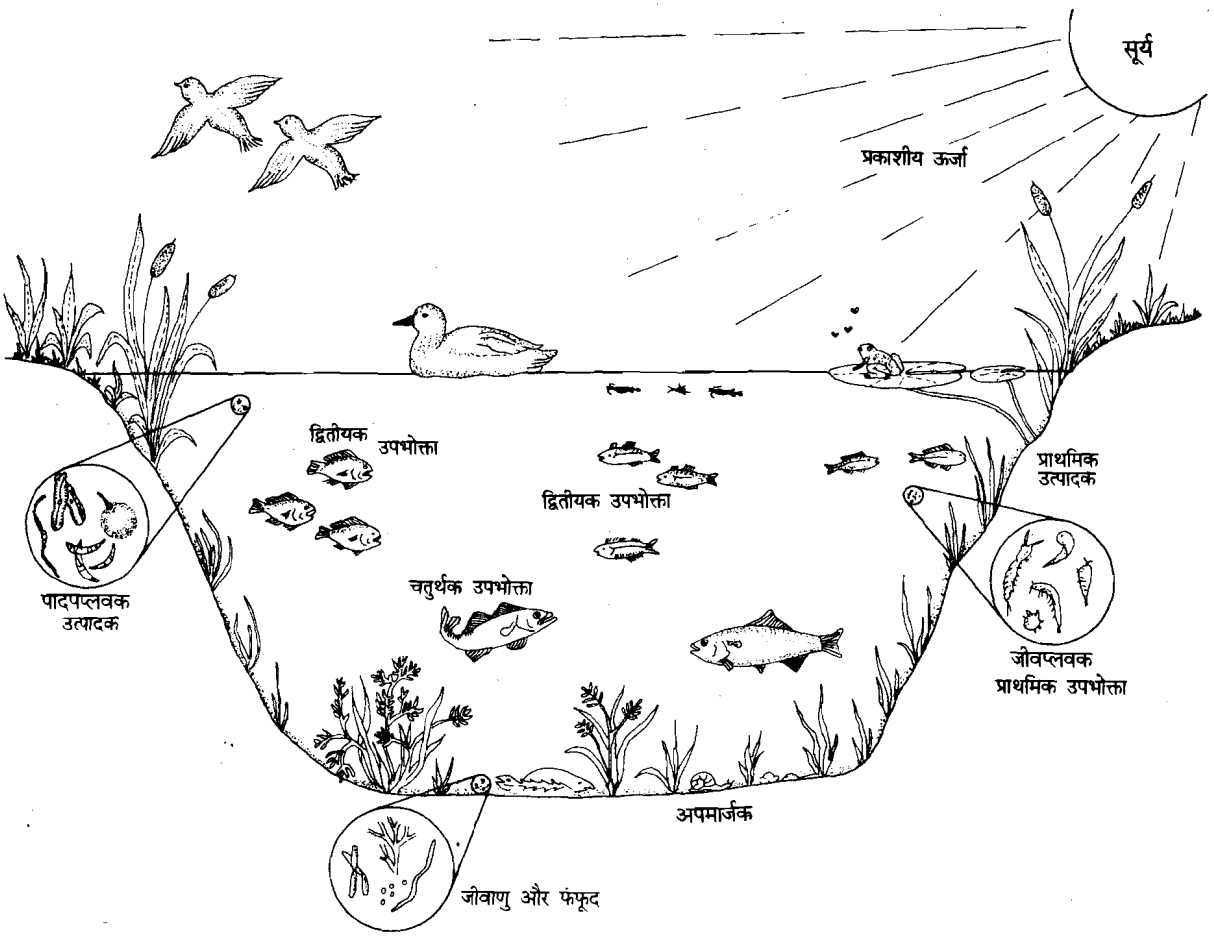

चित्र 1.1 : पारितंत्र का एक उदाहरण—तालाब

आइए, अब हम पर्यावरण की संकल्पना को कुछ उदाहरणों के माध्यम से समझने की कोशिश करें। चित्र 1.1 में एक तालाब दिखाया गया है, इसके पर्यावरण में कौन-कौन से घटक होंगे? प्रकाश, तापमान और जल इस तालाब के पर्यावरण के अजैव कारक हैं, जल

में पोषक ऑक्सीजन, दूसरी गैसें और कार्बनिक पदार्थ घुले हुए हैं। जैव घटकों में सूक्ष्मदर्शीय पौधों और प्राणियों से लेकर बड़े-बड़े पौधे तथा प्राणी भी होंगे। पौधे विभिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे—पादपप्लवक (phytoplankton) आंशिक रूप से डूबे हुए पौधे और तालाब के किनारे चारों ओर उगे हुए पौधे। प्राणियों में प्राणिप्लवक (zooplankton), जीवाणु (bacteria), कीट तथा कृमि (insects & worm), मृदुकवची (molluses), टैडपोल, मेंढ़क, बतख और कई तरह की मछलियाँ शामिल हैं। तालाब के विशिष्ट लक्षण धूप की तेजी और मात्रा, तालाब की ऊँचाई, तापमान, पानी की गहराई और नीचे स्थित चट्टानों आदि जैसे अजीवीय लक्षणों पर भी निर्भर करेंगे।

इसको प्रमाणित करने के लिए यदि हम दूसरा उदाहरण तालाब में रहने वाली मछली का लें, जहाँ तालाब के जैव और अजैव घटक मिलकर मछली का पर्यावरण बनाते हैं। इन्हें हम बाह्य या बाहरी पर्यावरण कह सकते हैं। मछली के शरीर के भीतर भी एक दूसरा पर्यावरण है, जिसे उसका आंतरिक या भीतरी पर्यावरण कहते हैं। शरीर की सतह बाहरी और भीतरी पर्यावरण के बीच विनिमय रोधक (exchange barrier) का काम करती है। बाहरी पर्यावरण की अपेक्षा भीतरी पर्यावरण स्थायी होता है। फिर भी, यह नितांत स्थायी नहीं है। बीमारी, क्षति या चोट अथवा पर्यावरणीय दबाव भीतरी पर्यावरण को अस्त-व्यस्त कर सकता है। लेकिन जब इन कारणों को दूर कर दिया जाता है तब भीतरी पर्यावरण वापस अपनी प्राकृतिक अवस्था में आ जाता है।

1.2.1 प्राकृतिक पर्यावरण और उसके घटक

पर्यावरण के अनेक कारक होते हैं। सुविधा के लिए हमने उन्हें दो श्रेणियों में बाँट दिया है : जैव और अजैव।

पर्यावरण के कारक

अजैव	**जैव**
ऊर्जा	रोगाणु
विकिरण (Radiation)	पादप
तापमान और ऊष्मा प्रवाह	प्राणी (मानव भी सम्मिलित)
जल	
वायुमंडलीय गैसें और पवन	
आग	
गुरुत्व	
स्थलाकृति	
भू-वैज्ञानिक अधःस्तर (Geological substratum)	
मृदा या मिट्टी	

जीवन पृथ्वी की सतह से कुछ मीटर नीचे तक या इसकी सतह से कुछ किलोमीटर ऊपर तक ही है। पृथ्वी की सतह पर जीवन अविश्वसनीय रूप से पतली "त्वचा/चमड़ी" (skin) में मौजूद रहता है। यह पतली पट्टी जीवमंडल (biosphere) कहलाती है। जीवमंडल में चार प्रमुख पर्यावरणीय श्रेणियाँ या **आवास** (habitats) शामिल हैं। ये **समुद्री, ज्वारनदमुखी** (estuarines), **जल** और **स्थलीय** आवास हैं। स्थलीय आवास को आगे फिर से जीवोम या बायोम में वर्गीकृत किया जाता है, जिसके विषय में आप बाद की इकाइयों में पढ़ेंगे।

इन सभी चारों आवासों के उप-प्रकार (sub-types) होते हैं, जिसके अपने भौतिक और जैव विशिष्ट लक्षण होते हैं और विभिन्न पारितंत्रों (ecosystems) की रचना करते हैं। अतः पारितंत्र जीवमंडल की एक प्राकृतिक इकाई है जो जैव और अजैव घटकों से बना हुआ है तथा जिसकी पारस्परिक क्रियाओं के फलस्वरूप स्थायी स्वचालित तंत्र बन जाता है।

पारितंत्र के प्रमुख अजीवीय घटकों में सौर विकिरण, तापमान, पवन, जल धारा, वर्षा जैसे जलवायु कारक और प्रकाश, वायु, दाब, भू-चुंबकत्व जैसे भौतिक कारक तथा ऑक्सीजन,

कार्बन डाइऑक्साइड, अम्लता (acidity), लवणता (salinity) और पौधों के लिए जरूरी अकार्बनिक पोषकों जैसे रासायनिक कारक भी शामिल हैं, जो प्राणियों और पौधों दोनों को ही प्रभावित करते हैं। पारितंत्र में जैव कारकों में सभी जीवित जीवों और उनके कार्बनिक उप-उत्पाद (by-product) की संपूर्णता शामिल हैं। इसमें सभी पादप और प्राणी शामिल हैं, भले ही उसका आकार कुछ भी क्यों न हो। इसमें मिट्टी और तलछट (sediment) में मौजूद जीवाणुओं से लेकर बड़े-बड़े स्तनधारी जीव (mammals) भी शामिल हैं।

पारिस्थितिकीय कारकों में से प्रत्येक की अलग-अलग पहचान करते समय और उनका प्रभाव मापते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रकृति में ये कारक कभी भी अकेले क्रिया नहीं करते हैं। जीवों के "वास्तविक जीवन" में तमाम मौजूदा पारिस्थितिकीय कारकों का एक साथ और लगातार प्रभाव पड़ता है। आप अगली इकाइयों में जीवमंडल, पारितंत्र की संरचना और प्रकार्य तथा जीव पर पारिस्थितिकीय कारकों के प्रभाव के विषय में और भी पढ़ेंगे। आप जो कुछ ऊपर अध्ययन कर चुके हैं, उसके आधार पर नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 1

क) जिस पर्यावरण में आप रह रहे हैं (जगह का नाम दीजिए) उसके अजैव और जैव कारकों की सूची बनाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख) नीचे दिए गए कथनों में से सही कथन के सामने (✓) और गलत के सामने (✗) का निशान लगाइए :

i) पारितंत्र के अजैव और जैव घटकों के बीच कोई पारस्परिक क्रिया नहीं होती। ( )

ii) भू-चुंबकत्व एक जैव कारक है। ( )

iii) प्रत्येक जैव कारक पृथक रूप से कार्य करता है। ( )

iv) एक ही समय में जीव पर अनेक प्रभाव पड़ते रहते हैं और आमतौर पर एक कारक के प्रभाव में दूसरे कारकों से सामान्यतया परिवर्तन हो जाता है। ( )

1.2.2 मानव-निर्मित पर्यावरण

अभी तक हमने केवल प्राकृतिक पर्यावरण की ही चर्चा की है, लेकिन पर्यावरण के अनेक घटक हैं, जो मनुष्य ने बनाए हैं। इस प्रकार पर्यावरण, प्रकृति और मनुष्य द्वारा बनाए गए पर्यावरण की संपूर्णता है। मानव-निर्मित पर्यावरण में खेत, शहर, औद्योगिक स्थान शामिल हैं। ये ऐसे स्थान हैं जिनको मनुष्य ने अपने व्यवहार कौशल से कृत्रिम बनाया है। प्राकृतिक और मानव-निर्मित पर्यावरण के बीच के अंतर को समझने के लिए हम शहरों में रहने वाले व्यक्ति को उपलब्ध संसाधनों की गुणवत्ता का उदाहरण लेते हैं।

शहर का पर्यावरण कृत्रिम होता है। जीवन के महत्वपूर्ण घटकों में से पानी भी एक महत्वपूर्ण घटक है। नदियों द्वारा लाए गए पानी का इस्तेमाल सीधे पीने के लिए नहीं किया जाता बल्कि पहले छाना और शुद्ध किया जाता है तथा उसके बाद इसका उपयोग पीने तथा अन्य नगर-कार्यों में किया जाता है। उपापचयी अपशिष्ट (metabolic wastes) और अन्य अपशेष निवास के आसपास नहीं बल्कि शहर से दूर उपचार के लिए सुदूर स्थानों पर ले जाए जाते हैं।

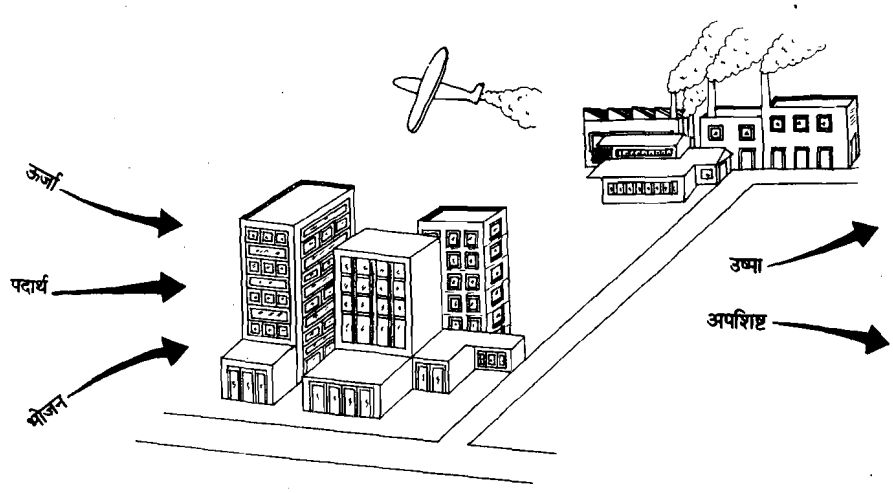

चित्र 1.2 : मानव निर्मित पर्यावरण

प्राय: शहरों में रहने वाले लोगों के लिए भोजन-सामग्री ग्रामीण क्षेत्रों से ही आती है। आम तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहर का वायुमंडल अधिक प्रदूषित होता है। परिवहन के साधन—कारें, बसें, रेलें आदि हैं, जो ऊर्जा की बहुत बड़ी मात्रा को खपा जाती हैं और वायुमंडल को प्रदूषित करती हैं। फैक्ट्रियाँ, वाहन और बिजलीघर वायुमंडल के प्रदूषण में योगदान देते हैं। शहर में रहने वाले लोगों के मकान गारे और छप्पर के बजाए ईंटों और सीमेंट के बने हुए होते हैं। मकानों के लिए संसाधन लगातार ग्रामीण इलाकों से प्राप्त किए जाते हैं। मानव ने पर्यावरण को इस कुशलता से ढाला है जो उसकी सुविधा और ऐशो-आराम की जिन्दगी के लिए उपयोगी हो (चित्र 1.3)।

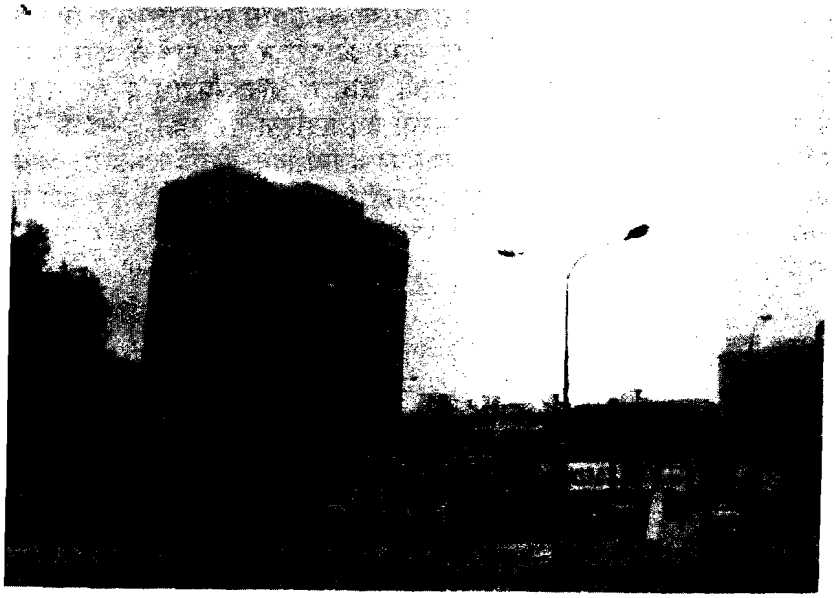

चित्र 1.3 : शहरों में प्रदूषण का मुख्य कारण परिवहन है

मानव-निर्मित पर्यावरण के कारण पदार्थों और ऊर्जा की अत्यधिक खपत होती है, इसके रख-रखाव, देखभाल और प्रबंध की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार मानव-निर्मित पर्यावरण प्राय: प्राकृतिक पर्यावरण के कार्य में हस्तक्षेप करता है। विकसित देशों का मानव-निर्मित पर्यावरण बहुत अधिक बदल गया है क्योंकि विकसित देशों में औसत व्यक्ति के पास विकासशील या अविकसित देशों के अमीर व्यक्ति की अपेक्षा कहीं ज्यादा सुविधाएँ हैं। आइए, इनमें से कुछ रूपांतरणों (transformations) को देखते हैं।

आवासीय

मानव बस्ती अनिवार्य रूप से एक सम्पूर्ण संकल्पना है जो शहर, नगर या गाँव पर लागू होती है। प्रत्येक संकल्पना का एक आधारभूत संगठन होता है, जिसके अपने सामाजिक,

आर्थिक और सांस्कृतिक पहलू होते हैं। मूलभूत आवश्यकताओं में मकान, पानी और सफाई, परिवहन, संचार, भोजन, ऊर्जा, शिक्षा और स्वास्थ्य शामिल हैं। इनमें से आश्रय (shelter) सबसे महत्वपूर्ण जरूरतों में से एक है और उसके बाद पीने योग्य पानी तथा स्वच्छता है।

1981 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या का 40% भाग (खासकर जो ग्रामीण इलाकों में रहता है) गरीबी की रेखा (poverty line) के नीचे निवास करता है।

पुराने समय में अधिकांश मानव बस्तियाँ नदियों के किनारों पर हुआ करती थीं, जिससे कुछ मूलभूत सुविधाएँ मिल जाती थीं। अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी और ज्यादातर लोग ग्रामीण इलाकों में रहते थे। व्यापार और वाणिज्य के बढ़ने के साथ-साथ शहर अस्तित्व में आए। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़नी शुरू हुई, वैसे-वैसे लोगों ने नगरों और शहरों की ओर प्रवास करना शुरू कर दिया। आज, प्रवास का ग्रामीण इलाकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण ग्रामीण इलाकों में गरीबी है। गाँव के लोग खाने-कमाने के लिए नगर में आते हैं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि भारतवर्ष में मनुष्य और भूमि-अनुपात विश्व में सबसे कम है। हालांकि लोग शहरों में इसी उद्देश्य से आते हैं कि अपना जीवन संवार सकें, लेकिन जिंदगी की हकीकत बहुत कड़वी है। इन प्रवासियों में से बहुतों को अपनी तमाम जिंदगी पटरियों पर गुजारनी पड़ती है।

आइए, हम ग्रामीण और शहरी इलाकों में रहने वाले लोगों और उन्हें दी गई सुविधाओं तथा उनके पर्यावरण का अध्ययन करें।

गाँवों में रहने वाले लोगों का बहुत बड़ा भाग अत्यधिक खराब परिस्थितियों में रहता है। उनकी झोपड़ियाँ काम चलाऊ होती हैं और छतें टपकती हैं तथा प्रायः उनमें कीड़े-मकोड़े भरे रहते हैं। मकान के भीतर स्वच्छता की सुविधाएँ उपलब्ध न होने के कारण शौचादि बाहर खुले स्थानों में जाना पड़ता है। साफ पानी की आपूर्ति पाइपों से नहीं होती है। इसी प्रकार सीवर आदि (मल-निकास) की भी कोई व्यवस्था नहीं होती। जहाँ कहीं खुली नालियों की व्यवस्था है वहाँ भी वे घटिया रख-रखाव के कारण बंद पड़ी रहती हैं। लेकिन भारी यातायात, कारखानों और मिलों के न होने के कारण वहाँ का वातावरण प्रदूषित नहीं है।

अब हम शहरी लोगों की आवासीय परिस्थितियों पर एक नज़र डालना चाहेंगे। जनसंख्या की वृद्धि और छोटे-छोटे कस्बों तथा गाँवों से गरीबों का प्रवास लगातार बने रहने वाला प्रक्रम है। नागरिक सुविधाओं की बढ़ती हुई माँगों को पूरा न कर पाने के कारण हमारे शहरों के आसपास बसी हुई उप-बस्तियाँ गंदगी, बीमारी और अपराध के गढ़ बन गए हैं। शहरों में आवास की समस्या सबसे बड़ी समस्या है। पटरियों पर रहने वालों की संख्या सदा बढ़ती रहने के कारण शहरों में जनसंख्या का दबाव दिन-प्रतिदिन महसूस किया जाता है। इसने एक विरोधाभास को जन्म दिया है—जहाँ गगनचुंबी इमारतें हैं वहीं गंदी बस्तियों के साथ-साथ झोपड़ियाँ खड़ी हैं। अत्यधिक यातायात, कारखानों, मिलों और घरेलू धुएँ से वायुमंडल प्रदूषित होता रहता है।

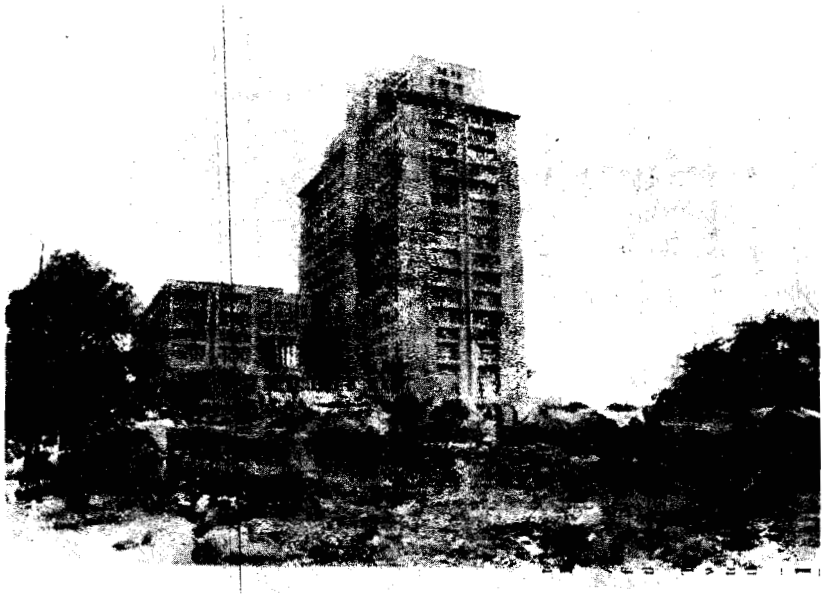

चित्र 1.4 : बढ़ती हुई शहरी आबादी के परिणामस्वरूप गगनचुंबी इमारतें और झुग्गी झोपड़ियाँ

कार्य-स्थल जिसमें खेत भी शामिल हैं

पुराने समय में केवल प्राकृतिक पर्यावरण ही था और मनुष्य प्राकृतिक प्रक्रियाओं में एक निष्क्रिय सहभागी था। लेकिन कृषि और उद्योग के विकास ने सब कुछ बदल डाला है—भवनों, सड़कों, रेलों, पानी की सप्लाई वाली लाइनों, दूर-संचार, सीवर (मल-निकास तंत्र) और कई अन्य प्रकार की अवसंरचनाएँ (infrastructure) जो विकास के लिए आवश्यक थीं। इन आवश्यकताओं ने पर्यावरण को बदल डाला है। विकसित देशों में जीवनयापन की परिस्थितियों में सुधार भले ही आ गया हो, लेकिन ये सभी ऊर्जा की उच्चस्तरीय खपत और परिवहन की अत्यधिक खर्चीली पद्धति पर आधारित हैं।

विकासशील देशों में, अधिकांश लोग आवश्यक शहरी सुख-सुविधाओं और सेवाओं से वंचित हैं। शहरी सुख-सुविधाएँ केवल उन उच्च वर्ग के लोगों के लिए हैं, जो दूसरों की कीमत पर इन्हें भोगते हैं। लेकिन इन इलाकों में रहने वाले सभी लोगों को शोर, प्रदूषण और भौतिक दबाव जैसे कारकों को झेलना पड़ता है। इस बात को सभी जानते हैं कि अगर हवा, ज़मीन या पानी के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में कोई अवांछित परिवर्तन होता है तो हमेशा इसके नुकसानदेह नतीजे होते हैं। गरीब आदमी इन हानिकारक प्रभावों का शिकार तो बनता ही है लेकिन इसकी क्षतिपूर्ति के रूप में उसे शहरी सुख-सुविधाओं या सेवाओं का लाभ भी नहीं मिलता।

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। इसलिए आइए हम देखें कि पुराने समय से अब तक फसल की पैदावार में किस तरह परिवर्तन आया है। जनसंख्या में प्रतिदिन वृद्धि होने के कारण हमें बढ़ती हुई जनसंख्या के हिसाब से पैदावार में भी बढ़ोत्तरी करनी है। वर्तमान कृषि उत्पादन गहरी जुताई, उर्वरक, सिंचाई और पैदावार को बढ़ाने के लिए पीड़क-नाशकों के उपयोग के रूप में ऊर्जा और पदार्थों को ज्यादा काम में लाने पर निर्भर करता है। उपज में वृद्धि होती है लेकिन साथ-साथ लवणता, मृदा का क्षय और मिट्टी तथा पानी के प्रदूषण में भी वृद्धि होती है। गहन कृषि का सभ्यता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। यह इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में कृषि आधारित सभ्यता के बड़े-बड़े केन्द्र समाप्त हो गए हैं और अपने पीछे केवल रेगिस्तान छोड़ गए हैं, जैसा कि सिंध, मध्य-पूर्व, एबिसीनिया और केंद्रीय अमरीका। अपने कृषि उत्पादन को बनाए रखने के लिए उपलब्ध भूमि क्षेत्रफल (एकड़ में) का समुचित और विवेकपूर्ण उपयोग आवश्यक है। संश्लेषित उर्वरक (synthetic fertilizer) और कार्बनिक खाद के संतुलित उपयोग, अधिक पैदावार और रोग प्रतिरोधी किस्में काम में लाकर, मिश्रित सस्यन (मिली-जुली खेती), उपलब्ध जल संसाधनों का समुचित संरक्षण और पूरे वर्ष भर वनस्पति आच्छद बनाए रखकर मृदा अपरदन (कटाव) और पोषकों की हानि को रोककर मिट्टी की उर्वरता बढ़ाई जानी है।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के स्थल पर घने वन थे और किसी समय यह इलाका हरा-भरा था।

अगले भाग में हम सामाजिक पर्यावरण के विषय में बताएँगे। हमने ऊपर प्राकृतिक और मानव-निर्मित पर्यावरण के बारे में जो बताया है, अगर आप उसे समझ गए हैं तो नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर देने की कोशिश कीजिए :

बोध प्रश्न 2

नीचे दिए गए कथनों में जो सही हैं, उसके आगे (✓) का निशान और जो गलत हैं उसके आगे (✗) का निशान लगाइए :

क) मानव-निर्मित पर्यावरण प्रकृतिक पर्यावरण पर निर्भर नहीं है और कभी भी प्रकृति के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता। ( )

ख) मानव-निर्मित पर्यावरण बड़ी तेज दर से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर रहा है और प्राकृतिक पर्यावरण में असंतुलन का कारण बन रहा है। ( )

ग) विकासशील देशों में अधिकांश लोगों को बहुत-सी शहरी सुख-सुविधाएँ तथा सेवाएँ नहीं मिलतीं। ( )

घ) वर्तमान गहन कृषि का सभ्यता पर प्रतिकूल असर एड़ेगा। ( )

1.2.3 सामाजिक पर्यावरण

आप जानते हैं कि आदमी ऐसे पर्यावरण में रहता है जहाँ दोनों ही कारक जैविक और

अजैविक उसे प्रभावित करते हैं। वह कई तरह से अपने आपको इनके प्रति अनुकूल बनाने की कोशिश करता है। एक और प्रकार का भी पर्यावरण है जो मनुष्य के रहन-सहन की परिस्थितियों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, यह सामाजिक पर्यावरण है।

सामाजिक पर्यावरण में सांस्कृतिक प्रतिमान (norms) और मूल्य शामिल हैं। राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक संस्थाएँ सामाजिक वातावरण के महत्वपूर्ण भाग हैं, और प्रायः यह निश्चित करते हैं कि लोग पर्यावरण संसाधनों का किस तरह उपयोग करेंगे और इनका उपयोग किसके हित में किया जाएगा। इस प्रकार ये कारक संसाधन उपयोग पर रोक लगाते हैं।

सामाजिक पर्यावरण को समाज की व्यापक संरचनात्मक व्यवस्थाओं के संदर्भ में समझा जा सकता है। पहले हम यह स्पष्ट रूप से जान लें कि सामाजिक संरचना से हमारा क्या मतलब है। सामाजिक संरचना को सामाजिक संस्थाओं के जाल के रूप में माना गया है। यह प्रमुख समूहों और संस्थाओं का एक कॉम्पलेक्स है, जिससे समाज बनता है।

मानव समाज के अस्तित्व के लिए कुछ पूरक व्यवस्थाओं की जरूरत है, जिन्हें समूह और संस्थाओं के बीच प्रतिरूपित संबंध के रूप में समझा जा सकता है। ऐसा लगता है कि न्यूनतम आवश्यकताएँ इस प्रकार हैं :

i) वस्तुओं के उत्पादन और वितरण से संबंधित आर्थिक तंत्र;

ii) संचार तंत्र : जिसमें एक भाषा और प्रौद्योगिकी भी विकसित करना शामिल है जिससे एक भाग से दूसरे भाग में सूचना पहुँच सके। व्यक्ति की अपनी संस्कृति के अनुसार भाषा बदल जाती है। उदाहरणार्थ, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में विभिन्न संकल्पनाओं को बताने के लिए नए वैज्ञानिक ज्ञान और नई तकनीकी भाषा का विकास करना आवश्यक था। विभिन्न साधन, मुद्रित सामग्री, इलेक्ट्रॉनिक आदि सभी संचार-प्रौद्योगिकी के अंग हैं।

iii) वह व्यवस्था जिसमें परिवार और शिक्षा शामिल है, अथवा एक सुसंतुलित परिवार तैयार करना जिसमें बच्चों की शिक्षा शामिल है जिससे हर व्यक्ति समाज के प्रति अपना योगदान दे सकने के योग्य बन सके।

iv) प्राधिकार और शक्ति का तंत्र। यह राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से किया जाता है। जनता का लक्ष्य पूरा करने के लिए ये सभी आवश्यक हैं।

v) अनुष्ठान या कर्मकांड का तंत्र, जिसका उद्देश्य सामाजिक संबद्धता को बनाए रखना या बढ़ाना है और जन्म, अनुरंजन (courtship), प्रेम-विवाह और मृत्यु जैसी निजी महत्वपूर्ण घटनाओं को सामाजिक मान्यता देना है।

समाज की प्रमुख संस्थाओं और समूहों को इस प्रकार की उन मूलभूत आवश्यकताओं की चिंता रहती है, जिनके साथ मिलकर ये सामाजिक पर्यावरण बनाते हैं। आइए, इनमें से कुछ के विषय में थोड़ा-अधिक विस्तार से चर्चा करें।

परिवार

सामाजिक संगठन की मूलभूत संस्थाओं में से परिवार एक संस्था है। सामाजिक पर्यावरण के व्यापक संदर्भ में परिवार अनेक कार्य करता है जिसमें मानव का जनन, बच्चों का समाजीकरण, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सांस्कृतिक परंपराओं का हस्तांतरण आदि शामिल हैं। समाज के प्रतिमानों, मान्यताओं, विश्वासों और आचरणों के आधार पर परिवार के कार्यों की प्रकृति में विविधता होती है।

परिवारों के समूह साथ-साथ रहते हैं और इनसे समुदाय बनते हैं। समुदायों के व्यवसाय, धार्मिक विश्वास, देश आदि के आधार पर इनका वर्गीकरण किया जा सकता है और समुदाय एक भौगोलिक परिसीमा (boundary) के भीतर मिलकर एक समाज बनाते हैं। इस प्रकार समाज को परस्पर क्रियाशील लोगों का एक समूह कहा जा सकता है जो एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में रहते हैं, तथा जो सहकारी ढंग से संगठित हैं और जिनकी एक सांझी संस्कृति है।

संस्कृति

अब प्रश्न यह उठता है कि "संस्कृति क्या है?" संस्कृति मानव-निर्मित पर्यावरण का एक भाग है। यह सामाजिक पर्यावरण और सामाजिक कार्य निश्चित करता है। संस्कृति व्यक्ति

को विशेष व्यवहार चुनने के लिए दिशा-निर्देश देती है। व्यवहार उसे जैव परम्परा (biological heritage) द्वारा मिलता है। ब्रिटेन के नृ-विज्ञानी एडवर्ड टेलर के अनुसार, "संस्कृति वह जटिल संपूर्णता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाएँ, नैतिकताएँ, कानून, प्रथाएँ और किसी भी अन्य प्रकार की क्षमताएँ तथा प्रवृत्तियाँ शामिल हैं जिसे मनुष्य समाज का एक सदस्य होने के कारण अर्जित करता है।" सांस्कृतिक पर्यावरण अपने सामाजिक प्रतिमानों, अर्थव्यवस्थाओं, राजनीतिक और धार्मिक संस्थाओं से अप्रभावित नहीं रह सकता।

अर्थव्यवस्था एक महत्वपूर्ण कारक है जो यह निश्चित करती है कि किस प्रकार संसाधन अर्जित किए जाते हैं और काम में लाए जाते हैं। उदाहरणार्थ, विश्व के अनेक भागों में भूमिगत खनन की बजाय कोयले के पृष्ठ-खनन (surface-mining) को ज्यादा पसंद किया जाता है, क्योंकि यह अधिक सस्ता है, जबकि इस तथ्य की उपेक्षा कर दी जाती है कि यह पर्यावरण के संबंध में बहुत ज्यादा विनाशकारी है, विशेषतया इसलिए कि यह वन्य जीवों के आवास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इस प्रकार आर्थिक कार्यकलाप प्राणियों के जीवित बचे रहने से सीधे रूप से संबंधित है और बदले में समग्र सांस्कृतिक पर्यावरण द्वारा प्रभावित होता है।

विधि-तंत्र समाज के सामाजिक आचरणों का नियमन करता है। यह नागरिकों के अधिकारों और विशेषाधिकारों को परिभाषित करता है। यह प्राकृतिक आवास को संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। उदाहरणार्थ, सरंक्षण कानून यह देख सकता है कि कितना आवास नष्ट हुआ है, जानवरों का कितना शिकार किया गया है और कितनी चोरी की जाती है तथा किस जाति का शिकार किया जाए और किसका नहीं? इसी प्रकार उपयुक्त विधायिका हरित-पट्टियों के अनुपात में निर्माण किए जाने के क्षेत्रफल को निर्धारित करके कृषि योग्य भूमि के अत्यधिक शहरीकरण को रोककर भूमि के समुचित उपयोग को सुनिश्चित कर सकता है। हरित-पट्टियाँ बड़े-बड़े शहरों के लिए फेफड़ों जैसा काम करती हैं। विधायी उपाय भूमि के विवेकपूर्ण और न्यायसंगत वितरण को भी सुनिश्चित कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए कथनों में से जो सत्य हैं उनके सामने (✓) सही और जो गलत हैं, उनके सामने (✗) गलत का निशान लगाइए।

क) सामाजिक पर्यावरण, प्राकृतिक और मानव-निर्मित पर्यावरण पर निर्भर नहीं है। ( )

ख) भाषा व्यक्ति की संस्कृति का महत्वपूर्ण भाग है। ( )

ग) सांस्कृतिक पर्यावरण प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर लगाम लगा सकता है। ( )

घ) विकासशील देशों में सस्ती अर्थव्यवस्था धीमे ज़हर के रूप में कार्य कर रही है। ( )

1.3 हमें पर्यावरण की चिंता क्यों होनी चाहिए?

आजकल आपको भूमंडलीय पर्यावरणीय समस्याओं के बारे में अवश्य सुनने को मिल रहा होगा। आप से कोई भी यह पूछ सकता है कि पर्यावरण के बारे में इतनी चिंता क्यों की जा रही है? उत्तर सरल और स्पष्ट है कि हमारा अपना अस्तित्व पर्यावरण के संरक्षण पर निर्भर है। यद्यपि उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी की अपूर्व आर्थिक प्रगति ने पर्यावरणीय और पारिस्थितिकीय जागरुकता को पृष्ठभूमि में धकेल दिया है। लेकिन, आज संपूर्ण विश्व विशेष रूप से विकासशील देशों को आर्थिक और पर्यावरण दोनों ही मामले में लगभग संकटकाल जैसी परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा है।

लोगों को पर्यावरणीय चिंता का अलग-अलग बोध है। मोटे तौर पर इस संदर्भ में तीन प्रकार की विचारधाराएँ हैं। पहले विचार के अनुसार पर्यावरणीय चिंता तीसरी दुनिया की प्रगति के विरुद्ध विकसित पहली दुनिया का षड्यंत्र है और पर्यावरण तभी एक महत्वपूर्ण

मुद्दा बन जाता है, जब अविकसित देशों के उत्थान और खपत के स्तर औद्योगीकृत देशों के स्तरों के बराबर हो जाएँगें। दूसरे चिंतन का जोरदार तर्क यह है कि बाघ को बचाए रखने और हरित पट्टियों के सौंदर्य को बराबर बचाए रखने की बकवास दरअसल ग़रीबों की समस्याओं से ध्यान हटाने के लिए है। बड़ी तथा सदा बढ़ रही जनसंख्या की दशा सुधारने के प्रयास से इसका कुछ लेना-देना नहीं है। तीसरा विचार, विरोधाभासी रूप में, इस बड़ी और सदा बढ़ रही जनसंख्या को ही पर्यावरणीय संकट के लिए उत्तरदायी मानता है और समझता है कि लोगों को छोड़कर सभी चीज़ों की भारी कमी है। इन तीन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से यह पता चलता है कि हमारा ज्ञान पारितंत्र और पारि-संतुलन के बारे में कितना सीमित है। आइए, इन सभी तर्कों पर संक्षेप में चर्चा करें।

पहला तर्क यह है कि पर्यावरणीय चिंता अमीर देशों का शौक है जो सबसे ज्यादा प्रदूषण फैलाते हैं। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि पर्यावरण और विकास परस्पर विरोधी हों। अगर उचित विकास नीतियाँ अपनाई जाएँ तो विकसित देशों ने जो गलतियाँ की हैं उनसे बचा जा सकता है। इसके अलावा, विकसित देशों के पर्यावरण और विकासशील देशों के पर्यावरण में कोई अंतर नहीं है। हममें से प्रत्येक को पर्यावरण का अपक्षय होना प्रभावित करेगा, भले ही हम किसी भी देश, प्रदेश या क्षेत्र के हों। चेरनोबिल दुर्घटना इसका एक उदाहरण है, जिसमें हज़ारों मनुष्य और जंतुओं को नुकसान पहुँच सकता है और जिससे सोवियत संघ के भीतर और बाहर की भूमि के बहुत बड़े क्षेत्र में तबाही हो सकती है। इसके बारे में अधिक जानकारी आपको भाग 1.4 में दी जाएगी।

दूसरे तर्क को प्रस्तावित करने वाले लोग पर्यावरण-संरक्षण की कीमत पर गरीबों के भाग्य को सुधारने के लिए विकास को ही पसंद करेंगे। लेकिन ग़रीब को ही इस मामले में सबसे अधिक कष्ट सहना पड़ेगा, जिसमें औद्योगीकरण और शहरीकरण से होने वाला प्रदूषण भी शामिल है। इसका ज्वलंत उदाहरण हमें भोपाल गैस त्रासदी में देखने को मिला था, जिसमें हज़ारों गरीब लोग मारे गए। पीने का अशुद्ध पानी, रहने की गंदी परिस्थितियाँ और रोग आदि से उन्हें ही सबसे ज्यादा भुगतना पड़ता है।

तीसरे तर्क में उठाया जाने वाला मुद्दा यह है कि जनसंख्या दबाव से पर्यावरण अपक्षय होता है, जो बहुत पुराना मुद्दा है। समस्या इस बात की उतनी नहीं है कि गरीब आदमी मात्र अपनी संख्या से पर्यावरण का नाश कर रहा है, अपितु इस बात की है कि गरीबों को संसाधनों के वितरण में उनके हिस्से से वंचित रखा जा रहा है। इसलिए यह एकदम साफ हो जाना चाहिए कि गरीबी और जनसंख्या के अलावा अन्य दूसरे कारक हैं जो पृथ्वी के प्रदूषण के लिए उत्तरदायी हैं। जून 1972 में स्टाकहोम में मानव पर्यावरण पर हुए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि गरीबी सबसे बड़ा प्रदूषक है। इस तरह आप देख सकते हैं कि पर्यावरण-अपक्षय के कारण अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन मानव जाति के लिए इस अपक्षय के खतरे बहुत बड़े हैं।

उपरोक्त कथनों के अध्ययन के बाद आपकी रुचि पर्यावरण-समस्याओं के प्रति होगी। यहाँ हम उनके बारे में संक्षेप में बताएँगे। इसके बाद की इकाइयों में आप इनका विस्तार से अध्ययन करेंगे।

मुख्य रूप से पर्यावरणीय समस्या त्रि-विमीय हैं: (i) पर्यावरण-प्रदूषण (ii) पारिस्थितिकीय क्षरण; और (iii) संसाधन अवक्षय। इनमें से अनेक अनुत्क्रमणीय (irreversible) हैं अर्थात् इन्हें उल्टा नहीं किया जा सकता। आज सबसे बड़ा प्रदूषक या "पर्यावरणीय कारक" नाभिकीय परीक्षण से होने वाला रेडियोएक्टिव अवपात (fallout), नाभिकीय संयंत्र और नाभिक-पदार्थों का लंबे काल तक भंडारण, नाभिक अपशिष्ट और कभी-कभी होने वाली नाभिक दुर्घटनाएँ हैं।

दूसरी तरह के वायु प्रदूषण अंतर्राष्ट्रीय चिंता के कारण रहे हैं। एक, आधुनिक उद्योग और परिवहन में जीवाश्म ईंधन, कोयला और पेट्रोलियम के बड़े पैमाने पर जलाए जाने के कारण वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ती हुई सांद्रता (concentration) ने "ग्रीन हाउस प्रभाव" को जन्म दिया है जिसे "पौधघर प्रभाव" भी कहा जा सकता है। दूसरा खतरा वायुयानों से बाहर निकलने वाले क्लोरोफ्लुओरोकार्बन (CFC) आदि एयरोसॉल फुहारों (स्प्रे) और प्रशीतन (refrigeration) से पैदा होता है जिससे ओज़ोन परत का ह्रास होता है।

वायु प्रदूषण के अलावा, विकसित और विकासशील देशों (भारत सहित) में आधुनिक कृषि में पीड़कनाशी और रासायनिक उर्वरकों के बड़े पैमाने पर काम में लाए जाने से भूमि और

व्यापक रूप से जल को जहरीला किया जा रहा है। इसके विषय में अगले खंडों में विस्तारपूर्वक बताया जाएगा।

बड़े पैमाने पर वनोन्मूलन (deforestation) से अन्य गंभीर पर्यावरणीय और पारिस्थितिकीय समस्या उत्पन्न हो गई है जिससे बाढ़ें ज्यादा आने लगी हैं, मिट्टी का कटाव होने लगा है, नदियों की तह में मिट्टी (silt) भरने लगी है और ये कहीं-कहीं रेगिस्तान बनने लगे हैं। विशेष रूप से तीसरी दुनिया में, यह अंधाधुंध क्रिया, हर साल एक करोड़ दस लाख हेक्टेयर वनों का सफाया कर देती है। ये कुछ प्रमुख समस्याएँ हैं जिनसे पर्यावरण को खतरा है।

पर्यावरण केवल सुंदर पेड़, संकट में पड़े पादप, प्राणी और पारितंत्र नहीं है, वस्तुतः यह वह तत्व हैं जिससे हम जीवित रहते हैं, और जिस पर तमाम कृषि और औद्योगिक विकास निर्भर हैं। ऐसा विकास जिसमें पर्यावरण की चिंता न की जाए अल्पकालीन विकास है। लंबे समय बाद ऐसा विकास केवल घोर मानव दुःख, बढ़ी हुई गरीबी और अत्याचार की कीमत पर जारी रह सकता है।

सारे संसार के पर्यावरण के प्रति जागरुकता प्रकट करने के लिए मंच, मानव पर्यावरण संगोष्ठी में मिलता है जो यूनाइटेड नेशन्स एनवायरमेंट प्रोग्राम द्वारा आयोजित किए जाते हैं। भारत इसका एक सक्रिय सदस्य है और उस मूल प्रति का हस्ताक्षरकर्ता है जो यूनाइटेड नेशन्स की संगोष्ठी स्टोकहोम में सन् 1972 में हुई थी। भारत का पर्यावरण के प्रति चिंता अनुच्छेद 48 ए और 51 ए में दर्शायी गयी है।

अनुच्छेद 48 ए
प्रदेश को पर्यावरण को बचाने और सुधारने की चेष्टा करनी चाहिए तथा देश के जंगलों और वन्य जीवन की रक्षा करनी चाहिए।

अनुच्छेद 51 ए
भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य प्राकृतिक पर्यावरण, जिसमें जंगल, झील, नदियाँ और वन्य जीवन शामिल हैं; को बचाना तथा रक्षा करना होना चाहिए और जीवों के प्रति उसमें प्रेम होना चाहिए।

विश्व और राष्ट्रीय स्तरों पर ये प्रयास साफ तौर पर स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य का प्रकृति पर बढ़ता हुआ काबू मनुष्य के जीवन को नष्ट कर सकता है। इस प्रकार हमारे जीवित बने रहने के लिए पर्यावरण की चिंता करना आवश्यक है। यह देखने के लिए कि क्या आप इसके हक में तर्क दे सकते हैं, नीचे दिए बोध प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास कीजिए।

बोध प्रश्न 4
"हमें अपने पर्यावरण की चिंता तथा उसका रख-रखाव करना चाहिए"। इस कथन पर चार पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

1.4 विकासीय गतिविधियों में लापरवाही के संभावित संकट

भारत में ऐसे कम ही लोग हैं जो औद्योगीकरण के नकारात्मक पहलुओं और पर्यावरणीय प्रदूषण के फलस्वरूप बढ़ रहे विषाक्त खतरों के बारे में सचमुच चिंतित हैं। विकसित राष्ट्रों और विकासशील देशों में सुविधा-प्राप्त वर्ग द्वारा संसाधनों का अति-उपभोग और खर्चीला उपयोग पर्यावरण के लिए एक नए तरह का जोखिम पैदा कर रहा है। लेकिन इससे कहीं अधिक गंभीर असमान विकास से उत्पन्न भू-मंडलीय समस्याएँ हैं। अम्लीय वर्षा और ओज़ोन परत का अवक्षय पर्यावरण का धीरे-धीरे विषाक्त होने का सूचक है (इसके विषय में आप इकाई 10, खंड 3 में पढ़िए), भोपाल त्रासदी और चेरनोबिल दुर्घटना इन बढ़ते हुए भंयकर संकटों के उदाहरण हैं।

1.4.1 भोपाल त्रासदी

भोपाल में यूनियन कार्बाइड के आने का सब ने स्वागत किया था क्योंकि इसका अर्थ यह था कि भोपाल के लोगों के लिए नौकरी और धन तथा पीड़क-नाशियों की बढ़ती हुई माँग के संदर्भ में देश के लिए विदेशी मुद्रा की बचत। मिथाइल आइसोसाइनाइड (MIC) संयंत्र पहले ही साल से कष्टदायक रहा क्योंकि तथाकथित "भोपाल त्रासदी" से पहले अनेक हल्के तथा भारी रिसाव होते रहे।

भोपाल में विनाशक रात

3 दिसंबर, 1984 की उस रात में यूनियन कार्बाइड, भोपाल में सही-सही क्या हुआ, यह अभी भी सरकारी तौर पर या अधिकारिक तौर पर मालूम नहीं है। लेकिन प्रेस ने टुकड़े-टुकड़े जोड़कर घटनाक्रम की निम्नलिखित रिपोर्ट दी है :

मिथाइल आइसोसाइनाइड(MIC) गैस एक अत्यधिक विषैली, वाष्पशील (volatile) और ज्वलनशील (inflammable) रसायन है। चूँकि धात्विक अपद्रव्यों (metalic impurities) से प्रचंड अभिक्रिया हो जाती है इसलिए यह गैस हमेशा ही जंगरोधी इस्पात (स्टेनलैस स्टील) 304 और 316 उपस्कर में संगृहीत की जाती है। अतिशोषित (highly parified) मिथाइल आइसोसाइनाइड सह-जमाव से अपने आपसे अभिक्रिया करती है और उष्मा को निर्मुक्त करती है। इन अत्याधिक अभिक्रामक गुणों के कारण अति-विषाक्त रसायन होने के अलावा, मिथाइल आइसो-साइनाइड एक विस्फोटक पदार्थ भी है। यह रसायन कार्बोनिल या सेविन नामक पीड़कनाशी के निर्माण में काम आता है।

मिथाइल आइसोसाइनाइड तीन दोहरी-भित्ति वाले, आंशिक रूप से गाड़े गए जंगरोधी इस्पात टैंकों में एकत्रित की गई थी, जिनका कोड नाम 610, 611 और 619 था। इन टैंकों को प्रशीतलन (refrigeration) यानी शीतलन द्वारा ठंडा करके 0° सेलसियस पर रखा जाना था। लेकिन, प्रशीतलन मशीनें काफी समय से खराब पड़ी हुई थीं। उस रात एक कामगार ने देखा कि टैंक 610 में दाब बढ़ रहा है। अंततः उसी टैंक से मिथाइल आइसोसाइनाइड निकली। लेकिन इसके बारे में कुछ नहीं किया गया। घटना के बारे में यू.सी.सी. कंपनी की रिपोर्ट यह दावा करती है कि दुर्घटना के समय टैंक 610 में 42 टन मिथाइल आइसोसाइनाइड गैस थी। लगभग दो घंटे तक सुरक्षा वाल्व खुले रहे और 20 टन से भी ज्यादा मिथाइल आइसोसाइनाइड वाष्प और द्रव्य रूप में तथा दूसरी गैसों के रूप में निकलती रही, जैसे—फोसीजीन, हाइड्रोजन साइनाइड और कार्बन डाइऑक्साइड आदि। दुर्घटना के मामले में मिथाइल आइसोसाइनाइड को जला कर उसे हानिरहित बनाने के लिए सुरक्षा क्रियाविधि ने भी काम नहीं किया। गैसें वायुमंडल में बह निकलीं और ठंडी हवा से (जैसा कि आपको विदित होगा कि यह दिसम्बर माह की एक ठंडी रात थी) द्रवित (condensed) हो गईं और वायुमंडलीय व्युत्क्रमण (inversion) अर्थात् उलटने की सहायता से धीरे-धीरे ज़मीन पर बैठ गई और त्रासदी की शुरुआत हो गई।

उस रात प्रचंड अभिक्रिया किस कारण हुई?

कार्बाइड के वैज्ञानिक इस विस्फोटक "भाग निकलने वाली अभिक्रिया" की संभावना से परिचित थे। यह गैस लगभग सभी रसायनों और अपने आप से भी अभिक्रिया कर सकती है, जिससे ऊष्मा और कार्बन डाइऑक्साइड पर्याप्त मात्रा में पैदा होती हैं। जितने ज्यादा समय तक मिथाइल आइसोसाइनाइड संग्रह टैंकों में बैठी रहती है, अनुषंगी अभिक्रियाओं (side-reactions) की भाग निकलने वाली अभिक्रिया में बदलते रहने की संभावना भी उतनी ही ज्यादा होती रहती है। मिथाइल आइसोसाइनाइड, भोपाल संयंत्र में अक्तूबर, 1983 से संग्रह टैंकों में भरी हुई थी।

भीषण अभिक्रिया का यथातथ्य अर्थात् सही कारण अभी भी अस्पष्ट बना हुआ है। कार्बाइड कंपनी की रिपोर्ट ने दावा किया है कि यह भारी मात्रा में पानी (लगभग 500-1000 लीटर) और संक्षारित (corroded) टैंक से उत्पन्न लौह उत्प्रेरक (catalyst) का एक अनन्य संयोग था, जिसके कारण मिथाइल आइसोसाइनाइड में प्रचंड अभिक्रिया हुई, जो विनिर्दिष्ट से अधिक तापमान पर संगृहीत की गई थी। पानी की मात्रा संगृहीत मिथाइल आइसोसाइनाइड में क्लोरोफॉर्म की सामान्य मात्रा से अधिक थी, जो 0.5 प्रतिशत थी, और यह अधिकतम मात्रा के बाद कई प्रतिशत थी।

भारत सरकार की ओर से खोजों की अगुवाई करने वाले डॉ. एस. वर्धराजन ने एक अलग व्याख्या दी है। उनके अनुसार, पानी की कम मात्रा जो लगभग दो या तीन लीटर ही हो, टैंक में फॉसजीन से अभिक्रिया कराने में सहायक हो सकती थी। संग्रह के दौरान मिथाइल आइसोसाइनाइड को स्थायी रखने के लिए उसमें फॉसजीन मिलाई जाती है। फॉसजीन-जल की अभिक्रिया से ऊष्मा, कार्बन डाइऑक्साइड और हाइड्रोक्लोरिक एसिड पैदा होती है। ऊष्मा और हाइड्रोक्लोरिक एसिड ने मिथाइल आइसोसाइनाइड के बहुलकन (polymerisation) के लिए त्वरकों (accelerators) का काम किया, जिसकी वजह से गैस के बाहर भाग निकलने वाली अभिक्रिया हुई।

मृतकों की अनुमानित संख्या

भोपाल दुर्घटना में कितने लोगों की जानें गईं, यह अभी तक एक रहस्य बना हुआ है।

जनवरी, 1985 के अंत तक लगभग 2,500 मृतकों की गिनती हो चुकी थी और लगभग 1,00,000 घायल हो चुके थे। इनमें से अधिकांश लोगों को अपूरणीय क्षति पहुँची थी। लेकिन ऐसे बहुत से लोग हैं जो यह मानते हैं कि गैर-सरकारी आँकड़े सच्चाई से बहुत दूर हैं। एक सप्ताह की भोपाल यात्रा के बाद दिल्ली लौटकर दिसम्बर में एक यूनिसेफ अधिकारी ने अपनी गोपनीय रिपोर्ट में बताया कि मरने वालों की संख्या 10,000 तक हो सकती है। मरने वालों में फैक्टरी के नज़दीक रहने वाले गरीब लोग सबसे अधिक हैं।

भोपाल के बाद के मुद्दे

भोपाल दुर्घटना से अनेक प्रश्न उठते हैं। भारत में किस-किस जगह दूसरे जोखिम-भरे संयंत्र बनाए गए हैं? भोपाल में संयंत्र के इतने निकट इतने अधिक लोग क्यों रह रहे थे? विनाश की संभावनाओं से पूर्व फैक्ट्रियों की संख्या कम करने के लिए हम नीति-निर्धारण किस प्रकार करें? क्या बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने गृह देश की अपेक्षा तीसरी दुनिया में स्थापित अपने संयंत्रों में स्वास्थ्य और सुरक्षा के निचली कोटि के मानकों को अपनाती हैं? ऐसे कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर पुनः विचार करना आवश्यक है।

अनेक पीड़कनाशी तथा दवाइयों का उत्पादन, जिन पर दूसरे देशों में रोक लगी है या जो बहुत ज्यादा प्रतिबंधित हैं, उनका भारत में जान-बूझकर आयात या उत्पादन, किया जा रहा है। बहुक्लोरीनीकृत बाइफेनिल्स (PCBs) एक उदाहरण है, जिनका पीड़कनाशियों के रूप में व्यापक उपयोग हो रहा है।

इस संबंध में प्रौद्योगिकी का चुनाव दूसरा कारक है। उदाहरणार्थ अनेक कंपनियाँ बिना मिथाइल आइसोसाइनाइड के ही कार्बेरिल का निर्माण करती हैं। भोपाल संयंत्र को लाइसेंस मिलने से केवल दस साल पहले स्वयं यूनियन कार्बाइड ने मिथाइल आइसोसाइनाइड को काम में लाना शुरू किया था। इसके विपरीत, फ्रांस ने अपने देश में मिथाइल आइसोसाइनाइड के उत्पादन के लिए मना कर दिया था।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अनुचित रूप से तीसरी दुनिया में प्रतिबंधित दवाइयों और पीड़कनाशियों का बार-बार निर्यात किया है।

भोपाल त्रासदी के बाद काफी अधिक समय बीत चुका है, लेकिन भोपाल जैसी दुर्घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकने की दिशा में सरकार ने अभी तक कोई कदम नहीं उठाया है। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि औद्योगिक दुर्घटनाओं के लिए किसी तरह के आपात अनुक्रिया तंत्र (emergency response system) को विकसित करने के विषय में अभी तक सरकार ने नहीं सोचा है। तीसरी दुनिया के पास पूँजी की कमी के साथ-साथ नौकरशाही के भीतर व्याप्त अकुशलता और दोहरी सामाजिक नीति तथा शोषित वर्ग के प्रति पनपती निर्दयता ने समस्या को और भी गंभीर बना दिया है।

बोध प्रश्न 5

"अगर उचित प्रौद्योगिकी काम में लाई गई होती तो भोपाल गैस दुर्घटना टाली जा सकती थी" इस कथन पर टिप्पणी लिखिए। अपना उत्तर पाँच पँक्तियों तक सीमित रखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.4.2 चेरनोबिल दुर्घटना

चेरनोबिल दुर्घटना के बाद नाभिक उद्योग में आत्मविश्वास की बहुत कमी आई है। क्षतिग्रस्त संयंत्र से भयंकर विकिरण अवपात ने नाभिक ऊर्जा के प्रबल समर्थकों के विश्वास को भी हिला कर रख दिया है।

चेरनोबिल में क्या हुआ था?

यह दुर्घटना चेरनोबिल के नवीनतम शक्ति संयंत्र के चार संयंत्रों के परीक्षण के रूप में शुरू हुई है। परीक्षण के दौरान सुरक्षा तंत्र वियोजित (disconnected) हो गए और सुरक्षा प्रक्रिया नहीं अपनाई गई। इससे रिएक्टर अस्थायी हो गया। ईंधन छड़ें अतितप्त

(overheated) होकर फट गई और संभवत: विस्फोटक गैसें इतनी अधिक पैदा हुई जिससे प्रशीतलन ने जल को भाप में इतनी तेजी से बदला कि रिएक्टर का 1000 टन वाला ढक्कन उड़ गया। इससे यूरेनियम का विखंडन (fission) होने से हवा अंदर घुस गई और धुआँ तथा रेडियोएक्टिव कण वायुमंडल में फैल गए। विकिरण के काले और खतरनाक बादल यूरोपीय देशों पर छा गए जिससे विशाल जनसंख्या प्रभावित हुई। यह दुर्घटना उन अनेक परिस्थितियों में से एक है, जो किसी भी नाभिक संयंत्र से पैदा हो सकती है। यह परिस्थिति संभावित खतरों के रूप में आ खड़ी होती है जिसका बड़े पैमाने पर सामना किया जाना है। ज्यादा गलतियों से सीखना हमें मंहगा पड़ेगा। चेरनोबिल से निकलने वाले विकिरण अल्पकालीन और दीर्घकालीन दुष्प्रभाव छोड़ते हैं। हालाँकि प्रारंभिक विस्फोट के प्रत्यक्ष कारण से या पहले कुछ महीनों के दौरान तीव्र विकिरण में खुले रहने के फलस्वरूप केवल 31 लोगों के मरने की रिपोर्ट है। इससे प्रभावित होने वाले लोगों का अनुमान कुछ हजार से लेकर 10 लाख से भी ज्यादा है। संयंत्र के 30 किलोमीटर क्षेत्र के भीतर से 1,35,000 लोगों को निकाला गया और ऐसी आशा की जाती है कि लगभग 4 साल से पहले कोई नहीं लौटेगा क्योंकि तब तक विकिरण अवपात का स्तर सुरक्षा सीमाओं तक उतर जाएगा।

चेरनोबिल दुर्घटना के बाद के मुद्दे

नाभिक विरोधी गुट का दावा है और यह शायद सही भी है, कि नाभिकीय शक्ति भ्रमित मानव जाति के लिए एक खर्चीली प्रौद्योगिकी है। इसके अलावा नाभिकीय प्रचुरोद्भवन (nuclear protiferation) और दग्ध अवशिष्ट जो लाखों सालों तक बना रहता है, मानव जाति के लिए खतरा पैदा कर सकता है। इन भयंकर समस्याओं को देखते हुए नाभिकीय शक्ति को ऊर्जा के भावी स्रोत के रूप में उचित ठहराना और भी कठिन हो गया है। विकास के लिए आवश्यक ऊर्जा की अधिकाधिक माँग को पूरा करने के लिए ऊर्जा के गैर-पारंपरिक स्रोतों जैसे--सौर ऊर्जा, की ओर ध्यान देना ही शायद इस समस्या का उचित समाधान है क्योंकि यह स्रोत अधिक सरल एवं स्पष्ट है।

बोध प्रश्न 6

सही उत्तर पर (✓) और गलत पर (✗) का निशान लगाइए। नाभिकीय दुर्घटनाएँ हानिकारक हैं क्योंकि :

i) वे लोगों को तुरंत मार देती हैं। ( )

ii) उनके लंबे अर्ध जीवन काल (half life) के कारण उनके सामने आने वाले अल्पकालीन और दीर्घकालिक प्रभाव हैं। ( )

iii) नाभिकीय अवपात (fallout) हवा द्वारा दूर-दूर तक ले जाया जा सकता है। ( )

iv) नाभिकीय विकिरणों से आनुवांशिक परिवर्तन आ जाते हैं, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में चले जाते हैं। ( )

v) जीवों पर उनका नुकसान केवल बाहरी ही होता है। ( )

1.5 सारांश

आपने इस इकाई में निम्नलिखित का अध्ययन किया है :

- जीव के परिवेश में पाए जाने वाले जैव और अजैव घटकों के कुल योग को पर्यावरण कहते हैं। जीवित घटक जैव और अजीवित घटक अजैव घटक कहलाते हैं।
- सभी प्राकृतिक कारक एक-दूसरे से परस्पर क्रिया करते हैं और एक-दूसरे से मिलकर प्राकृतिक पर्यावरण बनाते हैं। मनुष्य ने प्राकृतिक पर्यावरण को मानव-निर्मित पर्यावरण में रूपांतरित कर दिया है। मानव-निर्मित पर्यावरण के कारण प्रकृति में बहुत असंतुलन आ गया है। एक अन्य पर्यावरण भी है, जिसे सामाजिक पर्यावरण कहते हैं। यह पर्यावरण प्राकृतिक संसाधनों पर प्रतिबंध लगाते हुए मानव जाति पर विभिन्न प्रकार के दबाव बनाए रखने के कारण महत्वपूर्ण है।

- खाने, आश्रय और भौतिक सुविधाओं की तलाश में मानव जाति ने पर्यावरण पर जान-बूझकर या अनजाने में विनाशकारी प्रभाव डाला है। पिछले लाखों सालों में मानव गतिविधियों के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाला विशेष प्रभाव कई गुना बढ़ गया है। यह समस्या अब काबू से बाहर हो गई है, जिसका मुख्य कारण औद्योगिक क्रांति आने के साथ ही आधुनिक प्रौद्योगिकी का बे-हिसाब काम में लाया जाना है।
- पर्यावरणीय प्रबंध के दुर्घटनापूर्ण परिणामों को ध्यान में रखते हुए हमें पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति सजग हो जाना चाहिए। हमें अपने प्रमुख औद्योगिक, कृषि और सामाजिक उपतंत्रों को फिर से डिज़ाइन करना चाहिए, जिससे पुनः एक ऐसा नवीन पर्यावरण कायम रहे जिसमें हम लोग जिंदा रह सकें।

1.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) नीचे दी गई पंक्तियों में से कौन-सा कथन मानव-निर्मित पर्यावरण की सबसे उचित व्याख्या करता है?

मानव-निर्मित पर्यावरण का परिणाम है :

क) प्राकृतिक पारितंत्रों में रूपांतरण और हस्तक्षेप

ख) प्रदूषकों का निकलना

ग) जीवाश्म ईंधन का अधिकाधिक प्रयोग

घ) वनस्पति आवरण (vegetative cover) का बड़े पैमाने पर विनाश

2) क्या मनुष्य को पारिस्थितिकीय रूप से प्रमुख (dominant) जीव माना जा सकता है? अपना उत्तर 5 से 8 पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति सजग हो जाना क्यों महत्वपूर्ण है? आप व्यक्तिगत स्तर पर इसकी सहायता कैसे कर सकते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) मान लीजिए कि आप एक गाँव में रहते हैं। आप अपने पर्यावरण का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं :

अजीवीय कारक :
औसत तापमान, वर्षा और आर्द्रता, वायुमंडलीय गुणता-प्रदूषित या अप्रदूषित पानी की उपलब्धि और उसकी किस्म-मृद् या कठोर आदि।

तुंगता (ऊँचाई) और स्थलाकृति – पहाड़ी, मैदानी या तटीय।

मृदा की गुणता – उपजाऊ, अनुपजाऊ, अत्यधिक लौनी आदि।

जीवीय कारक :
पौधों और प्राणियों की किस्म
क्षेत्र के लोग

अपमार्जक (scavengers) और अपघटक (decomposers) आदि।

ख) i) × ii) × iii) × iv) ✓

2) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) ✓

3) i) असत्य ii) सत्य iii) सत्य iv) सत्य

4) पाठ के भाग 1.3 को देखिए।

5) किसी विशेष उत्पाद के निर्माण के लिए प्रौद्योगिकी का चुनाव एक महत्वपूर्ण कारक है। भोपाल दुर्घटना के मामले में मिथाइल आइसोसाइनाइड के साथ कार्बेरिल निर्माण की प्रौद्योगिकी अपनाई गई, जबकि अनेक कम्पनियाँ बिना मिथाइल आइसोसाइनाइड के कार्बेरिल निर्माण करती हैं। अगर हमने मिथाइल आइसोसाइनाइड को काम में लाने वाली प्रौद्योगिकी को मना कर दिया होता, जैसा कि फ्रांस ने किया था, तो हम भोपाल गैस दुर्घटना को टाल सकते थे।

6) i) ✓ ii) ✓ iii) ✓ iv) ✓ v) ×

अंत में कुछ प्रश्न

1) क)

2) पारिस्थितिकीय रूप से मनुष्य को अपने पर्यावरण में प्रमुख माना जाता है, क्योंकि उसने जीवमंडल के जीवीय आवरण को बहुत अधिक बदल दिया है। आधुनिक मानव जहाँ निवास करता है, उन शहरों और गाँवों के क्षेत्रों में अपनी आवश्यकताओं के अनुसार पर्यावरण को बदल देता है। मनुष्य के अधिक सभ्य होने के साथ-साथ सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में भी सुधार हुआ है। लेकिन मानव प्रमुख जीव होने के नाते संसाधनों का बड़ी तेजी से उपयोग करके और अपनी ऊर्जा गहन प्रौद्योगिकियों से पर्यावरण को प्रदूषित करके असंतुलन पैदा कर रहा है।

3) पाठ देखिए।

इकाई 2 जलवायु एवं संसाधन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
2.2 जलवायु के भूमंडलीय प्रतिरूप
वायुमंडल के अप्रत्यक्ष प्रभाव
वायु प्रवाह
महासागरीय धाराएँ
जलवायु में ऋतुनिष्ठ परिवर्तन
प्रादेशिक जलवायु
2.3 भारत का चित्रण
जलवायु
कृषि
खनिज संसाधन
2.4 सारांश
2.5 अंत में कुछ प्रश्न
2.6 उत्तर

2.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 1 में मनुष्य के हस्तक्षेप के कारण प्राकृतिक पर्यावरण का मानव निर्मित पर्यावरण में परिवर्तन का अध्ययन किया है। पृथ्वी के भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्राकृतिक परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। परन्तु, यह निश्चित कैसे होता है कि किसी स्थान विशेष पर घास का मैदान या रेगिस्तान या हरा-भरा जंगल बनेगा? इसका उत्तर होगा—उन स्थानों की जलवायु में विविधता। किसी भी भौगोलिक स्थान पर मृदा निर्माण, कृषि उत्पादन और ऊर्जा की माँग निर्धारित करने में उस स्थान के जलवायु की प्रमुख भूमिका होती है। पर्यावरण पर जलवायु की भिन्नता का गहरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रसंग में यह कहना उचित होगा कि इससे मानव जाति भी प्रभावित होती है। इन प्रभावित करने वाले कारकों को समझने के लिए हमें यह जानना होगा कि कौन-कौन से कारक विभिन्न प्रकार की जलवायु बनाने में सहायक होते हैं और किसी एक स्थान की जलवायु को बनाने वाले विभिन्न कारक एक-दूसरे से पारस्परिक क्रिया करके एक विशेष प्रकार की जलवायु का निर्माण करते हैं। अक्षांश, ऊँचाई, समुद्र की समीपता इत्यादि कारकों का सतत् और पूर्वानुमानित प्रभाव जलवायु पर निरतंर रहता है। इसके अतिरिक्त वायुमंडल में पवन लहरों और महासागरीय धाराओं के परिचक्रण प्रारूप का भी जलवायु पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। पवन धाराओं का परिचक्रण इस बात का निर्धारण करता है कि किस स्थान पर किस प्रकार की वायु राशि हमेशा रहेगी या वहाँ किस प्रकार की वायु राशि दूसरे स्थानों से आएगी। वायु राशियों से वर्षा पर प्रभाव पड़ता है, जबकि समुद्री धाराएँ विशाल भू-समूह की जलवायु को प्रभावित करती है।

इस इकाई में आप पृथ्वी के भू-मंडलीय प्रतिरूपों के विषय में सामान्य जानकारी और भारत के विभिन्न प्रदेशों की जलवायु के विषय में बृहत् जानकारी प्राप्त करेंगे जिसके कारण कृषि के प्रतिरूपों का निर्माण होता है। कृषि तथा उद्योग जनसंख्या के वितरण पर प्रभाव डालते हैं। जीवित रहने के लिए ताजी हवा तथा साफ पानी के अलावा भोजन, कपड़े तथा रहने के लिए आवास की आवश्यकता होती है। लोग उसी जगह रहना चाहते हैं जहाँ से वे आसानी से अपनी रोज़ी रोटी कमा सकें। इसके अतिरिक्त आप संक्षेप में भारत के खनिजों के विषय में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, जिनके कारण भारत के उद्योगों को सशक्त आधार मिल सका है। इससे आपको यह भी समझने में सहायता मिल सकेगी कि चूँकि खनिजों का भंडार सीमित है इसलिए उनका उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से करना चाहिए।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- जलवायु की परिभाषा तथा उसके आधारभूत तत्वों को सूचीबद्ध कर सकेंगे और उनका वर्णन कर सकेंगे;
- वातावरण और उन अन्य कारकों का वर्णन कर सकेंगे जिनसे जलवायु परिवर्तन के साथ मौसमी परिवर्तन भी होते हैं;
- यह स्पष्ट कर सकेंगे कि भारत की जलवायु को "मानसून जलवायु" क्यों कहा जाता है;
- जलवायु को ध्यान में रखते हुए भारत के कृषि प्रतिरूप का वर्णन कर सकेंगे; और
- खनिज, संसाधनों का संक्षिप्त वर्णन कर सकेंगे।

2.2 जलवायु के भूमंडलीय प्रतिरूप

यदि हमें आवास के लिए स्थान चुनने की स्वतंत्रता हो तो प्रायः हम उस स्थान की जलवायु को मुख्य रूप से ध्यान में रखेंगे। जलवायु किसी स्थान विशेष के कई वर्षों के औसत मौसम दशाओं को कहते हैं। इस परिभाषा में मौसम की पराकाष्ठता को ध्यान में रखा गया है। मौसम का आरंभ निम्न चार मुख्य तत्वों से होता है–

1) सूर्य–यह प्रकाश का मुख्य स्रोत है और वायुमंडल की दशा को इसकी विकिरण ऊर्जा निर्धारित करती है।

2) पृथ्वी–पृथ्वी अपनी गति से किसी स्थान के तात्कालिक मौसम और जलवायु के मुख्य लक्षणों को निर्धारित करती है।

3) पृथ्वी के चारों ओर का वायुमंडल जो सौर विकिरण को पृथ्वी के अनुकूल बना देता है।

4) प्राकृतिक भू-आकृति और पृथ्वी की सतह पर अन्य भौगोलिक लक्षण–पहाड़, घाटी, समुद्र, हिम-शिखर, रेगिस्तान, झील, नदी आदि पृथ्वी के आसपास के वायुमंडल पर अपना अत्यधिक प्रभाव डालते हैं।

सबसे पहले हम पृथ्वी के उन विशिष्ट लक्षणों का अध्ययन करेंगे जो मौसम की संरचना में अपना महत्वपूर्ण योगदान देतें हैं। यह आप अच्छी तरह जानते हैं कि पृथ्वी स्थिर नहीं रहती है। यह सूर्य के चारों ओर वार्षिक गति के साथ-साथ अपनी धुरी पर भी 1690 किलोमीटर/घंटा की गति से पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती रहती है। यह 24 घंटे में पश्चिम से पूर्व की ओर घूमकर रात और दिन का निर्धारण करती है, इसके साथ ही यह हवाओं और सागरीय धाराओं का भी निर्धारण करती है जो मौसम का निर्माण करती है। चूँकि पृथ्वी के घूर्णन का निरक्षीय समतल (equatorial plane), सूर्य के चारों ओर घूमते हुए पृथ्वी के अक्षीय परिक्रमण समतल पर 23° 27′ के कोण पर झुका हुआ है इसलिए भूमध्य रेखा को छोड़कर रात और दिन की लंबाई बदलती रहती है। उदाहरणार्थ, हमारे दिन गर्मियों में लंबे और जाड़ों में छोटे होते हैं तथा बसंत और शरद ऋतु में रात और दिन की लंबाई बराबर होने लगती है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर लगभग एक साल में अर्थात् 365¼ दिन में एक परिक्रमा पूरी करती है। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के परिक्रमण का मार्ग अथवा इसकी कक्षा दीर्घ-वृत्ताकार है जिसमें सूर्य दीर्घ वृत्त के नाभि पर स्थित है। लेकिन वृत्त के मुकाबले कक्षीय उत्केन्द्रता (eccentricity) के कारण बहुत मामूली सी दूरी बढ़ती है। दूसरे शब्दों में रवि नीच (Perihelion) (3-4 जनवरी) में पृथ्वी सूर्य के सबसे पास होती है और रवि उच्च (Aphelion) (3-4 जुलाई) में सूर्य से सबसे दूर रहती है। इस प्रकार दोनों स्थितियों की दूरी का अंतर भाग 3.4% है (देखिए चित्र 2.1)।

सूर्य से दूरी बढ़ने के साथ-साथ सौर विकिरण की तीव्रता तेजी से घटती रहती है, अथात् हम यह कह सकते हैं कि पूरी की गई दूरी के व्युत्क्रम वर्ग (inverse square) के रूप में, पृथ्वी की सतह पर पहुँचने वाला सौर विकिरण रवि नीच (अधिकतम) और रवि उच्च (न्यूनतम) के बीच अपने औसत मान के लगभग 7 प्रतिशत परिवर्तित होता है। ऋतुएँ इस तथ्य के आधार पर बनती हैं कि पृथ्वी का निरक्षीय समतल (equatorial plane) अपने

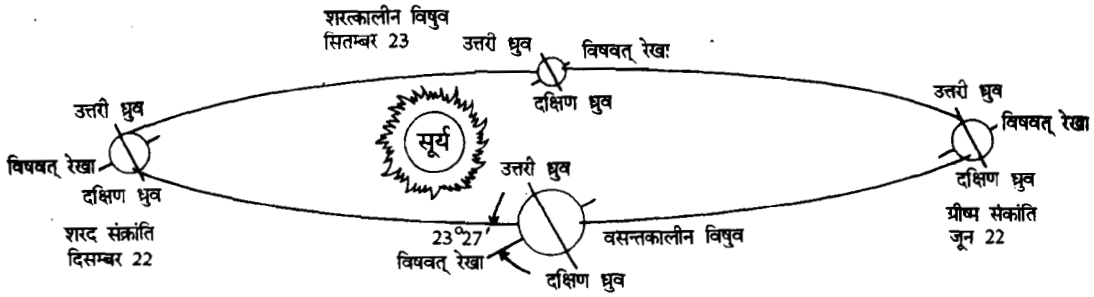

चित्र 2.1 : ऋतुएँ इसलिये बनती हैं क्योंकि पृथ्वी का निरक्षीय समतल उसके कक्षीय समतल पर 23° 27' के कोण पर झुका हुआ है।

अक्षीय समतल की ओर 23° 27' पर झुका हुआ है (देखिए चित्र 2.1)। पृथ्वी को सूर्य से ऊर्जा मिलती है इसलिए इसके दो बाह्य कारक, जैसे–पृथ्वी की गति और पृथ्वी को मिलने वाली सूर्य की ऊर्जा, वायु आवरण पर प्रभाव डालते हैं जो पृथ्वी पर चारों ओर मौजूद हैं। फलस्वरूप हमें भिन्न-भिन्न जगहों पर अलग-अलग मौसम देखने को मिलता है। मौसम का अर्थ पृथ्वी पर किसी नियत स्थान और नियत समय पर वायुमंडल की परिस्थिति से है पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार की मौसम परिस्थितियाँ एक दिन से दूसरे दिन और कभी-कभी एक घंटे से दूसरे घंटे में परिवर्तन लाती हैं। मौसम और जलवायु की प्रकृति कुछ मूल प्राचलों द्वारा परिभाषित की जाती है, जैसे–

- वायु का तापमान,
- वायु की आर्द्रता (humidity)
- मेघाच्छन्नता (cloudiness) का प्रकार और मात्रा
- वर्षण (precipitation) का प्रकार और मात्रा। इसका अर्थ वायुमंडल से पृथ्वी को सभी प्रकार के मिलने वाले पानी, जैसे–वर्षा, हिम, ओले आदि से है।
- वायुमंडलीय दाब
- हवा की गति (वेग) और दिशा।

जैसा कि आप सभी लोगों को यह मालूम है कि भिन्न स्थलों पर तापमान, आर्द्रता, वर्षण, पवन आदि कभी भी एक समान नहीं होते। इसीलिए पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों की जयवायु भी भिन्न-भिन्न होती है।

पृथ्वी पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर जलवायु की परिस्थितियों में विभिन्नता का सीधा प्रभाव पारितंत्र पर पड़ता है। उदाहरणार्थ, यह संभव है कि एक प्रकार के जलवायु क्षेत्र में मौजूद पादप जातियाँ और प्राणी दूसरे जलवायु क्षेत्र में मौजूद न हों। कुछ जलवायु क्षेत्रों में बड़े-बड़े पेड़ होते हैं, जबकि दूसरे जलवायु क्षेत्र में सिर्फ छोटे पौधे और झाड़ियाँ ही पाई जाती हैं। इसी प्रकार यह भी हो सकता है कि एक जलवायु कटिबंध में पाया जाने वाला विशेष प्रकार का प्राणी दूसरे जलवायु कटिबंध में जीवित न बच सके। विभिन्न प्रकार के पारितंत्रों की चर्चा करते समय हम इन तथ्यों के बारे में अधिक जानकारी देंगे।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए कथनों में उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की ..... थोड़ी-सी ..... हैं। ..... वह बिंदु है, जहाँ पृथ्वी सूर्य के निकटतम है, जबकि ..... वह बिंदु है, जब पृथ्वी सूर्य से सबसे ज्यादा दूर है। पृथ्वी अपने .... पर 23° 27' पर ..... है इसीलिए ऋतुएँ बनती हैं।

2.2.1 वायुमंडल के अप्रत्यक्ष प्रभाव

जैसा कि हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि विभिन्न स्थानों पर पृथ्वी की जलवायु सूर्य से मिलने वाली ऊर्जा और पृथ्वी की गति के प्रभाव से संबंधित है। आइए, अब हम यह देखें कि विभिन्न प्रकार की जलवायु बनाने में वायुमंडल किस प्रकार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

वायुमंडल, आने वाले सभी सौर विकिरणों को पृथ्वी की सतह तक नहीं पहुँचने देता है। वायुमंडल की सबसे ऊपरी परत पर जो कुल ऊर्जा आती है, उसका लगभग 16 प्रतिशत

ऑक्सीजन, जल वाष्प, ओज़ोन और धूल कणों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है अर्थात् सोख लिया जाता है। इससे हवा और अधिक उष्ण हो जाती है। मुख्य रूप से औसतन 20 प्रतिशत विकिरण को बादलों द्वारा वापस अंतरिक्ष में परावर्तित कर लिया जाता है जबकि 3% विकिरण वे अपने अंदर अवशोषित कर लेते हैं। सौर विकिरण का लगभग 6 प्रतिशत वायु-अणुओं द्वारा वापस प्रकीर्ण (scattered) या छितरा दिया जाता है। शेष 55 प्रतिशत आने वाला विकिरण ज़मीन या महासागर तक पहुँचता है। इसका 4 प्रतिशत वापस परावर्तित हो जाता है और शेष चालन (conduction) और संवहन, दोनों से वायुमंडल में फिर से वितरित कर दिया जाता है (देखिए चित्र 2.2)।

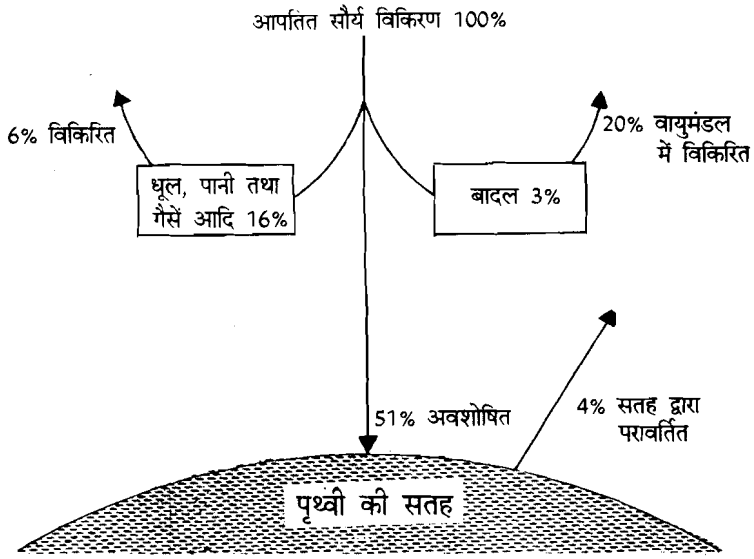

चित्र 2.2 : सौर्य विकिरण का भूमंडलीय वितरण जो आपतित विकिरण के 100 यूनिट पर आधारित है।

पृथ्वी के आसपास वायुमंडल का परिवेश न हो तो दिन के समय भूमध्य रेखीय क्षेत्रों का तापमान शरीर को जलाने वाला 82.2° C हो जाएगा और रात के समय −1.40° C तक ठंडा हो जाएगा।

दूसरी प्रक्रिया जो सूर्य की ऊर्जा को पृथ्वी पर पहुँचने से नियंत्रित करती है, वह वायुमंडल द्वारा ऊर्जा का अवशोषण (सोखना) है। जैसा कि कह चुके हैं, वायुमंडल में घुस रहे सौर विकिरण का लगभग 16 प्रतिशत वायुमंडल में मौजूद गैसों द्वारा सोख लिया जाता है। यह अवशोषित ऊर्जा वायुमंडल को प्रत्यक्ष रूप से गरम करती है, जबकि वायुमंडल का ज्यादातर तापन (गरम होना) अप्रत्यक्ष है। पहले तो पृथ्वी की सतह गरम होती है और तब यह उस हवा को गरम करती है जो इसके संपर्क में आती है। गरम हवा ऊपर उठती है और जो ठंडी हवा इसकी जगह लेती है वह गरम होने लगती है। इसलिए कम तुंगता अर्थात् कम ऊँचाइयों पर पृथ्वी की सतह के नज़दीक वाला तापमान उच्चतर तुंगताओं की अपेक्षा हमेशा ज्यादा रहता है। इस तरह, एक ओर तो वायुमंडल सूर्य से आने वाली संपूर्ण ऊर्जा को रोकता नहीं है और दूसरी ओर इसे नियंत्रित भी करता है।

पृथ्वी पर सभी जीवन का आधार सूर्य से प्राप्त ऊर्जा ही है। हरे पादप इस ऊर्जा को प्रकाश संश्लेषण द्वारा खाद्य पदार्थों में बदल देते हैं। सभी तरह के पारितंत्र प्रकाश संश्लेषण द्वारा तैयार किए गए खाद्य पदार्थों का प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से उपयोग करते हैं। किसी क्षेत्र में प्राप्त की गई ऊर्जा की मात्रा के आधार पर क्षेत्र के पारितंत्र अपने विशेष लक्षण, अपने प्राणिजात (fauna) और वनस्पतिजात (flora) द्वारा विकसित कर लेते हैं। वायुमंडल द्वारा अवशोषित सौर विकिरण का एक महत्वपूर्ण अंश पराबैंगनी किरणें (ultra violet rays) हैं, जो जीवों को नुकसान पहुँचा सकती हैं। ओज़ोन इन किरणों को अवशोषित करती है और इस तरह एक ढाल के रूप में काम करती है।

2.2.2 वायु प्रवाह

वायु की गतियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। यह ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज रूप से भी चलती हैं। हवा की ऊर्ध्वाधर गति को समझना आसान है। जब हवा गरम हो जाती है तब इसका घनत्व कम हो जाता है या दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह हल्की हो जाती है। कम घनत्व के कारण गरम हवा की गति ऊपर की ओर होने लगती है। ऊपर उठने वाली गरम नम हवा से बादल बनते हैं। हवा की क्षैतिज गति, जिसे पवन कहते हैं, की व्याख्या करना आसान नहीं है। बहुत ही सरल ढंग से हम कह सकते हैं कि विभिन्न जगहों पर वायु

दाब के अंतर के कारण पवन बनती है। हवा हमेशा उच्च दाब क्षेत्रों से निम्न दाब क्षेत्रों की ओर बहती है। यह पूछा जा सकता है कि दाब के अंतर किस प्रकार बनते हैं। उत्तर है: पृथ्वी की सतह के असमान रूप से गरम होने के कारण। जैसा कि ऊपर हम यह चर्चा कर चुके हैं कि पृथ्वी की सतह पृथ्वी पर पहुँचने वाले सौर विकिरण से गरम होती है। हमने यह भी अध्ययन किया है कि सौर ऊर्जा प्रत्येक स्थान पर समान तरीके से नहीं पहुँचती है। वायुमंडल द्वारा ऊर्जा के अवशोषण (absorption), प्रकीर्णन (scattering) छितराव, और परावर्तन (reflection) के कारण कुछ क्षेत्रों को अधिक सौर ऊर्जा मिलती है, जबकि दूसरे क्षेत्रों को कम सौर ऊर्जा मिलती है। जहाँ ऊर्जा को ज्यादा लंबी दूरी पूरी करनी पड़ती है वहाँ ये कारक अधिक प्रभावी और महत्वपूर्ण हो जाते हैं। यही कारण है जिसकी वजह से पृथ्वी के वे क्षेत्र, जहाँ सूर्य एकदम सिर के ऊपर होता है और सौर विकिरण समकोण (right angle) पर प्राप्त होते हैं उन क्षेत्रों की अपेक्षा जहाँ विकिरण का कोण झुका हुआ या तिरछा होता है, ज्यादा गरम होते हैं। समुद्रीय पृष्ठ और भू-पृष्ठ पर विकिरण का प्रभाव अलग-अलग होता है। समुद्र की सतह अपना तापमान जल्दी से नहीं बदलती। जबकि जमीन का क्षेत्र जल्दी गरम और ठंडा हो जाता है। यही कारण है कि दिन में जमीन के ऊपर की हवा गरम होकर फैलती है जबकि समुद्र के ऊपर की हवा में ज्यादा परिवर्तन नहीं होता। इसलिए अधिक ऊँचाई पर जमीन के ऊपर की हवा समुद्र की तरफ बहती है, और इसकी क्षतिपूर्ति के लिए कम ऊँचाई पर समुद्र से अत्यधिक मात्रा में हवा जमीन की ओर बहने लगती है। इस तरह एक प्रकार का परिसंचरण (circulation) पैदा हो जाता है और निचले भाग की हवा समुद्र से ज़मीन की ओर तथा ऊपरी भाग की हवा ज़मीन से समुद्र की ओर चलती है। इस प्रकार का परिसंचरण स्थानीय प्रकृति का होता है जिसे केवल तटीय क्षेत्रों में देखा जा सकता है। फिर भी, पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों का असमान रूप से गरम होना एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जिससे भू-मंडलीय पैमाने पर वायु परिसंचरण होता रहता है।

वायु के भू-मंडलीय परिसंचरण को दर्शाने के लिए कई मॉडल प्रस्तावित किए गए हैं। इस समय, पृथ्वी के प्रत्येक गोलार्ध (hemisphere) के लिए तीन कोश परिसंचरण मॉडल (three cell circulation model) बहुत ही उपयोगी माना जाता है जिससे अधिकतर परिघटनाओं को समझने में सहायता मिलती है (देखिए चित्र 2.3)। भूमध्य रेखा और लगभग 30^0 अक्षांश के बीच एक कटिबंध है। इस कटिबंध में सतह के नजदीक की हवा भूमध्य रेखा की ओर बहती है और वायुमंडल के ऊपरी भाग में वायु ध्रुवों की ओर बहती है। यही कटिबंध है जहाँ व्यापारिक पवन जन्म लेता है। हार्स अक्षांस भी उन कटिबंधों के छोर पर स्थित होते हैं जहाँ ज्यादा हवा नहीं चलती।

हार्स अक्षांस—20° उत्तर-दक्षिण अक्षांस पर समुद्र का क्षेत्र है। यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि जलयात्रा करने वाले जहाज इन अक्षांशों पर हवा न चलने से प्रायः दीर्घकाल तक रुक जाते थे और जो घोड़े उन जहाजों पर ले जाए जाते थे वे भूख और प्यास से मर जाते थे।

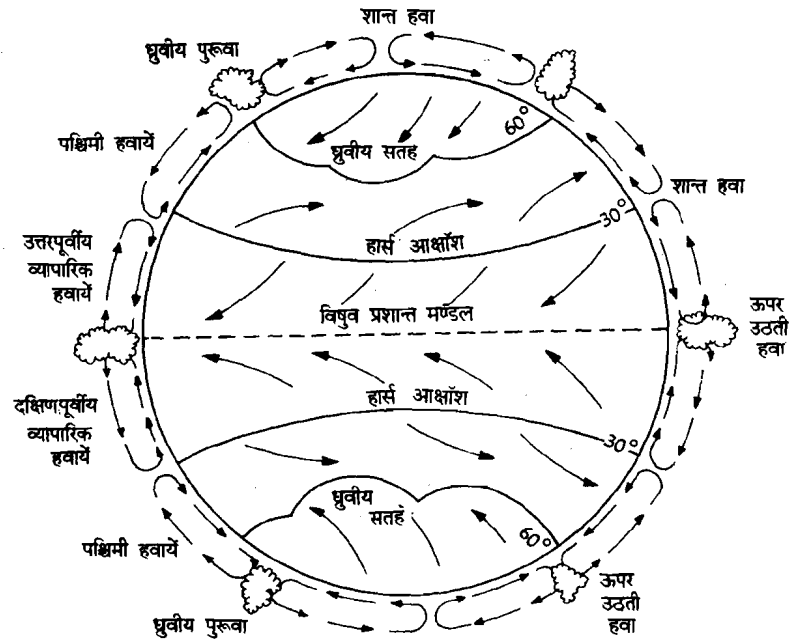

चित्र 2.3 : भू-मंडलीय परिसंचरण को दर्शाने के लिए प्रस्तावित तीन कोश परिसंचरण मॉडल

इसके बाद 30° और 60° अक्षांशों के बीच का कटिबंध आता है जिसमें सतह का प्रवाह ध्रुव की ओर होता है और हवाओं में पश्चिमी घटक होता है। पछुआ हवाएँ पृथ्वी की सतह

के ताप संतुलन को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं। ये भूमध्यरेखीय प्रदेश से अत्यधिक ऊष्मा को ध्रुवों की ओर ले जाती हैं।

तीसरा कटिबंध 60° अक्षांशों के बाद शुरू होता है। इन क्षेत्रों में हवा का सतत प्रवाह है, जो भूमध्य रेखा की ओर चलता है। इनसे ध्रुवीय पुरुवा हवाएँ बनती हैं। ये ठंडी हवाएँ गरम पछुआ हवाओं से मिल कर अक्सर कोहरे का निर्माण करती हैं।

इन वायु प्रवाहों के कारण सारे भू-मंडल के ऊपर ऊष्मा एक भाग से दूसरे भाग में स्थानांतरित हो जाती है। पृथ्वी के विभिन्न भागों पर पड़ने वाले वर्षण की मात्रा भी वायु प्रवाह द्वारा नियंत्रित होती है। वर्षण और पृथ्वी के पवन तंत्रों के वितरण के बीच निकट संबंध है। हम भूमध्य रेखा से ध्रुवों तक वर्षण की कटिबंधीय व्यवस्था को आसानी से पहचान सकते हैं। उदाहरणार्थ, भूमध्य-रेखीय प्रदेश में गरम और नम हवा का अभिसरण होता है, जिसके फलस्वरूप इस कटिबंध में भारी वर्षा होती है, जबकि ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ उपोष्ण उच्च पवन अधिक प्रभावी हैं, वर्षा कम होती है। ये क्षेत्र आमतौर पर खुश्क होते हैं।

तापमान भी एक जगह से दूसरी जगह बदलता रहता है। वायु प्रवाह और तापमान दो मुख्य कारक हैं जिनके कारण पृथ्वी के विभिन्न कटिबंधों में विभिन्न प्रकार की जलवायु होती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि विभिन्न कटिबंधों में पारितंत्र विकास के लिए निर्धारक कारक जलवायु होती है। उदाहरणार्थ, भूमध्यरेखीय प्रदेश में पाया जाने वाला पारितंत्र उससे भिन्न है, जो ध्रुवीय प्रदेश या उपोष्ण प्रदेश में मौजूद है।

2.2.3 महासागरीय धाराएँ

महासागर की जल गति विभिन्न प्रकार की होती है। जिसने भी समुद्र को देखा है, वह ज्वार-भाटा की गति को जरूर जानता होगा। ज्वार-भाटा पानी की नियमित गतियाँ हैं जो चंद्रमा और सूर्य के कर्षण या खिचाव से होती हैं। पानी की एक दूसरी गति भी है जिसे **महासागरीय धाराएँ** कहते हैं। ये पानी की नदियों की तरह हैं, जो जिस पानी से गुज़रती हैं उससे अधिक गरम या अधिक ठंडी होती हैं। जिनसे समुद्र में संचार होता है। समुद्र में धाराओं का संचार, वहाँ के वायुमंडलीय प्रतिरूप व बड़े-बड़े स्थलीय स्थानों से प्रभावित होता है जहाँ से उसका बहना निश्चित है। महासागरीय धाराओं का नज़दीक के भू-क्षेत्रों के तापमान पर प्रत्यक्ष या सीधा असर पड़ता है। उदाहरणार्थ, गर्म महासागरीय धाराओं की गति ध्रुव की ओर होती है जैसे—उत्तरी अंध महासागरीय या अटलांटिक अपवाह। यह ब्रिटेन और पश्चिमी यूरोप के कुछ भागों में जाड़े का तापमान उतना कम नहीं होने देता जैसा कि भूगौलिक परिस्थिति के अनुसार होना चाहिए था। इन क्षेत्रों की पछुआ हवाएँ ऊष्मा को ज़मीन की ओर ले जाती हैं।

ऊष्णकटिबंध और मध्य अक्षांशों में गरमी के दौरान ठंडी महासागरीय धाराएँ होती हैं। एक ऐसी धारा जिसे **बेंजुएला धारा** कहते हैं, दक्षिण अफ्रीका के पश्चिमी तट के निकट महासागर में बहती है। यह धारा उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में तापमान को घटाने में सहायता देती है। इस तरह, महासागरीय धाराओं का विश्व के विभिन्न भागों की जलवायु पर असर पड़ता है। शायद आपने **एल. नीनों** का नाम सुना हो। यह भी पूर्वी प्रशांत महासागर की एक धारा है। ऐसा माना जाता है कि 1982-83 के दौरान इस धारा ने मौसम को चरम सीमा पर लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। जब जलवायु ऐसी धाराओं से प्रभावित होती है, तब प्राणिजात और वनस्पतिजात भी प्रभावित होते हैं जो अंततः सारे पारितंत्र पर असर डालते हैं।

"एल नीनों अर्थात् 'एक बच्चा' एक ऊष्ण समुद्री धारा है जो पेरू व इक्वेडॉर नामक देश की खाड़ी के साथ क्रिसमस पर्व के दौरान बहती है। यह बहाव कभी-कभी इतनी तेजी से होता है कि समुद्र तट से ठंडी हमबोल्ट नामक धाराओं को बहुत दूर तक ले जाता है जिससे लाखों पशु-पक्षियों का भोजन समाप्त हो जाता है। इसके आने से समुद्री जल का तापमान 5°C तक बढ़ जाता है। भोजन बनाने वाले शैवाल तथा अनेक प्रकार की मछलियाँ या तो स्थान छोड़ देतीं हैं या मर जाती हैं। उस स्थान पर रहने वाले पक्षी भोजन की कमी के कारण स्थान छोड़ देते हैं। यह धारा लगभग हर 2 से 10 वर्षों के बीच में एक बार अवश्य आती है। इसका प्रभाव भारत जैसे सुदूर क्षेत्रों में भी तब महसूस किया जाता है जब यह शक्तिशाली होती है।

2.2.4 जलवायु में ऋतुनिष्ठ परिवर्तन

जैसा कि हम पहले अध्ययन कर चुके हैं कि मौसम हवा में मौजूद ऊष्मा और नमी के साथ ही वायु अथवा वायु प्रवाह की गति पर आश्रित है। यह एक वर्ष से दूसरे वर्ष में, एक ऋतु से दूसरी ऋतु में तथा एक दिन से दूसरे दिन में, यहाँ तक कि एक घंटे से दूसरे घंटे में बदलता रहता है। ये ऋतुनिष्ठ परिवर्तन सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा के कारण होते हैं। जब पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, तब अक्ष हमेशा उसी दिशा में रहता है। उत्तरी गोलार्ध में यह हमेशा **उत्तरी तारा** या **ध्रुव** तारे की ओर रहता है। यही कारण है कि वर्ष के कुछ भाग में उत्तरी ध्रुव सूर्य की ओर झुक जाता है और दूसरे भाग के लिए यह सूर्य से दूसरी ओर झुक जाता है। इस प्रकार उत्तरी गोलार्ध में क्रमशः गरमी और सरदी आती है। जाहिर है कि दक्षिणी गोलार्ध में इसके विपरीत होगा अर्थात् जब उत्तरी गोलार्ध

में गरमी होगी तब दक्षिणी गोलार्ध में सरदी होगी। ऋतुओं के साथ मौसम में परिवर्तन लाने के लिए जो कारक मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं वे पृथ्वी पर पहुँचने वाली सूर्य की किरणों के कोण हैं। जाड़ों में गरमी की अपेक्षा सूर्य की किरणें बहुत ज्यादा तिरछी होती हैं। तिरछी किरणों को हवा में ज्यादा लंबी दूरी तय करनी पड़ती है। हवा सूर्य की किरणों को अधिक अवशोषित करेगी, छितराएगी और परावर्तित करेगी (चित्र 2.4)।

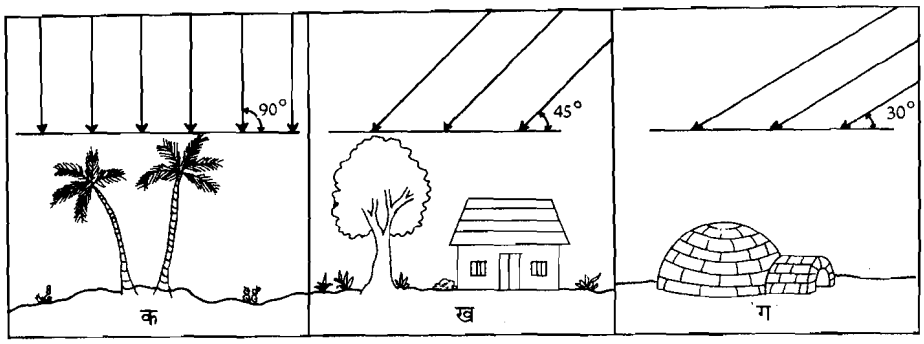

चित्र 2.4 : सूर्य द्वारा आपतित कोण में परिवर्तन आने से पृथ्वी पहुँचने वाली ऊर्जा की मात्रा न्यूनाधिक होती रहती है। यह कोण जितना ऊँचा होगा अर्थात् 90° के पास होगा उतनी अधिक सूर्य की तेज किरणें पृथ्वी पर पड़ेंगी।

दूसरी स्थिति यह है कि जब सूर्य सीधे सिर पर होता है तब सौर किरणें अधिक केंद्रित होती है। कोण कम हो जाने से सूर्य की किरणें और अधिक क्षेत्रों में फैल जाती हैं जिसके फलस्वरूप सूर्य किरणों की तेजी कम हो जाती है। आपने इसका अनुभव टार्च लाइट काम में लाते समय किया होगा। अगर किरण पुंज को सीधे किसी वस्तु पर डाला जाता है तो बिंदु छोटा लेकिन तीव्र होता है। जैसे-जैसे आप किरण पुंज के कोण को कम करते हैं वैसे-वैसे प्रकाश का क्षेत्र ज्यादा हो जाता है लेकिन प्रकाश की तीव्रता कम हो जाती है। इसका कारण यह है कि उतनी ही ऊर्जा अधिक बड़े क्षेत्र में वितरित हो जाती है। ऋतुनिष्ठ प्रतिरूपों सहित ऊर्जा में परिवर्तन का पौधों और प्राणियों पर बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ता है। कुछ ऐसे पौधे हैं जो विशेष ऋतु में होते हैं। इसी प्रकार, प्राणी भी ऋतु के अनुसार अनुकूलित हो जाते हैं, ऐसा ही एक उदाहरण है रीछों द्वारा शीतनिष्क्रियता (hibernation)। जीवों की जनन-क्षमता भी ऋतुओं के हिसाब से बदलती रहती है। इस तरह पारितंत्र पर ऋतुओं को प्रत्यक्ष प्रभाव अनुभव करते हैं। न केवल विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न प्रकार के पौधे होते हैं, बल्कि ऋतु के साथ उनकी उत्पादकता भी बदल जाती है। आपने यह अवश्य देखा होगा कि भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न फसलें होती हैं और बहुवर्षीय (Perennial) पादपों के मामले में यह नियत है कि किस ऋतु में उनके फूल आएँगे या फल लगेंगे।

2.2.5 प्रादेशिक जलवायु

जैसा कि पहले यह वर्णन किया जा चुका है कि जलवायु में ऋतुनिष्ठ परिवर्तन होता है और जलवायु परिवर्तन का एक भू-मंडलीय प्रतिरूप है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी भी ऋतु के दौरान, एक बहुत बड़े क्षेत्र की जलवायु आमतौर पर वही रहती है। अनेक प्रादेशिक कारक स्थानीय जलवायु को प्रभावित कर सकते हैं।

इन कारकों में से एक मुख्य कारक जलराशि की उपस्थिति है। हम जानते हैं कि हवा के गरम होने का ज्यादातर कारण पृथ्वी की सतह के गरम होने से है, इसलिए ज़मीन और पानी के गरम होने के प्रतिरूप में किसी भी परिवर्तन के कारण ऊपर की हवा के गरम होने के प्रतिरूप में अंतर आ जाएगा। यही झीलों और दूसरी जलराशियों में भी होता है, जो स्थानीय जलवायु को प्रभावित करती है। इस प्रकार ज़मीन के स्वरूप में भी अंतर आता है। उदाहरण के लिए, वन की अपेक्षा एक बंजर रेतीला इलाका हवा को कहीं ज्यादा गरम करता है। लेकिन अधिकतम अंतर ज़मीन और पानी के बीच होता है। समुद्र की अपेक्षा ज़मीन अधिक जल्दी गरम और अधिक जल्दी ठंडी हो जाने से उसी जलवायु-कटिबंध में ज़मीन के क्षेत्र की जलवायु-परिस्थितियाँ समुद्र की जलवायु-परिस्थितियों से भिन्न होती हैं। अगर इस कटिबंध की किसी दूसरे स्थान से तुलना की जाए जो उसी अक्षांश पर है लेकिन जहाँ समुद्र से हवा नहीं पहुँचती तो हम पाएँगे कि इस कटिबंध की सर्दियाँ सुहावनी और गर्मियाँ ठंडी होती हैं।

किसी स्थान की ऊँचाई भी उस स्थान की जलवायु पर प्रभाव डालती है। वायुमंडल के निम्न या निचले भाग में तापमान लगभग 5° —6.5° सेंटीग्रेड प्रति किलोमीटर ऊँचाई के हिसाब से गिरता है। इस तरह 2000 मीटर ऊँचाई पर स्थित स्थान उसी अक्षांश पर समुद्र तल की बराबरी पर स्थित स्थान की तुलना में लगभग 13° सेंटीग्रेड ज्यादा ठंडा होना चाहिए।

जलवायु में प्रादेशिक अंतर भी जीवों को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, जैसे-जैसे हम एक पहाड़ पर चढ़ते हैं, हमें पौधों और प्राणियों में धीरे-धीरे बदलाव नज़र आने लगता है। एक खास ऊँचाई के बाद पौधों और प्राणियों का न होना भी संभव है।

भारतवर्ष के भौतिक लक्षण क्या हैं और इसकी जलवायु कैसी है, हम अगले खंडों में पढ़ेंगे पर यह जानने से पहले नीचे दिए गए बोध प्रश्नों को हल करने की कोशिश कीजिए।

बोध प्रश्न 2

दिए गए कोष्ठकों में सही कथन के आगे (✓) और गलत कथन के आगे (✗) का निशान लगाइए।

क) विभिन्न स्थानों पर वायु दाब में अंतर के कारण हवाएँ बनती हैं। ( )

ख) समुद्र पृष्ठ अर्थात् समुद्र की सतह अपना तापमान आसानी से और जल्दी बदल लेती है जबकि उसी क्षेत्र में ज़मीन धीरे-धीरे गरम या ठंडी होती है। ( )

ग) विभिन्न प्रकार की जलवायु के लिए तापमान और वायु प्रवाह दो प्रमुख कारक उत्तरदायी हैं। ( )

घ) पृथ्वी के विभिन्न कटिबंधों में केवल जलवायु ही पारितंत्र विकास तय करती है। ( )

ङ) महासागरीय धारा उष्णकटिबंधी प्रदेशों में तापमान घटा देती है। ( )

च) समुद्र तल से 6000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित किसी स्थान का तापमान उसी अक्षांश पर स्थित समुद्रतल पर स्थित स्थान से औसतन 39° C कम होगा। ( )

छ) उच्चतर ऊँचाइयों पर वायुमंडल विरल और कम घनत्व वाला होता जाता है। ( )

2.3 भारत का चित्रण

भारतवर्ष एशिया महाद्वीप के दक्षिणी भाग में 5° और 35° उत्तरी अक्षांश के बीच स्थित है। इसकी लंबाई, चौड़ाई लगभग बराबर है। इसके भौतिक लक्षण उत्तर में ऊँचे पहाड़ों और दक्षिण में एक पठार से स्पष्ट होते हैं। हम भारतवर्ष को चार भौतिक या प्राकृतिक प्रदेशों में बाँट सकते हैं, जैसे—(i) पहाड़ियों और पहाड़ों की उत्तरी शृंखला (ii) जलोढ़ गांगेय मैदान, जो पंजाब से बंगाल तक फैला हुआ है (iii) दक्षिणी पठार (iv) प्रायद्वीपीय प्रदेश के तटीय मैदान।

उत्तर दिशा में विशाल हिमालय और उससे संबंधित पर्वत शृंखला एशिया महाद्वीप के उत्तर से आने वाली शुष्क ठंडी हवाओं से रक्षा करती है। ये पर्वत गर्मियों में बरसाती मानसून को रोक कर वर्षा भी कराते हैं। यदि ये पर्वत न होते तो मानसूनी हवाएँ आगे निकल जाती और भारत शुष्क प्रदेश रह जाता। इसके अलावा अनेक बड़ी-बड़ी नदियों का उद्गम भी हिमालय से होता है, जो पूरे वर्ष तक खेतों की सिंचाई व मैदानी जलाशयों के लिए जल के मुख्य स्रोत हैं। पहाड़ों से पिघलकर आने वाली बर्फ नदियों को स्वच्छ जल से परिपूरित कर देती है। इन नदियों से बिजली पैदा करने एवं सिंचाई के लिए पानी की नहरें निकालने के लिए अनेक बड़े बाँध बनाए गए हैं। इससे किसानों को कृषि एवं अन्य कार्यों में काफी मदद मिली है।

देश के इन भौतिक लक्षणों को ध्यान में रखते हुए आइए, अब हम इसकी जलवायु पर चर्चा करें।

2.3.1 जलवायु

भारत एक विशाल देश है जिसके भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु है। जलवायु का यह अंतर निम्नलिखित बातों से निश्चित होता है :

i) स्थिति (location)
ii) ऊँचाई (altitude)
iii) समुद्र या पर्वतों से दूरी (distance from sea and mountains)
iv) सामान्य उच्चावच (the general relief or topography)

फिर भी इसकी जलवायु को "मानसून जलवायु" नाम दिया गया है। दक्षिणी भाग भूमध्य रेखा के निकट होने के कारण हमेशा गरम रहता है, जबकि उत्तर के कुछ भागों में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के कारण सर्दी होती है और जाड़ों में तापमान हिमांक से नीचे चला जाता है। भारत के अधिकांश भागों में हमें चार तरह की ऋतुएँ—शीत, बसंत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु देखने को मिलती हैं।

आइए, अब हम यह पता लगाएँ कि हमारे देश में जाड़े का मौसम क्यों आता है? जब सूर्य दक्षिणी गोलार्ध में चमकता है, तब पृथ्वी के अक्ष के झुकने के कारण उत्तरी गोलार्ध में सूर्य की किरणों का कोण कम हो जाता है। चूँकि उन्हें ज्यादा दूरी तक वायुमंडल से गुजरना पड़ता है, इसलिए सूर्य की किरणों का छितराव ज्यादा होता है, मौसम ठंडा रहता है। उत्तरी भारत में दक्षिणी भारत की अपेक्षा अधिक सर्दी पड़ती है। देश का दक्षिणी भाग प्रायद्वीपीय पठार है। यह पश्चिम में अरब सागर और पूर्व में बंगाल की खाड़ी से घिरा हुआ है तथा हिंद महासागर दक्षिण में है। समुद्री हवाओं के कारण इन भागों में मौसम सुहावना या ऊष्म होता है, न्यूनतम तापमान लगभग 20° + 2° C तक बना रहता है और दैनिक न्यूनतम तथा अधिकतम तापमान में बहुत कम परिवर्तन होता है, जबकि उत्तर भारत के मैदानी इलाकों में दैनिक न्यूनतम और अधिकतम तापमान में बहुत अधिक परिवर्तन होने के साथ तापमान 10° C तक आ जाता है।

सुदूर उत्तर में पहाड़ी प्रदेश समुद्र से ज्यादा ऊँचाई पर होने के कारण अत्यधिक सर्दी के शिकार होते हैं जहाँ तापमान शून्य अंश से नीचे चला जाता है और दिन तथा रात के तापमान में भारी परिवर्तन होता है। पर्वतीय प्रदेशों से मैदानों की ओर बहने वाली ठंडी हवाएँ मैदानों के तापमान को बहुत अधिक नीचे लाती हैं।

जब सूर्य-किरणें उत्तरी गोलार्ध पर ज्यादा सीधी पड़ती हैं, तब भारतीय उपमहाद्वीप अधिक ऊष्ण हो उठता है जिससे बसंत ऋतु के आगमन का आभास होने लगता है। मई-जून आने तक सूर्य बहुत तेजी से चमकने लगता है जिससे जलाने वाली भीषण गर्मी महसूस होने लगती है।

जून के मध्य में मानसून शुरू हो जाता है और लगभग सारे देश में बारिश होने लगती है जिससे ऊष्मा और नमी आती है। देश के अधिकतर भागों में इस समय अधिकतम वर्षा होती है, केवल दक्षिणी भारत का छोटा-सा भाग अर्थात् पूर्व के तटीय भाग में शीतकालीन वर्षा होती है। वर्षा ऋतु के अंत में फिर शीत ऋतु आ जाती है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भारतवर्ष के अधिकतर भागों में ग्रीष्मकालीन वर्षा होती है। बारिश उस समय होती है, जब समुद्र से ज़मीन की ओर बहने वाली वाष्प-भरी हवा को ऊँचे-ऊँचे पहाड़ रोक देते हैं। हवा ठंडी हो जाती है और जल वाष्पवर्षा की बूंदों के रूप में बरसने लगती है।

ग्रीष्म ऋतु में जब देश का उत्तरी भाग बहुत गरम हो उठता है, तब उस क्षेत्र में वायु दाब बहुत कम हो जाता है। इसी के साथ दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र—अरब सागर, दक्षिण-पूर्व क्षेत्र—बंगाल की खाड़ी, अपेक्षाकृत कम गरम बने रहते हैं और वहाँ वायु दाब उच्च होता है। इस तरह हवा समुद्री उच्च दाब क्षेत्र से ज़मीन वाष्प से भरे निम्न दाब क्षेत्र की ओर बहती है। ये हवाएँ दक्षिण के पश्चिमी घाट में पर्वतों द्वारा और उत्तर में पहाड़ियों की शृंखलाओं तथा हिमालय द्वारा रोकी जातीं हैं, जिससे वहाँ बारिश होती है। अरब सागर से ज़मीन की ओर उठने वाली हवा पश्चिमी घाट के पर्वतों से रोकी जाती हैं जिसके कारण तटीय क्षेत्र में भारी वर्षा (300-400 cm) होती है, लेकिन जब यह हवा इन पहाड़ियों से ऊपर उठ जाती है और दूसरी तरफ पार हो जाती है तब इसमें बहुत कम नमी होती है जिसके फलस्वरूप दक्षिणी पठार पर पश्चिमी घाटों के पीछे बहुत कम वर्षा (20-40 cm) होती है। इसलिए सूखा दक्षिणी प्रायद्वीप "वृष्टिछाया" (Rain shadow) क्षेत्र कहलाता है। जो हवा गुजरात और राजस्थान की ओर बहती है, वह पहाड़ियों तक बेरोक-टोक

बहती है और अपने आगे बढ़ने के बाद भी वर्षा नहीं करती। जब पहाड़ियाँ इन हवाओं को रोकती हैं तब ये पहाड़ियों के पास बहुत ज्यादा वर्षा करती हैं लेकिन जब वापस लौटा दी जाती हैं तब इनमें नमी कम हो जाती है जिससे वर्षा कम होती तथा राजस्थान एवं गुजरात के भाग सूखे रह जाते हैं (चित्र 2.5)।

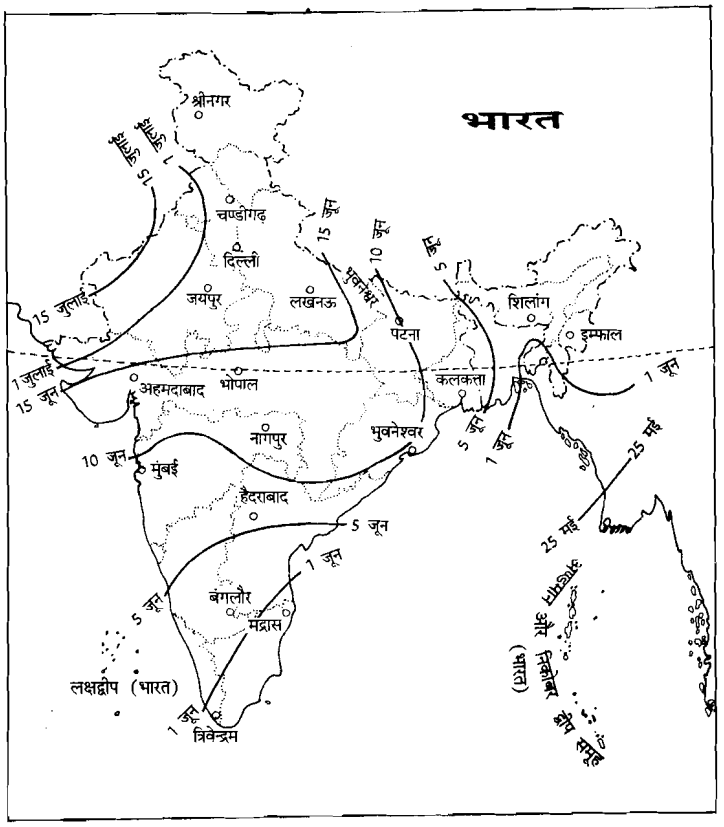

चित्र 2.5 : भारत में मानसून का आरंभ

बंगाल की खाड़ी से उठने वाली हवाएँ पहाड़ों से टकराकर बंगाल और असम में भारी वर्षा करतीं हैं। यह केवल पहाड़ियों के कारण ही है कि यह वाष्पभरी हवा चेरापूँजी पर रोकी जाती हैं। जहाँ कभी विश्व में सबसे ज्यादा वर्षा होती थी। चित्र 2.6, जून-सितंबर में मौसमी वर्षा प्रदर्शित करता है।

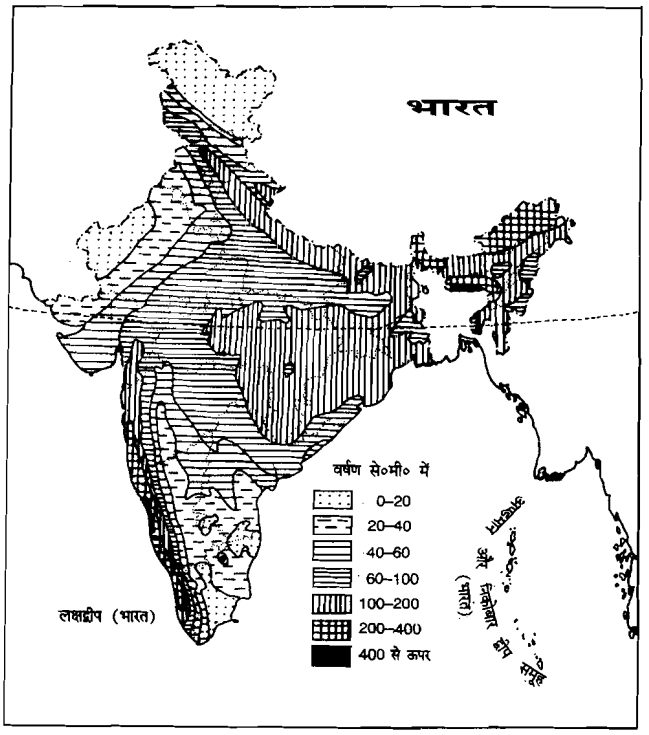

चित्र 2.6 : भारत में मौसमी वर्षा

ये हवाएँ अपनी दिशा बदल लेती हैं और पश्चिम की ओर बढ़कर बिहार, उत्तर प्रदेश और पंजाब के मैदानों पर छा जाती हैं। ये अपनी यात्रा के आरंभ में ज्यादा वर्षा का कारण बनती हैं जो इन हवाओं के पश्चिम की ओर बढ़ने के साथ धीरे-धीरे कम हो जाती है। इस तरह वर्षा की मात्रा पूर्व से पश्चिम की ओर घट जाती है। यह बारिश 'मानसूनी वर्षा' कहलाती है।

हालाँकि भारत में शीतकालीन वर्षा बहुत कम होती है, लेकिन दक्षिण भारत का पूर्वी तट ही शीतकालीन वर्षा का आनंद उठाता है। आइए, हम देखें कि शीतकालीन वर्षा किस कारण होती है। शीत ऋतु में देश का उत्तरी भाग ठंडा होता है जिससे वहाँ वायुदाब उच्च हो जाता है लेकिन दक्षिणी भारत में, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के कारण मौसम उष्ण होता है तथा वहाँ वायु दाब निम्न होता है। इसलिए हवा भारत के उत्तरी भाग से दक्षिणी भाग की ओर बहती है। यह हवा ज़मीन से आरंभ होने के कारण शुरू में शुष्क और ठंडी होती है। लेकिन यह बंगाल की खाड़ी से नमी ले लेती है और पूर्वी तट की ओर बढ़ जाती है। जब पूर्वी घाट इसे रोकते हैं तब पूर्व तटीय क्षेत्रों में वर्षा होती है। इस तरह के क्षेत्र में अच्छी शीतकालीन वर्षा हो जाती है। (चित्र 2.7 में भारत में पूरे वर्ष भर में हुई वर्षा को दर्शाया गया है।)

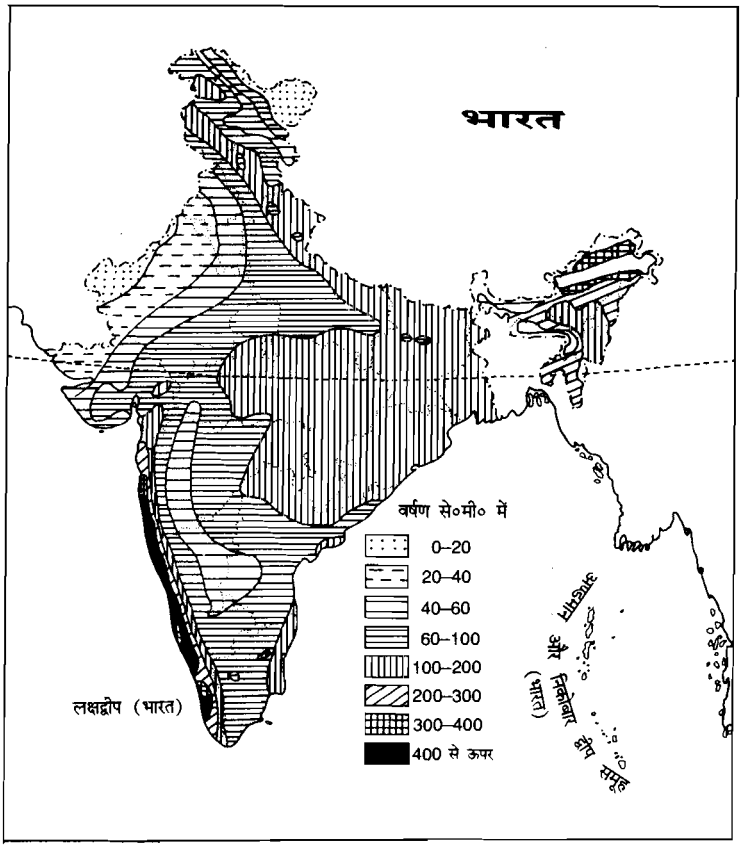

चित्र 2.7 : भारत में वार्षिक वर्षा

देश के अधिकतर हिस्सों में गर्मी या सर्दी में सामान्य से लेकर भारी वर्षा होती है। इस कारण हम मानसून वर्षा के बारे में और वर्णन करेंगे। मानूसन का अभिलक्षण इसकी अनिश्चितता है। बारिश जल्दी शुरू हो सकती है और खत्म भी जल्दी हो सकती है। या देर से शुरू हो कर जल्दी खत्म हो सकती है। कभी-कभी यह जल्दी शुरू होकर बहुत देर से खत्म हो सकती है। कुछ ऐसे वर्ष भी हो सकते हैं, जिनमें भारी वर्षा हो लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिनमें अपर्याप्त वर्षा होती है। जिसके परिणामस्वरूप सूखे जैसी परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। देश के विभिन्न भागों में होने वाली वर्षा भी भिन्न-भिन्न होती है। प्रायः आपने यह सुना होगा कि देश के कुछ भागों में बाढ़ आई हुई है, जबकि कुछ भागों में सूखा पड़ा हुआ है। हमारी कृषि अधिकतर वर्षा के जल पर आधारित होती है, इस प्रकार से यह हमारी अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है। संपूर्ण खेती की सिंचाई के लिए भूमिगत जल को पंप द्वारा निकालना बहुत महँगा पड़ेगा और इससे मिट्टी लवणीकृत हो जाएगी। मृदा के गहन सिंचाई से होने वाले लवणीकरण के बारे में आप इकाई 8 में विस्तार से पढ़ेंगे। देश के बड़े हिस्से में किसानों को ज्यादातर मानसून पर निर्भर रहना पड़ता है।

सिंचाई में पानी की अपरिहार्य भूमिका के अलावा पानी हमारे दैनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण कारक है। किसी देश में पानी को जीवन की गुणता के प्राचलों में से एक माना जाता है। विश्व में भारत ऐसे देशों में से एक है जहाँ नगर-पानी की खपत सबसे कम है। अनेक क्षेत्रों में पीने के पानी की भयंकर कमी है। सूखा और बाढ़ हज़ारों पेड़-पौधों और प्राणियों को नष्ट करने के अतिरिक्त पर्यावरण संबंधी अनेक समस्याएँ खड़ी कर देते हैं।

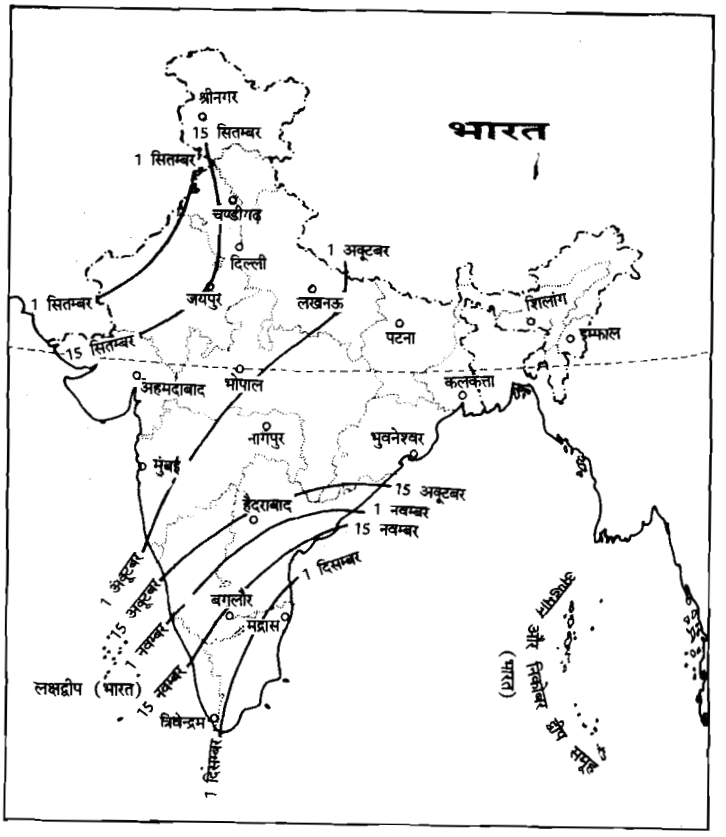

चित्र 2.8 : में मानसून के समापन को दर्शाया गया है।

हमारे देश में एक भ्रम यह है कि पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध और असीमित है। इसका कारण यह है कि जो पानी खेतों, उद्योगों और घरों में इस्तेमाल करते हैं उसकी वास्तविक लागत का कभी भुगतान नहीं करते। कुछ साल पहले हमें तमिलनाडु और गुजरात में पानी की घोर कमी का सामना करना पड़ा था। शायद यह समय रहते एक चेतावनी थी कि कृषि, उद्योग और शहरी सेक्टरों में पानी के संरक्षण और प्रबंध के बारे में गंभीर रूप से सोचने की तत्काल आवश्यकता है। नदियों और अन्य जल राशियों में विषप्राय विपत्तिजनक रसायनों को डालने में भी पानी में काफी प्रदूषण होता है। जिनके बारे में आप इकाई 13 में विस्तार से पढ़ेंगे। हमें पर्यावरणीय रूप से स्वस्थ और आर्थिक रूप से बढ़िया जल संरक्षण तथा प्रबंध नीतियाँ बनाने की तत्काल आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए कथनों में उपयुक्त शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

भारतवर्ष की जलवायु को ..... जलवायु कहा जाता है। देश के ..... भाग में तेज ठंड पड़ती है जबकि देश के ..... भाग में सुहावनी सर्दी होती है। जब ..... नमी वाली हवाएँ पश्चिमी घाट पार करती हैं तब इसके कारण पश्चिमी घाट के पीछे ..... क्षेत्र में ..... वर्षा होती है। यह ..... क्षेत्र कहलाता है।

अब हम संक्षेप में भारत के संसाधन–कृषि और खनिज संसाधनों का वर्णन करेंगे।

2.3.2 कृषि

हमारी जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा अपनी आमदनी के लिए खेती पर निर्भर रहता है। आइए, हम पहले फसलों के बारे में बात करें। देश के अधिकांश भागों में साल में दो फसलें पैदा की जाती हैं, हालाँकि कुछ जगहों में तीन फसलें भी उगाई जाती हैं। रबी और खरीफ़ भारत की दो सबसे महत्वपूर्ण फसलें हैं। गन्ने जैसी कुछ फसलों को छोड़कर रबी की फसल अक्तूबर-नवंबर में बोई जाती है और मार्च-अप्रैल में काटी जाती है। गन्ने की फसल दूसरे महीनों में बोई और काटी जाती है। रबी की फसलों में गेहूँ, जौ, मटर, मोटे अनाज, अरहर, कपास और तिलहन (मूँगफली को छोड़कर) शामिल हैं जबकि खरीफ की फसलों में मक्का, बाज़रा, उड़द और मूँग जैसी दालें, सन (flax) और धान शामिल हैं जो जुलाई में बोई और सितंबर के आखिर या अक्तूबर के शुरू में काटी जाती हैं।

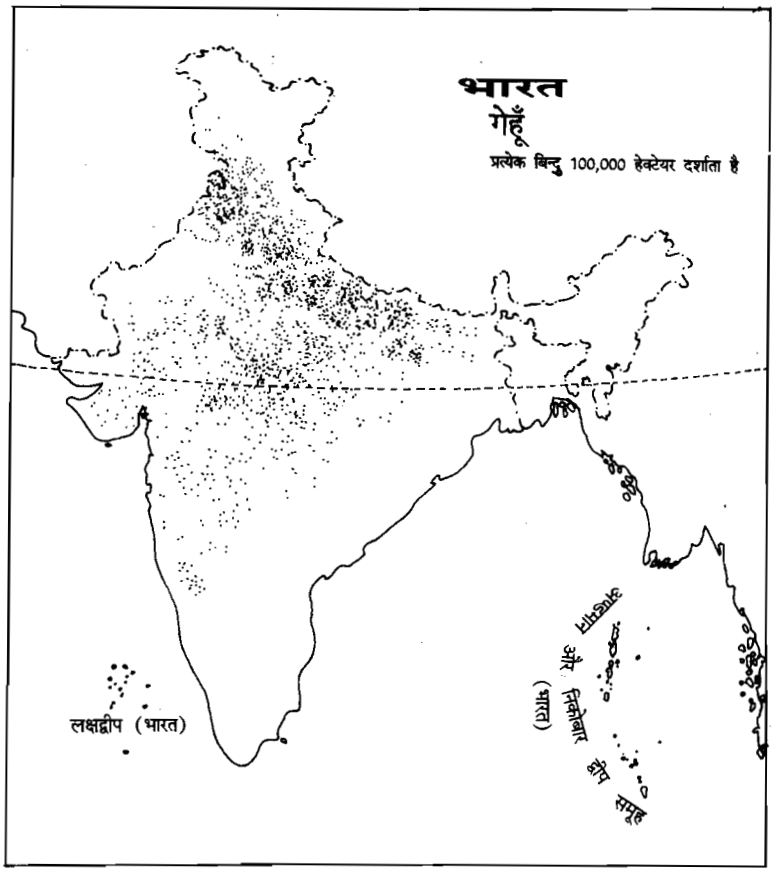

चित्र 2.9 : भारत में गेहूँ की पैदावार

फसलों की किस्में और उनकी पैदावार अनेक कारकों पर निर्भर करती हैं, जैसे–मिट्टी, वर्षा, तापमान, सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता आदि। उत्तरी भारत के मैदानों में जलोढ़ मिट्टी पाई जाती है। पंजाब और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में गेहूँ के उत्पादन पर अधिक बल दिया जाता है और उपजाऊ मिट्टी, अनुकूल तापमान तथा पर्याप्त वर्षा (चित्र 2.9) के कारण अच्छी उपज ली जाती है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग, बिहार और पश्चिमी बंगाल में जहाँ मिट्टी उपजाऊ है, तापमान पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसा है, लेकिन वर्षा इन क्षेत्रों की अपेक्षा ज़्यादा है, धान आसानी से पैदा किया जाता है (चित्र 2.10)। केवल पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु में भारी वर्षा, वर्ष के दौरान तीन फसलें उगाने में मदद देती है। दक्षिण प्रायद्वीपीय पठार में तटीय मैदानों को छोड़कर कपास का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता है। कपास के लिए काली मिट्टी, वर्षा की कम मात्रा और अपेक्षाकृत सूखी जलवायु की आवश्यकता होती है। ये ही हमारे देश की महत्वपूर्ण फसलें हैं। हमारे देश में कृषि उत्पादों के अलावा विभिन्न प्रकार के फलों के साथ-साथ चाय, काफी और अनेक मसाले भी पैदा किए जाते हैं। इनका बड़ी मात्रा में निर्यात होता है। दक्षिणी प्रायद्वीप में पहाड़ियों पर कीमती मसाले उगाए जाते हैं। इलायची पहाड़ियाँ केवल इलायची के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं।

भारत में अभी तक कृषि का परिवेश पारंपरिक रहा है जो जलवायु पर पूर्ण रूप से निर्भर हैं। बहुत-सी भूमि कृषि के लिए उपयोग में नहीं लाई जा सकती। कुल कृषि योग्य भूमि के

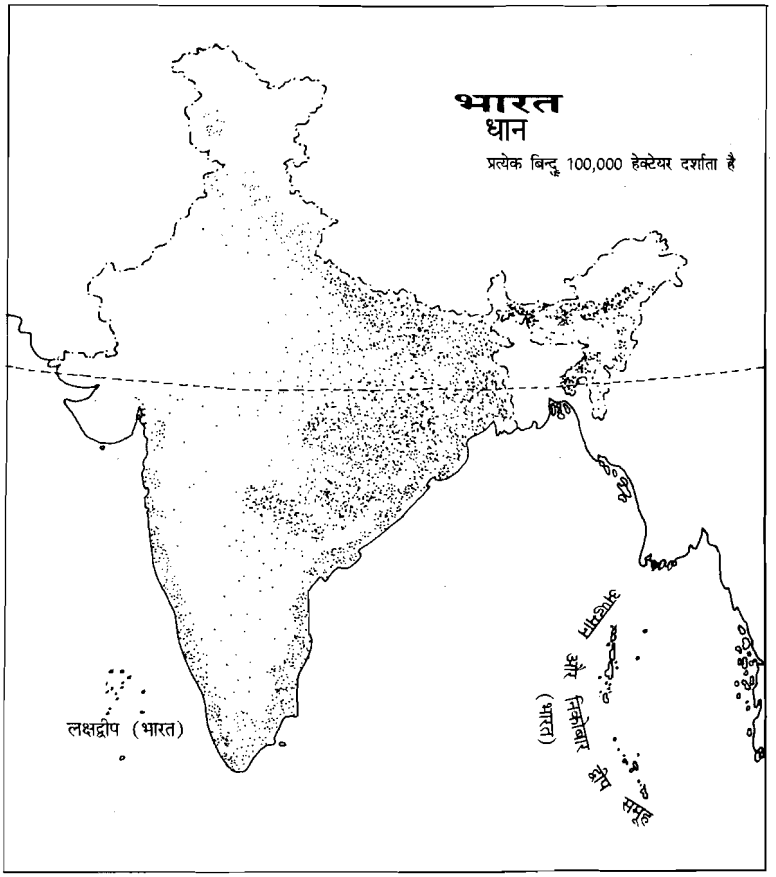

चित्र 2.10 : भारत में धान की पैदावार

अनुपात में उन किसानों की संख्या बहुत अधिक है जो जल, अनुदान एवं इसी प्रकार के अन्य आय संबंधी प्रोत्साहन की कमी से पीड़ित रहते हैं।

हालाँकि हमारे देश के लिए कृषि कार्य आवश्यक है लेकिन यह कई पर्यावरणीय समस्याएँ पैदा करती है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए ज्यादा से ज्यादा कृषि भूमि की आवश्यकता है, जिसके लिए जंगल साफ किए जा रहे हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से खेती-बाड़ी, मृदा अपरदन अर्थात् मिट्टी के कटाव, उसके ह्रास और अन्य दूसरी समस्याओं को पैदा करने में योगदान देती है। उच्च निवेश कृषि के पाश्चिमी मॉडल ने निश्चित रूप से लाभ पहुँचाया है लेकिन यह अपने साथ शीर्ष मृदा अर्थात् सबसे ऊपर की मिट्टी की हानि या ह्रास जैसी समस्याएँ भी लाई है। शहरीकरण और औद्योगीकरण के साथ खेती वाली ज़मीन पर भी दबाव बढ़ गया है। हमें फसल उत्पादन की कोई नई प्रणाली विकसित करनी होगी, जिसमें ऊर्जा निवेश कम हो।

भारत की कुल भूमि के आधे हिस्से में कृषि होती है, 1/5 भाग में जंगल हैं और शेष सारी भूमि खाली है। मृदा भी ज्यादातर खराब होती है और देश के कई भागों में मृदा अपरदन भी बहुतायत में पाया जाता है। जंगलों का 3/4 भाग या तो आरक्षित रहता है या सुरक्षित रहता है। शेष भागों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। केवल हिमालय पर पाए जाने वाले जंगलों या कुछ और पर्वतों पर ही घने जंगल रह गए हैं। ज्यादातर मैदानों में कहीं-कहीं ही जंगल रह गए हैं। इससे जलवायु भी सूखी होती जा रही है और वनस्पति भी समाप्त हो रही है। मृदा से नमी भी खत्म होती जा रही है जिसका मानसून वर्षा पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

टीक, साल, बाँस और शुष्कधारी वंश के पौधे तथा अनेकों औषधीय गुणों वाले पौधे महत्वपूर्ण पेड़ में से कुछ हैं। वन्य आवरण एवं पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने के लिए बहुत आवश्यक है। लंबे समय से लकड़ी के व्यापारी अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं और लालच के कारण इन जंगलों को नष्ट कर रहे हैं। पर अब हमें इन जंगलों के महत्व का पता चला गया है इसलिए प्रत्येक स्तर पर यह कोशिश की जा रही है कि न केवल जंगलों को आरक्षित करें वरन् वृक्ष लगाकर उनके क्षेत्रफल को भी बढ़ाएँ। जंगल मृदा अपरदन भी रोकते हैं। रेगिस्तानों में और अधिक मृदा अपरदन रोकने के लिए

वनरोपण आवश्यक है, इसलिए उसी जलवायु के अनुकूल पौधों को बड़ी संख्या में वहाँ लगाना चाहिए।

यद्यपि विश्व स्तर पर भारत में पशुधन की सबसे बड़ी संख्या है फिर भी अभी तक दुग्ध उत्पादन न्यून ही रहा है। गायों और भैसों से ही दूध का मुख्यांश आता है। बकरी, भेड़ व ऊँटों से तो मात्र 5 प्रतिशत ही दूध मिलता है। पशुओं की प्रजातियों का गुण रहित होना, अल्प चारों की मात्रा, चारागाहों का सीमित क्षेत्रफल और दूध देने वाले पशुओं के व्यवस्थापन के अनुपयुक्त संसाधनों की कमी से दुग्ध उत्पादन की दर कम है। चारागाहों से अब तक उपलब्ध चारा केवल दो तिहाई पशुओं के लिए ही काफी है।

2.3.3 खनिज़ संसाधन

भारत खनिज संसाधन की दृष्टि से सपंन्न है जिसका देश के औद्योगिक विकास के लिए उपयोग किया जा रहा है। इनमें से कई औद्योगिक विकास के कार्यक्रम स्वतंत्रता के बाद शुरू हुए हैं। औद्योगिक विकास के लिए उपयोगी मूलभूत खनिज़, कोयला और लोहा प्रचुरता से पाए जाते हैं। इसके अलावा, ताँबा, जिप्सम, सोना आदि जैसे अन्य खनिज़ भी पाए जाते हैं (चित्र 2.11)। अलम्यूनियम को छोड़कर सभी अलौहीय धातुएँ भारत की घरेलू जरूरतों को पूरा करने में सक्षम नहीं हैं। स्पष्ट रूप से यह ज्ञात है कि कोयला भारत में ईंधन की जरूरत के लिए कई वर्षों तक प्राथमिक स्थान पर रहेगा। जब तक खपत एकदम से न बढ़ जाए या अर्थव्यवस्था की दर एकदम तेजी से न बढ़ जाए तब तक भारत में ईंधन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कच्चा कोयला पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। निश्चित कोयला (coal reserve) समान रूप से वितरित नहीं है। अधिकतर कोयले की खानें बिहार, पश्चिमी बंगाल, मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश में पाई जाती हैं।

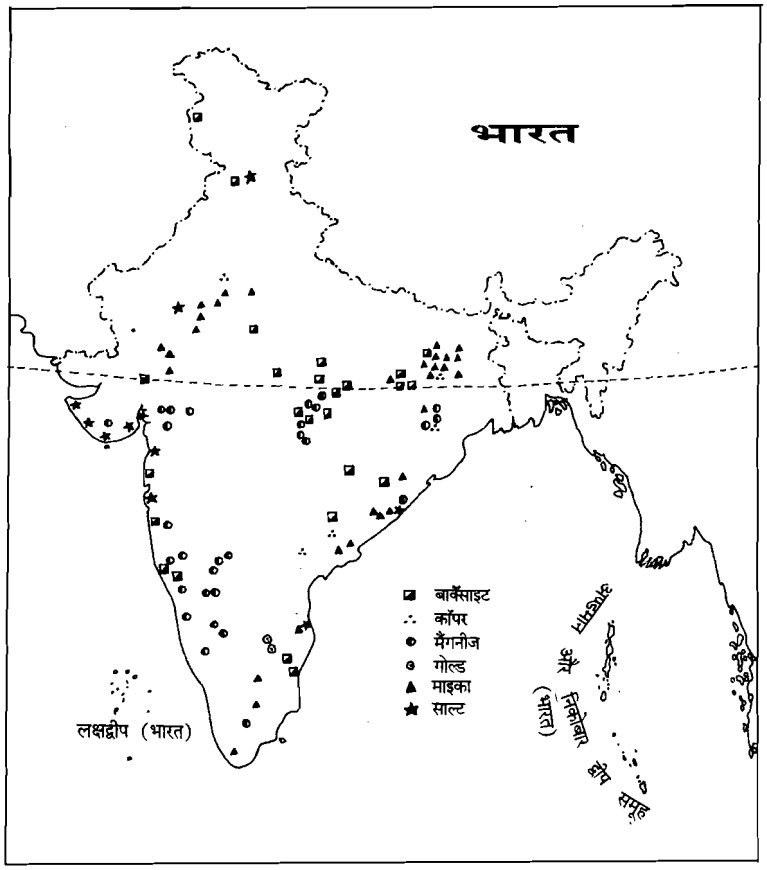

चित्र 2.11 : भारत के प्रमुख खनिज संसाधन

कोयले के अलावा लिग्नाइट (lignite) के भंडार तमिलनाडु, राजस्थान और गुजरात में पाए जाते हैं। तमिलनाडु के भंडारों का औद्योगिक क्षेत्रों में क्रमबद्ध तरीके से बिजली, उर्वरक और ब्रिकेट आदि बनाने में उपयोग हो रहा है।

भारत लौह अयस्क का प्रमुख निर्यातक है। यह अयस्क ज्यादा मात्रा में बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, गोआ, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में पाया जाता है। क्रोमाइट और

टिटैनियम के भंडार भी काफी मात्रा में पाए जाते हैं। लेकिन अब यह समझ लिया गया है कि अगर इन खनिजों को बुद्धिमानी और किफायत से इस्तेमाल नहीं किया गया तो ये समाप्त हो जाएँगे।

पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस न केवल जमीन पर बल्कि ज्वारनदमुखों और अपतट (offshore) क्षेत्रों में भी पाए गए हैं। लेकिन इन संसाधनों की सीमित प्रकृति और इनके अत्यधिक उपयोग से होने वाले प्रदूषण को ध्यान में रखते हुए पुनर्नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों की खोज जारी है।

बोध प्रश्न 4

सही कथन के सामने (✓) और गलत के सामने (✗) का निशान लगाइए।

क) गन्ना एक रबी की फसल है लेकिन यह दूसरी रबी फसलों के साथ नहीं बोई जाती है। ( )

ख) रबी फसलों में सभी तिलहन शामिल हैं। ( )

ग) जलोढ़ मृदा देश के उत्तरी भाग में पाई जाती है। ( )

घ) कपास की खेती के लिए सिर्फ सूखी जलवायु और कम वर्षा की आवश्यकता है। ( )

ङ) देश के जिन भागों में भारी वर्षा होती है वहाँ धान की तीन फसलें पैदा की जा सकती हैं। ( )

च) हिमालय भारी मानसून वर्षा के लिए उत्तरदायी है। ( )

छ) पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस ज्वारनदमुखों और अपतट क्षेत्रों में भी पाई जाती है। ( )

2.4 सारांश

इस इकाई में आपने यह अध्ययन किया है :

- जलवायु लंबे समय तक का मौसम, जिसमें मौसम की चरमसीमा भी शामिल है, का योग है। जलवायु तरह-तरह के पौधों और जानवरों के भौगोलिक वितरण पर नियंत्रण करने वाला प्रमुख कारक है।
- किसी भी स्थान की जलवायु उस स्थान के अक्षांश, तुंगता, वायुमंडल में वायु के परिसंचरण और पानी अर्थात् समुद्र और नदी से उस स्थान की दूरी पर निर्भर करती है।
- संसार की जलवायु पृथ्वी के वार्षिक परिक्रमा मार्ग और प्रतिदिन पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने पर निर्भर करती है। मौसम की विभिन्नता पृथ्वी का निरक्षीय समतल उसके अक्षीय समतल पर 23° 27′ के कोण पर झुका होने के कारण है।
- सौर-ऊर्जा की मात्रा को पृथ्वी पर नियंत्रित करता है। असमान रूप से गर्म होने के कारण ही पृथ्वी की सतह पर वायु संचरण होता है और यही वायु संचरण वर्षा पर नियंत्रण रखता है और समुद्री धाराओं का संचरण करता है।
- भारतीय जलवायु को मानसून जलवायु कहते हैं जबकि पूरे देश के ताप और वर्षा में काफी अंतर रहता है। भारत में अधिकतर वर्षा गर्मियों में होती है केवल पूर्वी तटों पर शीतकालीन वर्षा होती है।
- भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसमें दो मुख्य फसलें (रबी और खरीफ) पाई जाती हैं। रबी की मुख्य फसलें गेहूँ, मटर, चना और तिलहन इत्यादि हैं। खरीफ की मुख्य फसलें धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, मूँग, उड़द, मूँगफली इत्यादि हैं। कृषि का ढंग अधिकतर परंपरागत और मानसून पर निर्भर है।
- भारत में खनिज जैसे—कोयला, लोहा, एल्यूमिनियम इत्यादि अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। अन्य प्राकृतिक संपदा में वन और पशुधन आते हैं। परंतु हमें यह भली भाँति समझना चाहिए कि खनिज और प्राकृतिक संपदा सीमित हैं। इसका उपयोग बुद्धिमानी और किफायत से किया जाना चाहिए।

2.5 अंत में कुछ प्रश्न

1) मौसम और जलवायु के मूल तत्वों की सूची बनाइए।

.....

.....

.....

.....

2) पूर्वी तटों पर गर्मियों की अपेक्षा सर्दियों में अधिक वर्षा क्यों होती है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) पश्चिमी घाट के पिछले भाग में बहुत कम वर्षा होती है। कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) माउंट एवरेस्ट की ऊँचाई 8,848 मीटर है इसलिए गंगा के मैदानी इलाके की अपेक्षा सूर्य के अधिक निकट है। परंतु फिर भी यह बर्फ से हमेशा ढका रहता है। क्या आप इसका कारण बता सकते हैं?

.....

.....

.....

.....

5) रबी और खरीफ की फसलों की सूची बनाइए जो आपके क्षेत्र में बोई जाती हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.6 उत्तर

बोध प्रश्न

1) कक्षा, दीर्घवृत्तीय, रवि नीच, रवि उच्च, कक्षीय समतल, झुकी।

2) क) ✓ ख) × ग) ✓ घ) ×
ङ) ✓ च) ✓ छ) ✓

3) मानसून, उत्तरी, दक्षिणी, कम, दक्षिणी पठार, थोड़ी, वृष्टिछाया।

4) क) ✓ ख) ✗ ग) ✓ घ) ✗ ङ) ✓
च) ✓ छ) ✓

अंत में कुछ प्रश्न

1) i) वायु का तापमान
ii) वायु की आर्द्रता
iii) वर्षण का प्रकार और मात्रा
iv) वायुमंडलीय दाब
v) वायुमंडलीय परिचक्रण
vi) समुद्री धाराएँ

2) जाड़ों में भारत का उत्तरी भाग ठंडा होता है तथा वायु का दाब अधिक होता है। परंतु दक्षिणी भाग अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के निकट होने के कारण गरम होता है तथा वायु दाब कम होता है। वायु अधिक दाब वाले स्थान से कम दाब वाले स्थान की ओर चलती है। समुद्री हवाएँ बंगाल की खाड़ी से नमी लेती हुई पूर्वी तट की तरफ बढ़ती है जो वहाँ पूर्वी घाटों पर रोके जाने पर वर्षा करती हैं।

3) पश्चिमी घाट के पीछे का क्षेत्र "वृष्टिछाया" क्षेत्र कहलाता है। नमी से भरी हुई हवा पश्चिमी घाट के पहाड़ों से टकरा कर भारी वर्षा करती है। परंतु इन घाटों को पार करने के बाद बहुत कम नमी बचती है और वायु गरम हो जाती है।

4) तुंगता बढ़ने के साथ-साथ ताप प्रत्येक कि. मी. पर 6.5° C नीचे आता है।

5) इसका उत्तर आपके क्षेत्र के अनुसार होगा।

इकाई 3 पारितंत्र का वर्णन

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
3.2 पारितंत्र क्या है?
जीवमंडल
बायोम और समुदाय
3.3 पारितंत्र के घटक
3.4 पारितंत्र के प्रकार्यात्मक घटक
3.5 खाद्य शृंखला और खाद्य जाल
खाद्य जाल
पिरैमिड
जैव-आवर्धन
3.6 सीमाकारी कारक
3.7 विभिन्न प्रकार के पारितंत्र
स्थलीय पारितंत्र
जलीय पारितंत्र
3.8 पारितंत्र के भीतर जाति विविधता
जाति विविधता के मापदंड
विविधता–स्थायित्व संबंध
3.9 सारांश
3.10 अंत में कुछ प्रश्न
3.11 उत्तर

3.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में आपका परिचय मानव पर्यावरण से कराया गया है। आपने उन जैव और अजैव घटकों के बारे में अध्ययन किया था, जिनसे पर्यावरण बनता है आप और हम पृथ्वी के उस पारिभाषित क्षेत्र में रहते हैं जहाँ पेड़-पौधे एवं अन्य प्राणी रहते हैं तथा जीवन को बनाए रखने के लिए एक दूसरे से भोजन, पानी, आश्रय, साथी आदि के लिए संबंध बढ़ाते हैं। प्राकृतिक प्रक्रियाओं में जैव और अजैव घटकों के साथ भूदृश्य की ये अलग-अलग इकाइयाँ **संरचना, घटकों** और **प्रकार्यों** के रूप में आपस में एक दूसरे पर निर्भर और घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। इस प्रकार की इकाई एक पारितंत्र कहलाती है। इस पाठ्य-सामग्री में आप विभिन्न प्रकार के पारितंत्र और उनमें निहित विविध उपतंत्रों का उदाहरण सहित अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन से आप इकाई 4 और इकाई 5 में दी गई संकल्पनाओं को समझ सकेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- पृथ्वी के विभिन्न पारितंत्रों को परिभाषित कर सकेंगे और उनका वर्णन कर सकेंगे,
- पारितंत्र के घटकों का वर्णन और उनके प्रकार्य के महत्व बता सकेंगे,
- जीवन के आधारभूत सीमाकारी कारकों को जान सकेंगे तथा उनका वर्णन कर सकेंगे,
- मनुष्य से संबंधित हानिकारक पदार्थों के जैव-आवर्धन का वर्णन कर सकेंगे, और
- पारितंत्र को स्थायित्व देने में जाति विविधता की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

3.2 पारितंत्र क्या है?

किसी भी जाति के जीव कभी अकेले नहीं रह सकते। वे हमेशा एक-दूसरे को प्रभावित

करते रहते हैं और अपने आपको समुदायों के रूप में संगठित करते हैं। इसके अलावा, उनका अपने बाहरी पर्यावरण से प्रकार्यात्मक संबंध भी है। समुदायों का यह संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक तंत्र तथा उनका पर्यावरण **पारितंत्र** या पारिस्थितिक-तंत्र कहलाता है। पारितंत्र शब्द अंग्रेजी के "**इकोसिस्टम**" शब्द से बना है जिसे टेंसले ने 1935 में गढ़ा था। "ईको" शब्द मूल शब्द ऑइकोस से बना है जिसका अर्थ आवास है।

"पारितंत्र संकल्पना" की मुख्य विषय-वस्तु आवास है अर्थात् वह स्थान जहाँ कोई जीव रहता है। ऐसे किसी स्थान का अध्ययन जहाँ पर जैव और अजैव घटकों के बीच लगातार आपसी क्रिया हो रही है अर्थात् पादपों, प्राणियों और उनके पर्यावरण के बीच पारस्परिक क्रिया हो रही हो, जहाँ वे लगातार जनन या उत्पादन करते हैं और पदार्थों का आदान-प्रदान अर्थात् विनिमय करते हैं। इसका अर्थ यह है कि कार्बनिक पदार्थों के उत्पादन से लेकर उनको पुनः अकार्बनिक पदार्थों में बदलने के उद्देश्य से जीव द्वारा पदार्थों को लगातार अवशोषित करने की क्रियाविधियाँ हैं। कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थों का ज्यादातर भाग पर्यावरण को वापस लौटा दिया जाता है।

किसी पारितंत्र के जैव और अजैव घटकों के बीच आपसी क्रिया में तंत्र के माध्यम से ऊर्जा और पोषक पदार्थों का निवेश अंतरण (transfer) भंडारण और बहिर्वेश (उत्पादन) होता है। ये सभी प्रक्रियाएँ ऊर्जा पर आश्रित हैं। इन जटिल आपसी क्रियाओं के फलस्वरूप पारितंत्र को इन परिवर्तनों के अनुकूल नियमित होना पड़ता है और एक संतुलन अवस्था बनानी पड़ती है। *इसलिए पारितंत्र एक ऐसा तंत्र है जो जनसंख्या और जैव तथा अजैव घटकों के सीमाकारी* (limiting) *कारकों के बारे में पुनर्भरण प्रति-पुष्टि* (feedback) *जानकारी के आधार पर स्वतः नियमनकारी* (self-regulator) *है।*

पारितंत्र घटकों के प्रकार्यों के बारे में बताने से पहले आइए, हम आपको प्राकृतिक भूदृश्य की बड़ी इकाई के बारे में बताएँ, जिसका नाम जीवमंडल (biosphere) है।

3.2.1 जीवमंडल

पृथ्वी और वायुमंडल का वह भाग जिसमें आपस में क्रिया करने वाले बहुत से छोटे पारितंत्र आते हैं जीवमंडल कहलाता है। जीवमंडल के तीन उप-प्रभाग—स्थलमंडल (ठोस पदार्थ), जलमंडल (द्रव्य पदार्थ) और वायुमंडल है, अथवा पृथ्वी का गैसीय आवरण जो 22.5 किलोमीटर की ऊँचाई तक है। चित्र 3.1 में जलमंडल (hydrosphere) वायुमंडल

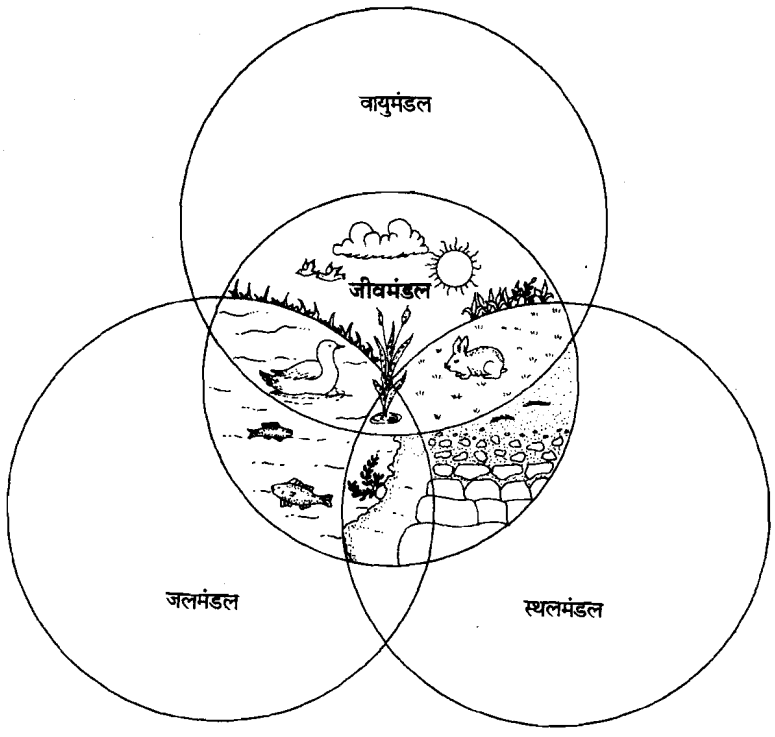

चित्र 3.1 : जीवमंडल का आदर्श विन्यास

(atmosphere) और स्थलमंडल (lithosphere) के संदर्भ में जीवमंडल को दर्शाया गया है। इन घटकों के बीच संपर्क क्षेत्र और आपसी क्रिया का क्षेत्र वास्तव में जीवन के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यही वह क्षेत्र है जहाँ जीवन के सार रूप में प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) और श्वसन जैसे आधारभूत प्रक्रम सम्पन्न होतें हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि जीवन के लक्षण ज्यादातर जीवमंडल के उस भाग तक पाए जाते हैं जहाँ दिन में सौर विकिरण (solar radiation) पहुँचता है। इसमें वायुमंडल, मिट्टी की सतह से कुछ मीटर नीचे और समुद्रों, झीलों तथा नदियों की ऊपरी सतह शामिल है। रोशनी वाला (प्रदीप्त) भाग नदी के गंदले पानी में कुछ सेंटीमीटर से लेकर समुद्र के सबसे साफ पानी में लगभग 100 मीटर तक हो सकता है, लेकिन जीवमंडल वहीं समाप्त नहीं हो जाता जहाँ तक प्रकाश पहुँचता है क्योंकि समुद्रों में गुरुत्वाकर्षण से प्रेरित मल या विष्ठा, मृत जीवों के शरीर तथा कभी-कभी खाद्य पदार्थ प्रदीप्त क्षेत्रों से अंधेरी गहराइयों में गिरते रहते हैं। इस प्रकार भक्ष्य पदार्थों के रासायनिक बंधों में बँधी ऊर्जा ऐसी गहराइयों में पहुँच कर जीवन को आधार देती है और इस प्रकार यहाँ भी जीवमंडल व्याप्त हो जाता है।

जीवमंडल के नीचे की ओर फैलाव के अलावा इसका कुछ विस्तार ऊपर की ओर भी है। हिमालय जैसे बहुत ऊँचे पहाड़ों पर वह सीमा जिससे ऊपर क्लोरोफिल (पर्णहरित) वाले पेड़-पौधे जीवित नहीं रह सकते लगभग 6,200 मीटर तक है।

सरल शब्दों में जीवमंडल को पृथ्वी के उस भाग के रूप में देखा जा सकता है जिसमें जीवधारी विद्यमान हैं तथा जिसमें समुद्र की गहराइयों से लेकर महाद्वीपों की सतह और पृथ्वी का नज़दीकी वायुमंडल (अर्थात् क्षोभमंडल (troposphere) इत्यादि शामिल हैं। लेकिन ध्रुवीय बर्फ की चोटियाँ और हिमरेखा के ऊपर ऊँचे पहाड़ों की ढलानों को पराजीवमंडल (parabiosphere) कहा जाता है।

जीवमंडल के प्रत्येक उपभाग से जीवों के लिए कुछ न कुछ आवश्यक है जैसे–जलमंडल से अकार्बनिक उपापचयज (metabolites) स्थलमंडल से खनिज और वायुमंडल से रासायनिक तत्व। इसलिए प्रत्येक उपभाग की प्रकृति और कार्य की संक्षिप्त चर्चा से हमें उस कार्य विधि को जानने में मदद मिलेगी जो जीवों की उपापचयी (metabolic) गतिविधियों को चलाती हैं।

क) **वायुमंडल**

जीवन के लिए वायुमंडल बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि वायु के सभी घटक (अक्रिय घटकों को छोड़कर) उपापचयज के रूप में काम आते हैं और प्रत्येक रासायनिक तत्व नियमबद्ध क्रम में संचरित होते हुए उपापचयजों की आपूर्ति लगातार करते रहते हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम 1, खंड 4 की इकाई 14 याद कीजिए जहाँ आपने पोषक चक्रण के बारे में पढ़ा था। इस प्रकार आप जीवमंडल के उपभागों तथा इनके अंतरापृष्ठ (interface) पर जीवों की भूमिका और जीवन के लिये वायुमंडल के महत्व को समझ सकते हैं। आगामी पृष्ठों में कुछ महत्वपूर्ण गैसों की उपापचयी भूमिका पर दी गई विवेचना द्वारा वायुमंडल के महत्व को उभारा गया है। हरे पेड़-पौधे अकार्बनिक पदार्थों और यौगिकों का समावेश करते हैं। उदाहरण के लिए, सूर्य की ऊर्जा (विकिरण ऊर्जा) को रासायनिक ऊर्जा में बदलते समय वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड गैस के रूप में जीवित संसार में प्रवेश करती है और सभी कार्बनिक यौगिकों के आधारभूत संघटकों का निर्माण करती है। सभी पेड़-पौधे जल सहित इस गैस को अपने **प्रकाश संश्लेषी** प्रक्रम के काम में लेते हैं। प्रकाश संश्लेषण से कार्बनिक पदार्थ (जैसे–ग्लूकोज़, जीवित जीवों में एक महत्वपूर्ण अणु) और ऑक्सीजन बनता है।

इस प्रक्रम में होने वाली अभिक्रियाएँ इस प्रकार हैं :

$$6CO_2 + H_2O \xrightarrow{\text{धूप}} C_6H_{12}O_6 + 6O_2$$

कार्बन डाइऑक्साइड + पानी ⟶ ग्लुकोज़ + ऑक्सीजन

इस तरह प्रकाश संश्लेषण से हमें खाने के लिए भोजन और साँस लेने के लिए ऑक्सीज़न मिलती है। यहाँ कार्बन डाइऑक्साइड से प्राप्त होने वाली कार्बन और ऑक्सीज़न मृत्यु तक जीवित पदार्थों से बनी रहती है। मृत्यु के बाद जीवित पदार्थों के अपघटन यानी सड़ जाने पर कार्बन डाइऑक्साइड वापस वायुमंडल में लौटकर चक्र पूरा कर लेती है। यहाँ

हमें यह याद रखना चाहिए कि क्लोरोफिल या पर्णहरित वाले जीव जैसे हरे और बैंगनी जीवाणु (बैक्टीरिया) नीलहरित शैवाल (algae) और उच्च कोटि के पादपों की भारी संख्या प्रकाश को संश्लेषित करती है।

अब वायुमंडल के एक महत्वपूर्ण घटक ऑक्सीजन पर विचार करेंगे जो जीवों में गैस के रूप में साँस के द्वारा प्रवेश करती है। श्वसन पादपों और प्राणियों, दोनों में ही एक मूलभूत प्रक्रम है। इसके द्वारा ग्लूकोज़ अणुओं में स्थित रासायनिक ऊर्जा, जैव ऊर्जा में बदल जाती है जिसकी विभिन्न गतिविधियों के लिए जीव को आवश्यकता पड़ती है। श्वसन और प्रकाश संश्लेषण मिलकर एक कड़ी बनाते हैं जो **प्रकाश संश्लेषण-श्वसन चक्र** कहलाता है, जिसे नीचे दिए गए ढंग से दर्शाया जा सकता है :

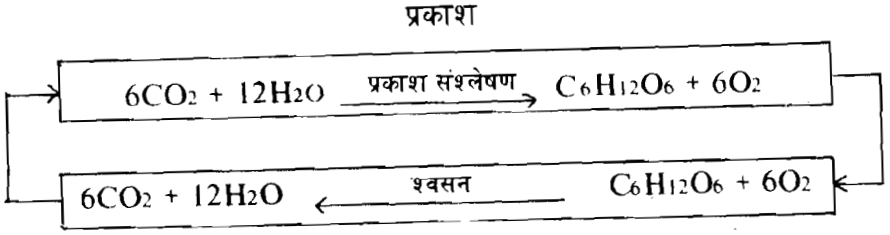

वायुमंडल की (कार्बन डाईऑक्साइड) की पुनर्पूर्ति न केवल श्वसन द्वारा होती है बल्कि ईंधनों के दहन और ज्वालामुखियों के फटने से भी इसका पुनर्चक्रण हो जाता है। इस चक्र में दूसरा महत्वपूर्ण घटक जल है। इसके अलावा नाइट्रोजन भी जीवन तंत्र का एक महत्वपूर्ण घटक है। प्रोटीनों, न्यूक्लीक अम्लों और दूसरे नाइट्रोजनीय यौगिकों के संश्लेषण के लिए भी जीवों को नाइट्रोजन की जरूरत पड़ती है। प्रकृति में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण (fixation) विशेष जीवों द्वारा होता है। औद्योगिक प्रक्रमों द्वारा भी वायुमंडलीय नाइट्रोजन को उर्वरकों में बदला जा सकता है।

कार्बन डाइऑक्साइड और पानी के अलावा और बहुत से पदार्थ जीवधारियों के माध्यम से होकर गुज़रते हैं। क्योंकि जीवों को कार्बन, आक्सीजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन आदि तत्वों के अलावा जीवनयापन के लिए फॉस्फोरस, सल्फर (गंधक) सोडियम, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, मैंगनीज़, कोबाल्ट, कॉपर (ताँबा), ज़िंक (जस्ता) और शायद क्लोरीन की भी जरूरत पड़ती है और कुछ जीवों को तो विशेष प्रकार्यों के लिए निश्चित रूप से एल्यूमिनियम, बोरान, ब्रोमाइड, सेलीनियम, मोलिब्डेनम, वैनेडियम, सिलिकॉन, स्ट्रॉशियम और संभवतया निकिल की भी आवश्यकता पड़ती है। ये पदार्थ भी जीवों के माध्यम से जैवमंडल में परिचक्रित होते रहते हैं।

ख) जलमंडल

आप यह अवश्य जानते होंगे कि प्रोटोप्लाज्म अर्थात् जीव-द्रव्य का सबसे महत्वपूर्ण घटक पानी है और इसीलिए यह सभी जीवधारियों के लिए अति आवश्यक है। उपापचय में, हाइड्रोजन का एकमात्र स्रोत यही है और ऑक्सीज़न के अनेक स्रोतों में से एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

पृथ्वी को कभी-कभी जलाधारी ग्रह कहा जाता है क्योंकि सौर-मंडल में यही एक ऐसा ग्रह है जिस पर पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। पृथ्वी की कुल सतह (धरातल) का 71 प्रतिशत महासागर से बना है। सौर-ऊर्जा की सहायता से पानी वाष्प बनकर वायुमंडल में पहुँच जाता है। बहुत ऊँचाई पर पहुँचकर जल वाष्प बनकर ठंडा हो जाता है। फलस्वरूप जल वाष्प का विभिन्न रूपों में संघनन (condensation) हो जाता है, जैसे बादल और वर्षा या बर्फ के रूप में वर्षण और इस प्रकार पानी अपने मूल जल-तंत्र अर्थात् जलमंडल में लौट आता है। आप इकाई 4 में इसके विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

विभिन्न उपापचयी प्रक्रमों के लिए पानी आधार माध्यम के रूप में काम में लाया जाता है। जीवधारी मुख्य रूप से जलमंडल से पानी लेते हैं। उपापचय के प्रक्रम के दौरान, जीवों द्वारा खपत किया गया पानी आंशिक रूप से वापस पर्यावरण में उत्सर्जित कर दिया जाता है अर्थात् निकाल दिया जाता है और जीवों के शरीर निर्माण के काम में लाया गया अंश जीवों की मृत्यु और क्षय के बाद वापस जलमंडल को लौट जाता है।

ग) **स्थलमंडल**

जीवमंडल का एक उपप्रभाग स्थलमंडल है जो उपापचयी प्रक्रम में दो तरह से भाग लेता है। एक, स्थलीय या जलीय परिस्थितियों में रहने वाले जीवों के लिये अधिकांश पोषक खनिजों का यही एकमात्र स्रोत है। दो, यह मिट्टी का मुख्य घटक है, जिसकी आवश्यकता स्थलीय पादपों को पड़ती है।

जीवन के दो आधारभूत प्रक्रमों, प्रकाश संश्लेषण और श्वसन, को ध्यान में रखते हुए हमने जीवमंडल के तीन प्रमुख उप-प्रभागों की चर्चा की है।

इस प्रकार, वस्तुतः जीवमंडल को प्राकृतिक भू-दृश्य की सबसे बड़ी इकाई कहा जा सकता है जिसमें अनेक छोटे-छोटे पारितंत्र आपसी क्रिया करते हुए विद्यमान रहते हैं।

बोध प्रश्न 1

उपयुक्त शब्दों से नीचे दिए गए रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

जीवमंडल ..... , ...

और ..... से मिलकर बना है। संपूर्ण जीवन संपर्क

..... की पतली पट्टी में है। सौर्य ऊर्जा क्लोरोफिल

(पर्ण हरित) वाले जीवों ..... , ...

नीलहरित शैवाल, पादपप्लवक और उच्च पादपों की भारी संख्या द्वारा .....
द्वारा जीवन में घुसती है।

3.2.2 बायोम और समुदाय

बायोम जीवमंडल के स्थलीय भाग के प्रमुख उपभाग हैं जो अपने प्रभावी वनस्पति की विशिष्ट संरचना द्वारा पहचाने जाते हैं। पृथ्वी के दर्जन-भर या इससे अधिक बायोम लाखों वर्ग मील में फैले हुए हैं और संपूर्ण महाद्वीपों को घेरे हुए हैं। किन्हीं दो बायोमों की जलवायु बिल्कुल एक जैसी नहीं होती है। किसी बायोम में पादपों और प्राणियों की प्रचुरता उसकी सीमाएँ, उस क्षेत्र में व्याप्त औसत मौसम परिस्थितियाँ ही निश्चित करती हैं। जिनमें वर्षण (precipitation) और तापमान सबसे महत्वपूर्ण जलवायु-कारक हैं।

बायोम एक बहुत बड़ा पारितंत्र माना जा सकता है, जो अपनी जटिलता और जैव प्रचुरता के आधार पर एक तालाब और जंगल जैसे सामान्य पारितंत्रों से भिन्न है। इस प्रकार से शंकुधारी टैगा बायोम (coniferous tiaga biome) एक बहुत बड़ा पारितंत्र है जो सदाबहार वन पारितंत्र के आलावा अपने भीतर झीलें, दल दल और दूसरे पारितंत्र समाहित करता है। सदाबहार जंगल भी एक बयोम में विभिन्न स्थानों में भिन्नता दिखलाते हैं।

स्थलीय बायोम में प्रमुख-पौधों के समूह को चरम वनस्पति (climax vegitation) कहते हैं।

प्रत्येक बायोम में चरम वनस्पति जैसे—घासें, शंकुधारी, पतझड़ी (deciduous) अर्थात् जिनके पत्ते झड़ जाते हैं, एक समान होते हैं। लेकिन पादपों की विशेष जातियाँ बायोम के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न हो सकती है। चरम वनस्पति की किस्म भौतिक पर्यावरण पर निर्भर करती है और दोनों मिलकर वहाँ मौजूद प्राणियों की किस्म तय करते हैं। समीप के बायोम के बीच आमतौर पर कोई सीमा रेखा नहीं है। वास्तविकता यह है कि एक बायोम दूसरे बायोम से काफी बड़े संक्रमण प्रदेश के माध्यम से घुल-मिल जाता है।

बायोम का वितरण चार मुख्य परिवर्तनशील कारकों की आपसी क्रिया से नियंत्रित होता है जो एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। जैसे कि—वार्षिक तापमान (विशेष रूप से न्यूनतम और अधिकतम); वर्धन काल जो स्वयं वार्षिक तापमान पर निर्भर करता है; उपलब्ध पोषक तत्व और औसत तथा न्यूनतम वर्षण।

जीवमंडल का दूसरा अनुभाग **जलीय** जीवमंडल है जो वनस्पति और प्राणिमंडलों में बंटा हुआ है। लेकिन ये बायोम **नहीं** कहलाते हैं। जलीय तंत्रों में प्रकाश जहाँ तक पहुँच सकता है उसके आधार पर ये क्षेत्र इस प्रकार हैं : (i) सप्रकाशी (Euphetic zone) जिसमें उत्पादक जैसे कि पादक प्लवक और उपभोक्ता होते हैं। यह उत्पादन क्षेत्र कहलाता है क्योंकि यह क्षेत्र वह है जहाँ धूप पहुँच सकती है और यह समुद्रीय सतह के नीचे 600 फीट तक होता है। (ii) अप्रकाशी क्षेत्र (Aphotic zone) जहाँ रोशनी नहीं पहुँचती।

अब हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि शायद ही ऐसा कोई अन्य क्षेत्र है जहाँ जीवन न हो। कोई भी क्षेत्र जहाँ जीवन होने के प्रमाण हैं और जहाँ जीव मौजूद है (पादप और प्राणी दोनों) वह क्षेत्र उस विशिष्ट जीव या उन विशिष्ट जीवों का आवास (habitat) कहलाता है। किसी जगह साथ-साथ मिलकर रहने वाले पादपों अथवा प्राणियों के समष्टि को जीव विज्ञान की शब्दावली में **समुदाय** की संज्ञा दी जाती है। यहाँ **समष्टि** का अर्थ एक ही जाति के आपस में क्रिया करने वाले समूह से है।

3.3 पारितंत्र के घटक

भाग 3.2 में दी गई पारितंत्र की परिभाषा को याद कीजिए। पारितंत्र की पूरी परिभाषा में भौतिक और जैव पर्यावरण के साथ किसी भी घटक तथा उन दोनों के बीच पारस्परिक क्रिया अर्थात् आपसी क्रिया भी शामिल है। पारितंत्र के जीवीय या जैव घटकों में निम्नलिखित शामिल हैं :

i) ऐसे जीव जो धूप में अपना भोजन स्वयं संश्लेषित कर सकते हैं मूल रूप से हरे पादप, कुछ जीवाणु और शैवाल। यह **स्वपोषी** (autotrophs) या उत्पादक कहलाते हैं।

ii) अन्य सभी जीव जो अपना भोजन खुद नहीं बना सकते लेकिन जीवित बचे रहने के लिए अपनी ऊर्जा के लिए दूसरे जीवों पर निर्भर रहते हैं। ये **विषमपोषी** (heterotrophic) या उपभोक्ता कहलाते हैं।

उपभोक्ताओं में कुछ प्राणी जैसे–बकरी, गाय, हिरण और खरगोश, जो हरे पेड़-पौधे खाते हैं **प्राथमिक उपभोक्ता** या शाकाहारी कहलाते हैं। वे जीव जो इन शाकाहारियों को खाते हैं जैसे–मेढ़क जो कीटों को खाता है **द्वितीयक उपभोक्ता** कहलाते हैं। जो जीव इन द्वितीयक उपभोक्ताओं को खा कर जीवित रहते हैं वे **तृतीयक उपभोक्ता** कहलाते हैं। प्राथमिक उपभोक्ता शाकाहारी होते हैं, लेकिन द्वितीयक और तृतीयक उपभोक्ता मांसाहारी कहलाते हैं। शेर और गिद्ध जैसे प्राणी जिनको अन्य कोई प्राणी न मारता है, न खाता है **शीर्ष माँसाहारी** अर्थात् उच्च कोटि के माँसाहारी कहलाते हैं।

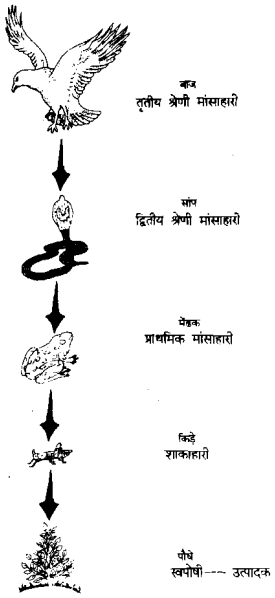

चित्र 3.2 : पारितंत्र में पोषी स्तर

उत्पादकों के भी निम्नलिखित भाग हैं। वे उत्पादक जैसे–हरे पेड़-पौधे और कुछ विशेष प्रकार के जीवाणु जो सौर ऊर्जा को सीधे भोज्य पदार्थों में बदल सकते हैं **प्राथमिक उत्पादक** कहलाते हैं। विषमपोषी जो अन्य प्राणियों के भोजन हैं **द्वितीयक उत्पादक** बनते हैं।

परिणामस्वरूप पारितंत्र एक आधारभूत इकाई माना जाता है जहाँ जटिल प्राकृतिक समुदाय या जीव अपना भोजन पेड़-पौधों से एक, दो, तीन या चार पोषक चरणों में प्राप्त करते हैं। और उसी के अनुसार यह चरण प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पोषी स्तर (आहार स्तर) (trophic levels) कहलाते हैं। जैसे–

- हरे पौधे (उत्पादक); पोषी स्तर I
- शाकाहारी (प्राथमिक उपभोक्ता); पोषी स्तर II
- माँसाहारी (द्वितीयक उपभोक्ता); पोषी स्तर III
- शीर्ष माँसाहारी (तृतीयक उपभोक्ता); पोषी स्तर IV

इसे चित्र 3.2 में दिखाया गया है।

उपभोक्ता और उत्पादक दोनों ही अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं। इस प्रकार जब पुरानी पीढ़ी मर जाती है तब नई पीढ़ी की जनसंख्या आ जाती है। आपको आश्चर्य हो रहा होगा कि मरने वालों का क्या होता होगा। पारितंत्र मे सभी जगह मृत जैव-पदार्थ का लगातार अपघटन (decomposition) होता रहता है। इस प्रक्रिया के दौरान वे अपने मूल रूप पोषक तत्वों में बदल जाते हैं। इस प्रकार पदार्थों का लगातार परिचक्रण होता रहता है। अपघटन के लिए उत्तरदायी कवक और जीवाणु **अपघटक** (decomposers) या **अपचायक** (reducers) कहलाते हैं। अपघटकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अपघटक जीवों को अपमार्जक (scavengero) भी कहते हैं। जल, कार्बन डाइऑक्साइड, फॉस्फेट और अनेक कार्बनिक यौगिक जीवों की गतिविधियों या उनकी मृत्यु के उपरांत उनके शवों पर उपमार्जक जीवों की गतिविधियों के उप-उत्पाद (by-products) हैं।

मूल रूप से अकार्बनिक तत्व और यौगिक जैसे—कार्बन डाइऑक्साइड, जल, फॉस्फेट और अन्य अनेक कार्बनिक यौगिक जो अधिकतर जीवन की गतिविधि या मृत्यु के उप-उत्पाद हैं, पारितंत्र के अन्य महत्वपूर्ण अजैव अथवा अजीवित घटक हैं। इस अजैविक समूह के दूसरे महत्वपूर्ण घटक भौतिक कारक हैं जिसमें तापमान, नमी, पानी, सौर विकिरण आदि शामिल हैं। अजैव घटक ही वह नेपथ्य है जिसमें मूल रूप से जैव घटक अर्थात् पौधे, प्राणी और सूक्ष्मजीव (microbes) ऊर्जा-आश्रित रूप में जीवनयापन करते हैं।

बोध प्रश्न 2

सही कथन के सामने (✓) और गलत कथन के सामने (✗) का निशान लगाइए :

1) बर्करियाँ, गायें, हिरण और बाघ पहली श्रेणी के उपभोक्ता हैं। ( )
2) हरे पौधों को पोषी-I और पोषी-II स्तर पर रखा जा सकता है। ( )
3) सब कवक और जीवाणु अपमार्जक कहलाते हैं। ( )
4) अजैव कारकों में प्रकाश और ऊष्मा जैसे ऊर्जा के रूप में शामिल हैं। ( )

3.4 पारितंत्र के प्रकार्यात्मक घटक

जहाँ तक पारितंत्र के प्रकार्यात्मक पहलू का प्रश्न है, हम नीचे दिए गए संदर्भ में इसका अध्ययन कर सकते हैं :

- ऊर्जा प्रवाह
- खाद्य शृंखला
- समय और स्थान में विविधताएँ
- पोषक तत्वों के परिचक्र या जीव-भू-रसायन चक्र
- परिवर्धन (development) और विकास (evolution) तथा
- नियंत्रण साइबरनेटिक्स।

नीचे दिए गए प्रवाह चार्ट की सहायता से हम पारितंत्र के प्रकार्यात्मक पक्ष या विभिन्न घटकों के बीच आपसी क्रिया की व्याख्या कर सकते हैं जिसमें **ऊर्जा का प्रवाह** और पदार्थों का परिचक्रण प्रमुख होते हैं, (चित्र 3.3)।

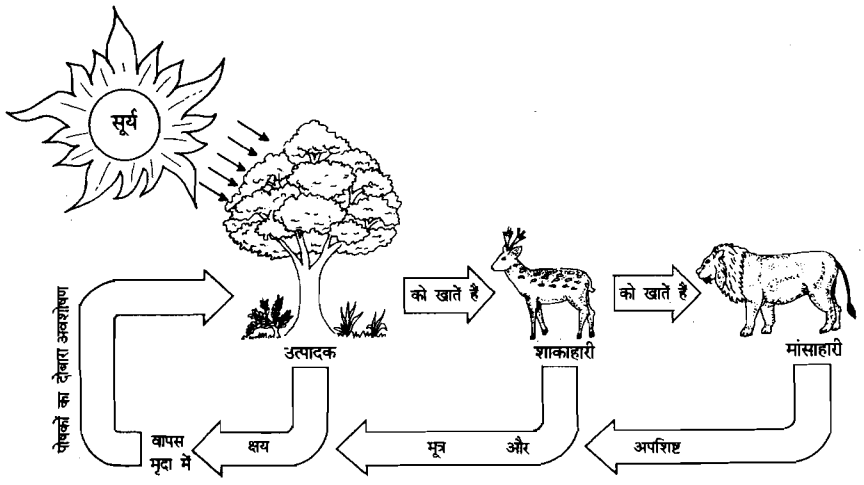

चित्र 3.3 : प्राकृतिक संतुलित पारितंत्र

पारितंत्र में ऊर्जा गति की दिशा निश्चित है। जैसे स्व-पोषी——→विषमपोशी, उत्पादक—→उपभोक्ता, अथवा उत्पादक—→शाकाहारी—→माँसाहारी। प्रक्रम में, पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा विकिरण ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में बदल देते हैं। पौधों के जीव-द्रव्य (protoplasm) में अनेक अकार्बनिक तत्व और यौगिक होते हैं। विषमपोषी

इन पौधों को चर जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि शाकाहारियों में न केवल कार्बोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीनों के रूप में बल्कि दूसरे बहुत से पोषकों के रूप में भी रासायनिक ऊर्जा प्रेषित होती है। यह प्रक्रम शाकाहारियों से माँसाहारियों के स्तर तक और माँसाहारियों के माध्यम से अपघटक स्तरों तक सतत जारी रहता है। प्रक्रम का दूसरा लक्षण यह भी है कि हरे पौधों द्वारा प्राप्त की गई ऊर्जा जब एक खाद्य स्तर या पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर तक स्थानांतरित होती है तब शृंखला में हर स्थानांतरण के दौरान ऊर्जा हानि भी अवश्य होती है। नीचे दिया गया चित्र 3.4 पारितंत्र में ऊर्जा स्थानांतरण और ऊर्जा ह्रास को दर्शाता है।

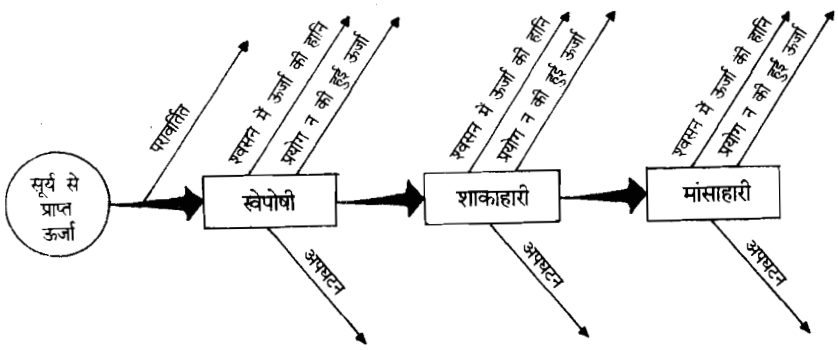

चित्र 3.4 : पारितंत्र में ऊर्जा का स्थानांतरण

ऊपर दिए गए चित्र से हम निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं :

- पारितंत्र में पोषकों/पदार्थों के विपरीत, ऊर्जा गति एकदिशीय है अर्थात् स्व-पोषी द्वारा ग्रहण की गई प्रारंभिक ऊर्जा वापस सूर्य में नहीं लौट सकती।
- शाकाहारी से माँसाहारी तक जाने वाली ऊर्जा माँसाहारी से शाकाहारी को वापस नहीं लौट सकती। इस एकदिशीय और सतत् ऊर्जा प्रवाह के फलस्वरूप ही पारितंत्र अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल होता है और इस प्रकार ऊर्जा प्रवाह तंत्र को ढह जाने से बचाए रहता है।

लेकिन रासायनिक ऊर्जा के रूप में पोषकों का स्थानांतरण चार्ट पोषकों के ह्रास को नहीं दर्शाता है, जैसा कि ऊर्जा के प्रसंग में ज्ञात है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सभी पौधों और प्राणियों के मल पदार्थ, उत्सर्जन उत्पाद और मृत शरीर अपशेष, अपघटकों द्वारा अकार्बनिक पदार्थों में तोड़ दिए जाते हैं और अन्ततः पारितंत्र में लौटा दिए जाते हैं जिससे स्वपोषियों द्वारा वे फिर से काम में लाए जा सकें।

इसलिए पारितंत्र नियमित रूप से परस्पर क्रियाशील और एक-दूसरे पर घनिष्ठ रूप से निर्भर घटकों का तंत्र है, अर्थात् उन घटकों का एकीकृत संपूर्ण है, जो इसके घटकों की पारस्परिक क्रिया में ऊर्जा का प्रवाह करते हैं जिससे पदार्थों का **निरंतर परिचक्रण** होता रहता है (चित्र 3.5)।

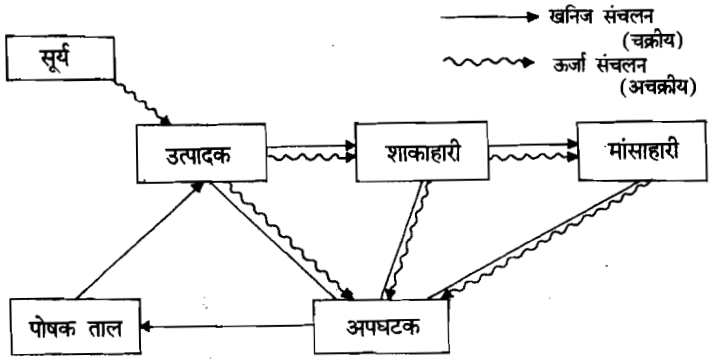

चित्र 3.5 : पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह और पोषक चक्रण का आरेख

पारितंत्र का प्रकार्य और एक पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर को ऊर्जा का स्थानांतरण अर्थात् सूर्य से स्वपोषियों को और स्वपोषियों से विषमपोषियों का अर्थ तंत्र में नए कार्बनिक पदार्थों

का इकट्ठा होना है। ये संचित नए कार्बनिक पदार्थ सूक्ष्म जीवों या अपघटकों द्वारा अपघटित होते हैं जिससे इसको पुनः चक्रण क्रम (recycling sequence) में एक प्रक्रम के रूप में अनुमोदित किया जा सकता है। इस प्रक्रम के दौरान जीव-भार (biomass) को इसके घटकों में परिवर्तित किया जाता है, जो स्वपोषियों के लिए प्रयोग करने योग्य कच्चे पदार्थ बन जाते हैं।

अपने कार्यात्मक उत्तरदायित्वों के आधार पर तीन जीवित घटक अर्थात् **उत्पादक**, **उपभोक्ता** और **सूक्ष्म उपभोक्ता** (अपघटक) प्रकृति के तीन प्रकार्यात्मक जगत बनाते हैं क्योंकि ये स्वयं काम में लाए गए पोषण के प्रकार और ऊर्जा स्रोतों की उपलब्धता पर आधारित हैं। और एक संतुलित अवस्था बनाये रखने के लिये परितंत्र के पास आत्मनिर्भर और **स्वतः नियामक** (self regulatory) **संरचनात्मक तंत्र** होने चाहिए।

जहाँ तक जैव और अजैव घटकों का सवाल है उनमें सदैव कुछ सीमा तक प्रतिकूल परिस्थितियों में उत्पन्न पर्यावरणीय असंतुलन को सहने की क्षमता और प्रकार्यात्मक संतुलन बनाए रखने की प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है। सभी पारितंत्रों में तंत्र की स्वतः नियामक क्रियाविधि या नियंत्रण उसके संतुलन को बनाए रखने के लिए होता है।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए सत्य अथवा असत्य, कथनों को बताते हुए उनके सामने दिए गए कोष्ठकों में 'सत्य' अथवा 'असत्य' लिखिए।

क) ऊर्जा केवल पारितंत्र के आधार में रहती है। ( )

ख) पारितंत्र प्रकृति की एक आत्मनिर्भर इकाई है। ( )

ग) कार्बनिक पदार्थों के क्षय से पारितंत्र के सामान्य प्रकार्य पर असर नहीं पड़ता। ( )

घ) प्राथमिक उत्पादक स्व-पोषी कहलाता है। ( )

च) प्राथमिक उत्पादक प्राथमिक उपभोक्ता कहलाता है। ( )

छ) अपघटक, पारितंत्रों में मृत पदार्थों को कहते हैं। ( )

ज) पोषी स्तर जाति वर्गीकरण पर आधारित है। ( )

3.5 खाद्य शृंखला और खाद्य जाल

आप पढ़ चुके हैं कि पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह एकमार्गी प्रक्रम है। हम जीवों के उस क्रम को पहचान सकते हैं जिससे ऊर्जा प्रवाहित होती है। यह क्रम **खाद्य शृंखला** कहलाता है। उदाहरणार्थ, पौधे कीटों द्वारा खाए जाते हैं, कीट मेढ़कों द्वारा खाए जाते हैं, मेढ़क मछलियों द्वारा खाए जाते हैं और मछलियाँ मनुष्य द्वारा खाई जाती हैं। इस खाद्य शृंखला में पाँच पोषी स्तर हैं। खाद्य शृंखला में प्राणी के स्थान को अनेक महत्वपूर्ण कारक निश्चित करते हैं। प्रत्येक जाति विशिष्ट स्थान में रहती है और उसका विशेष अनुकूलन होता है जो उसे उस स्थान में रहने के लिए पूर्ण रूप से योग्य बनाता है।

पारितंत्र में प्रकाश संश्लेषण द्वारा ऊर्जा का प्रवाह सूर्य से स्व-पोषी उत्पादकों में, शाकाहारियों (जो प्राथमिक उपभोक्ता हैं) के ऊतकों द्वारा माँसाहारियों (जो द्वितीयक उपभोक्ता हैं) के ऊतकों तक पारितंत्र में प्रत्येक स्तर पर जीवों की संख्या और जीव-भार का परिणाम करता है। पोषण के प्रत्येक उत्तरोत्तर स्तर पर ऊर्जा प्रवाह बहुत कम होता है क्योंकि ऊर्जा रूपांतरण में प्रत्येक चरण पर जीवों द्वारा ऊर्जा का उपयोग किया जाता है और इस प्रक्रम में ऊष्मा के रूप में ऊर्जा की हानि होती है। इसके अतिरिक्त कोई भी परभक्षी अपने शिकार को पकड़ने के लिए पूरी तरह दक्ष नहीं होता है इसलिए शिकार करते समय कुछ ऊर्जा नष्ट हो जाती है। इन्हीं कारणों से प्रत्येक उत्तरोत्तर स्तर पर जीव-भार घटता चला जाता है।

आइए, ऊर्जा प्रवाह के एक दूसरे पहलू पर विचार करें। आप जानते हैं कि कुछ प्राणी केवल एक ही तरह का खाना खाते हैं इसलिए वे एक खाद्य शृंखला के सदस्य हैं। बहुत से दूसरे प्राणी भिन्न-भिन्न प्रकार का खाना खाते हैं इसलिए वे न केवल विभिन्न खाद्य

शृंखलाओं के सदस्य हैं बल्कि भिन्न-भिन्न खाद्य शृंखलाओं में भिन्न-भिन्न स्थान ग्रहण कर सकते हैं। एक प्राणी एक शृंखला में पौधे खाकर प्राथमिक उपभोक्ता हो सकता है, लेकिन शाकाहारी प्राणियों या दूसरे माँसाहारियों को खाकर दूसरी शृंखलाओं में द्वितीयक या तृतीयक उपभोक्ता बन जाता है। आइए मनुष्य का उदाहरण लें। मनुष्य अनेक खाद्य शृंखलाओं के सिरे पर स्थित है। उदाहरण के लिए, एक आदमी एक बड़ी मछली खाता है, बड़ी मछली दूसरी छोटी-छोटी मछलियों को खाती है और वे छोटी-छोटी मछलियाँ उन छोटे-छोटे अकशेरूकियों अर्थात् बिना रीढ़ वाले प्राणियों को खाती हैं जिन्होंने शैवाल खाया है। किसी भी प्राणी की आबादी, खाद्य शृंखला में कड़ियों की संख्या, शृंखला में प्रत्येक कदम पर ऊर्जा रूपांतरण की दक्षता और अंततः उस क्षेत्र में पृथ्वी पर प्रकाश ऊर्जा की उपलब्ध मात्रा द्वारा निर्धारित होती है।

चूंकि मनुष्य प्रकाश ऊर्जा की मात्रा को बढ़ा नहीं सकता और ऊर्जा स्थानांतरण की दक्षता को भी केवल थोड़ा-बहुत बढ़ा सकता है इसलिये ऊर्जा पाने के लिए पर-पोषी प्राणियों की बजाय प्राथमिक उत्पादकों यानी स्व-पोषी पौधों को खाकर वह केवल खाद्य शृंखला को छोटा कर सकता है। घनी आबादी वाले देशों में लोग ज्यादातर शाकाहारी रहते हैं क्योंकि इस तरह खाद्य शृंखला सबसे छोटी होती है और ज़मीन का छोटा-सा क्षेत्रफल ज्यादा से ज्यादा लोगों का भरण-पोषण कर सकता है। मान लीजिए कि एक किसान के पास गेहूँ और सब्जियों की फसल है। वह इसे सीधे खा सकता है या इसे अपने पशुओं को खिलाकर उन पशुओं को खा सकता है। चित्र 3.6 में यह दर्शाया गया है कि अगर लोग शाकाहारी हैं तो सूर्य की ऊर्जा सबसे प्रभावशाली ढंग से काम में लाई जा सकती है। क्योंकि इस विधि से ऊर्जा रूपांतरण के चरणों की संख्या कम से कम रह जाती है।

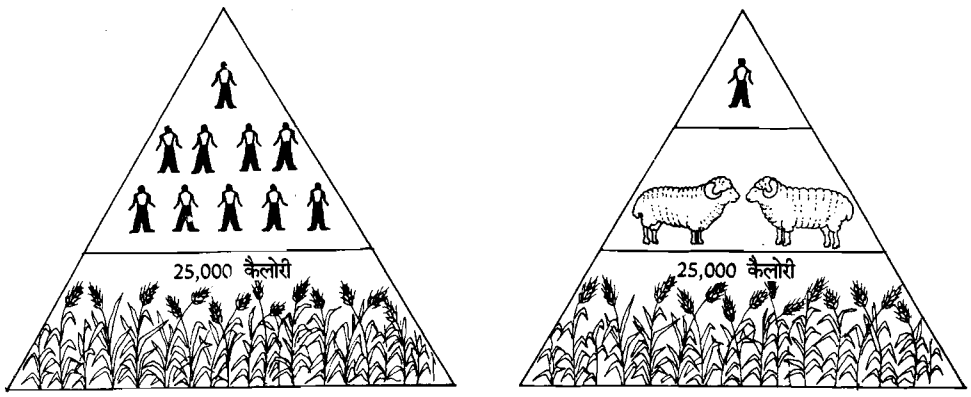

चित्र 3.6 : शाकाहारी और माँसाहारी आहार की सापेक्ष दक्षता

क) **शाकाहारी भोजन में 25,000 कैलोरी 10 आदमियों का भरण-पोषण कर सकती है।**

ख) **उतने ही समय में पौधे की 25,000 कैलोरी माँस खाने वाले एक ही आदमी का भरण-पोषण कर सकती है।**

प्रकृति में तीन प्रकार की खाद्य-शृंखलाएँ पहचानी गई है :

i) **चारण खाद्य-शृंखला**
खाद्य शृंखला शुरू करने वाले उपभोक्ता, पौधों या पौधों के भाग का उपयोग करते हुए चारण (grazing) खाद्य शृंखला बनाते हैं। खाद्य शृंखला हरे पौधों से शुरू होती है और इसका प्राथमिक उपभोक्ता शाकाहारी जीव है। उदाहरण के लिए,
घास→टिड्डी→पक्षी→बाज।

ii) **परजीवी खाद्य-शृखला**
यह हरे पादप आधार से शुरू होकर, शाकाहारियों तक जाती है। उदाहरण के लिये, शाकाहारी बहुत से जूँ के मेजबान हो सकते हैं। जूँ बाहरी परजीवी के रूप में रहती है।

iii) **अपरद खाद्य-शृंखला**
यह खाद्य-शृंखला सड़ रहे प्राणियों और पौधों के कार्बनिक अपशेषों का उपयोग करने वाले सूक्ष्म जीवों से शुरू होकर अपरद खाने वाले जीवों अर्थात् अपरदाहारी (detrivores) जीवों और दूसरे परभक्षियों तक जाती है।

उथले समुद्रों में जीवों के समुदाय में कुल ऊर्जा का लगभग 30 प्रतिशत अपरद-शृंखलाओं से होकर प्रवाहित होता है, लेकिन वनों में जहाँ पौधों का जीव-भार ज्यादा और प्राणियों का जीव-भार अपेक्षाकृत कम होता है, ऊर्जा प्रवाह का अधिकांश भाग अपरद मार्गों से होकर प्रवाहित होता है।

साधारणतया खाद्य शृंखलाएँ इतनी सरल नहीं होतीं जितनी ऊपर बताई गई हैं। प्रायः अनेक भिन्न-भिन्न जातियाँ खाने की एक ही वस्तु काम में ला सकती हैं और एक ही जाति खाद्य जीवों की भिन्न-भिन्न जातियों को आहार बना सकती हैं।

3.5.1 खाद्य जाल

खाद्य-शृंखला पारितंत्र द्वारा प्रवाह के केवल एक ही अंश को प्रस्तुत करती है लेकिन पारितंत्र में अनेक परस्पर संबंधित खाद्य शृंखलाएँ भी हो सकती हैं। खाद्य शृंखला शब्द का अर्थ एक सरल, पृथक संबंध से है जो पारितंत्र में कभी-कभार देखने में आता है। फिर भी एक ही खाद्य संसाधन विशेष रूप से उस समय एक से अधिक शृंखलाओं का भाग बन सकता है, जब वह संसाधन निम्न पोषी स्तर पर हो। इस प्रकार आहार परस्पर संबंधों के जुड़े हुए जाल हैं जो **खाद्य जाल** (चित्र 3.7) का रूप लेते हैं।

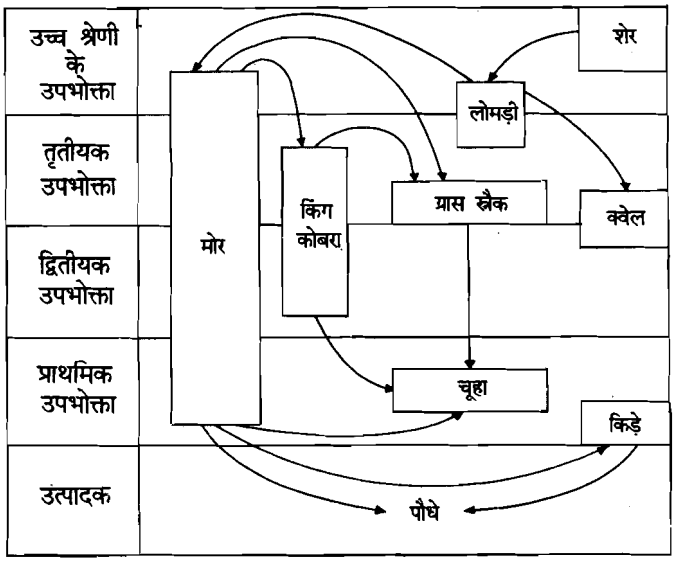

चित्र 3.7 : खाद्य जाल का सरलीकृत आरेख

3.5.2 पिरैमिड

आपने भाग 3.3 में पोषी स्तरों के विषय में अध्ययन किया है। पोषी स्तरों के ये कदम चित्रात्मक ढंग से दर्शाए जा सकते हैं। ये चित्र पारिस्थितिकीय पिरैमिड के रूप में जाने जाते हैं। खाद्य उत्पादक पिरैमिड के आधार का निर्माण करते हैं और शीर्ष माँसाहारी, चोटी का निर्माण करते हैं। पारिस्थितिकीय पिरैमिड तीन कोटि के होते हैं (चित्र 3.8):

- संख्याओं का पिरैमिड (Pyramid of number),
- जीव-भार का पिरैमिड (Pyramid of biomass), और
- ऊर्जा या उत्पादकता का पिरैमिड (Pyramid of energy)

संख्याओं का पिरैमिड

यह प्राथमिक उत्पादकों की संख्या और विभिन्न वर्गों के उपभोक्ताओं के बीच के संबंधों के विषय में बताता है। उदाहरण के लिए, घास के खेत के लिए निम्नलिखित पिरैमिड हो सकता है चित्र 3.8 क) जहाँ पिरैमिड का आधार उच्चतर पोषी स्तरों के लिए खाद्य उत्पादक आधार को दर्शाता है।

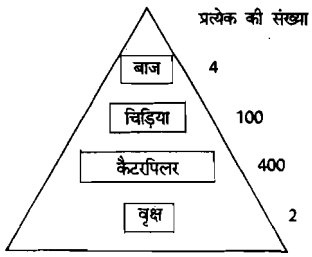

चित्र 3.8 (क) : संख्याओं का पिरैमिड

लेकिन पारितंत्र में सभी जीवों को गिनना बहुत कठिन हो जाता है। इसलिए संख्याओं का पिरैमिड पारितंत्र की पोषी संरचना को पूरी तरह परिभाषित नहीं करता। संख्याओं का पिरैमिड इस तथ्य को नहीं मानता है कि प्रत्येक पोषी स्तर में गिने गए जीवों का आकार अलग-अलग हो सकता है। वन की गिनती में बड़े उत्पादकों, बड़े पेड़ों की संख्या कम होगी जो बहुत से शाकाहारियों का भरण-पोषण करते हैं और अपनी बारी पर शाकाहारी बहुत ज्यादा मांसाहारियों का भरण-पोषण करते हैं। इसी तरह यह आवश्यक नहीं है जीव-भार के उपलब्ध मात्रा के आधार पर, संख्याओं का पिरैमिड हमेशा ही सीधा खड़ा हुआ हो, यह एकदम उल्टा भी हो सकता (चित्र 3.8 (क))।

जीव-भार का पिरैमिड

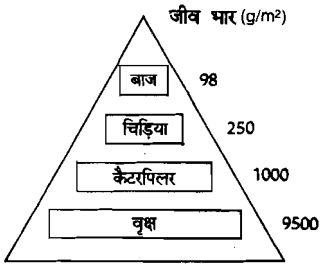

चित्र 3.8 (ख) : जीवभार का पिरैमिड

दूसरा तरीका यह है कि प्रत्येक पोषी स्तर पर जीवों की संख्या गिनने की अपेक्षा प्रत्येक जीव को तोला जाए। इससे जीव-भार का पिरैमिड अर्थात् एक निश्चित पोषी स्तर पर सभी जीवों का कुल भार प्राप्त होगा। पृथ्वी पर अधिकांश स्थलीय पारितंत्रों के लिए, जीव-भार के पिरैमिड में प्राथमिक उत्पादन का परिणाम दर्शाने वाला आधार बड़ा होता है और बाकी छोटे पोषी स्तर उसके ऊपर स्थित होते हैं (चित्र 3.8 (ख))। आइए, अब हम इसके विपरीत, एक अन्य स्थिति का अध्ययन करें। बहुत से जलीय पारितंत्रों में उत्पादक छोटे-छोटे पादक प्लवक (phytoplankton) होते हैं जो इन पारितंत्रों में संपूर्ण खाद्य का एकल स्रोत हैं, ये काफी तेज़ रफ्तार से बढ़ते और जनन करते हैं यहाँ उनके जीव-भार के पिरैमिड का आधार छोटा हो सकता है, जहाँ वास्तव में उपभोक्ता जीव-भार किसी भी क्षण उत्पादक जीव-भार से अधिक होता है। वस्तुस्थिति यह है कि पादपप्लवक जितनी तेज़ी से जनन करते हैं उतनी ही तेज़ी से उनका उपभोग भी होता है। तर्कसंगत यह है कि बचे रहने वाले प्लवक चाहे कितने थोड़े ही क्यों न हों, बहुत अधिक परिमाण में खाद्य-उत्पादन कर सकते हैं। क्योंकि ये बहुत आश्चर्यजनक गति से जनन करते हैं।

ऊर्जा का पिरैमिड

ऊष्मा गतिकी के नियम :
पहला नियम—ऊर्जा न तो उत्पन्न होती है और न ही नष्ट। लेकिन लगभग एक रूप से दूसरे रूप में बदल दी जाती है।
दूसरा नियम—जब ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में बदलती है तब कुछ ऊर्जा की हानि होती है।

जब हम किसी पारितंत्र में पोषी स्तरों की प्रकार्यात्मक भूमिका के बारे में जानना चाहते हैं तब संभवत: ऊर्जा पिरैमिड सबसे ज्यादा सूचना देने वाला साबित होता है क्योंकि व्यष्टियों (individuals) की आमाप (साइज़) में विभिन्नता और उपापचयी दरों पर अधिक बल दिए जाने से पिरैमिड का आकार नहीं बिगड़ता है। यदि हम ज्यादा सही ढंग से कहें तो ऊर्जा पिरैमिड ऊष्मा गति विज्ञान या ऊष्मा गतिकी (thermodynamics) के नियमों का पालन करता है। इसलिए विभिन्न पोषक स्तरों पर ऊर्जा को दर्शाने वाला पिरैमिड का आकार हमेशा सीधा होता है और ऊर्जा का बड़ा आधार सबसे नीचे होता है। ऊर्जा का पिरैमिड व्यष्टियों द्वारा काम में ली गई सकल ऊर्जा की वास्तविक मात्रा, उपापचय के दौरान उनके द्वारा कितनी ऊर्जा जलती है, कितनी उनके अवशिष्ट उत्पादों में बची रहती है और कितनी वह अपने शरीर के ऊतकों में संचित रखते हैं इन बातों के समाकलन पर आधारित होता है। पिरैमिड में ऊर्जा के निवेशों और निर्गमों या उत्पादनों का परिकलन किया जाता है। जिससे ऊर्जा प्रवाह को भूमि या जल की प्रति इकाई तथा समय व्यक्त किया जा सके। आइए, अब हम इसे एक उदाहरण से समझते हैं।

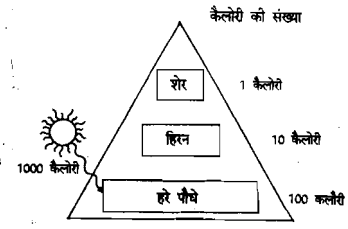

चित्र 3.8 (ग) : ऊर्जा का पिरैमिड

एक पारितंत्र एक निश्चित दिन में प्रकाश ऊर्जा की 1000 कैलोरी प्राप्त करता है। अधिकांश ऊर्जा अवशोषित नहीं होती अर्थात् सोखी नहीं जाती, वरन् वापस अंतरिक्ष में परावर्तित (reflected) हो जाती है। अवशोषित ऊर्जा का थोड़ा-सा अंश हरे पौधों द्वारा उपयोग में लाया जाता है जिसमें से कुछ अंश पौधे श्वसन के काम में ले लेते हैं और 1000 कैलोरी में से केवल 10 कैलोरी रासायनिक ऊर्जा सम्पन्न कार्बनिक पदार्थों के रूप में संग्रह हो जाती है।

अब मान लीजिए कि एक प्राणी जैसे—एक हिरण एक पौधे को खाता है जिसमें खाद्य ऊर्जा की 10 कैलोरी है। हिरण इसका कुछ अंश अपने स्वयं के उपापचय के लिए काम में ले लेता है और खाद्य ऊर्जा की केवल एक कैलोरी का भंडार रखता है। हिरण को खाने वाले शेर को ऊर्जा की और भी कम मात्रा उपलब्ध होती है। इस प्रकार काम में लाई जाने योग्य ऊर्जा धूप से उत्पादक तक तथा उससे शाकाहारी तक फिर उससे मांसाहारी तक घटती है। इसलिए ऊर्जा पिरैमिड हमेशा सीधा खड़ा रहेगा (देखिए चित्र 3.8 (ग)।

बोध प्रश्न 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) पारितंत्र में उत्पादकों और उपभोक्ताओं की गिनती पर आधारित पिरैमिड को..... ..... कहते हैं।

ii) प्रत्येक पोषी स्तर पर संचित ऊर्जा के परिकलन अर्थात् हिसाब लगाने के बाद बनाया गया पिरैमिड..... कहलाता है।

iii) एक पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर को सूर्य की ऊर्जा का स्थानांतरण..... है।

iv) पारितंत्र में परस्पर एक-दूसरे से जुड़े हुए अशान संबंध से..... बनता है।

3.5.3 जैव-आवर्धन

पारितंत्र में जैव-आवर्धन (biomagnification) मनुष्य-प्रेरित प्रक्रिया है जिससे खाद्य शृंखला में अपकर्ष (degrade) न होने वाले प्रदूषकों का निवेश होता है। ये अनापकर्षीय (non-degradable) प्रदूषक न केवल संचित होते हैं बल्कि प्रायः खाद्य शृंखला तंत्र में जैव रूप से आवर्धित होते जाते हैं। अनापकर्षी प्रदूषकों से हमारा अर्थ उन पदार्थों से है जो जीवों द्वारा उपापचयित नहीं हो सकते। इनके कुछ उदाहरण हैं, कीटनाशक दवाइयाँ, भीतरी दहन (अंतःदाही) (internal combustion) इंजनों में एंटी-नाकिंग कर्मक (एजेंट), परिदूषण-रोधी पेंट इत्यादि। पारितंत्र अपने प्राकृतिक प्रकार्य में इन नए पदार्थों से न निपट सके इसलिए ये जीवधारियों के शरीर में संचित होते रहते हैं। इसके अलावा, प्राकृतिक प्रक्रम में, ताकतवर जीव कमजोर जीवों को खा जाते हैं और जैसे-जैसे हम खाद्य शृंखला के निम्न स्तर से उच्च स्तरों की ओर बढ़ते हैं अनापकर्षीय पदार्थों की सांद्रता बढ़ती जाती है।

उदाहणार्थ, हानिकारक और लाभदायक, दोनों तरह के कीटों को मारने की क्षमता रखने वाली विस्तृत-स्पैक्ट्रम पीड़कनाशी डी.डी.टी. (डाइक्लोरो डाइफेनिल ट्राइक्लोरोएथेन) आसानी से अपाकर्षित नहीं होता है। एक बार का अनुप्रयोग अर्थात् एक बार का छिड़काव या बिखराव अपेक्षाकृत लंबे समय (लगभग 20 साल) तक बना रहता है। मनुष्य के लिए यह कम टॉक्सीय है और इसी कारण इसके विश्वव्यापी अनुप्रयोग को बढ़ावा मिला है। इसकी उचित कीमत भी इसके व्यापक अनुप्रयोग का कारण है।

नीचे दिया गया चित्र 3.9 डी.डी.टी. के संदर्भ में खाद्य शृंखला में विभिन्न चरणों को दर्शाता है जिनसे डी.डी.टी. खाद्य शृंखला की प्रारंभिक अवस्थाओं में जीवमंडल में प्रवेश करती है। आप देख सकते हैं कि कीट-नियंत्रण के लिए छिड़काव के बाद आरंभ में जल में डी.डी.टी. की मात्रा 0.02 ppm (एक भाग प्रति दस लाख) है। संभव है कि कुछ समय बाद वह खाद्य शृंखला तंत्र में एकत्रित होने लगे। उदाहरणार्थ, सूक्ष्म पौधे डी.डी.टी को संदूषित (contaminated) जल को ग्रहण करते हैं और छोटी मछलियाँ उन पौधों को खाती हैं तब उनके शरीर में पीड़कनाशी की मात्रा कई गुना बढ़ जाती है। हालाँकि जो प्रारंभिक मात्रा छिड़की गई थी वह कम थी और हानिरहित समझी गई थी। इसलिए हानिरहित डी.डी.टी. सांद्रता खाद्य शृंखला के तीसरे चरण में खाद्य शृंखला द्वारा आवर्धन के बाद 2000 ppm है।

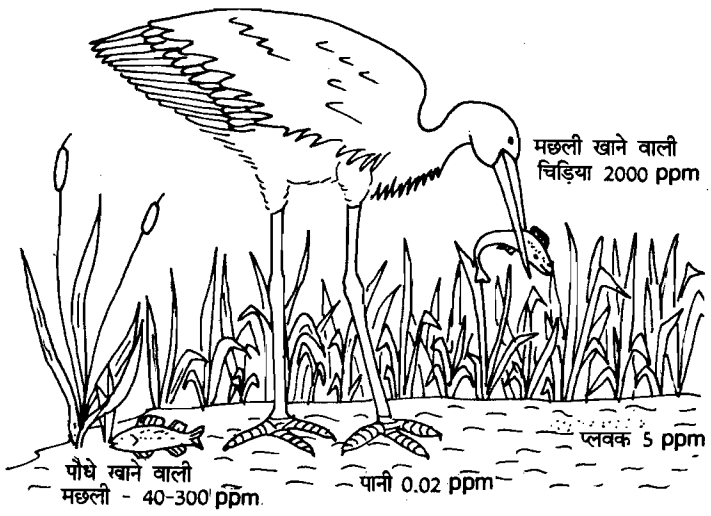

चित्र 3.9 : अ-उपापचयक प्रदूषकों का खाद्य शृंखला में जैव-आर्वधन

फलस्वरूप एक अ-उपापचयज पदार्थ जब खाद्य शृंखला के एक चरण से दूसरे चरण की ओर चलता है तब यह सांद्रित या आवर्धित हो जाता है और जीवमंडल में डाली गई प्रारंभिक मात्रा की तुलना में बहुगुणित सांद्रता में एकत्रित होकर हानिकारक बन जाता है।

3.6 सीमाकारी कारक

अब तक हम यह समझ गए हैं कि वर्तमान प्राकृतिक तंत्र को प्रायः आधुनिक प्रौद्योगिकी के कुप्रभावों का सामना करना पड़ता है। ये प्रायः पारितंत्र की मूलभूत स्थायित्व को बदलकर विशेष रूप से तंगी या दबाव का कारण बन सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, हम यह जानते हैं कि विभिन्न पर्यावरणीय कारकों की (प्रकाश, तापमान, आर्द्रता, पवनगति, खाद्य, पोषकों) उपलब्धता, बदलती रहती है। ये परिवर्तन पारितंत्र में जीवों की तंदुरुस्ती और उनके जीवित बने रहने पर प्रभाव डालते हैं क्योंकि जीव तभी स्वस्थ्य रह सकते हैं जब उनके जीवन के लिए सभी अनिवार्य कारक उपलब्ध हों। उदाहरणार्थ, पौधों को पर्याप्त पोषण, प्रकाश, जल और स्थान मिल रहा है लेकिन मात्र एक अपरिहार्य पोषक के कारण (मान लीजिए, फास्फोरस की कमी है) पौधा जीवित नहीं रह पाएगा। यह अनिवार्य पोषक तब **पौधे के जीवित बचे रहने के लिए सीमाकारी कारक बन जाता है।** इन पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति जीवों की अनुक्रिया समझने के लिए हमें दो नियमों को समझना होगा :

1) **न्यूनतम का नियम** (law of minimum) : यह बताता है कि जीव की वृद्धि और स्वास्थ्य अंततः उस अनिवार्य संसाधन द्वारा सीमित कर दिए जाते हैं जिसकी आपूर्ति जितनी होनी चाहिए उतनी न होकर निम्नतम है इसलिए सबसे कम मात्रा में उपलब्ध संसाधन **सीमाकारी कारक** कहलाता है।

2) **सहन का नियम** (law of tolerance) : यह बताता है कि पर्यावरण में प्रत्येक आपेक्षित भौतिक कारक के परिमाण की जीव के लिए एक न्यूनतम और अधिकतम सीमा है जो **सहन सीमा** कहलाती है। इससे कम सीमा में जीव जीवित नहीं बच सकता है। उदाहरण के लिए, विटामिन ए की अपर्याप्त मात्रा से त्वचा सूखने लगती है, रतौंधी हो जाती है और हड्डियाँ असामान्य बन जाती है। जबकि विटामिन ए के अत्यधिक सेवन से जठर-आंत्र (gastrointestinal) की गड़बड़ी, बालों का गिरना, त्वचा-शोथ (dermatitis) और हड्डियों में दर्द होने लगेगा। **किसी भी अपेक्षित कारक जैसे–खाद्य, ऊर्जा, ऊष्मा, विटामिन, खनिज, जल या ऑक्सीजन की बहुत कम या बहुत अधिक मात्रा जीवों की ही नहीं बल्कि समूची जातियों के जीवित रहने के लिए खतरा बन जाती है।**

बोध प्रश्न 5

ऊँचे पर्वतीय क्षेत्रों में पेड़ हमें केवल एक निश्चित ऊँचाई तक ही मिलते हैं। उसके बाद अचानक जमीन वृक्षहीन हो जाती है। इस "वृक्ष-रेखा" से ऊपर वर्ष के ज्यादातर हिस्से में पहाड़ बर्फ से ढ़के रहते हैं। क्या आप किसी ऐसे सीमाकारी कारक के बारे में सोच सकते हैं जो पेड़ों को "वृक्ष-रेखा" से ऊपर जीवित नहीं रहने देता?

.....

.....

.....

.....

3.7 विभिन्न प्रकार के पारितंत्र

किसी पारितंत्र के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन के बाद अब हम अपनी पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के पारितंत्रों के बारे में अध्ययन करेंगे। मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि दो प्रमुख प्रकार के पारितंत्र–जलीय और स्थलीय हैं।

जलीय पारितंत्र को और भी भागों में बाँटा जा सकता है—अलवणजलीय (freshwater) तंत्र, ज्वारनदमुखी (estuarine) तंत्र और समुद्री तंत्र। इनके जल अंश में प्रमुख रासायनिक अंतर के आधार पर इनका भेद किया जाता है। **स्थलीय पारितंत्र** में अनेक प्रमुख बायोम होते हैं जैसे—वन, घास स्थल और टुंड्रा आदि। ये मुख्य रूप से ध्रुवों और भू-मध्य रेखा के बीच जलवायु परिस्थितियों में परिवर्तनों, या भिन्नताओं के आधार पर पहचाने जाते हैं। इनमें पाए जाने वाले इन बायोमों का चरम वनस्पतियों पर भेद किया जा सकता है जैसे—घास, झाड़ियाँ और पेड़।

3.7.1 स्थलीय पारितंत्र

स्पष्ट है कि बायोमों का वितरण वार्षिक तापमान (न्यूनतम और अधिकतम तापमान) खनिज उपलब्धता, वर्षा (औसत और न्यूनतम, दोनों) और धूप की उपलब्धता से नियंत्रित होता है। उदाहरण के लिए, आमतौर से वन भारी वर्षा से जुड़े होते हैं। लेकिन वनों के प्रकार पर तापमान और प्रकाश का प्रभाव पड़ता है। रेगिस्तानों के बारे में भी यही सच है कि वे ऐसे प्रदेशों में होते हैं जहाँ वर्षा बहुत कम होती है।

अब हम कुछ प्रमुख बायोमों के अभिलक्षणों के विषय में बात करेंगे।

बायोम **वर्णन**

टुंड्रा बर्फ से ढ़के ध्रुवों से सटा हुआ सुदूर उत्तरी प्रदेश। ज्यादा ऊँचाइयों पर भी ऐसे समुदाय होते हैं जो दक्षिणी भागों में अवरुद्ध झाड़ियों को छोड़कर सभी पेड़ों से विहीन हैं। वनस्पतिजाति में लाईकेन, मॉस और सेज शामिल हैं। अधिकतर भागों में जल जमी हुई अवस्था में रहता है लेकिन सबसे ऊपरी परत गर्मियों में पिघलती है, जिससे पौधों को उगने के लिए छोटी-सी ऋतु मिल जाती है। यहाँ पाए जाने वाले प्ररूपी प्राणी रेनडियर, उत्तर ध्रुवीय लोमड़ी, ध्रुवीय रीछ, बर्फानी उल्लू, लेमिग चूहे, उत्तर ध्रुवीय खरगोश, पैटरमिगन हैं। सरीसृप (reptiles) और जलस्थलचर (amphibians) यहाँ ज्यादातर नहीं पाए जाते (चित्र 3.10)।

खतरे—यांत्रिक अपघर्षण (mechanical abrasions), सड़क निर्माण और तेल की पाइपलाइनों के बिछने से टुंड्रा प्रदेशों को खतरा है विशेष रूप से इसलिए कि टुंड्रा की मृदा में अपघटन बहुत धीरे-धीरे होता है और टुंड्रा प्रदेश में पौधे बहुत धीरे-धीरे उगते हैं।

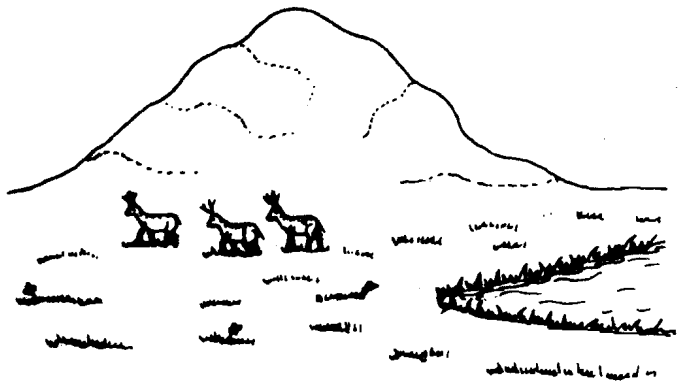

चित्र 3.10 : टुंड्रा

टैगा जिन्हें बोरियल वन भी कहते हैं उत्तरी यूरोप, एशिया और उत्तरी अमेरिका के चारों ओर विशाल चक्र में फैला हुआ है लेकिन उन क्षेत्रों में फैला है जहाँ टुंड्रा की तुलना में औसत तापमान ज्यादा है। यहाँ की प्रमुख वनस्पति शंकुधारी सदाबहार पेड़ (अधिकतर स्प्रूस और कुछ चीड़ तथा फर) हैं। जंतुओं में बीज खाने वाली छोटी चिड़ियाँ और उनके परभक्षी जैसे—बाज़, फरधारी मांसाहारी, छोटी मिंक, एल्क, प्यूमा, बाघ (साइबेरियाई), भेड़िया आदि यहाँ पाए जाते हैं।

खतरे—लकड़ी काटना, अनियंत्रित शिकार और जानवरों को पकड़ना तथा कुछ क्षेत्रों में कृषि-व्यवसायों की असीमित वृद्धि के कारण टैगा प्रदेश के बायोम को खतरे का सामना करना पड़ रहा है।

चित्र 3.11 : टैगा

शीतोष्ण पर्णपाती वन

इस प्रकार के वनों में औसतन मध्यम तापमान रहता है और साल भर पर्याप्त वर्षा होती है। यहाँ पाए जाने वाले अधिकांश पेड़ जाड़ों में अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं तथा पर्णपाती कहलाते हैं। मध्य और दक्षिणी यूरोप, पूर्वी उत्तरी अमेरिका से लेकर यह वन पश्चिमी चीन, जापान, न्यूजीलैंड आदि तक फैला हुआ है। यहाँ की वनस्पतिजात में बीच, ओक, मैपल और चेरी प्रमुख हैं। अधिकांश प्राणी जाने-पहचाने कशेरूकी (रीढ़ वाले) और अकशेरूकी (बिना रीढ़ वाले) हैं। कृषि की दृष्टि से ये आमतौर पर पृथ्वी के सबसे अधिक उत्पादक क्षेत्र हैं जिसका आंशिक कारण मिट्टी में क्षय और अपघटन की गति का सीमित होना है। इस कारण मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ अधिक पाए जाते हैं।

खतरे—कृषि गतिविधियों और मानव जनसंख्या के अधिक घनत्व के कारण अधिकांश शीतोष्ण पर्णपाती वन कृषि भूमि में बदल गए हैं। इस प्रकार मूल बायोम का जो थोड़ा बहुत भाग बचा है उसे कृषि विस्तार से बहुत खतरा है।

चित्र 3.12 : शीतोष्ण पर्णपाती वन

उष्णकटिबंधीय वर्षा वन

भूमध्य रेखा में मूसलाधार वर्षा का उष्णकटिबंधी प्रदेश जो प्राणियों से परिपूरित है। उष्णकटिबंधीय वर्षा वन पृथ्वी की सतह का लगभग 7 प्रतिशत भाग घेरे हुए हैं लेकिन विश्व की लगभग 40 प्रतिशत पौधे और प्राणी जातियाँ यहाँ बसती हैं। इन में चौड़ी पत्तियों वाली सदाबहार जातियाँ प्रमुखतः हैं जो विभिन्न ऊँचाइयों में पाई जाती है। अधिकांश प्राणी और अधिपादपीय (epiphytic) पौधे वितान (canopy) या वृक्षशीर्ष क्षेत्रों में ही जीवनयापन करते हैं। उच्च तापमान में मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों का बड़ी तेजी से अपघटन होता है, जिसे शीघ्र पौधे ग्रहण कर लेते हैं और पोषक राशि जीवधारियों के शरीरों का अंग बन जाती है। इसलिए मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ बहुत कम पाए जाते हैं।

खतरे—दुर्भाग्यवश हममें से बहुत से लोग शायद उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों की अद्वितीय सुंदरता को कभी नहीं देख पाएँ क्योंकि इनकी बहुत तेजी से कटाई हो रही है। इन वनों को मानव हस्तक्षेप से बहुत खतरा है।

सवाना घास, बिखरे हुए पेड़ों और अग्नि प्रतिरोधी काँटेदार झाड़ियों वाला उष्णकटिबंधीय प्रदेश। प्राणीजात में पत्तियाँ चरने वाले जीवों की भारी विविधता शामिल है जैसे कि बारहसिंगा, भैंसे, जिराफ, हाथी और गैंडा, मांसाहारी प्राणियों में शेर, चीता, लकड़बग्गा, नेवला और कृंतकों (rodents) की कई प्रजातियाँ शामिल हैं। सवाना अफ्रीका में पाए जाने वाले सबसे ज्यादा व्यापक वनस्पति क्षेत्र हैं।

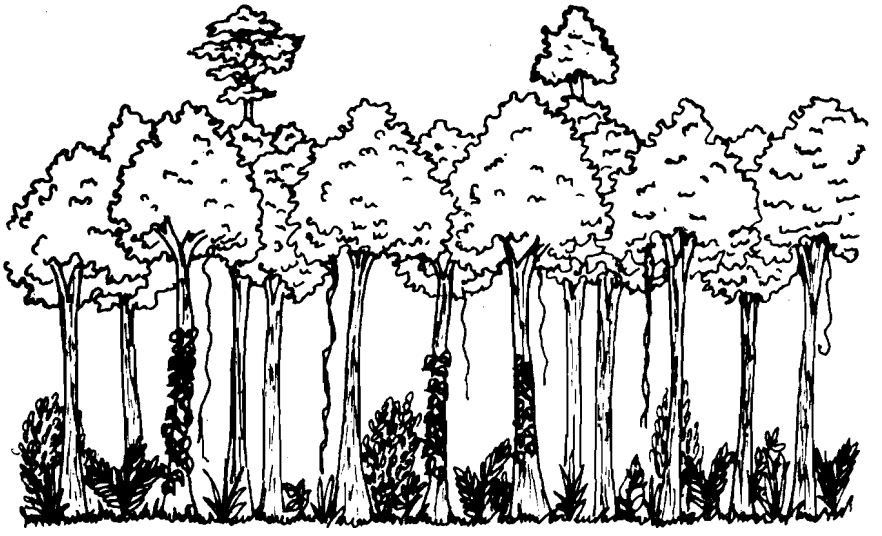

चित्र 3.13 : उष्णकटिबंधीय वर्षा वन

खतरे—कृषि और बढ़ती हुई जनसंख्या के दबाव ने सवाना के प्रसार को बहुत हद तक कम कर दिया है।

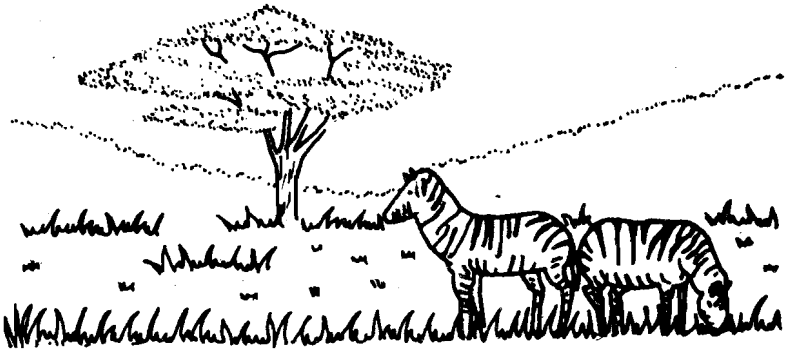

चित्र 3.14 : सवाना

घास स्थल महाद्वीपीय भीतरी भाग जहाँ वर्षा कम और परिस्थितियाँ शीतोष्ण हैं (temperate) जैसे कि उत्तरी अमेरिका का मध्य-पश्चिमी भाग और उकेराइन जहाँ घास प्रमुख वनस्पति होती हैं। प्राणीजगत में बड़े-बड़े शाकाहारी पशु जैसे बाइसन, बारहसिंगा और छोटे शाकाहारी जैसे—कृन्तक (चूहे आदि)। प्रेअरी कुत्ते, भेड़िए, और ज़मीन पर रहने वाले पक्षियों की विविध किस्में पाई जाती हैं।

खतरे—कृषि विकास के लिए बहुत उपयुक्त आवास है और इस कृषि-विकास ने यहाँ के मूल समुदाय को नष्ट कर दिया। अत्यधिक चराई और उपजाऊ भूमि के अति दोहन से कई जगहों पर घास-स्थल बायोमों में भारी अपरदन हुआ है।

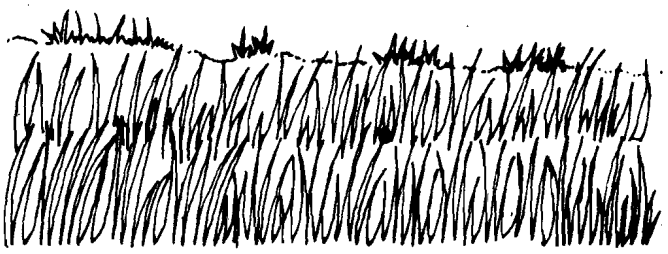

चित्र 3.15 : घास स्थल

मरुस्थल बहुत कम और छुट-पुट वर्षा वाले महाद्वीपीय भाग जहाँ कम आर्द्रता वाले सूर्य की किरणें आसानी से वायुमंडल को भेदती हुई ज़मीन पर आ पहुँचती हैं क्योंकि वातावरण में समन्त्यकारी नमी वाली वायु की परत नहीं होती। जिससे ज़मीन का तापमान बहुत ऊँचा हो जाता है लेकिन इसके विपरीत रातें अक्सर अत्यधिक ठंडी होती हैं। सूखा-प्रतिरोधी वनस्पति जैसे कि कैक्टस (नागफनी आदि), यूफोर्बिया (euphobia), सेजबुश (sagebush) आदि पाई जाती है। यहाँ पाए जाने वाले प्राणी अधिकतर रात्रिचर होते हैं। सरीसृप जातियाँ जैसे—साँप, छिपकली आदि, तथा स्तनधारी और कुछ पक्षी यहाँ मौजूद होते हैं।

खतरे—कुछ जगहों पर अत्यधिक सिंचाई और आवासीय-औद्योगिक विकास गतिविधियों से इन क्षेत्रों को खतरा है। मिट्टी में पहले से ही ज्यादा खनिज अंश होते हैं और बार-बार सिंचाई से लवणता और बढ़ जाती है।

चित्र 3.16 : मरुस्थल

बोध प्रश्न 6

टुंड्रा, शीतोष्ण और उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में अपघटन की दर और उर्वरता के बीच क्या संबंध है?

.....

.....

.....

3.7.2 जलीय पारितंत्र

पृथ्वी की सतह के 70 प्रतिशत से भी अधिक भाग में जलीय पारितंत्र व्याप्त हैं। बायोम की तरह ही विश्व-भर के जलीय समुदायों में भी समानता है तथा इनमें जातियों की प्रचुर विविधता है। यहाँ अलवण जलीय, समुद्री और ज्वारनदमुखी पारितंत्रों के विशेष लक्षणों के बारे में चर्चा करेंगे जिनका भेद उनके नमक के अंश के आधार पर किया जाता है।

अलवण-जलीय पारितंत्र

पारिपादप में बड़े जलीय पौधों से चिपके हुए या घनिष्ठ रूप से संबद्ध बहुत से वनस्पतिजात या प्राणीजात और नीली हरी शैवाल और विभिन्न छोटे-छोटे अकशेरूकी या बिना रीढ़ वाले प्राणी शामिल हैं।

अलवण-जलीय पारितंत्र के विशेष उदाहरण सरित् या **प्रवाही जल** (lotic) और **सरोस्थिर जल** (lentic) हैं। सरित् जल तंत्र में अलवण-जल धाराएँ, सोते, उपनदियाँ (rivulets) निर्वोशिकाएँ (creeks) नाले और नदियाँ शामिल हैं। ये सब अपने उद्गम स्थान के आरंभ में संकरे, उथले और अपेक्षाकृत तेज होते हैं। रास्ते में बहते हुए धीरे-धीरे ये क्रमशः चौड़े, गहरे और धीमे बहने वाले होते चले जाते हैं। जल प्रपात (झरने) सरित पारितंत्र में यह साधारणतया मिलते हैं। इससे ये अपेक्षा की जाती है कि सरित पारितंत्रों की ऊपरी धाराओं में केवल वही जीवधारी पाए जाते हैं जो बहते हुए पानी में अपने आपको स्थिर

बनाए रखने के लिए अच्छी तरह अनुकूलित हैं और खुली हुई और आरक्षित सतह पर चिपकने में सक्षम हैं। बड़े जलीय पौधों से संबद्ध चिपकने वाले जीव परिपादप कहलाते हैं।

पहाड़ी धाराओं में डार्टर, ट्राउट और साम्मन जैसी अनेक प्रकार की मछलियाँ होती हैं। नीचे की ओर बहती धारा में आगे जाकर हमें गुनगुने पानी में रहने वाली विभिन्न प्रकार की मछलियाँ जैसे शिगटी (कैटफिसा) और शफरी (कार्प) दिखाई देती हैं। सरित तंत्रों के सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक उत्पादक शैवाल (काई) है लेकिन यहाँ पर आसपास के स्थलीय पारितंत्र से लाया गया प्रमुख ऊर्जा स्रोत कार्बनिक पदार्थ हैं। इसलिए नीचे की ओर बहती धारा के पानी का पोषण स्तर ऊँचा होता है, क्योंकि पोषक वहाँ लगातार बढ़ते रहते हैं।

सरोजलीय या स्थिरजलीय राशियाँ जैसे–कुंड, तालाब, कुछ दलदल (swamps & bog) और झीलों के भौतिक, रासायनिक और जैविक लक्षण सरित् पारितंत्र के लक्षणों से बहुत भिन्न हैं। सामान्य तौर पर इनके तीन क्षेत्र माने जा सकते हैं–

वेलांचली या तटीय (littoral) **सरोवरी** (limnetic) और **गहन गंभीर** (profoundal) अर्थात् गहरा (चित्र 3.17)। वेलाँचली तटरेखा से लेकर सबसे भीतरी जड़ जमाए हुए पौधों तक फैला हुआ है और इसमें प्लवमान (floating) और तली में जड़ें जमाए उन्मज्जी (emergent) वनस्पति की प्रमुखता है जैसे नरकुल (reed) और कैटटेल, जल लिली और कुछ निर्मज्जित (submerged) लेकिन जड़ जमाने वाली जातियाँ। मेंढ़क, साँप, घोंघे, सीपियाँ और प्रौढ़ कीटों की ढेर सारी किस्में और उनके लार्वा भी पाए जाते हैं। **सरोवरी जीव प्रदेश** में जिस गहराई तक रोशनी पहुँच सकती है वहाँ तक खुला जल है। इस प्रदेश में पादपप्लवक होते हैं, जिनमें डायटम, हरी और नीली हरी शैवाल, आदि जंतु (protozoans) से लेकर सूक्ष्मसंधिपादों (microarthropods) तक प्राणीप्लवकों (zooplankton) की अनेक किस्में हैं। इस प्रदेश में तैरने वाले बड़े जीवों की किस्में भी हैं जो **तरणक** (nekton) कहलाती हैं जिसमें मछलियाँ, जलस्थलचर और बड़े-बड़े कीट शामिल हैं।

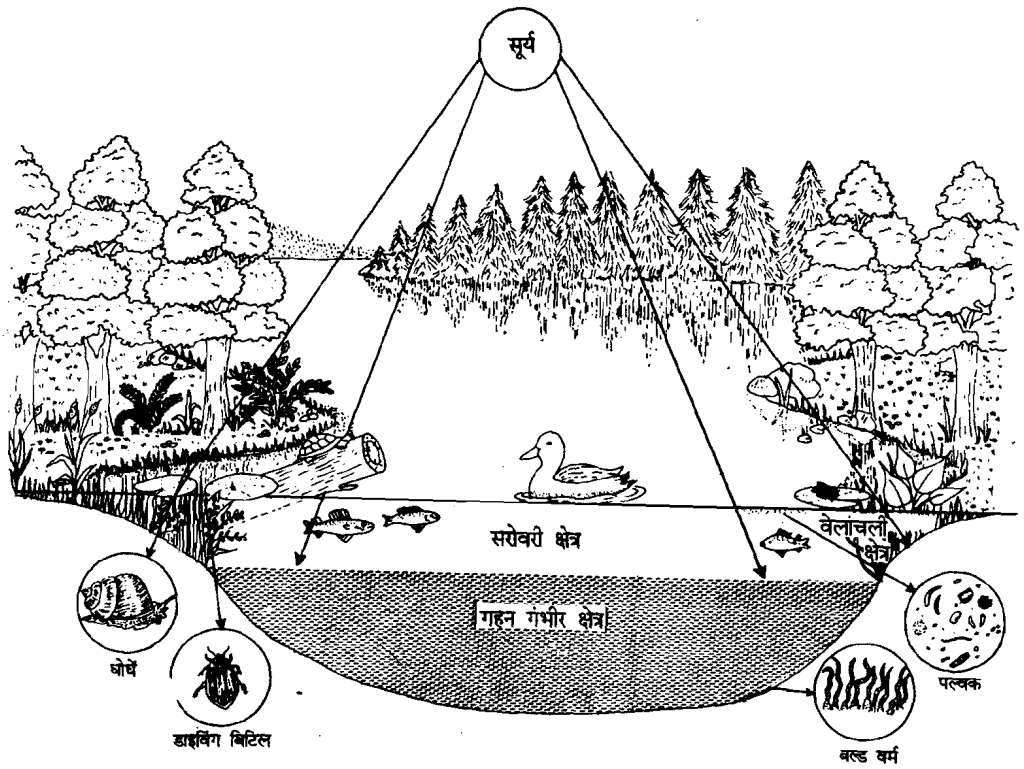

चित्र 3.17 : अलवणीय झील पारितंत्र

गहन क्षेत्र सरोपरीजीव क्षेत्र के नीचे हैं और गहरी झीलों में यह क्षेत्र झील के पानी का सबसे ज्यादा आयतन बनाता है। गहन क्षेत्र को खाना सरोवरीय जीव क्षेत्र से मिलता है। इस क्षेत्र में अधिकतर अपघटक होते हैं। इस क्षेत्र में तरणक तापमान और पोषकों की स्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं।

समुद्री पारितंत्र

लवणों जैसे सोडियम क्लोराइड की माप (भाग प्रति हज़ार) में होती है जबकि नाइट्रेट्स, फास्फेट्स और दूसरे पोषकों की माप (भाग प्रति अरब) में होती है।

पृथ्वी की सतह का लगभग तीन-चौथाई भाग समुद्र से ढका है जिसकी औसत गहराई 3,750 मीटर और औसत लवणता 35ppt (भाग प्रति हज़ार) है तथा जिसका 27 प्रतिशत भाग सोडियम क्लोराइड (नमक) है। समुद्री पारितंत्र अलग पारिस्थितिकीय महत्व के हैं तथा उसमें पोषकों की सांद्रता कम है। समुद्र पारितंत्र के प्रमुख प्रदेश—**वेलांचली, नेरिटांचली** (neritic) **वेलापवर्ती** (pelagics) और **नितलस्थ** (benthic) हैं (चित्र 3.18)। **वेलांचली** प्रदेश भूमि और खुले समुद्र के बीच की तटरेखा है। लहरों और ज्वार-भाटों का अधिकतम प्रभाव इसी प्रदेश में होता है, क्योंकि कभी-कभी अत्यधिक तापमान, नमी और प्रकाश तीव्रता का सामना इसी क्षेत्र को करना पड़ता है जिसके फलस्वरूप जातियों की विविधता देखने को मिलती है। अगर तट चट्टानी है तो आपको स्थानबद्ध (sessile) जीव जैसे शैवाल, बारनेक्लस, तारामीन (starfish) आदि अधिक से अधिक देखने को मिलेंगे और अगर तट रेतीला है तो ऐसे जीवों की प्रमुखता देखने को मिलेगी जो रेत में बिल बनाकर या रेत में चिपकर रहने के लिए अनुकूलित हो गए हैं।

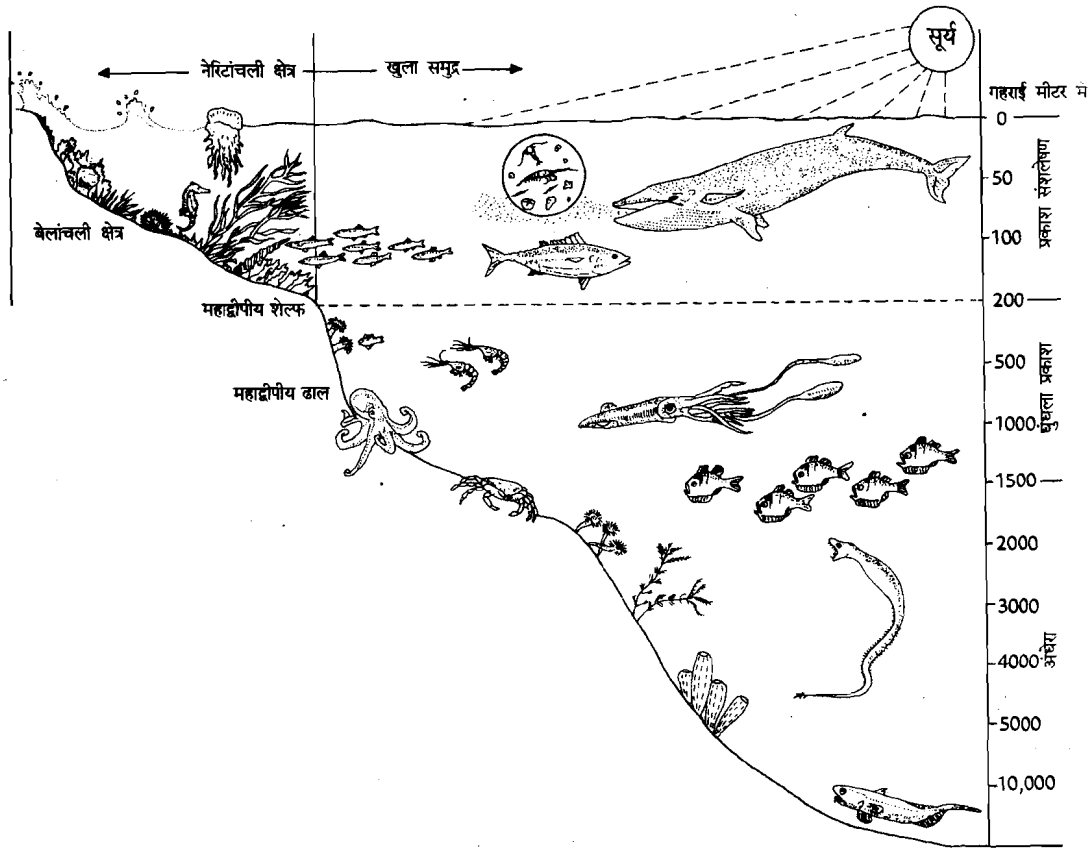

चित्र 3.18 : समुद्री पारितंत्र के विभिन्न क्षेत्र

खाड़ियों में जहाँ कीचड़ दलदल होता है, वहाँ सतह पर शैवाल मिलती है। आमतौर पर शैवाल के नीचे प्रकाश-संश्लेषी जीवाणु (बैक्टीरिया) और अधिक मात्रा में सीपियाँ, कृमि और क्रश्टेशियन मिलते हैं। निवह सिलेंटरेट के द्वारा प्रवाल भित्ति "कोरल रीफ" और प्रवाल के उपांत (fringes) बनते हैं।

नेरिटांचली क्षेत्र इतना उथला क्षेत्र है कि समुद्र अधस्थल (फ्लोर) पर जड़ जमाए पौधों का भरण-पोषण कर सके। यह महाद्वीपीय प्रक्षेप (shelf) है जो जल की लगभग 200 मीटर गहराई तक फैला हुआ है। यह प्रदेश कुल समुद्र का लगभग 7.5 प्रतिशत भाग होता है और प्रकाश के गहराई तक प्रवेश तथा ज़मीन से धुलकर आए हुए पोषणों की उपस्थिति के कारण यह विविध जीव-जातियों से भरपूर है तथा यहाँ उत्पादकता भी बहुत अधिक होती है। तली में रहने वाली सीपियों, घोंघों, कृमियों और शूलचर्मियों (echinoderm) के साथ-साथ विशाल केल्प और छोटे-छोटे एक कोशीय तथा बहुकोशीय जातियों के व्यापक समुदाय भी पाए जाते हैं। पादपप्लवक और प्राणिप्लवक अपेक्षाकृत प्रचुर मात्रा में मिलते हैं जो विश्व के कुछ सबसे बड़े मछली पकड़ने वाले क्षेत्रों का भरण-पोषण करने में समर्थ हैं। लेकिन तटीय समुद्र की उत्पादकता की अपनी सीमा है। व्यापक मत्स्यन (मछली

पकड़ना) के सम्मिलित प्रयासों और प्रदूषण ने विश्व में लगभग हर जगह व्यापारिक मत्स्य उपलब्धता को कम कर दिया है।

वेलापवर्ती क्षेत्र समुद्र का खुला प्रदेश है जो कुल समुद्र पृष्ठ का 90 प्रतिशत अंश घेरता है। मुख्य रूप से इस क्षेत्र की सतह पर प्रकाश-संश्लेषण विभिन्न प्रकार के पादपप्लवक द्वारा होता है। झींगी (shrimp), जेलीफ़िश इत्यादि, के साथ-साथ यहाँ पर कई प्रमुख प्रकार के प्राणिप्लवक भी हैं। हालाँकि यह क्षेत्र आमाय में सबसे बड़ा है लेकिन पोषकों की कमी के कारण उत्पादकता में नेरिटाँचली क्षेत्र तुलना में कम है।

इन क्षेत्रों में फिन और नीली ह्वेल भी मिलती है। वेलापवर्ती प्रदेशों में जहाँ तक रोशनी पहुँच सकती है उससे नीचे रहने वाले जीव अपने पोषण के लिए पूरी तरह से ऊपरी क्षेत्रों से होने वाली अपरदन की वर्षा पर निर्भर रहते हैं। अधिक गहरे पानी में कई प्राणियों की नज़र कमजोर होती है, और दूसरे जीव जिसमें मछलियाँ भी शामिल हैं जीव-संदीप्ति शील (bioluminescent) हैं और कुछ गहरे पानी में रहने वाली मछलियों में प्रकाश उत्पन्न करने वाले अंग होते हैं।

नितलस्थ क्षेत्र वास्तव में समुद्र का तला है। यह प्रदेश महाद्वीपीय शैल्फ से लेकर गहरी से गहरी समुद्री खाइयों तक फैला हुआ है। जीव विषमपोषी (heterotrophic) हैं, ये समुद्री लिली, समुद्री व्यंजन (sea fan), स्पंज आदि हैं। घोंघे और सीपियाँ कीचड़ में धँसी रहती हैं, जबकि तारामीन, समुद्री कर्कटी (sea cucumber) और समुद्री अर्चिन इसकी सतह पर घूमते रहते हैं (चित्र 3.18)।

ज्ञात गहराइयों में सबसे अधिक गहरी प्रशांत महासागर में मेरिआनास ट्रेंच है जो 10,750 मीटर तक है।

बोध प्रश्न 7

अलवणीय जल और समुद्री जल के बीच चार अंतर बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

ज्वारनदमुख

तटीय खाड़ियों, नदियों के मुहाने और ज्वार-भाटीय कच्छ से ज्वारनदमुख बनते हैं। इन पारितंत्रों में नदी से आया अलवण जल समुद्र के पानी से मिलता है और दोनों ज्वार-भाटों की क्रिया द्वारा मिश्रित हो जाते हैं। मिश्रण कितना होता है यह तीन बातों पर निर्भर है—ज्वारनदमुख बेसिन की आकृति, अलवण जल प्रवाह की दर और आयतन तथा ज्वार-भाटा अंतःप्रवाह। नदी या समुद्र की तुलना में ज्वारनदमुख की उत्पादक क्षमता बहुत अधिक है क्योंकि:

- इनकी गहरे समुद्र तक आसान पहुँच है,
- इनमें समुद्र की अपेक्षा लवणता कम है,
- इनमें ज़मीन और समुद्र दोनों से मिलने वाले पोषकों की सांद्रता बहुत है, और
- इनमें उथले पानी में जड़ जमाए पौधे हैं।

पृथुलवणी जातियाँ यहाँ के प्रमुख घटक हैं जैसे—शक्ति (oysters) और केकड़े तथा समुद्री झींगा। पृथुलवणी जातियाँ वे जातियाँ हैं जो लवणता के घटाव-बढ़ाव को सह सकती हैं। ज्वारनदमुख में समुद्री शैवाल और कच्छ घासें तथा नितलस्थ शैवाल और पादपप्लवक भी पाए जाते हैं जिनमें लगभग पूरे साल तक प्रकाश-संश्लेषण की क्षमता है। ज्वारनदमुख उन गहरे पानी में रहने वाली अनेक मछलियों को शिशुपालन गृह (नर्सरी) की सुविधाएँ देता है जिनके बच्चे खुले समुद्र जैसे कठोर पर्यावरण में जीवित नहीं रह सकते हैं।

3.8 पारितंत्र के भीतर जाति विविधता

किसी पारितंत्र का एक आकर्षक गुण जातियों की विविधता है जिनसे वह तंत्र बना है। किसी पारितंत्र में प्रकार्यात्मक समूहों की विविधता की आशा करना स्वाभाविक है क्योंकि पारितंत्र के खाद्य जाल में स्वपोषी, शाकाहारी, मांसाहारी, अपरदाहारी आदि शामिल हैं।

लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि प्रत्येक प्रकार्यात्मक घटक के अंदर जातियों की विविधता भी मौजूद है। उदाहरण के लिए, अगर आपपास के तालाब में प्लवक जाल के उपयोग से कुछ पादकप्लवक जमा करें तो संभावना यह है कि उसमें शैवाल की 20 से भी अधिक जातियाँ मिलेंगी। ऐसा लगता है कि विविधता हमारे संपूर्ण जीवमंडल के जीवों का एक लक्षण है जिसने सदियों तक प्रकृति वैज्ञानिकों के ध्यान को आकर्षित किया। जब किसी को यह ज्ञात होता है कि इस ग्रह पर भृंगो (beetles) की 3 लाख से अधिक भिन्न-भिन्न जातियाँ और मछलियों की लगभग 20,000 जातियाँ हैं तथा अभी अनेक जातियाँ खोजी जानी हैं तो स्वाभाविक है कि उसे उन विकासी और पारिस्थितिकी कारकों के प्रति जिज्ञासा होती है जो इतने बड़े विविध रूपण (diverification) के लिए उत्तरदायी है।

जाति विविधता एक सापेक्ष शब्द होने के कारण अपने आप में अधिक जानकारी देने वाला शब्द नहीं है। अगर आपको बताया जाए कि किसी विशेष समुदाय में पक्षियों की 14 जातियाँ हैं, तो जब तक आप इन जातियों की दूसरे समुदाय के पक्षियों की जाति विविधता से तुलना नहीं करेंगे तब तक आपको यह पता नहीं चलेगा कि वे 14 जातियाँ कम विविधता या ज्यादा विविधता का मान कैसे प्रस्तुत करती हैं। फिर भी हमारे जीवमंडल में मिलने वाली जाति विविधता में कुछ ऐसे भौगोलिक प्रतिरूप हैं जो विविधता में सहयोग देने वाले कारकों के बारे में बहुत सी जानकारी देते हैं। इनमें से सबसे अधिक सुस्पष्ट प्रतिरूप यह है कि पृथ्वी पर जाति विविधता उष्णकटिबंधों में अधिकतम है और ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर उत्तरोतर घटती जाती है। उदाहरण के लिए, यदि हम पक्षियों को ही लें, तो पाते हैं कि उष्णकटिबंध में भूमध्य रेखा के पास स्थित कोलंबिया में पक्षियों की लगभग 1400 जातियाँ हैं, जबकि शीतोष्ण अक्षांशों पर स्थित न्यूयार्क राज्य में 105 जातियाँ हैं और उत्तरी ध्रुव (70° उत्तर अक्षांश) के पास ग्रीनलैंड में पक्षियों की केवल 56 जातियाँ हैं। हमारे देश में भी, जिसका अधिकांश भाग उष्णकटिबंधीय है, पक्षियों की जातियों में बहुत विविधता है। हमारे यहाँ पक्षियों की 1000 से भी ज्यादा जातियाँ है। पौधों में भी यही वृत्ति है—ओहायो (संयुक्त राज्य अमेरिका) राज्य में संवहनी (vascular) पादपों की लगभग 2,000 जातियाँ हैं लेकिन भूमध्य रेखा पर स्थित छोटे से देश एक्वाडोर में इनकी 20,000 जातियाँ हैं। एक ही अक्षांश पर द्वीपों की अपेक्षा महाद्वीपों पर जातीय विविधता अधिक है। इसके अलावा यह देखा गया है कि अधिक ऊँचाई वाले पारितंत्रों में जाति विविधता कम है।

हमारे आसपास वनस्पतिजात और प्राणिजात की बहुत-सी किस्में हैं जो हमारी प्राकृतिक संपत्ति हैं और हमें इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना है कि मानव गतिविधियाँ इस महान विविधता को नष्ट न कर दें। और अगली पीढ़ी के लिए एक निम्नस्तरीय जीवमंडल छोड़कर न जाएँ। इसके लिए एक मार्ग यह भी है कि प्रदूषण और वन-उन्मूलन जैसे मानव प्रभावों से विनाश के शिकार पारितंत्रों की जाति विविधता को मानिटर करें। ऊर्जा स्थानांतरण और उत्पादकता की तरह, किसी समुदाय की जाति विविधता भी उसके स्वास्थ्य और कल्याण की माप है।

3.8.1 जाति विविधता के मापदंड

किसी समुदाय में केवल जातियों की संख्या ही उनकी विविधता का पर्याप्त माप नहीं है। जातियों की सापेक्ष प्रचुरता अर्थात् प्रत्येक जाति का प्रतिनिधित्व करने वाले कितने व्यष्टि हैं यह भी माप का एक महत्वपूर्ण घटक है। इस बात को दर्शाने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। दो अलग-अलग वनों को लीजिए—वन I वन और II। प्रत्येक वन में कुल 100 वृक्ष हैं और पेड़ों की 5-5 (क, ख, ग, घ, च) जातियाँ हैं :

वन	क	ख	ग	घ	च	कुल
वन I	92	2	2	2	2	100
वन II	20	20	20	20	20	100

अगर आप वन I में किसी बेतरतीब जगह पहुँच जाएँ और बाद में वन II में भी किसी ऐसी ही जगह पहुँच जाएँ तो कौन-से वन में आपको यह अनुभव होगा कि उसमें वृक्षों की जातियों की विविधता ज्यादा है? निश्चित रूप से दूसरे वन को ही आप अधिक विविधतापूर्ण समझेंगे जबकि दोनों ही वनों की जातियों की संख्या और कुल वृक्षों की संख्या बिल्कुल एक जैसी है। इस तरह आपको पता चलता है कि जातियों की विविधता की संकल्पना बिना किसी अपवाद के उनकी वास्तविक संख्या की साधारणता और विरलता से भी जुड़ी हुई है जिसे पारिस्थितिकी वैज्ञानिक भी मानते हैं।

यह समझते हुए कि जातियों की मात्र संख्या ("जाति बहुलता" कहलाती है) एक अपर्याप्त माप है पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों ने मात्रात्मक सूचकांक विकसित किए हैं जिसमें जातियों की बहुलता और उनकी प्रचुरता दोनों घटक शामिल हैं। पारिस्थितिकी वैज्ञानिक जाति विविधता के जिन दो सूचकांकों को काम में लाते हैं वे–सिप्पसन सूचकांक और शनोनवाइनर सूचकांक हैं। जब किसी पारितंत्र पर प्राकृतिक या मानवनिर्मित कारणों से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तब तंत्र में कुछ सुग्राही जातियाँ समाप्त हो सकती हैं ("जाति बहुलता" घट जाती है) लेकिन बदली हुई परिस्थितियाँ एक या दो प्रतिरोधी जातियों के प्रचुर होने के लिए अनुकूल हो सकती हैं (सापेक्ष प्रचुरता परिवर्तन)। आपने कई प्रदूषित तालाबों में यह अवश्य देखा होगा कि प्रदूषण को सहने वाला जल हायासंथ (water hyacinth) प्रायः तालाब में अन्य सुग्राही जातियों की कीमत पर असाधारण प्रचुरता में बढ़ता है। दूसरी जातियाँ हायासंथ को जगह देने के लिए लुप्त हो जाती हैं।

3.8.2 विविधता–स्थायित्व संबंध

क्या जाति विविधता और समुदाय स्थायित्व एक-दूसरे से संबंधित हैं? क्या स्थायित्व विविधता को बढ़ावा देता है या विविधता समुदाय के स्थायित्व का कारण बनती है? यह प्रश्न एक लंबे समय से पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों और संरक्षणवादियों का ध्यान अपनी ओर खींच रहा है। मानव गतिविधियों के परिणामस्वरूप पृथ्वी पर अनेक पारितंत्रों के अस्तित्व के लिए उत्पन्न लगातार खतरे को देखते हुए प्रत्येक व्यक्ति जैव समुदाय (biological community) के स्थायित्व में योगदान देने वाले कारकों के बारे में जानना चाहेगा। आइए, अब हम पहले मूल प्रश्न का उत्तर देते हैं–"स्थायी समुदाय" का सही-सही अर्थ क्या है? अलग-अलग लोगों के लिए स्थायित्व का अर्थ अलग-अलग है। स्थायित्व की तीन संकल्पनाएँ मानी गई हैं:

i) जातियों की जनसंख्या घनत्व समय में काफी कुछ स्थिर रहती है यानि कि संख्याओं की स्थिरता (constancy of numbers)

ii) संपूर्ण समुदाय किसी प्रमुख बाधा को ध्यान में रखते हुए अपरिवर्तित रहता है या अव्यवस्था का प्रतिरोध होता है, और

iii) अगर समुदाय किसी बड़ी बाधा द्वारा विघटित हो जाता है तो उसमें जल्दी या देर से सामान्य अवस्था या साम्यावस्था में लौटने की क्षमता है।

उष्णकटिबंध में जाति विविधता की बहुलता को देखते हुए यह माना जाता है कि ये पारितंत्र स्थाई हैं और अभी तक पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों का विचार था कि समुदाय में विविधता स्थायित्व को बढ़ावा देती है।

लेकिन हाल ही में किए गए अनुसंधान ने इन धारणाओं को चुनौती दी है। अधिक जाति विविधता के बावजूद ऐसा नहीं है कि उष्णकटिबंधीय समुदाय शीतोष्ण समुदायों की तुलना में अधिक स्थायी है। उष्णकटिबंध के स्थायी और पूर्व अनुमानित पर्यावरण निश्चित रूप से जटिल पारितंत्रों के विकास को होने देते हैं और प्रत्येक पारितंत्र में अनेक घटक जातियाँ होती हैं लेकिन ऐसे तंत्र नाजुक रूप से संतुलित और कमजोर होंगे। दूसरी तरफ अस्थायी और अनुनमेय शीतोष्ण तंत्रों को संरचनात्मक रूप से एक सरल लेकिन मजबूत समुदाय चाहिए। आइए, हम एक मोटी-सी तुलना करते हैं–अगर कोई स्थल भू-विज्ञान की दृष्टि से काफी स्थायी है तो आप उस जगह एक बहुत लंबा-चौड़ा रहने का मकान बनाते समय चाहें तो मामूली-सी नींव रख सकते हैं और निर्माण सामग्री भी हल्की इस्तेमाल कर सकते हैं लेकिन ऐसी जगह जहाँ बार-बार भू-स्खलन होने या भूकंप आने की संभावना हो तो आप साधारण लेकिन मजबूत और टिकाऊ मकान बनाना चाहेंगे।

उष्णकटिबंधीय पारितंत्रों से संबद्ध लोगों के लिए ऊपर दिए गए नतीजे एक चेतावनी हैं। यह मानना कि उष्णकटिबंधीय पारितंत्र स्थायी होते हैं और वे मनुष्य द्वारा की गई कोई भी ज्यादती बरदाश्त कर लेंगे, गलत है। इसलिए किसी तरह की लापरवाही करना उचित नहीं है। मनुष्य की हानिकारी गतिविधियों के इन जटिल लेकिन बारीकी से संतुलित पारितंत्रों पर विनाशकारी परिणाम होंगे।

बोध प्रश्न 8

संक्षेप में समझाइए कि उष्णकटिबंधी पारितंत्र शीतोष्ण पारितंत्र से विविधता और स्थायित्व के संदर्भ में किस प्रकार भिन्न है।

3.9 सारांश

इस इकाई में आपने अध्ययन किया कि :

- पारितंत्र एक ऐसा तंत्र है जो अलग-अलग जीवों की किस्मों, पौधों और प्राणियों दोनों के एक-दूसरे और अपने-अपने भौतिक पर्यावरण से पारस्परिक क्रिया से बनता है। यह अपने जैव और अजैव घटकों के बारे में प्रतिपुष्ट जानकारी के आधार पर लगभग स्वतः नियमनकारी है।
- जीवमंडल पृथ्वी और वायुमंडल का वह प्रदेश है जहाँ जीवन तंत्र मौजूद है। जीवमंडल के भीतर भी अनेक विशिष्ट प्रकार के पारितंत्र वाले प्रमुख प्रदेश हैं। प्रमुख स्थलीय प्रदेशों को बायोम कहते हैं जिनका विशेष लक्षण उनकी प्रमुख वनस्पति है। जीवमंडल का दूसरा भाग जलीय प्रदेश है।
- पारितंत्र के अजैव घटकों में भौतिक कारक शामिल हैं जैसे—प्रकाश, तापमान, वर्षा, खनिज, पोषण और जल आदि।
- पारितंत्र के जैव घटकों में स्व-पोषी या उत्पादक और विषम-पोषी या उपभोक्ता तथा अपघटक शामिल हैं। ये जीव भिन्न-भिन्न पोषी स्तर वाले हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि जीव अपने पोषण स्तर में पौधे से कितनी दूर हो गया है।
- पारितंत्र में ऊर्जा का प्रवाह एकदिशीय प्रक्रिया है और जीवों का अनुक्रम जिससे ऊर्जा प्रवाहित होती है खाद्य शृंखला कहलाता है। अनेक परस्पर क्रियाशील खाद्य शृंखलाओं से खाद्य जाल बनता है जो पारितंत्र में खाद्य उपभोग के प्रतिरूप को दर्शाता है। हालाँकि ऊर्जा प्रवाह एकदिशीय है, पोषक पारितंत्र के भीतर ही क्रमशः लगातार चक्रित और पुनःचक्रित होता रहता है।
- अनापकर्षीय प्रदूषक आमतौर पर खाद्य शृंखला में हर पोषी स्तर पर जमा होते रहते हैं तथा जैव आवर्धन के द्वारा जीवमंडल में शुरू में डाली गई मात्रा की तुलना में खासकर उच्च पोषी स्तरों पर प्रदूषक घातक परिणाम धारण कर सकते हैं।
- जीवों की वृद्धि और उनकी उत्तरजीविता अंततः उस अनिवार्य संसाधन द्वारा सीमित हो जाती है जिसकी आपूर्ति जितनी होनी चाहिए उतनी न होकर सबसे कम होती है। यह संसाधन सीमाकारी कारक बन जाता है। किसी भी कारक की बहुत अधिक कमी या उसकी बहुत अधिक मात्रा भी जीवों के लिए हानिकारक है।
- पारितंत्र का एक महत्वपूर्ण लक्षण इसके अपने भीतर जीवों की विविधता है। जातियों की विविधता उष्णकटिबंध में अधिकतम है जो ध्रुवों की तरफ उत्तरोत्तर कम होती जाती है। दबाव में चाहे वह प्राकृतिक या मानव-निर्मित हो, जाति विविधता घट जाती है। अधिकाधिक विविधता पारितंत्र की कुशलता दर्शाती है।

3.10 अंत में कुछ प्रश्न

1) कल्पना कीजिए कि हमारे पास पानी से भरे तीन जार क, ख और ग हैं जो तीन पारितंत्रों को दर्शाते हैं। क में शैवाल, ख में सिर्फ घोंघे और ग में शैवाल और घोंघे दोनों हैं। इनके लिए ऊर्जा का स्रोत रोशनी है। कुछ समय बाद यह देखने में आता है कि जार क की शैवाल और जार ख के घोंघे मरने लगते हैं, जबकि जार ग के शैवाल

और घोंघों में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता। पारितंत्र की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए इसके कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) नीचे दिए गए कथनों में से कौन-सा कथन पारितंत्र को सबसे अच्छी तरह समझता है? कोष्ठक में सही कथन के सामने (✓) का निशान लगाइए :

क) पारितंत्र जैव और अजैव पर्यावरणों सहित भू-दृश्य की एक परिभाषित इकाई है। ( )

ख) पारितंत्र एक निश्चित जीवनतंत्र वाले भू-दृश्य की पारिभाषित इकाई है। ( )

ग) पारितंत्र एक स्थायी जीवनतंत्र वाले भू-दृश्य की एक परिभाषित इकाई है। ( )

घ) पारितंत्र एक स्थिर जीवनतंत्र वाले भू-दृश्य की एक परिभाषित इकाई है। ( )

3) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर चार या पाँच पंक्तियों में लिखिए।

क) सीमाकारी कारक

ख) खाद्य जाल

ग) पोषी स्तर

घ) जैव आवर्धन

क) .....

.....

.....

.....

.....

ख) .....

.....

.....

.....

.....

ग) .....

.....

.....

.....

.....

घ) .....

.....

.....

3.11 उत्तर

बोध प्रश्न

1) स्थलमंडल, जलमंडल, वायुमंडल, जीवमंडल, प्रकाश-संश्लेषण, हरे, बैंगनी जीवाणु (बैक्टीरिया)।

2) क) गलत ख) गलत ग) गलत घ) सही

3) क) असत्य ख) सत्य ग) सत्य घ) सत्य
च) असत्य छ) असत्य ज) असत्य

4) i) संख्या का पिरैमिड ii) ऊर्जा का पिरैमिड
iii) खाद्य शृंखला iv) खाद्य जाल

5) 'वृक्षरेखा' से ऊपर पहाड़ों पर अत्यधिक कम पौधे होते हैं। यहाँ निम्न तापमान और तेज गति से चलने वाली हवाएँ सीमाकारी कारक हैं। किसी भी स्थान का तापमान वहाँ के प्राणियों और वनस्पति के वितरण को निर्धारित करता है। बहुत तेज गति से चलने वाली हवाएँ ऊँचे पेड़ों को उगने ही नहीं देती हैं।

6) टुंड्रा में अपघटन की दर बहुत कम होती है इसलिए पोषक उस दर से मृदा में वापस नहीं लौट पाते जिस दर से वे ग्रहण करे जाते हैं और इसीलिए वहाँ की मृदा उपजाऊ नहीं होती।

शीतोष्ण क्षेत्रों में अपघटन की दर संतुलित रहती है इसलिए वहाँ की भूमि कृषि के लिए उत्तम है। उष्णकटिबंधी क्षेत्र की भूमि सबसे अधिक उपजाऊ होती है क्योंकि वहाँ अपघटन की दर सबसे तेज होती है और पोषकों का चक्रण तेज दर से होता है इसलिए मृदा में कार्बीनिक पदार्थ कम पाए जाते हैं।

7) अलवणीय जल और समुद्री पारितंत्र अंतर:

अलवणीय जल	समुद्री जल
1) सोडियम क्लोराइड का कम या निम्न प्रतिशत	1) सोडियम क्लोराइड का उच्च प्रतिशत–27 प्रतिशत तक।
2) पोषक स्तर पानी के निचले क्षेत्र की ओर बढ़ते हैं क्योंकि वहाँ पोषक लगातार जमा होते रहते हैं	2) पोषक स्तर कम है।
3) प्रमुख क्षेत्र हैं: वेलाँचली, सरोवरी और गहन गंभीर	3) प्रमुख प्रदेश हैं: वेलाँचली, नेरिटाँचली, वेलापवर्ती और नितलस्थ।
4) लहरें और ज्वारभाटा इस पारितंत्र में अनुपस्थित हैं।	4) लहरों और ज्वार भाटों का इस पारितंत्र पर प्रभाव पड़ता है।

8) शीतोष्ण कटिबंधी पारितंत्रों की अपेक्षा उष्णकटिबंधी पारितंत्रों में वनस्पतिजात और प्राणिजात की अधिकाधिक विविधता पाई जाती है। यह अधिक जाति विविधता उष्णकटिबंधी पारितंत्र को अधिक जटिल तो बनाती है, परंतु यह आवश्यक नहीं है कि इससे यह अधिक स्थायी बने। आमतौर पर उष्णकटिबंधी पारितंत्र जटिल लेकिन कमज़ोर होते हैं, जबकि शीतोष्ण कटिबंधी पारितंत्र सरल लेकिन मज़बूत होते हैं।

अंत में कुछ प्रश्न

1) जार क में सिर्फ शैवाल उपस्थित हैं, जो जल्दी ही सभी पोषकों को काम में ले लेगी और तंत्र कार्य नहीं करेगा। जार ख में सिर्फ घोंघे हैं, वे भी मर जाएँगे क्योंकि पानी में जितनी ऑक्सीज़न है वे उसका उपयोग कर लेंगे और पोषक आहार न मिलने के कारण मर जाएँगे। लेकिन जार ग में उत्पादक और उपभोक्ता दोनों हैं तथा शैवाल प्रकाश-संश्लेषण के उप-उत्पाद के रूप में ऑक्सीज़न पैदा करेंगे। पारितंत्र स्थायी होगा।

2) क)

3) इकाई में भाग 3.3 और 3.5 को देखिए।

इकाई 4 पर्यावरण के अजैव और जैव घटक

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
4.2 पारितंत्र में ऊर्जा
ऊर्जा प्रवाह को नियंत्रित करने वाले नियम
ऊर्जा प्रवाह
4.3 पारितंत्र में पदार्थ
कार्बन चक्र
नाइट्रोजन चक्र
जल चक्र
अवसादी चक्र
4.4 आंतरजातीय संबंध
असीमित संसाधन में जनसंख्या वृद्धि
सीमित संसाधन में जनसंख्या वृद्धि
4.5 अंतराजातीय संबंध
प्रतिस्पर्धा
निकेत
परजीविता
परभक्षण
4.6 मानव और अन्य जैव घटकों के बीच परस्पर संबंध
4.7 सारांश
4.8 अंत में कुछ प्रश्न
4.9 उत्तर

4.1 प्रस्तावना

इस खंड की पिछली इकाइयों में आपने पर्यावरण के भौतिक स्वरूप और पारितंत्रों के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन किया है। किसी पारितंत्र की कार्य-प्रणाली समझने के लिए पर्यावरण के विभिन्न जैव और अजैव घटकों की प्रकृति और उनकी भूमिका के बारे में जानना आवश्यक है। यदि हम वन, घास-स्थल, तालाब अथवा मरुस्थल जैसे किसी एक विशेष पारितंत्र का गहराई से अध्ययन करें तो हमें पता चलता है कि इसमें रहने वाला कोई भी जीव अलग-थलग जीवित नहीं रह सकता। अपितु, पर्यावरण में प्रत्येक जीव अन्य जीवों और अजीवित घटकों के साथ अनेक संबंध स्थापित किए रहता है। इन परस्पर संबंधों के दो परिणाम होते हैं :

- ऊर्जा का प्रवाह; और
- पोषक द्रव्यों का परिचक्रण

पारितंत्र में ऊर्जा परिपथ सौर ऊर्जा से प्रारंभ होता है। सौर ऊर्जा का हरे पौधों द्वारा अवशोषण होता है और इनके द्वारा इस ऊर्जा का यौगिकरण होता है। विभिन्न पोषी स्तरों के जरिए इसका प्रवाह और अंतरिक्ष में ऊष्मा के रूप में इसका अंतिम ह्रास ऊष्मागति-विज्ञान के दो नियमों के अनुसार होता है। ऊर्जा का प्रवाह और इसको नियंत्रित करने वाले नियमों के अध्ययन से पारितंत्र की कार्य-प्रणाली में ऊर्जा की मुख्य भूमिका को समझने में सहायता मिलेगी।

द्रव्य चक्र, जिसे **जैव-भूरासायनिक चक्र** कहते हैं, व्याख्या करते हैं कि किस प्रकार कुछ मूल तत्व जैविक तंत्रों में प्रवेश करते हैं और जीवों की मृत्यु और क्षय होने के पश्चात् किस प्रकार मृदा तथा वायुमंडल में वापस आ जाते हैं। पारितंत्र की कार्य-प्रणाली ऊर्जा के प्रवाह और द्रव्यों के चक्रण पर निर्भर करती है, जो तंत्र का स्थायित्व और जीवन की निरन्तरता को सुनिश्चित करते हैं। इन दोनों पारिस्थितिकीय प्रक्रमों को पारितंत्र कार्य-प्रणाली का 'केन्द्र' कहा जा सकता है।

पारितंत्र कार्य-प्रणाली अजैव और जैव घटकों के बीच पारस्परिक क्रिया का परिणाम है। इसके अतिरिक्त, किसी पारितंत्र के विभिन्न जैव घटकों के बीच पारस्परिक क्रिया इसके विकास और स्थायित्व को प्रभावित करती है। इस इकाई में हम एक ही जाति के जीवों के बीच संबंध, जिसे आंतरजातीय संबंध कहते हैं और भिन्न-भिन्न जातियों के बीच संबंध जिसे अंतराजातीय संबंध कहते हैं, का गहराई से अध्ययन करेंगे। यह संबंध एक-दूसरे के लिए लाभप्रद या हानिकारक हो सकता है। समष्टि और समुदाय स्तर पर इन परस्पर संबंधों के अध्ययन से यह मालूम होगा कि "सभी जीवित अवयवों की परस्पर निर्भरता" पारितंत्र के स्थायित्व का सार है।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- ऊर्जा और द्रव्य किसी पारितंत्र के सर्वप्रमुख अवयव हैं—इस संकल्पना का कारण बता सकेंगे, ऊर्जा की परिभाषा दे सकेंगे और ऊष्मागति-विज्ञान के नियम बता सकेंगे;
- विभिन्न जैव-भूरासायनिक चक्रों का वर्णन कर सकेंगे और जैव-भूरासायनिक चक्रों में सूक्ष्म-जीवों की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे;
- निकेत और आवास की परिभाषा दे सकेंगे;
- जनसंख्या-वृद्धि को नियंत्रित करने वाले कारकों की सूची बना सकेंगे और उनकी व्याख्या कर सकेंगे;
- वहन-क्षमता की संकल्पना की परिभाषा दे सकेंगे, उसकी व्याख्या और उसके उपयोग बता सकेंगे; और
- आंतरजातीय और अंतराजातीय संबंधों के बीच अंतर बता सकेंगे तथा यह भी व्याख्या कर सकेंगे कि किस प्रकार वे जनसंख्या को नियंत्रित करते हैं।

4.2 पारितंत्र में ऊर्जा

आप भली-भाँति जानते हैं कि जीवन की सभी गतिविधियों के लिए आवश्यक ऊर्जा, सौर ऊर्जा से प्राप्त होती है। प्रकाश संश्लेशण के दौरान यह हरे पौधों द्वारा अवशोषित की जाती है। इस प्रकार आबद्ध रासायनिक ऊर्जा उत्पादकों से उपभोक्ताओं को प्राप्त होती है। श्वसन में, इस आबद्ध ऊर्जा का कुछ भाग जीवों की वृद्धि और विकास के लिए उपयोग में लाया जाता है। यद्यपि इसका बड़ा भाग ऊष्मा के रूप में कई चरणों में व्यर्थ चला जाता है, जिसका उपयोग दुबारा नहीं किया जा सकता है। सूर्य से विभिन्न जीवों से गुजरते हुए बाहरी अंतरिक्ष में ऊर्जा का यह सतत् निक्षेप पृथ्वी पर जीवन बनाए रखता है।

ऊर्जा के परिग्रहण और प्रवाह में पोषक द्रव्यों का परिसंचरण होता है। द्रव्यों में कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीज़न और नाइट्रोजन जैसे मूल अकार्बनिक तत्व शामिल हैं। इसके अतिरिक्त सोडियम, कैल्शियम और पौटेशियम तत्व भी कम मात्रा में शामिल हैं। इन तत्वों के अतिरिक्त जल, कार्बोनेट, फॉस्फेट और कुछ अन्य यौगिक भी जीवों के एक भाग हैं। किसी पारितंत्र को चलाने के लिए यह आवश्यक है कि इन पदार्थों का निरंतर प्रवाह बना रहे। अतः इन द्रव्यों का चक्र बना रहता है। वे जैविक तंत्र में प्रवेश करते हैं और जीवों की मृत्यु तथा अपघटन के पश्चात् मृदा और वायुमंडल में वापस आ जाते हैं।

4.2.1 ऊर्जा के प्रवाह को नियंत्रित करने वाले नियम

आप "ऊर्जा" शब्द से भली-भाँति परिचित हैं और इसका प्रयोग आम अर्थों में करते हैं। इसका आम अर्थ परिशुद्ध वैज्ञानिक परिभाषा से भिन्न होता है। अतः इसकी परिशुद्ध परिभाषा देना आवश्यक है।

कार्य करने की क्षमता को ऊर्जा कहते हैं। भोजन पकाने के लिए हम ऊर्जा का प्रयोग करते हैं। अपना पाँव ऊपर उठाने के लिए हमें ऊर्जा की आवश्यकता होती है। डीज़ल तेल के दहन से ऊर्जा प्राप्त होने पर ट्रक किसी पहाड़ी पर चढ़ता है और बिजली का बल्ब विद्युत

ऊर्जा मिलने पर जलने लगता है (चित्र 4.1)। तीसरी दुनियाँ के विकासशील देशों को लगातार ऊर्जा की कमी का सामना करना पड़ रहा है और आज के युग में ऊर्जा और समृद्धि एक-दूसरे के पूरक हैं।

लकड़ी काटना-यान्त्रिक ऊर्जा

लकड़ी जलाना-रासायनिक ऊर्जा -जो रोशनी और उष्मा के रूप में निकलती हैं

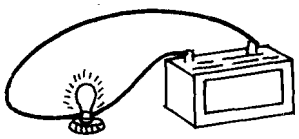

जलता हुआ बल्ब -विद्युत ऊर्जा

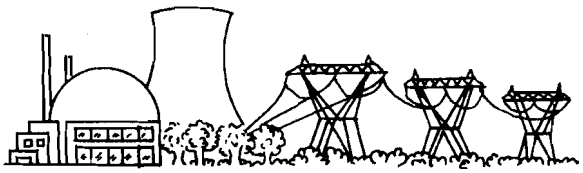

कुछ विशेष परमाणु के नाभिकों से विद्युत उत्पादन

चित्र 4.1 : ऊर्जा के रूप

K केल्विन के लिए व्यक्त किया जाता है, जो तापमान का मात्रक है। यदि t^0C में तापमान है तब K में संगत तापमान T होगा
$T = t + 273$

सूर्य हमारे सभी प्रकार के ऊर्जा रूपों का आधारभूत स्रोत है जो हमारे पारितंत्र के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता है। सूर्य के आंतरिक भाग में लगभग 10^8 K के तापमान पर ताप-नाभकीय अभिक्रिया लगातार चलती रहती है जहाँ हाइड्रोजन हीलियम में रूपांतरित होता रहता है। रूपांतरण के साथ ऊर्जा की विशाल मात्रा भी मुक्त होती है, जो ऊष्मा और प्रकाश के रूप में मिलती है।

कृत्रिम उपग्रहों से लिए गए प्रेक्षणों से पता चलता है कि हमारे वायुमंडल में प्रविष्ट होने वाला कुल सौर विकिरण का लगभग 30 प्रतिशत भाग पृथ्वी के वायुमंडल द्वारा परावर्तित (reflected) हो जाता है। विकिरण का शेष 70 प्रतिशत भाग पृथ्वी के वायुमंडल द्वारा अवशोषित हो जाता है। इसका 19 प्रतिशत भाग सीधे ही वायुमंडल द्वारा अवशोषित हो जाता है और शेष पृथ्वी के पृष्ठ द्वारा। सौर विकिरण के नीले और लाल अवव्यव (क्रमशः 400-500 nm और 600-700 nm पट्टियाँ) वनस्पति में उपस्थित हरे वर्णक, क्लोरोफिल द्वारा अवशोषित हो जाती हैं और रासायनिक ऊर्जा में रूपांतरित हो जाती हैं। इस प्रकार, पारितंत्र अपने क्रियाकलापों के लिए आवश्यक ऊर्जा परिग्रहण करता है।

स्वपोषियों (autotrophs) द्वारा ग्रहण की गई ऊर्जा कभी भी सूर्य को वापस नहीं मिलती। इसी प्रकार, ऊर्जा जो शाकाहारियों तक पहुँच जाती है, वह स्वपोषियों को वापस नहीं मिलती। **अतः, सौर ऊर्जा का प्रवाह एकदिशीय है।** इसका सीधा मतलब यह होगा कि यदि सूर्य ऊर्जा देना बंद कर दे तो पारितंत्र समाप्त हो जाएगा।

दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रत्येक पोषी स्तर पर ऊर्जा का अंश अविलम्ब घटता जाता है। हम देखते हैं कि परिग्रहण की गई सौर ऊर्जा उपापचयी (metabolic) क्रियाओं में लग जाती है और श्वसन के रूप में मापी जाती है।

किसी पारितंत्र में ऊर्जा एक व्यवस्थित क्रम से अवतरित होती है। हमने पहले बताया है कि ऊर्जा का प्रवाह सदैव एकदिशीय होता है। घटनाओं के क्रम में कुछ लाभदायक ऊर्जा का ऊष्मा के रूप में ह्रास हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों के लिए दो वर्णनात्मक भौतिक नियम लागू होते हैं। ये ऊष्मागति-विज्ञान के पहले और दूसरे नियम कहलाते हैं :

ऊष्मागति-विज्ञान का पहला नियम द्रव्य और ऊर्जा के संरक्षण से संबंधित है और इसके अनुसार ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है। ऊर्जा केवल एक रूप से दूसरे रूप में बदली जा सकती है। उदाहरण के लिए, दृश्य प्रकाश की ऊर्जा प्रकाश संश्लेषण के जरिए हरे पौधों द्वारा अवशोषित हो जाती है। यह ग्लुकोज़ अणुओं में भंडारित रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। पौधों सहित लगभग सभी जीव श्वसन द्वारा ग्लुकोज़ का उपभोग करते हैं और अपनी उपापचयी क्रियाओं के लिए भंडारित रासायनिक ऊर्जा का उपयोग करते हैं। कुछ ऊर्जा का ऊष्मा के रूप में क्षय हो जाता है। ऊष्मा, ऊर्जा का एक अन्य रूप है।

ऊष्मागति-विज्ञान का दूसरा नियम बताता है कि प्रत्येक ऊर्जा रूपांतरण के दौरान कुछ लाभदायक ऊर्जा बेकार ऊष्मा में बदल जाती है जिसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। यह ऊष्मा ऊर्जा अपने आसपास के पर्यावरण में परिक्षिप्त हो जाती है। इसी को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि ऊष्मा के प्रत्येक रूपातंरण में, कुछ ऊर्जा सदैव ऊष्मा के रूप में नष्ट हो जाती है, जो आगे लाभप्रद कार्य करने के लिए उपलब्ध नहीं होती (चित्र 4.2)। उदाहरण के लिए, यदि हमें किसी वस्तु को फर्श पर ढकेलना है, ढकेलने के लिए किए जा रहे काम का कुछ भाग घर्षण के कारण उत्पन्न ऊष्मा ऊर्जा के रूप में नष्ट हो जाती है।

अधिकांश आधुनिक समाज आंतरिक दहन इंजन और तापदीप्त (incandescent) प्रकाश पर निर्भर है, जो अपनी प्रारंभिक निवेशित ऊर्जा का क्रमशः 90% और 95% भाग व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। तेल व अन्य अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के दामों में बढ़ोत्तरी और उनके अभाव के कारण ऐसी अनावश्यक ऊर्जा हानियों को कम करना अत्यंत आवश्यक है।

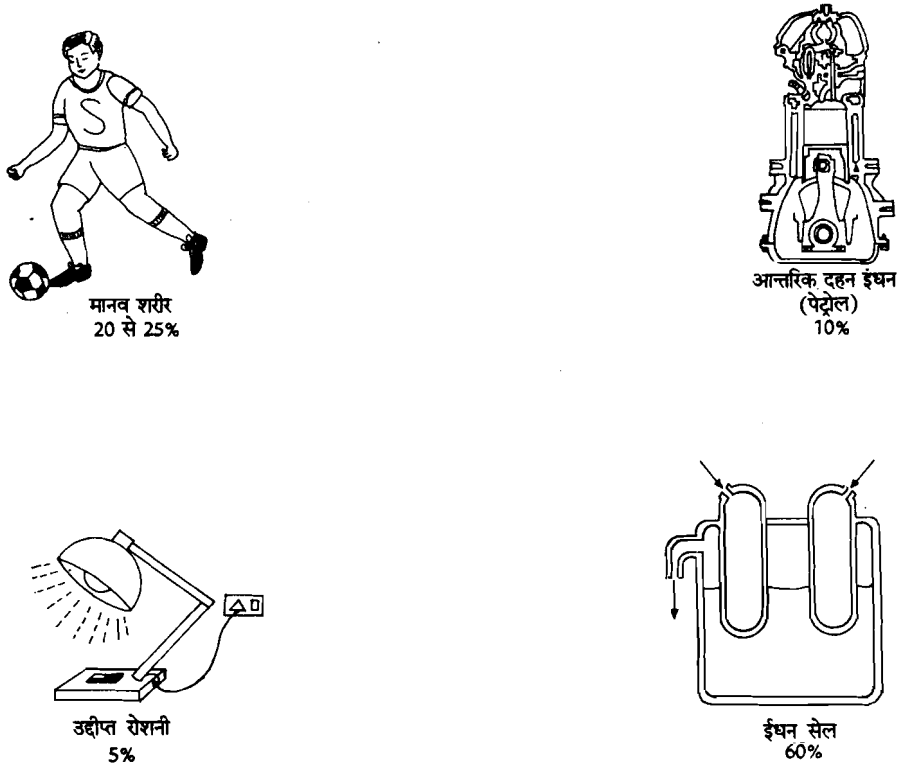

चित्र 4.2 : कुछ सामान्य ऊर्जा रूपांतरण युक्तियों की ऊर्जा दक्षता

इसी प्रकार, जब शरीर में एकत्रित ऊर्जा का प्रयोग किसी काम के करने में किया जाता है, तब कुछ लाभप्रद ऊर्जा शारीरिक ऊष्मा के रूप में नष्ट हो जाती है। दूसरे शब्दों में, भौतिक के साथ ही साथ जैविक जगत में उर्जा की प्राकृतिक प्रवृति अनिवार्यतः व्यवस्थित रूप से चारों ओर फैलने की, यानि कि परिक्षिप्त या अव्यवस्थित होने की होती है। किसी ज्ञात तंत्र में होने वाली अव्यवस्था की कोटि मापी जा सकती है और गणितीय ढंग से **एंट्रापी** के रूप में अभिव्यक्त की जाती है। वास्तव में, पूरा का पूरा ब्रह्मांड अधिकतम एंट्रापी की अवस्था की ओर अग्रसर है। कार्य करते रहने के लिए यह आवश्यक है कि पारितंत्र में जीवों को ऊर्जा के नए निवेश प्राप्त होते रहें।

4.2.2 ऊर्जा प्रवाह

एक कैलोरी (calorie) ऊष्मा की वह मात्रा है जो एक मि.लि. जल का तापमान एक डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ाने के लिए आवश्यक होती है। एक किलो कैलोरी (k cal = 1000 cal.)

पारितंत्र के माध्यम से ऊर्जा का प्रवाह एक मौलिक प्रक्रिया है, जिसका सरलतापूर्वक मान निर्धारित किया जा सकता है यदि पारितंत्र में ऊर्जा निवेश और तदुपरांत एक पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर तक के रूपांतरणों में परिक्षिप्त होने वाली ऊर्जा की मात्रा कैलोरी इकाइयों में ज्ञात हो।

पारितंत्र संबंधी ऊर्जा विज्ञान के अध्ययन से व्यष्टि, समष्टि और सकल पारितंत्र स्तर पर ऊर्जा बजट बनाने के लिए सुदृढ़ आधार मिल जाता है। हमें किसी पारितंत्र में विभिन्न पोषी स्तरों की दक्षता का मूल्यांकन करने के लिए और ऊर्जा प्रवाह का निर्धारण करके विविध पारितंत्रों की तुलना करने के लिए वैज्ञानिक आधार मिल जाता है।

ऊर्जा प्रवाह के प्रथम चरण पर ऊर्जा की मात्रा मापना सबसे सरल है इसलिए प्राथमिक उत्पादकता मापने के लिए अनेक अध्ययन किए गए हैं। आगम सौर ऊर्जा का अनुमापन शुद्ध विकिरणमापी (नेट रेडियोमीटर) जैसे तंत्र की सहायता से किया जाता है, जो कुल विकीर्णित ऊर्जा मापता है या सौर विकिरणमापी (पायरैनोमीटर/सोलेरीमीटर) यंत्र की सहायता से जो सम्पूर्ण दृश्य प्रकाश ऊर्जा मापता है। जलीय पारितंत्रों में प्राथमिक उत्पादन जल में पायी जाने वाली घुली ऑक्सीजन या कार्बन डाइऑक्साइड की मात्राओं के रूपांतरण का अनुसरण करके मापा जा सकता है।

उच्च पोषी स्तरों, जो ऊर्जा प्रवाह के दूसरे चरण में आते हैं, पर ऊर्जा की मात्रा को मापने के लिए प्रत्येक पोषी स्तर में प्रत्येक जाति के लिए ऊर्जा की मात्रा का निर्धारण किया जाता है और फिर इन विशिष्ट संख्याओं को जोड़कर प्रत्येक पोषी स्तर के समग्र ऊर्जा प्रवाह का मानांकन किया जाता है। यह एक बड़ा कार्य है। इस कारण अनुमापन को प्रायः समुदाय में प्राणियों की एक ही जाति के ऊर्जा बजट के अध्ययन तक ही सीमित रखा जाता है। एक ही जाति के कुछ प्राणियों की जैवसंहिता उनके भोजन अंतर्ग्रहण, मल उत्सर्जन और श्वसन को मापा जाता है और उनके स्वांगीकरण (assimilation) और उत्पादन दरों की गणना की जाती है।

प्राकृतिक पारितंत्र में मनुष्य का हस्तक्षेप बहुत अधिक बढ़ता जा रहा है। शहरी, औद्योगिक और ग्रामीण समुदायों द्वारा जीवाश्म (fossil) ईंधन का काफी अधिक मात्रा में प्रयोग किए जाने के कारण ऊर्जा प्रवाह की मात्रा और उसके स्वरूप पर मानवीय प्रादुर्भाव में काफी परिवर्तन आ गया है।

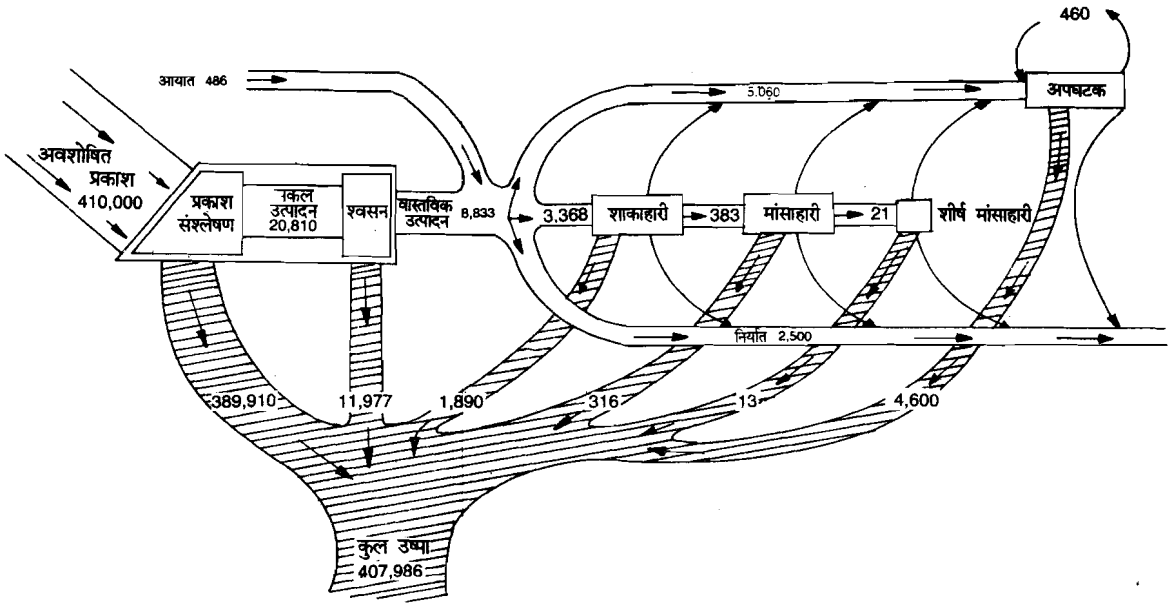

चित्र 4.3 : सिल्वर स्प्रिंग्स, फ्लोरिडा के लिए ऊर्जा प्रवाह आरेख। सभी अंक प्रति मीटर प्रति वर्ष निवेशित अथवा अपसर्जित ऊर्जा की मात्रा किलो कैलोरी के रूप में व्यक्त किए गए हैं (ओडम के आधार पर)।

हमें चित्र 4.3 में दिखाए गए ऊर्जा प्रवाह आरेख को समझने का प्रयास करना चाहिए। इससे सिल्वर स्प्रिंग्स, (फ्लोरिडा) के विख्यात पारिस्थितिकी वैज्ञानिक ओडम (1957) द्वारा किए गए ऊर्जा प्रवाह अध्ययनों के प्रतिरूप को अच्छी प्रकार समझा जा सकता है।

अधिकांश ऊर्जा निवेश सौर विकिरण के रूप में हैं। तंत्र से अपसर्जित (ह्रासित) हुई अपशिष्ट ऊष्मा का बहिर्वेश निरूपित करती है। यहाँ देखा गया है कि कुल ऊर्जा निवेश 410486 किलो कैलोरी/मीटर^2/वर्ष है (सौर ऊर्जा का 410,000 किलो कैलोरी/मीटर^2/वर्ष और 486 किलो कैलोरी/मीटर^2/वर्ष तंत्र में आयातित कार्बनिक पदार्थ के रूप में)। यह ऊर्जा के बहिर्वेश के बराबर बैठता है। 407986 किलो कैलोरी/मीटर^2/वर्ष ऊर्जा अपशिष्ट ऊष्मा के रूप में नष्ट हो जाती है और 2500 किलो कैलोरी/मीटर^2/वर्ष ऊर्जा कार्बनिक पदार्थ के रूप में तंत्र से बाहर निकल जाती है। पारिस्थितिक ऊर्जा-विज्ञान के दृष्टिकोण से सिल्वर स्प्रिंग, फ्लोरिडा एक संतुलित पारितंत्र निरूपित करता है। अत: पारितंत्र में ऊर्जा स्वतंत्र सौर ऊर्जा के रूप में प्रवेश करती है और ऊष्मा के रूप में यहाँ से निकल जाती है, जिसके बीच इसकी अवस्था संकेन्द्रित (concentrate) से परिक्षित (dispersed) अवस्था में बदल जाती है। पारितंत्र की कार्य-प्रणाली और इसके विवेकपूर्ण प्रबंध को समझने के लिए ऊर्जा प्रवाह के अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण हैं।

बोध प्रश्न 1

क) उपयुक्त शब्द से निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) ..... के रूप में आबद्ध ऊर्जा ..... के जरिए ..... स्वपोषियों से माँसाहारियों को प्राप्त होती है।

ii) ..... को जो ऊर्जा प्राप्त होती है, वह ..... को वापस नहीं मिलती।

iii) ..... हानि और साथ ही साथ ..... ऊर्जा के फलस्वरूप प्रत्येक पोषी स्तर पर ऊर्जा में बड़ी तेजी के साथ कमी होती रहती है।

iv) ..... प्रवाह एकमार्गी यातायात है और श्वसन हानि के फलस्वरूप प्रत्येक ..... स्तर पर ऊर्जा कम होती जाती है।

ख) कॉलम **क** में दिए कथनों का कॉलम **ख** में दिए शब्दों से मेल मिलाइए :

क	**ख**
i) ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है।	क) एंट्रापी
ii) किसी भी ऊष्मा स्थानांतरण में कुछ ऊर्जा कम लाभदायक ऊर्जा के रूप में निकलती है।	ख) उष्मागति-विज्ञान का पहला नियम
iii) ऊर्जा की प्रवृत्ति सांद्र और व्यवस्थित रूप से परिक्षिप्त और अव्यवस्थित रूप की ओर प्रवाहित होने की होती है।	ग) ऊष्मागति-विज्ञान का दूसरा नियम

4.3 पारितंत्र में पदार्थ

हमारे शरीर का 97 प्रतिशत द्रव्यमान और सभी जीवों का 95 प्रतिशत से अधिक द्रव्यमान कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस तत्वों और इनके यौगिकों से मिलकर बना है। इन पाँच तत्वों के अतिरिक्त, पौधों और जानवरों के जीवित रहने और अच्छे स्वास्थ्य के लिए 15 से 25 अन्य तत्वों की किसी न किसी रूप में आवश्यकता होती है। हालाँकि, इनकी अपेक्षाकृत कम या अति अल्प मात्रा में आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए–कोशिकाओं (cells) में ऊर्जा के रूपांतरण के लिए फॉस्फोरस, कोशिकाओं की दीवारों को दृढ़ता प्रदान करने के लिए कैल्शियम, विकास के लिए पोटेशियम, कुछ एंजाइमों की क्रियाशीलता के लिए आयरन, मॉलीब्डडनम और ताँबा इत्यादि अनिवार्य है। पारितंत्र में यह तत्व उत्पादक द्वारा ग्रहण किए जाते हैं और जैव भार (biomass) में रूपांतरित हो जाते हैं। फिर इनका उपभोक्ताओं के विभिन्न स्तरों द्वारा उपभोग किया

जाता है और अंत में अपघटनकारी जीवों की सहायता से मृदा और वायुमंडल मे वापस लौट आते हैं। जैव-भूरासायनिक चक्रों में वायु, जल, मृदा, पौधों और जीवों के जरिए तत्वों का रूपांतरण एवं परिसंचरण होता है।

जैव-भूरासायनिक चक्र दो मूल वर्गों के अंतर्गत आते हैं :

i) गैसीय किस्म, जहाँ भंडार वायुमंडल अथवा जलमंडल होता है; और

ii) अवसादी किस्म, जहाँ भंडार पृथ्वी की पर्पटी होती है।

अब कुछ महत्वपूर्ण जैव-भूरासायनिक चक्रों की चर्चा करेंगे।

4.3.1 कार्बन चक्र

वायुमंडल में कार्बन मुख्य तौर पर कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) के रूप में विद्यमान है। ऑक्सीज़न (20.95 प्रतिशत) और नाइट्रोजन (78.804 प्रतिशत) की तुलना में यह वायुमंडल का एक गौण अंश (0.032 प्रतिशत) है हालाँकि कार्बन डाइऑक्साइड के बिना जीवन संभव नहीं है, क्योंकि पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण के जरिए कार्बोहाइड्रेटों के उत्पादन के लिए यह महत्वपूर्ण है।

कार्बन चक्र के बारे में आप विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम खंड 4, इकाई 14 में पहले ही पढ़ चुके हैं। कार्बन चक्र मुख्यत: एक पूर्ण चक्र है, क्योंकि पर्यावरण में कार्बन उतनी ही तेजी से वापस आ जाता है जितनी तेजी से यह इससे निकलता है। चित्र 4.4 में भूमंडलीय कार्बन चक्र प्रदर्शित किया गया है। वायुमंडलीय भंडार से कार्बन हरे पौधों तक कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में पहुँच जाता है और फिर उनसे जानवरों तक चारे के रूप में और अंत में, उनसे माँसाहारी जीवों तक माँस के रूप में और इसी प्रकार जीवाणु (bacteria), कवक (fungi) से होते हुए सूक्ष्म जीवों तक जो इसे मृतक के शरीर में पाए जाने वाले कार्बनिक अंशों के अपघटन के जरिए वायुमंडल में वापस लौटा देते हैं। कुछ मृत पौधे और जानवर पूर्णत: अपघटित होने से पहले ही मृदा के नीचे दफन हो जाते हैं। यह प्रक्रम कभी कम और कभी अधिक, लाखों वर्षों से चला आ रहा है। कार्बनी कल्प (carboniferous period) में यह एक महत्वपूर्ण चरण था और पौधे एवं जानवरों के अधिकांश अवशेष कोयले, तेल और प्राकृतिक गैस के रूप में एकत्रित होते चले गए। जब इन जीवाश्म ईंधन को आज जलाया जाता है तब भंडारित कार्बन वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में प्रवेश कर अपने मूल रूप में आ जाता है। कार्बन के उपभोग के सीमित रास्ते हैं और वायुमंडल में इसको वापस लाने के रास्ते कहीं अधिक हैं। इन विभिन्न तरीकों से मिलकर एक **स्वनियंत्रित पुनर्भरण क्रिया-विधि** (self-regulating feed-back mechanism) बनती है, जिसके परिणामस्वरूप एक समस्थैतिक तंत्र (homeostatic system) बना रहता है। आहार-शृंखला में विभिन्न पोषी स्तरों पर श्वसन के जरिए भी कुल कार्बन के कुछ अंश वायुमंडल में सीधे ही वापस लौट आते हैं।

यह अनुमान है कि आबद्ध कार्बन का आधा भाग अंततः अपघटित हो रहे कार्बन पदार्थ के रूप में मृदा में वापस आ जाता है। औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ से पहले वायुमंडल महाद्वीपों और सागरों के बीच कार्बन का प्रवाह संतुलित था, लेकिन औद्योगीकरण और शहरी विकास के कारण यह साम्यावस्था बिगड़ गई।

आज कार्बन के सबसे समृद्ध स्रोत महासागर हैं, जहाँ यह कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट आयन के रूप में मौजूद होता है। महासागरों में वायुमंडल की अपेक्षा 50 गुना कार्बन डाइऑक्साइड होती है। प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में अंतर्ग्रहण के बावजूद यह वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड को 0.032 प्रतिशत स्तर पर रखता है।

अत: एक ओर तो वायुमंडल और जीवों के बीच और दूसरी ओर वायुमंडल तथा समुद्र के बीच कार्बन डाइऑक्साइड का लगातार आदान-प्रदान चलता रहता है। फिर भी कह सकते हैं कि घुली हुई कार्बन डाइऑक्साइड का अधिकांश भाग समुद्र में ताप-प्रवण स्तर के नीचे रहता है और इसलिए वायुमंडल की पहुँच के बाहर (अगम्य) होता है। ताप-प्रवण स्तर समुद्री जल की वह परत है जहाँ तापमान यकायक गिर जाता है। यह ऊपरी उष्ण परत को गहरे ठंडे जल से अलग करता है। अत: समुद्री स्रोतों से वायुमंडल को मिलने वाला कार्बन डाइऑक्साइड का अंश समुद्रों की ऊपरी सतहों के योगदान तक ही सीमित रहता है।

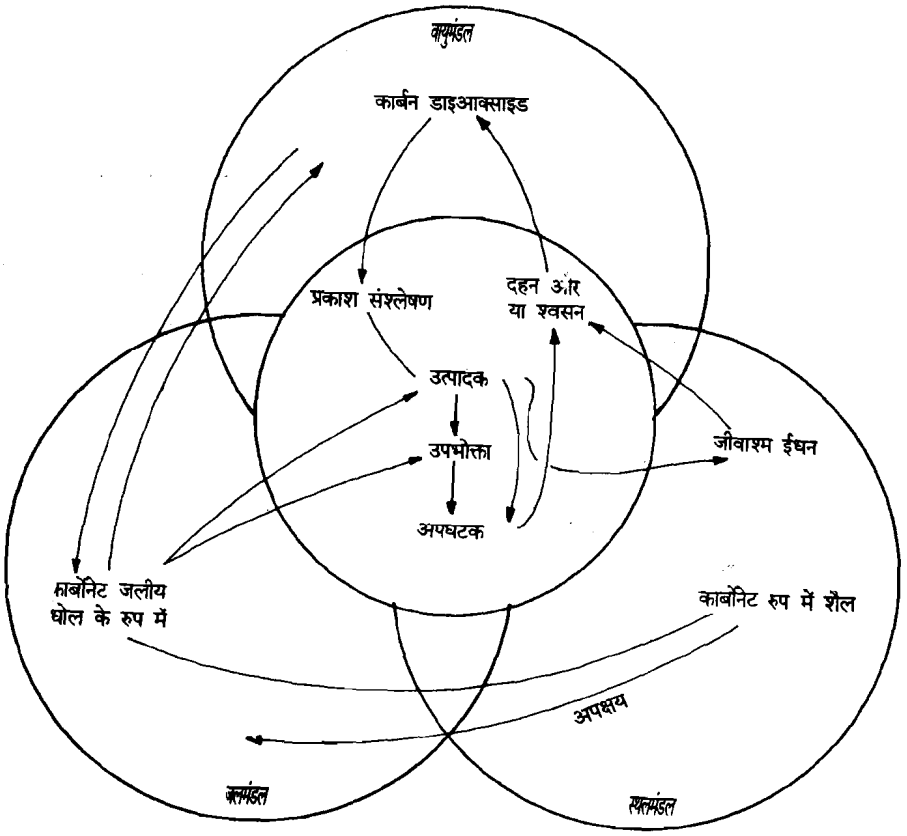

चित्र 4.4 : भूमंडलीय कार्बन चक्र

बोध प्रश्न 2

कार्बन चक्र का वर्णन करने वाले निम्नलिखित कथन में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

यह ..... चक्र है। आयतन के अनुसार ..... कार्बन डाइऑक्साइड लगभग 0.032 प्रतिशत है। वायुमंडलीय पूल से कार्बन ..... तक पहुँच जाता है और फिर वहाँ से उपभोक्ता तक और उन दोनों से अंत में ..... तक पहुँच जाता है। हरे पौधो के ..... पदार्थों का कुछ भाग कोयला भंडारों के ..... में सहायता करता है, जो ..... के फलस्वरूप ..... को वायुमंडल में वापस कर देता है। कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि होने के कारण वायुमंडलीय तापमान में ..... हो जाती है। सागरों में घुली हुई कार्बन डाइऑक्साइड का अधिकांश भाग ..... के नीचे रहता है।

4.3.2 नाइट्रोजन चक्र

सभी जीवों में प्रोटीन संश्लेषण के लिए नाइट्रोजन एक अनिवार्य तत्व है। भार की दृष्टि से यह जीव के कुल प्रोटीन अंशों का लगभग 16 प्रतिशत होती है। वायुमंडल में नाइट्रोजन का भंडार कभी भी समाप्त नहीं हो सकता, लेकिन अधिकांश जीवों द्वारा इस तत्व रूप का सीधे ही प्रयोग भी नहीं किया जा सकता। जीव द्वारा उपभोग करने से पहले नाइट्रोजन को यौगिकीकृत (fixed) करने की आवश्यकता होती है अर्थात् पौधों द्वारा ग्रहण किए जाने से पहले अमोनिया, नाइट्रेटों या नाइट्राइटों में रूपांतरित करने की आवश्यकता होती है। पृथ्वी पर नाइट्रोजन का यौगिकीकरण तीन प्रकार से किया जाता है : (i) कुछ मुक्त-जीवी (free-living) और सहजीवी (symbiotic) जीवाणुओं तथा नील-हरित शैवाल (bluegreen algae) द्वारा (ii) औद्योगिक प्रक्रमों (उर्वरक फैक्टरियों) का प्रयोग करके मनुष्य द्वारा; और (iii) कुछ सीमा तक बिजली के कड़कने और चमकने जैसी वायुमंडलीय परिघटनाओं

द्वारा। इस समय, उद्योगों के माध्यम से मनुष्य द्वारा यौगिकीकृत नाइट्रोजन की मात्रा जैविक और वायुमंडलीय क्रियाओं द्वारा यौगिकीकृत नाइट्रोजन की मात्रा से कहीं अधिक बैठती है।

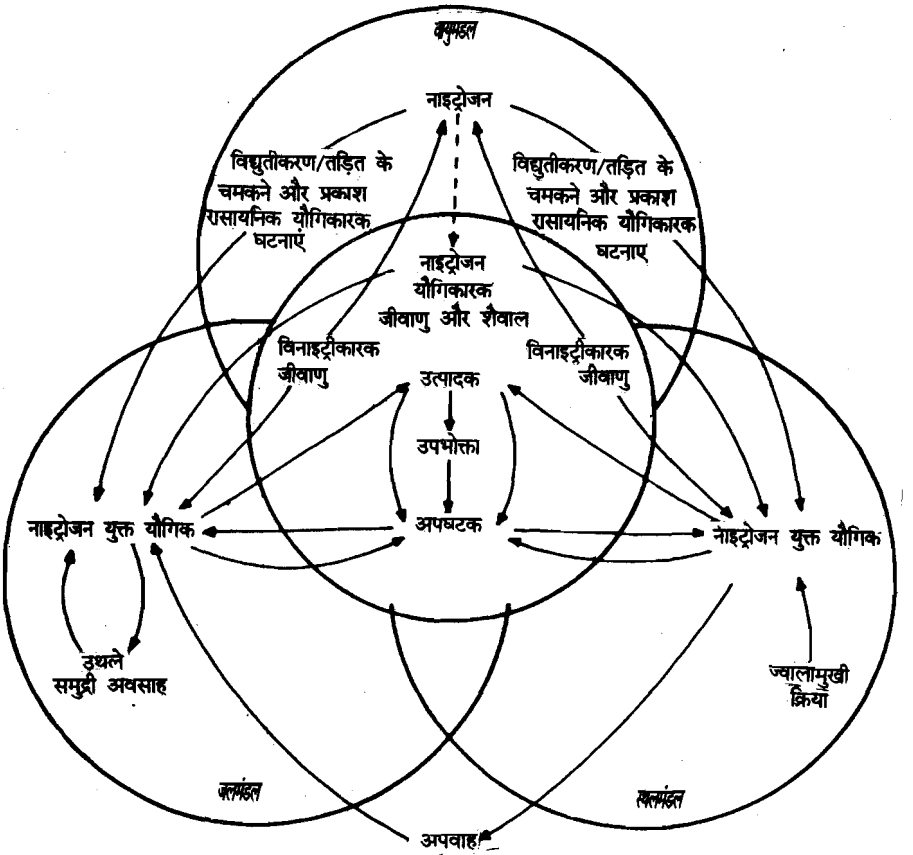

चित्र 4.5 : नाइट्रोजन चक्र। इस आरेख में प्रदर्शित किया गया है कि किस प्रकार नाइट्रोजन शैवाल और जीवाणु (बैक्टीरिया) की क्रिया के माध्यम से जैव मंडल में पहुँचती है और वहाँ से विभिन्न जीवधारियों के शरीरों का अंश बनते हुए, विनाइट्रीकृत होती है और अंत में अपवाहित होकर मुक्त हो जाती है।

जैसा कि आप चित्र 4.5 में देख सकते हैं, नाइट्रोजन किसी भी समय तीन विभिन्न–"कक्षों" या भंडारों में बद्ध है। ये हैं–वायुमंडल, मृदा और जल एवं जीव। आंतरायिक तड़ितझंझा (periodic thunderstorms) वायुमंडल की गैसीय नाइट्रोजन को नाइट्रेटों में बदल कर यौगिकृत कर देती है जो अंततः वर्षा के जरिए पृथ्वी की सतह तक पहुँच जाती है और मृदा के भीतर पहुँच कर पौधों तक पहुँच जाती है। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण कुछ सूक्ष्म जीव (micro-organisms) हैं जो वायुमंडल की नाइट्रोजन को यौगिकृत कर सकते हैं। इस समूह के अंतर्गत नाइट्रीकरण करने वाले स्वजीवी उदाहरण के लिए, *एज़ोटोबेक्टर* (*Azotobacter*) और सहजीवी उदाहरण के लिए, *राइज़ोबियम* (*Rhizobium*) जीवाणु और नील-हरित शैवाल उदाहरण के लिए, *एनाबीना* (*Anabaena*) और *स्पिरूलीना* (*Spirulina*) आते हैं। कुछ पौधों द्वारा नाइट्रोजन के स्रोत के रूप में अमोनिया आयन सीधे ही ग्रहण किए जा सकते हैं या कुछ विशेषज्ञता-प्राप्त जीवाणुओं द्वारा इन आयनों को नाइट्राइटों अथवा नाइट्रेटों में ऑक्सीकृत कर दिया जाता है। इन जीवाणुओं को क्रमशः *नाइट्रोसोमोनास* (*Nitrosomonas*) और *नाइट्रोबैक्टर* (Nitrobacter) कहते हैं।

वायुमंडल की नाइट्रोजन को यौगिकृत करने की क्षमता रखने वाले सहजीवी जीवाणु मटर, फलियों वाले पौधों, एल्फाल्फा, क्लोवर इत्यादि जैसे फलीदार पौधों की मूल ग्रंथिकाओं (nodules) में रहते हैं। समूचे विश्व में यह फलीदार फसलें मृदा में नाइट्रोजन के उपभोग्य की मात्रा बढ़ाकर उसे उपजाऊ बनाने की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। परंपरागत कृषक इस तथ्य के बारे में जागरूक हैं और "शस्य प्रत्यावर्तन" (crop rotation) की नीति अपना रहे हैं अर्थात् फलीदार फसल के बाद अनाज की फसल और अनाज की फसल के बाद फलीदार फसल उगा रहे हैं।

मृदा में जीवाणुओं द्वारा संश्लेषित नाइट्रेट पौधों द्वारा ग्रहण कर लिए जाते हैं और शाकाहारियों के द्वारा पारितंत्र के उच्चतर पोषी स्तरों अर्थात् मांसाहारी जीवों तक पहुँच जाते हैं।

मल-उत्सर्जन के दौरान और जीवों की मृत्यु के उपरांत नाइट्रोजन अमोनिया के रूप में मृदा में वापस आ जाती है। जल में अत्यधिक घुलनशील होने के कारण मृदा में पाए जाने वाले नाइट्रेटों की कुछ मात्रा सतही अपवाहित जल के साथ बह जाने से नष्ट हो जाती है। मृदा के साथ-साथ समुद्रों में भी कुछ विनाइट्रीकारक जीवाणु (उदाहरण के लिए: *स्यूडोमोनास*) होते हैं, जो नाइट्रेटों/नाइट्राइटों को तत्वीय नाइट्रोजन के रूप में मुक्त कर देते हैं। यह निकलकर वायुमंडल में चली जाती है और इससे नाइट्रोजन चक्र पूरा हो जाता है।

कृषि वैज्ञानिक चावल, गेहूँ, इत्यादि जैसे हमारे धान्य पौधों की जातियों में नाइट्रीकारक जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने की क्षमता को प्रवर्धित करना चाहते हैं ताकि मँहगे उर्वरकों के प्रयोग से बचा जा सके, जो मृदा और जल को प्रदूषित करते हैं।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित कथनों में सही पर सही (✓) और गलत पर गलत (✗) का निशान लगाइए।

क) नाइट्रोजन के असीम मूल्य और उसकी अपरिहार्य प्रकृति के बावजूद प्राणी और उच्च कोटि के पौधे नाइट्रोजन को कभी भी सीधे ही ग्रहण नहीं करते। इसका कारण है:

i) नाइट्रोजन निष्क्रिय (inert) है और किसी भी अभिक्रिया में भाग नहीं लेती। ( )

ii) प्राणियों और पौधों में ऐसी कोई कार्य-प्रणाली नहीं होती जिससे वे वायुमंडलीय नाइट्रोजन का उपयोग कर सकें। ( )

ख) *राइज़ोबिया* सहजीवी जीवाणु है। इसका तात्पर्य है:

i) वे अन्य जीवों से पोषण प्राप्त करते हैं। ( )

ii) वे मृत और अपघटित जीवों से पोषण प्राप्त करते हैं। ( )

iii) वे स्वपोषी हैं। ( )

iv) वे अन्य जीवों के साथ भागीदारी में जीवनयापन करते हैं। ( )

ग) मृदा में नाइट्रोजनी यौगिकों का सांद्रण निम्नलिखित फसल लगाने के बाद अधिकतम होगा:

i) फलियाँ ( ) ii) चुकंदर ( ) iii) जौ ( ) iv) गेहूँ ( ) v) आलू ( )

4.3.3 जल चक्र

जल चक्र भी महत्वपूर्ण चक्र है। जल के बिना जीवन संभव नहीं है। किसी जीव के भार का औसतन लगभग 70 प्रतिशत भाग जल होता है। यह एक महत्वपूर्ण अंश है, जो पारितंत्र की संरचना और उसका कार्य निर्धारित करता है। अन्य सभी तत्वों का परिचक्रण भी जलचक्र पर निर्भर करता है क्योंकि यह विभिन्न कक्षों में तत्वों को लेकर जाने के लिए एक माध्यम प्रदान करता है और साथ ही एक उत्तम विलायक होने के कारण जीवों द्वारा तत्वों को ग्रहण करने में सहायता करता है। प्रकाश संश्लेषण में कार्बन डाइऑक्साइड के साथ इसकी आवश्यकता पड़ती है और अपनी ऊष्मा अवशोषण क्षमता के कारण यह अपने आसपास के क्षेत्रों के तापमान पर विमंदक प्रभाव डालता है। जीवन का भौतिक आधार जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाज़्म) लगभग 85 प्रतिशत या 90 प्रतिशत जल से बना है। मनुष्य के रक्त में भी 90 प्रतिशत जल ही रहता है। पारितंत्र प्रोटोप्लाज़्म संश्लेषण में जल की बड़ी मात्रा का उपभोग करता है और जीवित पौधों से वाष्पोत्सर्जन (transpiration) द्वारा और जानवरों से वाष्पन (evaporation) द्वारा काफी जल वायुमंडल में वापस आ जाता है।

भू-पृष्ठ का लगभग 75 प्रतिशत भाग झीलों, नदियों, समुद्रों और महासागरों के रूप में जल से घिरा है। केवल महासागरों में ही पृथ्वी के कुल जल का 97 प्रतिशत भाग शामिल है। शेष जल का काफी बड़ा भाग ध्रुवीय हिम और हिमनदों में विद्यमान है। बचा हुआ एक

प्रतिशत से भी कम अलवणीय जल नदियों, झीलों और जलभरों (reservoirs) में हिम-रहित स्वच्छ जल के रूप में विद्यमान है। इस ग्रह पर विद्यमान कुल जल का अपेक्षाकृत नगण्य अंश होने के बावजूद भी यह स्थलीय और जलीय जीवन के सभी रूपों के लिए अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। जल की आपूर्ति भूमिगत स्रोत से भी की जाती है। भू-पृष्ठ के पास मृदाएँ जलाशय के रूप में काम करती हैं, जहाँ जल की अपार राशि संचित रहती है।

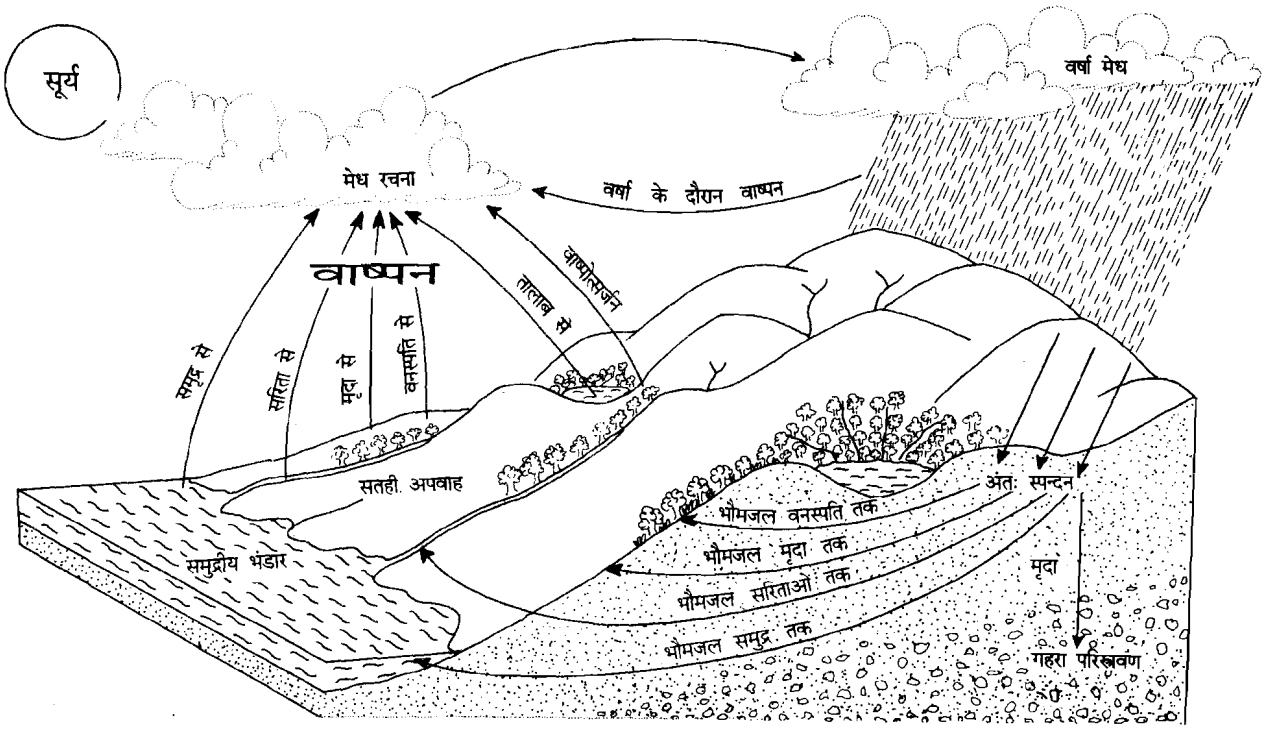

चित्र 4.6 : जल चक्र का एक सरल रूप

पृथ्वी की जल आपूर्ति स्थायी है और वही जल बार-बार प्रयुक्त होता है। सौर ऊर्जा का लगभग एक-तिहाई भाग जल चक्र को चलाने में लग जाता है। धूप में महासागरों, झीलों और सरिताओं से आर्द्र मृदा पृष्ठों से और जीवों के शरीरों से जल का वाष्पन होता रहता है। जल का यह वाष्प मेघों के रूप में वायुमंडल में एकत्रित हो जाता है और हवा के वेग के साथ बादलों के रूप में पृथ्वी की सतह के उपर इधर-उधर चलता रहता है। शीतलन और द्रवण (condensation) के पश्चात् जल वर्षा अथवा हिम के रूप में नीचे आ जाता है। पृथ्वी से वायुमंडल में और वायुमंडल से पृथ्वी पर जल के इस अविरल परिसंचलन को जल चक्र कहा जाता है। पृथ्वी पर गिरने वाले जल का कुछ भाग मृदा से रिसकर संतृप्ति (saturation) क्षेत्र तक पहुँच जाता है। संतृप्ति क्षेत्र के नीचे एक ठोस शैल होती है। जिससे होकर जल का रिसना संभव नहीं होता। इस संतृप्ति क्षेत्र के ऊपरी परत को भौम जल स्तर (ground water level) कहते हैं। रिसने के बाद शेष अतिरिक्त जल धाराओं के रूप में बह निकलता है जिनके एक साथ मिल जाने से नदियाँ बन जाती हैं और अंत में जल सागरों में वापस आ जाता है। चित्र 4.6 में जल चक्र की कुछ महत्वपूर्ण क्रियाएँ प्रदर्शित की गई हैं। लगभग 10×10^{20} ग्राम जल, जो कुल जल का लगभग 0.004 प्रतिशत भाग है, हमेशा चक्र में चलता रहता है। पृथ्वी का शेष अधिकांश जल शीत भंडार में पड़ा रहता है और परिचक्रित नहीं होता।

बोध प्रश्न 4

जल चक्र से संबंधित निम्नलिखित कथन में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

जल पृथ्वी की सतह का लगभग ..... प्रतिशत भाग घेरता है। केवल लगभग ..... प्रतिशत जल सदैव जल चक्र में चलता रहता है। अधिकांश जल ..... और ..... के रूप में ..... पड़ा रहता है।

4.3.4 अवसादी चक्र

फॉस्फोरस, कैल्शियम और मैगनीशियम अवसादी चक्र के अवयव हैं। गंधक कुछ सीमा तक मध्यवर्ती है, क्योंकि इसके दो यौगिक हाइड्रोजन सल्फाइड और सल्फर डाइऑक्साइड कुछ विशेष परिस्थितियों के अंतर्गत बनते हैं, जिससे सामान्य अवसादी चक्र में गैसीय अवयव भी जुड़ जाता है। **अवसादी चक्र** से संबंधित तत्व सामान्यतः वायुमंडल में चक्कर नहीं लगाते बल्कि अपरदन (erosion), अवसादन (sedimentation), पर्वत निर्माण, ज्वालामुखी फटने की क्रिया और जैविक वहन जैसे कि समुद्री पक्षियों के मल के द्वारा मूल रूप से परिसंचरित होते हैं। वायु, जल और पृथ्वी की पर्पट के बीच की कड़ी को समझने के लिए गंधक का चक्र एक अच्छा उदाहरण है। इसलिए इस चक्र का संक्षिप्त ब्यौरा नीचे दिया गया है।

गंधक परिचक्र

गंधक वायुमंडल में हाइड्रोजन सल्फाइड और सल्फर डाइऑक्साइड के रूप में पाई जाती है और मृदा में अकार्बनिक सल्फेटों, सल्फाइडों और कार्बनिक सल्फर (गंधक) के रूप में पाई जाती है। वायुमंडल में इन गैसों का केवल एक प्राकृतिक स्रोत मालूम है और वह है ज्वालामुखी का फटना। आजकल जीवाश्म ईंधनों के जलने से वायुमंडल में जिस दर से पहुँच रही है उसके सन् 2000 तक प्राकृतिक स्रोतों से निकलने वाली गंधक की दर के बराबर होने की आशा की जाती है। कार्बनिक गंधक कुछ अमीनो अम्लों और विटामिन बी समूह के यौगिकों का मुख्य अवयव है। चित्र 4.7 में जैवमंडल के भीतर गंधक का परिचक्रण प्रदर्शित किया गया है। सल्फेटों के रूप में गंधक स्वपोषियों के उत्तकों (tissues) की प्रोटीन में शामिल होती है। यह फिर शाकाहारियों की आहार-शृंखला से होकर गुजरती है और इसका अनावश्यक अंश जानवरों के मल के साथ बाहर निकल जाता है। चरने वाले जीव मांसाहारियों का शिकार बनते हैं साथ ही सल्फर भी उनके शरीर में पहुँच जाती है और उनके मरणोपरांत अपरद आहार-शृंखला में प्रोटीनों, अमीनो अम्लों एवं विटामिनों के अपघटन से सल्फर मुक्त होती है। **वायुवीय** (aerobic) परिस्थितियों में एस्पर्जिलस (*Aspergillus*) और न्यूरोस्पोरा (*Neurospora*) जैसे कवक और अवायुवीय स्थितियों में एशरिकिआ (*Escherichia*) और प्रोटीयस (*Proteus*) जैसे जीवाणु गंधक के कार्बनिक रूपों जैसे—प्रोटीनों, अमीनो अम्लों एवं विटामिनों के अपघटन के लिए मुख्यतः उत्तरदायी हैं।

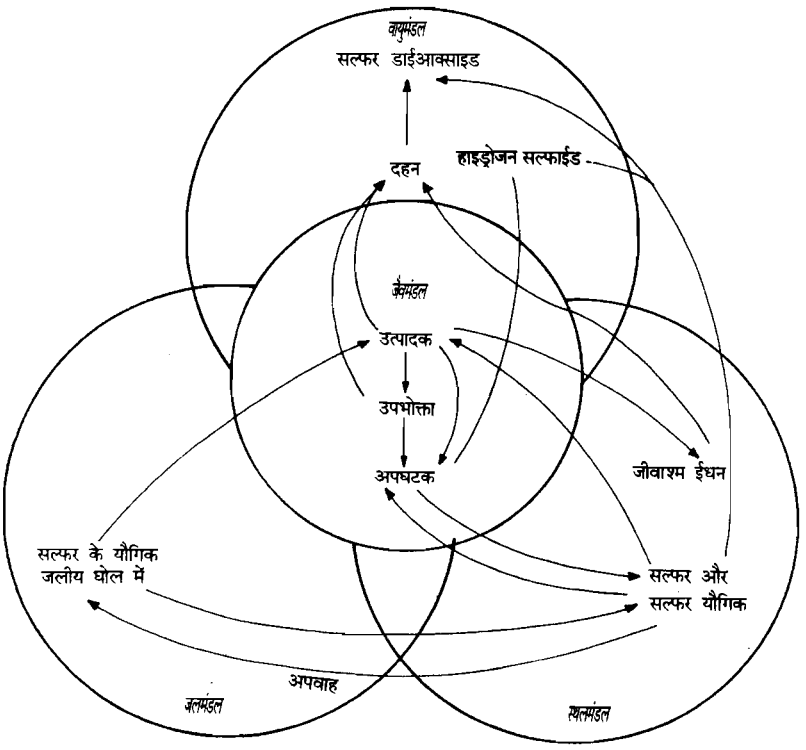

चित्र 4.7 : गंधक परिचक्र जिसमें जीवाणु बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, जो कि मृदा को विभिन्न रूपों में बदल सकते हैं।

अवायुवीय मृदाओं और अवसादों में कुछ विशिष्ट सल्फेट अपचायक जीवाणु जैसे–*डीसल्फोवीब्रो डीसल्फयूरीकेन्स* (*Desulphovibro desulphuricans*) कार्बनिक गंधक में से हाइड्रोजन सल्फाइड बनाते हैं। *बेजियाटोआ* (*Beggiatoa*) की कुछ जातियाँ हाइड्रोजन सल्फाइड का ऑक्सीकरण करके उसे तत्व सल्फर में बदल देती हैं और *थायोबेसीलस* (*Thiobacillus*) की जातियाँ इसका आक्सीकरण कर सल्फेट में बदल देती हैं। हरे और नील-हरित सल्फर जीवाणु प्रकाश संश्लेषी होते हैं, जो प्रकाश की उपस्थिति में हाइड्रोजन सल्फाइड को तत्वीय सल्फर में बदल देते हैं।

बोध प्रश्न 5

प्रत्येक प्रश्न के लिए एक से अधिक उत्तर दिए गए हैं, सही के सामने (✓) का चिह्न लगाइए।

1) सल्फर का मुख्य रूप अपचयित होकर स्वपोषियों द्वारा प्रोटीनों में शामिल कर लिया जाता है:

   क) तत्वीय सल्फर ख) सल्फर डाइऑक्साइड

   ग) सल्फेट घ) हाइड्रोजन सल्फाइड

2) आजकल सल्फर की बड़ी मात्रा निम्नलिखित से वायुमंडल में फेंक दी जाती हैं:

   क) ज्वालामुखी के फूटने ख) वनस्पति के जलाने

   ग) जीवश्म ईंधन के जलाने घ) सूक्ष्मजीवों की क्रिया

अब आप समझ गए होंगे कि किस प्रकार जीव अपनी ऊर्जा और भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्यावरण पर निर्भर रहते हैं। हम एक ही जाति के जीवों के आपसी और भिन्न-भिन्न जातियों के जीवों के बीच पारिस्थितिकीय संबंधों का अध्ययन करेंगे। हम इसे समष्टि स्तर, एक ही जाति के सदस्यों के बीच पारस्परिक क्रिया के स्तर से प्रारंभ करेंगे।

4.4 आंतरजातीय संबंध

एक ही जाति के सदस्यों के बीच पारस्परिक क्रिया को आंतरजातीय संबंध कहा जाता है और ये संबंध प्रायः बहुत ही प्रबल होते हैं जो परस्पर विरोध से लेकर मिलनसारिता तक हो सकते हैं। जातियों में भी भिन्नता होती हैं। कुछ जातियाँ जैसेकि मूज़ (moose) बिल्कुल ही एकांतवासी/एकचर होने के कारण अपनी जाति के अन्य जीवों से सहवास लगभग न के बराबर करते हैं। जबकि कुछ जानवर थोड़ा-बहुत सामाजिक संगठन प्रदर्शित करते हैं। कुछ जातियाँ प्रादेशिकता प्रदर्शित करती हैं अर्थात् वे अपने आवास के कुछ भाग के लिए अपने "अधिकारों" के लिए स्पर्धा करते हैं। जीतने वाला उस प्रदेश में रह जाता है और हारने वाले को प्रदेश छोड़ना पड़ता है। वह क्षेत्र जिसमें कोई जानवर रहता है, खाता है और कार्यकलाप करता है "आवास क्षेत्र" कहलाता है। प्रदेशों और आवास क्षेत्रों के आकार एवं सीमा भिन्न-भिन्न होती है। बड़े जानवर या पक्षियों के मामले में प्रदेश कई मीलों तक फैले हो सकते हैं या कुछ कीटों के मामले में एक ही पौधे तक सीमित हो सकते हैं। प्रादेशिकता किसी ज्ञात क्षेत्र में जीवों की संख्या को सीमित करके भोजन और आवास जैसे संसाधनों के लिए उनकी विनाशकारी प्रतिस्पर्धा कम कर देती है।

आंतरजातीय संबंधों को जातियों की क्रम-परंपरा के प्रतिरूप में भी अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण चूज़ों में "प्रभुत्व क्रम" (pecking order) है। आपने देखा होगा कि दाना चुगते समय चूज़े एक दूसरे को चोंच मारते हैं। यदि एक चूज़ा दूसरे को चोंच मारे और दूसरा बदले में उसी को चोंच मार दे तो उनकी लड़ाई तब तक होती रहती है जब तक कि उनमें से एक दूसरे की प्रभुता स्वीकार न कर ले। परंतु प्रभुता स्वीकार करने वाला चुप नहीं बैठता वह किसी तीसरे पर चोंच मारता है। तीसरा चौथे पर और इस प्रकार यह क्रम बंध जाता है। समय के साथ चूज़ों में यह क्रम इतनी बार दोहराया जाता है कि वही एक प्रारंभिक प्रभुत्व क्रम स्थिर हो जाता है। प्रभुत्व क्रम के शीर्ष पर वह चूज़े हैं जो दाना चुगते समय अन्य सभी पर प्रभुता स्थापित कर सकते हैं परंतु अन्य किसी की प्रभुता स्वीकार नहीं करते। बीच में ऐसे चूज़े हैं जो कुछ की तो प्रभुता

स्वीकार करते हैं और कुछ पर प्रभुता स्थापित करते हैं। सबसे नीचे वे चूज़े हैं जो अन्य सभी की प्रभुता स्वीकार कर लेते हैं लेकिन किसी भी चूज़े पर प्रभुता स्थापित नहीं कर सकते। जब साथी का चुनाव करने का समय आता है तब यह प्रभुता-अधीनता संबंध और भी साफ दिखाई देने लगते हैं। दीमक, चींटियों और मधुमक्खियों जैसे कीटों की बस्तियों की रचना में अत्यधिक सामाजिक संगठन पाया जाता है।

कीट बस्तियाँ इतनी अधिक व्यवस्थित हो सकती हैं कि अकेले कीट समाज के बाहर जीवित नहीं रह सकते। उदाहरण के लिए, छत्तों में मधुमक्खियाँ अपनी कार्यप्रणाली में इतनी व्यवस्थित होती हैं कि समष्टि या व्यष्टि के बजाए कोशिकाओं सहित एक जीव के समान लगती हैं।

4.4.1 असीमित संसाधन में जनसंख्या वृद्धि

किसी जनसंख्या में व्यक्तियों की संख्या को बढ़ाने वाले कारकों, जैसे जन्म और अप्रवास (immigration) और संख्या को कम करने वाले कारकों जैसे मृत्यु और उत्प्रवास (emigration) का ब्यौरा रखने से जनसंख्या में होने वाले उतार-चढ़ाव का निर्धारण किया जा सकता है (देखिए तालिका 4.1)।

तालिका 4.1 : सभी दिए हुए कारकों के निवल प्रभाव के फलस्वरूप जनसंख्या वृद्धि। यह कारक स्वयं जातियों के अभिलक्षण और परिस्थितियों के परिणाम हैं।

	कारक	जनसंख्या में वृद्धि	जनसंख्या में कमी
1.	पुनरुत्पादन संभाव्यता	उच्च	निम्न
2.	पुनरुत्पादन-योग्य जीवों की संख्या	विशाल	कम
3.	भोजन	प्रचुर	अभाव
4.	आवास	स्थान उपलब्ध	स्थान उपलब्ध नहीं
5.	जलवायु	अनुकूल	प्रतिकूल
6.	आप्रवास	उच्च	निम्न
7.	उत्प्रवास	निम्न	उच्च
8.	बीमारी	निम्न	उच्च
9.	परभक्षण	निम्न	उच्च

मान लीजिए कि हम एक जीवाणु को चुनते हैं और इसके सभी वंशजों को बिना किसी प्रतिबंध के विकास करने और जनन का अवसर देते हैं। एक माह के भीतर ही जीवाणु बस्ती, इस दिखाई देनेवाले ब्रह्मांड से भी बड़ी हो जाएगी और इसका प्रसार प्रकाश के वेग से हो रहा होगा। सभी जीवों में इष्टतम विकास परिस्थितियों (optimal growth conditions) के अंतर्गत विस्फोटक वृद्धि की सामर्थ्य होती है क्योंकि लगभग सभी परिपक्व जीव संतान पैदा कर सकते हैं।

जब जन्मों की संख्या मृत्यु संख्या से अधिक होती है तब जनसंख्या में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए किसी जनसंख्या (N) में 1000 जीव हैं, अर्थात् N = 1000, 40 प्रति वर्ष की जन्म दर (b) और 10 प्रति वर्ष की मृत्यु दर (d) है। उस जनसंख्या में प्राकृतिक वृद्धि दर की वार्षिक दर (r) होगी :

$$r = \frac{b - d}{N} = \frac{40 - 10}{1000} = 0.03 = 3 \text{ प्रतिशत}$$

प्राकृतिक वृद्धि दर में "आप्रवास या उत्प्रवास" के कारण जनसंख्या में किसी भी परिवर्तन को शामिल नहीं किया गया है। यहाँ पर हमने चर्चा के लिए दोनों को बराबर मान लिया है। प्राकृतिक वृद्धि की धनात्मक दर वाली जनसंख्याएँ प्रति वर्ष बड़ी होती जाएँगी। अनुमानित वृद्धि (I) प्राकृतिक वृद्धि की दर (r) को वर्तमान जनसंख्या आमाप (N) से गुणा करने पर ज्ञात की जा सकती है :

$$I = r N$$

यह सूत्र संकेत करता है कि जनसंख्या वृद्धि चरघातांकी (exponential) है : प्रत्येक वर्ष के अंत में यदि N बड़ा होगा तो I भी बड़ा होगा। इसका अर्थ यह है कि अनुकूल परिस्थितियों के अंतर्गत प्रत्येक वर्ष जनसंख्या में वृद्धि और भी अधिक होती जाएगी। यदि जनसंख्या आमाप का ग्राफ खींचा जाए तो यह ग्राफ J आकार का होगा जो चित्र 4.8 में दिखाया गया है। इस किस्म की चरघातांकी वृद्धि केवल असीमित संसाधनों के अंतर्गत ही हो सकती है। प्रयोगिक परिस्थितियों के अतिरिक्त कहीं भी किसी भी जनसंख्या की वृद्धि के लिए असीमित संसाधन नहीं मिल सकते।

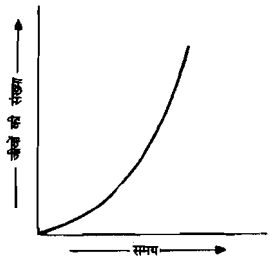

चित्र 4.8 : जातियों की जनसंख्या वृद्धि का J = आकृति वक्र

असीमित संसाधनों और आदर्श पर्यावरणीय परिस्थितियों में कोई भी जाति अधिकतम दर से संतान पैदा कर सकती है। इसे **जीवीय संभाव्यता** (biotic potential) कहते हैं। जीवाणु, कीट और चूहे जैसी जातियाँ थोड़े ही समय के भीतर बड़ी संख्या में संतान उत्पन्न करने की क्षमता रखती हैं। इनकी जीवीय संभाव्यता (सामर्थ्य) अधिक होती है। हाथियों, बाघों और मानव जैसी जातियाँ एक बार में सामान्यतः एक संतान उत्पन्न कर सकती हैं। इसलिए इनकी जीवीय संभाव्यता कम होती है।

भारत सहित, कुछ देशों में हम मानव जनसंख्या में बहुआयामी वृद्धि देख रहे हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यहाँ संसाधन असीमित हैं, लेकिन इसका कारण यह है कि औषधियों और प्रौद्योगिकी में उन्नति होने से मृत्यु दर काफी हद तक कम हो गई है और इसी उन्नति से प्रकृति में भीड़-भाड़ से उत्पन्न विभिन्न दुष्प्रभावों में कुछ सीमा तक अस्थायी कमी हुई है। जिससे जनसंख्या आयाम में चरघातांकी वृद्धि हुई है। आपको यह भी ज्ञात होगा कि प्राकृतिक परिस्थितियों के अंतर्गत भी पूर्व वृद्धि प्रतिरूप चरघातांकी हो सकता था क्योंकि उस समय तो कम से कम संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। इकाई 5 में आप मानव जाति की जनसंख्या के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

4.4.2 सीमित संसाधनों में जनसंख्या वृद्धि

किसी भी संसाधन जिसमें मुख्यतः भोजन और स्थान अगर निश्चित हों तो कोई भी आवासीय परिवेश निश्चित जनसंख्या से ज्यादा का भरण-पोषण नहीं कर सकती। यदि जनसंख्या इस सीमा को पार कर जाती है तो संसाधनों की सीमित मात्रा का जनसंख्या पर बुरा प्रभाव पड़ता है जिससे मृत्यु दर में वृद्धि हो जाती है और जनसंख्या घनत्व उस आवास स्थल में उपलब्ध संसाधनों द्वारा निर्धारित सीमा तक घट जाता है। **किसी जनसंख्या के जीवों की अधिकतम संख्या जिन्हें पर्यावरण सहारा दे सकता है और जीवित रख सकता है उस पर्यावरण की वहन क्षमता (K) कहलाती है।** जब वहन क्षमता आ जाती है अर्थात् N = K होने पर, r का मान शून्य हो जाएगा। इसका तात्पर्य है कि जन्म दर, मृत्यु दर के बराबर हो जाएगी और जनसंख्या साम्यावस्था में आ जाएगी।

जनसंख्या का आमाप पर्यावरण की वहन क्षमता (K) के स्तर से नीचे ही घटता-बढ़ता रहता है (चित्र 4.9)। अन्य शब्दों में, पर्यावरण जनसंख्या के एक निश्चित आमाप को बनाए रखने में सक्षम है। जब जनसंख्या के आमाप में वृद्धि होती है तब उपलब्ध आवास स्थान और भोजन के लिए और गहनतर प्रतिस्पर्धा होती है, जो जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करती है।

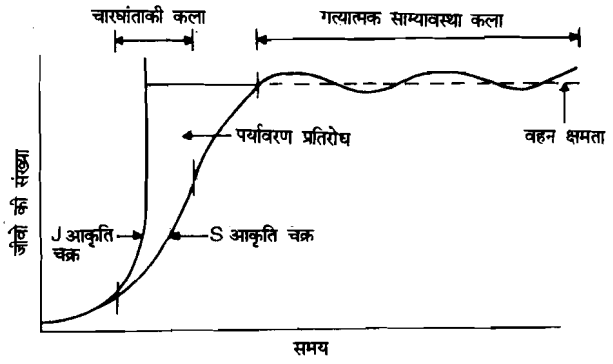

चित्र 4.9 : जब जनसंख्या को पर्यावरणीय प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है और जनसंख्या जब एक या अधिक सीमाकारी कारकों (limiting factors) से अधिक बढ़ जाती है तब J-आकृति वक्र S-आकृति वक्र में बदल जाता है।

प्रकृति में, ऐसा नहीं है कि बढ़ी हुई संख्या या भीड़भाड़ के दुष्प्रभाव केवल तभी प्रकट होते हैं जब वहन क्षमता (K) आ जाए या इसे पार कर लिया जाए। इसके विपरीत, तात्कालिक जनसंख्या में किसी भी स्तर पर प्रत्येक अतिरिक्त जीव की वृद्धि होने से संसाधनों के प्रति जीव उपलब्धता कुछ प्रतिशत कम होती जाती है। इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण लेंगे—कल्पना कीजिए कि किसी-किसी जनसंख्या में वृद्धि दर "r" का मान 0.25 है और यह 100 वहन क्षमता के आवास स्थल में बढ़ रही है। इस आवास स्थल में कुल स्थान जो जनसंख्या वृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन है, $100m^2$ उपलब्ध है। 20 जीवों की प्रारंभिक जनसंख्या के लिए $5m^2$ जीव स्थान ही उपलब्ध होगा। एक वर्ष के पश्चात् जनसंख्या बढ़कर 25 हो जाती है। अब प्रति जीव केवल $4m^2$ स्थान ही उपलब्ध होगा। अतः शुरू से ही समय के साथ-साथ संसाधनों की उपलब्धता घटती जाएगी जिसका जन्म दर और मृत्यु दर पर प्रभाव पड़ेगा। इस प्रभाव को $\frac{(K - N)}{K}$ के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

उपरोक्त भिन्न को चरघातांकों समीकरण में रखने पर यह वृद्धिघात (logistic) समीकरण बन जाएगा :

$$I = r\frac{(K - N)}{K}$$

यह समीकरण संसाधन सीमित होने पर और जन्म दर एवं मृत्यु दर के घनत्व पर निर्भर होने के कारण जनसंख्या वृद्धि का प्रतिरूप प्रदर्शित करता है, अर्थात् बढ़ते हुए जनसंख्या घनत्व के साथ जन्म दर में कमी और मृत्यु दर में वृद्धि प्रदर्शित करता है। जनसंख्या घनत्व (N) कम हो तब $\frac{(K - N)}{K}$ का मान 1 के समीप आ जाता है और इसलिए rN का प्रभाव नगण्य हो जाता है। हालाँकि, N जैसे-जैसे बढ़ता जाता है और इसका मान वहन क्षमता (K) के निकट पहुँचने लगता है भिन्न का मान कम होता जाता है और इसका प्रभाव rN (जनसंख्या में परिवर्तन दर) पर बढ़ता जाता है। अंत में पर्यावरण जब संतृप्त हो जाता है (अर्थात् N = K) तब $\frac{(K - N)}{K}$ का मान शून्य हो जाएगा और $rN\frac{(K - N)}{K}$ भी शून्य हो जाएगा अर्थात जनसंख्या आमाप में कोई परिवर्तन नहीं होगा। यदि कभी ऐसा हो कि जनसंख्या वहन क्षमता को पार कर जाए ($N > K$) तब हम जनसंख्या के घटने की आशा कर सकते हैं क्योंकि इस स्थिति में $\frac{(K - N)}{K}$ का मान ऋणात्मक होगा। जनसंख्या वृद्धि के वृद्धिघात समीकरण से S-आकृति वक्र बनेगी।

सभी सीमाकारक कारकों, जो किसी जनसंख्या की वृद्धि दर कम करते हैं, को "पर्यावरणीय प्रतिरोध" (environmental resistence) कहा जाता है। इन कारकों के अंतर्गत परभक्षण, संसाधनों के लिए होड़, भोजन का अभाव, रोग, प्रतिकूल जलवायु और अनुपयुक्त आवास स्थल आते हैं। जनसंख्या, में पर्यावरणीय प्रतिरोध के कारण J-आकृति वाला वक्र S-आकृति वक्र में बदल जाता है (चित्र 4.9)।

बोध प्रश्न 6

पिछले 50 वर्षों में समूचे विश्व में मानव की जनसंख्या पर जो भी प्रभाव पड़ा है, वह निम्नलिखित रेखाचित्रों में से किसमें प्रदर्शित किया गया है?

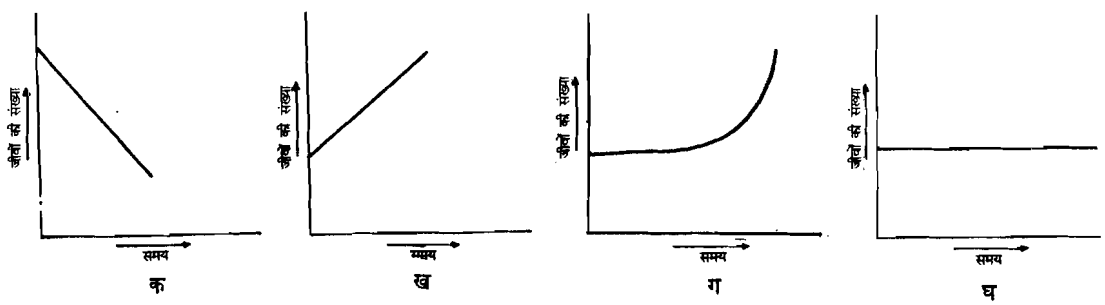

4.5 अंतराजातीय संबंध

जैव समुदाय परस्पर क्रियाओं का एक जटिल सम्मिश्रण है। ये परस्पर क्रियाएँ न केवल किसी एक जाति की जनसंख्या के विभिन्न जीवों के बीच होती हैं, अपितु समुदायों में विभिन्न जातियों के जीवों के बीच भी होती हैं। इन्हें अंतराजातीय सबंध कहते हैं। अंतराजातीय संबंध परस्पर क्रियाओं में अन्य बातों के अलावा भोजन, स्थान और साथी के लिए प्रतिस्पर्धा शामिल है। चरघातांक वृद्धि पर विचार करते समय हमने ऐसी प्रतिस्पर्धाओं के कुछ परिणामों का अध्ययन किया है।

दूसरी ओर, अंतराजातीय संबंधों के अंतर्गत प्रायः अधिक जटिल परस्पर क्रियाएँ होती हैं क्योंकि परस्पर प्रभावी जातियों में से प्रत्येक जाति को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय कारक प्रायः काफी भिन्न होते हैं। संबंध प्रत्यक्ष और गहन हो सकते हैं, (जैसे कि बाघ और हिरण के बीच) या ये संबंध अप्रत्यक्ष और दूर के हो सकते हैं, (जैसे हाथी और भृंग के बीच)। अप्रत्यक्ष और दूर के संबंधों के मामलों में, परस्पर क्रिया, केवल जाति-सहलग्नता (species links) की शृंखला के जरिए होती है। जातियों के बीच परस्पर क्रियाओं के लिए विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो इस पर निर्भर करता है कि परस्पर क्रिया लाभप्रद, हानिकारक या निष्प्रभावी है। पारिस्थितिक वैज्ञानिक ओडम के अनुसार, लाभदायक परस्पर क्रियाओं को "+" से, हानिकारक को "–" से और निष्प्रभावी को "0" से प्रदर्शित किया जा सकता है।

जाति (क)	जाति (ख)	परस्पर क्रिया का नाम
+	+	– सहोपकारिता (Mutualism)
0	0	– निष्प्रभाविता (Neutralism)
+	0	– सहभोजिता (Commensalism)
+	–	– परभक्षण, परजीविता (Predation, Parasitism)
–	–	– प्रतिस्पर्धा (Competition)
0	–	– तथास्थता (Amen salism)

सहोपकारिता वह परस्पर क्रिया है जिसमें दोनों ही परस्पर क्रियाशील जातियाँ लाभ उठाती हैं (+, +)। जैसा कि हम पहले समझते थे, सहोपकारिता प्रकृति में उससे कहीं अधिक दिखाई देती है।

सहोपकारिता का परिचित उदाहरण परागण (pollination) है जिसमें भ्रमर द्वारा पर-परागण (cross pollination) से पौधे को लाभ होता है और भ्रमर को पौधे द्वारा दिए गए मकरंद से लाभ होता है। एक दूसरा उदाहरण चींटियों और **बबूल** (*Acacia*) वृक्ष को कुछ जातियों के बीच साहचर्यता का है। वृक्ष चींटियों को उनकी बस्ती बनाने के लिए सुरक्षित और निश्चित आवास स्थल प्रदान करता है और चींटियाँ बदले में पौधे वृक्ष की कीटों और छोटे शाकाहारी जानवरों से रक्षा करती हैं अन्यथा ये उस वृक्ष की सभी पत्तियाँ खाकर उसे नष्ट कर देते। हम कह सकते हैं कि मानव और घरेलू पौधों तथा पालतू जानवरों के बीच संबंध भी सहोपकारिता का एक अच्छा उदाहरण है। ये जातियाँ, जो सामान्यतः प्रकृति में अपनी जंगली सहजातियों के साथ प्रतिस्पर्धा में शायद जीवित नहीं बचतीं, मनुष्य के प्रयासों के कारण जीवित रहकर पुनरुत्पादन कर सकती हैं, जो बदले में उनके बिना जीवित नहीं रह सकते।

निष्प्रभाविता वह परस्पर क्रिया है जिसमें केवल एक ही जाति को लाभ मिलता है और दूसरी जाति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता (+, 0)। आम के वृक्ष की शाखाओं पर उगने वाले अधिपादपीय ऑर्किड (epiphytic orchid) पौधे की निष्प्रभाविता का सामान्य उदाहरण है जिसमें आम का वृक्ष किसी भी प्रकार से लाभान्वित नहीं होता। प्रतिस्पर्धा, परजीविता और परभक्षण प्रकृति की अन्य महत्वपूर्ण परस्पर क्रियाएँ हैं। इस इकाई में हम पढ़ेंगे कि मानव के लिए यह क्रियाएँ कितनी महत्वपूर्ण हैं।

4.5.1 प्रतिस्पर्धा

हम सभी प्रतिस्पर्धा से अच्छी तरह परिचित हैं क्योंकि हमें अपने दैनिक जीवन में किसी न किसी प्रकार, प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। उत्तम भोजन, आवास स्थान और

साथी जैसे संसाधनों की कमी के कारण प्रकृति में प्रतिस्पर्धा एक आम बात है लेकिन अनिवार्य नहीं है। संसाधन सीमित होने के फलस्वरूप प्रतिस्पर्धा "योग्यतम की विद्यमानता और उत्तरजीविता" (existence and survival of the fittest) के लिए संघर्ष डार्विन के विचारों में निहित है। संसाधन सीमित न होने पर भी प्रतिस्पर्धा हो सकती है, हालाँकि इसे व्यापक तौर पर माना नहीं गया है। उदाहरण के लिए, किसी एक जाति **क** पर विचार करें जो अपने अस्तित्व के लिए किसी विशेष संसाधन पर निर्भर नहीं है लेकिन फिर भी **ख** जाति, जिसे इस संसाधन की आवश्यकता है, को इसको पाने से रोकती है। एक ही आवास स्थल में **क** की उपस्थिति के कारण **ख** जाति की वृद्धि और पुनरुत्पादन में बाधा आ जाती है। इसे "प्रतिबाधा स्पर्धा" (interference competition) कहा जाता है और यह उच्च प्राणी वर्ग में अपेक्षाकृत अधिक सामान्य है। यद्यपि प्रतिस्पर्धा अधिक तीव्र तब होती है जब स्पर्धी जातियाँ परस्पर गहन रूप से संबंधित हों क्योंकि उनकी आवश्यकताएँ एक-सी होती हैं। वर्गीकरण की दृष्टि से दूरस्थ जातियों के बीच प्रतिस्पर्धा भी आम होती है। उदाहरण के लिए, दक्षिण अमेरिका की कुछ झीलों में फ्लेमिंगों जैसे तटीय पक्षी झील में रहने वाली मछलियों के साथ झील में रहने वाले प्राणिप्लवक के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जो पक्षी और मछली दोनों के लिए ही भोजन का काम करता है। यह देखा गया है कि उन झीलों में जहाँ फ्लेमिंगों पक्षियों की संख्या अधिक होती है, मछलियों की संख्या कम पाई जाती है।

क्या होता है जब दो संबंधित जातियाँ एक ही संसाधन के लिए स्पर्धा करती हैं जो दोनों के लिए आवश्यक है? परिणाम आमतौर पर इस पर निर्भर करता है कि जातियाँ कितनी गहन स्पर्धी हैं। यदि एक जाति प्रबल प्रतियोगी है तो वह दूसरी जाति को आवास स्थल से बाहर खदेड़ देगी। इस परिघटना को **गाउस का स्पर्धी अनन्यता सिद्धांत** (Gause's Principle of Competitive Exclusion) कहते हैं, जिसे सोवियत वैज्ञानिक जी.एफ. गाउस के नाम पर रखा गया है। यदि दोनों ही बराबर प्रबल प्रतियोगी हैं तब परिणाम आरंभिक परिस्थिति पर निर्भर करता है और ऐसी स्थिति में अनिश्चित और अस्थिर सह-अस्तित्व की संभावना होती है। यदि किसी दशा में दोनों ही दुर्बल प्रतियोगी हैं तब दोनों ही अनिश्चित काल तक एक ही आवास स्थल में शांतिपूर्वक रह सकती हैं।

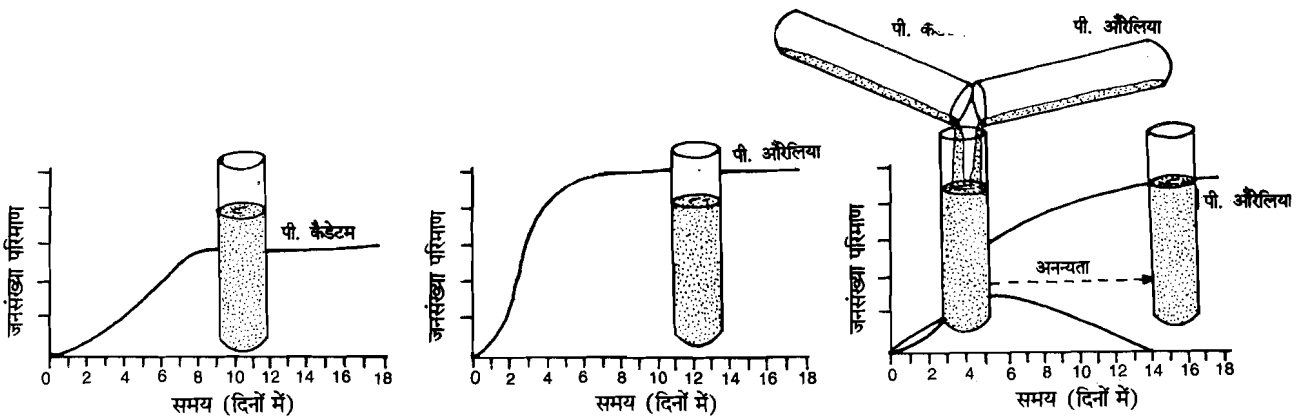

चित्र 4.10 : गाउस का स्पर्धी अनन्यता सिद्धांत। जब पैरामीशियम की दो जातियों का एक साथ संवर्धन किया गया तब एक जाति प्रधान हो गई और दूसरी समाप्त हो गई।

प्रयोगशाला में कुछ पारिस्थितिक वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा दुर्बल प्रतियोगी जाति की स्पर्धी अनन्यता प्रदर्शित की है। गाउस ने परिचित सूक्ष्मजीव *पैरामीशियम* (*Paramecium*) की दो जातियों के प्रयोग से यह सिद्ध कर दिया। जब *पी. कौडाटम* (*P. caudatum*) और *पी. औरेलिया* (*P. auraelia*) का एक साथ संवर्धन किया तब अंततः *पी. कौडाटम* विलुप्त हो गई (चित्र 4.10)। क्या ऐसे प्रयोग सिद्ध करते हैं कि प्रकृति में ऐसी स्पर्धी और स्पर्धी अनन्यता आमतौर पर होती रहती हैं? आमतौर पर प्रकृति में स्पर्धी अनन्यता संयोगवश पाई जाती है। प्रयोगशाला की अपेक्षा प्रकृति में परिस्थितियाँ अधिक जटिल होती हैं इस कारण *पैरामीशियम* की दो जातियों के बीच प्रतिस्पर्धा का परिणाम उससे बिल्कुल ही भिन्न हो सकता है, जो प्रयोगशाला में गाउस ने प्राप्त किया है। फिर भी, प्रकृति में स्पर्धी अनन्यता के उदाहरण मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए, यह विश्वास किया जाता है कि इंग्लैंड में वहाँ की रहने वाली लाल गिलहरी को अमेरीकी धूसर गिलहरी ने भगा दिया था जिसे प्रारंभ में इंग्लैंड में बाहर से लाया गया था। इस मामले में भी साक्ष्य केवल पारिस्थितिजन्य ही लगता है।

जबकि अंतरजातीय स्तर पर विपरीत प्रतिस्पर्धा (reverse competition) के फलस्वरूप जनसंख्या पर नियंत्रण रहेगा, सामाजि अधिक्रम की स्थापना "प्रभुत्व क्रम" (peck order) में होगी और प्रादेशिकता को बल मिलेगा तथा अंतरजातीय स्तर पर इसके फलस्वरूप दुर्बल जातियाँ विलुप्त हो जाएँगी, प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए विशेषज्ञता घट जाएगी और नई जातियों का विकास होगा।

4.5.2 निकेत

गाउस का स्पर्धी अनन्यता का सिद्धांत बताता है कि एक जैसी आवश्यकताओं वाली दो जातियाँ अनंत काल तक एक ही निकेत में नहीं रह सकतीं। इससे यह प्रश्न उठता है कि निकेत क्या है? निकेत किसी पारितंत्र में जातियों का कर्म स्थल या कार्य करने का स्थान है। यह उन सभी जैविक, भौतिक और रासार्यानक घटकों का ब्यौरा है, जो जाति वर्ग के जीवित रहने, स्वस्थ रहने तथा जनन करने के लिए आवश्यक हैं।

निकेत समझने के लिए यह सामान्य उदाहरण है कि जीव का आवास निकेत जो पारिस्थिकीय निकेत का एक भाग है, पारितंत्र में उसका "पता" है। इसका पारिस्थितकीय निकेत इसका धंधा/व्यवसाय/ कर्मस्थल है। पारिस्थितकीय निकेतों के बारे में सूचना से विभिन्न जातियों को भोजन के स्रोत के रूप में प्राप्त करने में लोगों को सहायता मिलती है और किसी पारितंत्र में किसी जाति के जुड़ने या उससे किसी जाति के निकलने से परिणामों का पूर्वानुमान लगाने में सफलता मिलती है।

जाति वर्ग के पारिस्थितिकीय निकेत का ब्यौरा देने के लिए यह जानना **आवश्यक** है कि वह कहाँ रहती है—अर्थात् **आवास निकेत** (habitat niche) क्या है? किन जातियों को यह खाती है या किनका अपघटन करती है, किन जातियों से यह स्पर्धा करती है (अर्थात् इसका **भोजन निकेत** (food niche) क्या है? इसका पुनरुपादक निकेत (reproductive niche) क्या है? और इसके लिए आवश्यक तामामान, नमी और अन्य जरूरतें अर्थात् इसके भौतिक और रासार्यनिक निकेत (physical and chemical niche) क्या-क्या हैं?

किसी जाति के लिए निकेत का उस जाति के पारितंत्र में एक अद्वितीय स्थान होता है। जिसका तात्पर्य है कि किन्हीं भी दो जातियों के निकेत बिल्कुल एक जैसे नहीं हो सकते। हम इस तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं कि केकड़े की दो जातियों में से एक गारे में रहती है और दूसरी बलुई बिलों में रहती है। दोनों के निकेत बिल्कुल ही भिन्न होते हैं लेकिन यह समझना सरल नहीं है कि करीब-करीब एक से ही बिलों में रहने वाले केकड़े की दो जातियाँ किस प्रकार भिन्न होती हैं। पारिस्थितिक वैज्ञानिक निकेत को जाति वर्ग-विशिष्ट संकेतक के रूप में मानते हैं जिसे केवल इसके आवास से ही परिभाषित नहीं किया जा सकता बल्कि जीव के प्रासंगिक सभी प्राचलों (parameters) को सम्मिलित करके ही परिभाषित किया जा सकता है। दृष्टांत के लिए उपरोक्त उदाहरण में, बलुई बिल में रहने वाले केकड़े की जाति को निकेत शायद इसके द्वारा पसंद की जाने वाली बालू की रुक्षता, इसके लिए आवश्यक नमी की मात्रा, इसके सह सकने योग्य धुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा, इसके पकड़ने योग्य भोज्य जीव का आकार, दिन का वह समय जब यह सक्रिय रहता है इत्यादि से परिभाषित किया जा सकता है। आप समझ सकते हैं कि इन प्राचलों में से केवल एक ही के भिन्न होने से निकेतों में भिन्नता हो सकती है। अतः यदि एक केकड़ा दिन के समय भोजन करता है और दूसरा रात के समय, इसके अलावा अन्य सभी प्राचल एक से ही होने पर भी उनके निकेतों में भिन्नता हो सकती है और वे आसानी से प्रतिस्पर्धा से बच सकते हैं।

4.5.3 परजीविता

यह वह परस्पर क्रिया है जिसमें एक जाति जिसे परजीवी कहते हैं, लाभ उठाती है और दूसरी जिसे परपोषी (host) कहते हैं, उसको हानि पहुँचती है। परजीवी के लिए, जो आमतौर पर परपोषी से काफी छोटे होते हैं, परपोषी भोजन और आश्रय दोनों के स्रोत होते हैं। परपोषी का संक्रमण करने के तुरंत बाद परजीवी अपने पोषी को नहीं मारते, अन्यथा परजीवी पुनरुत्पादन करने के अयोग्य हो जाएँगे और इस कारण जल्दी ही विलुप्त हो जाएँगे।

परजीवियों में आमतौर पर पुनरुत्पादक दर अधिक होती है और उनमें परपोषी जीवन-यापन संबंधी कई विशेषताएँ होती हैं। उनकी रचना, शरीर क्रिया विज्ञान (physiology) और जीववृत्त प्रतिरूप (life history pattern) प्रायः स्थानांतरण से संबद्ध समस्याओं के अनुसार अत्याधिक अनुकूलित होता है। कुछ प्राणी, जिसमें फीताकृमि (tapeworm) और मलेरिया के परजीव सम्मिलित हैं, पूर्णतः परजीवी जीवन के अनुकूल बन गए हैं। मनुष्य में मलेरिया के परजीवी जैसे विशिष्ट जातियों का जीवन चक्र बहुत ही जटिल होता है क्योंकि पुनरुत्पादन और स्थानांतरण में सहायता करने के लिए परपोषी के साथ-साथ रोगवाहक (vector) भी सम्मिलित होते हैं। परपोषी विशिष्टता के कारण से बहुत से परजीवी केवल

एक या कुछ समरूपी परपोषी जातियों में रह सकते हैं और ऐसी अंतरंग निहित परपोषी-परजीवी परस्पर क्रिया दोनों की संख्या को काफी हद तक कम करने की सामर्थ्य रखती है।

4.5.4 परभक्षण

यह वह परस्पर क्रिया है जिसमें एक जीव (परभक्षी) दूसरे जीव (शिकार या भक्षित) को भोजन के लिए मार डालता है। यह प्रक्रम न केवल प्राकृतिक पारितंत्र के लिए ही अत्यधिक महत्वपूर्ण है बल्कि मनुष्य के लिए भी काफी महत्व रखता है। क्योंकि वह या तो स्वयं सीधे ही परभक्षी होता है (जैसे–जब वह समुद्र से मछली पकड़ता है और वन में मनोविनोद के लिए जानवरों को मारता है) या उसे ऐसे प्राकृतिक परभक्षियों का मुकाबला करना पड़ता है जो उसके लिए प्रत्यक्ष ही हानिकारक होते हैं या वह ऐसे शिकारों को मार डालता है जो प्राकृतिक रूप से तो किसी अन्य परभक्षी का भोजन नहीं है परंतु उसके लिए आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होते हैं।

सबसे पहले हम प्रकृति में परभक्षण के महत्व पर विचार करेंगे। परभक्षियों की कुछ महत्वपूर्ण भूमिकाएँ नीचे दी गई हैं:

1) परभक्षण प्रकाश संश्लेषक पौधों द्वारा रसायनिक बंधों में यौगिकृत ऊर्जा को विभिन्न पोषी स्तरों में वितरित करने में सहायता करता है। उदाहरण के लिए, परभक्षण के बिना "घास-हिरण-बाघ" आहार शृंखला होती ही नहीं। ध्यान रहे कि हिरण घास के लिए परभक्षक ही है। बाघ तो हिरण का भक्षक है ही। इसी प्रकार, किसी पौधे के लिए चिड़िया भी एक परभक्षक है क्योंकि यह उसके बीज खा जाती है।

2) परभक्षक प्रबल स्पर्धी जातियों का शिकार कर किसी समुदाय में अंतरजातीय प्रतिस्पर्धा की तीव्रता को कम करते हैं और भक्षितों का घनत्व कम रखते हैं। इससे भक्षित जातियों को आवास स्थल में अपना अस्तित्व बनाए रखने में सहायता मिलती है।

3) ऐसा लगता है कि परभक्षक बहुत से जैविक समुदायों में उच्च कोटि की विविधता बनाए रखने का कार्य करते हैं। किसी समुदाय से प्रयोग के तौर पर सभी परभक्षकों को निकाल देने के फलस्वरूप कुछ जातियाँ समाप्त हो गईं और जाति विविधता में एक आम गिरावट आ गई।

4) कुछ दशाओं में परभक्षक अपने शिकार का घनत्व नियंत्रित रख सकते हैं। स्पष्ट तौर पर परभक्षण उस अकेले जीव के लिए लाभप्रद नहीं है, जिसे मारकर खा लिया जाता है लेकिन समूची भक्षित समष्टि के लिए परभक्षक बहुत ही लाभप्रद हो सकता है।

आदर्श परिस्थितियों में, शिकार और परभक्षक समष्टियाँ समय के साथ-साथ "युग्मित दोलन" (coupled oscillations) प्रदर्शित करती हैं।

अब हम यह देखेंगे कि ये दोलन किस प्रकार होते हैं। प्रचुर संसाधन वाले आवास में शिकारों की संख्या में वृद्धि होने लगती है जिसके फलस्वरूप परभक्षकों को अधिक भोजन मिलता है और वे अधिक संतान उत्पन्न करते हैं। आवास में परभक्षकों की संख्या में वृद्धि हो जाने से अधिक से अधिक शिकार मारे जाते हैं जिससे उनकी जनसंख्या कम हो जाती है। इस दौरान आवास विशेष में शिकार-घनत्व कम होने के कारण परभक्षियों को पर्याप्त भोजन नहीं मिल पाता और उनकी संख्या घटनी शुरू हो जाती है। इन घटनाओं के फलस्वरूप शिकार और परभक्षियों दोनों के घनत्वों में दोलन होने लगता है। यहाँ यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि उस समय परिस्थिति बिल्कुल ही बदल जाएगी जब परभक्षक "विवेकपूर्ण या दूरदर्शी" नहीं है या वह शिकार को मारने में "अत्यधिक दक्ष" है। इन परिस्थितियों में परभक्षक शिकार ढूँढेगा और प्रत्येक शिकार को मार डालेगा जिससे शिकार जाति समाप्त हो जाएगी और इसी के फलस्वरूप वह भूख के कारण स्वयं मर जाएगा तथा इस प्रकार परभक्षक की वह जाति बिल्कुल विलुप्त हो जाएगी।

अगर परभक्षक विशेष भक्षित जाति पर ही निर्भर होता है तो उन दोनों का विकास एक दूसरे से जुड़ा रहता है इस 'सह-विकास' से भक्षित जाति अपनी रक्षा के लिए विशेष गुण विकसित करती है, जिससे वह परभक्षक से बच सके। दूसरी तरफ परभक्षक में ऐसे अनुकूलन होते हैं कि जो भक्षित जाति में आए विशेष गुणों को व्यर्थ कर देते हैं और वह उनका शिकार करने में अधिक सक्षम हो जाता है।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि परभक्षक शिकार की जनसंख्या को नियंत्रित करने में सहायता कर सकते हैं। यद्यपि बड़े आकार वाले शिकारों के मामले में सदैव ही ऐसा नहीं होता। उदाहरण के लिए, मूज़, वाइल्ड बीस्ट (wildebeest) इत्यादि के मामले में। इसका प्रबल प्रमाण मिलता है कि कीटों, प्राणिप्लवक इत्यादि जैसे बहुत से छोटे शिकारों की संख्या उनके परभक्षियों द्वारा नियंत्रित रखी जाती है। यदि प्राकृतिक परभक्षियों को समाप्त कर दिया जाए तब शिकार समष्टि पर से परभक्षण दाब उठ जाता है और उनकी संख्या में चरघातांकी वृद्धि होती है। यही कारण है कि जब मनुष्य द्वारा पीड़कों को मारने के लिए बिना सोचे-समझे रासायनिक पीड़कनाशी छिड़के जाते हैं तब पीड़कों के घनत्व में आकस्मिक और अननुमय वृद्धि होती है।

बोध प्रश्न 7

समूह क में कुछ शब्द और समूह ख में कुछ ब्यौरे दिए गए हैं। समूह क के शब्दों का समूह ख के ब्यौरों से मेल मिलाइए।

समूह क	समूह ख
i) सहोपकारिता	क) पैरामीशियम की दो भिन्न जातियाँ एक माध्यम में रखी गई। उनमें से एक जाति विलुप्त हो गई।
ii) निष्प्रभाविता	ख) सहक्रिया जो एक ही आवास में रहने वाली दोनों जातियों के लिए लाभप्रद है।
iii) परजीविता	ग) मृदा में कवक द्वारा मृत पत्तियों का क्षय।
iv) अपघटक	घ) दो जीव एक साथ रह रहे हैं और उनमें से एक दूसरे के लिए हानिकारक हैं।

4.6 मानव और अन्य जैव घटकों के बीच परस्पर संबंध

बीस लाख वर्ष पहले जब मनुष्य जाति का विकास प्रारंभ हुआ तब प्रकृति के साथ मनुष्य की परस्पर क्रिया अधिक प्रत्यक्ष और घनिष्ठ थी क्योंकि वह शिकार करके अपना निर्वाह करता था और इस प्रकार अन्य परभक्षी जानवरों की तरह ही परभक्षी था। समय के परिवर्तन के साथ मानव जाति के कृषि और सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में पूर्णतया परिवर्तन आ गया। अब मनुष्य को अपने भोजन की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तीर और कमान के साथ जंगली भैंसों के पीछे दौड़ने या पत्थर के बने औज़ारों से गाँठदार जड़ों को खोदने की आवश्यकता नहीं रह गई। इसके बावजूद भी जैवमंडल पर आज मानव का प्रभाव जितना अधिक संकटकारी है, उतना पहले कभी नहीं था। यह सच है कि कुछ घरेलू और पालतू किस्मों के पौधों और जानवरों को छोड़कर मानव की बहुत से पौधों और जानवरों के साथ कोई प्रत्यक्ष परस्पर क्रिया नहीं होती, लेकिन विशेषज्ञों ने सिद्ध कर दिया है कि उसकी गतिविधियों का उसके आसपास रहने वाले जीवों पर प्रभाव पड़ता है। अपने लाभ के लिए उसके बहुमुखी कार्यकलापों ने पर्यावरण में इस प्रकार परिवर्तन कर दिया है जिससे कुछ जीवों को न केवल हानि होती है अपितु कभी-कभी कुछ अवांछनीय जातियों को लाभ होता है। बढ़ती हुई जनसंख्या की माँग के कारण वनोन्मूलन के परिणाम आपके सामने हैं। इसके अलावा आवास में—वनों से चारागाहों और चारागाहों से कृषि भूमि तक—परिवर्तन आ गया है जिसके कारण वन में रहने वाली जातियाँ या तो कम हो गई हैं और कई तो सदा के लिए नष्ट हो गई हैं। प्रायः मानव की गतिविधियों द्वारा पारितंत्र में बदलाव इतना दूरगामी होता है जिसे एकदम पहचानना कठिन है।

उत्तर-पश्चिम राजस्थान में इंदिरा गाँधी नहर के निकलने से भूमि के उपयोग का प्रतिरूप बदल रहा है। पारंपरिक भेड़ और बकरियों के पालने के स्थान पर गाय और भैंसों को पाला जा रहा है। मरुस्थल में जीव-वैज्ञानिकों ने देखा कि वास्तविक कृतंक (rodent) जातियाँ वहाँ से विस्थापित हो रहीं हैं और उनका स्थान अधिक वनस्पति में रहने वाली जातियाँ ले रही हैं। आज के समय में, बहुत-सी जातियों के तेजी से गायब होने का सबसे बड़ा कारण प्राकृतिक आवासों का विनाश और उसमें अप्रत्याशित परिवर्तन हैं। जीव-वैज्ञानिकों का विश्वास है कि उष्णकटिबंधी क्षेत्रों में वन-उन्मूलन के फलस्वरूप कीटों की हज़ारों जातियाँ उनके पता लगने से पहले ही विलुप्त हो चुकी हैं।

हमने पहले परभक्षक की दूरदर्शिता के महत्व का जिक्र किया है। दूरदर्शी परभक्षक जिसका अस्तित्व और विकास किसी विशेष शिकार जाति पर निर्भर करता है, उसे उस जाति का इतना अधिक दोहन नहीं करना चाहिए जिससे कि वह जाति विलुप्त हो जाए बल्कि अपने ही लाभ के लिए उनको बनाए रखना चाहिए। क्या मानव एक दूरदर्शी परभक्षक है? उत्तरी समुद्र में कुछ महत्वपूर्ण मत्स्य जातियों के व्यापारिक उद्योग की कभी भी पूरा न हो सकने वाली हानि हुई है। ऐसे ही अन्य कुछ उदाहरणों से सकारात्मक उत्तर देने में कुछ शंका होती है।

प्रकृति में ऐसी क्रियाविधि होती है जिसके द्वारा परभक्षक शिकार की संख्या पर प्राकृतिक नियंत्रण रखते हैं, अतः रासायनिक व अन्य कृत्रिम साधनों द्वारा पीड़क पर नियंत्रण रखने का प्रयास करते समय मानव को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं है कि खाद्य उत्पादन में वृद्धि करने और पर्यावरण को रोगमुक्त बनाने के उद्देश्य से पीड़कों और प्रतिस्पर्धाओं पर रासायनिक नियंत्रण रखना कुछ हद तक आवश्यक होता है। लेकिन कुछ दृष्टांतों में रासायनिक नियंत्रण के लिए किए गए उपायों से पीड़क कीटनाशक प्रतिरोधी बन गए और ऐसे भी कुछ जीव नष्ट हो गए जो पीड़कों के प्राकृतिक परभक्षक थे या जिनको नष्ट करना उद्देश्य नहीं था। क्योंकि प्रयोग किए जा रहे बहुत से पीड़कनाशी लक्ष्य-ईंगित (विशिष्ट) नहीं होते इसलिए वे असंख्य लक्ष्य-अनिर्धारित जातियों को भी हानि पहुँचाते हैं जिससे पारितंत्र की सामान्य कार्य-प्रणाली पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। अब यह समझा जा चुका है कि कीटपीड़कों के विरुद्ध लड़ाई जीतना संभव नहीं है और इसीलिए अब पीड़क "प्रबंध" के बारे में सोचा जाता है न कि पीड़क नियंत्रण के बारे में। पीड़क प्रबंध में रासायनिक नियंत्रण की तुलना में जैव नियंत्रण विधियों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है। आप रासायनिक पीड़कनाशी प्रदूषण और इसके परिणामों के बारे में खंड 3 में और अधिक पढ़ेंगे।

अंत में, मानवीय गतिविधियों द्वारा उत्पन्न पारिस्थितिकीय असंतुलन केवल कुछ जातियों के नष्ट होने के कारण नहीं है, बल्कि कभी-कभी देशज वनस्पति और प्राणियों के समुदाय में विदेशी जातियों का समावेश करने से भी पारिस्थितिकीय असंतुलन हो जाता है। इनमें से कुछ जातियों का समावेश जानबूझकर किया गया और कुछ का समावेश घटनावश हो गया था। इन विदेशी जातियों के अंतर्गत विवादास्पद **यूक्लिप्टस** (Eucalyptus) चारों ओर तेजी से फैलने वाला **जल कुम्भी** (water hyacinth) और **मास्कीटो फिश** (mosquito fish) आते हैं। भारत में लगभग सभी जलाशय जल कुम्भी से ढके रहते हैं और अब यह खरपतवार नियंत्रण के बाहर हो चुका है। ***पार्थेनियम*** (*Parthenium*) एक अन्य किस्म का हानिकारक खरपतवार है जो पूरे देश के प्रायः सभी सूखा क्षेत्रों में तेजी के साथ फैल रही है, जो पी.एल. 480 के अंतर्गत अमरीका से आयातित गेहूँ के साथ बीज के रूप में हमारे देश में घुस आई थी।

बोध प्रश्न 8

राजस्थान में इंदिरा गाँधी नहर के वर्तमान पारिस्थितिकीय परिणाम क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

4.7 सारांश

इस इकाई में आपने निम्नलिखित का अध्ययन किया है:

- पारितंत्र के कार्य करने के लिए लगभग सारी ऊर्जा सूर्य से प्राप्त होती है। ऊर्जा का प्रवाह सदैव एकदिशीय होता है और ऊष्मागति-विज्ञान के दो नियमों द्वारा नियंत्रित होता है। ऊष्मागति विज्ञान का पहला नियम बताता है कि ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है। जबकि दूसरे नियम का सार यह है कि जब किसी कार्य को करने के लिए ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है तब प्रत्येक ऊर्जा रूपांतरण में कुछ ऊर्जा ऊष्मा के रूप में नष्ट हो जाती है। इसके फलस्वरूप सभी जैविक तंत्रों को ऊर्जा की निरंतर आपूर्ति आवश्यक होती है।

- जीवों के लिए अनिवार्य पोषक तत्व वायु, शैल या मृदा, जल और कुछ उदाहरणों में जीवों में (विभिन्न रासायनिक रूपों में) वितरित रहते हैं। जैव–भूरासायनिक चक्र में तत्व समय के साथ-साथ एक मंडल से दूसरे मंडल में स्थानांतरित होते रहते हैं। इस इकाई में प्रमुख चक्र जिनका वर्णन किया गया है, वे हैं–कार्बन, नाइट्रोजन, जल और गंधक। तत्वों, विशेषतः नाइट्रोजन और गंधक के चक्रण में मृदा सूक्ष्मजीव प्रमुख भूमिका निभाते हैं।
- जीवों के बीच परस्पर क्रिया के प्रतिरूप पारिस्थिति विज्ञान के महत्वपूर्ण आयाम हैं। बहुत से घटक जनसंख्या वृद्धि की दर निर्धारित करते हैं। जन्म दर और मृत्यु दर के साथ-साथ किसी पारितंत्र से आप्रवासी और उत्प्रवासी जीवों की संख्या से भी वृद्धि दर प्रभावित हो सकती है।
- जनसंख्या वृद्धि की दर को प्रभावित करने वाले कारक हैं–खाद्य आपूर्ति, आवास के लिए स्थान की उपलब्धि, सामाजिक परस्पर क्रिया, जलवायु परिवर्तन, बीमारी, परभक्षण इत्यादि।
- किसी जाति विशेष के जीवों की अधिकतम संख्या जिसे पारितंत्र सहारा दे सकता है, उसकी वहन क्षमता कहलाती है। स्थाई जनसंख्या का आमाप वहन क्षमता के आसपास या उसके नीचे घटता-बढ़ता रहता है।
- किसी जाति के सभी प्राचलों के बारे में समुचित विवरण और पारितंत्र में यह अन्य जातियों से किस प्रकार संबद्ध है, कौन-सा आवास यह पसंद करता है, यह क्या खाता है, कब और कहाँ यह पुनरुत्पादन करता है, उस जाति के निकेत को परिभाषित करते हैं।
- भिन्न-भिन्न जातियों के जीवों के बीच परस्पर क्रिया अंतराजातीय संबंध है। यह संबंध हानिकारक या लाभप्रद हो सकते हैं। इसमें प्रतिस्पर्धा, परजीविता और परभक्षण आते हैं।
- मानव ने अपने आरामदेह पर्यावरण के लिए निरंतर पर्यावरणीय हस्तक्षेप करके कई पारिस्थितिकीय प्रतिक्रियाओं में अत्यधिक परिवर्तन किया है।

4.8 अंत में कुछ प्रश्न

1) एक पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर तक ऊर्जा प्रवाह करने में ऊष्मागति-विज्ञान का दूसरा नियम किस प्रकार प्रासंगिक है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह का वर्णन करता है? सही पर (✓) चिह्न गाइए :

क) क्रमिक उच्चतर पोषी स्तरों में 10 प्रतिशत ऊर्जा बिना काम के रह जाती है। ( )

ख) प्रत्येक पोषी स्तर पर श्वसन के जरिए 10 प्रतिशत ऊर्जा बच जाती है। ( )

ग) वृद्धि और विकास के लिए प्रत्येक पोषी स्तर पर 10 प्रतिशत का उपभोग होता है। ( )

3) क) "जैविक नाइट्रोजन यौगिकरण" से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

.....

ख) किसानों को उर्वरक बिक्री स्थलों से कार्बन खरीदने की आवश्यकता क्यों नहीं होती? उन्हें नाइट्रोजन खरीदने की आवश्यकता क्यों होती है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) निकेत की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए किसी परिचित जीव का चुनाव कीजिए और उसके निकेत का पूर्णतः वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

5) मानव ने अपनी जाति के लिए पृथ्वी की वहन क्षमता का प्रसार कर दिया है—अपने विचार बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6) क) अंतराजातीय प्रतिस्पर्धा के तीन महत्वपूर्ण परिणाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

ख) सहोपकारिता से निष्प्रभाविता किस प्रकार भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

4.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) i) आहार, शाकाहारियों ii) माँसाहारियों, शाकाहारियों iii) श्वसन, अनुपयुक्त iv) ऊर्जा, पोषी

ख) (i) (ख) से मेल खाता है (ii) (ग) से मेल खाता है, और (iii) (क) से मेल खाता है।

2) गैसीय, वायुमंडलीय, उत्पादक, अपघटक जीवों, कार्बनिक, निर्माण, दहन, कार्बन, वृद्धि, ताप-प्रवण स्तर

3) क) (ii) ख) (iv) ग) (i)

4) 75 प्रतिशत, 0.004 प्रतिशत, हिम, हिमनद

5) 1) ग 2) ग

6) ग

7) i) (ख) ii) (क) iii) (घ) iv) (ग)

8) i) पशुपालन प्रतिरूप में परिवर्तन आ गया है, भेड़ और बकरियों का स्थान गाय और भैंसों ने ले लिया है।

ii) मरुस्थल जाति के कृंतकों (rodent) का स्थान धीरे-धीरे अपेक्षाकृत अधिक वनस्पति वाले क्षेत्रों में पायी जाने वाली जातियों ने ले लिया है।

अंत में कुछ प्रश्न

1) ऊष्मागति विज्ञान के दूसरे नियम के अनुसार, एंट्रापी तब बढ़ती है जब ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में बदलती है। अतः एक पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर पर जाने वाली ऊर्जा 100 प्रतिशत दक्ष नहीं होती, उसका केवल कुछ भाग ही जीव में उनके कार्य करने के लिए बचा रह जाता है। शेष भाग या तो ऊष्मा के रूप में नष्ट हो जाता है या अनुपयुक्त रहता है।

2) ग

3) क) वायुमंडलीय नाइट्रोजन जो बहुत से स्वपोषियों द्वारा सीधे ही प्रयोग नहीं की जा सकती, जीवाणु की कुछ जातियों और नील-हरित कवक द्वारा उपयोग करने योग्य नाइट्राइटों और नाइट्रेटों में बदल दी जाती है। इसे नाइट्रोजन यौगिकरण कहते हैं।

ख) कार्बन को पौधे सीधे ही वायुमंडल से ले सकते हैं, जबकि नाइट्रोजन के लिए पौधों को ऐसे जीवाणु की आवश्यकता होती है जो नाइट्रोजन का यौगिकरण कर सकें क्योंकि नाइट्रोजन को पौधे सीधे ही वायुमंडल से नहीं ले सकते।

4) छिपकली

आवासीय निकेत	:	घरों की दीवारें
भोजन निकेत	:	कीट, यह दूसरे स्तर की मांसाहारी है, भोजन के लिए मकड़ी से स्पर्धा करती है
पुनरुत्पादन निकेत	:	गर्म आर्द्र वर्षा ऋतु में अंडे देती है
भौतिक एवं रासायनिक निकेत	:	निशाचर, ग्रीष्म ऋतु में सक्रिय जबकि जाड़ों में सुप्तावस्था में चली जाती है
कार्य	:	अपमार्जक के रूप में कार्य करती है

5) मानव प्रौद्योगिकीय, सामाजिक और अन्य सांस्कृतिक परिवर्तनों के माध्यम से वहन क्षमता का प्रसार करने में सफल हुआ है। वह खाद्य उत्पादन बढ़ा रहा है, बीमारियों पर नियंत्रण कर रहा है और पृथ्वी के आवास-योग्य क्षेत्रों को विकसित करने के लिए ऊर्जा और द्रव्य संसाधनों का बड़ी मात्रा में प्रयोग कर रहा है।

6) क) i) दुर्बल जातियों का विलुप्तीकरण
ii) विशेषज्ञता में वृद्धि
iii) नई जातियों की उत्पत्ति

ख) निष्प्रभाविता में केवल एक जाति लाभ उठाती है और दूसरी जाति अप्रभावित रहती है (+, 0), जबकि सहोपकारिता में दोनों ही जातियाँ एक-दूसरे का लाभ उठाती हैं। (+, +)।

इकाई 5 मनुष्य का सामाजिक पर्यावरण और जनसंख्या

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
5.2 मनुष्य का सामाजिक पर्यावरण
संस्कृति क्या है?
संस्कृति और पर्यावरण में अंतःसंबंध
5.3 प्रमुख सामाजिक संस्थाएँ
विवाह, परिवार और नातेदारी
धर्म
राजनीतिक संस्थाएँ
आर्थिक संस्थाएँ
5.4 भाषा और संप्रेषण
भाषा और संस्कृति
संचार
5.5 समाज, संस्कृति और व्यवहार
संस्कृति और मानव प्रभाव
आखेट और संग्रहण समाज
कृषक समाज
औद्योगिक समाज
5.6 जनसंख्या-विस्फोट
ऐतिहासिक सिंहावलोकन
चरघातांकी वृद्धि
राष्ट्रों में जनसंख्या विभिन्नता
5.7 जनसंख्या प्रक्षेपण सहित जनसंख्या वृद्धि के अभिलक्षण
आयतचित्र
जनसंख्या का आयु संबंधी ढाँचा
जन्म दर, मृत्यु दर और प्रव्रजन
5.8 मानव जनसंख्या का भविष्य
5.9 सारांश
5.10 अंत में कुछ प्रश्न
5.11 उत्तर

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई का उद्देश्य मनुष्य और उसके पर्यावरण के आपसी गहरे संबंधों को दर्शाना है। इन संबंधों की संस्कृति एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है। मानव जाति द्वारा उत्पन्न बढ़ता हुआ पारिस्थितिकीय असंतुलन आज गहरी चिंता का विषय बना हुआ है। मनुष्य जिस प्राकृतिक पर्यावरण में रहता है, अपने आपको कई तरीकों से उसके अनुकूल बनाना सीखता है। परंतु अक्सर हम यह भूल जाते हैं कि मनुष्य एक सांस्कृतिक पर्यावरण में भी रहता है जो काफी हद तक उनके व्यवहार को प्रभावित करने के साथ-साथ उनका निर्धारण भी करता है। उदाहरण के लिए, मनुष्य द्वारा किस प्रकार के पर्यावरणीय संसाधनों का उपयोग किया जाएगा, किस तरीके से उनका इस्तेमाल किया जाएगा और कौन इनका उपयोग करेगा, इसका निर्धारण सांस्कृतिक पर्यावरण, जैसे लोगों के सांस्कृतिक मानदंडों और मूल्यों द्वारा होता है। राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक संस्थाएँ, जो संस्कृति का एक हिस्सा हैं, प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करने के साथ-साथ उनके प्रयोग करने के तरीकों पर नियंत्रण रखती हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह समझ जाएँगे कि सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण किसी मानव कार्यकलाप को जानने के लिए कितना महत्वपूर्ण है।

सभी जीवों में केवल मनुष्य ही पर्यावरण को प्रभावित करने और उसे परिवर्तित करने की क्षमता रखता है। इस इकाई में आप यह अध्ययन करेंगे कि मानव जाति शुरू में धीरे-धीरे और हाल ही में विस्फोटक रूप से फली-फूली है। आप यह भी अध्ययन करेंगे कि मानव जनसंख्या के आकार, आयु और लिंग के आधार पर संघटन तथा जनसंख्या की वृद्धि दर, न केवल संपूर्ण विश्व में बल्कि अन्य देशों और विभिन्न क्षेत्रों में निरंतर परिवर्तित होते हुए घटक हैं। आप देखेंगे कि किसी जनसंख्या का आयु और लिंग के आधार पर संघटन, जनसंख्या आयतचित्र में लाभकारी ढंग से कैसे दर्शाया जा सकता है। इस जनसंख्या आयतचित्र से न केवल हम यह बता सकते हैं कि पिछले कई वर्षों से जनसंख्या किस प्रकार परिवर्तित हुई है बल्कि भविष्य में इसकी क्या स्थिति होगी उसका भी अंदाज़ा लगा सकते हैं। नवीनतम आँकड़ों द्वारा हमें यह पता चलता है कि अब प्रत्येक 35 साल में विश्व की जनसंख्या दुगुनी होती जा रही है। पृथ्वी की पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में कोई वास्तविक प्रगति तब तक नहीं हो सकती है, जब तक जनसंख्या वृद्धि-दर को घटाने के तरीकों को ढूँढ नहीं लिया जाता। अतः मानव जनसंख्या की संरचना और वृद्धि तथा उसके भविष्य के दृश्य लेखों को स्पष्ट रूप से समझना अत्यावश्यक है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संस्कृति को परिभाषित कर सकेंगे और संस्कृति तथा भौतिक पर्यावरण में उनके संबंधों की रूपरेखा भी प्रस्तुत कर सकेंगे,
- विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के मुख्य लक्षण बताते हुए उनका वर्णन कर सकेंगे और यह समझा सकेंगे कि मानव की सामाजिक अंतःक्रिया के लिए भाषा तथा संप्रेषण का कितना महत्व है,
- यह वर्णन कर सकेंगे कि किस प्रकार मानव जाति और उसके पर्यावरण के संबंधों के फलस्वरूप विभिन्न समाजों का विकास हुआ है,
- मानव जनसंख्या द्वारा अनुसरित वृद्धि के स्वरूप के कारण बता सकेंगे,
- जनसांख्यिकी संक्रमण को परिभाषित कर सकेंगे और जनसंख्या आयतचित्रों को, जनसंख्या विस्तार में परिवर्तन, के संदर्भ में समझा सकेंगे,
- मानव जनसंख्या के भविष्य के विषय में विभिन्न प्रक्षेपित दृश्य लेखों की रूपरेखा बना सकेंगे।

5.2 मनुष्य का सामाजिक पर्यावरण

आप यह अध्ययन कर चुके हैं कि भौतिक पर्यावरण की रचना किन-किन चीजों से मिलकर हुई है। आप इकाई I में संक्षिप्त रूप से सामाजिक पर्यावरण के विषय में भी पढ़ चुके हैं। आइए, अब हम सामाजिक पर्यावरण के विषय में कुछ विस्तार से अध्ययन करें। संपूर्ण विश्व में मानव ने अपने कार्यकलापों को संपन्न करने के लिए अपने आपको समूहित किया है। ये लोगों के समूह एक निश्चित संगठन से संबद्ध होते हैं। वे सर्वोत्तम उद्देश्य से कार्य करते हैं तथा उनकी मान्यताएँ, अभिवृत्तियाँ और कार्य करने के तरीके समान होते हैं। इस प्रकार के समूहों को समाज कहते हैं। प्रत्येक समाज का अपना-अपना सांस्कृतिक पर्यावरण होता है और किसी समाज का व्यक्ति-विशेष उस संस्कृति द्वारा निर्देशित होता है, जिसमें वह रहता है। अतः समाज और उसकी संस्कृति ही उसके सामाजिक पर्यावरण को बनाते हैं (चित्र 5.1)।

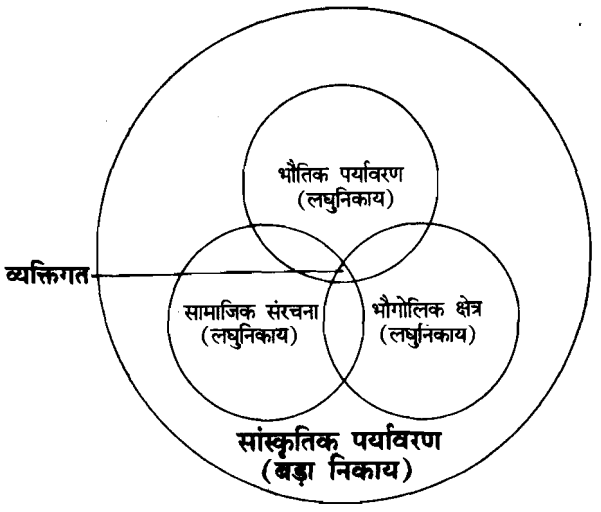

चित्र 5.1 : सांस्कृतिक पर्यावरण का संपूर्ण मॉडल

5.2.1 संस्कृति क्या है?

संस्कृति एक ऐसा अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है जो सामाजिक पर्यावरण और सामाजिक क्रिया का निर्धारण करता है। व्यक्ति-विशेष का व्यवहार उस संस्कृति द्वारा नियमित होता है जिसमें वह रहता है। संस्कृति व्यक्ति को एक अत्यंत विस्तृत क्षेत्र के वैकल्पिक व्यवहारों में से एक विशेष प्रकार के व्यवहार का चुनाव करने में सहायक सिद्ध होती है, जो उसकी जैविक विरासत द्वारा उसे अनुमत है। यह एक ऐसी जटिल संपूर्णता है जिसके अंतर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा और कई अन्य क्षमताओं तथा आदतों का समावेश होता है जिसे व्यक्ति ने समाज के एक सदस्य के रूप में अर्जित किया है।

यद्यपि संपूर्ण विश्व की मानव जाति की संस्कृतियों में एक आश्चर्यजनक विभिन्नता दिखाई पड़ती है, फिर भी प्रत्येक संस्कृति मानव कार्यकलापों के कुछ ऐसे क्षेत्रों को सम्मिलित करती है जिनको संस्कृति के विभिन्न पक्षों के रूप में जाना जाता है। ये पक्ष आसपास के भौतिक पर्यावरण से अनुकूलन करने के साधन हैं। इन पक्षों की मानव विज्ञानियों ने निम्नलिखित संपूर्ण सूची दी है :

- भौतिक संस्कृति और इसकी अनुशास्तियाँ
  क) प्रौद्योगिकी
  ख) अर्थशास्त्र
- सामाजिक संस्थाएँ
  क) सामाजिक संगठन
  ख) शिक्षा
  ग) राजनीतिक संरचनाएँ
- मानव और ब्रह्मांड
  क) विश्वास-प्रथाएँ
  ख) शक्ति का नियंत्रण
- सौंदर्य शास्त्र
  क) ग्राफिक्स और प्लास्टिक कला
  ख) लोकवार्ता
  ग) संगीत, नाटक और नृत्य
- भाषा

इनमें से कुछ पक्षों पर हम इस इकाई के बाद वाले भागों में चर्चा करेंगे।

5.2.2 संस्कृति और पर्यावरण में अंत:संबंध

किसी समाज द्वारा अपने लिए सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के विशिष्ट तंत्रों को अपनाने का

निर्धारण अधिकांशतः उसका भौतिक पर्यावरण करता है जिसमें जलवायु, स्थलाकृति, प्राकृतिक संसाधन और अन्य सम्मिलित होते हैं। अतः हम यह पाते हैं कि प्रायः सभी प्रमुख कृषक बस्तियाँ नदी के किनारे उपजाऊ ज़मीन तथा पर्याप्त जल-पूर्ति के क्षेत्रों के करीब स्थित होती हैं। भारत में सिंधु घाटी की सभ्यता या मिस्र में नील नदी के समीप विकसित सभ्यता इस तर्क को स्पष्ट करती है। फिर भी, यह समझना महत्वपूर्ण है कि समान प्रकार की जलवायु में विभिन्न संस्कृतियों का विकास हो सकता है। अतः सांस्कृतिक विकास में भौतिक पर्यावरण निश्चयात्मक तत्व नहीं होता है।

जब मनुष्य का सांस्कृतिक विकास तथा ज्ञान स्तर एक निश्चित अवस्था तक पहुँच जाता है तब न केवल उसकी प्रकृति पर आश्रितता आंशिक रूप से कम हो जाती है बल्कि कभी-कभी यह प्रकृति पर प्रभुत्व में परिवर्तित हो जाती है। प्राकृतिक संसाधनों का अति-शोषण हो जाने के कारण पारिस्थितिक असंतुलन पैदा हो जाता है। आधुनिक औद्योगिक समाजों में वनोन्मूलन, कंक्रीट-जंगलों द्वारा प्राकृतिक वनों का स्थान लेना, वन्य जीवन का विनाश आदि संस्कृति द्वारा भौतिक पर्यावरण को कठोर रूप से प्रभावित करने के उदाहरण हैं। यह भी देखा गया है कि समाज द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तब तक संभव नहीं होता है, जब तक उसका सांस्कृतिक विकास एक निश्चित स्तर तक नहीं पहुँच जाता है।

बोध प्रश्न 1

बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत। दिए गए खानों में सही के लिए "स" और गलत के लिए "ग" लिखिए:

क) समाज का सांस्कृतिक पर्यावरण अधिकांशतः उसके भौतिक पर्यावरण द्वारा निर्धारित नहीं होता है। ( )

ख) सिंधु घाटी तथा मिश्री सभ्यताओं का नदियों के किनारे विकसित होने का कारण बाढ़ आदि जैसी विषमताओं के विरुद्ध संघर्ष करना था। ( )

ग) विश्व आश्चर्यजनक विविधताओं को दिखलाती हुई अनेक संस्कृतियों की एक टोकरी है। ( )

घ) समाज में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तभी संभव होता है जब उसका सांस्कृतिक विकास एक निश्चित श्रेणी तक पहुँच जाता है। ( )

5.3 प्रमुख सामाजिक संस्थाएँ

सामाजिक संस्थाएँ, लोगों के आपसी संबंधों, उनके रहन-सहन के ढंग या उनके सामाजिक पर्यावरण के निर्धारण में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। अब हम प्रमुख सामाजिक संस्थाओं के विषय में संक्षेप में चर्चा करेंगे।

5.3.1 विवाह, परिवार और नातेदारी

प्रायः किसी न किसी रूप में समस्त मानव समाज में विवाह की संस्था सार्वदेशिक रूप में पाई जाती है। प्रजनन द्वारा जाति का स्थायीकरण करने में मानव की सबसे मूलभूत जैव आवश्यकता का नियमन विवाह द्वारा होता है। मानव समाज में सार्वभौमिक होने के बावजूद विवाह की संस्था अपने रूपों और प्रकारों में अत्यंत भिन्न है। सामान्यतया विद्वान विवाह के दो रूपों में ही अंतर करते हैं। जो इस प्रकार हैं: (क) एक विवाह प्रथा, और (ख) बहु विवाह प्रथा।

एक पुरुष का एक स्त्री से विवाह को एक विवाह कहते हैं। बहु विवाह के दो उप-प्रकार हैं: बहुपति प्रथा, जहाँ एक स्त्री एक से अधिक पुरुषों से विवाह करती है और बहुपत्नी प्रथा, जहाँ एक पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करता है। तथापि, समाज में एक विवाह प्रथा ही सर्वाधिक रूप से प्रचलित है ऐसा इसलिए है क्योंकि मानव जाति में पुरुष-स्त्री अनुपात लगभग बराबर ही है तथा बहु विवाह में परिवार का भरण-पोषण करने की आर्थिक कठिनाइयाँ भी हैं।

विवाह का प्राथमिक परिणाम परिवारों और गृहस्थियों के सहयोगी समूहों की रचना होती है। जनगणना ब्यूरो द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार परिवार, उस इकाई को कहते हैं **जो रक्त, विवाह अथवा गोद लेने के कारण संबंधित दो या दो से अधिक व्यक्तियों के समूह के साथ-साथ रहने से बनता है**। परिवार बच्चों की देखभाल करने में सहायक सिद्ध होता है। मानव शिशुओं के लिए परिवार द्वारा देखभाल आवश्यक है, क्योंकि उनकी आश्रितता अवधि लंबी होती है। तीन मुख्य प्रकार के परिवार स्वीकृत हैं:

- संयुक्त परिवार,
- विस्तृत परिवार, और
- नाभिक (मूल) परिवार।

संयुक्त परिवार वह परिवार है जिसमें नव-विवाहित जोड़ा अपने माता-पिता के साथ आकर रहता है। अधिकांशतया नव-विवाहित जोड़ा वर के माता-पिता के साथ रहता है। इस प्रकार का परिवार बहुत ही सामान्य है और प्रमुख रूप से यह भारत के गाँवों में पाया जाता है। विस्तृत परिवार वे कहलाते हैं, जिसमें माता-पिता तथा उनके बच्चों के अलावा, दूसरे रिश्तेदार और उनके परिवार भी साथ रहते हों। नाभिक (मूल) परिवार जो केवल पति, पत्नी और उनके बच्चों से बना होता है, अब यह पहले दोनों प्रकार के परिवारों के मुकाबले अधिकाधिक आदर्श बनता जा रहा है।

नातेदार वे लोग होते हैं जो एक-दूसरे से किसी वंश, कुल और विवाह के संयोजन द्वारा संबंधित होते हैं। मुख्यतया नातेदारी की शब्दावली उन लोगों पर लागू होती हैं जिनमें रक्त संबंध होते हैं। अतः नातेदारी विवाह की संस्था से विकसित होती है। परंतु एक बार नातेदारी स्थापित होने के बाद यह विवाह का नियमन और अक्सर विवाह के लिए साथी के चुनाव को भी प्रतिबंधित करती है।

5.3.2 धर्म

धर्म हमारे सामाजिक पर्यावरण का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है। धर्म **प्राणियों, शक्तियों अथवा अस्तित्वों की अलौकिक व्यवस्था से संबद्ध लगभग सुसंगत विश्वासों और व्यवहारों को कहते हैं।** अलौकिक व्यवस्था में वही अस्तित्व शामिल किए जाते हैं, जो एक विशिष्ट समूह के मतानुसार **अनानुभविक** होते हैं, जैसे—कुछ लोग उड़नतश्तरियों का वास्तविक अस्तित्व मानते हैं, लेकिन कुछ अन्य लोग इन्हें अलौकिक पवित्र अस्तित्व के रूप में मानते हैं।

धर्म और पर्यावरण

लोगों के धार्मिक विश्वासों, कर्मकांडों और अंधविश्वासों पर उनके पर्यावरण तथा आर्थिक गतिविधियों का सीधा प्रभाव पड़ता है। वे वस्तुएँ जिन्हें पवित्र बना दिया जाता है, वही उस पर्यावरण में एक विशेष महत्व रखती हैं। उदाहरण के लिए, गाय हिंदुओं द्वारा पवित्र मानी जाती है क्योंकि कृषक समाजों में पशु अत्यंत महत्वपूर्ण संसाधन है। गायों को प्रदत्त धार्मिक पवित्रता, समुदाय में इस महत्वपूर्ण संसाधन को सुरक्षित रखने में सहायता करती है।

कई प्राकृतिक घटनाएँ जैसे—वर्षा जिसे कृषक समाज ने देवता स्वरूप मान लिया है क्योंकि वर्षा उनके जीवित बने रहने के लिए अनिवार्य है और इसे किसी भी तरह नियंत्रित करना उनके लिए आवश्यक है। ऐसे धार्मिक विश्वास तथा व्यवहार आज की परिस्थितियों में अपने विशिष्ट आर्थिक और पर्यावरणीय संदर्भ खो चुके हैं और वे नए उत्पादन के तरीके तथा निश्चित बहुमूल्य संसाधनों के उपभोग में बाधा बन जाते हैं।

5.3.3 राजनीतिक संस्थाएँ

सबसे पहले आपको यह जानना होगा कि लोग मिल-जुल कर कैसे रहते हैं।

वह क्या है जो लोगों को इकट्ठा रखता है? किस प्रकार परस्पर विरोधी विचारधाराओं और रुचियों वाले लोग एक-दूसरे से सहयोग करते हैं? तथा कैसे उन लोगों को उस प्रकार का काम करने के लिए एकत्रित किया जाता है, जिसे वे नहीं करना चाहते हैं? राजनीतिक संस्थाओं द्वारा इस प्रकार का संगठन संभव है। राजनीतिक प्रक्रिया मूलतः लोक-उद्देश्यों

की प्राप्ति को विनियमित करने से संबद्ध होती है। समाज में उपलब्ध संसाधनों के स्वामित्व को नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है। इसलिए राजनीतिक प्रक्रिया एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके अतिरिक्त, समाजशास्त्रियों के अनुसार, राजनीतिक प्रक्रिया व्यवहार मानकों की स्थापना तथा उनको लागू करने में सहायक होती है और व्यक्तियों का एक प्रस्थिति से दूसरी प्रस्थिति तक जाने के परिचालन से होता है। एक सामाज के सभी सदस्य समान रूप से निर्णयन प्रक्रिया में भागीदार नहीं बन सकते हैं, वे केवल कुछ ही निर्णय लेने में सक्षम हैं। इनमें ऐसे मुद्दे भी शामिल हैं, जैसे–सामान्यतः कौन निर्णय लेगा और किसका निर्णय समाज के दूसरे सदस्यों को स्वीकार्य होगा। आर्थिक संस्थाएँ ही राजनीतिक संस्थाओं की ताकत होती हैं।

5.3.4 आर्थिक संस्थाएँ

परंपरागत रूप में आर्थिक गति वह प्रक्रिया है जो उत्पादन, वितरण और उपभोग से संबद्ध होती है। यह व्यापक रूप से, मनुष्यों की आवश्यकताओं के लिए वस्तुओं और सेवाओं की व्यवस्था करती है। उत्पादित वस्तु लोगों की आवश्यकताओं की संतुष्टि का "साधन" है। अतः जो कार्य प्रत्यक्ष रूप से आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है, वह आर्थिकेतर है। उदाहरण के लिए, भोजन बनाने का कार्य आर्थिक है, परंतु उसे खाना आर्थिक गतिविधि नहीं है। एक आर्थिक गतिविधि पर्याप्त वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए दुर्लभ संसाधनों का उपयोग करती है। इस प्रक्रिया में उत्पादन के चार कारक अर्थात् भूमि, मज़दूर, पूँजी और उद्यमवृत्ति शामिल होते हैं। एक ही समय के प्रत्येक आर्थिक कार्य में ये चारों कारक शामिल न हों, परंतु ये कारक एक सामाज की समस्त आर्थिक गतिविधि के लिए अनिवार्य होते हैं। इसके अलावा एक सामाज की आर्थिक गतिविधि को उस समाज के निश्चित मानकीय प्रतिमानों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। हम इन्हें 'आर्थिक संस्थाएँ' कहते हैं। संपत्ति, व्यवसाय, संविदा, बाजार तथा धन संबंधी संस्थाएँ आर्थिक संस्थाओं के सामान्य उदाहरण हैं। यद्यपि उनका रूप काफी भिन्न है, परंतु उनके तत्व समान ही रहते हैं। भूमि संपत्ति संबंधी संस्थाएँ प्रत्येक व्यक्ति के दुर्लभ तथा बहुमूल्य संसाधनों पर अधिकारों को परिसीमित करती हैं। ये संसाधन चल और अचल दोनों तरह की संपत्ति हो सकते हैं। कुछ हद तक प्रत्येक समाज में श्रम-विभाजन होता है, क्योंकि समाज के सदस्यों की आयु तथा लिंग के अनुसार कुछ न कुछ श्रम-विभाजन होता ही है।

विश्व के विभिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न अर्थव्यवस्थाएँ हैं। उनके विकास के दौरान मानव समाज आखेट-संग्रहण अवस्था से होता हुआ पशु चारक किसानों की अवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था तक आगे बढ़ गया है। मनुष्य की आर्थिक गतिविधि अर्थात् उत्पादन के तरीके, श्रम-विभाजन इत्यादि मनुष्य के भौतिक पर्यावरण तथा उसके ज्ञान स्तर पर भी सीधे आश्रित रहती है। भौतिक पर्यावरण हमें विशिष्ट संसाधन जुटाता है, जिन्हें लोगों द्वारा जीवित रहने के लिए उपयोग में लाना पड़ता है तथा ज्ञान का स्तर, विशेष रूप से प्रौद्योगिकीय प्रगति उन लोगों के उत्पादन के तरीकों को निर्धारित करती है।

चूँकि आर्थिक गतिविधि एक व्यक्ति के जीवित रहने से बिल्कुल सीधा संबंध रखती है, इसलिए आर्थिक पर्यावरण लोगों को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है। फिर भी, यह समझना आवश्यक है कि आर्थिक गतिविधि स्वयं की संपूर्ण सांस्कृतिक पर्यावरण से अत्यधिक प्रभावित होती है।

उपर्युक्त संस्थाओं के अतिरिक्त समाज में शिक्षण एक महत्वूर्ण संस्था हैं। शिक्षा समाज के सदस्यों को सभ्य बनाने में सहायता करती है तथा ज्ञान, कौशल, अभिवृत्तियों और मूल्यों को औपचारिक एवं अनौपचारिक व्यवस्थाओं द्वारा हस्तांतरित करती है, जिससे शिक्षा द्वारा लोगों को पर्यावरण की जानकारी देकर पर्यावरण के प्रति उनके दायित्व को समझाया जा सकता है।

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित वाक्यों में रेखांकित किए गए शब्दों में से गलत शब्द काट दीजिए।

क) सामाजिक संस्थाएँ, सांस्कृतिक पर्यावरण का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है/नहीं है

ख) आजकल नाभिक (मूल) परिवार एक आदर्श परिवार बन रहे हैं/नहीं बन रहे हैं।

ग) धार्मिक विश्वास का पर्यावरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है/सीधा प्रभाव पड़ता है।

घ) उपलब्ध संसाधनों का नियंत्रण राजनीतिक सत्ता द्वारा किया जा सकता है/नहीं किया जा सकता है।

च) समाज के सभी सदस्य निर्णयन प्रक्रिया में समान रूप से भाग ले सकते हैं/नहीं ले सकते हैं।

छ) संपत्तियों की संस्थाएँ दुर्लभ और बहुमूल्य संसाधनों पर व्यक्ति के अधिकार के परिसीमन को सीमित करती हैं/सीमित नहीं करती हैं।

ज) संपूर्ण सांस्कृतिक पर्यावरण द्वारा आर्थिक गतिविधि बहुत अधिक प्रभावित होती है/नहीं होती है।

5.4 भाषा और संप्रेषण

भाषा की रचना करने की क्षमता और इस क्षमता के द्वारा समुदाय के अन्य साथी सदस्यों से संप्रेषण करना एकमात्र मानवीय कार्य है। ध्वनियों के स्वरूपों को जिन्हें निश्चित अर्थ दिए गए हैं, भाषा कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि भाषा की प्रकृति प्रतीकात्मक है। बोली जाने वाली भाषा में प्रतीक ध्वनियाँ हैं, जबकि लिखित भाषा में प्रतीक आलेखी हैं। भिन्न-भिन्न लोगों में प्रयोग की जाने वाली भाषाएँ अभूतपूर्व विविधता दिखलाती हैं।

5.4.1 भाषा और संस्कृति

जैसा कि आपने पहले ही यह अध्ययन कर लिया होगा कि संस्कृति का नितांत उद्गम मनुष्य की संप्रेषण क्षमता पर निर्भर करता है। चूँकि भाषा और संस्कृति का आपसी संबंध इस सहायक स्तर पर सीमित नहीं है, परंतु यह एक दोहरा अन्योन्य (पारस्परिक) संबंध है। भाषा न केवल संस्कृति को प्रतिबिंबित करती है बल्कि यह उसे बहुत ही मूलभूत तरीके से साँचे में ढ़ालती भी है।

भाषा लोगों की मुख्य विषय-वस्तुओं, रुचियों और मामलों को प्रतिबिंबित करती है। सभी भाषाई रूपों का अर्थ होता है तथा वे अनुभवों की उन श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो एक लंबी ऐतिहासिक परंपरा का परिणाम है, तथा जो एक विशिष्ट सांस्कृतिक पर्यावरण से जुड़ी हुई हैं। उदाहरण के लिए, घर शब्द एक छत के नीचे रहने वाले लोगों को निरूपित करता है जबकि परिवार शब्द सदस्यों की लंबी परंपरा को निरूपित करता है। भाषा के अनेकों कार्यों को निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

1) मूलतः भाषा संप्रेषण का साधन है और इसी कारण से यह संस्कृति को संभव बनाती है।

2) भाषा के द्वारा ही मानदंडों और नियमों को लागू तथा सामाजिक व्यवस्था का अनुरक्षण किया जाता है।

3) भाषा के कारण लोगों में ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार होता है तथा अन्य लोगों से इसके आदान-प्रदान में सहायता मिलती है।

4) भाषा मनुष्य को अपने वर्तमान समय और आकाश से दूर के अनुभवों को विवरण देने में सक्षम बनाती है।

5.4.2 संचार

जैसा कि आप जानते हैं कि संचार की आवश्यकता के कारण ही भाषा का विकास हुआ। प्रारंभ में मानव जाति संप्रेषण कार्य केवल मौखिक रूप से ही करती थी। तत्पश्चात् छपाई आई और अब हमें इलेक्ट्रॉनिक माध्यम भी उपलब्ध हैं। मानव समाज के विकास में सामाजिक अंतःक्रिया और संप्रेषण ने एक बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए, अंडमान का आदिवासी समुदाय–आंगीस (onges) जो मुख्य भू-भाग के संपर्क से कटा हुआ होने के कारण अभी भी विकास के अत्यंत पिछड़े चरण में है।

संचार संप्रेषण एक-दूसरे के विश्वासों और संस्कृति की जानकारी स्थापित करने में प्रभावी योगदान कर सकता है। इसके द्वारा इस भू-मंडल की विशाल मानवता को एक आदर्श

भू-मंडल परिवार बनाया जा सकता है, अर्थात् अनेकता में एकता को देखा जा सकता है। यह इस चेतना का निर्माण कर सकती है कि हमें इस पृथ्वी पर संसाधनों को आपस में बाँटना है जिससे हमारी नियति और हमारे ध्येय समान हों।

5.5 समाज, संस्कृति और व्यवहार

हर व्यक्ति विशेष सामाजिक पर्यावरण में उसकी प्रस्थिति और भूमिकाओं से निर्धारित होता है। साथ में वह सामाजिक स्तरण में उसके स्थान या स्तर पर भी निर्भर करता है। इससे अधिकांशतः यह निश्चित होता है कि वह व्यक्ति संभवतः किन लोगों से अंतःक्रिया करेगा। कभी-कभी इस कारण उसका सामाजिक संसर्ग काफी हद तक सीमित भी हो जाता है।

व्यापक अर्थ में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति उस संस्कृति की रचना है, जिसमें वह रहता है। उसकी संस्कृति तथा उसके मानदंडों, मान्यताओं और प्रथाओं के अनूठे तरीकों को "सामाजीकरण प्रक्रिया" कहते हैं।

सामाजीकरण का लक्ष्य समाज के सदस्यों को उनके सांस्कृतिक और भौतिक पर्यावरण को सार्थक ढंग से अनुकूलित करने के लिए तैयार करना है। सामाजीकरण जीवन के आरंभ से ही शुरू हो जाता है। हम यह भी कह सकते हैं कि बालक द्वारा बोलने की क्षमता प्राप्त करने से भी पहले यह शुरू हो जाता है। जैसे-जैसे बालक बड़ा होता है, उसके सामाजिक पर्यावरण का विस्तार उसके परिवार से बाहर के समाज से प्रारंभ हो जाता है। उम्र के साथ-साथ उसकी सामाजिक भूमिकाएँ भी तेजी से बदलती रहती हैं।

परंतु व्यावहारिक दृष्टि से 20-25 वर्ष की उम्र में एक व्यक्ति दिए गए सांस्कृतिक और भौतिक पर्यावरण में जीवित रहने के लिए आवश्यक, अधिकतर महत्वपूर्ण चीजों को सीख लेता है।

5.5.1 संस्कृति और मानव प्रभाव

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक पर्यावरण के ये पक्ष संस्कृति, धर्म, राजनीतिक और आर्थिक संस्थाएँ मानव-जाति के भौतिक पर्यावरण के संबंध का निर्धारण करते हैं। चूँकि विभिन्न समाजों का विकास हजारों वर्षों में हुआ है, इसलिए इन संबंधों में भी परिवर्तन हुए हैं।

आइए, अब हम यह विचार करें कि किन-किन तरीकों से हम अपने पर्यावरण के अन्य जैव तथा अजैव अवयवों से अंतःक्रिया करते हैं। इन अंतःक्रियाओं के समुचित अध्ययन के लिए हम आखेट-संग्रहण, कृषक तथा औद्योगिक समाजों पर प्रकाश डालेंगे। इन तीन सामाजिक व्यवस्थाओं का अध्ययन हमें सांस्कृतिक विकास के दौरान हुए मूलभूत परिवर्तनों को दर्शाता है।

5.5.2 आखेट और संग्रहण समाज

आखेट और संग्रहण करने वाले समाजों के विषय में जो भी जानकारी हमें प्राप्त है, वह हमें पुरातात्विक खोजों से तथा आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के संस्कृति अवशेषों के अध्ययन से मिली है। इन अध्ययनों से हम यह पाते हैं कि वे लोग एक ऐसे प्राकृतिक वातावरण में रहते थे जो प्रकृति के बहुत निकट था। वे अपने परिवेश के बारे में बहुत कुछ जानते थे। उनकी यह गहरी पारिस्थितिकीय जानकारी आज के विद्यमान आखेट-संग्रहण समाज में स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। आखेट तथा संग्रहण करने वाले लोग खानाबदोश और घुमक्कड़ थे, जो पेड़-पौधों में भोजन ढूँढते तथा आदिम हथियारों का प्रयोग करके विभिन्न प्रकार के जानवरों को पकड़ते थे। चूँकि वे अपनी दक्षता की दृष्टि से दूसरी प्रजातियों के मुकाबले ज्यादा विकसित नहीं थे इसलिए उनकी जनसंख्या बहुत अधिक नहीं बढ़ी।

आखेट और संग्रहण करने वाले समाज को हम पर्यावरण हितैषी मान सकते हैं, क्योंकि उन्होंने केवल अपनी आवश्यकताओं के लिए ही पर्यावरण का उपभोग किया था। पेड़-पौधों को जो क्षति उनके नष्ट करने तथा काटने और अवशेषों को पीछे छोड़ने से होती थी उसे पर्यावरण पुनर्जनन द्वारा आसानी से ठीक कर लेता था।

5.5.3 कृषक समाज

धीरे-धीरे मानव जाति दृष्य फसलों पर अधिकाधिक तथा जंगली प्रजातियों पर कम से कम निर्भर होने लगी। सबसे पहले किसानों ने जीवन-निर्वाह के लिए या अपनी आवश्यकता के लिए खेती की थी। इससे केवल किसानों के परिवारों को ही भोजन मिल सकता था। चूँकि पहले प्रत्येक किसान केवल कुछ ही लोगों के लिए भोजन जुटा सकता था, इसलिए आरंभ के गाँव छोटे थे तथा उन गाँवों में रहने वालों की जनसंख्या कम होती थी।

शहरों का आविर्भाव

निर्वाह-स्तर हल और दूसरे धातु के उपकरणों के विकास के कारण निर्वाह स्तर खेती ने ज्यादा विकसित रूप ले लिया है। जैसे-जैसे समय बीतता गया, लोगों ने अपने पड़ोसी गाँव से व्यापार करना आरंभ कर दिया। कृषि प्रौद्योगिकी और व्यापार में उन्नति के कारण मानव जनसंख्या अधिक बढ़ने लगी और गाँव विकसित होकर शहर तथा मुख्य व्यापारिक केंद्र बन गए। चूँकि कृषक समाज ने व्यापार को महत्व देना आरंभ कर दिया, इसलिए उनका प्राकृतिक पर्यावरण से संबंध जो आखेट और संग्रहण समाज में समान रूप से प्रकट होता है, कमजोर पड़ गया। परंतु किसानों की प्रकृति और अभिवृत्ति आखेट और संग्रहण करने वालों के बहुत समान थी। जन-समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति प्राकृतिक पर्यावरण की क्षति पहुँचाए बिना होती थी।

5.5.4 औद्योगिक समाज

औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप कृषक समाज का रूपांतरण औद्योगिक समाज में हो गया था। औद्योगिक क्रांति ने समाज की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में प्रभावशाली परिवर्तन ला दिया। जैसे-जैसे उद्योग बढ़े, ईंधन, आहार, खनिज़ तथा लकड़ी जैसी सामग्री का अंतर्वाह शहरों में तीव्रता से बढ़ा है। औद्योगिक क्रांति के कारण ही नई औषधियों का विकास हुआ और छूत की बीमारियों पर कीटनाशक दवाइयों तथा उन्नत सफाई प्रबंधों द्वारा बेहतर नियंत्रण भी विकसित हुए। इस महत्वपूर्ण नए विकास ने मानव की उत्तरजीविता बढ़ा दी है। अतः लोग ज्यादा समय तक जीवित रहने लग गए हैं और जनसंख्या में तीव्रता से बढ़ोत्तरी होने लगी, जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या विस्फोट हुआ। वह एक ऐसा समय था, जब जन-समुदाय का पर्यावरण पर विशिष्ट प्रभाव पड़ा। आइए, अब हम मानव जन-समुदाय की कुछ विशेषताओं का अध्ययन करें और देखें कि ये कैसे पर्यावरण पर प्रभाव डालते हैं।

बोध प्रश्न 3

क) कृपया तीसरे खाने में उपयुक्त कालम-शीर्षक दीजिए।

ख) नीचे दिए गए शब्दों को उपयुक्त खानों के नीचे व्यवस्थित कीजिए।

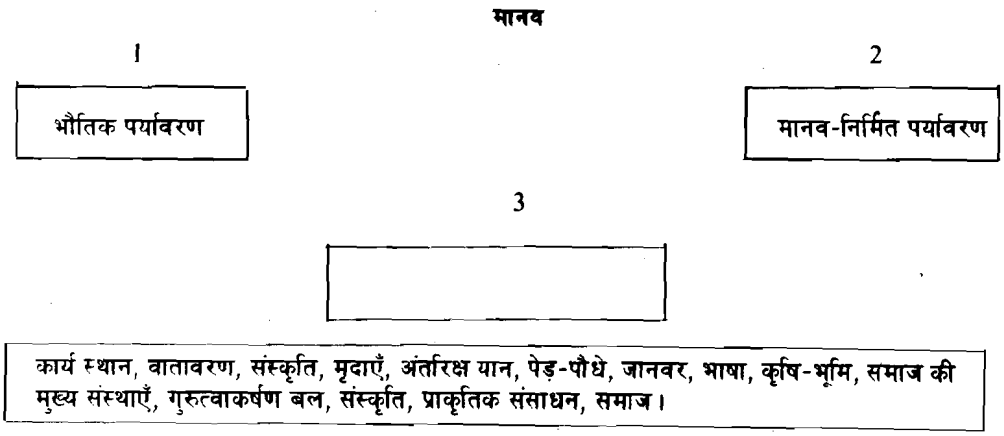

कार्य स्थान, वातावरण, संस्कृति, मृदाएँ, अंतरिक्ष यान, पेड़-पौधे, जानवर, भाषा, कृषि-भूमि, समाज की मुख्य संस्थाएँ, गुरुत्वाकर्षण बल, संस्कृति, प्राकृतिक संसाधन, समाज।

5.6 जनसंख्या-विस्फोट

पिछली इकाई में आपने यह अध्ययन किया है कि अनिवार्यतः जनसंख्या की बढ़ोत्तरी या संवृद्धि किसी एक वर्ष-विशेष में जन्म लेने वालों तथा मरने वालों की संख्या के अंतर के

बराबर होती है। वृद्धि-दर को जनसंख्या प्रतिशत के रूप में परिकलित किया जाता है। दो प्रतिशत वृद्धि दर का अर्थ है प्रत्येक वर्ष में दो व्यक्ति प्रति 100 या 20 व्यक्ति प्रति 1000 की जनसंख्या से जुड़ रहे हैं। अतः वृद्धि दर, जन्म दर के अतिरिक्त मृत्यु दर पर भी निर्भर करती है।

"जनसंख्या-विस्फोट" (population explosion) शब्द लोगों की संख्या में अचानक और प्रभावशाली वृद्धि को इंगित करता है, जो हाल के वर्षों में देखी गई है। इस शब्द का प्रयोग कहाँ तक न्यायसंगत है? इसके लिए निम्नलिखित तथ्यों पर विचार कीजिए:

लगभग 50,000 वर्ष पूर्व अफ्रीका में मनुष्य अपने वर्तमान रूप प्राज्ञ मानव (*Homo sapiens*) में प्रकट हुआ था। अधिकांश मानव इतिहास के दौरान उसकी कुल जनसंख्या थोड़ी ही रही। करीब 2000 वर्ष पूर्व, ईसा मसीह के समय में जनसंख्या 30 करोड़ से भी कम थी। 1850 वर्ष तक यह 100 करोड़ तक पहुँच गई और तब से यह बहुत तेजी से बढ़ती चली जा रही है, जो करीब 135 वर्षों में 500 करोड़ से भी अधिक हो गई है। तालिका 5.1 में आप देख सकते हैं कि जनसंख्या की वृद्धि कैसे हुई। जहाँ सबसे पहले 10 लाख जनसंख्या पहुँचने में कई हज़ार साल लगे, वहाँ आज 42 सालों में मानव जनसंख्या 400 करोड़ (400 करोड़ से 800 करोड़) तक पहुँचने के लिए अग्रसर है।

तालिका 5.1 : विश्व जनसंख्या की वृद्धि

इन वर्षों के दौरान	विश्व जनसंख्या को इस संख्या तक पहुँचने के लिए	लिया गया समय
आदि मानव से ईसा	30 करोड़	संपूर्ण मानव इतिहास के दौरान
0-1500 ई.	50 करोड़	1500 वर्ष
1500-1850 ई.	100 करोड़	350 वर्ष
1850-1925 ई.	200 करोड़	75 वर्ष
1925-1960 ई.	300 करोड़	35 वर्ष
1960-1975 ई.	400 करोड़	15 वर्ष
1975-1985 ई.	500 करोड़	10 वर्ष

अब आप नीचे दिए गए चित्र 5.2 को देखिए। यह स्पष्ट रूप से दो चीजें दर्शाता है: पहला, लगभग सत्रहवीं शताब्दी तक मानव जनसंख्या की मंद गति से वृद्धि तथा दूसरा, तत्पश्चात् जनसंख्या का शीघ्रता से विस्फोट। आप यह मानेंगे कि आज जो जनसंख्या की परिस्थिति है, वह समस्त मानव इतिहास की स्थिति से काफी भिन्न है।

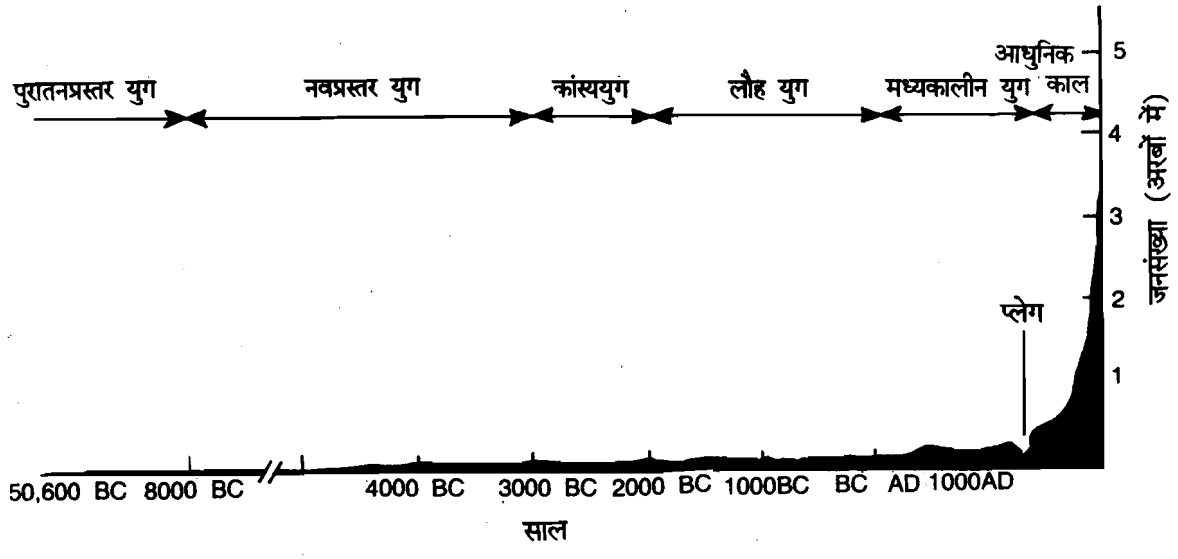

चित्र 5.2 : संसार की जनसंख्या में वृद्धि—पिछले 2000 सालों में जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।

5.6.1 ऐतिहासिक सिंहावलोकन

आइए, अब हम यह देखते हैं कि वे कौन से ऐसे कारक थे जिनके कारण (क) हज़ारों वर्षों तक मानव जनसंख्या की मंद गति से वृद्धि हुई; और (ख) हाल के वर्षों में अचानक वृद्धि हुई।

अधिकांश मानव इतिहास में जनसंख्या कम ही रही है। यहाँ तक कि जन्म और मृत्यु लगभग बराबर ही थी। अनेक लोग बीमारियों, अकाल तथा युद्ध में मारे जाते थे। यह अनुमान लगाया गया है कि प्रस्तर युग में मनुष्य की औसत आयु 17 वर्ष थी, जबकि प्राचीन रोमन और मिस्री लोग औसतन 30 वर्ष की आयु तक जीते थे (इसकी तुलना में आज विश्व के अनेक देशों में आयु संभाविता 70 वर्ष से भी अधिक है)। महाद्वीपों में समय-समय पर बड़े पैमाने पर महामारी फैलने के कारण अनेकों लोग मारे जाते थे। उदाहरणस्वरूप 14वीं शताब्दी में, यूरोप के लगभग ¼ जनसंख्या प्लेग में मारी गई। अन्य महामारी, जैसे कॉलेरा, पीत ज्वर, टाइफस, मलेरिया, चेचक इत्यादि भी फैलती थीं।

बहुत अधिक संख्या में लोगों के मरने का कारण युद्ध था जिनमें असैनिक भी शामिल थे। उदाहरण के लिए, दूसरे विश्वयुद्ध में अनुमानतः 10 करोड़ लोगों की तथा हाल के अफगान युद्ध में करीब 10 लाख लोगों की जानें गई थीं। युद्ध के कारण भुखमरी और बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।

मानव जनसंख्या की वृद्धि पर उपरोक्त नियंत्रण होने के बावजूद मानव द्वारा, खासकर पिछली कुछ शताब्दियों में स्वयं ऐसे असाधारण परिवर्तन लाए जा रहे थे, जिससे मानव जनसंख्या में वृद्धि को बढ़ावा मिला था। उस समय जब मनुष्य स्वयं औज़ार बनाने लगा था, तब वह अपने बाहुबल के अलावा ऊर्जा का इस्तेमाल करते हुए मशीनें बनाने लगा था। फसलें उगाने और उनका संरक्षण करने लगा था, जिससे उसकी उत्पादकता बहुत अधिक बढ़ गई थी। अपने आहार और आश्रय के साधनों की कल्पना से परे वृद्धि करने तथा इस पृथ्वी पर सभी अन्य सजीव जीवों को वश में रखने में वह सक्षम हो गया था। विशेषकर सत्रहवीं शताब्दी के पश्चात् स्वास्थ्य रक्षा और आधुनिक औषधियों में हुई प्रगति ने कम से कम विकसित देशों में घातक बीमारियों का बिल्कुल सफाया कर दिया था। इसमें हम केवल जीवन परिरक्षण में प्रतिरक्षण (immunisation) और प्रतिजीवाणु दवाइयों (antibiotics) जैसे–पैंसिलिन की ही भूमिका को मान सकते हैं। परिणामस्वरूप अधिकांश देशों में जीवन संभाविता असाधारण रूप से बढ़ गई है और मृत्यु दर तेजी से गिर गई है। आधुनिक समय की यह उन्नति प्राकृतिक नियंत्रणों पर बहुत भारी पड़ रही है और यह विशेष कर कम विकसित देशों में जनसंख्या विस्फोट के लिए उत्तरदायी है।

बोध प्रश्न 4

चित्र 5.2 द्वारा दिखाई गई मानव जनसंख्या में वृद्धि के कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

5.6.2 चरघातांकी वृद्धि

जब-जब कोई वस्तु इस प्रकार बढ़े कि किसी भी समय वह वृद्धि उसके आकार का एक नियत अनुपात हो तो उसकी वृद्धि को "**चरघातांकी**" कहते हैं। उदाहरण के लिए, एक जन-समुदाय में पैदा होने वाले बच्चों की संख्या में वृद्धि सामान्यतः लोगों की संख्या या जनसंख्या के आकार के अनुपात में होती है। अतः कहा जाता है कि जनसंख्या चरघातांकी दर से बढ़ रही है। जैसे-जैसे इसका आकार बढ़ता है, वृद्धि भी ऊँची होती रहती है। इस प्रकार वास्तविक जनसंख्या वृद्धि दो कारकों पर निर्भर होगी : 1) वृद्धि दर, उसके आकार के किस अनुपात में है। उदाहरण के लिए, क्या वह उसके आकार के एक प्रतिशत या 20 प्रतिशत या 50 प्रतिशत के हिसाब से बढ़ रही है? और 2) उस समय जनसंख्या का स्वयं आकार कितना है?

आइए, अब हम कुछ ऐसी प्रतिनिधिक चरघातांकी वक्रों को देखें (चित्र 5.3) जिसमें कई वर्षों से एक प्रतिशत, दो प्रतिशत और तीन प्रतिशत की तीन भिन्न-भिन्न दरों से बढ़ती हुई 1000 लोगों की एक प्राक्कल्पनिक जनसंख्या को दिखाया गया है।

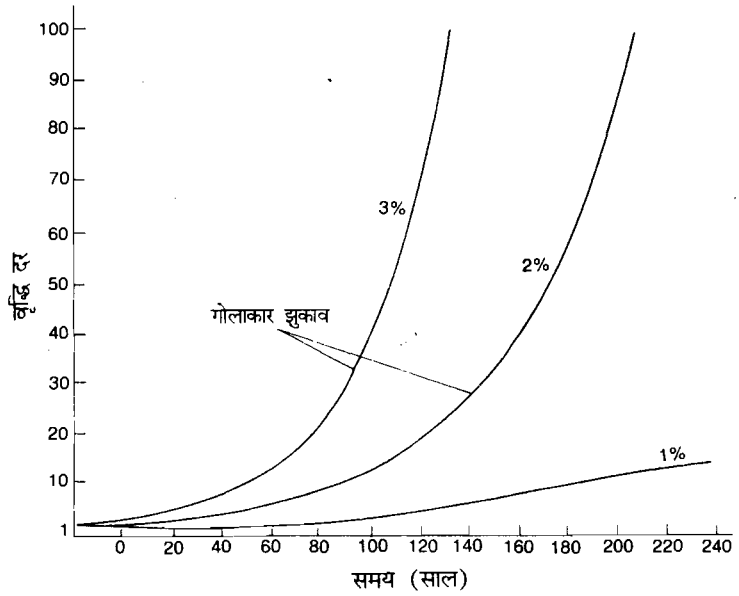

चित्र 5.3 : चरघातांकी वक्र

प्रारंभ में सभी तीनों वक्रों की वृद्धि मंद है क्योंकि जनसंख्या का आरंभिक आकार छोटा है, परंतु तेजी से बढ़ना शुरू कर देती है जो ऊर्ध्वगामी झुकाव द्वारा दिखाया गया है। आप चित्र में देख सकते हैं कि जो वक्र सबसे अधिक वृद्धि दर (3 प्रतिशत) से बढ़ रहा है, अन्य वक्रों से पहले उसने झुकाव को गोलाकार बना दिया है। वास्तव में जो वक्र एक प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है वह अभी तक झुकाव में गोलाकार नहीं हो पाया है। अब यदि हमें वृद्धि दर प्रति वर्ष, प्रतिशत के रूप में पता हो तो बड़ी आसानी से मात्रा के दुगुने होने में लगने वाले समय को वर्षों में निम्न सूत्र से निकाल सकते हैं:

$$\text{मात्रा को दुगना होने के लिए अपेक्षित समय} = \frac{70}{\text{वृद्धि दर (प्रतिशत में)}}$$

ऐसी स्थिति में हम केवल यह ध्यान दिलाना चाहेंगे कि एकमात्र जनसंख्या ही नहीं है जिसकी वृद्धि चरघातांकी तरीके से होती है। इसके साथ जल, आहार, आवास, ऊर्जा, उवर्रकों, खनिज़ों इत्यादि जैसे संसाधनों की माँगें भी चरघातांकी तरीके से बढ़ती हैं। इसी प्रकार की वृद्धि हवा, मिट्टी और पानी में छोडे गए कार्बनिक और अकार्बनिक अपशेषों की भी होती है जिसके परिणामस्वरूप जीवमंडल का प्रदूषण बढ़ता है।

बोध प्रश्न 5

ऐसी मात्रा के लिए दुगुने होने के समय की गणना कीजिए जो 1, 2 और 3 प्रतिशत प्रति वर्ष चरघाताँकी तरीके से वृद्धि करती हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

5.6.3 राष्ट्रों में जनसंख्या विभिन्नता

अभी तक हमने विश्व की समग्र जनसंख्या वृद्धि पर विचार किया है, तथापि एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र से जनसंख्या वृद्धि दर भिन्न होती है। एक ओर कुछ राष्ट्र 3 प्रतिशत से ऊपर बहुत अधिक वृद्धि दर दिखलाते हैं (जनसंख्या द्विगुणन अवधि करीब 23 वर्ष) दूसरी ओर, कुछ देशों की जनसंख्या बिल्कुल नहीं बढ़ रही है, और कुछ देशों की घटती हुई जनसंख्या है। जिसके लिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि किन परिस्थितियों में ऐसा होता है और कैसे होता है?

विश्व जनसंख्या वितरण का आरेखी निरूपण चित्र 5.4 में दिया गया है। आरेख में आप देखेंगे कि विश्व की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के विकासशील देशों में है, जहाँ की वृद्धि दर विकसित देशों की वृद्धि दर (जो एक प्रतिशत है) की तुलना में लगभग 2.5 प्रतिशत है। यह वृद्धि दर का अंतर प्रति वर्ष बढ़ने वाली जनसंख्या तत्व के रूप में महत्वपूर्ण है। प्रत्येक वर्ष विश्व की जनसंख्या में 6.5 करोड़ की वृद्धि हो रही है। विकसित देशों में 1.1 करोड़, और विकासशील देशों में 5.4 करोड़ लोग बढ़ रहे हैं। इसमें अकेले भारत के योगदान की मात्रा 1.5 करोड़ प्रति वर्ष है। तालिका 5.2 में 1901 ई. से भारत की जनसंख्या को दर्शाया गया है।

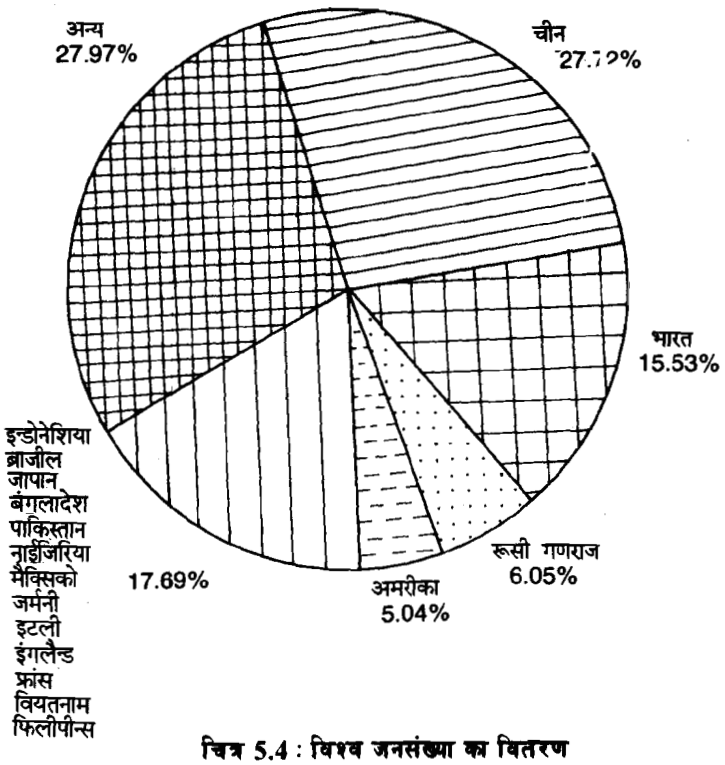

चित्र 5.4 : विश्व जनसंख्या का वितरण

तालिका 5.2 : भारत की जनसंख्या (1901-1981)

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या (करोड़ में)	वार्षिक औसत चर घातांकी वृद्धि (प्रतिशत में)
1901	23.84	—
1911	25.21	0.56
1921	25.13	(—) 0.03
1931	27.90	1.04
1941	31.87	1.33
1951	36.11	1.25
1961	43.92	1.96
1971	54.82	2.20
1981	68.52	2.25

स्रोत : भारत सरकार (1985), भारत के स्वास्थ्य आँकड़े, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली।

यदि हम यूरोप और उत्तरी अमेरिका के विकसित देशों की जनसंख्या वृद्धि की रूपरेखा प्रस्तुत करें तो हम पाते हैं कि (1) दूसरे देशों के साथ-साथ ये देश हज़ारों सालों तक बहुत कम जनसंख्या वृद्धि के लंबे इतिहास में सहभागी रहे हैं, जिसके दौरान जन्म और मृत्यु दर

लगभग बराबर रही होगी, (2) सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी के मध्य में, उनकी मृत्यु दर बेहतर सफाई प्रबंधों के कारण कम हुई, तथा (3) कुछ ही दशाब्दियों में उनकी जन्म दरें भी घटनी प्रारंभ हो गई, जिसके फलस्वरूप जनसंख्या वृद्धि दर भी कम हो गई। इस प्रकार की कमी, पहले मृत्यु दर में, जिसके कारण वृद्धि दरें बढ़ीं, फिर जन्म दरों में, जिससे जन्म और मृत्यु दरें फिर से लगभग बराबर हो गई, जिसके परिणामस्वरूप बहुत कम या शून्य वृद्धि दर हुई। इस स्थिति को **"जनसांख्यिकी परिवर्तन"** (demographic transition) कहते हैं।

दूसरी ओर, वे कम विकसित देश जो 20वीं शताब्दी तक लगभग सभी उपनिवेश थे, दूसरे विश्वयुद्ध के बाद तक भी बेहतर स्वास्थ्य और स्वास्थ्य-विज्ञान का लाभ उठाना प्रारंभ नहीं कर पाए थे। उसके पश्चात्, उनकी मृत्यु दरें तेजी से घटने लगी थीं परंतु कुछ अपवादों को छोड़कर उनकी जन्म दरें पर्याप्त मात्रा में कम नहीं हुई थीं। अतः उन देशों में वृद्धि दर 2 प्रतिशत से भी अधिक तथा कुछ परिस्थितियों में यह 3 प्रतिशत से भी अधिक हो गई थी एवं उनकी जनसंख्या की द्विगुणन अवधि भी 24-35 वर्ष हो गई थी।

आइए, अब हम विकासशील और विकसित देशों के दो समूहों के कुछ अभिलक्षणों पर विचार करें। तालिका 5.3 में वर्ष 1985 का विवरण दिया गया है।

तालिका 5.3 : विकसित और विकासशील देशों के अभिलक्षण

अभिलक्षण	विकासशील देश	विकसित देश
वृद्धि दर	उच्च (2.1 प्रतिशत)	निम्न (0.6 प्रतिशत)
द्विगुणन अवधि	निम्न (33 वर्ष)	उच्च (116 वर्ष)
शिशु मृत्यु दर (0-1 वर्ष प्रति 1000 जन्मे जीवित शिशुओं में)	उच्च (50-100)	निम्न (5-25)
जन्म के समय आयु संभावित (वर्षों में)	निम्न (40-65)	उच्च (69-75)
प्रतिदिन प्रति व्यक्ति आहार ग्राह्यता (कैलोरी में)	निम्न (1500-2700)	उच्च (3100-3500)
साक्षरता	निम्न से मध्य तक (25-75 प्रतिशत)	उच्च (95 प्रतिशत से अधिक)
प्रति व्यक्ति आय (अमेरिकी डालर में)	निम्न से मध्य तक (200-3000)	उच्च (3000-14000)
ऊर्जा प्रयोग प्रति व्यक्ति	निम्न	उच्च
औद्योगीकरण	निम्न	उच्च
मुख्य जनसंख्या	ग्रामीण (66 प्रतिशत)	शहरी (72 प्रतिशत)
जीवन स्तर	निम्न	उच्च

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि विकसित देशों में जनसांख्यिकीय परिवर्तन की प्रगति दूसरे अन्य विकास कार्यों; जैसे—बेहतर पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, उच्चतर आमदनी और औद्योगीकरण के साथ-साथ हुई, जिसके कारण विभिन्न देशों का सामाजिक-आर्थिक स्तर ऊँचा हुआ है। अतः यह तर्क अक्सर दिया जाता है कि जब विकासशील देशों में ऐसे विकास कार्य पूरे किए जाते हैं तो वे स्वतः विकसित देशों के ही समान जन्म दर में गिरावट लाते हैं। अतः यह वाद-विवाद का विषय रहा है कि आर्थिक उत्थान को ही पहली प्राथमिकता देनी चाहिए न कि जनसंख्या को। विकसित देशों का तीव्र औद्योगीकरण इस कारण से हुआ कि उन्होंने उपनिवेश द्वारा विकासशील देशों के बाजारों का और अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं के लिए यूरोप, उत्तरी अमेरिका व मध्य पूर्व एशिया के तेल व कोयला भंडारों का शोषण किया। इसके अतिरिक्त, उन देशों का औद्योगीकरण ऐसे समय में हुआ जब उनकी जनसंख्या (और उनकी आवश्यकताएँ) आजकल के विकासशील देशों के बराबर बड़ी जनसंख्या (और उनकी आवश्यकताएँ) के बिल्कुल भी करीब नहीं थी। कम विकसित देशों के लिए इन ज्यादातर परिस्थितियों को पुनः उत्पन्न नहीं किया जा

सकता है। सस्ता कच्चा माल, सुलभ बाजार और प्रचुर ऊर्जा अब उपलब्ध नहीं है, विदेशी ऋण तथा कमजोर आर्थिक स्थिति विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था पर अधिक दबाव डालती है। इसके अतिरिक्त उनकी आबादी की मूल आवश्यकताएँ उन्हें पूरा करने की सीमा से परे है। अधिकांश विकसित देशों ने अनुकूल परिस्थितियों में जनसांख्यिकीय परिवर्तन लाने के लिए 200 वर्षों से भी अधिक का समय लिया। विकासशील देश अपने देशों में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए जनसांख्यिकीय परिवर्तन लाने के लिए इतना अधिक समय बरबाद नहीं कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 6

निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत। दिए गए खानों में "स" अथवा "ग" लिखिए।

क) विकासशील देशों की जनसंख्या वृद्धि-दर एक प्रतिशत की तुलना में विकसित देशों की वृद्धि-दर 2.5 प्रतिशत है। ( )

ख) विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि उसके आर्थिक विकास पर प्रभाव डालती है जबकि यह विकसित देशों में सामाजिक समस्याएँ जैसे–भीड़ और प्रदूषण पैदा करती है। ( )

ग) आजकल विश्व की जनसंख्या में प्रतिवर्ष 5.4 करोड़ व्यक्ति जुड़ रहे हैं। ( )

घ) जनसांख्यिकीय परिवर्तन तब प्राप्त होता है जब जन्म दर मृत्यु दर के बराबर हो जाती है और जनसंख्या की वृद्धि दर शून्य हो जाती है। ( )

5.7 जनसंख्या प्रक्षेपण सहित जनसंख्या वृद्धि के अभिलक्षण

जन-समुदाय न केवल अपने आकार और वृद्धि दरों द्वारा बल्कि अपनी आयु संरचना तथा लिंग संघटन, अपने जन्म, मृत्यु एवं प्रजनन दरों तथा देश में अपने विस्तार और देश के अंदर तथा सीमाओं के पार स्थानांतरण द्वारा भी पहचाना जाता है।

इसकी अन्य कई विशेषताएँ जैसे–आयु संभाविता तथा शिशु मृत्यु दर अक्सर लोगों के स्वास्थ्य को सूचित करने के लिए उद्धृत की जाती हैं, जबकि आमदनी और साक्षरता, आहार, ऊर्जा तथा अन्य संसाधनों की खपत आदि लोगों के जीवन-स्तर के महत्वपूर्ण संकेतक हैं। जीवमंडल में छोड़े गए अवशेष मानव पर्यावरण की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण हैं।

जनसंख्या प्रक्षेपण आवश्यक है, यदि हम यह जानना चाहें कि जनसंख्या का वर्तमान आकार और संरचना तथा वर्तमान वृद्धि दरों को लेकर हम किस दिशा की ओर जा रहे हैं। हम यह नहीं चाहेंगे कि हम अपने द्वारा पैदा की गई घोर विपत्तियों में ही घिर जाएँ। किसी न किसी कारणवश अतीत में पृथ्वी से कई जातियाँ लुप्त हो चुकी हैं और केवल उनके अवशेष जीवाश्म रूपों में पाए जाते हैं। मनुष्य होने के नाते हम अपने भविष्य पर नियंत्रण रखना चाहते हैं। भाग 5.8 में विस्तार से वृद्धि प्रक्षेपण पर विचार किया जाएगा। जैसा कि आयतचित्र में दिखाया गया है, यहाँ पर हम यह दिखाएँगे कि कैसे आयु और लिंग संघटन द्वारा वर्तमान तथा भविष्य की निहितार्थों/मंशाओं का अनुमान लगाया जा सकता है।

5.7.1 आयतचित्र

जनसंख्या आयतचित्र (चित्र 5.5 देखिए) किसी विशेष वर्ष का दंड ग्राफ (bar graph) होता है, जिसमें प्रत्येक अनुप्रस्थ पट्टी जनसंख्या के एक विशिष्ट आयु-वर्ग को दर्शाती है। बायीं ओर के दंड की लंबाई इस आयु-वर्ग में पुरुषों की संख्या के प्रतिशत अंक (कुल जनसंख्या का) को बताता है और दायीं ओर यही चीज स्त्रियों के लिए दर्शायी गई है। एक आयतचित्र हमें कई विषयों के बारे में बताता है, जैसे–

1) जनसंख्या की **आयु-संरचना** (age structure) के बारे में अर्थात् महत्वपूर्ण आयु-वर्गों में जनसंख्या की प्रतिशतता। उदाहरण के लिए, वे वर्ग जो सहायता के लिए अन्य वर्गों पर निर्भर रहते हैं या वे जो उत्पादक कार्य कर सकते हैं;

2) **लिंग संघटन** (sex composition) के विषय में, अर्थात् प्रत्येक आयु-वर्ग में पुरुषों तथा स्त्रियों की संख्या (या प्रतिशतता), जिसके द्वारा हम यह भी जान सकें कि जनन आयु-वर्ग 15 से 44 के बीच की स्त्रियों की संख्या कितनी है;

3) पिछले कई दशकों में **जनसंख्या वृद्धि तथा परिवर्तनों** (growth and change) के प्रभाव के विषय में; तथा

4) वर्तमान वृद्धि दर के अनुसार अगले कुछ दशकों में जनसंख्या की **संभावित वृद्धि** के बारे में।

आप यह देख सकते हैं कि आयतचित्र सभी प्रकार के योजनाकारों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिन्हें भविष्य में संसाधनों तथा सुविधाओं को जुटाना है।

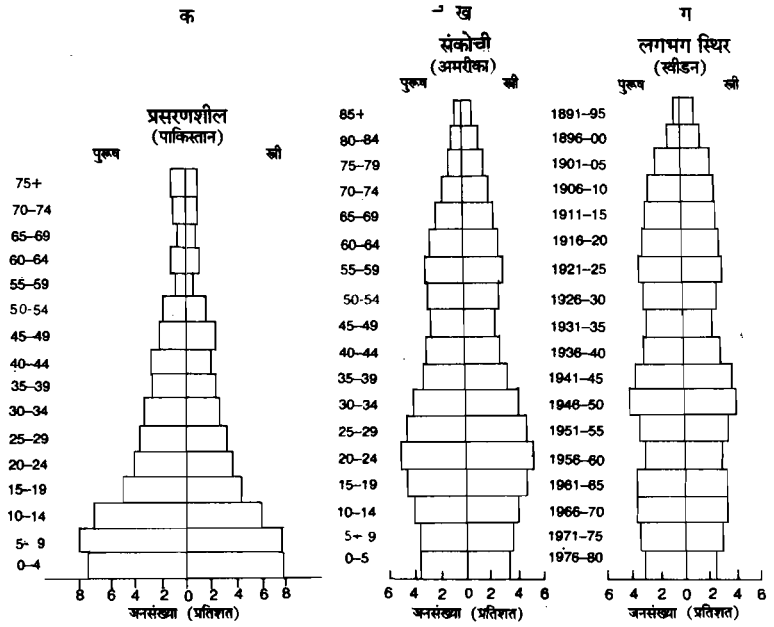

चित्र 5.5 : आयतचित्र

चित्र 5.5 में दिखाए गए आयतचित्रों को देखिए। इसमें आप देखेंगे कि पहले आयतचित्र (चित्र 5.5 क) में 5 वर्ष के आयु-वर्ग में पाकिस्तान की जनसंख्या दिखाई गई है। यह स्थिति मार्च, 1981 में की गई जनगणना के आधार पर है। इस आयतचित्र का आकार पिरामिड की तरह है, जिसका आधार व्यापक है। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि प्रति 5 वर्ष पहले 5 वर्ष के मुकाबले जनसंख्या में और अधिक बच्चे शामिल हो रहे हैं और ऐसा कई वर्षों से होता आ रहा है। इस प्रकार पिरामिड का आधार खंड लगातार विस्तृत हो रहा है, जिसके कारण उच्च आयु-वर्ग के लोगों की संख्या में कम वृद्धि हो रही है। इसी प्रकार जनसंख्या में वृद्धि होती है। इसके साथ ही जब अधिक बच्चे संतान पैदा करने की उम्र में आते हैं तब पैदा होने वाले बच्चों की संख्या भी बढ़ जाती है। विस्तृत होते हुए आधार खंड वाले इस प्रकार आयतचित्र को **प्रसरणशील आयतचित्र** (expansive histogram) कहते हैं। विकासशील देशों के लिए यह विशिष्ट शैली है जिनकी जनसंख्या बहुत ज्यादा तेजी से बढ़ रही है।

दूसरे प्रकार का आयतचित्र (चित्र 5.5 ख), जैसा कि 1980 में संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए दिया गया है, **संकुचित आयतचित्र** (constrictive histogram) है। आप देख सकते हैं कि 1956-65 से आधार खंड छोटा (संकुचित) हो गया है अर्थात् इन वर्षों में पहले के मुकाबले आगे आने वाले प्रत्येक 5 वर्ष समूह में कम बच्चे पैदा होते रहे हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में जनसंख्या में वृद्धि नहीं हो रही है। आप देखेंगे कि कुल मिलाकर आयतचित्र के छोटे दंड (बार) उच्च दंड के मुकाबले ज़्यादा चौड़े हैं क्योंकि वे लोगों की अधिक संख्या दर्शाते हैं। जैसे ही यह संख्या उच्च आयु-समूह में शामिल हो जाती है, वैसे ही पूरी जनसंख्या में वृद्धि हो जाती है। वास्तव में, यह कम से कम अगले 50 वर्षों तक बढ़ती रहेगी और लगभग शीर्ष तक पहुँच जाएगी भले ही आधार खंड कुछ संकुचित बना रहे। इसके साथ आप यह भी देख रह सकते हैं कि वर्ष 1950-65

के दौरान दंडों में फैलाव हुआ है क्योंकि इस समय के दौरान ज़्यादा बच्चे पैदा हुए थे, इस समय को "बेबी बूम" का समय भी कहते हैं। जब यह फैलाव (उभार) संतान उत्पन्न करने वाले वर्षों से गुज़रेगा तब वे अपने माता-पिता के मुकाबले ज़्यादा बच्चे पैदा करेंगे, क्योंकि वे (बच्चों की हुई अत्यधिक वृद्धि से) ज़्यादा संख्या में हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी समय जनसंख्या आमाप में होने वाली वृद्धि से कम से कम अगले 50 वर्षों के लिए जनसंख्या में वृद्धि होती रहने की संभावना होती है, भले ही प्रत्येक दंपत्ति के केवल उतने ही बच्चे हों जो उन्हें प्रतिस्थापित कर सकें। इस प्रकार, यदि चीन में 1979 के शुरू में एक परिवार, एक बच्चा की नीति सफल हो भी जाए तो भी वह 2000 ईसवी के बाद तक अपनी जनसंख्या को स्थिर नहीं रख सकेगा।

तीसरे प्रकार का आयतचित्र (चित्र 5.5 ग) लगभग **स्थिर आयतचित्र** (stationary histogram) है। इसका एक उदाहरण स्वीडन है। आप देख सकते हैं कि जब तक हम उस आयु समूह (75 वर्ष के ऊपर) तक नहीं पहुँचते जहाँ मृत्यु दर ज्यादा है, तब तक प्रत्येक दंड की चौड़ाई ज़्यादा भिन्न नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि अनेक वर्षों तक परिवार का औसत आकार स्वयं को प्रतिस्थापित करने जितना ही रहा है। ऐसी जनसंख्या में बिल्कुल वृद्धि नहीं हो रही है। इसलिए इसका नाम "स्थिर" रखा गया है।

बोध प्रश्न 7

आयतचित्र 5.5 क, ख, ग में से कौन-सा आयतचित्र (i) धीमी गति से बढ़ने वाली जनसंख्या (ii) बहुत तेजी से बढ़ने वाली जनसंख्या (iii) न बढ़ने वाली जनसंख्या को दर्शाता है। कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

5.7.2 जनसंख्या का आयु संबंधी ढाँचा

हम यह जानते हैं कि प्रत्येक समय में एक अंतराल के बाद नए सदस्य शामिल हो जाते हैं और पहले के सदस्य मृत्यु से समाप्त हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप सामान्य जनसंख्या सभी आयु-वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों का समूह है। अतः हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि जनसंख्या की रचना का अध्ययन करते समय इसके आयु वितरण पर विचार करें।

लोगों की संतान पैदा करने की क्षमता के संदर्भ में हम जनसंख्या को तीन आयु समूहों में बाँट सकते हैं--संतान पैदा करने से पहले की आयु का आयु-वर्ग, संतान पैदा करने वाले आयु-वर्ग और संतान पैदा करने की आयु के बाद का आयु-वर्ग। पहले वर्ग में किशोर और तीसरे वर्ग में बूढ़े लोग आते हैं। संतान पैदा करने की जनसंख्या की क्षमता पहले वर्ग के आकार पर निर्भर करती है। प्रायः तेजी से बढ़ने वाली जनसंख्या में किशोरों का अनुपात काफी अधिक होगा। स्थिर जनसंख्या में आयु-वर्गों में अधिक समान वितरण होगा और घटती जनसंख्या में बूढ़े लोगों का अनुपात अधिक होगा।

शेष जनसंख्या के मुकाबले किशोरों (0-14 वर्ष) का अनुपात भी महत्वपूर्ण है। विकासशील देशों में जहाँ अधिक बच्चे पैदा होते हैं, यह वर्ग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और हो सकता है कि कुछ देशों में यह संख्या कुल जनसंख्या की 45 प्रतिशत तक पहुँच गई हो। ऐसी जनसंख्या को किशोर जनसंख्या (young population) कहा जाता है। इसकी उच्च आयु-निर्भरता के अनुपात के अतिरिक्त इन लोगों के लिए अधिक नए स्कूलों तथा अध्यापकों, प्रसूति और बाल क्लीनिकों (बच्चों और बूढ़ों के स्वास्थ्य पर शेष लोगों के मुकाबले अधिक खर्च आता है) की आवश्यकता होती है और साथ ही नौकरियों के लिए कड़ी प्रतिस्पर्धा भी होती है। दूसरी ओर, उन्नत देशों में बूढ़े लोग होते हैं जिसमें 65 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों का अनुपात ज्यादा होता है। उन्हें भी बूढ़े लोगों की सेहत और उनकी देखभाल पर अधिक खर्च करना पड़ता है, जबकि नौकरियों के लिए कम प्रतिस्पर्धा होती है।

जनसंख्या वृद्धि में एक महत्वपूर्ण तत्व संतान पैदा करने वाली महिला आयु-वर्ग (15-44 वर्ष) है। वृद्धि की गति को कम करने का तरीका यह भी है कि सबसे पहले विवाह की निम्न आयु सीमा को बढ़ाया जाए। उदाहरण के लिए, चीन में स्त्रियों के लिए प्रथम विवाह की आयु 22 वर्ष कर दी गई है, जबकि कुछ दशाब्दियों पहले यह आयु 17 वर्ष हुआ करती थी।

बोध प्रश्न 8

आयु के ढाँचों को दर्शाने वाले कुछ कथन नीचे दिए गए हैं। उपयुक्त शब्दों से इन कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क) जनसंख्या की आयु संरचना ..... दर में व्याप्त प्रवृत्ति को प्रतिबिंबित करती है और इसका प्रभाव देश की ..... पर पड़ता है।

ख) किसी जनसंख्या में विभिन्न आयु समूहों का ..... जनसंख्या के ..... दर्जे का निर्धारण करता है।

ग) किसी जनसंख्या में आयु वितरण दर्शाने का एक सुविधाजनक तरीका एक ..... या आयु ..... के रूप में आँकड़े दिखाना है।

घ) किसी जनसंख्या में ..... आयु वितरण के विकास की प्रवृत्ति दिखाई देने लगती है, जो पर्यावरण में अस्थायी परिवर्तन द्वारा ..... हो सकती है।

5.7.3 जन्म दर, मृत्यु दर और प्रव्रजन

जन्म दर (natality rate) वह दर है जो जन्म से संबंधित है। मृत्यु दर (mortality rate) का संबंध मृत्यु से है। प्रव्रजन दर का अर्थ किसी देश में बाहर के लोगों के आने (आप्रवास) तथा देश से बाहर जाने (उत्प्रवास) या देश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने (आंतरिक प्रवसन) से है। ये सभी तत्व जनसंख्या और उसकी वृद्धि के अध्ययन के लिए आवश्यक हैं। आइए, हम इन शब्दों में से कुछ के अर्थ देखें।

जनसंख्या में जन्म दर नवजात शिशुओं को दर्शाती है और इसे प्रायः जनसंख्या में प्रति वर्ष प्रति हजार व्यक्तियों में जन्म लेने वाले बच्चों की संख्या से दर्शाया जाता है। इस तरह से यह जनसंख्या वृद्धि दर से बिल्कुल अलग है क्योंकि यह शून्य या सकारात्मक हो सकती है, किंतु नकारात्मक कभी नहीं हो सकती है। आदर्श पर्यावरणीय स्थिति में प्रति व्यक्ति सिद्धांततः अधिकतम पैदा किए गए बच्चों की संख्या को **संभावित या शरीर क्रियात्मक जन्म दर** (potential or physiological natality) कहते हैं। एक दी गई जनसंख्या के लिए यह शाश्वत है। जन्म दर को विशिष्ट परिस्थितियों में जनसंख्या वृद्धि बताने वाले **विशिष्ट जन्म दर** के रूप में दर्शाया जा सकता है। किसी दी गई जनसंख्या के लिए यह शाश्वत नहीं है। जनसंख्या के जन्म दर को इस प्रकार दिखाया जा सकता है:

$$B = \frac{Nn}{t}$$

B = जन्म या जन्म दर, Nn = नवजातों की संख्या, और t = समय

किसी समयावधि के लिए विशिष्ट जन्म दर को इस तरह दिखाया जा सकता है:

$$b = \frac{Nn}{N \triangle t}$$

यहाँ b = जनसंख्या में प्रति व्यक्ति प्रति समय-एकक जन्म दर, $\triangle t$ = समय या व्यक्तियों की संख्या में परिवर्तन

मृत्यु दर से अभिप्राय उन व्यक्तियों की मृत्यु से है जो किसी जनसंख्या में लोगों की मृत्यु कुपोषण, बीमारी और बुढ़ापा जैसे–विभिन्न कारणों से होती है। मृत्यु दर को निम्न रूप से दिखाया जाता है :

$$d = \frac{D}{t}$$

जहां d = मृत्यु दर, D = मृतकों की कुल संख्या, और t = समय

प्रव्रजन (migration) लोगों का नई जगहों पर जाना है। यह देश की सीमाओं के भीतर (आंतरिक प्रव्रजन) भी हो सकता है या दूसरे देश में जाना भी हो सकता है (अंतर्राष्ट्रीय प्रव्रजन)। यह स्पष्ट है कि केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रव्रजन ही किसी देश की जनसंख्या की वृद्धि पर प्रभाव डाल सकता है। कुछ देशों में यह इतना अधिक है कि वृद्धि दर पर उसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में वैध और अवैध अप्रवासियों की संख्या प्रति वर्ष 10 लाख होती है, जो देश की कुल वार्षिक वृद्धि का लगभग दो-तिहाई है। युद्ध या कठिन स्थिति के समय भी काफी अधिक संख्या में लोग प्रव्रजन कर सकते हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के कारण लाखों यहूदियों ने यूरोप छोड़ दिया था और फिलीस्तीन से अरबों को अत्यधिक संख्या में निकाल दिया गया था। इस शताब्दी के नौवें दशक में अफगान युद्ध के कारण 30 लाख से अधिक अफगान शरणार्थी पाकिस्तान आ चुके हैं। जनसंख्या वृद्धि की गणना में प्रव्रजन को शामिल करने के लिए हमें नवजातों द्वारा हुई जनसंख्या वृद्धि में **निवल अप्रवासन** (net immigration) (जो अप्रवासन के मुकाबले उत्प्रवासन अधिक होने की स्थिति में नकारात्मक होगा) को शामिल करना होगा।

आंतरिक प्रव्रजन (internal migration) भी जनांककों के लिए महत्वपूर्ण होता है। कम विकसित देशों में लोग भूमि पर दबाव के कारण गाँव से शहरों में आ रहे हैं। इस प्रकार के प्रव्रजन से पानी, आवास, स्वास्थ्य, रक्षा जैसी शहरी सुविधाओं पर काफी दबाव पड़ता है।

बोध प्रश्न 9

प्रत्येक प्रश्न के एक से अधिक उत्तर दिए गए हैं। सही उत्तर पर (✓) का निशान लगाइए।

i) जन्म दर से हमारा तात्पर्य:
   क) जनसंख्या में वास्तविक वृद्धि है
   ख) जनसंख्या में वास्तविक कमी है
   ग) जनसंख्या में नए व्यक्तियों का शामिल होना है
   घ) जनसंख्या में कोई परिवर्तन न होना है।

ii) प्रव्रजन का अभिप्राय :
   क) देश छोड़कर जाना है
   ख) देश में आना है
   ग) समय-समय पर जाना और आना है
   घ) किसी व्यक्ति की मृत्यु है।

iii) प्रव्रजन प्रायः किया जाता है :
   क) मूल क्षेत्र में अनुकूल परिस्थितियों में
   ख) मूल क्षेत्र में प्रतिकूल परिस्थितियों में
   ग) मूल क्षेत्र में आदर्श परिस्थितियों में
   घ) मूल क्षेत्र में अत्यन्त अनुकूल परिस्थितियों में।

5.8 मानव जनसंख्या का भविष्य

1985 में विश्व जनसंख्या के 5 अरब से अधिक हो जाने और अब भी इसमें 1.7 प्रतिशत की प्रति वर्ष की वृद्धि के कारण, 85 करोड़ से अधिक लोग प्रति वर्ष विश्व जनसंख्या में बढ़ रहे हैं। विश्व की कुल जनसंख्या का करीब तीन-चौथाई भाग अपेक्षाकृत कम विकसित देशों में रहता है और विश्व जनसंख्या का आधा भाग केवल एशिया में रहता है। यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि जहाँ एक ओर विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि दर 0.6 प्रतिशत प्रति वर्ष है, वहीं कम विकसित देशों में यह वृद्धि दर इससे 3-4 गुना अधिक है। इसमें से भी एशिया और अफ्रीका इस दौड़ में सबसे आगे हैं। चित्र 5.6 में एशिया तथा यूरोप की 20वीं शताब्दी की जनसंख्या के बीच का एक तुलनात्मक अध्ययन दिया गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि लोगों की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए आश्रय कहाँ मिलेगा। उपग्रह पृथ्वी पर तो नहीं। क्या जनसंख्या वृद्धि अनिश्चित रूप से जारी रहेगी? और यदि ऐसा हुआ तो वह किस प्रकार सीमित होगी? जनसंख्या का भविष्य क्या होगा?

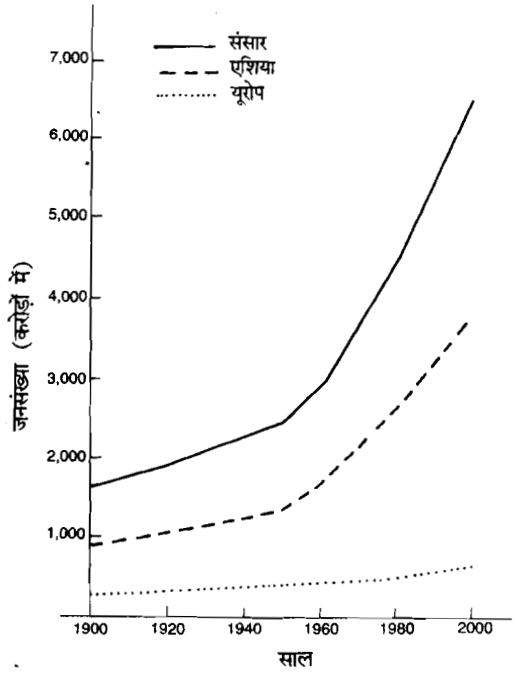

चित्र 5.6 : विश्व जनसंख्या, एशियायी और यूरोपीय क्षेत्रों से—1900-2000

सर्वप्रथम, हमें यह बात समझ लेनी चाहिए कि बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ उनकी माँगें और आवश्यकताएँ भी बढ़ जाती हैं। आज से 33 साल बाद भारत, श्रीलंका और पाकिस्तान को मौजूदा जीवन-स्तर प्रदान करने के लिए हमें इन देशों की हर सुख-सुविधा को दुगुना करना होगा। प्रत्येक सड़क, मकान, पुल, उद्यान, विद्यालय, अध्यापक, चिकित्सक, नर्स तथा खाद्यान्न का प्रति टन एवं ऊर्जा के प्रत्येक किलोवाट और रोजगार के प्रत्येक अवसर, जो भी इस समय उपलब्ध हैं, उसे दुगुना करना पड़ेगा अन्यथा लोगों का जीवन-स्तर गिर जाएगा। ऐसा कर पाना तो शायद विश्व के सबसे धनवान देशों के लिए भी संभव नहीं होगा, फिर विकासशील देशों की बात ही क्या है। उनके सुनहरे भविष्य की आशाओं को देखते हुए कठोर निर्धनता, गंदी बस्ती, निरक्षरता,कुपोषण और बीमारी से मुक्ति पाने का क्या उपाय होगा? जीवित रहने के लिए सभी उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से न्यूनतम सुविधाएँ प्रदान करने के बाद औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के लिए उनके पास कोई संसाधन नहीं बचेंगे। जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि औद्योगीकरण के लिए आवश्यक अधिकांश संसाधन समाप्त हो चुके हैं। पिछले कुछ दशकों में प्रति वर्ष विकसित और विकासशील देशों के बीच आर्थिक विषमता बढ़ रही है। 1960 में विकसित और विकासशील देशों के बीच प्रति व्यक्ति आय का अंतर 1240 डालर, 1980 में 5700 डालर था और वर्ष 2000 के अंत तक 8000 डालर तक हो जाने की आशा है। चूँकि विकासशील देश विकसित देशों के मुकाबले अधिक पिछड़े हुए हैं इसलिए विकसित देशों पर उनकी निर्भरता बढ़ती जा रही है।

दूसरा, नई पीढ़ी के सभी लोग कहाँ जाएँगे? भारत और श्रीलंका में जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर 250 व्यक्ति से अधिक है। उनकी शहरी जनसंख्या, जो 1950 में कुल आबादी का लगभग 1/7वाँ भाग थी, 1990 में बढ़कर लगभग 1/3वाँ भाग हो गई है। प्रदूषण के अलावा, अत्यधिक भीड़ से मानसिक, शारीरिक और सामाजिक तनाव उत्पन्न होते हैं, जिसके कारण नशीली दवाओं और शराब का अधिक प्रयोग और हिंसा तथा अपराधों में वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में अत्यधिक कुंठाग्रस्त युवा पीढ़ी विशेष रूप से दबाव में रहती है।

तीसरा, अधिक लोगों का अर्थ पर्यावरण का अधिक प्रदूषित होना है। संपूर्ण पर्यावरण पर इस बढ़ती हुई जनसंख्या का भार है। उससे केवल वायु, मिट्टी और जल ही प्रदूषित नहीं होते, बल्कि अन्य सभी प्राणी, पौधे और पशु भी प्रभावित होते हैं। आप इसके विषय में आगे की अन्य इकाइयों में पढ़ेंगे। पृथ्वी पर सर्वत्र मानव समुदाय की अनियंत्रित जनसंख्या बढ़ोत्तरी का परिणाम प्रकृति की सभी उत्पादित संपदा और विभिन्नता तथा लाखों वर्षों के दौरान विकास द्वारा संतुलित प्रकृति का विनाश करना है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है

कि केवल मनुष्यों की संख्या ही नहीं, बल्कि उनके उद्योगों का आकार भी जीवमंडल के प्रदूषण के लिए उत्तरदायी है। विकसित देश जीवमंडल को सर्वाधिक प्रदूषित करते हैं और विश्व में उपलब्ध संसाधनों का सबसे अधिक उपभोग करते हैं। ऐसी स्थिति में आने वाले समय में क्या परिस्थिति होगी?

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि वर्तमान जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि को लंबे समय तक नहीं छोड़ा जा सकता है। अब प्रश्न केवल यह है कि क्या राष्ट्रों द्वारा स्वतः बढ़ती हुई जनसंख्या पर अंकुश लगाया जाएगा अथवा ये राष्ट्र इस समस्या के समाधान के लिए विनाश की प्रतीक्षा करेंगे? संभवतः इस समस्या का हल इन दोनों कारकों से होगा। कुछ राष्ट्रों को छोड़कर, विश्व के अधिकतर विकासशील देशों ने परिवार नियोजन की नीति अपनाई है। चीन और सिंगापुर जैसे राष्ट्रों को इसमें अभूतपूर्व सफलता मिली है। भारत और श्रीलंका के जन्म दरों में कमी हुई है, लेकिन इन दोनों को अभी इस क्षेत्र में बहुत कुछ करना बाकी है। पाकिस्तान की जन्म दर अभी भी इस क्षेत्र में सबसे अधिक है। समय बीतने के साथ-साथ ऐसा लगता है कि कुछ देश जनसांख्यिकी संक्रमण को रोक पाएँगे लेकिन कुछ देश इसे नहीं रोक पाएँगे।

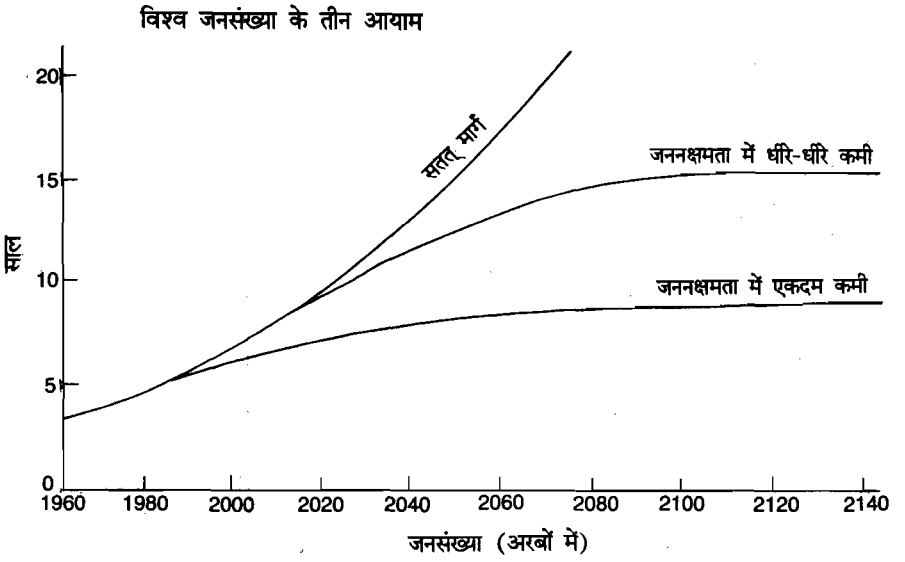

चित्र 5.7 : विश्व जनसंख्या के तीन दृश्य लेख

जैसा कि चित्र 5.7 में दिखाया गया है, विश्व जनसंख्या के बारे में हम ऊपर दिए गए तीन संभावित दृश्य लेखों की ओर देखें। सबसे ऊपर का वक्र (सतत मार्ग) यह दर्शाता है कि यदि जनसंख्या की वर्तमान वृद्धि दर जारी रही तो इसका परिणाम यह होगा कि विश्व की जनसंख्या सन् 2300 तक एक खरब हो जाएगी। ऐसा लगता है कि आने वाले समय में अकाल, बीमारी और युद्ध जैसी आपदाएँ निश्चित रूप से जनसंख्या की इस बढ़ोत्तरी को रोकेंगी। यदि जन्म दर धीरे-धीरे कम होती है तो विश्व जनसंख्या की स्थिति मध्य वर्ग जैसी होने की संभावना है। वृद्धि दर धीरे-धीरे नीचे आएगी, और विश्व जनसंख्या 15 अरब तक स्थिर हो जाएगी—जो वर्तमान जनसंख्या से तीन गुना अधिक होगी। इतनी अधिक जनसंख्या भी विश्व में बहुत अधिक समस्याएँ खड़ी करेंगी। तीसरा दृश्यलेख सबसे अधिक संभावित है, क्योंकि केवल इसी से तृतीय विश्व की जनसंख्या में अधिक सुधार लाया जा सकता है। वृद्धि दर को तेजी से गिरावट के क्रम में लाने के लिए देशों को बहुत अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है। फिर भी, सन् 2030 तक विश्व जनसंख्या के स्थिर होने तक वह 8 अरब हो जाएगी।

जनसंख्या वृद्धि पर उपर्युक्त दृश्य लेख बिना किसी नियंत्रण के दर्शाया गया है। दूसरे-जनसांख्यिकीयकारी (demographer) इसी आधार पर ऐसी स्थिति से असहमत हैं। वे सोचते हैं कि हमने इस जीवमंडल को इतना नष्ट कर दिया है कि यदि जनसंख्या में कोई विकास वृद्धि होगी जैसा कि चित्र 5.7 के प्रत्येक दृश्य में दर्शाया गया है, तो इस कदर विनाश होगा कि जनसंख्या का आकार चित्र 5.8 (क) में दिखाए गए अनुसार ही रह जाएगा। अन्य जनसांख्यिकीयकारियों का विश्वास है कि पर्यावरण की हानि इतनी भयानक हो सकती है कि मानव जनसंख्या (जनसंख्या का विनाश) जैसा कि चित्र 5.8 (ख) में दर्शाया गया है, पूर्णतया या आंशिक रूप से समाप्त हो सकती है।

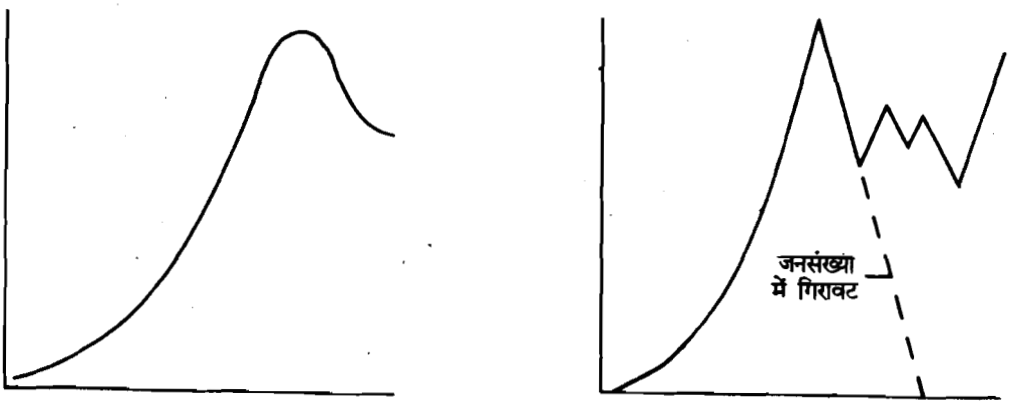

चित्र 5.8 : विश्व की जनसंख्या का पूर्वानुमान

प्रत्येक दृश्य लेख के कुछ भी गुण-दोष हों, किन्तु यह निश्चित है कि भविष्य वैसा ही होगा जैसा हम इसे आज के निर्णयों से बनाएँगे।

बोध प्रश्न 10

ऊपर दिए गए चित्रों में आपके विचार से आपके देश के लिए कौन-सा चित्र सबसे उपयुक्त है? कारण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

5.9 सारांश

इस इकाई में आपने यह अध्ययन किया है कि :

- मनुष्य के सांस्कृतिक और भौतिक पर्यावरण के बीच एक जटिल अंतःसंबंध है। विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में बहुत भिन्नता होने के बावजूद भी उसमें कुछ लक्षण एक जैसे होते हैं। जैसे–सामाजिक संस्थाएँ।
- जनता का सांस्कृतिक पर्यावरण भाषा में प्रतिबिंबित होता है और भाषा कुछ सीमा तक इसे अपने अनुसार ढाल लेती है।
- सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा मानव बहुत कुछ सीखता है और मानवीय आचार-व्यवहार को अपने अनुरूप अपनाता है जो पर्यावरण के लिए आवश्यक मानदंड है। इसलिए मानवीय क्रियाओं की समझ के लिए उसके भौतिक तथा सामाजिक पर्यावरण की समझ भी आवश्यक है।
- जैसे-जैसे मानव समाज का विकास आखेट से प्रारंभ होकर औद्योगीकरण तक पहुँचा वैसे-वैसे जनसंख्या बढ़नी आरंभ हो गई।
- विश्व जनसंख्या का विकास बढ़ती हुई जनसंख्या के विकास दर का प्रतिपादक है। साधारणतः विर्कसित देशों में यह विकास दर 0.6 अथवा इससे कम है, ऐसा इसलिए है क्योंकि औद्योगीकरण के बाद जहाँ मृत्यु दर में कमी आई है, वहाँ जन्म दर में भी कमी हुई है, जिससे जनसंख्या वृद्धि दर में भी कमी आई है। यह प्रक्रिया जनसांख्यिकी परिवर्तन कहलाती है। विकासशील देशों में विकास दर 2 प्रतिशत से अधिक है तथा तीव्र औद्योगीकरण के लिए उसके पास संसाधनों की कमी है। जनसंख्या में वृद्धि "जे" आकृति दर्शाती है।
- जनसंख्या आयतचित्र जनसंख्या के नवीन इतिहास और इसकी अल्प-अवधि विकास प्रवृत्ति को दर्शाने में सहायक है। आयतचित्र तीन प्रकार के होते हैं–प्रसरणशील, रचनात्मक और स्थिर।

- मानव जनसंख्या की कुछ विशिष्टताएँ हैं : जैसे–घनत्व जन्म दर, मृत्यु दर, आयु संरचना, जीवीय संभाव्यता, प्रक्षेपण अथवा प्रव्रजन और विकास दर।
- वर्तमान प्रवृत्ति में मानवीय जनसंख्या का भविष्य अधिक अच्छा नहीं दिखाया गया है और ऐसा संसाधन के तेजी से घटते जाने, जनसंख्या के अधिक होने और पारिस्थितिकी के विनाश के कारण है। हमारा भविष्य तभी सुरक्षित हो सकता है जब जनसंख्या विकास दर में तीव्रता से कमी आए और विकासशील देशों में निर्बाध जनसांख्यिकी संक्रमण हो, अन्यथा भयंकर विनाश हो सकता है।

5.10 अंत में कुछ प्रश्न

1) बताइए कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं अथवा असत्य। कोष्ठक में सत्य के लिए "स" और असत्य के लिए "अ" लिखिए।

   क) किसी समाज की संस्कृति पूर्णतः उसके भौतिक पर्यावरण से निर्धारित की जाती है। ( )

   ख) केवल आधुनिक मिश्रित समाज में ही उन्हें शासित करने के लिए नियम हैं। ( )

   ग) भाषा, जो संस्कृति का एक अंग है, संस्कृति में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकती है। ( )

   घ) भाषा के बिना भी मानव संस्कृति का निर्माण कर सकता है। ( )

2) भाषा के कार्य बताइए।

   .....

   .....

   .....

   .....

3) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन जनसंख्या वृद्धि का वास्तविक कारण है? सही कथन पर निशान लगाइए।

   क) मनुष्य में जैवीय परिवर्तनों के परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि हुई है।

   ख) मनुष्य में अपनी संख्या बढ़ाने की प्रवृत्ति है।

   ग) मृत्यु दर में धीमी कमी के परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि हुई है।

   घ) जन्म दर में वृद्धि के कारण जनसंख्या में वृद्धि हुई है।

4) नीचे दिए गए स्थान में निम्नलिखित प्रश्नों का चार अथवा पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

   क) जनसंख्या के आकार, गठन तथा वितरण किन-किन बातों से निर्धारित होते हैं।

   .....

   .....

   .....

   .....

   ख) किन दो कारणों से स्पष्ट होता है कि वर्तमान जनसंख्या वृद्धि 500 वर्ष पहले की जनसंख्या वृद्धि से भिन्न है।

   .....

   .....

.....

.....

ग) जनसांख्यिकी परिवर्तन की परिभाषा क्या है?

.....

.....

.....

.....

5.11 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) ग ख) ग ग) स घ) स

2) क) अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है
ख) बन रहे हैं
ग) सीधा प्रभाव पड़ता है
घ) किया जा सकता है
च) नहीं ले
छ) परिसीमन
ज) होता

3) क)

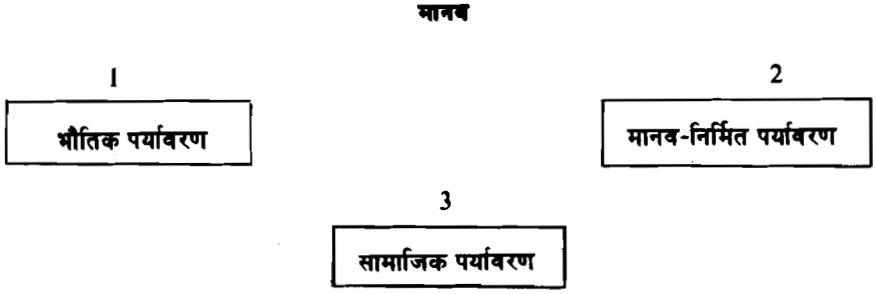

ख)

(1)	(2)	(3)
वातावरण	समाज	कार्य स्थल
चुंबकीय शक्ति	संस्कृति	फसल क्षेत्र (खेत)
पौधे, जीव-जंतु	प्रमुख संस्थाएँ	अंतरिक्ष यान
आंतरिक पर्यावरण	समाज की भाषा	
मृदा, P H		
प्राकृतिक संसाधन		

4) लगभग सन् 1600 ई. तक जनसंख्या में बहुत धीमी वृद्धि, मृत्यु दर अधिक होने के कारण थी। जिसमें अकाल, बीमारी और युद्ध प्रमुख कारण थे। तब से, बढ़ी हुई उत्पादकता, सफाई और स्वास्थ्य रक्षा के कारण तेजी से वृद्धि हुई है जिससे मृत्यु दर कम हुई है।

5) 70, 35 और 23.3 वर्ष

6) क) ग ख) स ग) ग घ) स

7) i) अमेरिका के लिए चित्र 5.6 ख में कुल मिलाकर आयतचित्र का निचला अर्ध भाग, ऊपरी अर्ध भाग से कुछ हद तक चौड़ा है। इसलिए जब कम आयु वर्ग ऊपर की ओर बढ़ता है जैसे ही उन्नतोदर वर्ण पुनः उत्पादकता आयु से गुज़रता है तो जनसंख्या बढ़ेगी।

ii) चित्र 5.6 क पाकिस्तान के लिए है क्योंकि इसका आधार निरंतर विस्तृत हो रहा है, जिसका अर्थ है अधिकाधिक बच्चे पैदा हो रहे हैं। जिसके परिणामस्वरूप पुनः उत्पादकता आयु में और अधिक बच्चे पैदा हो जाएँगे। iii) चित्र 5.6 ग स्वीडन के लिए है क्योंकि सभी आयु वर्गों में करीब-करीब समान वृद्धि है।

8) क) जनन क्षमता, मितव्ययिता
ख) अनुपात, पुनः उत्पादकता ग) बहुभुज, पिरामिड
घ) स्थिर, अस्त-व्यस्त।

9) i) ग ii) ग iii) ग

अंत में कुछ प्रश्न

1) क) अ ख) स ग) स घ) अ

2) i) संप्रेषण केवल भाषा से ही संभव है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप संस्कृति का सृजन होता है।
ii) सिद्धांत और कानून सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए बनाए गए हैं।
iii) सूचना-पद्धतियों में वृद्धि हुई है।
iv) वे चीजें जो समय और स्थान से परे हैं भाषा के माध्यम से ही बताई जा सकती हैं।

3) ग और घ

4) क) घनत्व, जन्म दर, मृत्यु दर, आयु संरचना, जीवीय संभाव्यता फैलाव और वृद्धि का स्वरूप वह लक्षण है जो जनसंख्या के आकार, बनावट और वितरण को निर्धारित करता है।

ख) पहला कारण यह है कि 500 साल पहले संसार की जनसंख्या आज की जनसंख्या से बहुत कम थी (5 खरब से ज्यादा 1/2 खरब की अपेक्षा) दूसरे हाल में मानव जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। (पिछले 10 सालों में 1 खरब की वृद्धि हुई जबकि 1/2 खरब 350 सालों में हुई)।

ग) जब मृत्यु दर, जन्म दर के बराबर हो जाती है तो वृद्धि दर शून्य हो जाती है। जनसंख्या की वृद्धि दर की ऐसी कमी को जनसांख्यिकीय परिवर्तन कहते हैं। विकासशील देशों में जनसांख्यिकीय परिवर्तन को जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगा कर और अधिक स्थिति सुधार कर प्राप्त किया जा सकता है।

शब्दावली

मानव वैज्ञानिक (Anthropologist) : मनुष्य जाति के मूल, विकास, रीति-रिवाजों और विश्वासों के अध्ययन में विशेषज्ञ,

वायु मंडलीय प्रतीपन (atmospheric inversion) : मौसम की वह स्थिति, जिसमें वायु की निचली परत ऊँचाई की परत से ठंडी होती है। यह ठंडी वायु अपेक्षाकृत स्थिर रहती है जिसके कारण वायु प्रदूषण बढ़ जाता है और भीड़भाड़ वाले शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक स्थिति पैदा हो जाती है।

जैव प्रदीप्ति (bioluminescence) :जीवों द्वारा प्रकाश का उत्सर्जन।

ब्रिकेट (briquette) : संपीड़ित कोयले के चूर्ण के छोटे-छोटे खंड जिन्हें ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

निर्जलीकरण (desiccation) : किसी भौतिक पिंड में से जल के अंश को हटाना।

अपरदहारी (detrivores) : वे जीव जो हाल ही के मृत पौधों या जानवरों या आंशिक तौर पर अपघटित उनके अवशेषों पर जीवित रहते हैं।

बाह्य परजीवी (ectoparasite) : परजीवी जो शरीर के अन्दर नहीं रहते हैं केवल बाहर ही होते हैं।

विषुव (equinox) : वह समय या तिथि जिस पर सूर्य भूमध्य रेखा को पार करता है और रात तथा दिन बराबर होते हैं।

शरद विषुव : 22 सितंबर के आसपास। वसंत विषुव : 20 मार्च के आसपास।

चरघातांकी वृद्धि (exponential growth) : विशिष्ट समय अवधि के दौरान पूरे सकल की नियत प्रतिशतता द्वारा वृद्धि।

अकोककर (अधूसर) कोयला (noncoking coal) : कोयला जो जलने के बाद कोई भी ठोस अवशेष नहीं छोड़ता।

पादपप्लवक (phytoplankton) : स्वतंत्र रूप से तैरने वाले विशेषतः सूक्ष्म जलीय पौधे।

प्राथमिक उत्पादकता (primary productivity) : वह दर जिस पर प्रकाश संश्लेषण के दौरान जैव कार्बीनक यौगिक बनते हैं।

सिग्नाभ वक्र (sigmoid curve) :S-आकार का वक्र जिससे प्रारंभ में मंद वृद्धि दर, बाद में तेज वृद्धि दर और फिर पुनः मंद वृद्धि दर (लगभग शून्य) प्रदर्शित होती है।

संक्रांति (solistice) : ग्रीष्म या शरद ऋतु का वह समय जब सूर्य भूमध्य रेखा से सबसे अधिक दूर होता है।

स्थलाकृति (topography) : किसी स्थान या जिले के लक्षणों का विवरण, जिसमें विशेषतः नदियों, पहाड़ों, सड़कों इत्यादि का विवरण हो।

प्राणिप्लवक (zooplankton) : जल सतहों के पास पाए जाने वाले अधिकांशतः सूक्ष्म जलीय जंतु जो तैरने में दुर्बल होते हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 पारिस्थितिकी परिचय, श्री देवेंद्र प्रताप नारायण सिह, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी 1976

2 हमारा पर्यावरण, गाँधी शांति प्रतिष्ठान 229, दीन दयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110 002

इकाई 6 पर्यावरण पर मनुष्य का प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
6.2 संसाधनों की सीमित प्रकृति
भौतिक संसाधन
जैव संसाधन
6.3 वहन क्षमता
6.4 मानव गतिविधियाँ और पर्यावरणीय अवकर्ष
उत्तरजीविता के लिए गतिविधियाँ
अन्य गतिविधियाँ
6.5 सारांश
6.6 अंत में कुछ प्रश्न
6.7 उत्तर

6.1 प्रस्तावना

पहले की इकाइयों में आपका परिचय पर्यावरण की अवधारणा, पर्यावरण के प्राकृतिक और कृत्रिम घटकों और पारितंत्रों से कराया गया। मानव इस पृथ्वी पर रहने वाली लाखों जातियों में से एक है। और अनेक प्राकृतिक पारितंत्रों में एक प्रमुख घटक है। लेकिन केवल वही ऐसा जीव है जिसने अपनी बहुमुखी प्रयोजन वाली माँगों को पूरा करने के लिए जैव और भौतिक, दोनों ही संसाधनों को काम में लाने के लिए विभिन्न प्राकृतिक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप किया है और बाधा डाली है। प्राकृतिक संसाधनों का धीरे-धीरे अतिक्रमण होता रहा है जिसके फलस्वरूप भूमि (landscape) और भूमि प्रयोग में स्थायी परिवर्तन हुए हैं। यह सब मानव-जाति की बढ़ती हुई आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए हुआ है। बढ़िया और संतुष्ट करने वाली जीवन-शैली अपनाने हेतु इस हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप अनेक प्राकृतिक प्रक्रियाओं में बाधा पड़ी है, कुछ प्रक्रियाएँ तेज और कुछ मंद की गई हैं। जब तक जनसंख्या छोटी रही, पारितंत्र मानव के हस्तक्षेप के प्रभाव को सहते रहने के काबिल बना रहा। लेकिन पिछली दो शताब्दियों में मानव जनसंख्या बेहद तेजी से बढ़ती रही है। उपलब्ध सप्लाई के लिए बढ़ती हुई माँग ने लगभग सभी संसाधनों जैसे कि भूमि, जल, वन आदि का अभाव पैदा कर दिया है और परिणामस्वरूप प्राकृतिक वातावरण में संतुलन को खतरनाक ढंग से गड़बड़ा दिया है।

प्राकृतिक संसाधनों के इस अतिदोहन (over-exploitation) और अनुचित उपयोग ने प्राणिजात (fauna) और वनस्पति जात (flora) की विविधता और उत्पादकता में गिरावट ला दी है। भौतिक संसाधनों (विशेष रूप से पानी और भूमि), की उपलब्धता में भी गिरावट आई है।

इस संदर्भ में उन अनेक तरीकों को समझना आवश्यक है, जिनसे मानव गतिविधियाँ प्राकृतिक जैव-भौतिक तंत्र को प्रभावित करती रही हैं। इससे हम पर्यावरण के संरक्षण और परिरक्षण (preservation) के साथ-साथ चिरस्थाई विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नीति-निर्देशक सिद्धांत, कार्य-योजना और व्यवस्थापन तकनीकों को विकसित करने की स्थिति में हो सकेंगे। इस इकाई में हम संसाधनों की सीमित प्रकृति पर विचार करेंगे। इसके अलावा हम आपका परिचय मानव की उन विभिन्न गतिविधियों से करायेंगे जिनसे पर्यावरण का अवकर्ष हुआ है।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- भौतिक और जैव संसाधनों की सीमित प्रकृति को समझा सकेंगे;
- पृथ्वी पर भौतिक और जैव संसाधनों को संरक्षित करने की आवश्यकता को न्यायसंगत ठहरा सकेंगे;

- संसाधनों की सीमित प्रकृति किस तरह वहन (carrying) क्षमता तय करती है, उसे स्पष्ट कर सकेंगे;
- मानव गतिविधियाँ जैसे कि खेती-बाड़ी, ऊर्जा उत्पादन, खनन, उद्योग आदि जैसे पर्यावरण को और बदले में स्वयं मनुष्य को प्रभावित करते हैं, स्पष्ट कर सकेंगे।

6.2 संसाधनों की सीमित प्रकृति

मानव समाज की वृद्धि और विकास, यहाँ तक कि मनुष्य के अस्तित्व के लिए भी अनेक प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता होती है जिसमें भौतिक और जैव, दोनों संसाधन शामिल हैं। किसी भी पारितंत्र में यह देखा जा सकता है कि जीवों के समुदाय पृथ्वी की सतह पर, इसके ज़रा नीचे और ज़रा ऊपर भी रहते हैं। पारितंत्र में जीवों का भूमि, जल, वायु, और सौर ऊर्जा जैसे भौतिक पर्यावरण और उनकी आपस में पारस्परिक क्रिया (interaction) होती रहती है। भूमि हर तरह से सीमित है। हालांकि पानी की कुछ समय के अन्दर पुनः पूर्ति की जा सकती है, लेकिन इसकी भी कमी पैदा हो सकती है। हवा का भंडार जो कभी खाली होने वाला नहीं है, इसके संघटन में भारी परिवर्तनों से इसके गुण में अत्यधिक गिरावट के कारण यह काम में लाने लायक नहीं रहता। ऐसा लगता है मानो ऊर्जा अपने प्राकृतिक रूप में उपलब्ध है जैसे कि सूर्य किरणें, प्रचुर मात्रा में हैं लेकिन उपभोक्ता स्तर पर इसकी सप्लाई चिंताजनक रूप से कम है। जीवाश्म ईंधन जैसे कि कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस और रेडियोएक्टिव तत्व निस्संदेह सीमित हैं। इनके बढ़ते हुए उपयोग से इनका भंडार तेजी से कम होता आ रहा है। भारतवर्ष में इन संसाधनों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता कम होती जा रही है। जब तक वैज्ञानिक और तकनीकी आमूल-चूल बदलाव नहीं आता और एकदम से प्रगति नहीं की जाती, परिस्थिति बहुत गंभीर बनी रहेगी। इसका मुख्य कारण जनसंख्या वृद्धि और मूल संसाधनों की कमी भी है। मानव हस्तक्षेप के कारण भी इन संसाधनों की हानि हो रही है।

भारत में हाल के दशकों में जनसंख्या में वृद्धि दर तालिका 6.1 में दिखाई गई है।

तालिका 6.1 : भारत में जनसंख्या वृद्धि

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	एक दशक में वृद्धि (करोड़ में)
1951	36.11	--
1961	43.92	7.81
1971	54.82	10.90
1981	68.52	13.70
1991 (अनुमानित)	81.94	13.40

मानव जनसंख्या में वृद्धि के अलावा, विकास गतिविधियों में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। ये सब ऐसी रफ्तार से हुई हैं जिससे प्राकृतिक संसाधनों के तेजी से शोषण किए जाने की माँग कर डाली। इस रफ्तार ने प्रकृति की पाचन क्षमता को यह मौका भी नहीं दिया कि वह इस शोषण के उत्तर प्रभावों को सह सके। दूसरे शब्दों में दोहन इतना ज्यादा हुआ है कि प्रकृति स्वयं अपनी गतिशीलता द्वारा स्थिति को संतुलित करने में असमर्थ रही है। भारत में स्थिति कहीं ज्यादा गंभीर है, क्योंकि जहाँ उसके पास विश्व के धरातल का केवल 2 प्रतिशत ही है वहीं वह विश्व जनसंख्या का 15 प्रतिशत रखता है।

इकाई 3 में आपने पढ़ा है कि पर्यावरण के जैव और भौतिक घटकों के बीच लगातार पारस्परिक क्रिया होती हैं। पर्यावरण के विभिन्न घटकों के बीच आंतरिक संयोजन सदा रहता है। संसाधनों के अतिदोहन और अनुचित उपयोग के कारण, पर्यावरण के विभिन्न घटकों के बीच आंतरिक संयोजन छिन्न-भिन्न हो गया है, जैसा कि नीचे दिए गए प्राचालकों से स्पष्ट है :

- पृथ्वी के ऊष्मा परिक्रमण
- क्षेत्र का जल संतुलन
- भौतिक और जैव संसाधनों जैसे कि मृदा, जल, वनस्पतिजात, और प्राणिजात की उपलब्धता

- भूमि की जैव-उत्पादकता एवं भूमि उत्पादकता।

अब तक मानव जाति को जनसंख्या विस्फोट के संदर्भ में जो अनुभव हुए हैं, उसके आधार पर संसाधनों की उपलब्धता का विस्तार से अध्ययन करना आवश्यक है। सबक सीखने के लिए मनुष्य के हस्तक्षेप के परिणामों की जाँच की जानी चाहिए और आने वाली पीढ़ी को जिंदा बचाए रखने के उद्देश्य से भविष्य के लिए एक समुचित कार्य योजना तैयार करनी चाहिए। विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के मुख्य दार्शनिक सिद्धांत भी संसाधनों के चिरस्थाई इस्तेमाल को ऐसा उपाय बताते हैं जो विवाद से परे हैं। इनमें साफ़-साफ़ बताया गया है कि संसाधन सीमित हैं, और उनके पुनरुत्पादन या फिर से भरे जाने(नवीनीकरण) का ध्यान रखा जाना चाहिए। अगर हम धर्म को मात्र सामाजिक या नैतिक नियमावली बनाने वाला न समझकर किसी विशेष काल की परिणामवादी (pragmatic) या व्यावहारिक प्रथाओं को प्रतिबिंबित करने वाला मानें तो यह सचमुच महत्त्वपूर्ण है।

6.2.1 भौतिक संसाधन

भूमि, जल, ऊर्जा जैसे कुछ भौतिक संसाधनों की नीचे चर्चा की गई है:

I) भूमि

मनुष्य सहित सभी जीवधारियों, के उद्भव और विकास का आधार भूमि है। पृथ्वी के कुल धरातल 5,10,000 लाख हेक्टेयर (ला.हे.) का केवल 1,49600 ला. हे. या 29.22 प्रतिशत ही भूमि है, शेष 3,61,000 ला. हे. या 70.78 प्रतिशत समुद्र है। जमीन के 30 प्रतिशत से थोड़ा कम में सीधे खड़े पहाड़, उत्तर रेगिस्तान, दलदल वाले क्षेत्र आदि हैं और इसलिए यह कृषि उत्पादन के लिए उपलब्ध नहीं है।

खाद्यान्न और अन्य जिन्सों के उत्पादन की अनिवार्यता और त्वरित विकास की होड़ ने भूमि से ऐसी अपेक्षाएँ बढ़ा दी हैं, जो आपस में प्रतिस्पर्धी हैं। चित्र 6.1 में पिछले पाँच दशकों में भूमि के विभिन्न उपयोग-वर्गों के अन्तर्गत, उपलब्ध भू-क्षेत्र के वितरण के बदलते हुए प्रतिरूप दर्शाए गए हैं।

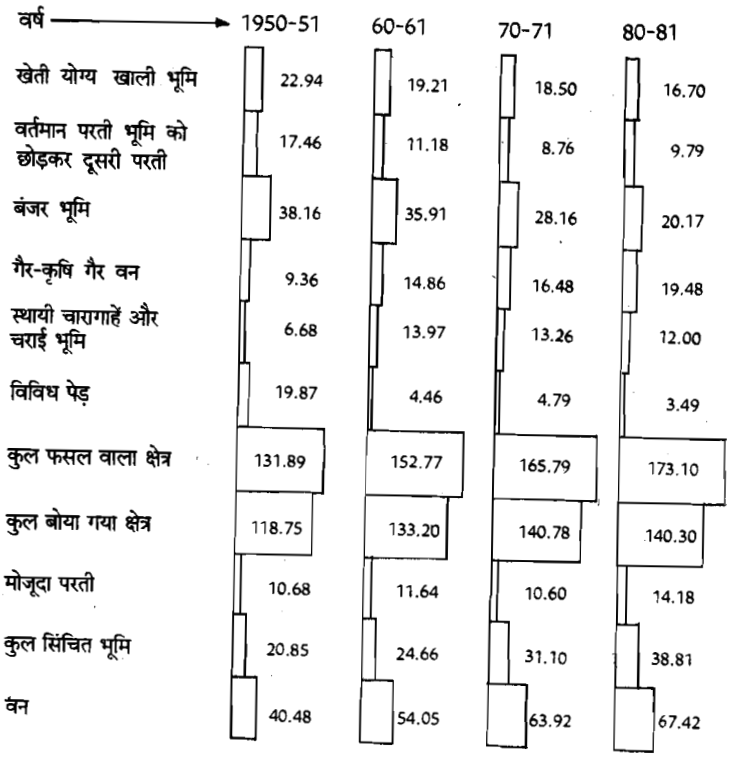

चित्र 6.1 : पिछली चार दशकों के दौरान विभिन्न प्रकार के भूमि उपयोगों में पारस्परिक परिवर्तन (क्षेत्रफल—ला. हे.)

चित्र 6.1 से स्पष्ट है कि पिछले दशकों में भूमि उपयोग के विभिन्न वर्गों में महत्त्वपूर्ण हेर-फेर हुआ है। आप देख सकते हैं कि विभिन्न क्षेत्रफलों में होने वाली वृद्धि इस प्रकार है–

- कुल फसल वाला क्षेत्रफल –31.2 प्रतिशत
- नेट बोया गया क्षेत्रफल –18.1 प्रतिशत
- नेट सिंचित क्षेत्रफल –86.2 प्रतिशत
- वन क्षेत्रफल –66.5 प्रतिशत
- गैर-कृषि और गैर-वन क्षेत्रफल अर्थात् शहरी केन्द्र, व्यापारिक काम्पलेक्स, उद्योग, शैक्षिक संस्थाएँ आदि –107.4 प्रतिशत

जिन वर्गों की भूमि के क्षेत्रफल में कमी हुई है, वह इस प्रकार हैं–

- घास स्थल –78.8 प्रतिशत
- परती और खेती योग्य व्यर्थ भूमि –20.3 प्रतिशत
- गैर-खेती योग्य बंजर भूमि –44.2 प्रतिशत

कृष्य भूमि का विस्तार जंगलों का सफाया करके किया गया है। इसके साथ ही, शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण फसल वाली भूमि का गैर-कृषि कार्यों में भी उपयोग किया गया है। फिर भी, आज़ादी के बाद निजी-वन भूमि के स्वामित्व के संगठन के कारण और फिर वनरोपण कार्यक्रमों के द्वारा वन-भूमि का भी विस्तार हुआ है।

बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए अन्न, पशुओं के लिए चारे, ईंधन के लिए लकड़ी और उद्योग के लिए कच्चे माल के उत्पादन की मांग लगातार बढ़ रही है। 1980-81 के आँकड़ों की तुलना में 2000 ई. में 10,000 लाख की जनसंख्या के लिए प्रमुख भौम संसाधनों पर आधारित पैदावार की अपेक्षित माँग चित्र 6.2 में दर्शाई गई है।

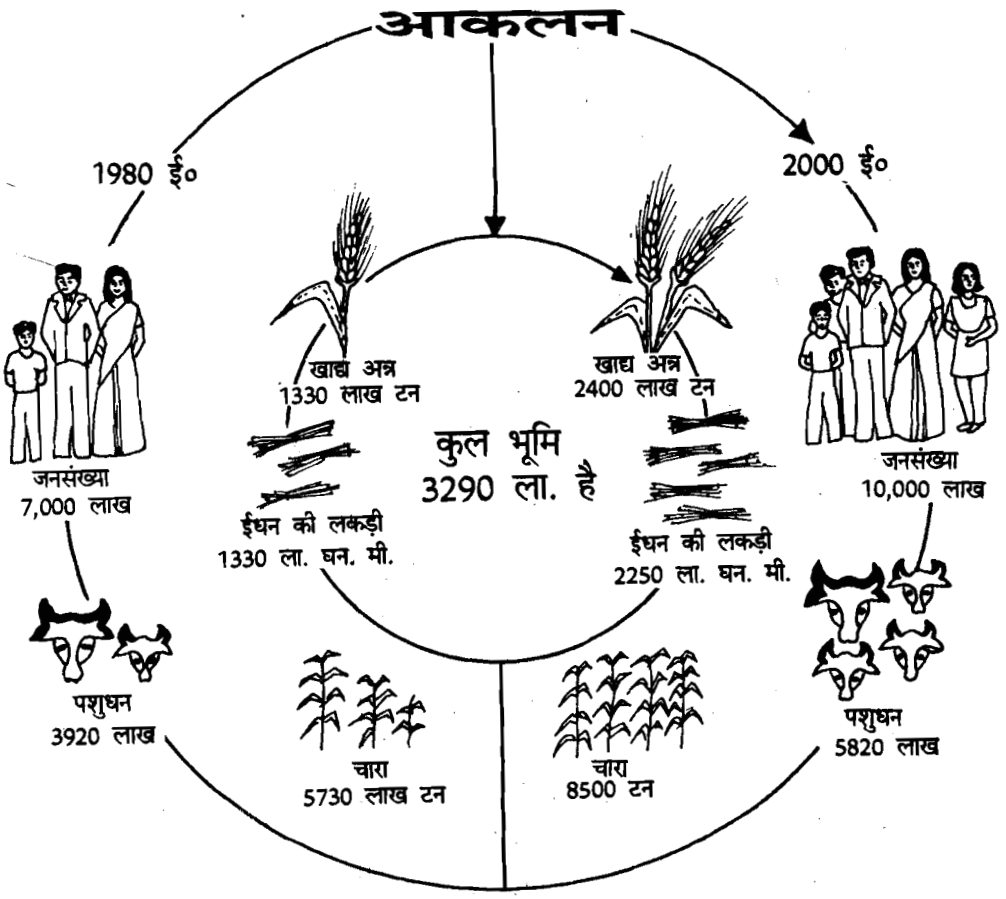

चित्र 6.2 : 2000 ई. के लिए जनसंख्या और माँग का आकलन

(स्रोत : राष्ट्रीय भू उपयोग संरक्षण परिषद् की रिपोर्ट, 1988)

तालिका 6.2 में पिछले दो दशकों के और अगले दशक के आकलनों के तुलनात्मक आँकड़े दिए गए हैं।

आप देख सकते हैं कि खेती, चराई और चारे जैसे उपभोगों के लिए तथा सामाजिक प्राथमिकताओं को पूरा करने के लिए भी प्रति व्यक्ति उपलब्ध भूमि आधी रह गई है और आने वाले समय में इसमें और भी कमी होने की संभावना है।

तालिका 6.2 : भारतवर्ष में प्रति व्यक्ति उपलब्ध क्षेत्रफल

प्रति व्यक्ति उपलब्ध क्षेत्रफल	हे./व्यक्ति		
	1950	1980	2000 ई. (आकलित)
कुल	0.89	0.50	0.33
मानव जनसंख्या			
कृष्य (खेती की गई) भूमि (वनों और वृक्षों सहित)	0.48	0.20	0.15
पशुधन जनसंख्या			
चराई भूमि (वनों सहित)	0.51	0.32	0.24

ऊपर दिए गए परिवर्तनों से पर्यावरण का मूलभूत रूपान्तरण होगा। जल, पोषक और ऊर्जा जैसे अन्य निवेशों के लिए माँग बढ़ेगी। पर्यावरण के विभिन्न घटकों में संभावित विघटनों की रोकथाम करने या सामना करने के लिए भूमि बजट की सुधारात्मक और सहायक (additive) उपायों द्वारा पूर्ति आवश्यक है। भूमि के अपकर्षण (degradation) और देशभर में मृदा अपरदन या मिट्टी के कटाव की व्यापक समस्या के न रुकने वाले प्रक्रमों को देखते हुए इन उपायों की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

II जल

अगर मनुष्य के अस्तित्व के लिए अच्छी भूमि का होना आवश्यक है तो भूमि के सभी उपयोगों के लिए पानी सबसे निर्णायक और अपरिहार्य निवेश है। इसलिए मानव सभ्यताओं का विकास इस प्राकृतिक और फिर से भरे जा सकने वाले अथवा नवीनीकरणीय (पुर्नउत्पादनात्मक) संसाधनों की उपलब्धता के साथ जुड़ा हुआ है। अभी भी विज्ञान और प्रौद्योगिकी में महत्त्वपूर्ण विकास के बावजूद जीवन पानी की उपलब्धता पर सम्पूर्णतया निर्भर है।

भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए पानी की आवश्यकता होती है, भले ही उत्पादकता फसल, चारे जिसमें चराई वाली जगह बागवानी के पेड़-पौधे या बागान की हो। यही वह अकेला मुख्य कारक भी है जो मिट्टी के स्वास्थ्य का और पेड़-पौधों के लिए पोषकों की उपलब्धता का नियमन करके पर्यावरण को तय करता है। पानी को मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं के समाकलित दृष्टिकोण के साथ-साथ भूमि उत्पादन कार्यक्रमों के विकास और प्रबंध, सामाजिक प्राथमिकताएं, आर्थिक गतिविधियों आदि के साथ प्राकृतिक संसाधन के रूप में विचार करना होगा।

जल के सार्वभौमिक वितरण से पता चलता है कि पानी की कुल मात्रा का 3 प्रतिशत से कम अलवण जल है। कुल अलवण जल का स्रोत वार ब्यौरा और उपलब्धता तालिका 6.3 में दिखाई गई है।

तालिका 6.3 : अलवण जल का सार्वभौमिक वितरण

	अलवण जल की किस्म	अलवण जल का प्रतिशत	प्रतिशत उपलब्धता
1)	**जमा हुआ**	80.00	
2)	**द्रव्य**	20.00	
	भौम जल	19.7	98.4
	झील	0.2	1.0
	मृदा	0.04	0.2
	नदियाँ	0.02	0.1
	वायुमंडल	0.02	0.1
	जैव (उपापचयी)	0.001	0.005

ऊपर दी गई तालिका से यह स्पष्ट है कि अलवण जल का केवल पाँचवाँ भाग ही द्रव्य रूप में उपलब्ध है। इस सीमित मात्रा की पुनः पूर्ति की जा सकती है और इसलिए आदमी ने अपने इस्तेमाल के लिए इसी मात्रा का बार-बार उपयोग किया है। इस अपर्याप्त उपयोगी वस्तु का 90 प्रतिशत से भी अधिक अंश भूमिगत जल के रूप में है, जबकि केवल 1.0 प्रतिशत ही झीलों और तालाबों में है। मृदा परिच्छेदिका (soil profile) में सिर्फ 0.2 प्रतिशत होता है जबकि नदियों या वायुमंडल में इससे दुगुनी मात्रा होती है।

वर्षा की दृष्टि से भारत एक भाग्यवान देश है। दक्षिण अमेरिका महाद्वीप को छोड़कर अन्य सभी महाद्वीपों से ज्यादा वर्षा भारत में होती है। (तालिका 6.4)

तालिका 6.4: विभिन्न महाद्वीपों और भारत में औसत वार्षिक वर्षण (मि.मी.)

देश	वर्षण
दक्षिण अमेरिका	1596
भारत	1150
उत्तरी अमेरिका	808
यूरोप	769
अफ्रीका	725
एशिया (भारत को छोड़कर)	630
ऑस्ट्रेलिया	456

तुलनात्मक रूप से भारत के पास विश्व जल संसाधनों का 6 प्रतिशत है, लेकिन इसे विश्व जनसंख्या के 15 प्रतिशत की खपत आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ता है। भारत की जल-संपदा संयुक्त राज्य अमेरिका की जल-सम्पदा के लगभग बराबर है, हालांकि संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में इसका धरातल केवल 40 प्रतिशत है। इस आभासी प्रचुरता के बावजूद भारत की प्रति व्यक्ति वार्षिक खपत केवल 3,200 हे.मी. (हेक्टेयर मीटर ha.-m.) है, जबकि सोवियत संघ में 17,500, जापान में 6,500 और संयुक्त राज्य अमेरिका में 6,200 है। ऐसी संभावना है कि 2000 ई. में विश्व का प्रति व्यक्ति उपलब्ध जल और भी 21 प्रतिशत कम हो जाएगा। यह कमी अधिकांश अफ्रीकी और भारत सहित सभी एशियाई देशों में ज्यादा होने की संभावना है। इस संदर्भ में जल के कुल उपलब्ध आयतन के निर्धारण की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

एक आकलन के अनुसार, देश के उपलब्ध जल का लगभग 1,050 लाख हे.मी. उपयोगी है, जिसमें 700 लाख हे.मी. भू-पृष्ठ और 300 ला. हे.मी. भौम जल आता है। लेकिन नवीनतम निर्धारण से पता चलता है कि देश में कुल भूपृष्ठ जल लगभग 1,800 लाख हे.मी. है, जिसका 684 ला.हे.मी. अथवा 38 प्रतिशत उपयोगी है। पुनः पूर्ति की जा सके, ऐसा पानी की अनुमानित मात्रा 600 लाख हे.मी. है, जिसमें से 420 लाख हे.मी. या 70 प्रतिशत उपयोगी है। इस प्रकार देश के कुल आकलित जल (2,400 लाख हे.मी.) का केवल 1,104 लाख हे.मी. या 46 प्रतिशत ही उपयोगी है।

खपत अपेक्षाएँ विशेष रूप से तीन क्षेत्रकों की हैं—सिंचाई के लिए कृषि, घरेलू बस्तियाँ जिसमें पशुधन भी शामिल है और उद्योग। समय के चार भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर जल की वार्षिक माँग तालिका 6.5 में दी गई है।

तालिका 6.5: जल की वार्षिक माँग : कुल और क्षेत्रवार

वर्ष	सिंचाई	कुल दूसरे उपयोग शहर/उद्योग/गाँव*	कुल
1974	350 (89.3)	30 (10.7)	380
1985	360 (66.7)	180 (33.3)	540
2000 (अनुमानित)	500 (66.7)	250 (33.3)	750
2005 (अनुमानित)	770 (73.3)	280 (26.7)	1050

* लाख हे.मी. में, कोष्ठक में दिए गए आँकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं।

ऊपर दी गई तालिका में आप देख सकते हैं कि कुल माँग धीरे-धीरे 1974 में 380 लाख हे.मी. से लेकर 1985 में 540 लाख हे.मी. तक बढ़ गई। 2000 ई. के लिए अपेक्षित माँग

के आँकड़े 750 लाख हे.मी. है। लेकिन अन्न, चारा, ईंधन की लकड़ी और औद्योगिक कच्चे माल की भूमि आधारित जिन्सों (वस्तुओं) की बढ़ी हुई और विविध माँगें 2000 ई. तक 10,000 लाख जनसंख्या को संभालेंगी यह सोचकर इन वस्तुओं का पुनः निर्धारण किया गया है। 2000 ई. तक वार्षिक रूप से उत्पादित किया जाने वाला सकल पादप जैव भार (plant biomass) 20000 लाख टन आँका गया है। राष्ट्रीय कृषि परिषद् और राष्ट्रीय भूमि उपयोग तथा परती भूमि विकास परिषद् ने आकलन किया है कि 2000 ई. तक अपेक्षित सिंचित क्षेत्रफल लगभग 1,100 लाख हे. (लाख हेक्टेयर) होना चाहिए (तालिका 6.6)।

तालिका 6.6: राष्ट्रीय भूमि उपयोग नीति और वांछनीय भूमि बजट

श्रेणी	1980 ई.	(लाख हेक्टेयर) 2000 ई. आकलित
1) नेट बोया गया क्षेत्रफल		
(क) वर्षा प्रधान	1,010.0	400.0
(ख) सिंचित	390.0	1,100.0
2) वन	674.0	1,150.0
3) चारागाह	120.0	220.0
4) शहरीकरण (बस्तियाँ + गैर-कृषि वन उपयोग को छोड़कर)	195.0	255.0
5) अन्य अनुपयोगी	901.0	165.0
कुल योग	3,290.0	3,290.0

वास्तव में, वर्ष 1984-85 में सिंचित क्षेत्रफल केवल 417.8 लाख हेक्टेयर था। 1984-85 से 16 वर्षों की अवधि में अतिरिक्त 680 लाख हे. के लिए सिंचाई की व्यवस्था करना एक असंभव कार्य लगता है। इसके अनुसंगी पानी की आवश्यकता 586 लाख हे.मी. होगी। इस व्यावहारिक आवश्यकता के अलावा पानी की भयंकर कमी होगी क्योंकि देश में कुल उपयोगी वार्षिक जल संसाधन केवल 1,050 लाख हे.मी. है। इसके साथ ही औद्योगिक क्षेत्र, बिजली उत्पादन और शहरीकरण की तेजी से बढ़ती हुई माँग की कल्पना की जा सकती है। 2000 ई. के लिए गैर-कृषि क्षेत्रकों की अनुमानित अपेक्षित आवश्यकताएँ इस प्रकार हैं:

तालिका 6.7: 2000 ई. में गैर-कृषि क्षेत्र की अनुमानित जल आवश्यकताएं (भारतवर्ष)

उपयोग		लाख हे.मी.
घरेलू		
शहरी		49.9
ग्रामीण		22.2
	योग	72.1
उद्योग		4.7
बिजली उत्पादन, खनन आदि		60.0
	कुल योग	136.8

इस तरह कृषि के लिए उपलब्ध नेट संसाधन केवल 913.2 लाख हे.मी. होंगे। इस राशि में आने वाले वर्षों में उद्योगों की वृद्धि के लिए अतिरिक्त माँग के बारे में कोई व्यवस्था नहीं रखी गई है। राष्ट्रीय जल नीति के संदर्भ में और भी जाँच की गई है और यह पाया गया है कि सिंचाई के लिए उपलब्ध जल, फसल बोए गए क्षेत्रफल के कम से कम 75 प्रतिशत को सींच सकेगा। भूमि बजट के अनुरूप इसका यह अर्थ होगा कि, जैसा कि तालिका 6.6 में दिखाया गया है, नेट बोए गए क्षेत्रफल के आकलित 1500 लाख हे. में से केवल 1,125.0 लाख हे. की सिंचाई होनी चाहिए।

III) ऊर्जा

उत्पादन और खपत, दोनों के लिए ही ऊर्जा की आवश्यकता होती है। गतिविधियों की

बहुमुखता पर्यावरण के भौतिक और जैव घटकों की गतिशीलता का लक्षण है। सभी गतिविधियों को ऊर्जा की आवश्यकता है। प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत मनुष्य उपलब्ध ऊर्जा संसाधनों को अन्य जीवों के साथ साझे रूप में बरतता रहता है। लेकिन अपने जीवनयापन शैली में, अपने समाज में सुधार लाने के उद्देश्य से उसने जल्दी ही प्राकृतिक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप शुरू कर दिया। उसे नई गतिविधियाँ आरम्भ करनी पड़ीं, जिसके लिए अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता थी। इसलिए उसने नए संसाधनों की खोज द्वारा ऊर्जा की नई-नई और बड़ी सप्लाई तलाश की। इससे अनेक भंडार खाली हो गये। जो कुछ दशाब्दियों पहले प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ते थे। लेकिन आज 10000 लाख की जनसंख्या को अधिक अच्छे जीवन-स्तर पर सँभाले रखने की चुनौती के साथ मानव समाज को 2000 ई. तक इनमें से अनेक संसाधनों की कमी का सामना करना पड़ेगा। लगता है कुछ संसाधन घटते जा रहे हैं, जबकि दूसरे संसाधन भी अगर ज्यादा आज़ादी से बरते जाते रहे तो वे वन, भूमि, जल और हवा जैसे अन्य प्राकृतिक संसाधनों के लिए हानिकारक बन सकते हैं। इसलिए, अपने ऊर्जा संसाधनों की सीमा को समझ लेना बहुत आवश्यक है।

2000 ई. के लिए विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न ऊर्जा की माँग का आकलन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है :

1) **ईंधन की लकड़ी :** भारत में यह अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या और शहरी केन्द्रों में गरीब और कम सुविधा प्राप्त जनसंख्या के लिए ऊर्जा का परम्परागत और सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत है। 1978-79 में शहरी ईंधन की लकड़ी की खपत का अनुमान लगभग 160 लाख टन था। इसमें से 140 लाख टन हर साल खरीदी जाती है जिसका अर्थ है शहर में जलाऊ लकड़ी का 500-600 करोड़ रु. का विनिमय। ये विनिमय बेरोज़गार रहने वाले या निम्न आय वर्ग में आने वाले जनसंख्या के बड़े भाग को चाहे आंशिक ही सही, रोज़गार देता है और आमदनी कराता है। महानगरों में भी जलाऊ लकड़ी की माँग बड़ी तेजी से बढ़ रही है हालाँकि ऊर्जा के अन्य स्रोतों की भी महत्त्वपूर्ण वृद्धि हो रही है। अकेले दिल्ली में, 1971 और 1981 के बीच केवल एक केन्द्र अर्थात् तुगलकाबाद रेलवे साइडिंग की जलाऊ मार्फत लकड़ी की सप्लाई 200 प्रतिशत बढ़ी। राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा 2000 ई. के लिए पहले आकलित 2250 लाख टन की तुलना में राष्ट्रीय ऊर्जा सलाहकार परिषद् का यह आकलन 3000 और 3300 लाख टन के बीच रहा और शहरी केन्द्रों के लिए अनुमानित माँग 700 लाख टन रही।

2) **उपले :** गोबर के उपलों की कुल शहरी और ग्रामीण खपत सूखे गोबर के 700 और 750 लाख टन के बीच है। भारत के शहरों में 3.2 किलोग्राम प्रति व्यक्ति की दर से लगभग 50 लाख टन उपले प्रतिवर्ष जलाए जाते हैं। गोबर को इकट्ठा करने, उपले बनाने और उन्हें शहरों में बेचने से ग्रामीण या शहरी गरीब को रोजगार मिलता है और आमदनी होती है। 2000 ई. तक उपलों की आकलित माँग 2,000 लाख टन बैठती है।

3) **कृषि अवशिष्ट :** भूसा, ईख का खोई, खर-पतवार आदि जैसे कृषि अवशिष्ट गाँव के गरीब और भूमिहीनों के लिए ऊर्जा के बहुत महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। 2000 ई. तक आकलन की नई माँग 1,000 लाख टन बैठती है।

4) **जीवाश्म (fossil) ईंधन :** कोयला, लिग्नाइट, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस जीवाश्म ईंधन कहलाते हैं क्योंकि पृथ्वी की पपड़ी के नीचे तीव्र ऊष्मा और दाब के अन्तर्गत प्रागैतिहासिक पादपों और प्राणियों से निकाले जाने के कारण ये ईंधन जीवाश्म ईंधन कहलाते हैं। कोयला और लिग्नाइट ऐसे पादपों से बने हैं जो या तो स्वस्थाने (in situ) यानी जहाँ थे वहीं दब गये या बाहर से विस्थापित होकर ऐसी जगह आ गये जो अवसादी निक्षेपों (sedimentary deposits) से ढकी हुई हैं। पेट्रोलियम का उद्गम मुख्य रूप से प्रागैतिहासिक समुद्री प्राणियों से माना जाता है। देश की व्यापारिक ऊर्जा की खपत का लगभग 60 प्रतिशत कोयला और लिग्नाइट से पूरा किया जाता है। कोयला घरेलू कामों, रेल इंजनों, उद्योगों में विभिन्न प्रकार की भट्टियों, ताप बिजली उत्पादन, धातुओं और खनिजों के निष्कासन, कोयला गैस, डामर आदि के उत्पादन के काम में लाया जाता है। देश में कोयले का आरक्षित भंडार 15,92,991 लाख टन आँका गया है। लेकिन अच्छी किस्म के कोयले (जो किफायत से निष्कासित किया जा सकता है) का आरक्षित भंडार 2,50,000 लाख टन आँका गया है। खाना पकाने के काम आने वाला कोयला अधिकतर झरिया आरक्षित भंडार तक सीमित है।

कोयला उत्पादक देशों में भारत का अब पाँचवाँ स्थान है। 1986-87 तक भारत में कोयला उत्पादन 1,658 लाख टन (16 करोड़ 58 लाख टन) पहुंच गया, जो पिछले 40 वर्षों में पाँच गुना अधिक है। 2000 ई. तक कोयले और लिग्नाइट की माँग 4,500 और

5,400 लाख टन के बीच आकलित की गई है जिसमें 700 लाख टन खाना पकाने वाला कोयला और बिजली पैदा करने के लिए 2,060-3,020 लाख टन कोयला शामिल है। बाकी कोयला अन्य कार्यों के लिए है। कोयले की वार्षिक आवश्यकता औसतन 5,000 लाख टन मान ली जाए तो अच्छी किस्म के कोयले का आरक्षित भंडार सिर्फ 50 साल तक चलेगा। हालांकि देश के लिए कुल आरक्षित भंडार पर्याप्त नज़र आते हैं, अच्छी किस्म के कोयले—विशेष रूप से खाना पकाने वाले कोयले—की कमी भविष्य में औद्योगिक प्रयासों को बहुत ज्यादा नाकारा बना देगी।

5) **खनिज तेल या पेट्रोलियम** : आज की दुनिया में यह ऊर्जा का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत है। यह पृथ्वी में मिलने वाले हाइड्रोकार्बन का एक संकर मिश्रण (complex mixture) है, जो प्रायः प्राकृतिक गैस से सम्बद्ध है। 1947 में देश में पेट्रोलियम का उत्पादन 2.5 लाख टन था, जबकि खपत 34 लाख टन थी। यह घाटा लगातार बढ़ रहा है। 1986-87 तक उत्पादन 305 लाख टन तक बढ़ गया। खपत का बढ़ना भी जारी रहा और 434 लाख टन हो गई। पिछले तीन दशकों में देशज स्रोतों का पता लगाने के प्रयास किए गए। इस प्रकार कच्चे तेल का आरक्षित भंडार जिसे निकाला जा सकता था 1980 में 3,660 लाख टन से बढ़कर 1987 में 5,800 लाख टन हो गया। लेकिन देश के लिए 2000 ई. तक आकलित माँग 4,400-12,300 लाख टन के बीच में है। आशा-वादी निर्धारण भी, जिसमें अतिरिक्त निक्षेपों को खोजना भी शामिल है, गंभीर रूप से सीमित लगते हैं।

6) **प्राकृतिक गैस** : प्राकृतिक गैस की उत्पत्ति भी पेट्रोलियम की तरह ही हुई है। इसमें निम्न हाइड्रोकार्बन होते हैं। लगभग पेट्रोलियम के हर कुंए से कुछ गैसीय उत्पाद निकलते हैं, लेकिन इसके अतिरिक्त गैस के भारी निक्षेप भी होते हैं जिनसे कोई द्रव्य पेट्रोलियम सम्बद्ध नहीं है। घरेलू और औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में प्राकृतिक गैस का उत्पादन तथा माँग बढ़ती रही है। 1980-81 के दौरान लगभग 23,000 लाख घनमीटर (लाख मी^{3}) प्राकृतिक गैस पैदा की गई और खपत की गई, जबकि 1986-87 में यह बढ़कर 98,120 लाख मी^{3} हो गई, जोकि चार गुना अधिक है। इसी काल के दौरान देश के प्राप्त किए जा सकने वाले गैस के बकाया आरक्षित भंडार का भी 34,00,000 लाख मी^{3} से 54,10,000 लाख मी^{3} हो गया। इस प्रवृत्ति के अनुसार 2000 ई. आने तक प्रति वर्ष माँग लगभग 1,50,000 लाख मी^{3} हो सकती है, जबकि वार्षिक खपत दर 2,50,000 लाख मी^{3} तक हो सकती है। फिर भी, आरक्षित भंडार पर्याप्त दिखाई देता है।

7) **विकल्पी स्रोत** : देश की अपनी आरक्षिति यानी आरक्षित भंडारों, विदेशी मुद्रा विनिमय पर बोझ और बढ़ती हुई जनसंख्या तथा आर्थिक विकास के अपेक्षित निवेशों को ध्यान में रखते हुए ऊर्जा के बारे में गंभीरता से विचार किया गया। ऊर्जा के अनेक वैकल्पिक स्रोत खोजे गए हैं, जैसे कि जैव-गैस (बायो गैस biogas), सौर ऊर्जा, ईंधन की लकड़ी, पवन ऊर्जा आदि। 1987 तक लगभग 84,800 बायो गैस संयंत्र चालू कर दिए गए हैं। ऐसा अनुमान है कि अनुमानित 1,280 लाख घरों में से 220 लाख ग्रामीण घर अपनी ऊर्जा की आवश्यकता बायो गैस संयंत्रों से पूरा कर सकते हैं। इस देश में सौर ऊर्जा के उपयोग की भी व्यापक संभावना है। उद्योग हर साल पानी गरम करने के लिए लगभग 3,500 मे.वा. (मेगावाट mw) के बराबर सौर ऊर्जा काम में लाते हैं। इस समय देश में लगभग 7,200 सौर चूल्हे काम में लाए जा रहे हैं। पवन, ज्वारभाटा ऊर्जा के उपयोग अभी भी परीक्षणाधीन अवस्था में है। फिर भी उपलब्ध संसाधनों के और अच्छी तरह उपयोग किए जाने की संभावना है और इससे प्रदूषण में भी कमी आएगी। धूम रहित चूल्हे भी इस दिशा में एक प्रयास हैं।

8) **विद्युत्** : यह ऊर्जा का एक ऐसा रूप है जो उद्योगों, परिवहन और संचार तथा कई अन्य सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों के लिए उपयोग में लाई जाती है। बिजली जीवाश्म ईंधन जलाशयों और रेडियोएक्टिव खनिजों से पैदा की जाती है। 1947 तक देश मे बिजली उत्पादन की क्षमता 1,900 मे.वा. (मेगावाट) थी। पहली पंचवर्षीय योजना से इस क्षमता को बढ़ाने के लिए कार्यक्रम शुरू किए गए। 1986-87 तक स्थापित क्षमता 50,059 मेगावाट बढ़ गई।

इस सदी के अंत तक स्थापित क्षमता 1,39,000 और 1,88,000 मेगावाट के बीच आकलित की गई है। प्रस्तावित लक्ष्य को जलीय, तापीय, नाभिकीय और सौर उत्पादन से पूरा किया जाएगा। जल परियोजनाओं में बड़े और छोटे या लघु दोनों शामिल हैं। ताप बिजली उत्पादन कोयला, लिग्नाइट या क्षीण गैस पर आधारित होगा। इन स्रोतों से

1,76,000 मेगावाट बिजली पैदा होगी और बाकी वैकल्पिक स्रोतों से पूरी की जाने की आशा है। 1986-87 के दौरान तुलनात्मक स्थापित क्षमता 50,000 मेगावाट थी और 2000 ई. तक के लिए 1,75,845 मेगावाट आकलित की गई है। (तालिका 6.8)।

तालिका 6.8: 1986-87 में और 2000 ई. के लिए आकलित बिजली उत्पादन की स्थापित क्षमता (म.वा.)

उत्पादन की विधि	1986-87	2000
जल परियोजनाएँ		
बड़ी या प्रमुख		59,450
छोटी/लघु		3,000
	16,681	62,450
ताप परियोजनाएँ		
कोयला आधारित		95,000
लिग्नाइट आधारित		6,570
क्षीण गैस आधारित		1,750
	32,048	103,320
नाभिकीय बिजली	1,330	10,000
सौर बिजली	—	75
कुल योग	50,059	1,75,845

9) **पशु ऊर्जा :** प्रौद्योगिकीय विकास के बावजूद चौपाये पशु भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आधारशिला हैं। पशु औद्योगिक क्षेत्र की भी अनेक महत्त्वपूर्ण माँगों को जिनमें विभिन्न जिन्सों या वस्तुओं की ढुलाई और परिवहन प्रमुख हैं पशु ही पूरी कर रहे हैं। भारत में लगभग 8 करोड़ पशु काम में आने वाले हैं, जिसमें 7 करोड़ बैल, 80 लाख भैंसे, 10 लाख घोड़े और 10 लाख ऊँट शामिल हैं। इसके अलावा खच्चर, गधे, हाथी और याक भी काम में लाए जाते हैं। अगर आधा हॉर्स पॉवर (अश्व शक्ति) प्रति पशु की दर से भी बिजली उत्पादन के बराबर शक्ति का हिसाब लगाया जाए तो यह लगभग 40,000 हॉर्स पॉवर या 30,000 मेगावाट बैठती है। इसके बराबर की बिजली पैदा करने के लिए देश को 30,000 करोड़ रुपए की आवश्यकता पड़ेगी जबकि इन कार्यरत पशुओं की लागत केवल 10,000 रुपए हैं। बैलगाड़ी भारतीय गाँवों के लिए एक बहु-उद्देशीय परिवहन है। 1956 में इसकी संख्या एक करोड़ थी, जो 1978 में बढ़कर 1.5 करोड़ हो गई। इन गाड़ियों की लागत 3,000 करोड़ रुपए आँकी गई है। पशु-गाड़ियाँ लगभग 50,000 लाख टन माल ले जाती हैं। एक देश-व्यापी सर्वेक्षण से पता चला है कि ग्रामीण यातायात का 60 प्रतिशत आवागमन पशु-गाड़ियों से हुआ। दूसरे सर्वेक्षण के अनुसार कुल यातायात में पशु-गाड़ियों का हिस्सा 72 प्रतिशत गाँव के भीतर और 66 प्रतिशत गाँव के बाहर का आवागमन था। लेकिन ऐसा लगता है, कि देश के किसी भी ऊर्जा बजट में ऊर्जा के इस स्रोत का हिसाब-किताब ही नहीं रखा गया।

IV) खनिज

खनिज पृथ्वी में अनेक प्रकार के निक्षेपों (deposits) से प्राप्त किए जाते हैं और मानव समाज की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वृद्धि तथा उत्तर जीवन के लिए अनिवार्य निवेश हैं। खनिज निम्नलिखित के लिए प्राथमिक स्रोत हैं–

- ऊर्जा उत्पादन
- औद्योगिक संयंत्रों और मशीनरियों के विकास तथा डिज़ाइन
- बस्तियाँ और आवास
- हथियार और युद्ध-सामग्री
- परिवहन और संचार
- नए रसायन जिनमें विभिन्न कार्यों के लिए दवाइयाँ और मिश्र धातु (alloy) शामिल हैं।

रासायनिक और कार्बनिक पदार्थों के पृथ्वी के भीतर के द्रव्यमान सीमित होने के कारण वे आपसी अभिक्रियाओं द्वारा अपने आपको पुनरुत्पादित अथवा नवीनीकृत नहीं कर सकते। नए निपेक्षों के निर्गमन के लिए प्रबल भू-वैज्ञानिक परिवर्तनों की आवश्यकता होती है जो भू-वैज्ञानिक समय-मापक्रम पर होते रहते हैं और इसलिए संसाधनों की पुनः पूर्ति के लिए इन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। इसलिए विभिन्न खनिजों के अस्तित्व और उनकी वस्तु स्थिति को उचित तरीके से निर्धारित करना आवश्यक है जिससे कि पर्यावरण-सुरक्षण

और संतुलन की दृष्टि से उनकी शक्ति को समझा जा सके। कुछ महत्त्वपूर्ण खनिजों की चर्चा नीचे की गई है:

1) **जीवाश्म स्रोत**: आप इस समूह के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं जिसमें ऊर्जा के प्रमुख स्रोत के रूप में कोयला, लिग्नाइट, तेल, प्राकृतिक गैस आदि शामिल हैं। कोयला और लिग्नाइट पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश और असम तथा तमिलनाडु में जमा हैं। तेल और प्राकृतिक गैस ज़मीन और समुद्र अपतट, दोनों से निकाली जाती है। इनके कुछ प्रमुख आरक्षित भंडार पश्चिम बंगाल, असम, गुजरात, पूर्वी तट के गोदावरी और कृष्णा डेल्टा में पाये गए हैं।

2) **रेडियोएक्टिव खनिज**: आधुनिक समाज अनेक उच्च तकनीक अभिनव परिवर्तनों पर निर्भर है। नाभिकीय (आण्विक) ऊर्जा का उपयोग इनमें से एक है। थोरियम का मुख्य स्रोत, मोनाजाइट, कन्याकुमारी और क्विलोन के बीच त्रिरूअनंतपुरम् (ट्रावणकोर) तट पर व्यापारिक मात्राओं में पाया जाता है, जबकि यूरेनाइट या यूरेनियम का पिचब्लेन्ड खनिज, गया (बिहार), अजमेर (राजस्थान) और नेल्लूर (आन्ध्र प्रदेश) में पाया जाता है। रेडियोएक्टिव खनिजों का उपयोग बढ़ रहा है और दोहन के लिए परिमाण और संभाव्य के निश्चित संकेत पाने के लिए अन्वेषण या खोजें की जा रही हैं।

3) **धातु-अयस्क और खनिज**: अयस्क वह रूप है जिसमें धातु प्रकृति में पाया जाता है। अगर अयस्क को धातु निकालने के लिए लाभदायक रूप में काम में लाया जा सकता है तो यह खनिज कहलाता है। कुछ धातु और उनके अयस्कों का वर्णन नीचे दिया गया है:

ऐलुमिनियम: ऐलुमिनियम का मुख्य अयस्क बॉक्साइट है। बॉक्साइट के निक्षेप बिहार, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु और कश्मीर में व्यापक रूप से स्थित हैं। कुल आरक्षित भंडार 26,537 लाख टन आकलित किए गए हैं। ऐलुमिनियम भी घरेलू कार्यों, परिवहन, संचार और अनेक औद्योगिक गतिविधियों के लिए व्यापक रूप से काम में लाया जा रहा है। ऐलुमिनियम के मिश्रधातु हल्के होते हैं और इन्हें अत्यधिक मज़बूत बनाया जा सकता है। इसलिए इनका उपयोग वायुयानों और अंतरिक्ष यानों में होता है। ऐलुमिनियम को इस शताब्दी की धातु ठीक ही कहा गया है। पिछले कुछ वर्षों में देश में ऐलुमिनियम का पर्याप्त उत्पादन हो रहा है जिसमें कुछ का निर्यात करके बहुमूल्य विदेशी मुद्रा कमाई जा रही है।

लोहा: लोहे का मुख्य अयस्क हेमाटाइट है जिसमें 60-69 प्रतिशत लोहा होता है। यह बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गोवा में बहुतायत से पाया जाता है। मैग्नेटाइट लोहे का एक और अयस्क है इसके कुल आरक्षित भंडार लगभग 1,75,700 लाख टन आँकलित किए गए हैं, जो अब तक पहचानी गई आवश्यकताओं के लिए काफी हैं। युद्ध शस्त्रों व परिवहन उद्योगों तथा जीवन के तकरीबन हर पहलू में लोहा और इसके अयस्क एक मुख्य संरचना घटक के रूप में प्रयुक्त होते हैं और सर्वोपरि स्थान पाते हैं। भारत इस धातु का बड़े प्रमाण में उत्पादन करता है।

ताँबा: कॉपर पाइराइट या कॉपर सल्फाइड अयस्क के निक्षेप मुख्य रूप से राजस्थान, बिहार, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश में पाये जाते हैं। ताँबा का अनुप्रयोग दूर-संचार, इलेक्ट्रॉनिकी, घरेलू और औद्योगिक बर्तन बनाने तथा पीतल-कांस्य जैसी मिश्र धातु बनाने के लिए किया जाता है। आरक्षित भंडार का अब तक किये गये आकलन के अनुसार 5,780 लाख टन अयस्क है और 43.8 लाख टन पुनः प्राप्त किया जा सकने वाली अर्थात् नवीनीकरणीय धातु है। ताँबे की माँग की तुलना में इसकी उपलब्धता बहुत सीमित है और इसलिए इसकी आवश्यकता को आँशिक रूप से आयात करके पूरा किया जाता है।

अन्य: भारत के कुछ खनिजों के निक्षेपों का निर्धारण तालिका 6.9 में दिया गया है।

तालिका 6.9 : भारत के कुछ महत्त्वपूर्ण खनिजों के निक्षेपों का आकलन

खनिज	आरक्षित भंडार (लाख टन में)
1) क्रोमियम	50.00
2) निकल अयस्क	2,317.00
3) बैराइट	739.00
4) डोलोमाइट	39,500.00
5) अग्निसह मिट्टी	4,928.00
6) सीसा-जस्ता अयस्क	3,585.00
7) कैओलिन	10,400.00
8) चूना पत्थर	7,32,000.00
9) जिप्सम	12,486.00
10) मैंगनीज़ अयस्क	1,350.00
11) फॉस्फेटी खनिज (शैल फॉस्फेट)	1,874.00

समापन टिप्पणी : ऊपर की चर्चा से साफ़-साफ़ पता चलता है कि मानव समाज के आधार भौतिक संसाधन सीमित हैं। भूमि इस भौतिक पर्यावरण का सबसे महत्त्वपूर्ण संसाधन है जो बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए बहुत दुर्लभ हो गई है।

इसी प्रकार पानी जिसकी पूर्ति फिर से की जा सकती है, भी बहुत ज़्यादा मात्रा में उपलब्ध नहीं है और भविष्य में इसमें और भी कमी होने की संभावना है। दूसरी ओर मनुष्य ने अपनी विविध और बढ़ती हुई ज़रूरतों को पूरा करने के लिए अनेक गतिविधियाँ शुरू की हैं जिससे ऊर्जा और पदार्थों की माँग बढ़ गई है। ऊर्जा के जीवाश्म स्रोत और कुछ खनिज़ों के निक्षेप पर्याप्त नहीं हैं और तेजी से ये कम हो रहे हैं इसलिए ये संसाधन भविष्य की माँगों को पूरा नहीं कर पायेंगे। कोयला, लिग्नाइट, लोहा, ऐलुमिनियम और कुछ अन्य अपवाद हो सकते हैं।

इसलिए यह स्पष्ट है कि मानव इस बात को समझे कि इनमें से किसी भी संसाधन को समाज की केवल अल्पकालीन ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ही काम में नहीं लाया जाना चाहिए। इसलिए यह आवश्यक है कि पुनः भरे जा सकने वाले अर्थात् नवीनीकरणीय और पुनरुत्पादी संसाधनों को प्रगति का आधार बनाया जाए तथा उनके किफायती अच्छे उपयोग कराने वाली प्रौद्योगिकी तकनीकों पर निर्भर किया जाए।

6.2.2 जैव संसाधन

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, जीवमंडल में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के अनेक प्रकार के जीव हमारे जैव प्राकृतिक संसाधन हैं। अभी तक प्राप्त जानकारी के अनुसार सभी ग्रह पिंडों में से केवल पृथ्वी पर ही जीवन है और यही पृथ्वी का बेजोड़ लक्षण है। भू-विज्ञानीय अतीत में भौतिक संसाधन बदलते रहे हैं और जो जीव इन परिवर्तनों के प्रति अनुकूलित हो गए वे ही बचे रह सके तथा जो अपने आपको इनके अनुकूल न बना सके वे लुप्त हो गए। जीव भौतिक पर्यावरण को प्रभावित करते हैं और आपस में एक-दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं। यह पारस्परिक क्रिया कहलाती है। इस प्रकार विकासीयवरण बलों के अधीन भौतिक संसाधन और जीव, दोनों ही सदा बदलते रहते हैं और इसीलिए भौतिक और जैव विकासीय परिवर्तन सतत (निरंतर) हैं यानी ये लगातार होते रहने वाले हैं गतिशील हैं और अनेकों जीवों के आविर्भाव द्वारा ये परिवर्तन जटिल बन गए हैं। जैसा कि आपने अनुच्छेद 6.2 में पढ़ा है कि जीव पेड़-पौधों और प्राणियों के सुसंगत और परस्पर सहारा देने वाले समुदायों में पाये जाते हैं। ये समुदाय एक तंत्र के घटक होते हैं जिसे पारितंत्र कहते हैं। ये समुदाय या वर्ग सहजीविता से जीवनयापन करते हैं और अपनी सामूहिक ज़रूरतों को प्राकृतिक तरीकों से पूरा करते समय संसाधनों को भी पुनरुत्पादित तथा नवीनीकृत अथवा पुनरुत्थानित करते हैं।

मानव जाति भी गतिशील पारिस्थितिकीय समुदायों में से एक है। अपनी उपादेयता, विकास तथा उत्तराजीविता (यानी जीवित बने रहने) के लिए मानव जाति निश्चित रूप से प्रकृति के विशाल जैव-भू-रासायनिक चक्र पर निर्भर है। जीवित बने रहने के लिए मानव

जाति को अपने चारों ओर दिखने वाले पेड़-पौधों, प्राणियों और सूक्ष्म (microbial) जीवों की लगभग 13 लाख किस्मों के साथ सहजीवी (symbiotic) संबंध या सामंजस्य बनाकर रहना होगा। मानव जाति की इस योग्यता में ही उसके जीवित बने रहने का गुर छिपा हुआ है। फिर भी इस मानव जाति के दृष्टिकोण से पर्यावरण प्रकृति में सदा सह संबंधों का एक समुच्चय रहा है। मानव समाज तीन और संबंधों पर भी निर्भर है—भौतिक, जैव और सामाजिक कारक—हवा, पानी, भोजन के अलावा, जो उसे सहृदयता और समाजिक-सांस्कृतिक परितोष देते हैं।

प्रागैतिहासिक काल में मानव जाति के लिए प्रमुख और तत्कालीन प्राथमिकताएँ वे थीं जो समाज को खाना दे सकें। भोजन हमें पेड़-पौधों और प्राणियों से मिलता है। समाज में जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी है और समाज की बहुमुखी माँगें बढ़ीं हैं वैसे-वैसे नए-नए पौधों और प्राणि जातियों का पता लगाना, पेड़-पौधों की खेती करना, तथा पशुओं को पालतू बनाना जरूरी हो गया। समाज के लिए भोजन की सप्लाई बैठाने के लिए नए जीवों की तलाश करना या संकरण द्वारा वर्तमान जीवों को रूपांतरित करना भी ज़रूरी हो गया। इस प्रक्रम में, प्राकृतिक आनुवांशिक विविधता ने हमेशा ही आदमी की सहायता की है। लेकिन इन गहन प्रयासों की प्रक्रिया में अन्य जातियों की संख्या, विविधता और परिवर्तनशीलता में धीरे-धीरे और व्यापक कमी आई है। उदाहरण के लिए मानव द्वारा कुत्तों की सहायता करके अनुवांशिक नस्ल सुधार करने के परिणामस्वरूप कुत्तों की नई नस्लें आ गई हैं और कुत्तों की आबादी भी बढ़ी है। परंतु कुछ अन्य पशुओं पर मानव का प्रभाव नकारात्मक भी हो सकता है दूसरे शब्दों में कुछ अन्य प्राणि समूह मानवजनित विपरीत चयन का शिकार भी बन सकते हैं परिणामस्वरूप बिल्ली के समजातीय वर्गों के सदस्य, चीता, तेंदुआ, बाघ और शेर जाति के जन्तुओं की संख्या के साथ-साथ विविधता में भी कमी आई है। यह न केवल शिकार करने का बल्कि उनके आवास में मानव द्वारा हस्तक्षेप करने का परिणाम है। अतः यह ज़रूरी हो जाता है कि विद्यमान प्राणि समूहों के लुप्त होने से पहले, संरक्षण की व्यवस्था की जाए। क्योंकि एक बार लुप्त हो जाने के बाद किसी जीवों की किसी जाति को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। इसलिए, वर्तमान जातियों को संरक्षित रखना और उचित ढंग से उपयोग में लाना आवश्यक हो गया है। भारत के कुछ वनस्पतिजात और प्राणिजात की चर्चा नीचे की गई है।

I) वनस्पतिजात

भारतीय प्रदेश आनुवांशिक विविधता में विश्व के बारह देशों में से एक माना जाता है। पादपों की 45,000 जातियों में से 15,000 संवहनी पादप हैं और 30,000 अ-संवहनी या अ-पुष्पी (non-flowering) पादप हैं जैसे कि कवक, शैवाल आदि। पादपों की लगभग 7,000 जातियाँ भारत के लिए विशेष क्षेत्री (endemic) है अर्थात् ये केवल हिन्दुस्तान में ही पाई जाती हैं। इसके अलावा, लगभग 3,000 विशेष क्षेत्री जातियाँ सिर्फ खासी-जैयंती पहाड़ियों और 2,000 जातियाँ दक्षिणी प्रायद्वीप में ही पाई जाती हैं। बाकी की विशेष क्षेत्री जातियाँ दूसरे प्रदेशों, अधिकतर हिमालय, शुष्क उत्तर-पश्चिम और तटीय क्षेत्रों में पाई जाती हैं। लगभग 800 पादप जातियाँ मानव-हित-वनस्पतिविज्ञानीय (ethnobotanical) दृष्टि से रुचि की पाई गई हैं अर्थात् इन पादपों की अनेक कार्यों, प्रमुख रूप से औषधि और पीड़क नियंत्रण में, के लिए उपयोगिता पहचान में आ गई है।

सदियों से चले आ रहे नस्ल सुधार प्रयासों और वरण के अन्तर्गत होने वाले विकास के फलस्वरूप पौधों की जातियों की भारी विविधता संग्रहित हो गई है। इनमें आदिम या देशी कृषिज-उपजातियाँ (cultivars) और इनसे संबंधित वन्य और खर-पतवार जातियाँ शामिल हैं। आज भारत में लगभग 150 कृष्य जातियाँ और लगभग 320 वन्य जातियों के विविध रूप प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। इनमें से अधिकांश पश्चिमी घाटों के नम प्रदेशों और पूर्वी या उत्तर-पूर्वी मैदानों और पहाड़ियों में केन्द्रित हैं तथा इन क्षेत्रों की स्थानिक विविधता के प्रतीक हैं। इनमें मनुष्य के लिए उपयोगी विभिन्न वर्ग हैं जैसे अनाज, बाजरा, फलियाँ, फल, सब्ज़ियाँ, तिलहन, औषधि वाले और सुगंध-पादप, मसाले आदि।

खेती में इस्तेमाल होने वाली किस्मों के वन्य संबंधी जातियों की संख्या नीचे दी गई है (तालिका 6.10):

तालिका 6.10: देशीय पादपों की वन्य जातियाँ

वर्ग	जातियों की संख्या
1) अनाज	51
2) शिम्ब या फलियाँ	31
3) फल	109
4) सब्ज़ियां	54
5) तिलहन	12
6) रेशे वाले पादप	24
7) मसाले	27
8) अन्य, जिसमें गन्ना शामिल है	26

जातियों का क्षेत्रवार वितरण इस प्रकार है (तालिका 6.11)

तालिका 6.11: भारत में देशीय पादपों की वन्य जातियों का वितरण

प्रदेश	जातियों की संख्या
उत्तर-पूर्वी प्रदेश	134
पश्चिमी घाट	146
पश्चिमी हिमालय	125
दक्षिण पठार और पूर्वी घाट	93
गांगेय मैदान	66
उत्तर-पश्चिमी मैदान	45

हाल की जानकारी से पता चला है कि ऊपर दिए गए आँकड़ों में से लगभग 250 वन्य पादप कृषि या बागवानी की दृष्टि से महत्त्व के हैं और इनमें से 60 दुर्लभ या विशेष क्षेत्री हैं। भारत का चारा, फलियों और घासों का भंडार बहुत समृद्ध है। ऐसी 2000 जातियों में से दो-तिहाई घासें हैं। भारत में आर्किड की लगभग 1250 जातियाँ हैं, जिसमें से 300 उत्तर-पूर्व की खासी पहाड़ियों में विशेष क्षेत्री हैं।

II) प्राणिजात

भारत का प्राकृतिक प्राणिजात लगभग 75,000 है। इसमें मछलियों की 2,500, उभयचारियों (amphibians) की 150, सरीसृपों (reptiles) की 450, पक्षियों की 2,000, स्तनधारियों (mammals) की 850 और कृषि कीट, क्रस्टेशियन सरीखे अकशेरूकियों (invertebrates) की 69,050 जातियाँ शामिल हैं।

तत्कालिक और प्रत्यक्ष सामाजिक-आर्थिक उपयोग के लिए गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर और मुर्गी की आवश्यकता है, ताकि खाने की माँगें पूरी हो सकें। घोड़े, टट्टू, खच्चर आदि परिवहन के काम में लाए जाते हैं।

उपलब्ध नवीनतम आँकड़ों (1982) के अनुसार पशुधन आबादी तालिका 6.12 में दिखाई गई है।

तालिका 6.12: भारत में पशुधन आबादी (लाखों में)

वर्ग	संख्या
गाय	1924
भैंसें	698
भेड़ें	488
बकरियाँ	952
घोड़े और टट्टू	9
ऊँट	11
सूअर	101
खच्चर	1.3
गधे	10
याक	1.2
मुर्गी	2,077

भारत में लगभग 460 लाख टन दूध होता है और सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद विश्व के दूध उत्पादक देशों में भारत का स्थान तीसरा है। गाय और भैंसें दूध के प्रमुख स्रोत हैं। गायों की 26 और भैंसों की 7 नस्लें हैं, फिर भी कुल पशु संख्या का 75 प्रतिशत अज्ञात कुल के हैं। पहाड़ी समाज की दूध, परिवहन आदि की अनेक तरह की माँगों को पूरा करने के कारण याक उनके लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इसकी खाल कड़ाके की ठंड से रक्षा करने के लिए बहुत उपयोगी है।

मांस और ऊन के स्रोत के रूप में भेड़ और बकरी भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। प्राकृतिक ऊन का उत्पादन एक करोड़ 70 लाख किलोग्राम तक है। भेड़ के आनुवांशिक प्रजातियों की उपादेयता के बारे में सही-सही पता नहीं है। भारत में बकरियों की 17 सुस्पष्ट नस्लें हैं। सूअरों की जंगली और घरेलू किस्में हैं जिनकी उपादेयता के सही आँकड़ें उपलब्ध नहीं हैं। भारत की कुक्कुट संख्या का 90 प्रतिशत मुर्गियाँ हैं। बत्तखें 6 प्रतिशत हैं, जबकि टर्की (पीरू पक्षी) और राजहंस 2 प्रतिशत हैं। लाल जंगली कुक्कुट के मूल आवासों में भारत भी एक है। ऐसा माना जाता है कि आज जितने भी घरेलू मुर्गे-मुर्गियाँ पाये जाते हैं वे लाल जंगली कुक्कुट की वंशज हैं। मुर्गी की 18 किस्म की देशी नस्लों का उल्लेख मिलता है। फिर भी विदेशी नस्लों की तुलना में इनकी आबादी बहुत कम है। अन्य कुक्कुट पक्षियों के आनुवांशिक प्रजातियों की उपादेयता का मूल्याँकन किया जा रहा है।

मछलियों में बहुत विविधता पाई जाने के बावजूद केवल कुछ ही प्रकार की देशज मछलियाँ पालतू हैं जैसे कि प्रमुख शफरी (कार्प)। विदेशी मछलियों में से कुछ जैसे कि चीनी कार्प, टिलापिया, ट्राउट, गौरामी आदि का देश में पालन होता है। भारत की तटरेखा बहुत लम्बी है–लगभग 7000 किलोमीटर–जिसमें द्वीपों के चारों ओर का तट भी शामिल है। तटरेखा का आर्थिक मंडल समुद्र में 200 किलोमीटर तक फैला है। भारत में 60,000 अंतःस्थलीय जलराशियाँ हैं, जैसे कि झीलें, तालाब इत्यादि जिनका जल-विस्तार लगभग 30 लाख हेक्टेयर है। लगभग एक करोड़ टन मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इस समय लगभग 30 लाख टन वार्षिक पकड़ का लगभग 56 प्रतिशत समुद्र से आता है और वह भी ज्यादा पश्चिमी तट से।

मानव गतिविधियों के कारण पर्यावरण-अवकर्ष किस सीमा तक होता है, इसका अध्ययन करने से पूर्व हम संसाधनों की सीमित प्रकृति को देखते हुए पारितंत्र की वहन क्षमता की चर्चा करना चाहेंगे। इस अवधारणा से आप इकाई 3 में पहले ही परिचित हो चुके हैं।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए रिक्त स्थानों को भरिए:

i) मानव जाति एक गतिशील पारिस्थितिकीय समुदाय है। अपनी ..... उत्पादकता और ..... के लिए यह वस्तुतः प्रकृति के महान ..... चक्र पर पूरी तरह निर्भर है। उत्तरजीविता के लिए मानव समाज को पादपों, प्राणियों और ..... जीवों की लगभग 13 लाख किस्मों के साथ ..... संबंध बनाकर रहना होगा।

ii) ..... वृद्धि और मानव हस्तक्षेप से ..... की हानि के कारण भी भारत में संसाधनों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में कमी आई है।

6.3 वहन क्षमता

वहन क्षमता या सहनशीलता की चरम सीमा की अवधारणा का प्रयोग पिछले कुछ समय से इंजीनियरी डिज़ाइनों में विशेष रूप से उन पदार्थों के लिए जिन्हें भार सहना पड़ता है, हो रहा है। पदार्थ जितना भार सह सकता है, उसकी सीमा होती है और अगर सीमा पार हो जाए तो पदार्थ चटक या टूट जाता है। झटका सहने की योग्यता बनाए रखने के लिए अधिकतम भार से कम भार की एक सुरक्षित सीमा को चरम सीमा या सहयता या वहन क्षमता मान कर चलते हैं। भूमि की उत्पादक शक्ति के संदर्भ में वहन क्षमता को इस प्रकार दर्शाया जाता है। वहन क्षमता गायों या गायों के तुल्य प्राणियों की वह संख्या है जिसे भूमि का एक हेक्टेयर क्षेत्र पूरे वर्ष भर जीवित रख सके। चित्र 6.3 में विश्व जनसंख्या की वृद्धि को 2000 ई. से पहले के वर्षों से लेकर दस लाख वर्ष तक के काल के लिए, लोगारिथ्मीय मापक्रम पर आधारित एकपक्षीय रूप में दर्शाने का प्रयास किया गया है।

मनुष्य जब शिकार इकट्ठा करने की संस्कृति काम में लाता था उस काल से लेकर फार्म मशीनीकरण और फिर उर्वरकों के प्रयोग तक के काल की जनसंख्या इसमें दर्शाई गई है। चित्र से यह स्पष्ट है कि खाद्य प्राप्त करने के लिए तकनीक में विकास के साथ जनसंख्या बढ़ी अर्थात् जनसंख्या खाद्य उत्पादन के साथ बढ़ी है। दूसरे शब्दों में "वक्र" में तेज़ी अभिनव परिवर्तनों के अनुरूप है जिसके फलस्वरूप तंत्र की वहन क्षमता बढ़ी है।

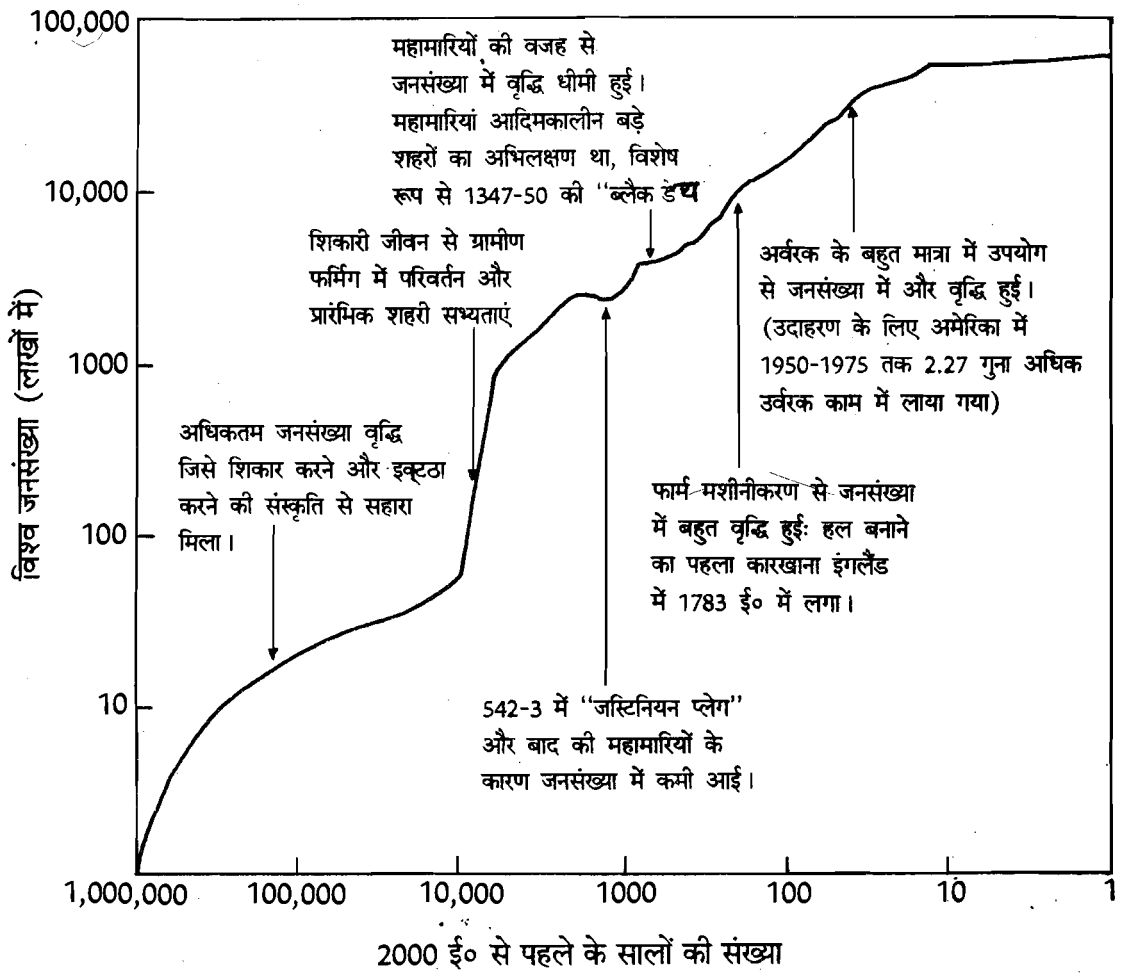

चित्र 6.3 : विभिन्न समय काल मे विश्व जनसंख्या वृद्धि

मानव पर्यावरण में वहन क्षमता इन कारकों से प्रभावित होती है :

- विज्ञान और प्रौद्योगिकी का स्तर
- संस्थागत अभिनव परिवर्तन
- समुदायों में उत्तम और भिन्न जीवन शैली के लिए बढ़ती हुई इच्छा।

पारितंत्र में वहन क्षमता उपलब्ध संसाधनों और तंत्र की अवशिष्ट से निपटने की क्षमता पर निर्भर करती है। इस प्रकार, वहन क्षमता के संकल्पनात्मक मॉडल में निम्नलिखित धारणाएँ सम्मिलित हैं :

- **सहारा देने की क्षमता** : जैसे कि पर्यावरण को स्थायी नुकसान पहुंचाए बिना कच्चे माल, पानी, मानवीय अवसंरचना (infrastructure) जैसे संसाधनों के उपयोग की क्षमता, और
- **स्वांगीकारी या पचाने की क्षमता** (Assimilative Capacity) : जैसे अपशिष्टों की कुछ मात्रा को बिना किसी दुष्प्रभाव के अवशोषित करने अर्थात् सोख लेने की क्षमता।

अपशिष्ट पदार्थों को पचाते हुए/स्वांगीकृत करते हुए भूमि जितने लोगों को सहारा देती है, वह उस प्रदेश की वहन क्षमता है। चित्र 6.4 में दिखाया गया है कि वहन क्षमता का विभिन्न विकासीय गतिविधियों से घनिष्ठ संबंध है। इन गतिविधियों से संसाधनों की माँग सदा बढ़ती रही है।

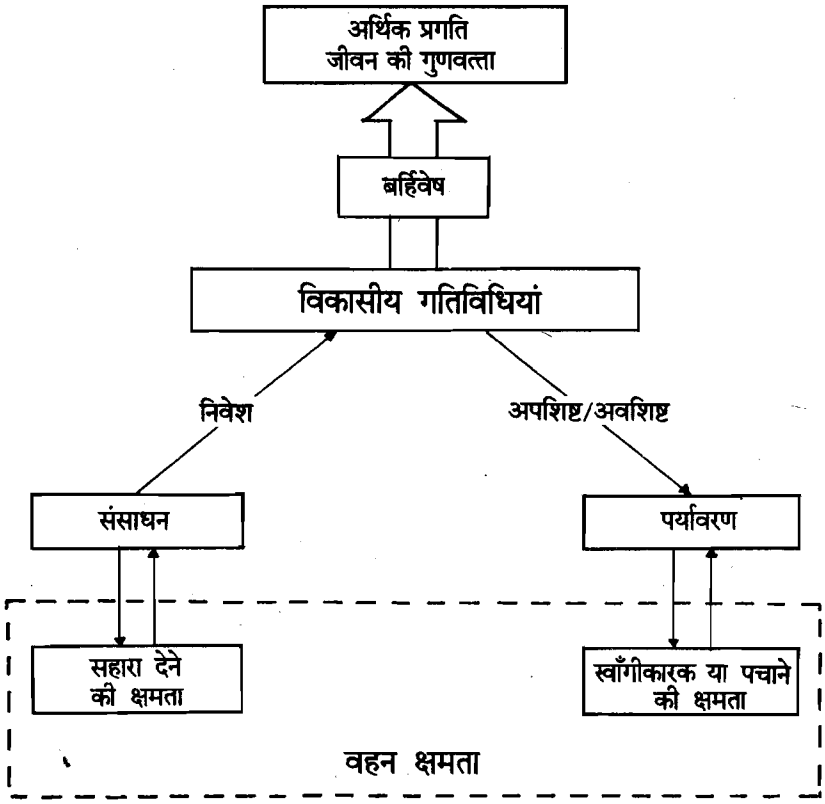

चित्र 6.4 : प्रादेशिक वहन क्षमता को प्रभावित करने वाले कारक

जैसा कि आपने चित्र संख्या 6.3 में देखा कि मानव जनसंख्या कई गुना बढ़ी है और इससे संसाधनों की माँग भी सतत् बढ़ी है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादी संसाधनों की खपत द्वारा संसाधनों का अति उपभोग हुआ अर्थात् आवश्यकता से अधिक खपत हुई। उत्पादी उपभोग का अर्थ है स्वयं आधार का उपभोग जो घाटे की वित्त व्यवस्था का जीव वैज्ञानिक पर्याय है। साथ ही साथ हस्तक्षेपों ने भी पर्यावरण का विघटन और विनाश किया है, जैसा कि ईंधन की लकड़ी और पानी में कमी, भूमि की उत्पादकता में कमी, वनस्पतिजात और प्राणिजात की विविधता में कमी से स्पष्ट है। पचाने की क्षमता कुछ सीमा तक अपशिष्टों को अवशोषित कर सकती है, लेकिन भूमि की उपादेयता को नवीनीकृत नहीं कर सकती, पानी के स्रोतों को फिर से नहीं भर सकती या खोई हुई आनुवांशिकता फिर से प्राप्त नहीं कर सकती। हस्तक्षेप के दुष्प्रभावों का सामना करने के लिए कुछ सकारात्मक प्रति-हस्तक्षेप करने की जबरदस्त आवश्यकता है। ये उपाय है: वन-रोपण, भूमि पुनरुद्धार (reclamation) और वन्य जीवन का परिरक्षण (preservation) आदि।

अधिकांश अन्य पर्यावरण गुणों की तरह वहन क्षमता भी परिवर्तनशील है। ऐसा उन विकासीय बलों के कारण है, जो भौतिक संसाधनों और जीव रूपों के संघटन को रूपांतरित कर रहे हैं। ऐसा सम्भवतया नई प्रौद्योगिकी की शुरुआत, संस्थागत अभिनव परिवर्तनों, सरकारी नीति के कारण या न्यूनतम प्रति व्यक्ति आय और भौतिक आवश्यकता जैसे कारकों के कारण मानव समाज में हुए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भी हो सकता है। इसके अलावा, वहन क्षमता में सकारात्मक और नकारात्मक या कहिए धनात्मक और ऋणात्मक, दोनों प्रकार के परिवर्तन हो सकते हैं। इस प्रकार चिरस्थायी विकास के वास्ते एक वैकल्पिक योजना तैयार करने के लिए उद्देश्य तय करने की आवश्यकता है। निवेशों के उत्पादन जैसे कि उर्वरक, पीड़क-नियंत्रण, बिजली, अधिक पैदावार देने वाली कृषिज-उपजातियों और संसाधन संरक्षण जैसे उपायों से वहन क्षमता कुछ समय के लिए बढ़ सकती है।

आनुवांशिक विविधता, विशेष रूप से खेती की जाने वाली जातियों के वन्य संबंधियों की विविधता से वे विभेद प्राप्त होंगे जो प्रजनन और वरण द्वारा उत्पादन सीमा को लगातार

बढ़ायेंगे। आज, विश्व की मुख्य खाद्य सप्लाई फसलों की बीस जातियों से होती है और दूध, मांस, ऊन, खाल और ऊर्जा भी बीस पशुधन जातियों से उपलब्ध होती है। इसी तरह, विश्व के अधिकांश काष्ठ (लकड़ी) और प्रकाष्ठ (timber) पेड़ों की सिर्फ आठ जातियों से प्राप्त होती हैं। ज्यादा लोगों को सहारा देने की चुनौती का सामना करने का एक मात्र रास्ता अधिक उपज पैदा करने वाली जातियों का पता लगाना और फसल के आधार को व्यापक बनाना है। दूसरा रास्ता लगातार वरण के लिए जाति के भीतर ही विविधता को बनाए रखना है। जातियों के सुधार के लिए और प्रजनन बाधाओं को तोड़ने में संकरण से सहायता मिलती है। चावल का उदाहरण लीजिए–विश्व में चावल के 1,20,000 प्रकार या किस्में आँकी गई हैं। भारत में अब भी लगभग 50,000 स्थानीय किस्मों की खेती की जा रही है, जबकि राष्ट्रीय चावल जीन बैंक में केवल 15,200 के करीब किस्में संभालकर रखी गई हैं। यह विविधता संकरण द्वारा प्रतिरोधी किस्में प्राप्त करने का एक स्रोत है। चावल की एक ऐसी किस्म की खोज में विश्व-व्यापी प्रयास किए जा रहे हैं जो घासी-बौनापन-विषाणु (grassy-stunt-virus) के प्रतिरोधी हों। इसके लिए लगभग 6723 किस्में परखी गईं और जो एक मात्र प्रतिरोधी किस्म मिली वह भारत से थी। इससे अब दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में लगभग 3 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र पर चावल की फसल को बचाने में मदद मिली है।

जैव और भौतिक, दोनों ही संसाधनों के दीर्घकालीन संरक्षण से मूल संसाधनों की कम से कम हानि होती है और इससे उत्पादन में अधिक वार्षिक वृद्धि होने लगती है। दूसरे शब्दों में इससे :

- आनुवांशिक अपरदन और विलोप (extinction) द्वारा आनुवांशिक विविधता की हानि कम से कम हानि हो जाती है।
- मृदा अपरदन, भूमि अपकर्षण और जलीय भंडारों की मात्रा में ह्रास (जैसे कि झरनों, झीलों, तालाबों, नदियों आदि के सूखने) से भूमि की उत्पादकता में जो हानि होती है वह रुक जाती है। मिट्टी की उर्वरता में और जल संसाधनों में आई कमी की सकारात्मक उपायों द्वारा फिर से पूर्ति करने से भूमि की पुनरुजीवी क्षमता का सुधार हो सकता है।

बहुत अधिक जनसंख्या की कहीं अधिक खपत माँगों को पूरा करने के लिए सिंचाई द्वारा आधारी क्षमता में और वृद्धि करनी होगी। उर्वरकों के बढ़ते हुए अनुप्रयोग की वजह से, सिंचाई पर निर्भरता बहुत ही ज्यादा हो जाएगी। यह वस्तुस्थिति किसी सूरत में अच्छी नहीं है। एक तो इसलिए कि सिंचाई के लिए उपलब्ध पानी की सीमित मात्रा ने कुल सिंचित क्षेत्र की सीमा भी 11 करोड़ हेक्टेयर तय कर दी है। दूसरे, सिंचाई क्षेत्र के विस्तार के भी कुछ प्रतिकूल अनुषंगी प्रभाव देखने को मिलते हैं, जैसे जलाक्रांति (waterlogging), लवणता, आनुवांशिक अपरदन आदि, जो वहन क्षमता को घटा देगा इन कारणों के बारे में आप इकाई 8 में पढ़ेंगे। सामाजिक-आर्थिक माँगें बढ़ने के कारण 2000 ई. के लिए आकलित सहारा देने वाली क्षमता में समुचित कटौती करने की आवश्यकता है जिससे अपेक्षित आधारी क्षमता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भूमि और दूसरे प्राकृतिक संसाधन जैसे जल, खनिज और ऊर्जा का कम इस्तेमाल हो। इस तरह सीमित संसाधनों को जो छूट मिलेगी उससे प्राकृतिक संसाधनों का पुनरुज्जीवन और पुनः पूर्ति हो सकेगी। इससे मानव हस्तक्षेप से उत्पन्न गड़बड़ को प्रभावहीन करने के लिए पारितंत्र की पचाने की क्षमता बढ़ेगी।

बोध प्रश्न 2

i) किसी प्रदेश की वहन क्षमता का क्या अर्थ है ?

.....

.....

.....

.....

ii) पहले कॉलम में दी गई संकल्पनाओं का दूसरे कॉलम में दी गई परिभाषाओं से मिलान करके पहले कॉलम से मेल खाने वाली संकल्पनाओं के कोष्ठकों में उत्तर लिखिए।

कॉलम 1		कॉलम 2
क) किसी प्रदेश की वहन क्षमता	( ) i)	पर्यावरण को स्थायी क्षति पहुंचाए बिना कच्चे माल, जल, मानव अवसंरचना जैसे संसाधनों के अपनयन यानी उपयोग होने देने की क्षमता।
ख) आधारी या सहारा देने वाली क्षमता	( ) ii)	बिना दुष्प्रभाव पैदा किए अपशिष्टों की कुछ मात्रा को अवशोषित करने अर्थात् सोखने की क्षमता।
ग) स्वांगीकारी या पचा सकने की क्षमता	( ) iii)	अवशिष्टों को पचाते हुए लोगों की वह संख्या जिसे भूमि का इकाई क्षेत्र सहारा दे सके।

6.4 मानव गतिविधियाँ और पर्यावरणीय अवकर्ष

दूसरे जीवधारियों की तरह, मनुष्य भी जीवित बने रहने के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं। इसके लिए प्रकृति में उपलब्ध पदार्थों को हटाकर उन्हें मनचाहे रूपों और गुण में बदलना पड़ता है। यह सब प्राप्त करने के लिए मनुष्य को काम करना पड़ता है, प्रकृति और समाज के बीच विनिमय के लिए मानव श्रम एक प्रेरक बल है। ये विनिमय लगातार होते रहें, यह आवश्यक है। इसलिए मनुष्य के ऊपर यह दबाव बना रहता है कि अपने आपको बनाए रखने के लिए और अपने विकास के लिए वह लेन-देन की गति को तेज करे। लेकिन इस विनिमय के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए वह पर्याप्त श्रम नहीं कर रहा है। इस की वजह से मानव समाज की लगभग सभी गतिविधियों ने पर्यावरण को भौतिक रूप से, रासायनिक रूप से, जीवविज्ञानी रूप से, यहाँ तक कि नैतिक रूप से भी नुकसान पहुंचाया है। हालांकि संसाधनों के संरक्षण के बारे में विभिन्न स्तरों पर काफी जागरूकता रही है फिर भी ऐसा लगता है कि दो उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कोई ठोस समग्रात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया। ये उद्देश्य हैं उपयोग और परिरक्षण। यह समस्या दो कारणों से उत्पन्न हुई है। ये कारण हैं:

- गतिशील विकासीय प्रक्रमों में लगातार मानव हस्तक्षेप होने के कारण पर्यावरण में स्थिर-स्थिति संतुलन प्राप्त करना संभव नहीं हो सकता है,
- मनुष्य अपने हालात को सुधारने और उनमें आमूल-चूल परिवर्तन लाने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहा है और पूर्ण तालमेल इन प्रयासों की विरोधी है।

यह एक गलतफहमी है कि मनुष्य को प्राकृतिक संसाधनों को आज़ादी से काम में लाने का हक है। हालांकि इस बारे में वह अतिसंवेदी है फिर भी इस बात की आवश्यकता है कि वह संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग उनकी उपलब्धता के अनुपात में किये जाने की आवश्यकता को समझे ताकि आधार स्रोत खत्म न हो जाएं। लेकिन अपनी बढ़ती हुई खपत की ज़रूरतों को पूरा करने के उत्साह और प्रेरण तथा विवशता में मनुष्य पृथ्वी के अधिकाधिक क्षेत्रों में अनेक प्रकार की गतिविधियाँ करता रहा है। यहाँ हम उन मानव गतिविधियों का संक्षेप में परिचय देंगे जो पर्यावरण के अपकर्ष यानी उसके घटिया बन जाने का कारण बनती है। सुविधा की दृष्टि से हमने इन्हें दो तरह के वर्ग में रख दिया है। एक तो वे गतिविधियाँ जो उत्तरजीविता यानी जीवित बचे रहने के लिए आवश्यक है और दूसरी वे गतिविधियाँ जो बड़े पैमाने पर शहरीकरण से जुड़ी हुई हैं। इनके प्रभाव के बारे में आप अगली इकाइयों में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

6.4.1 उत्तरजीविता/जीवित बने रहने के लिए गतिविधियाँ

मानव की अनेक गतिविधियों में से कृषि, बागवानी, बागान, पशुधन प्रबंध, मछली पालन यहाँ तक कि वानिकी और खनन से भी जीवनयापन के लिए कच्चे संसाधन मिलते हैं, जबकि उद्योगों से संसाधित वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। आइए इनमें से एक-एक बात के बारे में चर्चा करें।

क) **कृषि** : इस शताब्दी के मध्य तक बढ़ती हुई आबादी के बढ़ते हुए उपभोग की माँग को पूरा करने के लिए खेती-बाड़ी के क्षेत्रफल का विस्तार सबसे आसान विकल्प रहा है। इसका अर्थ हुआ वनों, घास-स्थलों, नदी घाटियों, समुद्र तट आदि प्राकृतिक संसाधनों पर बड़े पैमाने पर हमला करना। यह आँका गया है कि अगर यह वृत्ति जारी रही तो 2000ई. में कृषि का क्षेत्रफल 70 करोड़ हेक्टेयर से बढ़कर 2 अरब हेक्टेयर तक फैल जाएगा।

प्रौद्योगिकीय निवेशों, जैसे कि अधिक पैदावार वाली किस्में, रासायनिक उर्वरक, यंत्रीकरण/मशीनीकरण आदि से हरित क्रांति हुई है। इन अभिनव परिवर्तनों के परिणामस्वरूप 1950 से 1985 के काल में भारत में पैदावार 5 करोड़ टन से बढ़कर 15 करोड़ टन तो हो गई। लेकिन इन प्रौद्योगिकीय निवेशों ने अनेकानेक समस्याओं को जन्म दिया है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

i) **उर्वरक** : उत्पादकता बढ़ाने के चक्कर में ज्यादा से ज्यादा रासायनिक उर्वरक काम में लाए गए हैं। इससे जस्त (जिंक) जैसे सूक्ष्म-पोषकों की खेतों में कमी आई है और इससे हरियाणा और पंजाब के सिंचाई के अधिक उपज वाले क्षेत्र में प्रमुख पोषकों में संतुलन बिगड़ गया जिससे जमीन की उत्पादकता घट गई। रासायनिक उर्वरकों का ज्यादा अनुप्रयोग अर्थात् खेतों में डाल जाने से इन उर्वरकों की पौधों की जड़ वाले हिस्से में होते हुए भौम जल तक पहुंच जाने की संभावना है और इससे पीने के पानी में नाइट्रेटों की सांद्रता बढ़ जाएगी।

ii) **अधिक पैदावार वाली किस्में** : अधिक पैदावार देने वाली किस्मों के इस्तेमाल से उत्पादकता और उत्पादन में भी उल्लेखनीय सफलता मिली है। बंगलादेश में उगाए जाने वाले गेहूं की लगभग आधी और फिलीपीन में चावल की 85 प्रतिशत किस्में अधिक पैदावार देने वाली हैं जिनमें वर्षा की कमी वाली परिस्थितियों में उगने की शक्ति है। अधिक पैदावार वाली किस्मों की खेती से गंभीर आनुवांशिक अपरदन होता है। इसका कारण यह है कि जिन किस्मों की खेती की जाती है उसके अलावा सब किस्में खरपतवार या अवाँछित जातियाँ समझी जाती हैं। इसके अलावा अधिक पैदावार वाली किस्मों को काम में लाए जाने से परम्परागत समन्वित और परस्पर निर्भर खेती तंत्रों की पैदावार बहुत ज्यादा कम हो गई। इस खेती तंत्र में चारे और जलाऊ लकड़ी जैसे विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए खेती की जाने वाली फसल के साथ-साथ दूसरे पादप जैसे पेड़, झाड़ियाँ, घासें उगाए जाते हैं। अधिक पैदावार वाली किस्मों में भूसा-दाना अनुपात अर्थात् जो अनाज होता है उसका और भूसा निकलता है उसका अनुपात दूसरी देशी किस्मों की तुलना में घट गया है जिससे ढोरों के चारे की मात्रा पर भारी असर पड़ा है।

iii) **पीड़कनाशी (पेस्टीसाइड)** : पर्यावरण को सुरक्षित और संतुलित बनाए रखने के लिए विभिन्न पीड़कों की कुछ सकारात्मक जीव-विज्ञानीय भूमिका है। लेकिन भूमि के गहन कृषि कार्य के लिए पीड़कनाशी और कीटनाशी काम में लाए जाने की परम्परा के फलस्वरूप कृषि उपज को भारी नुकसान पहुँचा है। 1976 में विभिन्न पीड़कों के कारण फसलों को होने वाली वार्षिक नुकसान 3,274.5 करोड़ रुपए आँका गया है। इसीलिए विश्वभर में इन पीड़कजीवों के नियंत्रण में रसायन पदार्थों का विभिन्न रूप में काम में लाया जाना बढ़ गया है। पीड़कनाशी मिट्टी में और जलराशियों मे अपना रास्ता बना लेते हैं। इनमें से कुछ रसायन अंत में खाद्य शृंखला में घुस बैठते हैं और इस तरह मानव जाति सहित विश्व के आनुवाँशिक संसाधनों के लिए खतरा बन जाते हैं।

इसलिए हालाँकि यह सही है कि उपज बढ़ाना लक्ष्य था और रसायनों के प्रयोग से कृषि उपज बढ़ती है तथा आर्थिक विकास हुआ है लेकिन इसके कारण वे पीड़क भी बढ़े हैं जिनकी वृद्धि करना लक्ष्य नहीं था। कृषि उपज बढ़ने से नई पीड़क जातियाँ उभरी हैं जो पहले "अहानिकर किस्में" थीं और पारितंत्र में जिनकी ओर पहले ध्यान ही नहीं जाता था। पीड़कनाशियों के इस अत्यधिक प्रयोग ने पारितंत्र को विषैला बनाया है।

iv) **दूसरे कृषि कार्य और जैव अपकर्षण** : खेती-बाड़ी, चराई या पादप पदार्थ के शोषण से जमीन की सतह का गहन और अनियंत्रित उपयोग हो रहा है। इसकी वजह से पादप जनसंख्या उनके संघटन और उनकी पुनः उत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल असर पड़ा है। उत्पादन कार्यक्रमों के संबंध में कहना होगा कि गहन खेती वाले क्षेत्रों मे खरपतवारों को छोड़कर सभी प्राकृतिक वनस्पतिजात अंत में नष्ट हो जाते हैं। झूम (shifting) खेती वाले क्षेत्रों में प्राकृतिक वनस्पतिजात और प्राणिजात तो पूरी तरह से विलुप्त हो जाने के कगार पर हैं। मेघालय और अरुणाचल प्रदेश के उत्तर-पूर्वी राज्यों में पेड़ों की कम से कम दस

जातियाँ और परजीवियों की कुछ जातियाँ दुर्लभ हो गई हैं और बहुत से क्षेत्रों में कम मूल्य वाले पेड़ों, झाड़ियों और खरपतवारों की संख्या बढ़ रही है। इसी प्रकार, उत्तर-पूर्वी भारत की लगभग सात स्तनधारी जातियाँ खतरे में पड़ गई हैं।

अधिक चराई और शोषणों से मिट्टी का संघनन (compaction) हुआ है और इस प्रकार उसकी क्रियात्मक गहराई कम हो गई है और आर्द्रता या नमी को संग्रह करके रखने वाली मिट्टी का आयतन घट जाता है। वांछित पादप आबादी के पुनः उत्पादन के लिए मिट्टी की नमी जरूरी है। पादप जीवभार की कुल पुनः वृद्धि और संहनन में गिरावट ने मिट्टी की उर्वरता के पुनः उत्पादन को घटाया है जो भूमि की उत्पादकता बनाए रखने के लिए कार्बनिक पुनःचक्रण के माध्यम से मिट्टी की उर्वरता अत्यंत आवश्यक है। मिट्टी की उर्वरता में आने वाली कमी से मरुस्थल यानी रेगिस्तान बनने की और भूमि के अपकर्षण की परिस्थितियाँ पैदा हो गईं जो सूक्ष्म जलवायु को विकृत कर रही हैं और इस प्रकार प्राणियों की खाद्य या भोज्य उत्पादों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है (देखिए इकाई 8)।

ख) **खनन और उद्योग** : कोयला, लोहा, बॉक्साइट और मैंगनीज को छोड़कर भारत में खनिज और जीवाश्म निक्षेपों की भरमार नहीं है। ये खनिज भी पूर्वी और मध्य क्षेत्रों में केन्द्रित हैं। इन क्षेत्रों में दनादन खनन कार्य चल रहा है जिसके परिणामस्वरूप अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। इनमें से कुछ के कारण तो भौतिक तथा जैव संसाधनों, दोनों के ही आधार के लिए दूरगामी परिणाम होंगे जैसे कि भूदृश्य का बिगड़ना, रेगिस्तानों का बनना, जलीय गुणों की कमी, वायु प्रदूषण आदि।

i) **भूदृश्य** (landscape) **का बिगड़ना** : खान प्रक्रिया दो प्रकार की हो सकती है : i) विवृत अर्थात् सतही या खुला खनन, ii) भूमिगत खनन। दोनों ही दशाओं में जमा खनिजों तक पहुँचने के लिए वनस्पति और सबसे ऊपर की मिट्टी को हटाना पड़ता है। इस तरह साफ किया जाने वाला क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और यह हर साल बढ़ रहा है। खनन के अन्य प्रतिकूल परिणामों में मिट्टी के ढेर बनना और बोझ के कारण मलबे की परतों का अवतलन यानी धंसना शामिल है।

ii) **रेगिस्तान बनना** : सूखे या शुष्क और अर्ध-शुष्क प्रदेशों में पेड़ और झाड़ियाँ आदि वैसे ही बहुत कम होती हैं। वहाँ खनन के कारण ये और भी नष्ट हो जाती हैं और इस प्रकार रेगिस्तान बनने की प्रक्रिया तेज हो जाती है। जहाँ चूना प्रचुर मात्रा में मिलता है, ऐसे क्षेत्रों में खनन गतिविधि के कारण रेगिस्तान (मरुस्थलीकरण) हुआ है और इस कारण से राजस्थान में बाडमेर, जोधपुर और उदयपुर के आस-पास लवणता बढ़ी है।

iii) **जलीय गुणह्रास** : खनन का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण और दूरगामी प्रभाव जल संसाधनों का गुणात्मक और मात्रात्मक ह्रास है। खनन प्राकृतिक जल भण्डारण प्रक्रमों को गड़बड़ा देता है और प्रवाह नालियों को तोड़ डालता है तथा आखिरकार भूमिगत जल के संग्रह पर असर डालता है। जलाशयों में उद्योग शालाओं से आए हुए विषैले अपशेष भी मिल जाते हैं और उन्हे अनुपयोगी बना देते हैं।

iv) **वायु प्रदूषण** : उद्योगों द्वारा खान कोयला जलाने से वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, आदि के स्तर बढ़ जाने की संभावना रहती है। दूसरी गैसों के साथ कार्बन डाइऑक्साइड सूर्य से ऊर्जा को अवशोषित कर लेती है जिससे वायुमंडल तापमान बढ़ जाता है। यह परिघटना **"ग्रीनहाउस प्रभाव" (पौधघर प्रभाव)** कहलाता है। ग्रीनहाउस प्रभाव के लिए उत्तरदायी गैसें ग्रीनहाउस गैसें कहलाती हैं। कार्बन डाइऑक्साइड सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रीनहाउस गैस है।

उच्च भूमंडलीय तापमानों से हिमनद (ग्लेशियर) पिघलने लगेंगे और समुद्र भी फैलने लगेंगे क्योंकि ठंडे पानी की अपेक्षा गरम पानी ज्यादा आयतन घेरता है। अगर वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा दोगुनी हो जाए तो समुद्र तल के बढ़ने से तटीय प्रदेश प्रभावित होंगे, जहाँ लगभग अरबों लोग इस समय रह रहे हैं। यह कुल विश्व की जनसंख्या का चौथाई भाग है। इसके अलावा, समुद्र पारितंत्र पर भी बहुत जबरदस्त असर पड़ेगा। वायु प्रदूषण के बारे में आप इकाई 10 में विस्तार से पढ़ेंगे।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि प्रश्न खेती के लिए भूमि उपलब्ध होने या भूमि द्वारा बढ़ती हुई पशुधन आबादी को सहारा देने का नहीं बल्कि मुख्य यह है कि जीवन को बनाए रखने वाले तंत्र और समुद्रों तथा वायुमंडल का क्या बनेगा जो कार्बन डाइऑक्साइड के

विशाल अवशोषक हैं। प्रश्न वनस्पति के मुकाबले पशुधन में प्रोटीन के अधिक अच्छे स्रोत छाँटने का भी नहीं बल्कि समस्या यह है कि पशुधन की बढ़ी हुई आबादी को भी ज्यादा खाना और चारा चाहिए तथा यह आवर्धित पशुधन जीवन यापन के लिए अपरिहार्य वायु और जल के लिए अपने उपभोक्ता या मांसाहारी मनुष्य से मुकाबला करेगा। प्रश्न जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए देश द्वारा खनिज निकालने, ऊर्जा पैदा करने और औद्योगिक आधार विकसित करने की योग्यता का भी नहीं है। मुद्दा यह है कि इस प्रक्रिया में ऑक्सीजन और पानी उपलब्ध न रहे या काम में लाए जाने लायक ही न रहे। इसलिए जनसंख्या वृद्धि होने और उसके कारण पर्यावरण पर दबाव पड़ने की स्थिति में मानव समाज को खाद्य के अन्य स्रोत खोजने पड़ें, उदाहरण के लिए भूमंडलीय खाद्य आवश्यकताओं का लगभग 15 प्रतिशत समुद्र द्वारा पूरा किया जा सकता है। प्रोटीन और दूसरे पोषकों के सूक्ष्मजीवी संश्लेषण में जैवप्रौद्योगिकी नए रास्ते पेश करती है।

बोध प्रश्न 3

i) नीचे दिए गए रिक्त स्थानों को भरिए :
अधिक पैदावार देने वाली किस्मों के इस्तेमाल से परम्परागत, समन्वित और एक-दूसरे पर निर्भर रहने वाली खेती जिसमें ..... और ..... होती है, घट जाती है और इस प्रकार भूसा और अनाज का अनुपात घट जाता है जिससे ..... पर बहुत भारी असर पड़ता है।

ii) उद्योगों द्वारा खान कोयला जलाने से वायुमंडल में ..... बढ़ जाने की संभावना है जो दूसरी गैसों के साथ सूर्य से ऊर्जा को अवशोषित कर लेती हैं जिससे ..... तापमान बढ़ जाता है। यह परिघटना ..... कहलाती है।

6.4.2 अन्य गतिविधियाँ

पर्यावरण में भौतिक और जैव घटकों के अलावा, मानव समाज का एक तीसरा आयाम भी है और वह है इसका सांस्कृतिक पर्यावरण। एक बार आहार और जीवित रहने की समस्याएँ हल हो जाने पर, मानव आरामदेह जीवन और मनोरंजन के लिए प्रयास कर सकता है। मानव की ऐसी गतिविधियों को मोटे तौर पर पाँच समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे कि :

i) **आवास** : सामुदायिक प्रारूप की सीमाओं में ही बस्तियों का संपूर्ण तंत्र जिसमें रहनें और दूसरे भवनों का निर्माण शामिल हैं।
ii) **आश्रय** : समुदाय के भीतर ही समाज और व्यक्तियों की सुरक्षा, एकान्त और रक्षा के लिए विभिन्न आकार, आमाप, प्रकार और पदार्थों के ढाँचों का निर्माण।
iii) **अवसंरचना** : संचार और दूसरे संस्थागत या समाज-संबंधी कार्यों की सुविधा के लिए परिवहन का जटिल जाल।
iv) **सेवाएँ** : समाज के रूप में समुदाय द्वारा अपने कार्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक गतिविधियाँ जैसे कि परिवहन, जल सप्लाई, बिजली, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि।
v) **कुशल क्षेम** : आमोद-प्रमोद, फुरसत, कला आदि के लिए अवसर और जगह।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तमाम नए से नए परिवर्तन करने पड़ते हैं और इसके लिए ज़रूरत पड़ती है प्रकृति के भौतिक और जैव संसाधनों की। ऊपर दी गई गतिविधियों से जुड़ी अनुवर्ती गतिविधियाँ भी हैं जिन्हें ज्यादा ऊर्जा चाहिए और इस तरह मौजूदा संसाधनों के सीमित भंडार पर और अधिक बोझ पड़ता है।

मानव बस्तियाँ या आवास प्राकृतिक पर्यावरण में भारी परिवर्तन लाने का एक प्रमुख कारक हैं। जनसंख्या, क्षेत्रफल, औद्योगिक तथा सांस्कृतिक विकास के आधार पर हरेक बस्ती का अपना उप पारितंत्र होता है। जिस रफ्तार से ये बस्तियाँ प्रकट होती हैं और आकार ग्रहण करती हैं वह प्राकृतिक विकासीय प्रक्रियाओं की तुलना में कहीं अधिक तेजी से हो रहा है। सामाजिक आवश्यकताओं और आर्थिक विकास के साथ-साथ बस्तियाँ भी फैलकर बड़ी-बड़ी बन गई हैं। ये शहरी बस्तियाँ कहलाती हैं और यह प्रक्रिया शहरीकरण कहलाती है। जैसे-जैसे नगर बढ़ते हैं, वैसे-वैसे उपजाऊ खेतों की ज़मीन और कीमती वनों का अतिक्रमण कर देते हैं। अंतःनगरीय और प्रादेशिक रूप से खुली ज़मीनें दोनों ही बदलकर इमारतों वाली ज़मीन का रूप ले रही हैं। इस प्रकार, अपने सभी जैव संसाधनों समेत भूमि लुप्त हो जाती है।

शहरी आबादी की पानी की ज़रूरत भी कई गुना बढ़ जाती है। लगभग सारा पानी जल-सप्लाई-तंत्र द्वारा उपलब्ध कराया जाता है। व्यापक आवास-निर्माण क्षेत्रों के कारण

स्थानीय भूमिगत जल के स्रोत घट जाते हैं और शहरों को पानी बाहर के दूर-दराज स्रोतों से लेना पड़ता है तथा यह खेती-बाड़ी और ग्रामीण माँगों की कीमत पर होता है। पानी लम्बी दूरी से लाया जाता है इसलिए इसका रास्ता प्राकृतिक जलीय मार्ग से भिन्न होता है जिसकी वजह से पारितंत्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

शहर के विकास का अर्थ मकानों और दूसरी इमारतों का निर्माण भी है जिसके लिए इमारती सामान की भारी मात्रा में आवश्यकता पड़ती है जैसे कि ईंटें, सीमेंट, सरिया आदि। यह सामान शहरों से लगी उपजाऊ ज़मीन से मिलता है और इस प्रकार अच्छी ज़मीन का अपक्षरण और भी बढ़ जाता है।

शहरीकरण और औद्योगीकरण का सबसे खराब नतीजा झोंपड़-पट्टियाँ हैं। घास के ग्रामीण क्षेत्रों से लोग-बाग जीविका की तलाश में शहर के औद्योगिक इलाकों में आते हैं। शहरों में रहने की जगह बहुत मंहगी होने के कारण वे झोंपड़-पट्टियों या तंग बस्तियाँ बना लेते हैं। झोंपड़-पट्टी वाले लोग ऐसे पर्यावरण में रहते हैं जहाँ रहने का स्थान, पानी की सप्लाई और नालियों आदि की सुविधाएँ अपर्याप्त हैं। अवसँरचना और सेवाओं की अनुपस्थिति में आसपास के क्षेत्र और मानव स्वास्थ्य दोनों का ही धीरे-धीरे नुकसान होता है।

शहरीकरण और औद्योगीकरण जल प्रदूषण और वायु प्रदूषण, इन दोनों के लिए भी उत्तरदायी हैं। शहरों का बेकार पानी की भारी मात्रा पानी के प्राकृतिक स्रोत जैसे कि नदियों, झीलों आदि में गिरती हैं। अपजल ले जाने वाली नदियाँ या तो ज़मीन में रिसती हैं और भौम जल को दूषित करती हैं अथवा नहरों और नदियों में से होकर पानी बहतीं हैं।

शहरों में मुख्यतः वायु प्रदूषण स्वचालित वाहनों (ऑटोमोबाइल), उद्योगों और रसोइयों से निकलने वाली सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, उड़ती हुई राख जैसे निर्लंबित कणों आदि से होता है। वायु प्रदूषण से पेड़-पौधों, प्राणियों और मानव स्वास्थ्य को भी काफी नुकसान होता है। पर्यावरण पर शहरीकरण के प्रभावों के बारे में आप इस खंड की इकाई 9 में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

मनुष्य को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि वह भी प्रकृति का भाग है और इसीलिए उसे प्रकृति की कीमत पर नहीं बल्कि उसके साथ मिलकर रहना सीख लेना चाहिए।

बोध प्रश्न 4

शहरीकरण और औद्योगीकरण जल प्रदूषण के लिए किस प्रकार उत्तरदायी है, संक्षेप में नीचे दी गई जगह में बताइये।

.....

.....

.....

.....

6.5 सारांश

इस इकाई में हमने मनुष्य और उसके हस्तक्षेप का पर्यावरण के भौतिक तथा जैव घटकों पर होने वाले प्रभाव को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमने सीखा कि :

- इस पृथ्वी पर लाखों प्रकार के जीव रूप हैं जिनमें से मुनष्य भी एक है। इन जीवों के जैव और भौतिक दोनों ही संसाधन सीमित हैं। फिर मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जिसने अपने जीवित बचे रहने के लिए तथा अपने समाज की वृद्धि एवं विकास के लिए भी प्राकृतिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप किया है। मानव गतिविधियाँ पर्यावरण के संसाधनों का अनेक प्रकार से अपकर्षण कर रही हैं। यानी पर्यावरण को घटिया बना रही हैं।
- भौतिक और जैव संसाधनों में परिवर्तन के कारण और मनुष्य द्वारा प्रेरित विकास कार्यों के कारण भी वहन क्षमता बदल जाती है।

- अधिक पैदावार देने वाली किस्मों से आनुवांशिक अपरदन हो रहा है और चारे आदि के रूप में काम में आने वाले कृषि अवशिष्ट के उत्पादन में गिरावट आई है। उर्वरक और पीड़कनाशी मिट्टी, पानी, जीवित संसाधनों और उनके उत्पादों को दूषित कर रहे हैं और अंत में मानव के स्वास्थ्य पर असर डाल रहे हैं। अधिक चराई और गहन कृषि के कारण अच्छी जातियाँ कम हो रही हैं तथा अवांछित जातियाँ प्रकट हो रही हैं।
- खनन की वजह से ज़मीन की शक्ल बिगड़ गई है, वनों का नाश हुआ है और जलीय संसाधन घटिया होते जा रहे हैं।
- ऊर्जा उत्पादन, उद्योगों और स्वचालित वाहनों ने ग्रीनहाउस प्रभाव में योगदान दिया है, जिसके कारण भूमंडलीय तापमान बढ़ा है और इसके परिणामस्वरूप तटों के साथ वाले बड़े क्षेत्रों का पानी में डूब जाने की आशंका है।
- बड़े पैमाने पर शहरीकरण से कृषि और वन की ज़मीनें हड़प ली गई हैं जिससे भौतिक पर्यावरण बिगड़ा है और स्वास्थ्य अनुसंगी खतरे भी बढ़े हैं।
- उद्योगों से बाहर निकलने वाला प्रवाह और अपजल का निसर्जन नदी, झीलों आदि को प्रदूषित करता है।
- स्वचालित वाहनों, उद्योगों और रसोईघर के उत्सर्जन यानी उनसे निकलने वाले धुएं आदि से वायु प्रदूषण होता है।
- संसाधनों के अत्यधिक दोहन से भौतिक संसाधनों पर दबाव पड़ता है और लगता है मनुष्य और पशुधन, दोनों ही एक-दूसरे का मुकाबला कर रहे हैं और साथ मिलकर प्रकृति का नाश कर रहे हैं।

6.6 अंत में कुछ प्रश्न

क) बहुत संक्षेप में उत्तर दीजिए :

1) ऊर्जा के विभिन्न स्रोत क्या हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित पर्यावरणीय अपकर्षण के क्या कारण हैं ?

(i) **वायु प्रदूषण :** .....

.....

.....

.....

.....

ii) **मृदा संहनन :** .....

.....

.....

.....

.....

iii) **झोंपड़-पट्टियाँ या गंदी बस्तियाँ :** .....

.....

.....

.....

ख) कॉलम "क" में दिए गए प्रौद्योगिकीय निवेशों के बढ़ते हुए उपयोग से होने वाले कॉलम "ख" में दिए गए पर्यावरणीय अपकर्षों से मिलान कीजिए :

कॉलम "क"	कॉलम "ख"
1) उर्वरक	क) मिट्टी और जलराशियों को प्रदूषित करते हैं और अंत में खाद्य शृंखला में घुसकर विश्व के मानव सहित आनुवंशिक संसाधनों के लिए खतरा बन जाते हैं।
2) अधिक पैदावार वाली किस्में	ख) मिट्टी में सूक्ष्य-पोषकों को खराब करते हैं, जड़ों वाले क्षेत्र में चले जाते हैं और भूमि जल में पहुंच कर पीने के पानी में नाइट्रेटों की सांद्रता बढ़ा देते हैं।
3) पीड़कनाशी और कीटनाशी	ग) इनसे आनुवांशिक अपरदन होता है, परम्परागत समन्वित और परस्पर निर्भर रहने वाली खेती घटती होती है जिससे भूसा-दाना अनुपात कम होता है और परिणामस्वरूप मवेशियों के लिए चारे की मात्रा पर बुरा असर पड़ता है।

6.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) जीवित बचे रहना (उत्तरजीविता), विकास, जैव-भू-रासायनिक, सूक्ष्म (microbial), सहजीवी (symbiotic)।
   ii) जनसंख्या या आबादी, मूल संसाधन।
2) i) किसी प्रदेश की वहन क्षमता का वर्णन व्यक्तियों की उस संख्या के रूप में किया जाता है जिन्हें इकाई क्षेत्रफल भूमि बिना किसी दुष्प्रभाव के अपशिष्टों की कुछ मात्रा को अवशोषित करके सहारा दे सकती है।
   ii) क) iii)
   ख) i)
   ग) ii)
3) i) खेती योग्य फसलें, साथी पेड़-पौधे, ढोर चारा।
   ii) कार्बन डाइऑक्साइड, वायुमंडलीय, ग्रीनहाउस प्रभाव।
4) शहरीकरण और औद्योगीकरण जल प्रदूषण के लिए उत्तरदायी है क्योंकि शहरों का अवशिष्ट पानी प्राकृतिक जलराशियों जैसे नदियों, झीलों आदि में बड़ी मात्रा में गिरता है। अपजल या तो मिट्टी में रिसता है तथा पानी को प्रदूषित करता है, या यह नहरों और नदियों में से होकर बहता है।

अंत में कुछ प्रश्न

क) 1) ऊर्जा के विभिन्न स्रोत हैं जैसे ईंधन की लकड़ी, उपले, कृषि अपशिष्ट जैसे भूसा, ईख का भूसा, खरपतवार आदि, जीवाश्म ईंधन जैसे कोयला, लिग्नाइट, पेट्रोलियम, जीव गैस (बायो गैस), सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, बिजली और प्राणि ऊर्जा अर्थात् पशु, लदान के लिए और विभिन्न वस्तुओं के परिवहन के लिए काम में लाये जाते हैं।
   2) i) वायु प्रदूषण खानों से निकाले गए कोयले को जलाने से, उद्योगों से और स्वचालित वाहनों (ऑटोमोबाइल) तथा रसोईघरों से निकलते हुए घुएँ आदि से होता है।
   ii) अधिक चराई से मिट्टी का संहनन होता है जिससे क्रियाशील मृदा-गहराई कम हो जाती है और नमी को संग्रह करने वाले मिट्टी का आयतन कम हो जाता है, जो पेड़-पौधों के जीवित बने रहने के लिए आवश्यक है।
   iii) शहरीकरण और औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप झोंपड़-पट्टियाँ या बस्तियाँ बनती हैं। आस-पास के ग्रामीण इलाकों से लोग जीविका की तलाश में शहर के औद्योगिक इलाकों में आते हैं। शहर में रहने की जगह मँहगी होने की वजह से ये लोग झोंपड़-पट्टियों में बस जाते हैं।

ख) 1) ख
   2) ग
   3) क

इकाई 7 जैविक संसाधनों के अति दोहन के प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
7.2 अति दोहन के कारण
वन उन्मूलन
मरुस्थलीकरण
वन्य जीवन का विलोपन
7.3 अति दोहन का विस्तार
वन उन्मूलन की व्यापकता
हमारे देश में वन उन्मूलन
मरुस्थलीकरण का विस्तार
वन्य जीवन का विलोपन
भारत में वन्य जीवन का विलोपन
7.4 अति दोहन के दुष्प्रभाव
भौतिक पर्यावरण
जैविक पर्यावरण
7.5 पर्यावरण संरक्षण
7.6 सारांश
7.7 अंत में कुछ प्रश्न
7.8 उत्तर

7.1 प्रस्तावना

प्रकृति में मानव का उद्‌भव पूर्ववर्ती जीवधारियों की प्रभावी शक्तियों की परस्पर अन्तःक्रिया के फलस्वरूप हुआ। यद्यपि मानव का विकास विकासीय सीढ़ी पर अपेक्षाकृत देर से हुआ, फिर भी मावन ही एक ऐसा जीव है जिसने प्रकृति में प्रबल बाधाएँ पैदा कीं। वह अपनी मूल सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने आसपास के प्राकृतिक संसाधनों का सदैव ही प्रयोग करता रहा है। प्राचीन काल में रीति-रिवाजों, परंपराओं, प्रथाओं, विश्वासों और नियमों के द्वारा मानवीय आवश्यकताओं और पर्यावरण संरक्षण के बीच एक संतुलन बना रहता था। लेकिन समय के साथ-साथ यह सहजीवी संबंध समाप्त हो गया और इसका स्थान अनिष्टकारी निर्भरता ने ले लिया। उसके कार्यकलाप अपने परिवेश पर इतने अधिक आश्रित हो गए कि तथाकथित विकास के लिए किए जाने वाले कार्यों से प्राकृतिक पारितंत्रों का संतुलन ही बिगड़ गया। विकास कार्यों के दौरान वह बिल्कुल ही भूल गया कि पारितंत्र की एक वहन क्षमता होती है, जिससे इसके उपयोग करने की सीमा का पता चलता है।

इस पाठ्यक्रम की पिछली इकाइयों में आप वहन-क्षमता, जाति-विविधता, आवास, निकेत (कर्मता) इत्यादि जैसी कुछ मूल संकल्पनाओं का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित पाठ्यक्रम में पर्यावरण और संसाधनों पर इकाई में आपको याद होगा, आपने पढ़ा था कि वन संसाधनों के अति अधिक दोहन से वन-उन्मूलन और उससे संबंधित कई समस्याएँ पैदा हो सकती हैं।

इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि वनों की कटाई से किस प्रकार पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है और अंधाधुंध औद्योगीकरण से वन उन्मूलन और मरुस्थलीकरण की समस्या पैदा होती है तथा वन्य जीवन की हानि होती है। आपको स्पष्ट हो जाएगा कि भौतिक पर्यावरण पर वन उन्मूलन के प्रभाव के कारण मरुस्थलीकरण होता है। आप यह भी समझ जायेंगे कि वन्य जीवन की हानि वन उन्मूलन का जैविक प्रभाव है, जो प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन के फलस्वरूप होता है।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- मनुष्य की उन गतिविधियों को बता सकेंगे जिनके कारण वन उन्मूलन, मरुस्थलीकरण और वन्य जीवन का विलोपन हुआ है।
- बता सकेंगे कि मनुष्य द्वारा उत्पन्न बाधाओं के कारण विश्व में और विशेषकर भारत में वन

उन्मूलन, मरुस्थलीकरण तथा वन्य जीवन की किस हद तक हानि हुई है।

- मृदा, जलवायु, जल निकायों जैसे भौतिक पर्यावरण के विभिन्न घटकों में मानव के हस्तक्षेप द्वारा हुए परिवर्तन के बारे में बता सकेंगे।
- वनस्पति और प्राणियों पर वन उन्मूलन और मरुस्थलीकरण के विभिन्न प्रभाव बता सकेंगे।

7.2 अति दोहन के कारण

जैविक संसाधनों का अत्याधिक दोहन मनुष्य के बढ़ते हुए लोभ का परिणाम है। इसके फलस्वरूप वनों की कटाई, मरुस्थलों का फैलाव और वन्य जीवन का विलोपन हुआ है। नीचे हम इन प्राकृतिक संसाधनों में से कुछ के उपयोगों की अति के कारणों पर चर्चा करेंगे।

7.2.1 वन उन्मूलन

वन उन्मूलन का तात्पर्य है बारंबार शाखाओं की कटाई, पेड़ों का गिराना, घास-फूंस हटाना, चारे के लिए टहनियाँ तोड़ना, जानवरों का चराना और पौधों का कुचला जाना और पेड़ों को बे रोक-टोक काटना। इसके मुख्य कारण हैं:

1) झूम खेती।
2) विकास परियोजनाएँ।
3) ईंधन की लकड़ी की माँग।
4) उद्योगों और व्यापार कार्यों के लिए लकड़ी की माँग।
5) अन्य कारण।

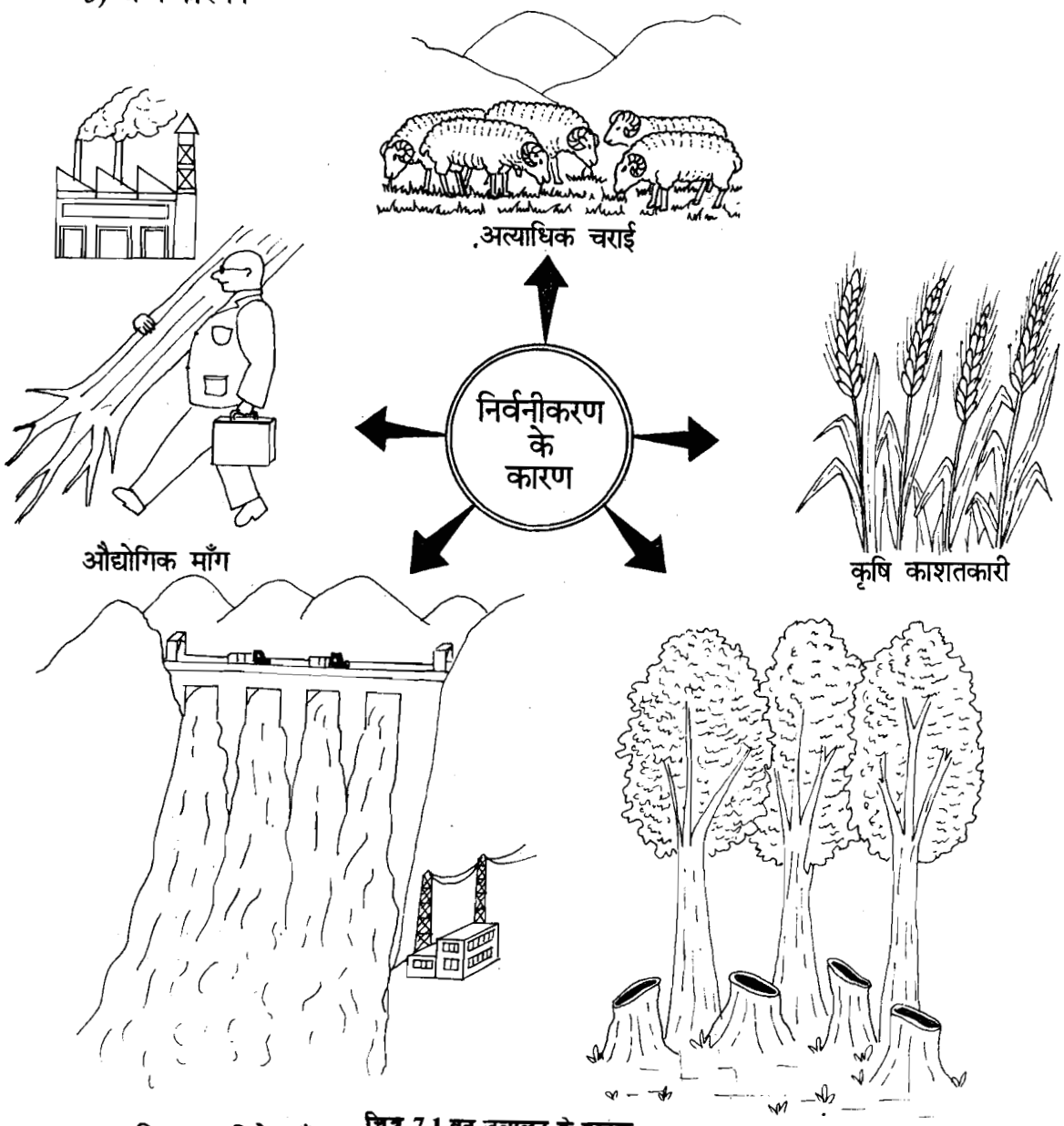

चित्र 7.1 वन उन्मूलन के कारण

चित्र 7.1 में इनमें से कुछ कारण रेखाचित्र के जरिए दिखाए गए हैं। वन उन्मूलन के फलस्वरूप हरित आवरण काफी हद तक कम हो गया है। कहा जाता है कि डायनामाइट के विस्फोट और कुल्हाड़ों के प्रहारों के कारण हिमालय और अरावली पर्वत-श्रेणियाँ नष्ट हो रही हैं। वन उन्मूलन वन्य जीवन को प्रभावित करता है। मनुष्य द्वारा मनोविनोद या खाल के लिए, जानवरों के शिकार से भी वन्य जीवन का विलोपन हुआ है। आइये इस खंड में हम इन कारणों पर नजर डालें।

I) स्थानांतरी कृषि/झूम खेती

स्थानांतरी जुताई या झूम खेती में पहाड़ी के एक भाग से पेड़ों की सफाई कर दी जाती है और पौधों को जला दिया जाता है। राख बाद में मृदा में मिल जाती है जो ज्वार, बाजरा आदि की फसल के लिए उपयोगी रहती है। इसमें आदिवासी कृषकों की तत्कालीन आवश्यकता को पूरा करने के लिए अच्छी खासी पैदावार हो सकती है। फसल की कटाई के पश्चात् भूखंड को ऐसे ही छोड़ दिया जाता है और निवासी पास के क्षेत्रों में चले जाते हैं जहाँ वे निर्वाह के लिए फिर से इसी प्रकार की खेती करते हैं।

मानव इतिहास के अधिकांश भाग में आखेट एवं अन्न संग्रहण कृषि का मुख्य रूप रहा है। 'आखेटक समूहों' में खाद्य अधिशेष का कोई स्थान नहीं होता और क्योंकि इन समुदायों में अस्तित्व के लिए ही आवश्यक सामग्री जुटाई जाती है। स्थानांतरी जुताई या झूम खेती लगभग 9000 वर्षों से की जाती रही है और यह आखेट एवं खाद्य संग्रहण से खाद्य-सामग्री उत्पादन युग में प्रवेश करने के लिए एक कदम है। यह कृषि की कर्त्तन एवं दहन प्रणाली (slash and burn method) भी कहलाती है। इस प्रकार की खेती में वर्ष भर में लगभग 5 लाख हेक्टेयर वनों को काटा जाता है। इस किस्म की खेती में गिने-चुने औजारों का प्रयोग किया जाता है और यह औजार मशीनीकृत भी नहीं होते। इस प्रकार की कृषि में वन उन्मूलन बहुत ही अधिक होता है क्योंकि 2-3 वर्ष की जुताई के पश्चात् भूमि को फिर से उपजाऊ बनाने के लिए 2-3 वर्ष के लिए प्रकृति के भरोसे छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार की खेती सदैव जुताई करने वाले समूहों या आसपास के ग्रामीणों की स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए की जाती है। भारत में आज भी असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा, अंडेमान और निकोबार द्वीप समूहों में झूम खेती की जाती है। इनमें से अंडेमान और निकोबार द्वीप समूह भारतीय उप-महाद्वीप का सबसे समृद्ध वन क्षेत्र है।

अगली इकाई में आप पढ़ेंगे कि कृषि के लिए साफ़ की गई धरती वन उन्मूलन का सबसे मुख्य कारण है।

II) विकास परियोजनाएँ

विकास परियोजनाएँ वन उन्मूलन का मुख्य कारण बनती हैं। कबीलों के निवासी मानवीय और पर्यावरणीय आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाए रखते थे लेकिन आज वन संसाधनों के संतुलित उपयोग से निकलकर हम उनके अति दोहन की तरफ आ रहे हैं। इसके कारण परिस्थितियों में बदलाव आ गया है। विकास परियोजनाओं के लिए वनों से कच्चा माल तो लिया जाता ही है, इसके अतिरिक्त विकास परियोजना से उत्पादन प्रारंभ होने से पहले ही वनों को नष्ट करना भी शुरू कर दिया जाता है। सड़कों, रेलवे-लाइनों, इमारतों, बाँधों, बस्ती, विद्युत्-प्रदाय इत्यादि के रूप में बुनियादी ढाँचा बनाने से वन का कटाव शुरू होता है। जल-विद्युत परियोजनाओं और सिंचाई के लिए बाँध और नहरों जैसी परियोजनाओं में भी लकड़ी तथा कच्ची सामग्री के लिए भी वन-कटाव किया जाता है। औद्योगीकरण ऐसी परिघटना नहीं है जिसमें केवल एक बार ही उसके लिए आवश्यक कुछ हेक्टेयर वन क्षेत्र नष्ट हो जाता है अपितु उद्योगों के लगने से पहले और काफी बाद तक उसके लिए वन निम्नोटिकरण जारी रहता है। कई हेक्टेयर भूमि से जुड़े वृक्षों के साफ हो जाने के कारण उसके आस-पास रहने वाले लोगों के ईंधन, चारे, पत्तियों और छोटी लकड़ी के स्रोत छिन जाते हैं जो उनकी औजार, चारागाहों के लिए घेरा और पशुओं के लिए बाड़ा बनाने जैसी दैनिक आवश्यकताओं में प्रयुक्त होती हैं। उनके जीवनयापन के स्रोत का विनाश हो जाने से घटनाओं का एक चक्र क्रम शुरू हो जाता है, निवासियों की आय में कमी आ जाती है, पोषण स्तर में गिरावट आ जाती है, भूमि का संक्रमण शुरू हो जाता है, कृषि क्षेत्र की कमी हो जाती है, और जिसके परिणामस्वरूप और अधिक बड़े क्षेत्र से वनों का कटाव किया जाता है क्योंकि ईंधन की लकड़ी की बिक्री पर निर्भरता बढ़ जाती है। यह देखा गया है कि सिंचाई परियोजनाओं के अधीन गाँवों के आदिवासी और बाँध-क्षेत्रों से विस्थापित लोग केवल ईंधन-लकड़ी की बिक्री पर ही जीवन निर्वाह करते हैं। बेची गई ईंधन-लकड़ी की मात्रा के साथ-साथ जीवित रहने के लिए इनको बेचने वाले लोगों की संख्या काफी अधिक बढ़ गई है और यह बिक्री इस शताब्दी के अन्त तक दुगुनी होने जा रही है।

आजकल आपने टिहरी-विद्युत-परियोजना के बारे में पढ़ा होगा जिसमें गढ़वाल हिमालय

शृंखला में टिहरी नगर के पास 260.5 मीटर ऊँचे मिट्टी और चट्टान की भरती से बनें बाँध के निर्माण की योजना बनाई गई। परियोजना स्थल भागीरथी और भीलगंगा के संगम से कुछ नीचे स्थित है। अनुमान है कि लगभग 4,600 हेक्टेयर अच्छा वन क्षेत्र जल में डूब जाएगा। इससे लगभग 3,500 परिवार भी विस्थापित हो जायेंगे। "चिपको आंदोलन कार्यकर्ताओं" और "टिहरी बाँध विरोधी संघर्ष समिति" द्वारा किए गए प्रयासों के फलस्वरूप परिवारों को क्षतिपूर्ति दी गई है और परियोजना में लगभग 90 प्रतिशत कर्मचारियों की भर्ती टिहरी नगर के निवासियों में से की जाएगी।

यहाँ यह उल्लेख करना उचित है कि औद्योगीकरण और विकास परियोजनाओं के प्रभाव के प्रति लोगों की जागरुकता के फलस्वरूप "चिपको आंदोलन" जैसे आंदोलन शुरू हो गए हैं। इस आंदोलन में वृक्षों को गिराने से रोकने के लिए लोग पेड़ से लिपट जाते हैं। आंदोलनकारियों द्वारा अपना जीवन दाँव पर लगाकर भी वृक्षों को बचाना इस आंदोलन की भावना थी। वास्तव में इस आंदोलन की अग्रणी एक महिला थीं। श्रीमती अमृत देवी, उसके पति रामोजी और उनकी तीन पुत्रियों ने राजस्थान के एक गाँव में खेजड़ी में अपने जीवन का बलिदान दिया। ऐसी कई घटनाएँ हैं जिनमें साहसिक ग्रामीणों को अपने प्राण-प्रिय वृक्षों को बचाते समय कुल्हाड़ों से मौत के घाट उतार दिया गया। अब आप समझ गए होंगे कि किस प्रकार प्रबुद्ध लोगों के सामूहिक प्रयासों द्वारा गंभीर पारिस्थितिकीय परिणामों वाले निर्णय पर्यावरण संतुलन के पक्ष में कर लिए जाते हैं।

III) ईंधन लकड़ी

विश्व-भर में कुल पैदा की गई लकड़ी का 54 प्रतिशत भाग विश्व की ईंधन आवश्यकता को पूरा करने के लिए प्रयोग किया जाता है। पैदा की गई लकड़ी के उपभोग का प्रतिरूप समीप से देखने पर स्पष्ट होता है, कि विकसित देश अपने साझे में आई वन्य लकड़ी के केवल 16 प्रतिशत भाग का ही उपभोग ईंधन की आवश्यकता के लिए करते हैं। दूसरी, ओर विकासशील देशों में उनके वन उत्पादन का 82 प्रतिशत ईंधन-लकड़ी के रूप में जला दिया जाता है, जो इन संसाधनों के उपभोग का अपव्ययी तरीका है (तालिका 7.1)। भारत में एक वर्ष में लगभग 1350-1700 लाख टन तक ईंधन लकड़ी की खपत होती है और शहर एवं गाँवों के गरीब लोगों की न्यूनतम ईंधन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रति वर्ष लगभग 10-15 हेक्टेयर वन-आवरण समाप्त हो रहा है। ईंधन लकड़ी की खपत 1953 में 863 लाख टन से बढ़कर 1980 में लगभग 1350 लाख टन हो गई है, जिससे वनों पर बढ़ता हुआ दबाव स्पष्ट दिखाई देता है। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2000 तक ईंधन लकड़ी की खपत बढ़कर 3000-3300 लाख टन हो जाएगी और ईंधन लकड़ी की सप्लाई में लगभग 1370 लाख टन की कमी पड़ सकती है। ऊर्जा परामर्श मंडल (1985) की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2000 के दौरान राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र ईंधन लकड़ी की अपनी माँग पूरा कर सकेंगे, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु को कठिनाई होगी और पजाब, हरियाणा और केरल को गंभीर संकट का सामना करना पड़ेगा। ईंधन लकड़ी की लगभग 70 प्रतिशत माँग ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित है और ईंधन के लिए कम से कम ग्रामीण लोगों की सारी माँग ईंधन लकड़ी द्वारा पूरी करनी होगी क्योंकि गाँव के गरीब लोगों के लिए ईंधन के अन्य साधन पहुँच के बाहर हैं।

तालिका 7.1 : लकड़ी का उपयोग

क्षेत्र	लकड़ी की कुल खपत (दस अरब घन मीटर)	लकड़ी का उपयोग दस अरब घनमीटर में		लकड़ी का उपयोग (प्रतिशत)	
		औद्योगिक	ईंधन	औद्योगिक	ईंधन
विश्व में खपत	3.2	1.5	1.7	46	54
विकासशील देश	1.8 (57%)	0.324	1.476	18	82
विकसित देश	1.4 (43%)	1.176	0.224	84	16

IV) उद्योगों और वाणिज्यिक कार्यों के लिए लकड़ी की माँग

बहुमुखी वन उत्पाद लकड़ी का उपयोग बक्से, क्रेट, पैकिंग केस, फर्नीचर, माचिस, कागज और मज्जा, परती लकड़ी (प्लाइवुड), इत्यादि जैसे कई औद्योगिक कार्यों में किया जाता है। पिछले 20 वर्षों (1951-71) के दौरान विभिन्न औद्योगिक कार्यों के लिए लगभग 1.24

लाख हेक्टेयर वन काट डाले गए। 1970 में उद्योगों के लिए लकड़ी की आवश्यकता 159 लाख घन मीटर थी जो 1980 में बढ़कर 250 लाख घन मीटर हो गई। आज, विश्व में औद्योगिक लकड़ी की वार्षिक आवश्यकता लगभग 400 लाख घन मीटर है, जबकि केवल 130 लाख घन मीटर लकड़ी उपलब्ध है। लकड़ी के ज्ञात वार्षिक उत्पादन का 46 प्रतिशत भाग औद्योगिक कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता है। इस माँग को पूरा करने के लिए नए पौधे लगाने के लिए प्रतिवर्ष 100,000 हेक्टेयर भूमि को वन-आवरण के अंतर्गत लाना होगा। वाणिज्यिक कार्यों के लिए लकड़ी के साथ-साथ अन्य उत्पादों का बिना सोचे-समझे और बे रोक-टोक दोहन वन निम्नकोटिकरण का मुख्य कारण है। कागज-उद्योग में देश में लकड़ी की वार्षिक खपत का लगभग 2 प्रतिशत खर्च होता है। 1983 की शुरुआत में, देश में कागज़ की कुल 175 मिलें थीं और उनकी माँग को पूरा करने के लिए 30.9 लाख टन लकड़ी की आवश्यकता थी। इस माँग का 51 प्रतिशत बांस की लकड़ी द्वारा पूरा होता है। इस कारण अधिकांश महाद्वीपीय भारत में बांस का भंडार कम रह गया है। हिमालय क्षेत्र में सेब उद्योग के कारण फर, लकड़ी और लकड़ी की अन्य जातियों के पेड़ नष्ट हो गए हैं क्योंकि पैकिंग-सामग्री के लिए इस लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार, अन्य उत्पादों, विशेषकर चाय, के लिए परती लकड़ी के क्रेटों की आवश्यकता होती है। आज असम में 52 से भी अधिक परती लकड़ी की फैक्ट्रियाँ चल रही हैं। कच्चे वन उत्पादों में इतनी कमी आ गई है कि असम राज्य की परती लकड़ी की मिलों की आवश्यकता का केवल 22 प्रतिशत ही वहाँ के वनों द्वारा पूरा पड़ता है। शेष भाग अरुणाचल प्रदेश, मेघालय और नागालैंड से आता है।

V) **अन्य कारण**

वनों की कभी-कभी दीमक, रोग, बाढ़ और आग जैसे प्राकृतिक शत्रुओं के कारण हानि होती है लेकिन मनुष्य का लोभ क्षति की सभी सीमाओं को पार कर गया है। कभी-कभी जिसे हम दावानल (जंगल की आग) कहते हैं, वह वास्तव में स्मगलरों द्वारा जानबूझकर पेड़ों में लगाई गई होती है। प्रायः पेड़ों में यह आग फोरेस्ट गार्डों की जानकारी में यहाँ तक कि कई बार उनकी सांठ-गांठ से लगाई जाती है। बाद में यह लकड़ी "जले वृक्षों" के रूप में बहुत ही कम मूल्य पर नीलाम कर दी जाती है और उसी लकड़ी को स्मगलर खरीद लेते हैं।

इनके अतिरिक्त खेती व अनियंत्रित चराई के कारण भी वन उन्मूलन को सकता है। वन उन्मूलन के कारणों का वर्णन हम अगली इकाइयों में करेंगे, आइए अब यहाँ हम मरुस्थलीकरण और उसके कारणों को पढ़ें और उससे पहले एक बोध प्रश्नावली हल कर लें।

बोध प्रश्न 1

उचित शब्द का उपयोग करते हुए रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) यद्यपि मनुष्य विकासीय सीढ़ी पर अपेक्षाकृत देर से आया, फिर भी वही एक ऐसा जीव है, जिसने प्रकृति में प्रबल ..... करने का प्रयास किया।

ii) झूम-खेती के कारण वन उन्मूलन उत्प्रेरित होता है क्योंकि 2-3 वर्ष की जुताई के पश्चात् भूमि को ..... बनाने के लिए प्रकृति के भरोसे ऐसे ही छोड़ दिया जाता है।

iii) औद्योगीकरण ऐसी घटना नहीं है जिसके अन्तर्गत केवल एक बार उसके लिए आवश्यक कुछ ..... वन क्षेत्र को नष्ट किया जाता है। उद्योगों के लगने से पहले और काफी बाद तक ..... जारी रहता है।

iv) लकड़ी का जलाना इस मूल्यवान संसाधन के उपभोग का सबसे अलाभप्रद तरीका है और ..... देश इस कार्य में अपने हिस्से का अधिकांश भाग गँवा देते हैं।

7.2.2 मरुस्थलीकरण

मरुस्थलीकरण और वन उन्मूलन की घटनाओं के बीच एक गहरा संबंध है। वन अपने आस-पास के क्षेत्र की आर्द्रता बनाए रखते हैं। जब वायु आर्द्र होती है, न केवल दिन के दौरान सूर्य की गरमी भूमि तक कम पहुंच पाती है, बल्कि रात के दौरान भी बाहरी वायुमंडल में यह गरमी कम ही निकल पाती है। वन इस प्रकार किसी भूभाग की मौसमी स्थिरता बनाए रखने में सहायक होते हैं। इसके विपरीत मरुस्थलीकरण, वृक्षों के

आवश्यकता से अधिक गिराने से उत्पन्न एक क्रमबद्ध तथ्य है जिसके परिणामस्वरूप प्रभावित भू-भाग में उर्वरता कम हो जाती है, तेज हवाएँ चलती हैं, वर्षा कम होती है, शुष्कता बहुत बढ़ जाती है और रात एवं दिन के तापमान में बहुत अंतर हो जाता है। मरुस्थल में वनस्पति बहुत विरल होती है और बहुत कम जानवर यहाँ आश्रय पा सकते हैं। केवल विषम प्रतिकूल परिस्थितियों को सहने-योग्य वनस्पति और जानवर ही यहाँ पाये जाते हैं। हालांकि मरुस्थलीकरण के केवल प्राकृतिक कारण भी हो सकते हैं, लेकिन दृष्टांतों में देखा गया है कि प्रकृति में मानव हस्तक्षेप के कारण पूर्व विद्यमान मरुस्थलीकृत भू-भाग में शुष्क परिस्थितियाँ और प्रबल हो जाती हैं। यह किसी भी जलवायु मंडल या पारितंत्र में हो सकता है और प्राकृतिक पारितंत्र पर मनुष्य अतिदोहन संबंधी परस्पर-प्रभावों के फलस्वरूप होता है। मुख्यत: वन उन्मूलन मरुस्थलीकरण को बढ़ावा देता है। हाल ही में बने अधिकांश मरुस्थल मनुष्य की निम्नलिखित गतिविधियों के परिणाम हैं :

- सीमांत भूभागों पर जुताई द्वारा कृषि के लिए अलाभप्रद भू-उपयोग जिससे आसपास उर्वर भूमि पर प्रभाव पड़ता है, और मृदा का अपरदन होता है।
- अनियंत्रित चराई और पेड़ों के अंधाधुंध काटने या चराई भूमि और वन-संसाधनों के अतिदोहन के फलस्वरूप सूखा पड़ता है, मृदा का अपरदन होता है, मृदा की उर्वरता कम हो जाती है और पौधों का विकास धीरे-धीरे होता है।
- जल संसाधनों का गहन और अलाभप्रद दोहन जिसके परिणामस्वरूप भौम जल स्तर ऊपर उठ जाता है, रिसाव की समस्या खड़ी हो जाती है और साथ ही मृदा में लवण की मात्रा बढ़ जाने की समस्या भी पैदा हो जाती है।
- अयस्क, कोयला अथवा चूना निकालने के लिए शुष्क अथवा अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में अति खनन, जिसके परिणामस्वरूप वृक्षों, झाड़ियों और अन्य हरितावरणों की हानि होती है और वनस्पति के लिए सहायक सारी परिस्थितियाँ नष्ट हो जाती हैं।

एशिया और प्रशान्त क्षेत्र का लगभग 4.36। लाख हेक्टेयर भाग प्राकृतिक मरुस्थलीकरण का परिणाम है। इन क्षेत्रों को उपोष्ण, शीतल-तटीय, वृष्टि-छाया और आंतरिक महाद्वीपीय मरुस्थलों में बाँटा जा सकता है। इनके अतिरिक्त, विश्व के ध्रुवीय प्रदेश भी एक किस्म के मरुस्थल ही हैं, जहाँ इसमें संदेह नहीं कि जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तो है लेकिन बर्फ के रूप में होने के कारण पौधों और जानवरों को उपलब्ध नहीं हो पाता। उत्तर-पश्चिम एशिया का 'गोबी मरुस्थल' शीत मरुस्थल है। जम्मू और कश्मीर का लद्दाख प्रदेश, जिसका क्षेत्रफल 0.7 लाख वर्ग किलोमीटर और जो ।।,000 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। भी एक शीत मरुस्थल है जहाँ वर्ष में लगभग 5-6 माह तक विषम शीत परिस्थितियाँ बनी रहती हैं।

अब हम उपरोक्त मरुस्थलीकरण के कारणों में से प्रत्येक पर और अधिक विस्तार पूर्वक चर्चा करेंगे।

अलाभप्रद भू-उपयोग

कृषि के लिए अलाभप्रद भू-उपयोग और संसाधनों का अति दोहन मरुस्थलीकरण के मुख्य कारणों में से एक है जिसके परिणामस्वरूप मरुस्थल रहने योग्य नहीं रह पाते। भारतीय शुष्क प्रदेश विश्व के अन्य मरुस्थलों में सबसे अधिक आबादी वाले प्रदेश होने के कारण अपनी बढ़ती हुई आबादी के जीवन यापन के लिए कृषि के अतिरिक्त अन्य किसी धंधों को बहुत कम उपलब्ध करा पाता है। इसके परिणामस्वरूप बालू के टिब्बों और सीमांत भू-भागों पर गहन खेती की जाती है। इसके कारण मृदा के कण ढीले पड़ जाते हैं और वायु द्वारा अपने साथ उड़ाकर ले जाए जा सकते हैं। वायु के साथ उड़ाकर ले जाए गए कण आस-पास की उर्वर भूमि पर गिरते हैं और उन्हें अनउपजाऊ बना देते हैं। इसके परिणामस्वरूप बालुई टीले बन जाते हैं। राजस्थान के बीकानेर, नागौर, चुरू और पाली जिलों में पाये जाने वाले ऐसे सीमांत क्षेत्र और बालुई टिब्बों पर खेती करने से इन क्षेत्रों का बालू स्थानांतरित हो गया है और इन जिलों के उपजाऊ क्षेत्रों के साथ-साथ नए बालुई टीले बन गये हैं। ऐसा लगता है कि अजमेर ज़िले में तिलोनियाँ गाँव के साथ-साथ बालूई भूमि का साकार होना जिले में अरावली पर्वत शृंखला के साथ-साथ सीमांत भूमि की जुताई के कारण हाल ही में बना बालू का निक्षेप है। अजमेर के पश्चिम और उत्तर-पश्चिम में सीमांत भूभागों और बालूई नदी तलों पर खेती करने के परिणामस्वरूप लूनी नदी के चीर से होकर बालुई सामग्री धीरे-धीरे आगे बढ़ती जा रही है जिसने अरावली के पूर्व की ओर उर्वर भूमि को चपेट में ले लिया है। इस कारण जल-निकास तंत्र भी अव्यवस्थित हो गया है। मरुस्थल प्रदेशों के अन्य कई भागों में भी ऐसी ही समस्याएँ सामने आ रही हैं। अलाभप्रद भू-उपयोग महामार्गों, रेलपथों इत्यादि को भी प्रभावित करता है, जो पश्चिम राजस्थान में गंगानगर, बीकानेर, चुरू और जैसलमेर जिलों में स्पष्ट दिखाई देता है।

अनियंत्रित चराई

पशुओं की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि होने के कारण राजस्थान के वानस्पतिक आवरण पर चराई का दबाव काफी अधिक है। चरागाहों पर पशुओं द्वारा अधिक चराई के परिणामस्वरूप संसाधनों का अति दोहन होने लगा है। इस कारण मृदा का अपरदन होता है, जिसके फलस्वरूप मरुस्थलीकरण होता है। अनियंत्रित चराई के साथ-साथ वृक्षों के अंधाधुंध गिराने और शाखाओं के काटने से मरुस्थलीकरण और भी गंभीर हो गया है। ग्रामीण लोग जानवरों के चारे के लिए प्रायः वृक्षों, झाड़ियों और यहाँ तक कि उनकी जड़ों का भी प्रयोग करते हैं।

भूमिगत (Underground) जल का अति दोहन

सिंचाई के लिए भौम और सतही जल संसाधनों के अत्याधिक और अलाभप्रद उपयोग को गहन सिंचाई कहा जाता है। जल के अतिकर्षण से एक ओर तो भूमिगत जलस्तर कम हो जाता है और दूसरे, शुष्क प्रदेशों में मृदा के भीतर लवण की मात्रा बढ़ जाती है। गंगानगर, बीकानेर और जैसलमेर जिलों में नहरी जल के अलाभप्रद और गहन उपयोग के कारण ऐसी ही कई भयंकर समस्याएँ पैदा हो गई हैं। जैसलमेर जिले के नचना इलाके में, जहाँ इन्दिरा गांधी नहर के जरिए अभी हाल ही में पानी आया है, रिसाव की समस्या देखी गई है।

अत्याधिक खनन

खनन के अन्तर्गत विवृत खनन या सतही या जमीन के ऊपर खुदाई तथा भूमिगत खनन आते हैं, पहले दृष्टांत में नीचे भंडार तक पहुंचने के लिए मृदा और वनस्पति हटानी पड़ती है। अतः उपजाऊ मृदा और उससे संबंधित वनस्पति एवं जीवों की क्षति से बचना संभव नहीं है। सामान्यतः खनन में मलबा निकाली गई अयस्क या सामग्री से दो गुना हो जाता है। इस प्रकार, खनन के लिए निकाला गया मलबा या ढेर लगाई गई मृदा भू-पृष्ठ का अधिक भाग घेरती है और शैफ्टों की आवश्यकता होती है, जिस कारण भी मलबे की समस्या होती है। इसके अलावा, उन क्षेत्रों में जहाँ भूमिगत खनन होता है वहाँ भूमि धंस सकती है अथवा भू-संखलन हो सकता है। इन क्षेत्रों पर प्राकृतिक वनस्पति योग्य या खेती योग्य भूमि के धंसाव या संखलन के कारण भू-भाग की क्षति हो जाती है। इस प्रकार क्षतिग्रस्त क्षेत्र काफी बड़ा हो सकता है।

7.2.3 वन्य जीवन का विलोपन

अपने मनोविनोद और लोभ के कारण मनुष्य वन्य प्रजातियों का सबसे बड़ा शत्रु बन गया है। मनुष्य ने अपने चारों ओर रहने वाले अन्य जानवरों को किसी भी प्रकार की चिंता किए बिना स्वयं को बचाए रखने के लिए सभी प्रतिकूल कारणों को नियंत्रित करने का प्रयास किया। बढ़ती हुई मानव जनसंख्या के लिए आवश्यक भोजन जुटाने के लिए वनों के बड़े-बड़े प्रदेशों को साफ करके गहन खेती की गई, जिसके परिणामस्वरूप वनीय आवरण में काफी कमी हो गई। इसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकीय साम्यावस्था में गंभीर असंतुलन हो गया।

सिंचाई परियोजनाओं के लिए नदियों से शाखा निकालने, कृषि और शहरीकरण के लिए दलदले क्षेत्रों से जल-निकास इत्यादि जैसी परियोजनाओं के कारण वन्य जानवरों के प्राकृतिक आवास में बदलाव आया है और यहाँ तक कि कुछ दृष्टांतों में वन्य जीवन खत्म ही हो गया। इसी कारण उनकी संख्या में काफी कमी आ गई और यदि यह कमी निरंतर होती रही तो उनमें से कुछ वन्य जन्तु विलुप्त भी हो सकते हैं।

परजीवियों और परभक्षियों जैसे प्राकृतिक शत्रुओं, सूखा, बाढ़, भूकम्प और अग्नि जैसे विभिन्न जलवायु और दुर्घटना संबंधी संकटों के अतिरिक्त मनुष्य का लोभ इन जानवरों की संख्या में वृद्धि को सीमित करने के लिए उत्तरदायी है। मनोविनोद या खाल के लिए जानवरों के अत्याधिक शिकार ने वन्य जीवन को बहुत बड़े खतरे में डाल दिया है।

विश्व में वन्य जानवरों की कालाबाजारी सबसे प्रलोभकारी बाजारों में से एक है। प्रतिवर्ष पूरे विश्व में लगभग 40,000 नर-वानरों (प्राइमेटों), जिनमें कुछ को बंधक बनाकर प्रजनन कराया जाता है, 40 लाख पक्षियों, 35 करोड़ अति सुन्दर मछलियों और असंख्य छिपकलियों और साँपों को मौत के घाट उतार दिया जाता है। व्यापार किए जाने वाले वन्य

जानवरों से बनी वस्तुओं के अन्तर्गत 5 करोड़ फर, 500 टन हाथी दाँत, एक करोड़ सरीसृपों की खाल और तीन करोड़ विदेशी चमड़े से बनी वस्तुयें आती हैं। पूरे विश्व में प्रतिवर्ष कम से कम 7500 करोड़ रुपये के वन्य प्राणियों के व्यापार को स्वीकार किया जाता है। जिनमें विभिन्न जानवरों की 20,000 जातियाँ शामिल हैं।

बोध प्रश्न 2

i) बताइये कि निम्नलिखित में से कौन-सा तथ्य पर्रिस्थिति के सर्वाधिक उपयुक्त है :
मनुष्य मरुस्थलीकरण की क्रिया को केवल बढ़ावा देता है, वह इसे प्रारंभ नहीं करता।
परंतु हाल ही में बने प्रायः सभी मरुस्थल निम्नलिखित के परिणाम हैं :
क) अलाभप्रद भू-उपयोग
ख) अनियंत्रित चराई
ग) भौम जल का अतिकर्षण
घ) अति खनन
च) उपरोक्त सभी कारण

ii) रिक्त स्थानों में उचित शब्द का प्रयोग करते हुए वाक्य पूरा कीजिए :
धन कमाने को मनुष्य का लोभ, मनोविनोद या खाल के लिए ..... का अत्याधिक ..... और व्यापारिक प्रवृत्ति ने प्रायः सभी वन्य प्राणियों का जीवन खतरे में डाल दिया है।

iii) वन किसी भू-भाग को मौसम की दृष्टि से ..... प्रदान करते हैं।

iv) विश्व में जानवरों का ..... सबसे प्रलोभकारी व्यापार है।

7.3 अति दोहन का विस्तार

जैविक संसाधनों के अत्याधिक उपयोग के कारणों को पढ़ने के बाद आप यह जानना चाहेंगे कि यह घटना विश्व स्तर पर और साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर कितनी व्यापक है।

7.3.1 वन उन्मूलन की व्यापकता

यह अनुमान है कि सन् 1900 में विश्व में लगभग 70,000 लाख हेक्टेयर भूमि वन क्षेत्र के भीतर थी। 1975 तक यह घटकर 28,000 लाख हेक्टेयर रह गई। यदि यही गति रही तो सन् 2000 तक वन आवरण के अन्तर्गत केवल 23,700 लाख हेक्टेयर रह जाएगी। इसमें से शीतोष्ण प्रदेश में कुल वन क्षेत्र का केवल 0.6 प्रतिशत होगी जबकि उष्ण-कटिबंधीय और उपोष्ण क्षेत्र में कुल वन क्षेत्र का लगभग 40.0 प्रतिशत होगी। यह आशा की जाती है कि इसमें से लगभग 50 प्रतिशत कमी एशिया और प्रशान्त क्षेत्र में होगी। एक अनुमान के अनुसार, यदि वन-उन्मूलन की वर्तमान स्थिति समाप्त नहीं हुई तो पहले 50 से 75 वर्षों के भीतर शीतोष्ण वन लुप्त हो जायेंगे।

7.3.2 हमारे देश में वन उन्मूलन

वन उन्मूलन एक पर्यावरणीय सर्वनाश है, जिसके प्रभाव में आकर भारत धीरे-धीरे प्रतिवर्ष लगभग 15 लाख हेक्टेयर अच्छी वन भूमि खोता जा रहा है। आज गिराये जाने वाले पेड़ों की संख्या प्रति वर्ष देश में तेल, कोयले और बिजली—तीनों की खपत के लगभग बराबर है। देश एक ऐसी पर्रिस्थिति की ओर बढ़ रहा है। जिसमें 20 वर्ष के भीतर वन-आवरण समाप्त हो जाएगा। आज भारत में लगभग 672 लाख हेक्टेयर वन है, जो कुल क्षेत्रफल का लगभग 22.1 प्रतिशत है। यद्यपि, सरकारी रिपोर्टों के अनुसार वन-आवरण 1950-51 में कुल क्षेत्रफल के लगभग 14 प्रतिशत से बढ़कर 1984-85 में लगभग 22 प्रतिशत हो गया है, फिर भी 1952 की भारतीय वन नीति द्वारा की गई 33 प्रतिशत की सिफारिश से यह काफी कम है।

यह तथ्य सर्वज्ञ है कि 3000 ईसा पूर्व भारत की 3290 लाख हेक्टेयर भूमि में से लगभग 80 प्रतिशत भाग वनों से घिरा था। ऐसा कहा जाता है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता की अवधि (400 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व) के दौरान हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के चारों ओर वन थे। मुगल काल के दौरान बहुत से वन क्षेत्र कृषि भूमि में रूपांतरित कर दिए गए।

अंग्रेजों ने इस रूपांतरण दर को और अधिक बढ़ा दिया, जिसके पश्चात् लकड़ी और ईंधन के लिए वनों का दोहन प्रारम्भ हो गया।

स्वाधीनता के समय 75 लाख हेक्टेयर भूमि या कुल भूमि का 23 प्रतिशत भाग वनाच्छादित था। औद्योगीकरण, शहरीकरण और जनसंख्या में वृद्धि के कारण वन-आवरण अब घटकर मुश्किल से केवल 10 प्रतिशत रह गया है। 1984 के मध्य में जारी किए गए आँकड़ों से यह प्रदर्शित होता है कि भारतवर्ष ने 1972-75 से 1980-82 तक प्रति वर्ष 13 लाख हेक्टेयर वन-भूमि खोई है (तालिका 7.2)। सरकारी तौर पर यह माना गया है कि देश में वन आवरण के अंतर्गत केवल 622 लाख हेक्टेयर भूमि ही है जिसमें से अच्छी किस्म का वन-आवरण केवल 8 प्रतिशत ही है।

तालिका 7.2: उपग्रह सर्वेक्षण आँकड़ों से प्राप्त राज्य-वार वन क्षेत्र

राज्य/संघ राज्य	वन क्षेत्र	लाख हेक्टेयर
	1972-75	1980-82 के लिए उपग्रह आँकड़े
आंध्र प्रदेश	49.0	40.0
असम	21.1	19.8
बिहार	22.7	20.1
गुजरात	9.5	5.1
हरियाणा	0.8	0.4
हिमाचल प्रदेश	15.1	9.1
जम्मू और कश्मीर	22.3	14.4
कर्नाटक	29.5	25.7
केरल	8.6	7.4
मध्य प्रदेश	108.6	90.2
महाराष्ट्र	40.7	30.4
मणिपुर	15.1	13.8
मेघालय	14.4	12.5
नागालैंड	8.2	8.1
उड़ीसा	48.4	39.4
पंजाब	1.1	0.5
राजस्थान	11.3	6.0
सिक्किम	1.8	2.9
तमिलनाडु	16.7	13.2
त्रिपुरा	6.3	5.1
उत्तर प्रदेश	25.9	21.0
पश्चिम बंगाल	8.3	6.5
अंडमान निकोबार द्वीप समूह	3.3	6.4
अरुणाचल प्रदेश	51.4	52.1
दादरा नागर हवेली	0.2	0.1
गोवा, दमन और दीव	1.2	1.1
मिजोरम	13.9	12.0
कुल वन क्षेत्र	555.4	463.7
वन आवरण कुल भू-क्षेत्र का प्रतिशत	16.88	14.09

स्रोत : उपग्रह छायांकन, राष्ट्रीय सुदूर संवेदन अभिकरण

7.3.3 मरुस्थलीकरण का विस्तार

भारत में अधिकांश मरुस्थल राजस्थान और पश्चिम गुजरात राज्यों में स्थित हैं, जहाँ लगभग 23.8 लाख हेक्टेयर क्षेत्र मरुस्थलीकृत हो गया है। इस क्षेत्र का लगभग 4.34 प्रतिशत भाग जैसलमेर में राजस्थान के एक दम पश्चिम में पड़ता है। यह मरुस्थल गंगानगर, चूरू, बीकानेर, जैसलमेर, बाडमेर, जोधपुर, जालौर, झुनझुनू और नागौर जिलों में एक पट्टी के साथ-साथ स्थित है। इस पट्टी में मरुस्थलीकरण के मुख्य कारण बालुई आवरण का फैलाव और वायु-अपरदन द्वारा बालुई टिब्बों का स्थानांतरण है। कुल भारतीय मरुस्थल क्षेत्र का लगभग 76.15 प्रतिशत यह भाग मनुष्य द्वारा कार्यान्वित मरुस्थलीकरण प्रक्रमों का परिणाम है। कुल क्षेत्र का अन्य 19.5 प्रतिशत भाग मध्यम या हल्के मरुस्थलीकरण से प्रभावित हुआ है। इस क्षेत्र का अधिकांश भाग अरावली पर्वत शृंखला के गिरिपाद के समांतर उत्तर-पूर्व से लेकर दक्षिण-पश्चिम में पूर्वी राजस्थान में

केन्द्रित है। इस क्षेत्र में मरुस्थलीकरण के दो प्रमुख कारण हैं--जल अपरदन, और दूसरे शैल परत के उभार (शैल दृष्यांश)--पृष्ठों में उबड़-खाबड़ क्षैतिज रचना का प्रसार, जो मुख्यतः जल अपरदन के परिणाम स्वरूप बनती है।

मरुस्थलीकरण द्वारा हुई क्षतियों को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इस इकाई के भाग 7.4.2 में थार मरुस्थल से संबंधित एक दृष्टांत अध्ययन का वर्णन किया जाएगा।

बोध प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1) एक अनुमान के अनुसार यदि ....., ..., ..., ... जारी रही तो आगामी 50 से 75 वर्षों के बीच शायद विश्व में सभी शीतोष्ण वनों का नामोनिशान मिट जाएगा।
2) राजस्थान की उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम पट्टी में वन उन्मूलन के प्रमुख कारण जल अपरदन और ....., ..., ... है।

7.3.4 वन्य जीवन की हानि की व्यापकता

यह अनुमान है कि पिछले 2,000 वर्षों के दौरान पृथ्वी से जानवरों की 600 जातियाँ या तो विलुप्त हो गई हैं या विलुप्त होने वाली हैं। इसी प्रकार, पौधों की 3000 जातियों को बचाने की आवश्यकता है। वनस्पतिक आवरण के संकुचन से पारितंत्र की स्थायित्वता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। पोचिंग वन्य जीवन की जाति की क्षति का एक कारण है। प्रभावित जातियों की सूची अनन्त है। अफ्रीका में, हाल ही में, 95 प्रतिशत काले गैंडों को उनके सींगों के लोभ में पोचरों द्वारा मार डाला गया। केवल पिछले सात वर्षों के भीतर ही 3000 टन हाथी दाँत के लिए अफ्रीका के एक तिहाई से अधिक हाथियों का सफाया कर दिया गया। सिंदूरी तोता, तोते की एक किस्म है, जो किसी समय पूरे दक्षिण अमेरिका में आम पाई जाती थी, अब वह मध्य अमेरिका के अधिकांश भागों में बिल्कुल समाप्त हो चुकी है। विडाल और जगुआर जैसी चित्तीदार बिल्ली की बहुत सी जातियाँ उनकी फर की माँग के कारण विपत्ति में पड़ गई हैं। 1962 में लगभग 70,000 व्हेलों को काट डाला गया। व्हेल उत्पादों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर पाबंदी लगी है। 'इंटरनेशनल व्हेलिंग कमीशन' द्वारा गठित महासंघ ने व्हेल मछली के शिकार पर 1990 तक पाबंदी लगा रखी थी। केवल जापान, आयरलैंड और नार्वे अनुसंधान के नाम पर व्हेल मछली का शिकार करते हैं। 1988 में 600 से कुछ कम व्हेलों को मारा गया।

7.3.5 भारतवर्ष में वन्य जीवन का विलोपन

भारत में पौधों की लगभग 45,000 जातियाँ और वन्य जानवरों की लगभग 75,000 जातियाँ हैं। पारितंत्र की स्थायित्वता बनाए रखने के लिए जैव विविधता बनाए रखने की आवश्यकता है। किसी भी समय विद्यमान जातियों में विकास को आगे बढ़ाने के लिए नये संयोजन (नई जातियाँ) उत्पन्न करने के लिए समुचित आनुवांशिक सूचनाएँ होती हैं। विकास एकमार्गी प्रक्रम है, जिसमें आनुवांशिक सूचना की क्षति की पूर्ति संभव नहीं है। किसी भी प्रकार इसकी न तो पूर्ति की जा सकती है, और न ही इसका पुनर्गठन किया जा सकता है। दुर्भाग्यवश, वन उन्मूलन और मरुस्थलीकरण, दोनों ने मिलकर पृथ्वी के इस प्राकृतिक खजाने को काफी हद तक नष्ट कर दिया है। पौधों और जानवरों की बहुत सी जातियाँ विलुप्त होने के कगार पर हैं। अनगिनत पक्षियों और अन्य जानवरों के आश्रय-स्थल खतरे में पड़ गये हैं।

वन्य जीवन जो बहुत ही महत्वपूर्ण है, उसे नासमझी से नष्ट कर दिया गया है। देश में हाथी, शेर और बाघ की तेजी से घटती हुई संख्या से यह प्रमाणित होता है। चीता तो पहले ही विलुप्त हो चुका है। हाथी जो पहले पूरे भारत में पाये जाते थे, वे अब केवल आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में ही पाये जाते हैं। एशियाई शेर जो पहले एशिया महाद्वीप में सामान्य तौर पर पाये जाते थे, वे अब भारत में गिर वन के कुछ सौ वर्ग किलोमीटर के इलाके को छोड़कर शेष भाग से समाप्त ही हो गए हैं। बाघ घने जंगल में रहना पसंद करते हैं और शाकाहारी जानवरों को अपना शिकार बनाते हैं। वन संसाधनों के अति उपयोग से इस जानवर को संकुचित प्राकृतिक वास में रहने को मजबूर कर दिया है। मनोविनोद और खाल के व्यापार के लिए बिना सोचे-समझे गोली चलाने तथा अंधाधुंध जीव हत्या के कारण बाघों की संख्या काफी घटती जा रही है।

इकाई 20 में प्रस्तुत एक दृष्टांत अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाएगा कि जैविक संसाधनों के अति उपयोग से किस प्रकार बाघों की संख्या घटने लगी है, जो किसी समय वन क्षेत्रों में काफी अधिक मात्रा में पाये जाते थे। अध्ययन से यह भी पता चलेगा कि भारत सरकार द्वारा चलाए गए कार्यक्रमों ने किस प्रकार इस जाति को बचाने में सहायता की है। भारत सरकार द्वारा किये गये उपायों से 1984 की बाघों की संख्या अब 4,000 से बढ़कर 4,334 हो गई है।

पिछले लगभग 100 वर्षों के भीतर भारतीय महाद्वीप में चार स्तनधारियों की जातियों और तीन पक्षियों की जातियों का सफाया हो गया। यह ज्ञात हुआ है कि मनुष्य द्वारा अति उपयोग, आवास में परिवर्तन और विनाश के कारण स्तनधारियों की अन्य 40 जातियाँ, पक्षियों की बीस जातियाँ और सपर्णशील जन्तुओं की 12 जातियाँ ऐसी जातियाँ हैं जो भयंकर खतरे में पड़ गई हैं।

बोध प्रश्न 4

i) बाघ निम्नलिखित में से किन जानवरों का शिकार करना पसंद करेगा। सही नामों पर (✓) का चिह्न लगाएँ।

जंगली भैंसा, बारहसिंगा, हिरण, जंगली सूअर, लंगूर, वानर, गाय, भैंस,

ii) निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत:

अ) हाथी जो पहले पूरे भारत में पाये जाते थे, वे अब केवल आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र में ही पाये जाते हैं।

ब) भारत सरकार के प्रयासों के फलस्वरूप बाघों की संख्या 1984 में 4,000 से बढ़कर आज 4,334 हो गई है।

स) एशियाई शेर जो बहुतायात में हमारे प्रायद्वीप में पाया जाता था, आज गिर वनों को कुछ सौ वर्ग किलोमीटर को छोड़ कर बाकी स्थानों से लुप्त प्राय हो गया है।

7.4 अति दोहन के दुष्प्रभाव

अति दोहन के कारण और उसका विस्तार जानने के पश्चात् अब आप भौतिक और जैविक पर्यावरण के अत्याधिक उपयोग के प्रभाव जानना चाहेंगे।

7.4.1 भौतिक पर्यावरण

आप पहले पढ़ आए हैं कि सांस के द्वारा ली जाने वाली वायु की ताजगी और उसमें ऑक्सीजन की उपयुक्त मात्रा बनाए रखने में वन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे मृदा कणों को बांधे रखते हैं, भारी वर्षा के बहाव को रोकते हैं और भूमिगत जल की फिर से आपूर्ति करते हैं। वे जलवायु और वायुमंडलीय आर्द्रता को नियमित करके पर्यावरणीय समन्वयकारक के रूप में काम करते हैं। आवाह जल के बहाव और प्रबल हवाओं का वेग कम करके मृदा का अपरदन कम करते हैं। अतः वे भौतिक पर्यावरण के निम्नीकरण को रोकने में सहायता करते हैं। यदि वन काट दिए जाएँ तो भूमि का निम्नीकरण हो जाता है। मृदा का अपरदन होता है और वह पृष्ठीय आवाह के साथ बहकर जल को प्रदूषित करता है। प्राकृतिक वनस्पति के विनाश से ऊपरी मृदा क्षतिग्रस्त हो जाती है। इसको दुबारा जमाना असंभव है क्योंकि प्रकृति एक इंच ऊपरी मृदा बनाने में लगभग 100 वर्ष का समय लेती है। भारी मरुस्थलीकरण के फलस्वरूप अरावली जैसी पहाड़ियाँ अनावृत हो गईं। बड़े-बड़े भू-भाग बेकार होते जा रहे हैं। ऐसे मरुस्थल विकसित हो गए हैं जिन्हें साफ तौर पर देखा जा सकता है और जो राजस्थान से लेकर पश्चिमी मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक तक फैले हैं। अपेक्षाकृत स्थिर जलवायु वाले प्रदेश वन उन्मूलन के कारण अनिश्चित जलवायु वाले प्रदेश बन गए हैं। इसी प्रकार, नदियों का जल-स्तर बहुत चिंताजनक रूप से गिरता जा रहा है। राजस्थान और गुजरात के कुछ भागों में लम्बे समय तक सूखा पड़ना और देश के कुछ अन्य भागों में बाढ़ आना इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

सिमटते हुए वन आवरण और भूमिगत जल के अतिकर्षण, दोनों ने मिलकर निचले हिमालय और अरावली पर्वत श्रृंखलाओं के ढालों पर अपरदन की दर में वृद्धि कर दी है, जिसके कारण उनमें भूसंखलन होने लगा है। इन प्रदेशों में पिछले 23 वर्षों के दौरान वन आवरण लगभग 13 प्रतिशत घट गया है। दूसरा वनों के विनाश का वृष्टिक्रम पर घातक

प्रभाव पड़ा है। आगे आने वाले भागों में आप पढ़ेंगे कि अरावली पर्वत शृंखलाओं में मरुस्थलीकरण के कारण किस प्रकार गंभीर समस्याएँ पैदा हुई हैं। (भाग 7.4.2)। पर्याप्त वन आवरण की कमी के फलस्वरूप भूमि पर से जल आवाह बहकर निकल जाता है और ऊपरी मृदा उसके साथ बह जाती है जो अंत में नदियों की तली में अवसाद के रूप में जमा हो जाती है। गैर सरकारी स्रोतों का दावा है कि हमारे देश में 1970 के दशक के प्रारंभ में केवल जल अपरदन द्वारा 60,000 लाख टन ऊपरी मृदा प्रतिवर्ष विस्थापित होती थी। पिछले 19 वर्षों के भीतर अपरदन की यह मात्रा लगभग दुगुनी हो गई है। 120,000 लाख टन मृदा की अनुमानित लागत लगभग 6,000 करोड़ रुपये है। मृदा अपरदन के फलस्वरूप यदि कृषि पशु और वानिकी उत्पादन के अर्थों में होने वाली हानि की गणना समाकलित की जाए तो कुल मिलाकर वास्तविक हानि कहीं अधिक होगी। अनुमान है कि मृदा अपरदन के कारण देश में लगभग 300-500 लाख टन खाद्यान्न की हानि होती है, जो पूरे विश्व की हानि का 18.5 प्रतिशत है। भारत में भू-क्षेत्र विश्व के कुल क्षेत्र का केवल 2.4 प्रतिशत है। इसलिए यह समस्या बहुत ही गम्भीर है।

जहाँ तक बाढ़ का सम्बन्ध है, नदियों और जलाशयों के जल ग्रहण क्षेत्रों में वन उन्मूलन एक गंभीर समस्या है। वायुमंडल में ऊष्मा का जमाव अर्थात् **ग्रीनहाउस प्रभाव** या पौधघर प्रभाव जो इस शताब्दी की गंभीर समस्या है, भी वन निम्नीकरण का ही परिणाम है। नीचे बताया गया है कि पौधघर प्रभाव द्वारा ऊष्मा उर्वरण से क्या तात्पर्य है। प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया के जरिए वन कार्बन डाइऑक्साइड को आबद्ध कर देते हैं। वनों के विनाश और फॉसिल ईंधन के ज़लने में औद्योगीकरण के मिले-जुले प्रभाव के कारण पृथ्वी के वायुमंडल कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर बढ़ जाता है। इसके फलस्वरूप सूर्यातपन में वृद्धि हो जाती है, जिसका तात्पर्य है कि सूर्य के प्रकाश के रूप में ऊष्मा का वायुमंडल में प्रवेश, कार्बन डाइऑक्साइड के अच्छा ऊष्मा अवशोषक होने के कारण वायुमंडल की बाहरी परतों में वापस निकल भागने की अपेक्षा अधिक होता है। इसके परिणामस्वरूप वायुमंडल में ऊष्मा की मात्रा बढ़ती रहती है और तापमान बढ़ जाता है। इस वजह से ऊष्मा का उर्वरण या **ग्रीनहाउस प्रभाव** या पौध-घर प्रभाव उत्पन्न होता है। पूरे हिमालय का पारितंत्र खतरे में पड़ गया है और वहाँ चिंताजनक असंतुलन पैदा हो गया है क्योंकि हिम रेखा पतली पड़ गइ है और बारहमासी सोते सूख गए हैं। वार्षिक वर्षा में 3 से 4 प्रतिशत तक की कमी आ गई है। तमिलनाडु और हिमाचल प्रदेश जैसे प्रदेशों में भी जहाँ पहले अनावृष्टि (वर्षा का न होना) आम बात नहीं थी, वहाँ लम्बे समय तक वर्षा का न होना प्रारंभ हो गया है।

पहाड़ियों की ढलानों पर खनन की बात लेते हैं। इस गतिविधि ने पर्वतीय ढालों, पठारों और मैदानों के बीच प्राकृतिक भू-आकृतिक सुंदरता को ध्वंस कर दिया है। जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं, कि विवृत खनन में प्रत्येक टन अयस्क निकालने के लिए 2 टन मलबा हटाना और किसी स्थान पर ढेर के रूप में एकत्र करना पड़ता है। यह प्रक्रम ढलानों पर मूल वनस्पति को नष्ट कर देता है और साथ ही इससे प्राकृतिक पुनर्जनन क्षमता मंद पड़ जाती है, जबकि छितरी कृषि वाले भू-भाग या फलों के बाग में फिर से हरियाली नहीं होती। ऐसी परिस्थितियों में दून घाटी जैसे 25 हेक्टेयर के छोटे से क्षेत्र से भी, जहाँ से चूने के पत्थर का खनन किया जाता था, एक वर्ष के भीतर 740 टन पत्थर लुढ़क कर नीचे आते रहे। बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश में कोयले की खुदाई बड़ी मात्रा में की जाती है। भारत में 4052 चालू खानें (478 कोयले की खानों सहित) हैं जिसमें कई खुली (विवृत) किस्म की खानें हैं। दुर्भाग्य यह है कि यह खानें आम तौर पर घने वनों और उपजाऊ कृषि क्षेत्रों के बीच स्थित हैं। इनसे संबंधित भूमि का निम्नीकरण वन उन्मूलन, और मलबे के ढेरों में धंसाव के कारण होता है।

खनन प्राकृतिक जल-भरणापूर्ति प्रक्रमों में बाधा डालता है, प्रवाह रेखाओं और जल भंडारों को छिन्न-भिन्न कर देता है। खनन का सबसे प्रमुख बुरा प्रभाव है—जलाशयों का अपक्षय, जिसके परिणामस्वरूप जलभृत (एक्वीफर) में भूमिगत जल घट जाता है। दून घाटी में चूने के पत्थर के खदान से 18 गाँवों के पेय जल में 50 प्रतिशत की कमी आ गई है। अयस्क के महीन टुकड़े और विषाक्त पदार्थ वर्षा के साथ बहकर प्रवाहित जल में मिल जाते हैं और उसे मानव के उपयोग के अयोग्य बना देते हैं। अन-उपचारित बहिस्रावों एवं व्यर्थ मलबों से बहकर आया गंदा जल सरिताओं और झीलों में छोड़ दिया जाता है, जिनमें साद भर

जाती है और इससे जल दूषित हो जाता है।

राजस्थान मरुस्थल में गहन सिंचाई, शुष्क भूमि पर खेती, सीमांत भूमि पर जुताई, अति खनन और प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन ने भौतिक पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव डाला है जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण का व्यापक निम्नीकरण हुआ है। जिसके कुछ प्रभाव नीचे दिए हैं :

i) मृदा कणों के शिथिल पड़ जाने के कारण धूल और बालू के झंझावातों तथा बालू इकट्ठे होने की घटनाओं में वृद्धि
ii) बालू का संचालन और बालू टिब्बों का बनना
iii) मृदा पपड़ी का बनना और मृदा में कार्बनिक पदार्थों का ह्रास
iv) मृदा में लवण और क्षारों की मात्रा में चिन्ताजनक वृद्धि
v) जल की गहराई और गुणवत्ता का ह्रास
vi) मौसम और जलवायु का रूपान्तरण

इनके विषय में आप पहले पढ़ आये हैं।

7.4.2 जैविक पर्यावरण

अब तक हमने पढ़ा है कि प्रत्येक पारितंत्र अपने जीवों और निर्जीव घटकों के बीच एक चल-साम्यावस्था बनाए रखता है। अन्य जीवीय घटकों की भांति जंगली जानवरों को भी ऐसे पर्यावरण की आवश्यकता होती है जो उन्हें रहने और अपने भोजन की खोज करने के लिए आवश्यक स्थान, वृद्धि के लिए सही किस्म का पोषक भोजन और शत्रुओं से बचकर भागने के अवसर प्रदान करे। प्राकृतिक शत्रुओं के अतिरिक्त मनुष्य के लोभ ने वन्य जीवन को बड़ी हानि पहुंचाई है और ऐसी कुछ जातियों के रहने के स्थानों को समाप्त कर दिया जिनकी पारितंत्र को चलाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। वन्य जन्तु उत्पादों की बढ़ती हुई माँग के फलस्वरूप बहुत-सी जातियों को अंधाधुंध मारा गया। हिमालय पर रहने वाले भालू को उसके पित्ताशय के लिए मारा जाता है, जिसका चूर्ण बनाकर जापान भेजा जाता है जहाँ इसको कामोत्तेजक के रूप में प्रयोग किया जाता है। साँपों, विशेषकर नागराज (किंग कोबरा), अजगर और मूषक सर्प की खाल की बड़े पैमाने पर स्मगलिंग ने साँपों की बहुत-सी जातियों को खतरे में डाल दिया है। जापान ऐसी जातियों का विश्व में सबसे बड़ा व्यापारी है। जापान, और कुछ हद तक फ्रांस, नेपाल के दुर्लभ कस्तूरी हिरण की संख्या अति क्षीण करने के लिए उत्तरदायी हैं। 1987 के पहले नौ महीनों के दौरान जापानी बाजार में 818 कि.ग्रा. कस्तूरी का आयात किया, जिसका प्रयोग कामोत्तेजक पदार्थों को बनाने में किया जाता है। एक किलोग्राम कस्तूरी प्राप्त करने के लिए 80 हिरणों को मारा जाता है। अतः केवल इस अवधि के दौरान लगभग 80,000 हिरणों को मारा गया, जो हिरणों की वर्तमान संख्या का बड़ा भाग है।

थार मरुस्थल द्वारा अपने परिवेश के अति दोहन के प्रभाव का एक जीवंत उदाहरण है। नीचे संक्षेप में बताया गया है कि पर्यावरणीय निम्नीकरण ने इस क्षेत्र की वनस्पति और प्राणियों को किस प्रकार प्रभावित किया :

थार मरुस्थल--एक दृष्टांत अध्ययन

थार मरुस्थल अपने विकास के इतिहास और भौगोलिक स्थिति के कारण अभूतपूर्व जैव विविधता प्रदर्शित करता है। कुछ जीवजातों में सहारा मरुस्थल के गुण थे, अन्य में मलाया के और जबकि कुछ तत्व दक्कन के थे। इसके अतिरिक्त, काफी दीर्घ स्थानिक भौगोलिक वितरण किस्म के थे।

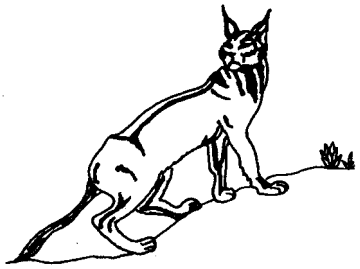

चित्र 7.2 : लक्कड़ बग्गा (फेलिस कार्कल)

i) **जानवर :** थार मरुस्थल में रहने वाले वन्य प्राणियों का पूर्ण इतिहास आश्चर्यजनक है। एशियाई शेर, जो आज गिर वन में अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहा है, अभी पिछले कुछ समय में राजस्थान, पंजाब और सिंध के मैदानों में रहते थे। दस्तावेजों से पता चलता है कि मरुस्थल में रहने वाला अंतिम शेर 1976 में मारा गया। चीता जो अब भारत से विलुप्त हो चुका है, वह एक समय काठियावाड़ क्षेत्र में पाया जाता था। इसी प्रकार, तेंदुआ और लिक्स कार्कल (लक्कड़ बग्गा, देखिए चित्र 7.2), जो भारतीय मरुस्थल में पर्याप्त संख्या में पाये जाते थे, अब अत्यन्त दुर्लभ जानवर हो गए हैं। जंगली शूकर (सूअर), जंगली गधे, एशियाई भेड़िए इत्यादि का भी यही परिणाम हुआ। अन्य स्तनधारी प्राणिजातों में से भारतीय गजेल, नील गाय और काली हिरण (ब्लेक बक) ऐसी सूची में हैं जिनकी जाति खतरे में पड़ी हुई है।

पक्षियों की प्रमुख जातियाँ भी बहुत कम रह गई हैं, विशेषकर पश्चिम राजस्थान के बालुई इलाकों में। पता चला है कि 1938 में इस इलाके में पक्षियों की 300 जातियाँ थीं और इस क्षेत्र में उनकी संख्या में गंभीर कमी आ जाने के कारण उनकी कुछ जातियाँ इस समय खतरे में ग्रस्त समझी जाती हैं। थार मरुस्थल में बृहत भारतीय सारंग (देखिए चित्र 7.3), हॉबरा और लघु फलोरीकन की संख्या अपेक्षाकृत कम होती जा रही है। राष्ट्रीय पक्षी होने के कारण मोर को लोगों द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाती है।

चित्र 7.3 : सारस (बृहद भारतीय सारंग)

सरीसृपों में से घड़ियालों और कछुओं की दो जातियाँ अब अरावली के गिरिपाद पर सिरोही जिले में जवई-बांध तक ही सीमित रह गई हैं। रिकार्डों से यह स्पष्ट है कि इन दो जलीय सरीसृपों की जातियाँ जीव हत्या और आवासस्थल नष्ट होने के कारण लगभग विलुप्त होने वाली हैं। स्थल पर रहने वाला बड़ा सरीसृप शैल अजगर जो अरावली गिरिपाद पर पाया जाता है, वह भी विलुप्त होता जा रहा है।

अतः थार मरुस्थल के पूर्व इतिहास को देखने से पता चलता है कि बड़ी संख्या में जानवर मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन के कारण या तो विलुप्त हो गए हैं या फिर विलुप्त होने वाले हैं।

ii) **पौधे** : पारिस्थितिकी की दृष्टि से, थार मरुस्थल के अधिकांश भाग वनस्पति "कंटक वन किस्म" वर्ग के अन्तर्गत आती है। हालांकि प्राकृतिक वानस्पतिक आवरण दीर्घकालीन और प्रबल मानवीय हस्तक्षेप के कारण तेजी से रूपांतरित होता जा रहा है। अधिकतर क्षेत्र कृषि-चारणिक पद्धति (agro-pastoral system) के अंतर्गत आ गये हैं और जबकि प्राकृतिक हरित आवरण मृदा-जलवायु परिस्थितियों के लिए उपयुक्त से कम है। फिर भी प्राकृतिक वनस्पति खेज़री की भाँति वृक्षों के उत्पादन में पर्याप्त योगदान देती है जिसे बहुत ही महत्त्व दिया जाता है और बड़ी निष्ठा से इनका रख-रखाव किया जाता है। पौधों की 700 तक जातियाँ हैं जिसमें से केवल घासों की ही 107 जातियाँ हैं। पशुओं द्वारा चराई के भारी दबाव के कारण देश के इस भाग से प्राकृतिक वनस्पति बड़े पैमाने पर नष्ट हो गई है जिसके परिणामस्वरूप मरुस्थल में पुनर्जनन प्रक्रम और भी कठिन हो गया है। मरुस्थलीकरण ने वनस्पति को हरित आवरण, भूमि के ऊपर जैव संहति वितरण और मुख्य जातियों की आवृत्ति के अर्थों में प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है, जिसके परिणामस्वरूप पौधों की बहुत-सी जातियाँ विलुप्त हो गई हैं।

बोध प्रश्न 5

सही शब्दों के प्रयोग द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) राजस्थान मरुस्थल में भौतिक पर्यावरण पर गहन सिंचाई, ···, सीमांत भूमि पर कृषि, अत्यधिक ····· और प्राकृतिक संसाधनों के अन्य अति ····· उपयोगों के कारण दुष्प्रभाव पड़ा है।

ख) अन्य जैव घटकों की भाँति जंगली जानवरों को भी एक ऐसे पर्यावरण की आवश्यकता होती है जो उन्हें रहने और ··· के लिए स्थान वृद्धि के लिए सही किस्म का ····· और शत्रुओं से ····· के बेहतर अवसर प्रदान करता है।

ग) थार मरुस्थल में बड़ी संख्या में जानवर या तो ····· हो गए हैं या होने वाले हैं।

7.5 पर्यावरण संरक्षण

संरक्षणविदों और अर्थशास्त्रियों को चाहिए कि वे अब परस्पर पूरक लक्ष्य और महत्वाकांक्षाएँ निर्धारित करें ताकि आज जो भी जैव संसाधन बचे हैं उनकी उचित व्यवस्था हो सके। उदाहरण के लिए, वन भूमि को कम करके कृष्य भूमि को फैलाने की बजाय विकसित वैज्ञानिक विधियों और उचित पर्यावरण नीतियों को अपना कर प्रति इकाई क्षेत्रफल में उत्पादन बढ़ाया जाए। ऐसे चिरस्थाई विकास का प्रयास करना चाहिए जिसमें न तो संसाधनों को बिना सोचे समझे खर्च किया जाए और न ही मानव इसका उपयुक्त उपयोग किए बिना ही रह जाए। अतः भावी सुव्यवस्थित संसाधन अपनी व्यापक जाति विविधता से और, स्थिर पारितंत्र बिना अपना पारिस्थितिकीय संतुलन खोए कुछ स्तर तक दोहन की अनुमति देते हुए मनुष्य के लिए लाभप्रदता से पहचाना जाएगा।

7.5.1 भारत सरकार द्वारा किए गए उपाय

1972 से भारत सरकार ने लगभग एक सौ से भी ऊपर वन्य जीवन जातियों के निर्यात पर पाबन्दी लगा दी है। इसके अंतर्गत अंडमान जंगली शूकर (सूअर) और कस्तूरी हिरण जैसे जानवरों से लेकर छत्रधारी क्रेन (सारस) और निकोबार कबूतर जैसे पक्षी आते हैं। हाथी दाँत और साँपों की खाल जैसे वन्य जीवन उत्पादों के निर्यात पर भी पाबन्दी लगा दी गई है लेकिन तेंदुए के शावक बच्चों की खाल और फंर तथा फैल्कन, तोते और पर्वतीय मैना के पंखों की बड़ी माँग के क़ारण अनाधिकृत शिकार अब भी एक समस्या बनी हुई है।

संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप और खाड़ी के देश गैर-कानूनी निर्यात को बढ़ावा देते हैं। बिचोलिए (दलाल) दुर्लभ जानवरों को पकड़ने के लिए आदिवासी लोगों को थोड़ा सा पैसा दे देते हैं और ये जानवर स्मगलरों के हाथ बेच दिए जाते हैं। भारत सरकार ने गैर-कानूनी व्यापार को रोकने के लिए कई उपाय किये हैं। 1986 में इसने तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक में अनाधिकृत जीव हत्या रोकने के उपायों का समन्वय किया। सरकारी कर्मचारियों को अति आधुनिक हथियारों, द्रुतगामी वाहनों और बेहतर संचार सुविधाओं से लैस किया गया। इन उपायों के फलस्वरूप 1970 वें दशक के अंत में जीव हत्याओं की संख्या 100 से घटकर 1980 वें दशक में केवल 10 रह गई। असम और पश्चिम बंगाल में गैंडों के आश्रय स्थल के बारे में सही नीतियाँ अपनाने से इनकी संख्या 1970 में 900 से बढ़कर 1984 में 1500 हो गई थी।

सभी जीवधारियों के प्रति सम्मान की परंपरा और पारिस्थितिकीय संरक्षण के प्रति लोगों में जागरुकता की वृद्धि के परिणामस्वरूप पूरे देश में 53 राष्ट्रीय उद्यान और 247 वन्य जीवन आश्रय स्थल बनाए जा रहे हैं। सरकार द्वारा इनका सीमांकन किया गया है ताकि जानवरों को रहने के लिए वही परिस्थितियाँ मिल जाएँ जिनमें वे सुरक्षापूर्वक, मनुष्य के लोभ और संवेदनहीनता से परे शांतिपूर्वक रह सकें और भी बहुत कुछ किया जा रहा है, जिसके बारे में आप पर्यावरण प्रबंध पर इकाई 20 में पढ़ेंगे। अगली इकाई में आप प्राकृतिक पर्यावरण पर कृषि और मनुष्य द्वारा बनाए गए रसायनों के प्रयोग के प्रभावों के बारे में पढ़ेंगे।

7.6 सारांश

इस इकाई में हमने जैविक संसाधनों के अति दोहन के विभिन्न कारणों और उनके प्रभावों की समीक्षा करने का प्रयास किया। साथ ही, हमने यह भी अध्ययन किया कि अति उपयोग ने किस हद तक वन्य जीवन को क्षति पहुंचाई है और भौतिक पर्यावरण को प्रभावित किया है। हमने पढ़ा कि :

- किसी प्राकृतिक संसाधन का इसकी पुनः पूर्ति पर विचार किए बिना अत्यधिक उपभोग अति दोहन कहा जाता है।
- हरे-भरे घने जंगल के उजड़ने का निम्न में से कोई भी कारण हो सकता है : स्थानांतरी जुताई/झूम खेती, औद्योगीकरण, ईंधन के लिए छोटी-छोटी लकड़ियाँ इकट्ठी करना, कागज़ और पल्प बनाने तथा वाणिज्यिक कार्यों के लिए लकड़ी की माँग।
- मरुस्थलीकरण एक प्राकृतिक घटना है जो मनुष्य द्वारा भूमि के दुरूपयोग, जल के अतिकर्षण, अत्यधिक सिंचाई और शुष्क क्षेत्रों में खनन के जरिए और भी प्रबल हो जाता है।
- मनोविनोद और खाल के लिए किया गया शिकार पोचिंग कहलाता है। काले बाज़ार में विभिन्न जानवरों की खालों के व्यापार के फलस्वरूप शेर, हाथी और बाघ की संख्या में कमी आ गई है।
- वन उन्मूलन और मरुस्थलीकरण ऐसी समस्याएँ हैं जो आपस में गहरे रूप से जुड़ी हुई हैं और दोनों में से प्रत्येक प्राकृतिक पारितंत्रों में अति दोहन संबंधी मानवीय हस्तक्षेप से पैदा होती हैं।
- उपरोक्त दोनों ही परिघटनाओं के भौतिक प्रभावों के अन्तर्गत आते हैं—ऊपरी मृदा का हटना, जलाशयों में गाद जमना, बाढ़ों का बार-बार आना, अनिश्चित जलवायु, ऊष्मा का उर्वरण अनावृष्टि अथवा सूखा पड़ना, मृदा में लवण की मात्रा का बढ़ना और भूमिगत जल की समाप्ति।

- मनुष्य कभी-कभी पृथ्वी से कुछ जातियों को पूरी तरह नष्ट करके प्राणी जगत को अपूर्णीय क्षति पहुंचाता है। यह अति दोहन का ही परिणाम है।

7.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) मरुस्थल के प्रमुख लक्षण बताइये ?
2) मरुस्थलीकरण किस प्रकार किसी क्षेत्र की जलवायु की स्थिरता को प्रभावित करता है ?
3) राजस्थान में मृदा और जल निकायों पर मरुस्थलीकरण का क्या प्रभाव हुआ है ?
4) राजस्थान के कुछ क्षेत्रों के नाम बताइये जो मरुस्थलीकरण से प्रभावित हुए हैं।
5) निम्नलिखित कथनों का मेल कीजिए :

क) हाथी कभी पूरे भारत में पाये जाते थे	क) सुरक्षापूर्वक और मनुष्य के लोभ और संज्ञाहीनता से दूर शांतिपूर्वक रह सकते हैं
ख) बहुत से हिमालय में रहने वाले भालू	ख) गिर वन में आज अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं।
ग) एशियाई शेर जो हाल ही में कभी राजस्थान, पंजाब और सिंध के मैदानों में पाये जाते थे	ग) नेपाल से कस्तूरी हिरण का नामोनिशान मिटा दिया है।
घ) फ्रांस और जापान की थोड़ी-सी सहायता से	घ) अब आंध्रप्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र से गायब हो गये हैं।
च) भारत में 53 राट्रीय उद्यान और 247 आश्रय-स्थल स्थापित किए गए हैं ताकि जानवरों को उनकी स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुसार स्थान मिल सके और जहाँ वे	च) अपने पित्ताशय की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के के लिए मारे गए हैं, जिसका पाउडर बना कर जापान भेज दिया जाता है।

7.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) हस्तक्षेप
   ii) फिर से उपजाऊ
   iii) हेक्टेयर, वन उन्मूलन
   iv) विकासशील

2) i) च
   ii) जानवरों, शिकार
   iii) स्थिरता
   iv) कालाबाज़ार (तस्करी)

3) i) वन उन्मूलन की वर्तमान दर
   ii) शैल दृश्यांश का फैलाव

4) i) ऊपर बताए गए सभी शाकाहारियों का शिकार बाघ करता है।
   ii) क) सही ख) सही ग) सही

5) क) शुष्क भूमि कृषि, खनन, दोहनात्मक
   ख) चारे की खोज, पोषण, बचाव
   ग) विलुप्त

अंत में कुछ प्रश्न

1) अल्प आर्द्रता, दुर्बल मृदा उर्वरता और विषम तापमान मरुस्थलों के लक्षण हैं। पानी की कमी के कारण पौधे और जानवर अपने को इसके अनुकूल बना लेते हैं।

2) वन किसी क्षेत्र की आर्द्रता बनाए रखते हैं। जब वायु आर्द्र होती है तब न केवल दिन के दौरान कम सूर्य ऊष्मा पृथ्वी तक पहुंच पाती है बल्कि रात्रि के दौरान कम ऊष्मा बाहरी वायुमंडल में निकल पाती है। इससे वन क्षेत्र को मौसमी स्थिरता मिलती है।

3) मरुस्थलीकरण के फलस्वरूप मृदा में लवण और क्षारों की मात्रा बढ़ जाती है, जल की गुणवत्ता में गिरावट आती है, मृदा कण शिथिल पड़ जाते हैं और जलवायु का निम्नीकरण हो जाता है।

4) राजस्थान में मरुस्थलीकरण से विशेषकर प्रभावित जिले हैं : बीकानेर, चुरू, पाली, गंगानगर, जैसलमेर, अजमेर, जोधपुर, जालौर, झुनझुनू, और नागौर।

5)

बाईं ओर	उत्तर
क	घ
ख	च
ग	ख
घ	ग
च	क

इकाई 8 पर्यावरण पर कृषि के प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
8.2 प्रेरित कृषि पारितंत्र का विकास
भूमि उपयोग प्रतिरूपों का इतिहास
कृषि और अधिक चराई से होने वाले परिवर्तन
8.3 परम्परागत कृषि के प्रभाव
वन-उन्मूलन
मृदा-अपरदन
स्थूल पोषकों का अवक्षय
8.4 आधुनिक कृषि के प्रभाव
उर्वरक
वनस्पति रक्षण रसायन
जलाक्रांति
लवण किरण
अधिक पैदावार देने वाली किस्में
8.5 अधिक चराई के प्रभाव
भूमि अवकर्षण
जल स्थलों की हानि
वनस्पति आवरण की हानि
8.6 सारांश
8.7 अंत में कुछ प्रश्न
8.8 उत्तर

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन के बारे में आपने पढ़ा जिसकी वजह से वन-उन्मूलन, मरुस्थलीकरण (अर्थात् रेगिस्तान बनने की क्रिया) और वन्य-जीवन का विलोपन होता है। हमने भौतिक पर्यावरण पर गहन खेती (भाग 7.4.2 के अन्तर्गत) के प्रभाव के बारे में भी चर्चा की है। गहन कृषि के नतीजे अधिक मरुस्थल, भूमि जल-स्तर के बढ़ने और मृदा अपरदन यानी मिट्टी के कटाव जैसी समस्याओं के रूप में व्यक्त होते हैं। (भाग 7.2.2)। इस विषय पर सभी संबंधित परिघटनाओं सहित हम इस इकाई में विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। इस इकाई में अधिक चराई की वजह से मानव पर्यावरण पर पड़ने वाले असर के बारे में भी चर्चा की जाएगी। कीटनाशकों और शाकनाशकों के उपयोग का प्रचलन अपेक्षाकृत नया है। उनके अनुषंगी-प्रभाव भी अपेक्षाकृत हाल ही में सामने आये हैं। आपकी यह जानने में रुचि होगी कि इन रसायनों ने किस प्रकार पर्यावरण में अनुद्धरणीय भूतपूर्व परिवर्तन ला दिए हैं और जिस पर्यावरण में हम रहते हैं उसकी प्राकृतिक अवस्था बदल डाली है।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- आधुनिक कृषि क्रिया और परम्परागत कृषि क्रियाओं में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे,
- मानव इतिहास के मुख्य कृषि समाजों के प्रकारों को गिना सकेंगे और उनकी कृषि क्रियाओं के पर्यावरणीय परिणामों को बता सकेंगे,
- रासायनिक उर्वरकों और वनस्पति रक्षण रसायनों ने किस प्रकार पर्यावरण की गुणवत्ता को प्रभावित किया है, इसकी चर्चा कर सकेंगे,

- उन घटनाओं की शृंखला को पहचान सकेंगे जिससे आधुनिक कृषि क्रियाओं ने मानव स्वास्थ्य को प्रभावित किया है,
- यह स्पष्ट कर सकेंगे कि अधिक चराई के कारण किस प्रकार पर्यावरणी अवकर्ष हुआ है, और
- पर्यावरणीय अवकर्ष से मानव उत्तरजीवितता के खतरे का आपसी संबंध बता सकेंगे।

8.2 प्रेरित कृषिपारितंत्र का विकास

इससे पूर्व कि आप मानव पर्यावरण में कृषि के कारण हुए परिवर्तनों के बारे में पढ़ना शुरू करें, हम यह चाहेंगे कि आप मानव समाज के विकास के विभिन्न कालों के दौरान भूमि उपयोग प्रतिरूपों के इतिहास के बारे में जान लें, ताकि बाद में आप स्वयं विभिन्न प्रकार की कृषि-पद्धतियों द्वारा हुई कई तरह की क्षति के बीच आपसी संबंध दिखा सकें और तुलना कर सकें। मानव समाज विकास के दौरान संसाधन के उपयोग के तरीकों और ऊर्जा प्रवाह के प्रतिरूपों ने कृषि पद्धतियों के विभिन्न कालों में विभिन्न रूप धारण किए परम्परागत खेती बाड़ी से लेकर आधुनिक कृषि तक की यात्रा में हुए रूपान्तरण ने मानव मन में भी कई परिवर्तन पैदा किए हैं। इस यात्रा ने सीमित संसाधनों की वहन क्षमता के प्रति उपेक्षा और वातावरण में सूक्ष्म मगर अनुत्क्रमणीय (जिन्हें उल्टा न जा सके) परिवर्तन लाने की मनोभावना को प्रबल किया है। कृषि इस दौरान कम ऊर्जा गहनता से अधिक ऊर्जा गहनता वाली, कम उत्पादकता से अधिक उत्पादकता वाली किस्म में विकसित हुई। इसके चलते मानव ऐसी अधिक उत्पादन करने वाली फसलों को चुन बैठा जो रोग विज्ञान की दृष्टि से महामारी का शिकार बनाने वाली निकली। उसने कीटनाशकों एवं शाकनाशकों का इस्तेमाल किया मगर इस प्रकार पैदा किया गया अन्न पोषण विज्ञान की दृष्टि से विषाक्त अन्न साबित हुआ। आइये देखें कि मानव किन परिस्थितियों से गुजर कर इस अवस्था तक पहुँचा।

8.2.1 भूमि उपयोग प्रतिरूपों का इतिहास

प्रेरित कृषिपारितंत्र के विकास में जो घटनाक्रम आया, वह चित्र 8.1 में दिखाया गया है। आप देखेंगे कि कृषि क्रियाओं के इन परिवर्तनों से भूमि उपयोग प्रतिरूपों, संसाधनों के स्वास्थ्य, पदार्थ प्रवाह की मात्रा और दिशा, खाद्य अधिशेष तथा आजीविका प्रतिरूपों में महत्त्वपूर्ण बदलाव आया है।

आखेटक एवं खाद्य संग्राहक समूह : आदिमानव अपने अस्तित्व के लिए शिकार करने और खाना इकट्ठा करने पर निर्भर थे। यह एक प्रकार का पशु जीवन था, लेकिन अंतर यह था कि मनुष्य पत्थर और लकड़ियाँ काम में लाता था। आखेटक एवं खाद्य संग्राहक मानव समूहों की खाद्य उत्पादों की सप्लाई सीमित थी। सीमित उत्पादन के कारण शिकार करने और खाना इकट्ठा करने वाले समूह छोटे थे, जो प्रायः एक परिवार के बच्चों और पोते-पोतियों तक सीमित थे। जब खाने की सप्लाई कम हो जाती थी तो लोगों को निकलना पड़ता था। खाद्य अधिशेष न थे। पारितंत्र की पुनर्जनन क्षमता से उत्पादकता संभले रहती थी।

आदिम कृषि समाज : जीवन-यापन के स्थायी स्रोत की मनुष्य की तलाश के कारण लगभग 10,000 साल पूर्व पहले कृषि समाजों का उदय हुआ। मनुष्य में कभी-कभी बसने और आंशिक रूप से स्थायी निवास बनाने की इच्छा हुई। ये आदिम कृषि समाज थे। उर्वरता या उपजाऊपन को बनाए रखने के उन्हें सरल तरीके ही मालूम थे, जैसे खनिज उर्वरण बढ़ाने के लिए लकड़ी के लट्ठों को जलाना और पौधों में पानी बढ़ाने के लिए नकली बाढ़ का सहारा लेना। जब तक जमीन के उस एक टुकड़े को बार-बार काम में लाते रहने की संभावना बनी रहती थी, तब तक वे एक जगह पर स्थायी रूप में टिके रहते थे। आखेटक एवं खाद्य संग्राहक मानव समूहों की तुलना में ये दो से पाँच गुना बड़े होते थे, इनकी आर्थिक जमा-पूँजी थोड़ी-थोड़ी ही होती थी, वे पत्तियों और गारे की झोंपड़ियाँ बनाते थे और भूमि की उर्वरता आदि से संबंधित रीति-रिवाज़ों का पालन करते थे।

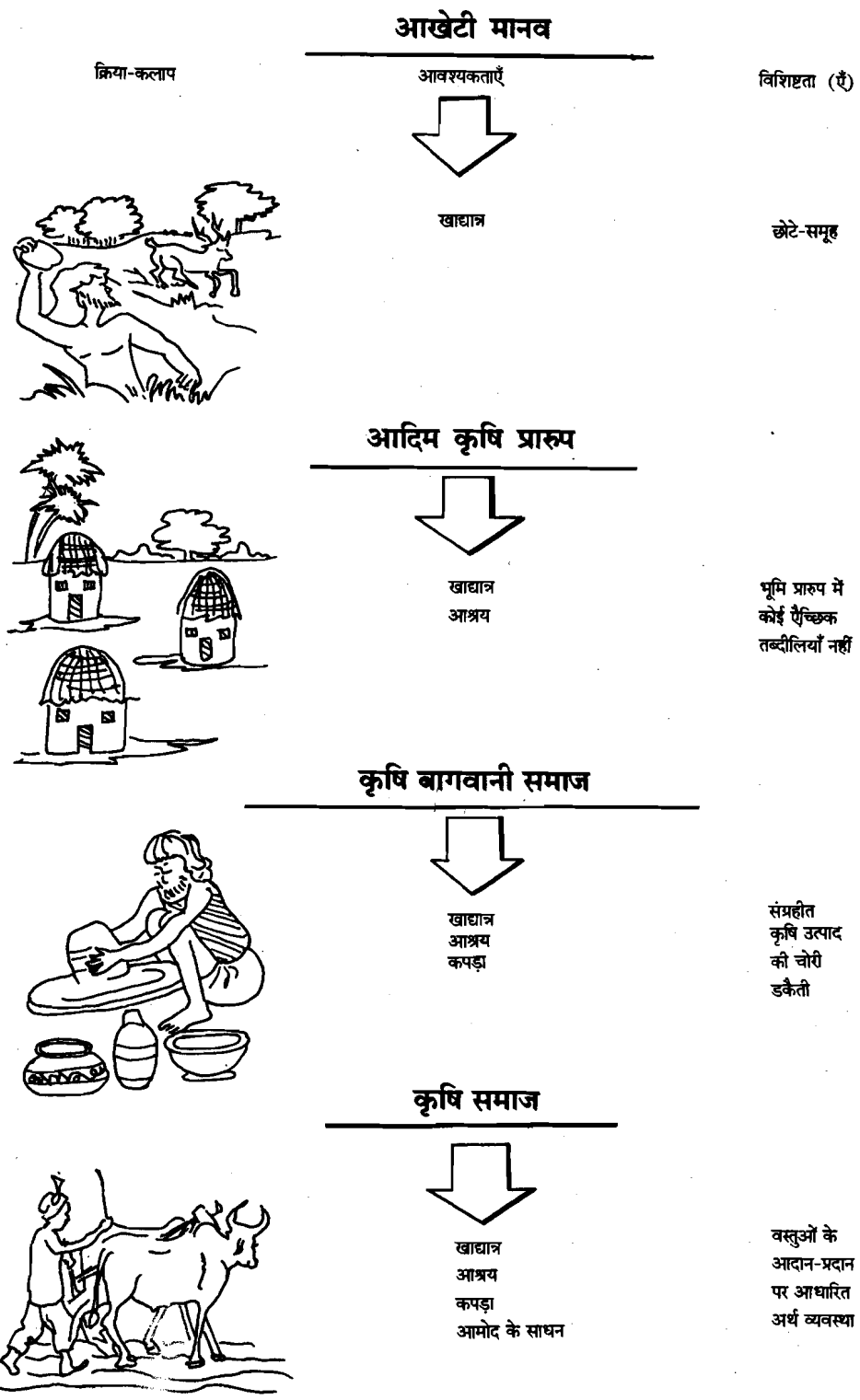

चित्र 8.1 : प्रेरित कृषि पारितंत्रों का विकास क्रम

कृषि बागवानी समाज : इसके बाद कृषि बागवानी समाजों का विकास हुआ, वे धातु के औजार काम में लाते थे, उर्वरता बढ़ाने के लिए पौधों और प्राणियों के अवशिष्टों को काम में लाते थे और सिंचाई के लिए पानी पानी का उपयोग करते थे। उन्होंने दूसरी जगहों से भारी संख्या में पेड़-पौधे लाकर अपनी जगह लगाना और अपने उत्पादन के आधार को व्यापक बनाना सीख लिया। कुछ विशेषज्ञों के अनुसार खेती के जितने पौधों का पता है उनमें से 9/10 भाग अफ्रीका के कृषि बागवान समाज उगाते थे। इस विविधता ने उन्हें पादप (पौधे) उत्पादों को अधिक लम्बे समय (वर्षों) तक काम में लाने में मदद की। कृषि बागवानी समाजों का जनसंख्या-घनत्व आखेटक एवं खाद्य संग्राहक मानव समूहों की तुलना में लगभग 200 गुना था। इस काल में एक समाज द्वारा दूसरे समाज का दमन या उसे अपने अधीन बनाना, अधिक शक्तिशाली समूहों द्वारा हमले और कृषि पैदावार की चोरी तथा इसी प्रकार की उपद्रवी हरकतें बहुत आम बात थी। इससे छोटी-छोटी जागीरों और शहरी तंत्रों की स्थापना हुई।

कृषि समाज : अंत में कृषि समाजों ने कृषि बागवानी समुदायों को पीछे छोड़ दिया। उपजाऊ घाटियों, नदी के किनारों और मैदानों में ये समाज खेतों के आसपास बस गए। इन्होंने ज़मीन को जोता और खेतों के चारों ओर स्थायी बस्तियाँ बनाईं। पहाड़ियाँ, अध-सूखे और सूखे क्षेत्रों तथा दूसरे पारिस्थितिकी रूप से कमज़ोर प्रदेशों में उनकी गतिविधियाँ पशुधन पालन और मछली पालन तथा चारागाहों के प्रबंध के आसपास केन्द्रित रहीं। चारागाह घास की वह जगह हैं जहाँ ढोर चरते हैं। नदी तटों के उपजाऊ मैदानों में आर्थिक वृद्धि की दृष्टि से रोपी फसलें और नकदी फसलें बोई जाने लगीं, जिससे प्राकृतिक संसाधनों का वृहद रूप से ह्रास होने लगा। पहाड़ियों में भी चराई के कारण अत्यधिक विनाश हुआ। दोनों ही मामलों में गैर-ज़रूरी उपभोक्ता आवश्यकताएँ कई गुना बढ़ गई हैं जिनकी पूर्ति दूसरे क्षेत्रों से कच्चे माल के आयात द्वारा ही की जा सकती थी।

अब समाज ने अपने आप को दो भागों में बाँट लिया—कृषि तंत्र या खाद्य उत्पादक क्षेत्र और प्रौद्योगिकीय तंत्र या जिंस उत्पादन करने वाला क्षेत्र। इस मुकाम तक कृषि क्रियाएँ इस प्रकार की थीं कि उनकी माँग कृषि-क्षेत्र के दायरे के भीतर ही पूरी की जा सकती थीं। सुविधा के लिए हम इस तरह की खेती-बाड़ी को **परम्परागत कृषि** कहेंगे। समय बीतने के साथ-साथ, गैर-आवश्यक उपभोक्ता ज़रूरतें जैसे जेवर, कपड़े, कृषि उपकरण और औजार कई गुना बढ़ गए जिनकी पूर्ति कृषि-समाजों के दायरे से परे वाले क्षेत्रों से कच्चे माल के आयात के द्वारा ही की जा सकीं। इसके परिणामस्वरूप जिंस उत्पादन करने वाले क्षेत्रों का दायरा बढ़ गया। कृषि क्षेत्र से बाहर कृषि उत्पाद की माँग बढ़ती गई क्योंकि जिन लोगों का कृषि से सीधा संबंध नहीं था, उनकी संख्या बढ़ती गई और वे खाद्य उत्पादन के लिए कृषि या कृषि पशुचारण तंत्र पर अधिकाधिक निर्भर रहने लगे।

ये कृषि भूमि संबंधी तंत्र अपने निर्वाह के लिए कृषि पर अत्यधिक निर्भर थे। उनके पास अधिशेष फसलें थीं जो व्यापार या वाणिज्य के काम आती थीं। वे ढोर पालते थे और उनके उपभोग के लिए अपने मकानों के पास ही चारागाहों का प्रबंध करते थे। जिस उत्पादन और शासक तंत्र के साथ-साथ छोटी-छोटी जागीरों के बन जाने से कृषि भूमि संबंधी तंत्र भी अपने उत्पादों का आदान प्रदान करना शुरू हो गए। जिस पैदा कर सकने वाले कारीगरों ने शहरी समाजों को कृषि उत्पाद उपलब्ध कराने में एक अहम भूमिका निभाई। इन कृषि पशुचारण समाजों का स्थान **आधुनिक कृषि** ने ले लिया। आधुनिक कृषि तंत्र का लक्ष्य दूरस्थ माँग इंगित समूहों की आवश्यकताओं को पूरा करना है जो उस जगह से काफी दूर स्थित हैं जहाँ कृषि उत्पाद पैदा किए जाते हैं। इस प्रकार मनुष्य ने उच्चतर उत्पादन के कामचलाऊ साधन शुरू किए। उसने जीवाश्म ईंधन और बिजली को काम में लाते हुए अच्छे-अच्छे औजार बनाए। लेकिन, लक्ष्य समूह जल्दी ही कृषिपारितंत्रों (कृषि क्षेत्रों का दूसरा नाम जिसमे पारितंत्र के गुण निहित होते हैं), की उत्पादन क्षमता से कहीं अधिक बढ़ गए (देखिए इकाई 6 में चित्र 6.3)। इस के लिए अधिक जंगलों का सफाया कर दिया गया और सूखी ज़मीनों पर खेती होने लगी तथा घासस्थल के क्षेत्र बढ़ गए। इससे वनों की उर्वरता लुट गई, घासस्थलों पर और अधिक उत्पादन के लिए दबाव पड़ा और इस सबसे प्राकृतिक पारितंत्रों में गंभीर अनुत्क्रमणीय अर्थात् पलटे न जा सकने वाले, परिवर्तन हुए।

आपको याद होगा कि जैसा कि पिछली इकाई के चित्र 6.3 में दिखाया गया है, जनसंख्या ऐसे बढ़ती है जैसे अचानक फव्वारा निकलता हो। जब-जब जनसंख्या चरम सीमा पर पहुँची तब-तब उसमें अचानक गिरावट आई, तो कृषि अपशिष्टों और अपशिष्ट उप-उत्पाद के अनुषंगी प्रभावों (side effects) का सामना करने की क्षमता को अभिनव परिवर्तनों द्वारा बढ़ाया गया इससे उत्पादन क्षमता बढ़ी। मनुष्य ने अपने कृषि पारितंत्रों में कृत्रिम रासायनिक उर्वरक और वनस्पति रक्षण रसायन डालने शुरू किए। इसका एक अर्थ यह भी हुआ, कि सौर ऊर्जा से जितनी ऊर्जा मिल सकती है, उससे कहीं अधिक ऊर्जा कृषि भूमि में लगा दी गई। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि खेती-बाड़ी ऊर्जा-गहन बन गई। किसान ने फौरन मिलने वाले लाभ के चक्कर में दूरगामी हितों की अनदेखी कर दी।

गहन खेती से ऊर्जा प्रवाह और पोषक तत्वों के चक्रण की रफ्तार में तेजी आई तथा मनुष्य के खाद्य अन्न जीवनाशकों से विषाक्त हो गए। मनुष्य अपने उत्पादों की मात्रा के प्रति बहुत सजग था, लेकिन गुणवत्ता के घटते जाने की बात तो दूर रही, उसके खाने में धीरे-धीरे सुवास और सस्वाद में आई कमी के प्रति भी बेखबर बना रहा।

कृषि समाजों द्वारा कृषि-पद्धतियों के तौर तरीकों में इस शताब्दी के मध्य से अनेक परिवर्तन हुए हैं। परम्परागत कृषि में आधुनिक जुगत, बिजली की शक्ति से चलने वाले सिंचाई के उपकरण, जीवाश्म ईंधन पर आधारित कृषि-मशीनरियां, रासायनिक उर्वरक, वनस्पति रक्षण रसायन और अधिक पैदावार वाली किस्मों के आ जुड़ने से यह आधुनिक कृषि पद्धति बन गई। **आधुनिक कृषि** ने एक तरफ तो पैदावार को बहुत ज्यादा बढ़ाया है, लेकिन दूसरी तरफ इसने पारितंत्र के प्राकृतिक संतुलन को भी कम नुकसान नहीं पहुंचाया है। **परम्परागत और आधुनिक कृषि** से मानव पर्यावरण में आए परिवर्तनों के बारे में आप अगले भागों में पढ़ेंगे।

8.2.2 कृषि एवं अधिक चराई से होने वाले परिवर्तन

सरलता की दृष्टि से मनुष्य की कृषि एवं पशुचारणिक गतिविधियों के कारण पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों को दो भागों में बांटा जा सकता है :

क) **परम्परागत कृषि** से होने वाले परिवर्तन। इस तरह की कृषि के विशेष लक्षण अनिवार्य रूप से वैसे ही थे जैसे कि कृषि संबंधी सामाजिक क्रियाओं के थे ..... उदाहरण के लिए ज़मीन के स्वरूप को बिगाड़ना या बदशक्ल बना देना, मृदा संरचना की हानि के साथ वन उन्मूलन, मृदा अपरदन और मृदा के पोषक तत्वों का ह्रास शामिल है। इनमें से कुछ परिवर्तनों का कारण अधिक चराई भी है। वास्तव में पशुधन उत्पादन के लिए भूमि संसाधनों का अति दोहन भी मानव की प्रवृत्तियों में से एक है जो पारितंत्र की वहन क्षमता एवं बाह्य हस्तक्षेप को झेलने की क्षमता को नजरअंदाज करती है। पारितंत्र की विक्षोभ को झेलने की क्षमता को तकनीकी शब्दावली में हम प्रतिस्थितित्व अथवा प्राकृतिक संतुलन कहते हैं।

ख) दूसरी प्रकार के वे परिवर्तन हैं जो **आधुनिक कृषि** की देन हैं। जहाँ आधुनिक खेती-बाड़ी पर्यावरण पर परम्परागत खेती-बाड़ी के विनाशकारी प्रभावों की साझेदार है वहीं यह पर्यावरण में कुछ ऐसे परिवर्तन भी लाती है जो केवल आधुनिक कृषि पद्धतियों के ही विशेष लक्षण हैं। जैसे i) अत्यधिक सिंचाई लवणीकरण (salinisation) और जलाक्रांति जैसे दोहरी समस्याओं को जन्म देती है। जलाक्रांति भूमि-जलसारिणी उठने से होती है। इसके अलावा, अत्यधिक सिचाई से भूमिगत जल संसाधनों का ह्रास भी होता है। ii) इसी प्रकार, रासायनिक उर्वरक डालने से मिट्टी में से सूक्ष्मपोषकों के ह्रास की दर बढ़ जाती है, पानी के भंडारों का अति उर्वरण हो जाता है, जो बच्चों में नाइट्रोसोएमेनिया का कारण बनता है। iii) वनस्पति रक्षण रसायनों का उपयोग खाद्य सामग्री को जहरीला बना देता है, कभी-कभी जिन्हें मारने का लक्ष्य नहीं होता, उन अलक्षित मित्र जीवों को मार डालता है। और जिन्हें मारने का लक्ष्य होता है, उन लक्षित जीवों में प्रतिरक्षा पैदा कर देता है। iv) इसी तरह, अधिक पैदावार देने वाली किस्मों को काम में लाने से कृषि बाजार-उन्मुखी हो जाती है, एकधा कृषि को बढ़ावा मिलता है, जिससे महामारियों का प्रकोप होता है और आनुवंशिक विविधता का ह्रास होता है।

आधुनिक कृषि दीर्घ कालीन अकाल पड़ने, बार-बार बाढ़ आने और भूस्खलन या अवतलन (धंसान) का सीधा कारण भले ही न हो लेकिन मनुष्य की शोषणात्मक आपसी क्रियाएँ तो कारण हैं ही। आधुनिक खेती-बाड़ी के पीछे भी यही वह प्रवृत्ति है जिससे प्राकृतिक संसाधनों का अति-शोषण हो रहा है। इस प्रवृत्ति को तुच्छ समझकर हमें छोड़ देना चाहिए। हम आगे के सत्रों में इसके बारे में पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए शब्दों में से उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) प्रेरित कृषि-पारितंत्र कृषि क्रियाओं में परिवर्तन क्रम की कहानी है। इन परिवर्तनों से ....., संसाधनों के स्वास्थ्य, मृदा के पोषक तत्वों प्रवाह की ..... और दिशा, ... तथा जीविका प्रतिरूपों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं।

ii) आधुनिक कृषि का ध्येय ..... पूरी करना अर्थात् उन लक्ष्य समूहों की ज़रूरतें पूरी करना है जो उस जगह से बहुत दूर स्थित हैं जहाँ कृषि पदार्थ ..... किये जाते हैं।

iii) जनसंख्या फव्वारे की तरह फूटती है। जब कभी भी जनसंख्या में अचानक गिरावट आई, साथ-साथ ..... किए गए, प्रौद्योगिकीय उन्नति हुई और ..... तथा अपशिष्ट उप-उत्पादों के अनुषंगी प्रभावों का सामना करने की क्षमता को और बढ़ाया गया।

iv) आधुनिक कृषि एक ओर तो उत्पादन बहुत ज्यादा ..... है, जबकि दूसरी ओर इसने पारितंत्र के ..... संतुलन को बहुत ज्यादा क्षति पहुंचाई है।
(बढ़ा, प्राकृतिक, कृषि अवशिष्ट, भूमि उपयोग प्रतिरूप, उत्पादन क्षमता, मात्रा, स्थल से दूर वालों की माँग, खाद्य अधिशेष, पैदा, अभिनव परिवर्तन)

8.3 परम्परागत कृषि के प्रभाव

भारतीय उपमहाद्वीप के बड़े-बड़े कृषि भू-भाग जीवाश्म ईंधन, बिजली और सरकारी सहायता से वंचित हैं। उन्हें नैज या निज (intrinsic) संसाधनों, चौपायों की वाहन शक्ति और वर्षा-जल पर निर्भर करना पड़ता है जहाँ किसान खेती के परम्परागत तरीके उपयोग में लाते हैं। परम्परागत कृषि के व्यवसाय न तो ऊर्जा-गहन निवेशों पर और न ही खरीदे जा सकने वाली वस्तुओं पर आधारित हैं। परम्परागत कृषि जो ग्रामीण भारत के अधिकतर भागों में की जाती है निम्न पैदावार, खराब जल-निकास और असंगठित फसल प्रतिरूप का शिकार है। परम्परागत कृषि पेशे के कारण वन-उन्मूलन, मृदा अपरदन और मृदाओं से स्थूल-पोषकों का ह्रास हुआ है। परम्परागत कृषि के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में हम इस सत्र में पढ़ेंगे।

8.3.1 वन-उन्मूलन

भौतिक दृष्टि से वन-उन्मूलन प्रक्रिया में पेड़ों की शाखाओं की कटाई द्वारा ज़मीन की सफाई, पेड़ों को गिराना, पौधों की चराई और नवोद्भिद पेड़ों का कुचला जाना तथा जंगल के कचरे को साफ करना शामिल है। कृषि गतिविधियों के लिए वन आवरण की सफाई वन-उन्मूलन का प्रमुख कारण है। राष्ट्रीय सुदूर संवेदन अभिकरण (National Remote Sensing Agency) द्वारा उपग्रह इमेजरी पर लिए गये आँकड़े बताते हैं कि भारत में 1951-72 के बीच 71.4 प्रतिशत क्षेत्र से वनों का सफाया कृषि गतिविधियों के कारण हुआ (तालिका 8.1)।

तालिका 8.1 : भारत में 1951-72 के बीच विभिन्न गतिविधियों के कारण वन-उन्मूलन का ब्यौरा

गतिविधि	गंवाया गया वन क्षेत्र (हेक्टेयर में)
नदी घाटी परियोजनाएँ	401,000
कृषि गतिविधियाँ	2,433,000
सड़क और संचार	55,000
उद्योगों की स्थापना	125,000
विविध	388,000
कुल	3,402,000

स्रोत : उपग्रह राष्ट्रीय सुदूर संवेदन अभिकरण।

नीचे दिया गया अध्ययन इस बात का उदाहरण है कि गाँव वालों की वनों में जाने पर रोक लगा दी जाए तो संसाधन प्रवाह में यहाँ हम जानेंगे कि किस प्रकार वन-उन्मूलन कृषि क्रियाओं द्वारा उत्प्रेरित होता है। हम अपने विवाद को पारिस्थिति की विज्ञान केन्द्र (Centre for Ecological Studies) बंगलौर द्वारा किए गए इस अध्ययन से वन-उन्मूलन के दिलचस्प अध्ययन पर आधारित करेंगे। नीचे दिया गया अध्ययन इस बात का उदाहरण है कि गाँव वालों की वनों में जाने पर रोक लगा दी जाए तो संसाधन प्रवाह में किस तरह परिवर्तन आ जाते हैं। संसाधन प्रवाह प्रतिरूपों में परिवर्तन सरकार के इस निर्णय के बाद आए कि रक्षित वनों को आरक्षित कोटि के वनों में बदल दिया जाए। इससे गाँव वालों के कई परम्परागत पेशे समाप्त हो गए जैसे टोकरी बनाना और शहद इकट्ठा करना, जो कि शुद्ध रूप से गैर काश्त वाली ज़मीन पर वन-वृक्षों की विभिन्न जातियों को आधार मान कर किए जाते थे। फलस्वरूप अधिकाधिक लोगों ने जंगल में खेती को अपना पेशा बना लिया जिसकी वजह से निजी और सामुदायिक ज़मीनों पर वनस्पति को गंभीर क्षति हुई।

आम तौर पर कृषि क्षेत्रों को फैलाने के लिए किए गए वन-उन्मूलन के बाद और अधिक क्षेत्रों में से वनों की कटाई की ज़रूरत पड़ जाती है। ऐसा यहाँ भी हुआ।

इससे वन जातियों के सुपरिभाषित और बहुमुखी उपयोगों द्वारा गाँव के वृक्ष-क्षेत्रों का वह न्याय संगत उपभोग समाप्त हो गया जो जारी रह सकता था। फलस्वरूप बाँस जो अनेक गाँव वालों की जीविका का साधन था, की जगह टीक, चीड़ और अन्य पेड़ों की जातियों ने ले ली।

पाबंदी लगाकर संसाधन क्षेत्रों को गाँव वालों की पहुंच से बाहर कर देने के बाद वृक्षों की हानि के घटनाक्रम को उजागर करने के लिए कर्नाटक के टुमकुर ज़िले में गाँवों के समूह का उदाहरण विशेष रूप से दिया जा सकता है। प्रारंभिक तंत्र के माध्यम से ग्रामवासियों ने पेड़ों की अच्छी खड़ को परिरक्षित रखा जिसमें 60 प्रतिशत वृक्ष पीपल और पपरी के थे। आजकल हर साल 12 प्रतिशत पेड़ काटे जा रहे हैं। जिसमें 7 प्रतिशत ऊपर बताई गई दो जातियों के हैं। इससे जुड़ा हुआ एक और विडम्बनापूर्ण तथ्य है : 78 प्रतिशत फसल तो बंगलौर शहर चली जाती है और सिर्फ 11 प्रतिशत ही ईंधन के लिए गाँव में रख ली जाती है। इससे जाहिर होता है कि सामुदायिक वनस्पति की हानि गाँव वालों की अत्यधिक माँगों या उनसे इन संसाधनों के कुप्रबंध के कारण नहीं है। वरन् यह मुख्य रूप से वन अधिकारियों द्वारा कुप्रबंध के कारण है जिन्होंने ग्रामीण समुदायों की अपनी आवश्यकताओं के बजाय लक्ष्य समूहों के स्थल से दूर की माँगों को पूरा करने पर ज्यादा जोर दिया। ऐसा भेदभाव तो शायद ब्रिटिश काल में भी नहीं हुआ था।

दो विश्व-युद्धों के दौरान, कुछ जातियों की लकड़ी पेड़ गिराने और उनके स्थान पर दूसरे लगाने की विधि से प्राप्त की जाती थी जो सड़कें बनाने और भारी-भारी रेलवे लाइनें बिछाने के काम आती थी। यह विधि **एकसार पद्धति** कहलाती है। इस योजना में बाँस के पेड़ों को लकड़ी माना जाता था, जबकि ज्यादा बढ़े हुए तटीय वन टीक के लिए खतरा समझे जाते थे। कर्नाटक के याक्कम्बी-सोन्डा क्षेत्र पर किए गए अध्ययन से पता चला कि 12,134 हेक्टेयर उखाड़े गए क्षेत्रफल का कुल 3,293 हेक्टेयर या लगभग 25 प्रतिशत क्षेत्रफल पर ही टीक के पौधे रोपे गए जो न उग सके। दो विश्व-युद्धों के दौरान परिवहन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए तट के साथ-साथ के या उसके पास के पेड़ काटे गए। इस प्रक्रिया में पूर्वी और पश्चिमी तट के बहुत बड़े क्षेत्र में सड़कें बनाने के लिए कीमती गरान वन उजाड़ दिए गए।

8.3.2 मृदा अपरदन

खेती के लिए वन आवरण का सफाया ज़मीन की सतह को अपघर्षी (abrasive) कारकों के लिए खुला छोड़ देता है। ये अपघर्षी कारक हैं वर्षा का वेग, जल प्रवाह, तेज सतही पवनें और स्थायी वायुमंडलीय तापमान। ये कारक भूमि का अपरदन करते हैं। यह अपरदन जुताई की दिशा, भूमि की ढाल के खड़ेपन, काम में लाए जाने वाले यंत्र उपकरण और बोई गई फसल पर निर्भर करता है। इस प्रकार जमीन के टुकड़े के अपरदन की गहनता कृषि क्रियाओं, भूमि उपयोग प्रतिरूपों और मिट्टी की नमी को बनाए रखने का प्रबंध करने के लिए अपनाए गए उपायों पर निर्भर हैं। परम्परागत खेती-बाड़ी में मृदा नमी प्रबंध के लिए कोई उपाय नहीं किया जाता। इस तरह भूमि की भारी क्षति होती है। कृषि भूमि में व्याप्त सबसे खराब अपरदन परत अपरदन है, जिसमें कृषि भूमि की ऊपरी परत पानी में धुल कर बह जाती है। जल अपरदन एक धीमी परिघटना है और आम तौर पर मैदानों में इतनी स्पष्ट नहीं है। फिर भी, जब पानी मैदानों में खड़ी ढलानों पर बहता है तो इससे अवनालिकाएँ (rills) बन जाती हैं। अवनालिकाओं से भारी और बार-बार होने वाले प्रवाह से खड्ड बन जाते हैं। भारत में काश्त ज़मीन का लगभग 9 करोड़ 90 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल जिसमें लगभग 7 करोड़ 50 लाख हेक्टेयर वर्षा-प्रधान क्षेत्रफल शामिल है, मृदा अपरदन से प्रभावित है। अपरदन की दर इस प्रक्रिया में खोई हुई मृदा की मात्रा की दर से जानी जाती है। नीलगिरि की पहाड़ियों में 25 प्रतिशत ढालों पर ढाल के ऊपर आलू की खड़ी खेती से प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष 39.3 टन मिट्टी की हानि रिकार्ड की गई। झूम खेती से भी मृदा हानि बहुत भारी होती है। इससे भारत के उत्तर-पूर्वी पहाड़ी भागों में 40 प्रतिशत ढालों पर प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष 41 टन औसत मृदा हानि हुई। बहुत विषम परिस्थितियों में झूम खेती के फलस्वरूप होने वाली मृदा हानि प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष 201 टन तक हो सकती है। काश्त की गई ज़मीन में मिट्टी के नुकसान से निम्नलिखित परिणाम हो सकते हैं :

- महीन कोटि के कणों की हानि
- मृदा की क्रिस्टल संरचना की क्षति हो जाना
- अकार्बनिक पोषकों और कार्बनिक पदार्थ का अवक्षय
- प्रभावित क्षेत्र का जलीय अवकर्षण।

विभिन्न फसलों से विभिन्न स्तरों की मृदा हानि होती है। देश की कृषि उत्पादन की भावी विकास योजनाओं के लिए मृदा अपरदन सबसे बड़ा खतरा है। एक अध्ययन के अनुसार, अगर अपरदन वर्तमान दर से चलते रहने दिया गया तो भारत सहित 16 दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों मे वर्षा-प्रधान क्षेत्र 2000 ई. तक सिकुड़ कर 38 प्रतिशत रह जाएगा और जमीन की पैदावार 36 प्रतिशत तक घट जाएगी। इसके परिणामस्वरूप अन्य निवेशों, जिसमें सिचाई और उर्वरक शामिल हैं, के बढ़ते हुए उपयोग के बावजूद देश का कुल उत्पादन 12 प्रतिशत तक गिर जाएगा।

8.3.3 स्थूल पोषकों का अवक्षय

पौधे अपनी वृद्धि और परिवर्धन के लिए जिन तत्वों को काम में लाते हैं उन्हें पोषक कहते हैं। इनमें से कुछ पोषक अनिवार्य पोषक हैं। **अनिवार्य पोषक** वह होता है जिसमें निम्नलिखित गुण होते हैं :

- बिना पोषक के पौधा अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर सकता
- किसी अनिवार्य पोषक की कमी से ऐसे लक्षण पैदा हो जाते हैं जिनका किसी दूसरे तत्व से निवारण नहीं हो सकता
- पोषकों की क्रियात्मक-मात्रा में वापसी से पौधे का स्वास्थ्य लौट आना चाहिए। अर्थात् तत्व विशेष की कमी के लक्षण विलुप्त हो जाने चाहिए।

पादप पोषक मृदा कणों में अकार्बनिक लवणों या खनिजों के रूप में होते हैं। अगर मिट्टी अपरदन के लिए खुली रह जाए तो इन खनिजों का निक्षालन (leaching) हो जाता है। परम्परागत खेती वाली ज़मीनें जो बाढ़ों के हमलों के लिए ज्यादा खुली हुई हैं, वे मृदा अपरदन के लिए ज्यादा सुग्राही (susceptible) हैं, N,P,K,C,H,O आदि जैसे अनिवार्य तत्व जिनकी पौधों को संतुलित भारी मात्रा में आवश्यकता होती है, स्थूलपोषक (macronutrients) कहलाते हैं, जबकि कुछ तत्व जैसे कि Zn, Mo, Cu आदि जिनकी आवश्यकता सूक्ष्म मात्रा में होती है, सूक्ष्मपोषक (micronutrients) कहलाते हैं।

भारत में मृदा अपरदन के माध्यम से N (नाइट्रोजन), P (फॉस्फोरस) और K (पौटेशियम) जैसे स्थूल पोषकों की हानि प्रतिवर्ष 53 लाख 70 हजार टन से लेकर 84 लाख टन तक आँकी गई है। लेकिन सफल पद्धति या भूमि उपयोग प्रतिरूपों के प्रबंध द्वारा इस हानि को कम किया जा सकता है। यहाँ पर हम आपको विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के मूलभूत पाठ्यक्रम की 8.4.1 इकाई को पढ़ने की सलाह देंगे यदि आप को पहले से ही याद नहीं हो आया कि किस प्रकार विभिन्न मृदा नमी प्रबंध उपायों के अन्तर्गत पोषक तत्वों की हानि को कम किया जाता है।

आइये, अब हम आपको झूम कृषि के अंतर्गत ज़मीन पर किए गए अध्ययन के परिणामों के बारे में बताएँ। सीढ़ीनुमा (terrace) खेती की तुलना में झूम खेती के अंतर्गत होने वाली हानि बहुत ज्यादा है। इस दिलचस्प अध्ययन के नतीजे तालिका 8.2 में दिखाए गए हैं। इसमें पाँच साल की अवधि तक विभिन्न भूमि उपयोग प्रतिरूपों और मृदा जल संरक्षण उपायों के अंतर्गत प्रति हेक्टेयर ज़मीन से होने वाली पोषक हानि का अध्ययन किया गया। आप देख सकते हैं कि झूम खेती किस प्रकार विनाशकारी है। फिर भी, बेंच सीढ़ी, अर्ध-चन्द्रकार सीढ़ीनुमा और कन्टूर-बंध सीढ़ी शस्यन (cropping) जैसे उपाए अपनाकर पाँच साल की अवधि के अन्दर पोषक हानि को कम किया जा सकता है। आप स्वयं महसूस करेंगे कि झूम खेती एक अलाभप्रद व्यवसाय है क्योंकि जो पुरानी वनस्पति मृदा कणों को आपस में बाँधे थी उस सभी को जलाकर ज़मीन को खेती के लिए तैयार किया जाता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत कार्बनिक पदार्थ नष्ट हो जाता है। जब भूमि को पुनरुत्पादन शक्ति वापस ग्रहण कर सकने के लिए प्रकृति के भरोसे छोड़ दिया जाता है तो उस दौरान मृदा अपरदन और निक्षालन में चले जाने से अकार्बनिक पोषक भी नष्ट हो जाते हैं।

तालिका 8.2 : भारत के उत्तर-पूर्वी पहाड़ी प्रदेश में विभिन्न भूमि उपयोगों और साथ में विभिन्न संरक्षण उपायों के अंतर्गत पोषक हानियाँ

भूमि उपयोग	उगाई गई फसलें	बरता गया मृदा और जल संरक्षण उपाय	औसतन 5 वर्षों में गंवाए गए पोषक तत्व कि.ग्रा./हेक्टे.
1 झूम खेती	धान, मक्का, टैपियोका, कुकरबिट्स (खीरा वर्ग), रतालू (यैम), सब्जियों के बाद 4 साल तक धरती पड़ती रहने दी गई	कोई नहीं	कार्बनिक कार्बन C- 702.9 P_2O_5 - 145.5 K_2O - 7.1
2 निचली ढाल के 1/3 में कृषि ढाल के 2/3 भाग में बागवानी	धान, मक्का और बाद में नींबू अनन्नास और लोबिया (cowpea)	बेंच सीढ़ीनुमा और अर्धचन्द्र सीढ़ीनुमा खेती	कार्बनिक कार्बन C-35.1 P_2O_5 - 11.2 K_2O - 0.5
3 सारे क्षेत्र में कृषि	ऊपरी तल सीढ़ीनुमा खेतों पर मक्का और टैपियोका और उसके बाद रतालू तथा मस्टरोल	ढालों पर कन्टूर बंध सीढ़ियाँ खेती	कार्बनिक कार्बन C - 260.8 P_2O_5 - 95.7 K_2O - 3.6

स्रोत : भारतीय उत्तर-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में झूम खेती। भा.कृ.अ.सं. शोध पत्रिका, उत्तर पूर्व पहाड़ी क्षेत्र, शिलांग 1983।

अभी तक हमने मृदा अपरदन से स्थूल पोषकों की कितनी हानि होती है, इसके बारे में पढ़ा। सत्र 8.4.1 में हम देखेंगे कि खेतों को रासायनिक उर्वरकों द्वारा कृषि क्षेत्रों को अत्याधिक उत्प्रेरित करने से मृदा के सूक्ष्म पोषकों की मात्रा में किस तरह व्यापक कमी आ जाती है।

8.4 आधुनिक कृषि के प्रभाव

पहले और दूसरे विश्वयुद्ध के बाद वाले अन्तराल में कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए मनुष्य को अभिनव प्रौद्योगिकीय साधन उपलब्ध होने लगे जैसे कि रासायनिक उर्वरक, औज़ारों का यंत्रीकरण, अधिक पैदावार वाली किस्में और वनस्पति रक्षण रसायन। इन खरीदे जा सकने वाले निवेशों ने कृषि को पूंजी-गहन और ऊर्जा-गहन तथा बाज़ार-उन्मूखी (oriented) बना दिया। पैदावार बढ़ाने के लिए खेतीबाड़ी में इन निवेशों का अत्याधिक उपयोग हुआ। दो नतीजे हासिल हुए : एक तरफ हालांकि प्रारंभ में पैदावार बढ़ी लेकिन एक अवस्था के बाद उत्पादन घटना शुरू हो गया; उत्पादन और अधिक निवेश के उत्क्रम अनुपात में नहीं बढ़ा। अर्थात् एक स्थिति ऐसी आई, जब इन निवेशों के अधिक मात्रा में डालने के बावजूद, उत्पादन, डाली गई मात्रा के अनुरूप नहीं पनपा (बढ़ा) दूसरी तरफ, इन निवेशों के अत्याधिक उपभोग से बहुगुणित पर्यावरणी समस्याएँ खड़ी हो गईं जैसे कि उर्वरकों जीवनाशकों (biocides) एवं अत्याधिक सिंचाई के प्रतिकूल अनुषंगी प्रभाव, एकलकृषि के कारण रोगों का पनपना और अधिक पैदावार वाली किस्मों को लाने के कारण आनुवंशिक भण्डार का अपक्षय, इत्यादि। इनके बारे में पढ़ने से पहले आइए एक बोध प्रश्न हल करके देखें।

बोध प्रश्न 2

1) उचित शब्द छाँटकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   i) झूम खेती बहुत ही अलाभकारी पेशा है, लेकिन पोषकों की हानि को मृदा और जल ..... उपाय अपनाकर कम किया जा सकता है।

   ii) अनिवार्य तत्व जैसे कि Zn, Mo, Cu आदि जिनकी आवश्यकता केवल .... में होती है, सूक्ष्मपोषक कहलाते हैं।

iii) ..... गतिविधियों के लिए वनस्पति आवरण को हटाना वन-उन्मूलन का प्रमुख कारण है।

iv) भूमि के अपरदन की गहनता कृषि क्रियाओं, ... और ..... प्रबंध के लिए अपनाए गए उपायों पर निर्भर है।

v) आधुनिक कृषि की क्रियाओं के फलस्वरूप एक तरफ तो उत्पादन कम होना प्रारंभ हो गया तथा दूसरी तरफ इससे ..... पर्यावरणी समस्याएँ पैदा हुई।

8.4.1 उर्वरक

हरी खाद डालने का अर्थ है जुताई द्वारा मिट्टी में हरे पौधों के भाग मिलाना ताकि मिट्टी कार्बनिक पदार्थों और नाइट्रोजन से भरी-पूरी हो सके। हरी खाद में फलियों वाली फसलों की खेती शामिल है जैसे कि ढेंचा, खेसरी दाल, चाँदनी, ल्युपिन, सार्डेला, स्वीट क्लोवर, कमल, लेथिरस, क्लोवर, वेच और क्रोटोलेरिया। ये पौधे जिस भूखंड पर उगाए जाते हैं उसी में हल या ट्रैक्टर चला कर इन्हें मिट्टी में मिला दिया जाता है और उर्वरक के रूप में या कम्पोस्ट बनाने के काम में लाए जाते हैं। हरी खाद डालने की क्रिया से मृदा के भौतिक-रासायनिक गुणों में वृद्धि होती है और मृदा की अम्लता कम होती है तथा इसकी बफर क्षमता, अवशोषण और नमी धारण क्षमता बढ़ती है। इससे लाभकारी जीवाणुओं की गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है और मिट्टी की जोती गई परत में, विशेष रूप से कम ह्यूमस वाली बलुई और बलुई-दुमट मृदाओं में, कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है जिससे फसल की पैदावार बढ़ती है।

पौधों की वृद्धि के लिए खनिज एक अनिवार्य कच्चा पदार्थ है। जब खनिज इस रूप में हों कि पौधे उन्हें ग्रहण कर सकें तो वे मृदा पोषक कहलाते हैं। कभी-कभी वे मृदा कणों में कार्बनिक पदार्थ के रूप में होते हैं। कार्बनिक पदार्थ पर सूक्ष्मजीव क्रिया करते हैं और वह अकार्बनिक पदार्थ में बदल जाता है, जो मृदा पोषकों के रूप में कार्य करता है। प्राकृतिक पारितंत्र में एक चक्र है जिसमें पौधे मृदा से पोषक तत्व लेते हैं और जो चारे के रूप में शाकाहारियों में चले जाते हैं। जब मांसाहारी इन शाकाहारी पशुओं को खाते हैं तो पोषक तत्व उनमें चले जाते हैं जो अंत में मल पदार्थ तथा मृत शरीरों द्वारा वापस मिट्टी में चले जाते हैं। कृषि-पारितंत्रों के मामले में ऐसा नहीं होता। पोषक खनिज कृषि उत्पाद के रूप में मनुष्य में चले जाते हैं और शहरी सीवेज में मल के साथ बहा (क्षालित कर) दिए जाते हैं और व्यवहारिक रूप से कृषि भूमियों की पहुंच से परे हो जाते हैं। इस प्रकार, ये खनिज चक्र से बाहर हो जाते हैं।

इस प्रक्रम से पोषक खनिजों के अत्यधिक व्ययन के कारण पोषक अपक्षय हो जाता है। अगर समय-समय पर मृदा में पोषक नहीं बढ़ाए गए तो उन की सप्लाई खत्म हो जाती है। हम देखेंगे कि कृषि भूमियों के अत्यधिक उर्वरण से किस प्रकार मृदा के सूक्ष्म पोषकों की मात्रा में व्यापक असंतुलन, अलवण जल का प्रदूषण और भूमि जल का संदूषण (contamination) हुआ है।

आधुनिक कृषि-पारितंत्र में काम में लाए जाने वाले अधिकतर रासायनिक उर्वरकों में स्थूल पोषक जैसे कि नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाशियम (NPK) तो पाये जाते हैं परन्तु कृषि-पारितंत्र में अत्यधिक नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाशियम डाले जाने के कारण पौधे मिट्टी से अधिक सूक्ष्म पोषक भी खींचना शुरू हो जाते हैं। यहाँ यह उल्लेख करना उचित रहेगा कि इस मामले में प्रायः पौधे की वृद्धि दर मिट्टी की सूक्ष्म पोषकों की सप्लाई की भरपाई कर सकने की प्राकृतिक क्षमता से अधिक होती है। फलस्वरूप मृदा पोषण पर अनुचित दबाव पड़ता है। इस प्रकार कृत्रिम उर्वरकों के अत्यधिक डालने से मिट्टी में सूक्ष्म पोषकों की कमी हो जाती है। उदाहरण के लिए, पंजाब और हरियाणा के अधिक पैदावार वाले क्षेत्रों के बड़े भूभाग में जस्ता (जिंक) की कमी से भूमि की उत्पादकता घट गई है। जिंक की कमी से जिन फसलों पर असर पड़ा है उनमें चावल, ज्वार, मक्का, लोबिया, सूरजमुखी और चना प्रमुख हैं। इसी प्रकार, लोहे की कमी के कारण सोयाबीन की पैदावार में गिरावट आई है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग का दूसरा प्रतिकूल अनुषंगी प्रभाव इस उर्वरक के उस अंश के कारण होता है जिसको फसल काम में नहीं लाती और जो निक्षालित होकर नीचे चला जाता है। कुल डाले गए उर्वरक का लगभग एक-चौथाई भाग निक्षालित हो जाता है। ये रसायन आम तौर पर नाइट्रेट्स होते हैं, जो भूमिगत जल राशियों में पहुंच कर पीने के पानी में नाइट्रेट्स की सांद्रता बढ़ा देते हैं। इससे स्वास्थ्य के लिए एक संकट पैदा हो गया है क्योंकि नाइट्रेट्स की आधिक्य से बोतल से दूध पीने वाले बच्चों में नाइट्रोसोमेनिया हो जाता है। नाइट्रेट के प्रभाव डेनमार्क, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और नीदरलैंड में ज्यादा देखने में आते हैं।

निक्षालन द्वारा नाइट्रोजन उर्वरक की हानि यूरोप में 30-45 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष तक है। इतनी अधिक निक्षालित मात्रा चौंका देने वाली है और कई विकासशील देशों में काम में लाई जाने वाली नाइट्रेड की कुल मात्रा से भी ज्यादा है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कृषि मृदाओं की जैव भौतिक दशा को पुनः उत्पादित करने के लिए और आधुनिक कृषि-पारितंत्र की रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करने के लिए हरी खाद डालने जैसे कम लागत वाले वैकल्पिक तरीके ढूंढे जाएँ। यहाँ यह उल्लेख

करना अच्छा रहेगा कि जैव-उर्वरकों को काम में लाना रसायनिक उर्वरकों का सही विकल्प साबित हो सकता है। एक और प्रक्रिया द्वारा रसायनों के अत्यधिक उपयोग से पर्यावरण का अवकर्षण होता है। प्रायः पौधे उन उर्वरकों का पूरी तरह उपयोग नहीं कर पाते जिनका मूल उद्देश्य कृषि भूमि के पोषक खनिज़ अंश बढ़ाना है। उपयोग में आने से रह गई अतिरिक्त मात्रा वर्षा के पानी से धुलकर ज़मीन में नीचे चली जाती है—यह क्रिया निक्षालन कहलाती है। बारिश का पानी अपने साथ असाधारण रूप से पोषकों की भारी मात्रा जल-राशियों में ले जाता है और इससे जलाशयों का कृत्रिम अतिउर्वरण होता है। उर्वरण अथवा अतिपोषण (Eutrophication) का अर्थ है किसी जलराशि में पोषकों की मात्रा में संवृद्धि। इसके बारे में आप इकाई 11 में पढ़ेंगे।

सारांश में उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से निम्नलिखित परिणाम होते हैं :

- मृदा पोषण दाब बढ़ता है, सूक्ष्म पोषक हानि या अवक्षय होता है जिससे उत्पादन का ह्रास होता है।
- डाले गए उर्वरक से नाइट्रेड आयन की विषैली (toxic) मात्रा के निक्षालन से भूमिगत जल राशियों का प्रदूषण होता है।
- झीलों, नदियों और अन्य अलवणजलराशियों का उर्वरण होता है।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) प्राकृतिक पारितंत्रों में पोषक मिट्टी से लिए गए पोषक तत्व पारितन्त्र को ..... पदार्थ और मृत शरीरों के रूप में वापिस लौटा दिये जाते हैं। लेकिन कृषि-पारितंत्रों के दृष्टांत में ऐसा नहीं होता। मनुष्य कृषि ..... के रूप में जिन खनिजों का उपभोग करता है, वे शहर के सीवेज में बहा दिये जाते हैं और इस प्रकार पोषक तत्व चक्र से ..... हो जाते हैं।

ii) उर्वरकों के अत्यधिक उपभोग से मृदाओं में सूक्ष्म-पोषकों की ..... हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा पोषण दबाव पैदा होता है।

iii) जो उर्वरक डाला जाता है, फसल के पौधे उसका एक-चौथाई भाग भी काम में नहीं लाते और वह ..... होकर नीचे चला जाता है। ये रसायन भूमि जल में चले जाते हैं और पीने के पानी में ..... की सांद्रता बढ़ा देते हैं।

(अवकर्षण, मल, उत्पादों, कमी, नाइट्रेट्स, निक्षालित, बाहर)

8.4.2 वनस्पति रक्षण रसायन

फसलों के पौधों को कीटों, खरपतवारों, कवकों (फंफूदियों) और कृंतकों (चूहे) आदि के हमले से बचाने के लिए आम तौर पर क्रमशः कीटनाशी, शाकनाशी, वकनाशी, कृंतकनाशी जैसे विषैले रसायनों को काम में लाकर इन्हें मार दिया जाता है। ये रसायन सामूहिक रूप से जीवनाशी कहलाते हैं और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के बाद भी अर्थात् पीड़कों (pests), खरपतवारों, कवकों या कृंतकों को नष्ट करने के बाद भी काफी समय तक सक्रिय बने रहते हैं। उनका यही गुण उन्हें पर्यावरण के लिए खतरनाक बना देता है। आजकल विभिन्न प्रकार के विषैले कृषि रसायन भारी मात्रा में काम में लाए जा रहे हैं। ऐसे रसायनों का कुल वार्षिक भूमंडलीय उत्पादन 1945 में 6 लाख 70 हज़ार टन से बढ़कर 1985 में एक करोड़ 2 लाख टन हो गया, जो कि 15 गुना वृद्धि है। उनकी किस्मों में बढ़ोत्तरी हुई है। इस समय दुनिया भर में करीब 70,000 जीवनाशी काम में लाए जा रहे हैं। सिर्फ भारत में ही 1985 में लगभग 80,000 टन प्रतिवर्ष पीड़कनाशियों को काम में लाया गया, जबकि 1950 के दशक के मध्य में कुल 2,000 टन ही काम में लाया गया था। फिर भी, जापान की तुलना में भारत में पीड़क-नाशकों का प्रति इकाई क्षेत्रफल अनुप्रयोग बहुत कम है। जापान में 14,010 ग्रा/हेक्टे. की तुलना में भारत में 457 ग्रा/हेक्टे. हैं।

इन कृषि-रसायनों के लगातार अनुप्रयोग से खाद्य पदार्थ का संदूषण होता है और पारितंत्र का प्राकृतिक संतुलन गड़बड़ा जाता है। संतुलन बिगड़ जाने का कारण है पीड़कनाशकों से उन जीवों का मर जाना जिन्हें मारने का लक्ष्य नहीं होता है और जिन जीवों को मारने का

लक्ष्य होता है, उनमें धीरे-धीरे प्रतिरक्षा बढ़ जाती है। इसके अलावा, इन रसायनों में से अधिकांश ऐसे हैं जो जीव-अपघटनीय (bio-degradable) नहीं हैं इसलिए एक बार वे खाद्य शृंखला में घुस जाएँ तो वे पौधों में अथवा प्राणी शरीर में बने रहते हैं। जैसे-जैसे वे खाद्य शृंखला में ऊपर होते जाते हैं जीवन में उनकी सांद्रता कई गुना हो जाती है। जीव नाशकों के अनुप्रयोग के दुष्प्रभावों के बारे में आप इन भागों में पढ़ेंगे।

अलक्षित जीवधारियों की मृत्यु : वनस्पति रक्षण रसायनों का लक्ष्य क्रमशः उन जीवों को मारने का है जिनके लिए वे काम में लाए जाते हैं लेकिन कभी-कभी ये कीटों की उपयोगी जातियों को भी मार डालते हैं। ये जातियाँ न केवल पक्षियों के लिए विकल्पी भोजन बनती है, बल्कि जंगली पौधों और वन वृक्षों के परागण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कवक के हमले से फसल के पौधों को बचाने के लिए काम में लाए जाने वाले कवकनाशी कवक के उन उपयोगी समूहों को भी मिटा डालते हैं जो एक महत्त्वपूर्ण पादप-पोषक फॉस्फेट के विलेयीकरण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसी प्रकार शाकनाशकों के रूप में काम में लाए जाने वाले पदार्थों से न केवल अनचाही खरपतवार समाप्त हो जाती है बल्कि फसल को दूसरे रोगों से बचाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली सुग्राही और उपयोगी अनुषंगी फसलें भी मर जाती हैं।

पीड़कों के प्राकृतिक शत्रुओं का विनाश भी उतना ही गंभीर मामला है। कई बार जीव नाशकों के अत्याधिक इस्तेमाल से कीट परभक्षियों (predators) और कीट पीड़कों के परजीवी (parasites) मर जाते हैं, जब ऐसा होता है तब फसल-पीड़कों की अनेक नई जातियाँ प्रकट हो सकती हैं जो पहले कोई महत्त्वपूर्ण नुकसान नहीं पहुंचाती थीं। मलेशिया में 1960 और 1961 में कोका बागान में पीड़कनाशियों के छिड़काव के बाद पीड़कों के इतने नए प्रकार प्रकट हो गए कि पीड़कनाशकों का उपयोग बंद कर देना पड़ा। इसी तरह निकारागुआ में लगभग 15 सालों से कपास की फसलों पर भारी मात्रा में पीड़कनाशियों का इस्तेमाल किया गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि पीड़कों के सभी प्राकृतिक शत्रु मर गए। फलस्वरूप पीड़कों की संख्या बढ़ गई और कपास की खेती का क्षेत्रफल 30 प्रतिशत घट गया। एक अन्य घटना में कैलिफोर्निया में 1967 में मधुमक्खियों की जो कालोनियाँ फलोद्यानों (orchards) और फसलों को परागित करती थीं वे इतनी कम और कमज़ोर हो गईं कि प्रभावशाली परागणकारी (pollinators) ही नहीं रहीं। पीड़कों पर विजय पाने का अधिक बुद्धिमानी वाला तरीका जीवीय नियंत्रण विधि अपनाना है। जीवीय नियंत्रण के बारे में आप इकाई 21 में पढ़ेंगे।

लक्ष्य इंगित जीवों में प्रतिरक्षा का उद्भव : वनस्पति रक्षण रसायनों के अत्यधिक उपयोग से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि लक्ष्य जीव (पीड़क, खरपतवार, कृंतक या कवक) पीड़कनाशी-प्रतिरोधी विभेद (pesticide-resistant strain) विकसित करके इन रसायनों के प्रति धीरे-धीरे प्रतिरक्षा अर्जित कर रहे हैं। कुछ पीड़कों ने ऐसी युक्तियाँ विकसित कर ली हैं कि जो रसायन उन्हें मारने के लिए बनाए गए हैं उन्हें विटाक्सीकृत कर देते हैं अर्थात् विष-हीन बना देते हैं। 1984 तक लगभग 447 जातियों जिनमें प्रमुख कीट, माइट और दूसरे पीड़क शामिल हैं, ने प्रतिरक्षा प्राप्त कर ली और उनके विरुद्ध काम में लाए जाने वाले रसायनों के प्रतिरोधी हो गए। इसी प्रकार, खरपतवार की 48 जातियाँ शाकनाशियों के प्रति प्रतिरोधी बन गईं। अर्थात् लक्ष्य इंगित जीव इन विषों को सह जाते हैं। जीवनाशक रसायन अब उतने प्रभावशाली नहीं रहे। फलस्वरूप कृषि भूमि का बड़ा क्षेत्र खेती करने लायक ही नहीं रहा। यहाँ तक कि जीवनाशकों द्वारा कृषि को जो प्रारंभिक लाभ मिले थे वे कई मामलों में व्यर्थ हो गए। उदाहरण के लिए, कीटनाशकों की प्रतिरक्षी प्रजातियों ने मूल समुदायों की जगह ले ली है, जिससे किसानों में यह लालच बढ़ा कि अधिक तेज जीवनाशक बार-बार काम में लाए जाएँ। नीचे दिए गए उदाहरण लक्ष्य जीवों द्वारा प्रतिरक्षा विकसित कर लेने को दर्शाते हैं:

- उत्तर-पूर्वी मेक्सिको में तम्बाकू की फसलों को तम्बाकू कलिका-कृमि (bud-worm) से रक्षित करने के लिए कीटनाशकों के लगातार उपयोग से ये कृमि और भी प्रतिरोधी बन गए।
- ब्रिटेन में सैफॉल्क काउन्टी के साथ-साथ, जहाँ आलू उगाया जाता है, कोलोरैडो-आलू भृंग (beetle) ने उत्परिवर्ती विभेद (mutant strain) विकसित कर लिए हैं जो अपने खिलाफ काम में लाए जाने वाले पीड़कनाशियों के प्रति प्रतिरोधी हैं।

खाद्य पदार्थों का दूषण : आइए अब हम यह देखते हैं कि वनस्पति रक्षण रसायन किस

तरह खाने की चीजों को संदूषित करते हैं। खाद्यान्नों, फलों, सब्जियों और तिलहनों को लम्बे समय तक भंडारण परिस्थितियों के अंतर्गत रक्षित रखने के लिए इन पर जीवनाशक छिड़के जाते हैं। जीव-अवकर्षी नहीं होने के कारण ये रसायन खाद्य शृंखला में घुस जाने के बाद, वहाँ लम्बे समय तक उनमें बने रहते हैं। इन विषाक्त कृषि उत्पादों का मनुष्य या तो प्रत्यक्ष रूप से उपभोग कर लेता है या फिर ये दूध, मांस, अंडे, मछली उत्पादनों अथवा सादा पीने वाले पानी के द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुंच जाते हैं (देखिए चित्र 11.3)।

गायें, बकरियाँ और भेड़ें संदूषित चारा खाती हैं, मुर्गे-मुर्गियाँ संदूषित कृषि कचरा खाती हैं और संभव है मछलियाँ उन प्लवकों को खाती हों जो संदूषित तालाब में रहते हैं हो सकता है कभी-कभी आदमी संदूषित तालाब के पानी का सीधे ही उपभोग करे। तालाब जो कि कृषि खेतों के नज़दीक स्थित हो जहाँ ये जीवनाशक निक्षालित होकर जलराशि में नीचे मिल जाते हैं। इस सबसे जीवों के शरीर में गैर-जीव अवकर्षी (non-biodegradable) रसायन की मात्रा बढ़ जाती है। उच्च पोषी स्तर (trophic level) पर स्थित मनुष्य इन सब विविध आहारों से जहर जमा करता रहा है। यह परिघटना इन रसायनों का **जैव आवर्धन** (biological magnification) कहलाती है। इस परिघटना के बारे में आप इकाई 11 में पढ़ेंगे।

हैदराबाद में सब्ज़ियों के 1284 नमूनों में से 60 प्रतिशत घातक कीटनाशकों से संदूषित पाए गए। दिल्ली, हरियाणा, पंजाब और बम्बई से लिए गए गेहूंओं के नमूनों में टॉक्सीय (विषैले) जीवनाशकों का बहुत ऊंचा स्तर पाया गया—डी.डी.टी. 10 से लेकर 175 भाग प्रति दस लाख (ppm) और बी.एच.सी. का 7-87 भाग ppm पंजाब के बिनौलों में डी.डी.टी. का स्तर 0.85 और 1.28 ppm के बीच तथा बी.एच.सी. का 0.56 और 0.87 ppm के बीच था। यह चिंता का विषय है क्योंकि खाद्य तेलों के मूल संघटकों में बिनौले का तेल एक मुख्य संघटक है और वसा घुलनशील होने के कारण डी.डी.टी. दूध पिलाने वाली माताओं में पहुँच जाती है। नवजात शिशुओं को स्तनपान के दौरान डी.डी.टी. की सांद्रित मात्रा मिल सकती है।

इन घातक रसायनों के इस्तेमाल से मनुष्यों में जैसी गंभीर बीमारियाँ हो सकती हैं, अपच (indigestion) और तंत्रिका-विकार (nervous disorder) से लेकर कैंसर तक और कई दृष्टांतों में तुरंत मौत भी हो सकती है। इन रसायनों के कारण विश्वभर में प्रति वर्ष 40,000 से 20 लाख लोग काल के मुंह में चले जाते हैं। भारत में जीवनाशक विषाक्तता के मामले 1953 में देखने में आए जब 102 व्यक्ति ऐथिल पैराथिऑन (ethyl parathion) से मर गए। यह जीवनाशक सबसे पहले 1953 में ही हमारे देश में काम में लाया गया था। इन्दौर में 1967-68 में पाँच व्यक्ति मैलाथियॉन विषाक्तता से मरे। संदूषित गेहूं खाने से उत्तर प्रदेश में 1977 में मनुष्यों और पशुओं में बड़े पैमाने पर विषाक्तता की रिपोर्ट मिलीं।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि वनस्पति रक्षण रसायनों के अत्यधिक उपयोग से निम्नलिखित बातें हो सकती हैं :

- पीड़कों, खरपतवारों, कवकों जैसे लक्ष्य जीवों में प्रतिरक्षा कई गुना हो जाती है।
- अलक्षित जीवों की मृत्यु जो पारितंत्र के प्रकार्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अलक्षित जीवों से मतलब उन जीवो से है जिन्हें मारने का लक्ष्य नहीं था।
- जल एवं खाद्य पदार्थों का संदूषण जिससे मनुष्य एवं ढोरों की मृत्यु हो सकती है।

8.4.3 जलाक्रांति

अपने खेतों को ज्यादा पानी देने के उत्साह में मनुष्य ने न केवल नहर से सिंचाई करने के साधन को काम में लिया बल्कि पृथ्वी की गहरी गर्भ तक से पानी निकालने के लिए ट्यूबवैल भी लगाए। जल-निकास की अनुपस्थिति में अत्यधिक सिंचाई से मृदा-तरल-वायु अनुपात बदल जाता है और भूमि जल सारिणी ऊँची हो जाती है। इसके फलस्वरूप मृदा पानी से तर-बतर हो जाती है। यह जलाक्रांति कहलाती है। जलाक्रांत मिट्टियाँ पौधों की वृद्धि में अच्छी सहायक नहीं हैं क्योंकि उनमें वायु की कमी होती है और मिट्टी में वायु जड़ों के श्वसन के लिए बहुत ही आवश्यक है। जलाक्रांत मिट्टियों में यांत्रिक शक्ति भी कम हो जाती है और ये पौधों के भार को भौतिक रूप से सहारा नहीं दे सकतीं। इसकी वजह से पौधे पानी कीचड़ में निमग्न या जलमग्न रहते हैं। फलस्वरूप पैदावार कम हो जाती है।

कुछ खरीफ फसलें (ग्रीष्म फसलें) जैसे कि मक्का, बाजरा और कपास, जलाक्रांति को सहन नहीं कर सकतीं। जलाक्रांति चना और जौ जैसी रबी फसलों (सर्दियों की फसल) को भी नुकसान पहुंचाती है। विश्व में भारत के पास ही सबसे बड़ा सिंचित क्षेत्रफल है, जो 5 करोड़ 60 लाख हेक्टेयर है। इसके बाद चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ आते हैं जिनका सिंचित क्षेत्रफल क्रमशः 4 करोड़ 70 लाख, 2 करोड़ 27 लाख और 2 करोड़ 10 लाख है। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की समीक्षा से पता चलता है कि भारत में 17 राज्यों में फैला हुआ कुल जलाक्रांत क्षेत्रफल 85 लाख हेक्टेयर है। तुंगभद्रा, पोचम्पद और नागार्जुन सागर की तीन नहर सिंचाई परियोजनाओं में हाल के कुछ सालों में प्रति वर्ष 4,800 टन चावलों की हानि हुई। इसका अर्थ हुआ कुल पैदावार में लगभग 30 प्रतिशत की कमी। 30 वर्षों की नहर सिंचाई से प्रति वर्ष 6,000 हेक्टेयर की दर से 33,000 हेक्टेयर क्षेत्र जलाक्रांत हुआ।

8.4.4 लवणीकरण

ऊँचे तापमान वाले क्षेत्रों में अत्यधिक सिंचाई के कारण मृदाओं में लवण की अधिक मात्रा पृष्ठ पर जमा हो जाती है। इसे मृदा का लवणीकरण कहते हैं। होता यह है कि अत्यधिक सिंचित मृदाओं से पानी बहुत तेजी से वाष्पित होकर उड़ता है और अपने पीछे मिट्टी पर नमक के अंश छोड़ जाता है। जैसे-जैसे सिंचाई के अधिकाधिक चक्र दोहराए जाते हैं, शेष बचे रहने वाला नमक जमा होता चला जाता है और सतह पर धूसर या सफेद फनिलता (effervescence) की एक मोटी परत बन जाती है। कभी-कभी सतह से कुछ मीटर नीचे लवणों की अपेक्षाकृत कम घुलनशील कैल्शियम कार्बोनेट की अप्रवेश्य अथवा अपारगम्य (impervious) पपड़ी बन जाती है। इसके फलस्वरूप ऊपरी परतों में लवणों की सामान्य सांद्रता बढ़ जाती है। लवण-प्रभावित मृदाएं क्षारीय (alkaline) अथवा लवणीय (saline) हो सकतीं हैं। क्षारीय मृदाओं में सोडियम कार्बोनेट और सोडियम बाइकार्बोनेट अधिक होता है। ये मृदाएं घनी और संहत होती हैं जिनमें सतह के नीचे कैल्शियम कार्बोनेट की सख्त परत होती है। जड़ें कार्बोनेट अस्तर की पपड़ी में घुस नहीं सकतीं। लवणीय मृदाओं में घलनशील सोडियम लवण होते हैं, जैसे कि सोडियम क्लोराइट और सोडियम सल्फेट।

जब मिट्टी में नमक का अंश 2000-3000 भाग प्रति दस लाख (ppm) से ज्यादा हो जाता है, तब मृदा का जलीय घोल अधिकांश पौधों के लिए टॉक्सीय (विषाक्त) हो जाता है। लवण-प्रभावित मृदाओं में पौधे पोषक तत्वों को अवशोषित नहीं कर पाते और उन्हें भरपूर मृदा नमी के बीच भी पानी की नकली तंगी का सामना करना पड़ता है। क्षारीय मृदाओं की अपेक्षा लवण मृदाओं का उद्धार आसानी से किया जा सकता है यानी उन्हें खेती लायक बनाया जा सकता है, क्योंकि लवण मृदाओं में से लवणों को निक्षालित करके उन्हें फिर उपजाऊ बनाया जा सकता है, जबकि क्षारीय मृदाओं में से सोडियम के कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट हटाने तथा अपारगम्य कैल्शियम कार्बोनेट पपड़ी को तोड़ने के लिए उपचारों की लंबी श्रृंखलाओं की आवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी क्षारता के साथ-साथ मृदाओं का बलुईपना समस्या को और जटिल बना देता है। इसी तरह, जलाक्रांति के साथ कभी-कभी क्षारता आ जुड़ती है और इस मामले में मृदा की उर्वरता फिर से कायम करना मुश्किल हो जाता है।

भारत में क्षारीय मृदाओं का कुल 35 लाख 80 हज़ार हेक्टेयर थार रेगिस्तान की सूखी ज़मीन में लवण मिट्टी का 10 लाख हेक्टेयर, कपास की काली मिट्टी वाले प्रदेशों में लवण मृदाओं का 14 लाख हेक्टेयर और तटीय लवण मृदाओं का 31 लाख हेक्टेयर है। इससे भारत में लवण प्रभावित मृदाओं का कुल क्षेत्रफल 90 लाख 80 हज़ार हेक्टेयर बैठता है। इसमें से कम से कम आधा अर्थात् 40 लाख 50 हजार कृषि भूमि है लेकिन यह अनुत्पादी यानी बिना उत्पादन के पड़ी हुई है। 1.6 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष की राष्ट्रीय औसत उत्पादनकता के हिसाब से अत्यधिक सिचाई के फलस्वरूप लवण कृत्रिमता के कारण देश को प्रति वर्ष लगभग 65 लाख टन कृषि उपज से हाथ धोना पड़ता है। आप इकाई 7 में पढ़ चुके हैं कि अत्यधिक सिचाई से वह क्षेत्र भूमि जल संसाधनों से वंचित हो जाता है और मरुस्थलीकरण को बढ़ावा मिलता है, जैसा कि राजस्थान के सूखे प्रदेशों में देखा गया है।

8.4.5 अधिक पैदावार देने वाली किस्में

अधिक पैदावार वाली किस्में कृषि पौधों, चारा पौधों, वन वृक्षों, पशुधन और मछलियों की

मानव-निर्मित किस्में हैं जो अधिक उत्पादन की दृष्टि से प्रजनन तकनीकों को काम में लाकर तैयार की गई हैं। अधिक पैदावार वाली किस्मों के आने का यह नतीजा हुआ कि किसान अधिक उपज ले सके, पैदावार बढ़ा सके और खेती से ज्यादा से ज्यादा पैसा कमा सके। आधुनिक कृषि नई किस्में विकसित करने के लिए अनुसंधान और विकसित किस्मों के रख-रखाव पर बहुत ज्यादा निर्भर हो गई है। लेकिन ये किस्में जीवित बने रहने के लिए मनुष्य पर आश्रित हैं क्योंकि मानव रक्षण के बिना ये स्वयं अपनी जंगली संबंधियों से टक्कर ले सकने लायक नहीं हैं। इन किस्मों के इस्तेमाल ने उर्वरक, कीटनाशक, आदि क्रयमय निवेशों (purchasable-items) की खरीद को जरूरी बना दिया। बढ़ी हुई कृषि उपज (अधिशेष) को बाज़ार में तो बेचना ही होता है, जिससे कृषि का वाणिज्यीकरण हुआ। यह एक निम्न कोटि की प्रवृत्ति है, क्योंकि इससे किसान और ज्यादा पैदा करने की सोचता है ताकि वह बाज़ार की चढ़ती मात्रात्मक-माँग को पूरा कर सके। अतः उत्पादन की घटती गुणवत्ता को वह बिल्कुल भुला रहा है।

अधिक पैदावार वाली किस्में एकधाकृषि (menoculture) को बढ़ावा देती हैं। एकधाकृषि का अर्थ है मीलों तक फैली जमीन पर एक ही जीनप्ररूप (genotype) बोया जाता है। इस पद्धति का एक प्रतिकूल पहलू यह है कि अगर कोई विशेष रोगाणु (pathogen) इस फसल को ग्रस्त करने में सफल हो जाता है तो रोग को रोकने का कोई उपाय नहीं रह जाता है। संपूर्ण बोए हुए भूक्षेत्र की फसल इस रोग का शिकार बन जाएगी जिससे महामारी फैल जाएगी क्योंकि वही जीनप्ररूप सभी दूसरी जगहों पर उगाया जाता है। दूसरी ओर, अगर किसान अधिक किस्मों पर निर्भर रहा होता तो उसे महामारी के प्रस्फोट से बचने का निश्चित रूप से अवसर मिलता क्योंकि मिश्रित फसलों में न्यूनाधिक मात्रा में सदा ही विभिन्न जीनप्ररूपों के ऐसे नाना संयोजन होते हैं जो किसी विशेष रोगाणु के हमले से प्रतिरोध कर सकते हैं। इस प्रकार, किसी महामारी के फट पड़ने पर किसान अगर एकधाकृषि अपनाता है तो उसके पास सहारे के लिए कुछ बचता ही नहीं।

अधिक पैदावार वाली किस्मों को काम में लाना दूसरे पहलू से भी नुकसानदेह है। अधिक पैदावार वाली किस्मों की खेती आदमी से ज्यादा से ज्यादा देख-भाल माँगती है और व्यक्ति अनजाने में ही जंगली संबंधियों को पनपने से रोकता है और उन्हें खरपतवार वर्ग में रख देता है। इसके परिणामस्वरूप पर-परागण (cross-pollination) द्वारा जीनप्ररूपों के नए संयोजनों के बनने में रुकावट आ जाती है। जातियों का पुनरुत्पादन और विकास प्रक्रम में बाधा पड़ती है। इसका नतीजा होता है : फसल विविधता का अवक्षय और नई किस्मों के विकास के लिए अवसरों की समाप्ति का।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि अधिक पैदावार वाली किस्मों की खेती से कृषि उपज विपणन को प्रोत्साहन मिला है, एकधाकृषि पद्धति को बढ़ावा मिला है जिससे महामारियों का विस्फोट हुआ है, फसल विविधता कम हुई है। अगले सत्र में हम देखेंगे कि किस तरह अधिक चराई मानव पर्यावरण के गुण-ह्रास का कारण बनी।

आगे बढ़ने से पहले अगर एक बोध प्रश्न को हल करने की कोशिश की जाए तो कैसा रहेगा?

बोध प्रश्न 4

नीचे दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द छाँटकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

i) वनस्पति रक्षण रसायनों का अत्यधिक उपयोग .... जीवों में प्रतिरक्षा अर्जन का, ... जीवों की मृत्यु का और .... तथा पीने के पानी के संदूषण का कारण बनता है जिसके परिणामस्वरूप मानव आबादी में बीमारियाँ और मृत्यु होती है।

ii) वनस्पति रक्षण रसायनों को क्रमशः उन्हीं लक्ष्य जीवों को मारने के इरादे से काम में लाया जाता हैं जिन्हें मारने के लिए वे बनाए गए थे लेकिन कभी-कभी वे कीटों की .... जातियों को भी मार डालते हैं।

iii) जलाक्रांत मृदाओं में यांत्रिक शक्ति की कमी होती है और पौधे के भार को .... सहारा नहीं दे सकतीं। ऐसी मृदाएं पौधों की अच्छी वृद्धि को सहारा नहीं दे सकतीं क्योंकि उनमें ..... की कमी होती है, जो जड़ों के .... के लिए बहुत आवश्यक है।

iv) लवण-प्रभावित मृदाओं में, पौधे पोषक तत्वों को अवशोषित नहीं कर पाते और उन्हें ..... मृदा नमी में भी पानी की ..... तंगी का सामना करना पड़ता है।

v) लवण-मृदाओं का उद्धार ..... से हो सकता है, जबकि क्षारीय मृदाओं के उद्धार के लिए ..... की लंबी ..... की आवश्यकता होती है।

vi) अधिक पैदावार वाली किस्में स्वयं ..... के लिए मनुष्य पर निर्भर हैं। इनसे खरीदी जा सकने वाली क्रयमय वस्तुओं को काम में लाने की आवश्यकता पड़ी, ... को प्रोत्साहन मिला जिससे महामारियों का विस्फोट हुआ और फसल ..... का अवक्षय हुआ तथा नए जीनप्ररूपों के नये ..... के आने के अवसर समाप्त हो गए हैं।

(वायु, भरपूर, संयोजनों, लक्ष्य इंगित, विविधता, उपचार, अलक्षित, एकधार्कृषि, शृंखलाओं, नकली, श्वसन, खाद्य वस्तुएँ, भौतिक रूप से, आसानी, जीवित बने रहने, लाभदायक)

8.5 अधिक चराई के प्रभाव

अधिक चराई के कारण मानव पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों की चर्चा करने से पहले हमें भारत में पशुधन की स्थिति समझ लेनी चाहिए। ग्रामीण भारतीय जीवन में पशुधन एक निर्णायक भूमिका निभाते हैं। पालतू पशु दूध और मांस के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनसे ईंधन, कार्बनिक खाद और कर्षबल यानी जुताई आदि का बल भी मिलता है। उनके अवशेष जैसे कि खाल और हड्डियाँ हस्तशिल्प, लघु उद्योगों, अस्थि कोयला के निर्माण, फॉस्फोरस उर्वरक, ऊन और जूता उद्योग के लिए प्रयुक्त होने वाला कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं।

भारत पालतू पशुओं से भरा पड़ा है। भारत में पशुधन संख्या लगातार बढ़ रही है। 30 साल के दौरान 42 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। 1951 में 2920.2 लाख पशु थे, जबकि 1981 में 4159.4 लाख हो गए। उसी अवधि के दौरान स्थायी चरागाह और चराई वाली भूमि के रूप में चारा उत्पादन के लिए उपलब्ध भूमि संसाधन 1454.5 लाख हेक्टेयर से घटकर 1292.6 लाख हेक्टेयर रह गई—आवास 11.03 प्रतिशत सिकुड़ गया। इसी प्रकार प्रति पशु उपलब्ध भूमि 0.51 से घटकर 0.32 हेक्टेयर रह गई जो कभी लगभग 37 प्रतिशत बैठती है। इन आँकड़ों से पता चलता है कि पिछले 30 साल में पशुधन घनत्व बढ़ा है। इसके अलावा, हालांकि 1991 की जनगणना के परिणाम अभी घोषित किए जाने हैं आशा है कि यह घनत्व और भी बढ़ेगा। चारा उत्पादक भूमि आज अधिकाधिक दबाव में आती जा रही है, जबकि चालीस साल पहले ऐसा न था।

चराई की सामान्य परिस्थितियों में चरागाह या चराई की एक हैक्टेयर भूमि वर्षा-प्रधान क्षेत्रों में 3 और अच्छी तरह सिंचित क्षेत्रों में 6 पशुओं का भरण-पोषण कर सकती है। इसके विपरीत, ऐसी ज़मीनों पर प्रति हेक्टेयर पर निर्भर रहने वाले पशुओं की वास्तविक संख्या कहीं ज्यादा है। यूँ कहें कि भूमियों की वहन क्षमता से 2.4 से लेकर 4.5 गुना तक ज्यादा। उदाहरण के लिए, जम्मू और कश्मीर में चराई तथा चारे वाली ज़मीन का प्रति हेक्टेयर 16.8 पशुओं को सहारा देता है। इस प्रकार चराई और चारे वाली ज़मीनें अधिक चराई की शिकार हैं। अधिक चराई के प्रभावों के बारे में इस सत्र में पढ़ेंगे।

इससे पहले कि हम अधिक चराई की चर्चा करें, हम पशुधन घनत्व के बढ़ने के दूसरे परिणाम के बारे में बताना चाहेंगे। अधिकाधिक परिवारों को मजबूरन अपनी रहने की जगह पालतू पशुओं के साथ बाँटनी पड़ती है। ये पशु अनेक विषाणुओं, पीड़कों और जीवाणुओं (bacteria) के लिए परपोषी यानी मेजबान का काम करते हैं इसलिए रोग के संक्रमण या सीधे स्थानांतरण का खतरा बढ़ रहा है। मनुष्य की आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से के लिए पीने के पानी का प्रमुख स्रोत भूमिगतजल और भूपृष्ठ जल है। पशुओं का मल पानी के इन दोनों तरह के स्रोतों तक आसानी से पहुंचने लगा है।

यह तथ्य भी उतना ही गंभीर है कि दूध के स्रोत पालन पशु डी.डी.टी. जैसे खतरनाक

रसायनों के वे वाहक हैं। पशु अपने चारे के साथ अनजाने में डी.डी.टी. का भी उपयोग कर लेते हैं। डी.डी.टी. की प्रवृत्ति वसा ऊतकों में जमा होने की है। आसानी से उपापचयित न हो सकने के कारण यह अधिकतर जीवधारियों के शरीर में सारी जिंदगी बची रहती है और उन के वसीय ऊतकों में इसका जैव संचयन होता जाता है। जैव संचयन के बारे में आप भाग 8.4.2 में पढ़ चुके हैं। रोग पीड़ित अथवा क्षुधा अवस्था आने पर ये डी.डी.टी. वसीय ऊतकों में से निकल कर रक्त प्रवाह में मिल जाती हैं और जीवधारी को विषाक्त कर देती है (देखिए चित्र 11.3)।

आइए अब हम मानव पर्यावरण पर अत्यधिक चराई से पड़ने वाले प्रभावों को देखें।

8.5.1 भूमि अवकर्ष

भारी चराई के अंतर्गत भूमि की गुणवत्ता खराब हो जाती है क्योंकि अधिक चराई से मृदा का संघनन होता है जिससे सक्रियात्मक मृदा गहराई कम हो जाती है अर्थात् मिट्टी की वह गहराई जिसमें पौधे जड़ पकड़ सकते हैं और पुनरुत्पादन कर सकते हैं। इस प्रकार, मृदा नमी की मात्रा, जिसे वांछित पादप-जातियों की पुनरुत्पादन आवश्यकताओं के लिए संचित किया जा सकता है, कम हो जाता है। चारा देने वाले जैवमात्रा (biomass) की पुनः वृद्धि में गिरावट, कार्बनिक पुनः चक्रण की दर को घटा देती है। कार्बन पुनः चक्रण मृदा उर्वरता को बनाए रखने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अधिक चराई के परिणामस्वरूप सूक्ष्म जलवायु ज्यादा खुश्क हो जाती है, मल्चय आवरण या ह्यूमस कम हो जाता है और बुरी तरह कुचला जाता है जिससे सतह की परत ढेले दार बन जाती है जो पानी के अंतःस्पंदन (infiltration) को कम कर देती है और इसके आवाह (बह जाने) को तेज कर देता है। इससे ज़मीन वर्षा के वेग प्रवाह और भूपृष्ठीय (सतही) आवाह (runoff) के लिए खुली रह जाती है। इसकी वजह से मृदा की भारी हानि होती है, जिसके फलस्वरूप क्षुद्र सरिताएँ और अवनालिकाएँ बन जाती हैं। परिणामस्वरूप सरिताओं और नदियों में आने वाला गाद भार (silt load) बढ़ जाता है। इस प्रकार, जलाशयों में अपेक्षाकृत बहुत ज्यादा उर्वरण अथवा अतिपोषण हो जाता है। यह विशेष रूप से भारत, पाकिस्तान और नेपाल के उन जल ग्राही क्षेत्रों के लिए सच है जहाँ अधिक चराई होती है। आप इसके बारे में मृदा अपरदन और मृदा-अवकर्ष शीर्षक से इकाई 12 में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

8.5.2 जल-स्थलों की हानी

पशुधन अनुरक्षण अर्थात् रख-रखाव के लिए जल-स्थल महत्त्वपूर्ण कारक रहे हैं भले ही यह चारागाह-आधारित, प्रवासी या आवासी फार्मिंग तंत्र का भाग हो। उदाहरण के लिए, राजस्थान में अधिक चराई के फलस्वरूप कुछ गाँवों में जलाशय गाद से भर गए जिसकी वजह से 1953-54 और 1973-74 के बीच उनकी संख्या घट के आधी रह गई। पड़ोस में रहने वाले लोगों को खेती करने के लिए ये नए क्षेत्र मिल गए और उन्होंने जुताई शुरू कर दी। हालाँकि शुरू में उन्हें कुछ प्राप्ति हुई, लेकिन ये ज़मीनें कृषि भूमि के रूप में सक्षम न होने के कारण 4-5 साल के अंदर ही बंजर बन गईं। ऐसी ज़मीनों की खेती केवल पास ही के कुछ लोगों द्वारा की गई, परिणामस्वरूप व्यापक रूप से सार्वजनिक भूमि निजी सम्पत्ति में बदली गई।

8.5.3 वनस्पति आवरण की हानि

खेती के लिए भूमि के अत्यधिक उपयोग और अधिक चराई ने पादप-संख्या के संघटन और उनकी पुनरुत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। कृषि क्षेत्रों में उत्पादन की दृष्टि से खरपतवार समझे जाने वाले वनस्पतिजात को छोड़कर सारे प्राकृतिक वनस्पतिजात खत्म हो जाते हैं। परिणामस्वरूप व्यापक क्षेत्रों में लैन्टाना, पार्थेनियम, यूपैटोरियम और इसी तरह के दूसरे स्वादहीन काँटेदार पौधे धीरे-धीरे पोषक और रसीली चारा देने वाली पादप जातियों की जगह ले लेती हैं। यह विशेष रूप से उन क्षेत्रों में होता है जहाँ वर्षा, स्थलाकृति और मृदा-तापमान जैसे कारकों के कारण सूखे की अवधि वर्ष में 5 महीनों से भी ज्यादा लंबी होती है।

पश्चिमी राजस्थान में, जहाँ वर्षा प्रति वर्ष 200 मि. मी. से कम है और सूखे की अवधि 10 से 11 महीने तक की है स्टेप किस्म के समाववासों (formations) में अपर्याप्त वार्षिक

घास जातियाँ मिलती हैं। राज्य के दूसरे भागों से जहाँ 500 मि. मी. वर्षा होती है और शुष्क ऋतु 5-6 महीने तक की होती है वहाँ खेजरी पेड़ों की हल्की छाया के नीचे लंबी घास की जातियाँ उगती हैं जिनसे सवाना वर्ग का घास पारितंत्र बनता है। अधिक चराई के फलस्वरूप पादपभार का उत्पादन गिर गया है जिससे रसीली चारा देने वाली पादप जातियाँ गायब हो गई हैं और स्वादहीन काँटेदार खरपतवार और झाड़ियों ने धीरे-धीरे उनकी जगह ले ली है। अधिक चराई के परिणामस्वरूप अरुणाचल प्रदेश और मेघालय में बहुत बड़े क्षेत्रों पर वृक्षों, झाड़ियों और खरपतवारों का हमला बढ़ गया है, जिनका चारा मान कम है।

भूमि अवकर्ष और कंटीली मरुद्भिदी (xerophytic) पौधों द्वारा वनस्पति आवरण की जगह ले लेने के बारे में आप इस पाठ्यक्रम के खंड 3 की इकाई 12 में विस्तार से पढ़ेंगे। अगली इकाई में आप एक और दिलचस्प पहलू के बारे में पढ़ेंगे। यह है शहरीकरण और मानव पर्यावरण पर इसका संघट्ट (प्रभाव)। अच्छा अब आइए कुछ प्रश्न हल करें।

बोध प्रश्न 5

नीचे दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

i) पालतू पशु जो कि दूध के स्रोत हैं डी. डी. टी. जैसे खतरनाक रसायनों के .... भी हैं। ये पशु चारे के साथ अनजाने में डी. डी. टी. का उपभोग भी करते हैं। डी. डी. टी. वसा ऊतकों में ..... हो जाती है। अधिकतर पशुओं में यह जिंदगी-भर बनी रहती है क्योंकि यह .... नहीं होती।

ii) पशुधन घनत्व बढ़ने के साथ अधिकाधिक परिवारों को मजबूर होकर अपना आवास अपने पालतू जानवरों के साथ ..... पड़ता है। पालतू पशु अनेक विषाणुओं, पीड़कों और जीवाणुओं के लिए ..... का कार्य करते हैं इसलिए इनसे बीमारियों के ..... और .... स्थानांतरण का ज्यादा खतरा है। पशु उत्सर्ग या मूल भूमिगत जल और ..... जलराशियों में आसानी से पहुंच रहे हैं।

iii) चराई की ..... परिस्थितियों में एक हैक्टेयर चरागाह या चराई वाली जमीने ..... क्षेत्रों में औसतन तीन पशुधनों का भरण-पोषण कर सकती हैं।

iv) अधिक चराई के मानव पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव इस प्रकार हैं
क) ..... ख) .....
ग) .....

v) अधिक चराई से मृदा संघनित हो जाती है जिससे मृदा की .... गहराई कम हो जाती है अर्थात् वह गहराई जिसमें पौधे जड़ जमा सकते हैं और प्रजनन कर सकते हैं। इस प्रकार मिट्टी की नमी की मात्रा जिसे वांछित पादप जातियों की ..... आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संचित किया जा सकता है, घट जाता है।

vi) अधिक चराई के फलस्वरूप स्वादहीन ..... पौधों ने धीरे-धीरे पोषक और रसीली ..... देने वाली पादप-जातियों की जगह ले ली है।

(वाहक, संचित, सरलता से, संक्रियात्मक, जीवन, बाँटना, संक्रमण, सीधे, परपोषी, चारा, कंटीले या काँटेदार, सतह, भूमि अवकर्ष, सामान्य, वर्षा-प्रधान, व्यापक रूप से सिंचित, वनस्पति आवरण की हानि, जल स्थलों की हानि)

8.6 सारांश

इस इकाई में हमने कृषि क्रिया द्वारा मानव पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन का पता लगाने का प्रयास किया है। हमने कृषि-पारितंत्र के विकास के इतिहास द्वारा इस बात का पता

लगाने की कोशिश की है। शुरू में मानव के औजार सरल थे और तकनीकें इतनी परिष्कृत नहीं थीं।

- उसके औजार अधिकाधिक शक्तिशाली बनते चले गए। इसके साथ शुरू हुआ विनाशकारी गतिविधियों का सिलसिला और कृषि क्रियाओं से मानव पर्यावरण को होने वाली क्षति बढ़ती चली गई।
- सुविधा की दृष्टि से हमने कृषि को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया है। ये हैं परंपरागत कृषि और आधुनिक कृषि।

  परंपरागत कृषि पद्धति वन उन्मूलन, मृदा अपरदन और स्थूल-पोषक के अवक्षय का कारण है।
- द्वितीय विश्वयुद्ध से कृषि क्रियाओं में विद्युत चालित औजार, रसायन और अधिक पैदावार किस्मों ने प्रवेश किया। इसके साथ-साथ आधुनिक कृषि ने अपनी प्राथमिकताएँ बदल डालीं, उदाहरण के लिए, यह बाज़ार-उन्मुखी और मात्रा-निर्भर हो गई।
- उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मृदा के सूक्ष्मपोषकों का अवक्षय होता है, भूमि में नाइट्रेट इकट्ठे होने लगते हैं और नदियों, झीलों तथा अलवण जलराशियों का उर्वरण अथवा अतिपोषण होता है।
- जीवनाशकों को काम में लाए जाने से उपयोगी अलक्षित जीव मर जाते हैं और लक्ष्य इंगित जीवों में प्रतिरक्षा आ जाती है तथा खाद्य पदार्थ डी. डी. टी., बी. एच. सी. और मैलाथियॉन आदि से जहरीले हो जाते हैं।
- जलाक्रांति और लवण-कृत्रिमता का कारण कृषि भूमियों की, विशेष रूप से सूखे क्षेत्रों में अत्यधिक सिचाई है। अत्यधिक सिंचाई से भूमिगत जल संसाधनों का अपक्षय होता है और जल सारिणी स्तर ऊपर उठ जाता है।
- अधिक पैदावार वाली किस्मों के कारण खरीदी जा सकने वाली (क्रयमय) वस्तुओं की ज़रूरत पड़ने लगती है। इन किस्मों से एकधाकृषि को बढ़ावा मिलता है और पादप विविधता कम हो जाती है। इससे महामारियों का प्रस्फोट होता है, जिसकी वजह से जातियों के विकास की प्रक्रिया रुक जाती है।
- बढ़ती हुई उत्पादकता के फलस्वरूप पशुधन और पालतू पशुओं का भी घनत्व बढ़ा है। हम देख चुके हैं कि पशु, रोगाणुओं और डी. डी. टी. जैसे घातक रसायनों के वाहक हैं।
- पालतू पशुओं के बढ़े हुए घनत्व से चारा-उत्पादक चारागाहों पर दबाव पड़ा है। इससे भूमि का स्वरूप बिगड़ा है, मृदा अपरदन हुआ है और रसीली, स्वादिष्ट चारा देने वाली पादक जातियाँ गायब हो गई हैं।

8.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) आधुनिक कृषि और परंपरागत कृषि में क्या अंतर है?

.....

.....

.....

.....

2) आधुनिक कृषि से होने वाले परिवर्तन चार लाइनों में बताइए।

.....

.....

.....

.....

3) परंपरागत कृषि के खास पहलू कौन-से हैं?

.....

.....

.....

.....

4) अनिवार्य पोषक के तीन मूलभूत गुण कौन-से हैं?

.....

.....

.....

.....

5) बच्चों में नाइट्रोसोमेनिया कैसे होता है, चार-पाँच पंक्तियों में बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

6) उर्वरण अथवा अतिपोषण क्या है और जलराशियों (नदियाँ, झीलें, तालाब आदि) के अतिपोषण के क्या परिणाम हैं?

.....

.....

.....

.....

7) कीटों या पीड़कों के दो उदाहरण दीजिए जो जीवनाशकों के प्रति प्रतिरक्षी बन गए हैं।

.....

.....

.....

.....

8) अधिक चराई से भूमि अवकर्ष किस तरह होता है?

.....

.....

.....

.....

8.8 उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) भूमि उपयोग प्रतिरूप, मात्रा, खाद्य अधिशेष
ii) स्थल से दूर वालों की माँग
iii) पैदा, अभिनव परिवर्तन, उत्पादन क्षमता, कृषि अपशिष्ट
iv) बढ़ा, प्राकृतिक

बोध प्रश्न 2

i) प्रबंध
ii) अति-अल्प मात्रा

iii) कृषि
iv) भूमि उपयोग प्रतिरूप, मृदा नमी
v) बहुगुणित

बोध प्रश्न 3

i) मल, उत्पादों, बाहर
ii) कमी
iii) निक्षालित, नाइट्रेट्स

बोध प्रश्न 4

i) लक्ष्य इंगित, अलक्षित, खाद्य वस्तुएं
ii) लाभदायक
iii) भौतिक रूप से,वायु, श्वसन,
iv) पर्याप्त,नकली,
v) आसानी, उपचार, शृंखलाओं
vi) जीवित बने रहने, एकधाकृषि, विविधता, संयोजनों

बोध प्रश्न 5

i) वाहक, जमा, उपापचयित
ii) बांटना, परपोषी (वाहक), संक्रमण, सीधे, पृष्ठीय
iii) सामान्य, वर्षा-प्रधान, व्यापक रूप से सिंचित
iv) भूमि अवकर्ष, जल स्थलों की हानि, वनस्पति आवरण की हानि
v) सक्रियात्मक, जीवन
vi) कंटीले या कांटेदार, चारा

अंत में कुछ प्रश्न

1) आधुनिक कृषि आधुनिक जुगत पर निर्भर है जैसे कि विद्युतशक्ति-युक्त सिंचाई उपस्कर, जीवाश्म ईंधन-आधारित कृषि-मशीनरियां और खरीदे जा सकने वाले निवेश जैसे कि रासायनिक उर्वरक, वनस्पति रक्षण रसायन और अधिक पैदावार वाली किस्में। एक-एक ऊर्जा गहन क्रिया है। आधुनिक कृषि इकाई क्षेत्र आधार पर कृषि उत्पादों की ज्यादा मात्रा पैदा करती है।

2) क) अत्यधिक सिंचाई से भूमिगत जल संसाधनों का अवक्षय और जल सारिणी का स्तर बढ़ जाने से लवणीकरण और जलाक्रांति की दोहरी समस्याएं जन्म लेती हैं।

   ख) रासायनिक उर्वरक डालने से सूक्ष्मपोषकों में कमी आती है, जलराशियों का उर्वरण होता है तथा नाइट्रोसोमेनिया होता है।

   ग) वनस्पति रक्षण रसायनों के उपयोग से खाद्य उत्पादन जहरीले हो जाते हैं, उपयोग अलक्षित जीव जो कृषि के लाभकारी हैं मर जाते हैं, लक्ष्य इंगित जीवों को लंबे समय तक प्रतिरक्षा विकसित कर लेने में सहायता मिलती है, जिसके फलस्वरूप जीवों के नए समूह आ जाते हैं, जिनमें फसलों या कृषि उपजों को नुकसान पहुंचाने की अधिक क्षमता होती है।

   घ) अधिक पैदावार वाली किस्में कृषि को बाज़ार-उन्मुखी बना देती हैं, एकधाकृषि को बढ़ावा देती हैं, जिससे महामारियों का प्रस्फोट और आनुवंशिक जीनप्ररूपों की विविधता का अवक्षय होता है।

3) परंपरागत कृषि की क्रिया नैज संसाधनों, चौपायों की कर्षण शक्ति (जुताई की शक्ति) और वर्षा के पानी को काम में लाती है। यह न तो ऊर्जा-गहन निवेशों और न ही खरीदे जाने लायक (क्रयमय) वस्तुओं पर निर्भर करती है। भारत में परंपरागत कृषि से उत्पादन कम है, जल निकासी की व्यवस्था खराब है और शस्यन प्रतिरूप असंगठित है।

4) अनिवार्य पोषक वह तत्व है जिसमें निम्नलिखित तीन गुण होते हैं:

   - बिना तत्व विशेष के पौधा अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर सकता।

- अनिवार्य पोषकों की कमी से ऐसे लक्षण पैदा हो जाते हैं, जो किसी दूसरे तत्व से उपशमित नहीं हो सकते यानी कम नहीं हो सकते।
- उस पोषक तत्व की शरीर क्रियात्मक मात्रा में वापसी से पौधे का स्वास्थ्य लौट आना चाहिए। अर्थात् तत्व की कमी के लक्षण विलुप्त हो जाने चाहिए।

5) फसल के पौधों को जितने रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता होती है उससे अधिक डाले जाने से वह फालतू उर्वरक नीचे भूमिगत जलभरों में निक्षालित हो जाते हैं यानी धुलकर नीचे चले जाते हैं। ये रसायन, जो आम तौर पर नाइट्रेट होते हैं, जब पीने वाले पानी के साथ सटक लिए जाते हैं तो नाइट्रोसोमेनिया के कारण बनते हैं। बच्चे नाइट्रेट्स के प्रति विशेष रूप से सुग्राही होते हैं।

6) कृषि भूमियों से रासायनिक उर्वरकों की अतिरिक्त मात्रा बारिश के पानी के साथ घुलकर बह जाती है। यह भूपृष्ठीय या सतही आवाह पोषक तत्वों को जलराशियों में ले जाता है, जिसकी वजह से उनका अतिपोषण हो जाता है। इसके फलस्वरूप अवांछित नीले, हरे शैवालों की वृद्धि होती है, जैव ऑक्सीजन की माँग बढ़ जाती है, नौसंचालन में बाधा होती है और जलराशियों में हानिकारक गुण पैदा हो जाते हैं। इसके बारे में आप इकाई 11 में पढ़ेंगे।

7) उत्तर-पूर्वी मेक्सिको में तंबाकू कलिकाकृमि ने कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोध विकसित कर लिया है। पीड़कनाशियों के लगातार उपयोग ने ब्रिटेन में साफोल्क काउन्टी में कोलोरोडो-आलू भृंगों को अधिक प्रतिरोधी बना दिया है।

8) अधिक चराई से मृदा-संघनन होता है जिससे मिट्टी नमी की आयतन में और सक्रियात्मक या सक्रियाशील मृदा गहराई में कमी आ जाती है। ढेले बन जाने के कारण चर ली गई ज़मीन की सूक्ष्म जलवायु भी अधिक सूखी हो जाती है और मृदा अपरदन की संभावना बढ़ जाती है।

इकाई 9 शहरीकरण के प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
9.2 शहरीकरण
9.3 पर्यावरण पर शहरीकरण के प्रभाव
9.4 शहरीकरण और सामाजिक संगठन
धनी और निर्धन आवासीय क्षेत्र
गेटो और उपनगरीय जीवन
शहरी जीवन में जाति प्रथा
9.5 शहरीकरण और परिवार संरचना
रिहाइश के लिए स्थान और परिवार विभाजन
व्यावसायिक गमनशीलता और परिवार का आवागमन
9.6 संस्कृति और शहरीकरण
मनोरंजन के साधन
सांस्कृतिक मिश्रण
9.7 शहरीकरण के मनोवैज्ञानिक पहलू
अति अंतःक्रिया के कारण दबाव
परिवर्तित पर्यावरण के कारण दबाव
9.8 पशु और शहरीकरण
वन्य प्राणियों का ह्रास
घरेलू और पालतू पशु
9.9 सारांश
9.10 अंत में कुछ प्रश्न
9.11 उत्तर

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने संसाधनों के अति दोहन के प्रभावों के बारे में पढ़ा है जिनके फलस्वरूप वनोन्मूलन, मरुस्थलीकरण, जल-प्रदूषण, वायु प्रदूषण हुआ है और इससे जलवायु में अस्थिरता पैदा हुई है तथा कीटनाशक दवाओं, उर्वरक आदि के प्रयोग से अन्य विनाशकारी प्रभाव हुए हैं। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण तथा आधुनिकीकरण ने न केवल पर्यावरण को ही प्रभावित किया है बल्कि मानव संगठन, परिवार संरचना, संस्कृति और यहाँ तक कि मानव जाति के स्वभाव को भी प्रभावित किया है।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- यह स्पष्ट कर सकेंगे कि पर्यावरण पर बहुत अधिक बस्तियों का क्या प्रभाव पड़ता है;
- शहरों में नई सामाजिक संरचना के उद्भव और पुरानी संस्कृति तथा शहरी आवश्यकताओं के बीच अंतःक्रिया का विश्लेषण कर सकेंगे;
- शहरीकरण के कारण परिवार संरचना के विभिन्न चरणों का वर्णन कर सकेंगे;
- शहर के सामाजिक गठन का वर्णन कर सकेंगे;
- ग्रामीण से शहरी समुदायों में सांस्कृतिक परिवर्तन का वर्णन कर सकेंगे;
- यह बता सकेंगे कि मनोरंजन के नए क्षेत्रों और कला मंचों को शहरीकरण किस प्रकार प्रभावित करता है;

- शहरी पर्यावरण में दबाव पैदा करने वाले कारकों का वर्णन कर सकेंगे; और
- पशु जीवन पर शहरीकरण के प्रभावों की व्याख्या कर सकेंगे।

9.2 शहरीकरण

शहरीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें सामूहिक रूप से बहुत अधिक संख्या में एक व्यक्ति छोटे से स्थान पर रहने लगते हैं और शहर बनाते हैं।

शहर या शहरी क्षेत्र की परिभाषा समय-समय पर और स्थान-स्थान पर बदली जाती रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ की सिफारिश के अनुसार बहुत से देश उन सभी स्थानों को शहरी क्षेत्र मानते हैं जहाँ 2,000 से अधिक लोग समीप और एक साथ रहते हैं, परन्तु बहुत से राष्ट्र भिन्न-भिन्न मानकों के आधार पर अपने आँकड़ों का संकलन करते हैं। उदाहरण के लिए, भारत गणराज्य "शहर" उन बस्तियों को कहता है, जहाँ 5,000 से अधिक लोग रहते हैं। 1961 और 1971 की भारतीय जनगणना में निम्नलिखित स्थानों को शहरी क्षेत्र की परिभाषा दी गई है:

- ऐसे सभी स्थान जिनकी 5,000 से अधिक आबादी है,
- ऐसे सभी स्थान जहाँ कृषि से भिन्न व्यवसायों में कम से कम 75 प्रतिशत पुरुष काम करते हों,
- ऐसे सभी स्थान जिनकी जनसंख्या घनत्व 1,000 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।
- सभी नगरपालिका, नगर निगम, छावनी और अधिसूचित शहरी क्षेत्र।

प्रारंभिक मानव जाति घुमक्कड़ जीवन निर्वाह करती थी। वे आखेट और खाद्य संग्रहण पर निर्भर रहते थे जो वास्तव में सामूहिक कार्य था। लोग उस समय अपने भोजन के लिए काफी बड़े क्षेत्र में घूमते रहते थे जिसमें कोई स्थाई बस्तियाँ नहीं थीं। लगभग 10,000 वर्ष पहले नवप्रस्तर काल में मनुष्य अपेक्षाकृत नियत बस्तियों में रहने लगा। परन्तु लगभग 5,000 वर्ष तक उस का जीवन अर्ध स्थायी कृषक गाँव के रूप में रहा, उसके आवास अर्ध स्थायी थे क्योंकि उस गाँव के इर्द-गिर्द की ज़मीन की उर्वरता कृषि के पुराने तरीकों के कारण जल्दी ही खत्म हो जाती थी जिससे आम तौर पर पूरा का पूरा गाँव कहीं और बढ़ जाने के लिए विवश हो जाता था। इसके अलावा, जब गाँव एक ही जगह पर समृद्धशाली हो जाता था और आबादी बढ़ जाती थी तब भी आम तौर पर गाँव दो भागों में बँट जाता था ताकि सभी को काश्तकारी के लिए पर्याप्त ज़मीन मिल सके।

भारत में शहरीकरण का इतिहास बहुत पुराना है। आप विज्ञान और प्रौद्योगिकी के आधार पाठ्यक्रम में पढ़ चुके हैं कि मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा जो सिन्धु घाटी सभ्यता के शहर हैं, 4000-1500 ई. पू. समृद्धशाली थे। यूँ कह सकते हैं कि शहरीकरण मानव सभ्यता के समग्र क्रम विकास में काफी नई घटना है। नवप्रस्तर काल के मनुष्य ने वनस्पति की खेती शुरू की और पशुपालन भी आरंभ किया। इसके फलस्वरूप खेती और पशु प्रजनन के उन्नत तरीके विकसित हुए और दस्तकारी का प्रचुर समावेश उद्भूत हुआ। इसमें आवश्यकता से अधिक उत्पादन हुआ और समाज के कुछ लोग दस्तकारी, कारीगरी और नौकरी के काम की ओर प्रवृत्त हुए।

सिंचाई और कृषि में प्रौद्योगिकीय प्रगति के फलस्वरूप काम करने के लिए लोगों की कमी होने लगी। ऐसी स्थिति में भारी बोझ ढोने के लिए स्लेज-युक्त पशुओं का उपयोग हुआ। फिर भी, परिवहन के प्रारंभिक इतिहास में पहिये की खोज वस्तुत: एक महत्वपूर्ण तकनीकी उपलब्धि थी। पहियों को आसानी से चलाने के लिए सड़कों की ज़रूरत महसूस हुई और जिससे सड़कों का निर्माण हुआ। जल परिवहन में भी समानांतर सुधार किए गए।

आबादी के बढ़ने से गाँव कस्बों में बदल गए और कस्बों की आबादी ने बढ़कर शहरों का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इसके साथ ही इमारतदार क्षेत्र और मकानों की संख्या में काफी अधिक वृद्धि हुई। शहर अधिकतर चारदीवारी के अंदर होते थे ताकि शत्रुओं से सुरक्षित रह सकें। शहरों के लिए पर्याप्त जल की भी व्यवस्था थी।

आपने सत्र 6.3 में पढ़ा कि प्रौद्योगिकी और जनसांख्यिकीय विकास के मेल से शहरीकरण

की प्रक्रिया में अपार वृद्धि हुई। नए कारखानों में रोज़गार की उपलब्धता ने ग्रामीणों को शहरों में आने के लिए आकर्षित किया।

कुछ शताब्दी पहले सारे विश्व की जनसंख्या के बराबर आज के केवल कुछ शहरों की जनसंख्या थी। उदाहरण के लिए, ईसा मसीह के समय विश्व की आबादी लगभग 25 करोड़ थी। आज इतनी जनसंख्या कुछ ही शहरों की जनसंख्या के बराबर है। 1650 में यही जनसंख्या दुगुनी 50 करोड़ हो गई। 1850 तक विश्व की जनसंख्या एक अरब हो गई थी। 1930 और 1975 में जनसंख्या क्रमशः 20 अरब और 40 अरब रिकार्ड की गई थी। 2010 ई. तक इस पृथ्वी की जनसंख्या के फिर दुगुनी होने की संभावना है और यह 80 अरब हो जाएगी। विशेष रूप से लगभग पिछले 200 वर्ष के दौरान इस बढ़ी हुई जनसंख्या के बड़े हिस्से को शहरी केन्द्रों ने आकर्षित किया है। 1800 ई. में विश्व की जनसंख्या का केवल 2.4 प्रतिशत 20,000 या इससे अधिक शहरों में और केवल 1.7 प्रतिशत एक लाख या इससे अधिक शहरों में था। 1960 तक 20,000 या इससे अधिक शहरों में विश्व जनसंख्या के 27.1 प्रतिशत और एक लाख या इससे अधिक शहरों में 19.7 प्रतिशत रह रहे थे। 2000 ई. तक 20,000 या इससे अधिक आबादी के शहरी केन्द्रों में 42 प्रतिशत और एक लाख या इससे अधिक आबादी के शहरी केन्द्रों में लगभग 25 प्रतिशत रहने लगेंगे। इस प्रकार 2000 ई. तक शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोग 42 + 25 = 67 प्रतिशत से अधिक होंगे। तालिका 9.1 में विश्व की सबसे बड़ी आबादी के दस शहर दिए गए हैं।

तालिका : 9.1 : विश्व के दस सबसे बड़े शहरी क्षेत्र

(जनसंख्या करोड़ में)

	शहर	1950	1980	2000*
1.	न्यूयॉर्क - न्यूजर्सी को छोड़कर	12.3	20.2	22.4
2.	लंदन	10.4	10.00	–
3.	पीकिंग	–	11.4	20.9
4.	टोक्यो-योकोहामा	6.7	20.2	23.7
5.	शंघाई	5.8	14.3	23.7
6.	साओ पोलो	–	13.5	25.8
7.	ग्रान ब्यूनेसआयर्स	5.3	10.1	–
8.	मैक्सिको शहर	–	15.0	31.0
9.	रिओ डि जैनिरो	–	10.7	19.0
10.	कलकत्ता	4.6	–	16.4

* आकलित आँकड़े

आम तौर पर शहरी क्षेत्रों की जनसंख्या में निम्नलिखित कारणों से वृद्धि होती है :

- शहरी जनसंख्या में स्वाभाविक वृद्धि,
- ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों का प्रवासन,
- शहरी नगरपालिका क्षेत्रों का प्रशासनिक विस्तार।

इन सभी से शहरी जनसंख्या में वृद्धि अपने तरीके से होती है। परन्तु ये तरीके सभी स्थानों के लिए एक जैसे नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए, एक स्थान पर यह प्रवासन के कारण हो सकता है तो दूसरे स्थान में किसी न किसी अन्य कारणों से भी हो सकता है। जिनके फलस्वरूप शहरीकरण हुआ है, उनके अन्य कारण औद्योगीकरण और विभिन्न सामाजिक आवश्यकताओं तथा कार्यों को देखने के प्रशासनिक तथा प्रबंधकीय व्यवस्था की ज़रूरतें हैं।

प्राकृतिक पर्यावरण में मानव बस्तियों से अत्यधिक परिवर्तन हुआ है। जनसंख्या, क्षेत्रफल, औद्योगिक और सांस्कृतिक वृद्धि के आधार पर प्रत्येक बस्ती की अपनी-अपनी सामाजिक आर्थिक प्रणाली है। जिस गति से ये बस्तियाँ अपने अस्तित्व में आई हैं, वह प्राकृतिक विकास प्रक्रियाओं से भी अधिक तीव्र हैं। सामाजिक माँगों के साथ-साथ आर्थिक वृद्धि से ये बस्तियाँ बनी हैं तथा और भी अधिक बड़ी बस्तियाँ बन रही हैं।

विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ और चीन के बाद सबसे अधिक शहरी

जनसख्या वाला चौथा देश भारत है। 1951 में इसकी शहरी आबादी 6.288 करोड़ थी जो 1981 में बढ़कर 15.973 करोड़ हो गई। इसमें से एक लाख से अधिक आबादी वाले 216 शहरों में 60 प्रतिशत थी, जबकि 12 महानगरों में जिनकी आबादी दस लाख से अधिक थी, कुल शहरी आबादी के 27 प्रतिशत थी और इनकी वृद्धि 53 प्रतिशत की दर से रिकार्ड की गई थी। शहरी बस्तियाँ 1971 में 2,531 थीं जो 1981 में बढ़कर 3,245 हो गई। यह अनुमान लगाया गया है कि सन् 2000 तक इस आबादी का 65 प्रतिशत और 32 करोड़ उन शहरों में होगा जिनमें से प्रत्येक की आबादी दस लाख से अधिक होगी, जबकि बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास एक करोड़ की सीमा पार कर जाएँगे। इस प्रकार शहरीकरण की समस्या, जो इस समय महसूस की जा रही है, बहुत ही विकट हो जाएगी। हम पर्यावरण पर शहरीकरण के कुछ प्रभावों की चर्चा आगे करेंगे।

बोध प्रश्न 1

i) संयुक्त राष्ट्र संघ की सिफ़ारिश के अनुसार शहरी क्षेत्र क्या है?

.....

.....

.....

ii) संयुक्त राज्य अमेरिका में "शहरी स्थान" की परिभाषा किस प्रकार की गई है?

.....

.....

.....

9.3 पर्यावरण पर शहरीकरण के प्रभाव

भूमि के उपयोग में परिवर्तन : मानव समाज की आर्थिक प्रगति के साथ-साथ कस्बों और शहरों की वृद्धि भी होती है। इसलिए ये ऐसे स्थानों पर बनते हैं जहाँ भूमि कृषि और गैर-कृषि, दोनों प्रकार के कार्यों के लिए व्यवहार्य आर्थिक आधार प्रदान करती है तथा इस प्रकार वे भूमि पर जीवन निर्वाह करते हैं। जैसे ही कस्बे बढ़ते हैं, वे उत्पादक भूमि और उपयोगी वनों पर अधिकार कर लेते हैं और खुली भूमि एक इमारतदार इलाका बन जाती है। इस प्रकार भूमि अपने सभी जैविक संसाधनों सहित नष्ट हो जाती है। 1950 से लगभग 1.5 मी.है. भूमि में कस्बे और शहर बने हैं और इसी प्रकार 8 मी.है. और भूमि इमारतदार क्षेत्र में बदली जा सकती है। 2000 ई. तक सभी गैर-कृषि तथा वनों से भिन्न उपयोग के लिए लगभग 8 मी.है. अतिरिक्त ज़मीन की आवश्यकता आँकी गई है। दिल्ली के पहले मास्टर प्लान में 44,000 हेक्टेयर क्षेत्र पर विचार किया गया था और 32,000 हेक्टेयर कृषिभूमि का अधिग्रहण करने के लिए कहा गया था। 20 वर्षों के अंदर शहर का लगभग 25 प्रतिशत विस्तार हुआ। भारतीय शहर, जो 30 वर्ष या उससे अधिक पुराने हैं, अपने उपनगरी क्षेत्र से वस्तुतः सभी वन्य प्राणियों से हाथ धो चुके हैं।

जल स्रोत की कमी : शहरी आबादी की पानी की ज़रूरत भी कई गुना बढ़ती है और जल आपूर्ति प्रणाली से इसे पूरा करना पड़ता है। कई महानगरों और "क" श्रेणी के शहरों की आकलित माँग की सीमा प्रति व्यक्ति प्रतिदिन भी भिन्न-भिन्न है। बम्बई में यह माँग 305 लीटर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति है और हैदराबाद में 180 लीटर। जबकि आपूर्ति की सीमा बम्बई में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 227.5 लीटर है और बंगलौर में केवल 70 लीटर। विस्तृत निर्मित क्षेत्रों के कारण स्थानीय भूतल जल की पुनर्पूर्ति भी घटने लगती है और शहरों के लिए जल की व्यवस्था बाहर से करनी पड़ती है। आबादी में आगे और वृद्धि होने पर पानी की माँग भी बढ़ती है तथा शहरों को बहुत दूर से पानी लाना पड़ता है। दिल्ली के लिए इस समय रामगंगा (180 किलोमीटर दूर) से, इन्दौर के लिए नर्मदा (75 किलोमीटर दूर) से और बंगलौर के लिए कावेरी (100 किलोमीटर से भी अधिक दूर) से पानी लिया जा रहा है। मद्रास, 600 मीटर लिफ्ट करके कर्नाटक में कावेरी और आंध्र प्रदेश में कृष्णा से पानी ले रहा है। इनमें से प्रत्येक मामले में पानी खेती और ग्रामीण माँग की कीमत पर लिया जा रहा है। चूँकि पानी बहुत दूरी से लिया जा रहा है, इसलिए इसका मार्ग प्राकृतिक जल मार्ग से भिन्न है और इसलिए पारितंत्र भी प्रभावित होंगे।

भवन निर्माण सामग्री : मकानों और अन्य भवनों के निर्माण के लिए बहुत अधिक मात्रा में भवन निर्माण सामग्री की ज़रूरत होती है। दिल्ली की आकलित माँग प्रतिवर्ष 80,000 नए मकानों की है। इन्हें प्रतिवर्ष एक अरब दस करोड़ ईंटों की ज़रूरत होगी, जबकि दिल्ली में ईंटों के भट्टे एक वर्ष में केवल 14 करोड़ ईंटें बना सकते हैं। शेष ईंटें पड़ोसी इलाके की उपजाऊ भूमि से आती हैं। इस प्रकार अच्छी कृषि भूमि को और अधिक नुकसान होता है।

उद्योग : शहरीकरण के साथ-साथ प्रायः औद्योगिक विकास भी होता है। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास इसके उदाहरण हैं। महाराष्ट्र के कुल उद्योगों के 60 प्रतिशत उद्योग अकेले बम्बई में हैं। इन उद्योगों से जल स्रोतों पर भारी दबाव पड़ता है। कच्चे तेल के तेलशोधक कारखानों में प्रति टन उत्पाद के लिए 1 से 3 घन मीटर के बीच पानी की ज़रूरत होती है, जबकि डेरी के लिए 5 से 8 घन मीटर, कपड़ा उद्योग के लिए 100-250 घन मीटर, लुगदी और कागज़ उद्योग के लिए 250-400 क्यूबिक मीटर और विस्कोज़ रेयन के लिए 400-600 क्यूबिक मीटर पानी की ज़रूरत होती है।

गंदी बस्तियाँ : गंदी बस्तियाँ पर्यावरण ह्रास के निकृष्टतम कारणों में से एक हैं, जो शहरीकरण और औद्योगीकरण के साथ-साथ पनपती हैं। भारत की शहरी आबादी के लगभग 18.75 प्रतिशत लोग गंदी बस्तियों में रहते हैं। राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन के अनुमानों से पता चलता है कि छोटे और मध्यमश्रेणी के कस्बों में लगभग 10 प्रतिशत लोग गंदी बस्तियों में रहते हैं जबकि एक लाख से दस लाख तक की आबादी वाले शहरों में 20 प्रतिशत और बहुत बड़े शहरों में 31 प्रतिशत लोग गंदी बस्तियों में रहते हैं। दिल्ली में गंदी बस्तियों में रहने वाले लोगों की संख्या सबसे अधिक 47.50 प्रतिशत है। राज्यों में बिहार में शहरी आबादी में गंदी बस्तियों के निवासी 37.50 प्रतिशत है, इसके बाद महाराष्ट्र में 32.63 प्रतिशत और पश्चिम बंगाल में 31.53 प्रतिशत हैं। केरल में 8.81 प्रतिशत और कर्नाटक में 14.43 प्रतिशत है। ये दो ऐसे राज्य हैं जिनमें शहरी गंदी बस्तियों में रहने वालों का प्रतिशत सबसे कम है।

गंदी बस्तियों के निवासियों का पर्यावरण ऐसा होता है जिसमें स्थान, जल आपूर्ति, जल-निकास सुविधाएँ अपर्याप्त होती हैं। इसके इर्द-गिर्द के इलाके साथ-साथ मानव स्वास्थ्य को भी निरंतर हानि पहुँचाते हैं। (चित्र 9.1)

चित्र 9.1 : गंदी बस्ती और उसका हानिकारक पर्यावरण

जल प्रदूषण : शहरीकरण और औद्योगीकरण द्वारा स्वच्छ जल का सबसे अधिक प्रदूषण होता है। देश में मानव के हस्तक्षेपों द्वारा प्रदूषित नदियों से लगभग 90 प्रतिशत पेयजल आता है। लगभग 2700 बड़ी और छोटी इकाइयों से 70 प्रतिशत तक प्रदूषण का निस्सारण होता है और 30 प्रतिशत लघु और कुटीर उद्योगों से होता है। विभिन्न शहर

प्राकृतिक जलमार्गों से लगभग 286 हज़ार Mm^3 खराब जल छोड़ते हैं। इसके अलावा, भारतीय शहरों में या तो पूरी तरह से जल निकासी नहीं है या बहुत अपर्याप्त है। इस प्रकार मलजल या तो ज़मीन में रिसता है और भूमिगत जल को प्रदूषित करता है या नदी और नालों में बहता है। अकेले दिल्ली में प्रतिदिन यमुना में 500 मीलियन लीटर से अधिक अन-उपचारित मलजल गिरता है। जबकि गंगा में 24 शहरी बस्तियों से मलजल और औद्योगिक खराब जल गिरता है।

वायु प्रदूषण :शहरी बस्तियों में मुख्य वायु प्रदूषण सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड और फलाई ऐश जैसे अन्य कणों से दिल्ली की वायु में कणों का औसत स्तर लगभग 600 mg/m^3 है, कलकत्ता में लगभग 300 और बम्बई में 200 mg/m^3 है। यह दिखाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है कि वायु को प्रदूषित करने वाले ये संघटक मोटर वाहनों, उद्योगों, रसोईघरों से आते हैं और पौधों, पशुओं तथा मानव स्वास्थ्य को काफी हानि पहुँचाते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक रूप से पुनः प्रजनन संसाधनों पर बढ़ती हुई निर्भरता और प्राथमिक उत्पादों में पर्यावरण में आवश्यक संतुलन बनाए रखने की क्षमता वांछनीय है।

शहरीकरण ने पर्यावरण ह्रास के अलावा, सामाजिक संगठनों, पारिवारिक संरचनाओं, संस्कृति और शहरी क्षेत्रों तथा शहरी केन्द्रों के बाहर रहने वाले लोगों के व्यवहार को प्रभावित किया है। अब हम सामाजिक संगठनों पर शहरीकरण के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न 2

i) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:

जैसे-जैसे कस्बे बढ़ते हैं, वे ..... और ..... को अधिकार में ले लेते हैं। अनियमित और क्षेत्रीय रूप में खुला क्षेत्र ..... में बदल जाता है। इस प्रकार भूमि अपने सभी ..... संसाधन के साथ नष्ट हो जाती है।

9.4 शहरीकरण और सामाजिक संगठन

आपने भाग 9.1 में पढ़ा है कि सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया के फलस्वरूप शहरीकरण होता है। इसके बदले शहरीकरण से एक ऐसी विशेष प्रकार की सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न होती है जिसके कुछ सकारात्मक पहलू होते हैं और कुछ नकारात्मक। शहरी क्षेत्रों में सामान्य तौर पर परिवहन, बिजली, स्वास्थ्य देखभाल आदि जैसी कुछ बेहतर सुविधाएँ होती हैं। परन्तु साथ ही शहरी क्षेत्रों में गरीब अस्वास्थ्यकर दशा में रहते हैं। शहरी क्षेत्र में एक ओर जहाँ सभी आधुनिक सुविधा सम्पन्न बहुमंजिली इमारतें होती हैं, वहीं दूसरी ओर गंदी बस्तियाँ और गेटो होते हैं।

9.4.1 धनी और निर्धन आवासीय क्षेत्र

एक सीमित क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में लोगों के रहने का परिणाम शहरीकरण है। जब शहरी क्षेत्र में बड़ी संख्या में लोगों का जमाव हो जाता है तो संसाधनों की माँग बढ़ती है। अधिक मकान बनाने पड़ते हैं, अधिक बिजली, पानी और मलजल निकासी की सुविधाएँ जुटानी पड़ती हैं। लोगों के स्वास्थ्य, शिक्षा और मनोरंजन का भी ध्यान रखना पड़ता है। कुछ शहरी क्षेत्रों में सभी माँगों को पूरा करने के लिए सुविधाएँ बढ़ाना संभव हो सकता है परन्तु अधिकांश शहरी क्षेत्रों में ऐसा नहीं है। जिस गति से माँग बढ़ती है, उस गति से सुविधाएँ सुलभ नहीं हो पाती हैं। आबादी की तुलना में सुविधाएँ बहुत धीरे-धीरे बढ़ती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि शहरी इलाकों में रहने वाले लोगों को बस्तियों की सभी सुविधाएँ नहीं मिल पाती हैं और अधिकांश को तो न्यूनतम सुविधाएँ भी नहीं मिल पाती हैं। सम्पूर्ण विश्व के अधिकांश शहरी इलाकों में धनी और निर्धन आवासीय क्षेत्रों से यह स्पष्ट दिखाई देता है। विकासशील देशों में यह समस्या और भी अधिक विकट है, क्योंकि सरकारों की वित्तीय स्थिति पहले से ही बहुत संतोषजनक नहीं है और उपलब्ध साधनों की अपेक्षा माँगें बहुत अधिक हैं।

तृतीय विश्व के अधिकांश देशों के शहर वास्तव में दो शहर होते हैं। उसका एक भाग जिसे धनी वर्ग का निवास स्थान कहा जा सकता है और दूसरा भाग निर्धन वर्ग का है। इन दोनों क्षेत्रों के बीच बहुत आसानी से अंतर किया जा सकता है क्योंकि उनमें कई प्रकार से अंतर है। जिस क्षेत्र में धनी वर्ग रहता है, वहाँ आबादी का घनत्व कम है, मकानों, सड़कों, पार्कों आदि की बेहतर व्यवस्था है। उन्हें जल आपूर्ति और मलजल निकास सुविधाएँ पूर्णतः उपलब्ध हैं। बिजली की सप्लाई अधिक नियमित है और संचार सुविधाएँ भी पर्याप्त रूप में उपलब्ध हैं। जबकि जिस किसी भी शहरी क्षेत्र में निर्धन वर्ग रहता है, वहाँ आबादी का घनत्व बहुत अधिक होता है और घर बहुत ही घटिया निर्माण सामग्री से बने होते हैं तथा गैर-कानूनी निर्माण होता है या यहाँ तक कि मकान कूड़ा-करकट से बने होते हैं। पेयजल, मलजल निकास, कूड़ा-कचरा इकट्ठा करने और ब्ययन की सुविधा नाममात्र की होती है। स्वास्थ्य और शिक्षा संबंधी सुविधाएँ लगभग होती ही नहीं। जहाँ कहीं इन सुविधाओं की व्यवस्था की भी जाती है वहाँ वे आमतौर पर अपर्याप्त होते हैं। यहाँ तक कि स्थान चुनने के संदर्भ में भी निर्धन वर्गों का आवासीय क्षेत्र आम तौर पर मानव आवास के लिए अनुपयुक्त होता है। अच्छे क्षेत्रों की कीमतें हमेशा ऊँची होती है। इसलिए गरीबों के पास कम कीमत वाले क्षेत्रों में रहने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रहता है। ये नदियों के किनारे, रेलवे ट्रैकों के पास खाली स्थान, कारखानों, जल निकास नालियों, राजमार्गों आदि के समीप होते हैं। आम तौर पर इन स्थानों में बाढ़, अपर्याप्त जल निकासी प्रदूषण और दुर्घटनाओं आदि की समस्या बनी ही रहती है। परन्तु उनके पास कोई भी विकल्प नहीं है। तृतीय विश्व के अधिकांश शहरों में एक तिहाई या इससे भी अधिक निवासी इन बस्तियों में रहते हैं। यदि हम भारत में दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास का उदाहरण लें तो इन सभी शहरों के बहुत से लोग ऐसे रिहायशी इलाकों में रहते हैं जो गंदी बस्तियाँ हैं और जिन्हें आम तौर पर झुग्गी या चाल कहा जाता है।

यह अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2000 ई. तक भारत का प्रत्येक तीसरा नागरिक शहरी बस्तियों में रहेगा और शहरी जनसंख्या 35 करोड़ हो जाएगी। इन सभी लोगों को स्वस्थ निवास उपलब्ध करना असंभव होगा और ऐसी स्थिति में गंदी बस्तियों में रहने वाली जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि होगी।

यह प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। ब्रिटिश शासन काल के दौरान भी वे क्षेत्र जहाँ धनी वर्ग रहते थे, उन स्थानों से भिन्न थे जहाँ सामान्य भारतीय रहते थे। छावनी क्षेत्र, सिविल लाइन्स और रेलवे कालोनियाँ सभी सुविधाओं से भरपूर एवं सुनियोजित थीं, जबकि अन्य क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को वे सुविधाएँ बिल्कुल भी नहीं मिलती थीं। आज भी अधिकांश शहरी क्षेत्रों में यही प्रवृत्ति जारी है। यही कारण है कि गरीब क्षेत्रों में अनिवार्य सुविधाओं का अभाव है और इन इलाकों में रहने वाले लोग हर प्रकार की कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं। उन लोगों के अधिकांश समय अपने रिहायशी इकाइयों से बाहर रहने के लिए विवश होना पड़ता है क्योंकि ये घर बहुत छोटे होते हैं और उनमें रहने वाले लोग बहुत हैं। पश्चिमी देशों में जहाँ उपनगरीय क्षेत्रों में रहने वालों को शहर की सभी सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं विकासशील देशों से भिन्न हैं। गरीब देशों में इन उपनगरीय क्षेत्रों का वातावरण ग्रामीण क्षेत्र से मिलता-जुलता होता है। यहाँ सड़कों पर खुले पशु घूमते रहते हैं, और बसने वाले लोग शहरी सुविधाओं से वंचित रहते हैं। इन समस्याओं का हम सत्र 9.4.2 में वर्णन करेंगे।

9.4.2 गेटो और उपनगरीय निवास

भारत सरकार के योजना आयोग के निष्कर्षों के अनुसार 1981 में शहरों और कस्बों की गंदी बस्तियों में लगभग 4 करोड़ लोग रहते थे। 2001 तक गंदी बस्तियों की जनसंख्या सात करोड़ अस्सी लाख होने की संभावना है।

शहरी इलाकों में जैसे-जैसे लोगों की जनसंख्या बढ़ती है, शहरी क्षेत्रों में सुविधाएँ अधिक मँहगी होती हैं, औसत आय के अधिकांश लोगों के लिए शहरों में रहना मुश्किल हो जाता है, यद्यपि शहरी क्षेत्रों में काफी बड़ी तादाद में लोग रहते हैं परन्तु इनमें से कुछ ही लोग आरामदायक और स्वास्थ्यकर आवास खरीद सकते हैं, शेष लोगों के पास केवल दो विकल्प रह जाते हैं (1)निम्न स्तर के मकानों या झोपड़ियों में रहना (2)शहरी इलाकों से दूर रहना, प्रतिदिन अपने काम पर आने के लिए लम्बी दूरी तय करना। आज ये दोनों प्रवृत्तियाँ खासतौर पर गरीब देशों में दिखाई देती हैं।

भारत और इसके पड़ोसी देशों में, शहरों में रिहायशी इकाइयाँ बहुत बड़ी संख्या में हैं, जो स्वास्थ्यकर निवास के लिए उपयुक्त नहीं हैं। इनमें से कुछ तो दशाब्दी पहले मनुष्य

के निवास के लिए उपयुक्त थीं, परन्तु अब जीर्ण-शीर्ण हालत में हैं। इसलिए जो लोग बेहतर आवास के लिए धन व्यय कर सकते थे, उन्होंने उन जीर्ण-शीर्ण मकानों को छोड़ दिया है और जो अच्छी आवास के लिए असमर्थ थे, वे इन जीर्ण-शीर्ण मकानों में आ गए। इसके अलावा, इन लोगों ने इन्हें अपनी ही सम्पत्ति समझ ली है।

शहर के लोग गरीब गंदी बस्तियों में रहते हैं। इन इलाकों में रिहायशी इकाइयाँ सस्ती से सस्ती उपलब्ध सामग्री से बनी होती हैं। बहुधा इसमें प्रयुक्त सामग्री घटिया किस्म की होती है। शहरों में बहुत ही छोटे क्षेत्र में, बहुत बड़ी संख्या में रिहायशी इकाइयाँ बनाई जाती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में लगभग 20 प्रतिशत शहरी आबादी इन गंदी बस्तियों में रहती हैं।

शहर में दूसरी श्रेणी का कामकाजी वर्ग शहरी क्षेत्र से बाहर रहता है, जिसे उपनगरीय क्षेत्र कहा जाता है। उन्हें रोज़ अपने काम पर आने के लिए काफी यात्रा तय करनी पड़ती है। जैसा कि हम प्रतिदिन सुबह देखते हैं, कि ऐसे हज़ारों व्यक्ति रेल, ट्रामों, बसों, दुपहिया वाहनों, साइकिलों आदि से शहरी क्षेत्रों की ओर आते हैं। शाम को यही प्रवाह विपरीत दिशा को दिखाई देता है। इन यात्रियों की आवश्यकताओं को पूरा करना रोज़मर्रा की समस्या है। रेल गाड़ियों, बसों, ट्रामों आदि में काम पर जाने के समय बहुत भीड़ होती है। लोग खड़े-खड़े यात्रा करते हैं, यहाँ तक कि पायदानों और दरवाज़ों पर खड़े-खड़े तथा लटकते हुए जाते हैं। इस जोखिमभरी स्थिति में यात्रा से हर साल बहुत से लोग दुर्घटना का शिकार होते हैं। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास जैसे महानगरों में जो क्षेत्र इन शहरों के उपनगर माने जाते हैं, उनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। इसलिए दैनिक यात्रियों के लिए अधिक से अधिक रेलगाड़ियाँ, बसें और परिवहन के अन्य साधन काम पर लगाए जा रहे हैं। उपनगरों का निवास इस कारण से अच्छा होता है, क्योंकि इनसे शहरों पर दबाव कम होता है। परन्तु इसके साथ ही उनसे परिवहन पर दबाव बहुत पड़ता है जिसका पूरा उपयोग नहीं होता है। उदाहरण के लिए, शहरों से उपनगरों की ओर जाने वाली रेलगाड़ियों, बसों आदि का प्रातः पूरा उपयोग नहीं होता है और शाम को शहरों की तरफ आने वाली रेलगाड़ियों, बसों आदि का उपयोग पूरी तरह से नहीं होता है क्योंकि दोनों समय कामकाजी व्यक्तियों की यात्रा का प्रवाह एकतरफ़ा होता है।

ऐसे ही एक धनी वर्ग के वे व्यक्ति हैं जो शहरों के प्रदूषण, भीड़-भाड़ आदि के कारण उपनगरों में रहना पसंद करते हैं। इन उपनगरों में शहरों की सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, और भीड़-भाड़, प्रदूषण आदि की समस्याएँ भी नहीं हैं। अधिकांश धनी देशों में धनी वर्ग शहरों में रहना पसंद ही नहीं करते हैं। वे शहरों से बाहर रहना पसंद करते हैं। ऐसे लोगों में से अधिकांश के पास परिवहन के अपने साधन होते हैं, इसलिए उन्हें प्रतिदिन भीड़-भाड़ वाली रेलगाड़ियों, बसों, ट्रामों आदि से नहीं जूझना पड़ता है। यही कारण है कि इन देशों में गरीब लोगों को रिहायशी इकाइयाँ सौंपी जा रही हैं या इन्हें व्यापारिक केन्द्र के रूप में बदला जा रहा है। जो धनी लोग पहले इनमे रहते थे, अब शहरों से बाहर रहते हैं। दिल्ली, बंगलौर आदि में यह प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। उन धनी लोगों के लिए शानदार उपनगरीय क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहे हैं जो विवशता से नहीं, बल्कि स्वेच्छा से वहाँ रहने आए हैं।

9.4.3 शहरी जीवन में जाति प्रथा

भारत में जाति प्रथा एक महत्वपूर्ण कारक है। भारत में बहुत से कार्य जाति प्रथा से नियंत्रित होते हैं या प्रभावित होते हैं। इलाकों में आबादी का वितरण भी जाति प्रथा से प्रभावित होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में या तो उच्च जातियों और निम्न जातियों के अलग-अलग गाँव हैं या यदि वे एक ही गाँव में रहते भी हैं तो इलाके अलग-अलग होते हैं। अभी हाल ही तक, निम्न जाति के लोगों को अछूत समझा जाता था और उन्हें कूएँ, मंदिर आदि जैसी सुविधाओं से वंचित रखा जाता था। भारत सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इन बुराइयों को समाप्त करने के लिए विभिन्न उपाए किए हैं। फिर भी शहरी और ग्रामीण, क्षेत्रों में उच्च जातियों के बीच अभी भी यह अंतर मान्य हैं।

शहरी क्षेत्रों में जाति वितरण से संबंधित अध्ययनों से पता चलता है कि किसी एक क्षेत्र विशेष में किसी एक जाति की प्रधानता है। उदाहरण के लिए पुणे में कुछ क्षेत्रों में ब्राह्मणों का बाहुल्य है और इन क्षेत्रों में गैर-ब्राह्मण नहीं हैं। शहर के केंद्रीय भाग में व्यापारी, मुसलमान और गैर-स्थानीय व्यक्तियों की बहुलता है। शहर के पूर्वी और

उत्तर-पूर्वी भागों में अनुसूचित जाति और अन्य जाति के लोग हैं, जिन्हें हाल ही तक अछूत समझा जाता था। इसी प्रकार, शोलापुर में शहर के जिन भागों में मराठों की बहुत अधिक आबादी है, वहाँ ब्राह्मणों की संख्या भी काफी है। गैर-मराठा और लिंगायत अन्य भागों में बहुतायत में हैं।

अहमदाबाद में भी ऐसा ही अंतर विद्यमान है। जातियाँ वार्ड स्तर पर और यहाँ तक कि खंड स्तर पर भी अलग-अलग बसी हुई हैं। शहर के चारदीवारी क्षेत्र में मुसलमानों की अधिक आबादी है जो और अन्य स्थानों में प्रायः नगण्य है। ब्राह्मण पूरे शहर के सभी भागों में बसे हैं, यद्यपि कुछ इलाकों में वे अधिक हैं। भारत के अधिकांश शहरी केन्द्रों में कमोबेश ऐसी ही स्थिति है। स्पष्ट है कि इस प्रकार के विभाजन का मुख्य कारक जाति प्रथा है। परन्तु इसकी बुनियाद में आर्थिक कारक भी हो सकते हैं। यह देखा गया है कि उच्च जातियों का शुरू से ही भारतीय आर्थिक व्यवस्था पर प्रभुत्व रहा है। इसलिए वे उन विशेष सुविधा-प्राप्त स्थानों में रहे हैं जहाँ सबसे अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध थीं। हाल के वर्षों में व्यापारी समुदाय महत्त्वपूर्ण बन गया है। पहले उन्हें नीची नज़र से देखा जाता था और उनका मुख्य काम व्यापार था। इसलिए वे बाज़ार के क्षेत्रों में अधिक प्रभावशाली हैं। नीची जाति के लोगों को छोटे-मोटे कामों पर लगाया जाता था और आम तौर पर उनकी आर्थिक दशा भी खराब थी। इसलिए उन्हें ऐसे स्थानों में ही रहने पर संतोष करना पड़ता था, जिन्हें अन्य जातियों द्वारा तुच्छ समझा जाता था। सभी शहरों में ऊँची हैसियत के लोगों के क्षेत्र केन्द्र के समीप स्थित हैं और ऊँची हैसियत और ऊँची जाति एक समान ही हुआ करती है। ऊँची हैसियत का अंतर भी जाति के आधार पर आबादी को विभाजित करता है। इस प्रकार का विभाजन बहुत से शहरों और शहरी इलाकों में अभी भी विद्यमान है।

बोध प्रश्न 3

i) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में उपनगरीय क्षेत्रों में लोगों के रहने के कारण संक्षेप में बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

9.5 शहरीकरण और परिवार संरचना

दैनिक जीवन के पहलुओं पर शहरीकरण का प्रभाव पड़ता है। परिवार संरचना भी शहरीकरण से अछूती नहीं रही है। शहरी समुदाय में पारिवारिक जीवन की संकल्पना ग्रामीण समुदाय की संकल्पना से भिन्न है। शहरी समाज में आम तौर पर परिवार एकात्मक या केन्द्रक (नाभिक) होते हैं। ऐसे परिवारों का बहुत ही कम प्रतिशत है जो संयुक्त अथवा एकात्मक परिवार हैं, जबकि ग्रामीण समाज में बहुत से घरों के संयुक्त परिवार होते हैं। परिवार में यह परिवर्तित शहरीकरण का प्रत्यक्ष प्रभाव है अब हम बड़े संयुक्त परिवारों को छोटे एकात्मक परिवार में विभाजित करने के उत्तरदायी कारकों का अध्ययन करेंगे।

9.5.1 रिहायश के लिए स्थान और परिवार विभाजन

शहरी समाज में सबसे विकट समस्या रिहायशी स्थानों की है। जैसे-जैसे शहरीकरण बढ़ता है, वैसे-वैसे शहरी इलाकों में जनसंख्या में भी वृद्धि होती है, और प्रतिव्यक्ति उपलब्ध स्थान में कमी आती है। इसलिए परम्परागत संयुक्त परिवार टूटते हैं और प्रत्येक उप-परिवार स्वतंत्र रूप से अलग रहता है। फिर भी, शहरी इलाकों में परिवारों का विभाजन का मात्र कारक आवास स्थान की उपलब्धता नहीं है। यदि एक संयुक्त परिवार विभाजित होकर चार छोटे-छोटे परिवार बनते हैं तो उनमें से प्रत्येक परिवार को इतने से अधिक स्थान की ज़रूरत होगी जितनी कि चार परिवारों को एक साथ रहने पर ज़रूरत होती है। आय में असमानता परिवारों के विभाजन को प्रभावित करने वाला तात्कालिक

कारक है। परिवर्तित जीवन प्रतिमान है। शहरों में जीवन बहुत गतिशील और आत्म-केन्द्रित है। प्रत्येक व्यक्ति अपने में या अपने निकटतम आश्रितों तक ही सीमित है और जैसे ही ये आश्रित स्वतंत्र होते हैं, उनके प्रति चिन्ताएँ भी कम हो जाती हैं। इस वातावरण में प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए ही संघर्ष करता है। इस प्रक्रिया में यदि परिवार का कोई घटक बेहतर जीवन निर्वाह की क्षमता रखता है तो वह अपने परिवार के अन्य सदस्यों के कारण तकलीफें नहीं झेलना चाहता है। इसलिए वे परिवार से अलग रहने की तरजीह देते हैं और स्वतंत्र रूप से रहते हैं। इससे आपको मालुम हो गया होगा कि अधिकांश परिवार किस प्रकार टूटते हैं। यदि एक परिवार में तीन भाई हैं और उन सभी की आय आदि एक समान नहीं होती है, जब उनमें से किसी की अच्छी आय है तो वह अपने अन्य भाइयों की कम आय के कारण कष्ट झेलने की अपेक्षा अलग रहना और बेहतर जीवन बिताना अच्छा समझेगा। शहरी आबादी में प्रवासी लोगों का एक और वर्ग है। गैर-शहरी क्षेत्र का कोई संयुक्त परिवार शहरी क्षेत्र में प्रवास के लिए आता है तो उसे उचित कीमत पर उपयुक्त आवास स्थान मिलने में कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में परिवार के केवल कुछ ही सदस्य शहरी क्षेत्रों में आते हैं, जबकि अन्य सदस्य अपने मूल स्थान में रह जाते हैं। इसलिए भी परिवार का विभाजन होता है। यह कोई असाधारण बात नहीं है, कि शहरी क्षेत्रों में केवल पुरुष ही रहते हैं, जबकि महिलाएँ और बच्चे गाँव में ही रहते हैं। ऐसा शहरी आवास को कम खर्चीला बनाने के लिए किया जाता है। एक व्यक्ति अकेले, खासतौर पर पुरुष सदस्य, बहुत कम खर्च करके भी शहर में रह सकता है। इस प्रकार पुरुष सदस्य स्वयं अपना तथा गाँव में रह रहे अपने परिवार का भरण-पोषण करता है और समय-समय पर उनसे मिलने जाता है। महानगरों में इस प्रकार टूटे हुए दो प्रकार के परिवार मिलते हैं। इनमें से कुछ दो तरीकों से विभक्त होते हैं : 1) जिसमें परिवार का पुरुष सदस्य एकमात्र उच्च आय वाले क्षेत्र में रहता है, जबकि दूसरे घटिया इलाके में रहते हैं, जहाँ आवास इतना अच्छा नहीं है, और 2) जिसमें परिवार के एक या अधिक सदस्य गाँव में रह जाते हैं।

9.5.2 व्यावसायिक गमनशीलता और परिवार का आवागमन

शहरीकरण के फलस्वरूप कई प्रकार के व्यवसाय शुरू हो गए हैं और बहुत से ऐसे व्यवसाय हैं जहाँ लोगों को समय-समय पर आना-जाना पड़ता है। उदाहरण के लिए, शहरी इलाकों में बहुत से लोग रहते हैं जिनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण होता रहता है। कभी-कभी तो उनका स्थानांतरण देश के एक कोने से दूसरे कोने में हो जाता है। कुछ अन्य व्यक्ति भी होते हैं जैसे ट्रेवलिंग सेल्समैन जिनका काम ही ऐसा है कि उन्हें लगातार यात्रा करनी पड़ती है, ऐसे ही ट्रेवलिंग एजेंट भी हैं। इस प्रकार की व्यावसायिक गतिशीलता परिवार में भी होती है। जब लोगों का स्थानांतरण एक शहर या शहरी इलाके से दूसरे शहर या शहरी इलाके में होता है तो परिवार को भी काफी दबाव सहना पड़ता है। इसे न केवल अपनी गृहस्थी और सामान ही ले जाना पड़ता है, बल्कि उसे नई आवास की स्थितियाँ, नए पड़ोसी, नया घर आदि भी अपनाने पड़ते हैं। बच्चों को भी अपने नए स्कूलों, नए शिक्षकों, स्कूल के नए साथियों आदि नई वस्तुओं से मेलजोल बढ़ाना पड़ता है। कभी-कभी अनुकूलन काफी कठिन होता है और विभिन्न प्रकार से परिवार पर दबाव पड़ता है। जहाँ तक कार्यरत सदस्यों का संबंध है, वह परिवार के अन्य सदस्यों की अपेक्षा नए स्थान में अधिक आसानी से घुल-मिल जाते हैं क्योंकि वे मानसिक रूप से इस परिवर्तन के लिए तैयार रहते हैं। परंतु परिवार के अन्य सदस्यों को नए स्थान, नया वातावरण और नए पड़ोस से तालमेल बनाने में काफी कठिनाई उठानी पड़ती है। यह ऐसे शहरी जीवन का अप्रत्यक्ष सामाजिक परिणाम है, जिसमें व्यावसायिक गमनशीलता की ज़रूरत होती है।

बोध प्रश्न 4

व्यावसायिक गमनशीलता की मुख्य कमियाँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

9.6 संस्कृति और शहरीकरण

शहरीकरण का प्रभाव न केवल कार्य के स्वरूप, रहने की परिस्थितियों, पारिवारिक संबंधों आदि पर ही पड़ता है बल्कि लोगों की संस्कृति पर भी पड़ता है। संस्कृति पर शहरीकरण का यह प्रभाव दो प्रकार का होता है। एक ओर तो शहरीकरण भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के लोगों को एक साथ लाता है ताकि वे सांस्कृतिक विरासत का आदान-प्रदान कर सकें और दूसरी ओर शहरीकरण जीवन को गमनशील और प्रतियोगी बनाता है। इसलिए सांस्कृतिक कार्यकलाप के लिए समय भी नहीं बच पाता है। परंतु शहरों की आबादी तेजी से बढ़ने के कारण मनोरंजन के कुछ स्थलों की क्षति हो रही है जैसे पार्क, बाग-बगीचे, हरित पट्टी, पटरियाँ आदि।

9.6.1 मनोरंजन के साधन

शहरीकरण मनोरंजन के नए साधन प्रदान करता है। उदाहरण के लिए शहरी इलाकों में सिनेमाघर, वीडियो पार्लर, थियेटर, प्रदर्शनी गैलरियाँ आदि होती हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में या तो उपलब्ध ही नहीं हैं या कुछ ही स्थानों पर होते हैं जिनसे अन्य क्षेत्रों के व्यक्ति लाभांवित नहीं हो पाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का शहरों की ओर आकर्षित होने के कई कारणों में से एक कारण यह भी है। यहाँ तक कि मनोरंजन के सामान्य साधन जैसे पार्क, खेल के मैदान आदि भी ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त नहीं हैं।

क्लब, गोल्फ कोर्स, जिमखाना, रेस्तराँ, आदि ऊँची आमदनी वाले लोगों के मनोरंजन के साधन हैं। सिनेमा, वीडियो पार्लर, थियेटर, प्रदर्शनी गैलरियाँ आदि से गरीबों को सस्ता मनोरंजन मिलता है। देर रात्रि के सिनेमा शो में उन लोगों की बहुलता रहती है, जो दिन में रिक्शा, ऑटो, टैक्सी चलाते हैं या मजदूरी करते हैं। सिनेमा शो में वे कम से कम तीन घंटे जीवन की वास्तविकता तो भूल ही जाते हैं। वे अपने को उस स्वप्निल जीवन का एक अंग मान बैठते हैं। जैसा कि आमतौर पर सिनेमा में दिखाया जाता है।

9.6.2 सांस्कृतिक मिश्रण

शहरी क्षेत्रों में, विशेषकर महानगरों में बहुत भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के लोग साथ-साथ रहते हैं। यह सकारात्मक प्रभाव है कि वे लोग एक-दूसरे की संस्कृति का परिचय पाते हैं और अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, इससे वे उन बाधाओं को तोड़ते हैं जो पहले उनके बीच में विद्यमान थीं, इससे सांस्कृतिक मिश्रण होता है। उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि किसी भी बड़े शहर में लोग होली, दिवाली, ईद, गुरुपर्व, क्रिसमस, काली पूजा, गणेश पूजा और अन्य इसी प्रकार के उत्सवों में रुचि के साथ भाग लेते हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत से लोगों को इन उत्सवों की जानकारी भी नहीं होती क्योंकि वे उत्सव उन लोगों के स्थानीय उत्सव नहीं होते हैं। देश के प्रत्येक क्षेत्र के अपने विशिष्ट सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं जैसे संगीत, नृत्य, लोकगीत आदि। ये विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में ही आयोजित होते हैं। शहरी क्षेत्रों में, विशेषकर महानगरों में जहाँ देश के भिन्न-भिन्न भागों के लोग रहते हैं, वहाँ यह देखा जा सकता है कि वे लोग बहुधा अपने-अपने उत्सवों को इकट्ठे मनाते हैं। भारत सरकार भी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, दोनों स्तरों पर ऐसे सांस्कृतिक कार्यक्रम (अपना उत्सव, मेले आदि) आयोजित करके सांस्कृतिक मिश्रण को प्रोत्साहित कर रही है। निसंदेह यह शहरीकरण की सकारात्मक प्रवृत्ति है क्योंकि इसमें विभिन्न संस्कृतियों के लोगों को नजदीक आने का अवसर मिलता है।

फिर भी, कुछ लोगों की राय है कि विभिन्न संस्कृतियों के मिश्रण से उसकी विशुद्ध सांस्कृतिक अस्मिता घट जाएगी। परंतु इस बात को ध्यान में रखना ज़रूरी है कि संस्कृतियों की विशुद्धता बनाए रखने के लिए लोगों में दूरी बनाए रखना ज़रूरी नहीं है। शहरी क्षेत्रों में कुछ समय अंतर्जातीय और अंतर्राज्यीय विवाह नहीं होते थे लेकिन अब लोग इसे अपराध नहीं मानते हैं। यह भी एक प्रकार का सांस्कृतिक मिश्रण ही है।

बोध प्रश्न 5

लोगों को शहरीकरण द्वारा प्रदान किए गए मनोरंजन के साधन क्या हैं?

.....

9.7 शहरीकरण का मनोवैज्ञानिक पहलू

यह शहरीकरण का सबसे अधिक आकर्षक पहलू है। यदि शहरी निवासियों के मनोविज्ञान का विश्लेषण किया जाए तो यह ग्रामीण पृष्ठभूमि के व्यक्तियों से भिन्न होगा। शहरी इलाकों में निवासियों के बीच अवैयक्तिक संबंध, सतही और व्यावहारिकता पर आधारित होते हैं। कोई भी व्यक्ति किसी भी ऐसे व्यक्ति से संपर्क बनाने की परवाह नहीं करता है जो उसके लिए किसी प्रकार से लाभदायक न हो। बहुधा लोगों को यह भी पता नहीं होता कि उसका पड़ोसी कौन है। शहरी व्यवस्था में आने-जाने की दूरी और गठित शहरी जीवन तथा अन्य दबावों के कारण समय को बढ़ा-चढ़ाकर महत्त्व दिया जाता है। इसके विपरीत, ग्रामीण क्षेत्रों में संबंधों को महत्त्व दिया जाता है। ये संबंध बहुत व्यक्तिगत, निकटतम और निःस्वार्थ होते हैं ये रिश्ते ऐसे होते हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी लंबे समय तक चलते हैं। विभिन्न प्रकार के दबावों के कारण ऐसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जिनका सामना शहरवासियों को प्रतिदिन करना पड़ता है। हम आगे वाले भाग में इन दबावों के बारे में अध्ययन करेंगे।

9.7.1 अति अंतःक्रिया के कारण दबाव

मुख्य रूप से मनुष्य छोटे-छोटे समूह में रहना पसंद करता है जो गाँव के अनुरूप है। आदिकाल से नवप्रस्तरयुग तक मनुष्य छोटे-छोटे समुदायों में रहा है और आज भी अधिकांश व्यक्ति उसी तरह रहना पसंद करते हैं। फिर भी, शहरी जीवन बहुत भिन्न है। शहरी जीवन का पहला लक्षण अति अंतःक्रिया है। उदाहरण के लिए, शहरी व्यक्ति को प्रतिदिन स्टोर क्लर्क, खजांची, बस कंडक्टर, टैक्सी ड्राइवर, छात्रों, साथियों, सहयात्रियों और सिनेमा जाने वालों, रेस्तराँ, बैरा, लिफ्ट ऑपरेटर, भिखारी, सब्ज़ी विक्रेता आदि के संपर्क में आना पड़ता है। इनमें से सभी के साथ अंतःक्रिया असंभव है। इसलिए शहरी व्यक्ति अपना संपर्क केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रखता है जो उसके लिए लाभकर हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई व्यक्ति बस के अंदर जाता है तो उसका हित केवल कंडक्टर से जुड़ा होता है, जिसे वह पैसे देता है और टिकट लेता है। उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि कंडक्टर का नाम क्या है, वह कहाँ का रहने वाला है और उसका पारिवारिक जीवन कैसा है। इसलिए बड़े शहरों और महानगरों के माहौल में अच्छी तरह से ढले हुए नागरिकों ने यह सीख लिया है कि वे उन बातों से बचे रहें जो उनके हित के अनुकूल नहीं हैं। उन्होंने अपने दैनिक जीवन से विरक्त होना सीख लिया है। फिर भी, किसी के लिए भी यह संभव नहीं है कि वह बहुत से प्रेरकों और अंतःक्रियाओं से अपने आपको बचा सकें। हमारी अभिवृत्ति चाहे कैसी भी हो हम भीड़-भाड़, अति अंतःक्रिया आदि से निष्प्रभावी नहीं रह सकते हैं। उदाहरण के लिए जब एक सौ व्यक्तियों को एक मकान या अपार्टमेंट में रहने के लिए बाध्य किया जाता है जो केवल 20 व्यक्तियों के लिए ही पर्याप्त है या अस्सी व्यक्तियों को एक बस में ठूँसा जाता है जो केवल पचास व्यक्तियों के लिए है, ऐसी स्थिति में समस्या का होना स्वाभाविक है। यहाँ पर शारीरिक और मानसिक, दोनों प्रकार की अंतःक्रियाएँ हैं। उदाहरण के लिए, भीड़-भरी बस में हमें शारीरिक और मानसिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भीड़-भरी बस में प्रत्येक व्यक्ति मानसिक एकांतता चाहने पर भी नहीं पा सकता। भीड़ भरे अपार्टमेंट में लोगों को पानी की कमी, शौचालय सुविधाएँ, शोर आदि के रूप में समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनकी एकांतता को खतरा भी हो जाता है। फिर भी, यह जानना दिलचस्प है कि अधिक घनत्व की सोसायटी में लोग दूसरों की एकांतता की परवाह नहीं करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि लोग दूसरे की एकांतता में अधिक से अधिक हस्तक्षेप करते हैं। इससे कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए सुनियोजित रिहायशी क्षेत्रों में लोगों को अपने पड़ोसियों से कोई वास्ता नहीं होता है। उन्हें इससे कोई सरोकार नहीं है कि उनसे मिलने कौन आता है, उस मकान में कितने लोग रहते हैं, उनके खान-पान

की कैसी आदतें हैं आदि। जबकि भीड़-भाड़ की बस्तियों में प्रत्येक को अपने पड़ोसियों की हर बात की जानकारी होती है। उन्हें इसके लिए कोई प्रयास भी नहीं करना पड़ता है। इससे काफी दबाव, भ्रम और कई मनोवैज्ञानिक समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, प्रायः यह देखा गया है कि भीड़ भरी परिस्थितियों में रहने वाली माताएँ अपने बच्चों के साथ उपयुक्त भावात्मक संबंध नहीं बना पाती हैं। इससे बच्चों का नैतिक विकास नहीं हो पाता है।

भीड़ से हिंसात्मक मनोवृत्ति भी आ सकती है। यह भी देखा गया है कि यदि सामान्य बच्चों को भीड़-भरी परिस्थितियों में रखा जाता है तो उनमें उग्र आदतें जैसे लड़ना झगड़ना, छीना-झपटी, खिलौने तोड़ने आदि की प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं। सरकारी रिपोर्ट से यह पता चलता है कि प्रौढ़ भी भीड़-भरी परिस्थितियों में उग्र होते हैं।

9.7.2 परिवर्तित पर्यावरण के कारण दबाव

शहरी इलाकों में आबादी का अधिक भाग उन लोगों का होता है जो शहरी मूल के निवासी नहीं हैं, परंतु वे किसी न किसी कारण गैर-शहरी क्षेत्रों से आकर बस गए हैं। जैसे रोज़गार, व्यापार, शिक्षा आदि के लिए। ऐसे व्यक्तियों के ग्रामीण से शहरी पर्यावरण में आकस्मिक परिवर्तन से उन्हें नए पर्यावरण के अनुकूल होने में कठिनाई होती है। उन्हें कई तनावों और दबावों को झेलना पड़ता है।

यह बताया गया है कि शहरी आबादी में मूल शहरी निवासियों की अपेक्षा अप्रवासी निवासियों में मानसिक रोग अधिक होता है। यह प्रवृत्ति विश्व के अधिकतर शहरों में देखी गई है। फिर भी, यह कहना संभव नहीं है कि केवल अप्रवासियों में ही इसके लक्षण होते हैं। यह बदले हुए जीवन के कारण भी हो सकता है। ग्रामीण पर्यावरण में लोग एक-दूसरे से बहुत निकटता से जुड़े होते हैं। अगर कोई बीमार होता है तो अन्य लोग यह सोचते हैं कि उसकी देखभाल करना उनका उत्तरदायित्व है। इस प्रकार, संपूर्ण समुदाय उसकी देखभाल करता है, जबकि शहरी पर्यावरण में ऐसी परंपरा नहीं है। शहरी पर्यावरण में इसलिए अप्रवासी एकाकीपन महसूस करते हैं और उनके लिए यह बड़ा आघात है जिसे सहन करने में उन्हें बहुत तकलीफ होती है। पहले की अपेक्षा आज अधिक लोग अकेले रहते हैं। यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी इलाके अधिक हैं, प्रत्येक व्यक्ति परिवार या व्यक्ति तक का भी अपना अलग अस्तित्व होता है और प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अकेला होता है। फिर भी जैसा कि हमने पहले बताया है कि ग्रामीण संरचना के मामले में ऐसा नहीं है। इसलिए जो लोग ग्रामीण जीवन की कीमत पर शहरी जीवन अपनाते हैं, उन्हें तनाव झेलने पड़ते हैं तथा आम तौर पर वे शहरी के रूप में अपनी पहचान नहीं बना पाते। केवल उनकी दूसरी या तीसरी पीढ़ी सही रूप से शहरी बन पाती है।

आपने शहरों में देखा होगा कि नए अप्रवासी अपना ग्रामीण रंग-ढंग बनाए रखते हैं। वे उसी प्रकार ग्रामीण तरीकों से रहते हैं, तथा ग्रामीण किस्म का भोजन करते हैं, आदि। जब उन्हें ऐसे जीवनयापन के अवसर नहीं मिलते हैं तो वे निराश हो जाते हैं और उन्हें आघात पहुँचता है। वे जल्दी से जल्दी अपने आपको शहरी जीवन के अनुकूल नहीं ढाल पाते हैं। संभवतः उनमें मानसिक रोग की उच्च दर होने का यह भी कारण हो सकता है। प्रायः यह देखा गया है कि यदि गंदी बस्ती के लोगों को आवास एस्टेट में निवास का स्थान दिया जाता है, जहाँ बेहतर सुविधाएँ उपलब्ध हैं तो वे भावात्मक रूप से दुखी रहते हैं। ऐसे कई दृष्टांत हैं जहाँ लोगों के सुसम्बद्ध सामुदायिक जीवन को विखंडित करने पर वे स्थायी रूप से नाखुश और बीमार पड़ गये।

इसके अलावा यदि हम पर्यावरण के प्रदूषण विशेषकर वायु प्रदूषण पर विचार करते हैं तो ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्र अधिक प्रदूषित होते हैं। आप्रवासी इससे भी प्रभावित होते हैं। वे घुटन महसूस करते हैं, तथा मूल शहरियों की अपेक्षा अधिक आसानी से कई रोगों से ग्रस्त भी हो जाते हैं।

बोध प्रश्न 6

अप्रवासी शहरी निवासियों में मूल शहरी निवासियों की अपेक्षा मानसिक रोग के उच्च दर के क्या कारण हो सकते हैं?

.....

9.8 पशु और शहरीकरण

शहरीकरण के अंतर्गत बहुत बड़ी संख्या में मकान, अधिक सड़कें, कारखाने, पार्किंग स्थल आदि बनाए जाते हैं। इन सबके लिए या तो कृषि भूमि का उपयोग होता है या वन काटकर भूमि उपलब्ध की जाती है। अभी तक एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है जहाँ बंजर भूमि पर शहर बनाए गए हों। हमेशा कृषि भूमि या वन भूमि का ही उपयोग किया गया है। कुछ स्थानों पर समुद्र तटों, झीलों और नदियों को पाटकर बढ़ती हुई आबादी के लिए भूमि उपलब्ध की जाती है। इन दृष्टांतों में भी उनके प्राकृतिक निवासियों को बाधा पहुँचती है या वे नष्ट हो जाते हैं।

शहरीकरण से नए किस्म के पौधे और पशुओं का भी प्रचलन होता है। जब मनुष्य किसी स्थान पर रहना शुरू करता है तो वह उन पशुओं और पौधों को आश्रय देता है जिनका तात्कालिक महत्व है। जैसे जहाँ कुत्ते, घोड़े, गाय और अन्य पालतू पशु रहते थे वहाँ पार्क और बाग बनाए जाते हैं वहाँ सजावट और आर्थिक महत्त्व के पौधे लगाए जाते हैं। पशुओं, जीव-जंतुओं की भी एक अन्य श्रेणी होती है, जो स्वतः शहरी क्षेत्रों में रहना शुरू कर देते हैं जैसे चूहे, कौवे, मच्छर, मक्खियाँ आदि।

9.8.1 वन्य प्राणियों का ह्रास

शहरों, शहरी इलाकों और कृषि क्षेत्रों के बीच अंतर का पता लगाना आसान है। कृषि क्षेत्र खाद्य सामग्री और दैनिक उपयोग की अन्य वस्तुओं की आपूर्ति करते हैं। समुद्रीपत्तन अधिकतर नदियों के मुहाने पर होते हैं जहाँ नदी के डेल्टा पर मिट्टी का जमाव होता है। इन डेल्टाओं में उपजाऊ मिट्टी होती है। इसी प्रकार, मुख्य सड़कें नदियों की घाटियों से होकर जाती हैं। नदियों के मुहानों में भी सर्वोत्तम कृषि मृदा होती है। इसलिए शहरीकरण और कृषि भूमि में गंभीर संघर्ष रहता है। अभी भी प्रतिवर्ष हजारों हेक्टेयर भूमि जो शहरीकरण के काम में आ रही है कृषि के काम आ सकती है, आपने पिछले भाग में पढ़ा है कि इस क्षति को पूरा करने के लिए कृषि के वास्ते नए इलाकों को काम में लाया जा रहा है। बंजर और वनस्पतिहीन भूमि को कृषि के काम में लाना बहुत कठिन है। इसलिए कृषि प्रक्रिया में हमेशा प्राकृतिक उर्वरता से भरपूर क्षेत्र को कृषि पारितंत्रों में बदलने की प्रवृत्ति रहती है। इसलिए प्राकृतिक वनस्पति (पेड़-पौधों) को साफ करना पड़ता है जिससे प्राणीजात भी लुप्त हो जाते हैं। बाद में जब पारितंत्र फलता-फूलता है तो नए प्रकार के पौधे और जीव-जंतु उस क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं। कई शहर भी पूर्णतः वनों की कीमत पर विकसित हुए हैं। इसके अलावा मुख्य मार्गों और रेल की पटरियों के निर्माण से भी प्राकृतिक वनस्पतिजात और प्राणीजात समाप्त हो जाते हैं। शहरों की स्थापना के कारण होने वाले प्रभाव की अपेक्षा मुख्य मार्गों और रेल पटरियों के निर्माण से होने वाला प्रभाव अधिक हानिकारक है क्योंकि शहरों को जोड़ने के लिए मुख्य मार्ग कई सौ किलोमीटर जंगलों से होकर जाता है। जब शहरीकरण का विस्तार समुद्र के तटीय क्षेत्रों और नदियों तथा झीलों के किनारे होता है तो वहाँ भी प्राकृतिक पौधों और पशुओं को बाधा पहुँचती है। पानी से सटे हुए इलाके पर भी कब्ज़ा कर लिया जाता है, पानी में मिट्टी और कूड़ा-कचरा डालकर उसे भरा जाता है। इस तरह से पानी के अंदर और बाहर रहने वाले पौधे तथा जीव-जंतु समाप्त हो जाते हैं। जब प्राकृतिक प्रजातियाँ समाप्त हो जाती हैं, तब शहरी वातावरण की प्रजातियाँ आने लगती हैं जैसे-जैसे चूहे, तिलचट्टे, कठफोड़वा, गौरया आदि। इस समस्या का एक और पहलू भी है। ये प्रजातियाँ वहीं पाई जातीं हैं जहाँ मनुष्य का विकास होता है। इनमें शहरी पर्यावरण को अपनाने की क्षमता होती है। वे तत्काल उस क्षेत्र में आ जाते हैं और प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं। मच्छर, मक्खियाँ और अन्य प्रकार के कीड़े भी इसी श्रेणी में आ सकते हैं। ये सभी मानव आबादी के साथ-साथ बढ़ते रहते हैं और कई प्रकार के रोग फैलाते हैं जैसे मलेरिया, प्लेग आदि। शहरीकरण से एक ओर तो कई उपयोगी प्रजातियाँ नष्ट होती हैं, दूसरी ओर हानिकारक प्रजातियों को आश्रय मिलता है।

9.8.2 घरेलू और पालतू पशु

पशुओं से मनुष्य का साथ बहुत पुराने समय से रहा है। पहले केवल जंगली पशुओं से सरोकार था परंतु बाद में मनुष्य ने विभिन्न प्रयोजनों के लिए इन्हें पालतू बनाना शुरू किया, जैसे–

i) भोजन के लिए
ii) यात्रा के लिए
iii) भार ढोने के लिए, जैसे भूमि की जुताई और परिवहन खींचने के लिए बलवान पशु
iv) मनोरंजन के लिए।

पालतू बनाने के लिए पशुओं का चयन आम तौर पर आज्ञापरायणता या देखने में सुंदरता और उनकी उपयोगिता के आधार पर किया गया था। उदाहरण के लिए बलवान पशु जैसे हाथी, ऊँट, घोड़ा, बैल आदि उनकी शारीरिक शक्ति के कारण पालतू बनाए गए, जबकि कुत्ते उनके चौकन्ने और आज्ञाकारी होने के कारण सुरक्षा के लिए चुने गए, गाय, भैंस, सूअर, मुर्गी आदि गोश्त के रूप में भोजन, दूध, अंडे आदि और भेड़ें ऊन, गोश्त और दूध प्राप्त करने के लिए पालतू बनायी गईं, बिल्लियों को मनोरंजन के लिए और चूहे मारने के लिए पालतू बनाया गया। खरगोश और विभिन्न प्रकार के पक्षियों को उनकी सुंदरता के कारण पालतू बनाया गया।

उपर्युक्त दृष्टांतों से यह स्पष्ट है कि शहरीकरण के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की प्रजातियों को भी उन स्थानों में लाया गया जहाँ पहले प्राकृतिक वनस्पति और जीव-जंतु थे।

बोध प्रश्न 7
कुछ पशुओं, जीव-जंतुओं के नाम बताइए जिनमें आसानी से शहरी पर्यावरण के अनुकूल ढलने की क्षमता है।

.....

.....

.....

.....

.....

9.9 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि:

- औद्योगिक और जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप शहरीकरण होता है।
- शहरी इलाकों में बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए कृषि भूमि और वनों को निर्मित क्षेत्र के रूप में परिवर्तित किया जाता है। इससे प्राकृतिक निवासियों को बाधा पहुँचती है और क्षेत्र की वनस्पतिजात तथा प्राणीजात समाप्त होती है।
- अत्यधिक निर्मित-क्षेत्रों के कारण भूमिगत पानी का स्तर घटता है। शहरी आबादी की पानी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए खेती और ग्रामीण क्षेत्रों की ज़रूरत की कीमत पर पानी बहुत दूर से लाया जाता है।
- शहरी इलाकों में व्यापक रिहायशी स्थानों के कारण अप्रवासियों को या तो गंदी बस्तियों या उपनगरीय क्षेत्रों में रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है। गंदी बस्तियों में इन लोगों को घटिया रिहाइशी सुविधाओं में रहना पड़ता है और उपनगरीय क्षेत्रों में व्यावसायिक गमनशीलता से जूझना पड़ता है। इससे भी परिवार का विभाजन होता है।
- शहरी लोगों को लंबी दूरी से तय करने और शहरी जीवन की तेज गति के कारण दबाव का सामना करना पड़ता है जिससे वे मानसिक रोगी हो जाते हैं। इसलिए उनमें उदासीन

अभिवृत्ति विकसित होती है। अन्य लोगों के साथ उनका संबंध अवैयक्तिक, सतही और उपयोगिता के आधार पर होता है। शहरीकरण की अच्छी बात यह है कि यहाँ विभिन्न संस्कृतियों का मिश्रण होता है।

- वनों की कटाई और कृषि भूमि को रिहायशी क्षेत्र में परिवर्तित करने से प्राकृतिक प्रजातियाँ समाप्त हो जाती हैं। जब प्राकृतिक प्रजातियाँ समाप्त हो जाती हैं तब इनके स्थान पर शहरी पर्यावरण के स्थानिक अन्य प्रजातियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। शहरीकरण से आर्थिक और सजावट के महत्त्व के पौधे तथा पशु भी पाए जाते हैं।

9.10 अंत में कुछ प्रश्न

1) 1961 और 1971 की भारत की जनगणना में शहरी क्षेत्रों की परिभाषा किस प्रकार की गई है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) शहरी आबादी बढ़ने के पाँच कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) "तृतीय विश्व के अधिकांश शहर वास्तव में दो शहर हैं।" संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) शहरी इलाकों के निवासियों के बीच संबंध अवैयक्तिक, सतही और उपयोगिता के आधार पर होते हैं। कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति से कोई वास्ता नहीं रखता जो उसके लिए उपयोगी न हो। कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) शहरी क्षेत्रों की आबादी के वितरण को जाति कारक किस प्रकार प्रभावित करता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.11 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) संयुक्त राष्ट्र संघ की सिफारिशों के अनुसार 20,000 से अधिक आबादी वाले सभी स्थान जहाँ लोग समीप और साथ रहते हों, शहरी क्षेत्र हैं।

   ii) संयुक्त राज्य अमेरिका में "शहरी स्थान" का अभिप्राय ऐसी बस्ती से है जहाँ 2,5000 से अधिक लोग समीप और साथ रहते हैं।

2) उत्पादनकारी फसली भूमि, कीमती वन, निर्मित-क्षेत्र (इमारतदार), जैविक।

3) शहरी इलाकों में निरंतर भीड़ बढ़ती जा रही है और रिहायशी स्थान बहुत मँहगे होते जा रहे हैं। औसत आमदनी वाले लोगों के लिए शहरी क्षेत्रों में रहना कठिन होता जा रहा है। इसलिए वे शहरी क्षेत्रों से बाहर रहते हैं जिसे उपनगरीय क्षेत्र कहा जाता है और उन्हें अपने काम के स्थान पर आने के लिए काफी दूरी तय करनी पड़ती है। एक अन्य श्रेणी के व्यक्ति हैं जो शहरों के प्रदूषण, भीड़ आदि से दूर उपनगरों में रहना पसंद करते हैं।

4) शहरीकरण से विभिन्न प्रकार के व्यवसाय भी पैदा हुए हैं, जहाँ लोगों को समय-समय पर आना-जाना पड़ता है। इस प्रकार की व्यवसायिक गमनशीलता का प्रभाव परिवार पर भी पड़ता है। जब एक शहर से दूसरे शहर में किसी व्यक्ति का स्थानांतरण होता है तो परिवार को काफी दबाव का सामना करना पड़ता है, उन्हें न केवल घर-गृहस्थी का सामान ले जाना होता है बल्कि नए स्थान और नए पर्यावरण के अनुकूल अपने आपको ढालने के लिए संघर्ष करना पड़ता है जिसमें काफी खींचा-तानी और दबाव से जूझना पड़ता है।

5) शहरीकरण अमीर और गरीब, दोनों को मनोरंजन के साधन उपलब्ध करता है, क्लब, गोल्फ कोर्स, जिमखाना, रेस्तराँ आदि मनोरंजन के साधन बेहतर आमदनी वाले लोगों के लिए हैं, जबकि सिनेमा, वीडियो पार्ले, थियेटर, प्रदर्शनी-गैलेरियाँ आदि गरीब के लिए कम खर्चीला मनोरंजन प्रदान करते हैं। सिनेमाघरों के रात्रि शो में वे अधिकतर वे लोग होते हैं जो दिन में मज़दूरी करते हैं, जैसे रिक्शा, ऑटो, टैक्सी आदि चलाते हैं। रात्रि शो में वे तीन घंटे के लिए अपने सारे कष्ट भूल जाते हैं।

6) शहरी इलाकों में रोज आने-जाने के लिए लंबी दूरी और समयबद्ध जीवन के फलस्वरूप अन्य दबावों के कारण जीवन बहुत गतिशील है। शहर के निवासियों को दिन-प्रतिदिन के जीवन में कई लोगों के संपर्क में आना पड़ता है जैसे बस कंडक्टर, टैक्सी ड्राइवर, छात्र, सहयोगी, लिफ्ट ऑपरेटर, भिखारी आदि। इनमें से सभी के साथ बातें करना असंभव है। इसलिए शहरी व्यक्ति अपनी रुचि उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रखता है जो उसके लिए उपयोगी हों। इस प्रकार इन शहरी लोगों का संबंध अवैयक्तिक, सतही और उपयोगिता पर आधारित होता है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसा नहीं पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में संबंध निस्वार्थ होते हैं। यहाँ तक कि शहरी क्षेत्रों में जीवन पद्धति, भोजन की आदतें आदि ग्रामीण क्षेत्रों से बहुत भिन्न होती हैं।

पर्यावरण में इस प्रकार का आकस्मिक परिवर्तन शहरी इलाकों के ग्रामीण अप्रवासियों को प्रभावित करता है और संभवतः उनकी मानसिक रुग्णता दर में वृद्धि का कारण यह भी हो सकता है, जबकि शहरी निवासियों में उनके मुकाबले कम है। मनोवैज्ञानिक दबावों के बावजूद वे प्रदूषित पर्यावरण पर शहरी स्थानों में जनित रोगों के शिकार भी होते हैं।

7) चूहे, गौरेया, तिलचट्टे, मच्छर, मक्खियाँ आदि।

अंत में कुछ प्रश्न

1) 1961 और 1971 की भारत की जनगणना में शहरी क्षेत्रों की परिभाषा में निम्नलिखित शामिल किए गए हैं:

   i) ऐसे सभी स्थान जिनकी 5,000 से अधिक आबादी है।
   ii) ऐसे सभी स्थान जहाँ कृषि से भिन्न व्यवसायों में कम से कम 75 प्रतिशत पुरुष काम करते हैं।
   iii) ऐसे सभी स्थान जिनकी जनसंख्या घनत्व 1,000 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।
   iv) सभी नगरपालिका, नगर निगम, छावनी और अधिसूचित शहरी क्षेत्र।

2) आमतौर पर शहरी आबादी में वृद्धि निम्नलिखित कारणों से होती है:
   i) शहरी आबादी में स्वाभाविक वृद्धि;
   ii) ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों का अप्रवास;
   iii) शहरी नगरपालिकाओं का प्रशासनिक विस्तार; और
   iv) शहरी क्षेत्रों के रूप में निर्धारित नए क्षेत्र।

3) तृतीय विश्व के अधिकांश शहरों में यह देखा गया है कि शहर के एक भाग में धनी वर्ग रहता है और दूसरे भाग में निर्धन वर्ग। इन दोनों में कई प्रकार के अंतर हैं। धनी वर्गों के क्षेत्रों में आबादी का कम घनत्व है, सुनियोजित मकान, सड़कें, पार्क आदि हैं। वहाँ जल, बिजली, जल-निकास, संचार सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जबकि निर्धन वर्गों के क्षेत्रों में आबादी का उच्च घनत्व है, अवैध झोपड़ियाँ हैं जो निम्न स्तर की सामग्री से बनी हैं, पेयजल, जल निकास, बिजली और संचार सुविधाएँ नगण्य हैं। एक ही शहर के ये भाग अलग-अलग शहर के दिखाई देते हैं।

4) समयबद्ध जीवन के फलस्वरूप शहरी इलाकों के व्यक्तियों पर बहुत दबाव रहता है। उन्हें अपने काम के स्थान पर पहुँचने के लिए लंबी दूरी तय करनी पड़ती है। उन्हें अपने रोजमर्रा के जीवन में संपर्क में आने वाले व्यक्तियों से मेलजोल बढ़ाने के लिए समय ही नहीं मिलता है। इसलिए वे उन्हीं व्यक्तियों से संबंध रखते हैं जो उनके लिए उपयोगी हों। इन्हीं कारणों से शहरी लोगों में अवैयक्तिक तथा सतही और स्वार्थी संबंध विकसित हुए हैं।

5) भारत में जाति महत्त्वपूर्ण कारक है। अध्ययनों से यह पता चलता है कि शहरों में भी गाँवों की तरह आबादी का वितरण जाति के आधार पर है। एक विशेष स्थान पर एक जाति के निवासियों की अधिकता होती है। उदाहरण के लिए पुणे में कुछ स्थानों पर ब्राह्मण अधिक हैं और उन स्थानों पर गैर-ब्राह्मण कोई नहीं है। शहर के मध्यवर्ती भाग में व्यापारी वर्ग, मुसलमान और गैर-स्थानीय लोग रहते हैं। शहर के पूर्वी और उत्तर-पूर्वी भागों में अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ रहती हैं, जिन्हें अछूत समझा जाता है।

संकेताक्षरों की सूची

AHS	:	कृषि उद्यान संबंधी समितियाँ
PAS	:	आदि कृषि समितियाँ
क्यूसेक्स	:	घन फुट जल प्रति सेंकड–प्रवाही जल की
(Cusecs)	:	मात्रा को मापने की एक इकाई
HAG	:	शिकार करना और एकत्रित करना
hp	:	अश्व शक्ति
अ. श.		
Mham	:	दस लाख प्रति हेक्टेयर
Mt	:	दस लाख टन
Mm	:	दस लाख घन मीटर
Mw	:	मेगा वॉट
ppm	:	भाग प्रति दस लाख
Sq km	:	वर्ग किलोमीटर

शब्दावली

अनुकारित जल प्रतिबल : जब मृदा के लवण अंश 200-300 (अंश प्रति लाख) से अधिक हो जाते हैं तो प्रचुर मात्रा में पानी होते हुए भी जड़ें पानी नहीं सोख सकतीं (कृत्रिम जल प्रतिबल या जल की शरीर क्रियात्मक अनुपलब्धता भी कहते हैं)।

अनाच्छादन : वृक्षों से पत्तियों का गिरना; किसी क्षेत्र से हरे आच्छद का नाश करना।

अपजल या सीवेज : घरों और उद्यानों से द्रव और घुले हुए ठोस अवशिष्ट पदार्थ।

अधिशेष : आवश्यकता से अधिक खाद्य पदार्थ।

अर्ध-शुष्क प्रदेश : एक ऐसा प्रदेश जहाँ की मौसमी परिस्थितियाँ आंशिक रूप से सूखी जलवायु वाली होती हैं।

अवतलन : भूमिगत खानों के ढह जाने से या अयस्क के अवक्षय से भू-भाग का बैठ जाना। वह भूस्खलन भी कहलाता है।

अभिनव परिवर्तन : विज्ञान या प्रौद्योगिकी में नए विचारों का उदाहरण।

अतिदोहन : किसी भी संसाधन का बिना पुनः आपूर्ति किए, बेधड़क उपयोग।

अधिक-भार : खान (आम तौर पर बहुत उपजाऊ जमीन) के ऊपर मृदा का द्रव्यमान जिसे अयस्क के कारण हटाया जाता है। इसे खान से निकली फालतू मिट्टी या मलबा, मिट्टी डम्प भी कहते हैं।

अहानिकर किस्में : जीवों की किस्में जो फसल के पौधों को नुकसान नहीं पहुँचातीं।

अतिपोषण : किसी जलराशि के पोषक तत्वों में वृद्धि।

आरक्षित वन : सरकार द्वारा कटाई और औद्योगिक उपयोग के लिए दे दिया गया वन क्षेत्र।

उपभोक्ता : एक जीव जो अपनी ऊर्जा की आवश्यकताएँ दूसरे जीवों को खाकर पूरा करता है।

उपरिमृदा : पृष्ठ के पास मिट्टी की परत।

एकघासस्यन :कृषि क्षेत्र के बड़े भूभाग में किसी फसल की एक ही किस्म की खेती।

ऐरोमेटिक : बढ़िया, सुस्पष्ट गंध वाला।

कच्छी अनूप : नरम गीली ज़मीन का क्षेत्र, जो प्रायः जलमग्न रहता है और कभी-कभी नमकीन होता है।

क्रययोग्य निवेश : ऐसे मद या वस्तुएँ जो पारितंत्र में पैसों से खरीद कर ही डाली जा सकती हैं।

कर्षण, कृषि : फसल उगाने के लिए ज़मीन को तैयार करना और उसका उपयोग करना।

कार्प : अलवण जल की एक बड़े प्रकार की खाई जाने वाली मछली जो झीलों और तालाबों में रहती है (जैसे राहू, कतला)।

CO_2 लॉक अप : एक दो-चरण वाला प्रक्रम में जिसमें निम्नलिखित शामिल है (क) धूप को ग्रहण किया जाना और इसको कोशिकीय ऊर्जा में बदला जाना; तथा (ख) CO_2 जल और सौर ऊर्जा से कार्बनिक अणुओं का उत्पादन (जैसे कि ग्लुकोस), एक प्रक्रम जो प्रकाश संश्लेषण कहलाता है।

कार्बनिक पुनःचक्रण : अवशिष्ट पदार्थों का जहाँ उत्पादन होता है, वहीं उनका पुनः उपयोग। (देखिए इकाई 2)

कोयला आधारित ताप जनन : कोयला जलाकर ऊष्मा/बिजली का उत्पादन।

क्रियाशील मृदा गहराई : मिट्टी की उपयोगी गहराई जिसमें उपलब्ध जल की उपस्थिति के कारण पौधे अपनी जड़ें जमा सकते हैं।

कृश गैस-आधारित तापीय जनन : कम ब्यूटेन (हाइड्रोकार्बन) वाली प्राकृतिक गैसों और भारी द्रव जलाने से ऊष्मा और बिजली पैदा करना।

कृषि चरागाही तंत्र : लोगों का एक तंत्र जो गाँवों में और बाद में नगरों में रहता था और घरेलू जानवरों तथा पास के खेतों में उगाई गई फसलों पर निर्भर करता था। एक तंत्र जिसका लक्षण कार्य भूमिकाओं का विशिष्टीकरण है।

कृषि पारितंत्र : एक पारितंत्र जिसमें खेती प्रमुख व्यवसाय के रूप में की जाती है।

खरपतवार : वन्य पौधे, जो कि उस जगह उगते हैं जहाँ उनकी आवश्यकता नहीं होती, विशेष रूप से फसलों और बागों के पौधों के बीच में।

गहन कृषि : कृषि कार्य के लिए भूमि का अलाभकर उपयोग और संसाधनों का शोषण।

गहन सिंचाई : फसलों की सिंचाई करने के लिए भूमि जल और सतह जल का अति उपयोग।

बायो गैस : मेथेनोजनक जीवाणुओं द्वारा कार्बनिक द्रव्य के विघटन से निकलने वाली गैस हाइड्रोकार्बनों का एक मिश्रण। इसे गोबर गैस भी कहते हैं।

चरघातांकी जनसंख्या वृद्धि : घनत्व-निरपेक्ष फैशन में गुणोत्तर श्रेणी (geometrical progression) में जनसंख्या की वृद्धि।

चरम समुदाय : एक स्थायी जैव समुदाय जो एक आवास में अपने आपको बनाए रखता है।

चरागाह : घास या घास जैसे पौधों से जो चारे के काम में आती हैं, ढका हुआ जमीन का टुकड़ा, चराई वाले पशुओं के लिए उपयुक्त ज़मीन।

चोरी-आखेट (Poaching) : शिकार के लिए मनाही वाले जानवरों को आम तौर पर गैर-कानूनी ढंग से पकड़ना अथवा उनका शिकार करना।

जड़ों की संकुलता (Congestion of Roots) : पौधे के दूसरे भागों की तरह जड़ों को भी श्वसन के लिए आक्सीजन की ज़रूरत होती है। अगर पौधों को अत्यधिक पानी दे दिया जाए तो जड़ें हवा की कमी के कारण मर जाती हैं। इसे जड़ों की संकुलता कहा जाता है।

जनसांख्यिकी : जनसंख्या के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन (आम तौर पर मानव जनसंख्या)।

जलग्रहण क्षेत्र : एक ऐसा क्षेत्र जहाँ से पानी बहकर किसी विशेष स्थान जैसे प्रमुख नदी या झील में चला जाता है।

जल बजट : किसी क्षेत्र के जल

जलभर (Aquifer) : रंध्र युक्त पदार्थ (बलुआ पत्थर) की भूमिगत परत जिसमें पानी (भूमिगत ज़ल) होता है, जो मनुष्य के काम में लाए जाने के लिए कुएँ से निकाला जा सकता है।

जल-संभर : किसी धारा या नदी द्वारा जलोत्सारित भू-क्षेत्र।

जलाक्रांति : मिट्टी की पानी से अत्यधिक संतृप्ति जिसकी वजह से पौधों को जड़ जमाने में कठिनाई होती है।

जात : पौधों या प्राणियों का एक समूह जिनमें बहुत अधिक समानता होती है और जो आम तौर पर आपस में ही अंतःप्रजनन करती हैं।

जीव-भू-रासायनिक चक्र : कुछ अनिवार्य रासायनिक तत्व जब पारितंत्र के जीवित घटकों के माध्यम से मृदा और वायुमंडल से गुजरते हैं और अंततः वापस मृदा तथा वायुमंडल में लौटते हैं, तब उनका चक्रीय रूपांतरण।

जीवमंडल : पृथ्वी और इसके वायुमंडल का वह भाग जहाँ जीव रहते हैं।

जीवाश्म : प्रागैतिहासिक प्राणियों या पौधों के अवशेष, जो पृथ्वी में दब जाने के कारण परिरक्षित रहे और अब चट्टान जैसे सख्त हो गए।

जोतना : फसल की रोपाई के लिए मिट्टी को तैयार करना।

जैव-प्रौद्योगिकी : मानव जाति के कल्याण के लिए जीवों के शोषण के साधन खोजना।

तटरेखीय आर्थिक मंडल : समुद्र तट के साथ-साथ क्षेत्र, जहाँ मछली पकड़ने (मत्स्यन) का धंधा होता है।

ठंडा मरुस्थल : ऐसे मरुस्थल अधिक ऊँचाइयों पर पाए जाते हैं, जहाँ जलवायु शुष्क होती है और तापमान बहुत कम होता है। यह भारत में लद्दाख क्षेत्र में है।

थार मरुस्थल : पश्चिमी भारत और पाकिस्तान के कुछ भाग के अंतर्गत भारतीय उपमहाद्वीप के मरुस्थल क्षेत्र। भारत में रेगिस्थान राजस्थान, गुजरात, हरियाणा और पंजाब के राज्यों में फैला हुआ है।

देशज पौधे : उपस्थापित पौधों से अलग स्थानीय निवासी (अर्थात् मूलतः रूप से किसी विशेष भौगोलिक प्रदेश का पौधा)।

नरभक्षी : एक वन्य पशु (आम तौर पर बाघ अथवा चीता) जो अपने प्राकृतिक शिकार की बजाए मानव जाति को खाता है।

निकेत : किसी आवास में किसी जाति की बेजोड़ स्थिति जो उसकी भौतिक-रासायनिक आवश्यकताओं द्वारा और इसकी दूसरी जातियों से परस्पर क्रिया द्वारा परिभाषित होती है।

निर्वाह आखेट : जीवन को बनाए रखने के लिए शिकार करना।

निर्वृक्षीकरण : किसी वन क्षेत्र से सभी पेड़ों को हटा देना।

परभक्षण :एक क्रिया जिसमें एक जीव (परभक्षी) दूसरे जीव (शिकार) को मार डालता है।

परभक्षी : वह प्राणी जो दूसरे को पकड़ता और खाता है।

पर्यावरण : जीव के जीवन काल के दौरान उसको प्रभावित करने वाले कोई भी कारक।

पशुधन : काम में लाए जाने या लाभ के लिए फार्म पर रहे पशु।

पादप मात्रा : किसी क्षेत्र के जीवित पौधों की मात्रा।

पीड़क नियंत्रण : कृषि पौधों और खाद्य सामग्री को नष्ट करने वाले कीटों और दूसरे पीड़कों का नियंत्रण।

पोषक : अपने जीवित बने रहने के लिए और अपनी वृद्धि के पौधों द्वारा काम में लाए जाने वाले तत्व।

पुनरुत्पादन : जनन, वृद्धि और परिवर्धन द्वारा आबादी से मूल संख्या के प्रति गुणन का प्राकृतिक प्रक्रम।

प्रतियोगी : एक व्यष्टि जो खाने, स्थान अथवा साथी के लिए दूसरे से प्रतियोग करती है।

प्रतिरक्षा : किसी मारने वाले कारक (रोगाणु) से अपने आपको बचाने की क्षमता।

प्रतिस्थितित्व : विक्षोभ यानी गड़बड़ के बाद पारितत्र की वापस सामान्य हो जाने की योग्यता।

प्रदूषण : अवाँछित या हानिकारक पदार्थ डालकर पर्यावरण के किसी घटक को अशुद्ध बना देना।

प्रवाह रेखाएँ : पानी की सरिताएँ, जिनसे जलराशि (water body) बन जाती है।

प्रागैतिहासिक : अभिलिखित इतिहास से पहले के काल से संबद्ध।

प्राणिजात : किसी बिशेष क्षेत्र की प्राणी संख्या।

प्रेरित कृषि-पारितंत्र : कृषि पारितंत्र में बदल दी गई वर्तमान भूमि।

पृष्ठ वाह : तूफानी वर्षा के दौरान धाराओं में और भूपृष्ठ पर जल प्रवाह।

बस्तियाँ : वह जगह जहाँ लोग काम के बाद अपना समय बिताते हैं।

बाजीकर (Aphrodisiac) : कामेच्छा जगाने वाला पदार्थ या औषध।

भूमि जलस्तर : वह गहराई जिससे नीचे को ज़मीन पानी से संतृप्त होती है।

भूमि बजट : उपलब्ध क्षेत्र, स्थलाकृति और विशेष भूमि संसाधन से किस प्रकार की आवश्यकताएँ पूरी की जाने की आशा है, उस संदर्भ में भूमि का किस प्रकार उपयोग किया जाएगा इसका आकलन या योजना।

भू-दृश्य : भूमि के किसी क्षेत्र का परिदृश्य या प्राकृतिक दृश्य।

भूस्खलन : किसी पहाड़ी, स्थान या भृगु (सीधी चट्टान) से ज़मीन अथवा चट्टान का गिरना।

भूमि उपयोग वर्ग : विशिष्ट उपयोग के लिए भूमि का वर्गीकरण।

मूल परिवार : कुटुंब जिसमें केवल माँ, बाप और बच्चे होते हैं तथा कोई भी कम निकटतम संबंधी नहीं होता।

मत्स्य उद्योग : मछली पकड़ने का व्यवसाय या उद्योग।

मरुस्थल : दुनिया भर में पाए जाने वाले स्थलीय प्रदेश। प्रायः पर्वत श्रेणियों की नीचे की तरफ पाए जाते हैं, निम्न आर्द्रता, कम उपजाऊ मिट्टी और अत्यधिक तापमान तथा कम वर्षण इनके लक्षण हैं।

मरुस्थलीकरण :शुष्क और अर्ध-शुष्क प्रदेशों में अत्यधिक चराई, वन-उन्मूलन, भूमि का घटिया उपयोग, भूमिजल की अत्यधिक निकासी और जलवायु परिवर्तन के कारण मरुस्थल का बनना।

महामारी : परजीवी के कारण किसी रोग की व्यापकता में बड़े पैमाने पर अस्थायी वृद्धि।

मिश्रधातु (ऐलॉय) : दो या दो से अधिक धातुओं का संघटन।

मानव जातीय विविधता : किसी राष्ट्रीय, प्रजातीय या जनजातीय समूह की विविधता, जिसकी साझी सांस्कृतिक परंपरा रही है।

मृदा का संहनन (Combined family) :उपजाऊ ज़मीन का एक घने पैक किए हुए द्रव्यमान में बदल जाना, जिससे वायु अवकाश नहीं रहते और जिसकी वजह से उपजाऊ ज़मीन बंजर भूमि का टुकड़ा बन जाती है।

मृदा की उभयप्रतिरोधन क्षमता (Buffering Capacity of Soil) : मिट्टी के नमूने की pH (अम्लीय या क्षारीय) में होने वाले परिवर्तनों को झेलने की क्षमता।

मृदा पोषक प्रतिबल : मृदा में किसी विशेष पोषक की कमी जिसकी वजह से पौधों की वृद्धि कम होती है।

रक्षित वन : वन का क्षेत्र, जहाँ लकड़ी अथवा वृक्ष काटने की आज्ञा नहीं है और जो मानव हस्तक्षेप से एकदम मुक्त है।

लक्ष्य जीव : पीड़क, खरपतवार, कृंतक और कवक जो या तो फसलों के पौधों या उनके काटे गए भागों (फल, सब्जियाँ, दाने या पत्तियाँ) को खा डालते हैं अथवा प्रतियोगिता द्वारा पौधों की वृद्धि में बाधा डालते हैं और जिन्हें मारने के उद्देश्य से उन पर जीवनाशकों का प्रयोग किया जाता है।

लक्ष्य समूह : लोगों के समूह जिनकी माँगों को किसान उन्हें कृषि वस्तुओं की सप्लाई करके पूरा करने का इरादा रखता है।

लघुगणकीय मापक्रम या लॉगेरिथ्मीय मापक्रम : मापन का एक मापक्रम जिसमें एक यूनिट की वृद्धि मापी गई संगत मात्रा में दस गुना वृद्धि दर्शाती है।

लवण-प्रभाविता या लवणीकरण : सिंचित मृदाओं में लवण जमा होने के कारण मृदा अधिकतर फसलों के लिए बेकार बन जाती है। ऐसा सिंचित भूमियों की अपर्याप्त जलनिकासी के कारण भूमि जलस्तर बढ़ जाने से होता है।

लिग्नाइट : सॉफ्ट भूरा कोयला, जो बिना धुंए के जलता है और जिसका अधिक ईंधन मान है।

वन्य जातियाँ : पादप या प्राणी जातियाँ जो प्राकृतिक स्थित या आवास में वृद्धि कर रही हैं, जो घरेलू नहीं बनाई जातीं या जो संकरित नहीं हैं।

वन-उन्मूलन : अनाच्छादन या निर्वृक्षीकरण से वनों को नष्ट करना अथवा हटाना।

वनस्पति : आम तौर पर किसी क्षेत्र का पादप जीवधारी समूह।

वनस्पतिजात : किसी विशेष क्षेत्र की पादप (पौध) संख्या।

वनस्पति रक्षण रसायन : पीड़कों, खरपतवारों, कवकों और कृतंकों से पौधों को बचाने के लिए विषैले रसायन, जो जीवनाशक भी कहलाते हैं जैसे कि डी. डी. टी., बी. एच. सी., मैलाथाइआन, एंड्रिन आदि।

वहन क्षमता :अधिकतम जनसंख्या साइज जिसे एक पर्यावरण असीमित काल तक या प्रतिपालित (Sustainable) आधार पर संभाले रह सकता है।

वानिकी : वनों को रोपने, उनकी देखभाल करने तथा उनका प्रबंध करने का विज्ञान और क्रिया।

विकसित देश : एक ऐसे देश के लिए प्रयोग किया जाने वाला शब्द जहाँ प्रायः जीवन स्तर ऊँचा होता है, जनसंख्या वृद्धि दर कम है, शिशु मृत्यु दर कम है, अत्यधिक पदार्थ खपत है, प्रति व्यक्ति आय ऊँची है, शहरी जनसंख्या है और निरक्षरता कम है।

विलोपन : अपने वितरण क्षेत्र के किसी भाग से या सभी भागों से किसी जाति का बहुत हद तक गायब हो जाना।

विवृत खनन (Open-Casting) : एक तरह का पृष्ठ खनन जिससे बड़े-बड़े खुले गर्त बन जाते हैं। अति-भार हटा दिया जाता है ताकि वांछित खनिज जैसे कि तांबा, ग्रेनाइट और कोयला निकाले जा सकें। इन मृदाओं का पुनः उद्धार करना कठिन होता है।

विशेष क्षेत्रीय जातियाँ (endemic species) : जीव धारियों की वे जातियाँ जो संसार में केवल उसी स्थान पर पायी जाती हैं।

शिकार : परभक्षी द्वारा पकड़े जाने वाला भक्ष्य प्राणी।

स्तनी : प्राणी जो अंडे नहीं देते और अपने शिशुओं को अपने स्तनों से दूध पिलाते हैं।

स्थलाकृति : किसी क्षेत्र के पृष्ठ विन्यास (surface configurations) का ग्राफीय वर्णन।

स्थानांतरी बालू टिब्बे : तेज पृष्ठीय पवनों (surface winds) द्वारा जमा किए गए बालू के ढेर और जो एक जगह से दूसरी जगह चलते रहते हैं।

स्थानीय स्थल पर आवश्यकताएँ : वस्तु के उत्पादन के प्रक्रम में निकट रूप से सम्मिलित उपभोक्ताओं की आवश्यकताएँ।

स्थलेतर माँग : जहाँ कृषि की वस्तुएँ पैदा की जाती हैं, वहाँ से दूर दराज़ के स्थलों पर रहने वाले उपभोक्ताओं द्वारा की गई माँगें।

सरीसृप : कशेरुकियों का एक वर्ग, जिसमें साँप, छिपकलियाँ, मगरमच्छ और कछुए शामिल हैं।

सहजीवन : दो जातियों के बीच घनिष्ठ साहचर्य या सहवास जो प्रायः लेकिन निरपवादरूप से नहीं, दोनों के लिए लाभदायक है।

समाजशास्त्र : समाज और सामाजिक व्यवहार की प्रकृति और विकास का अध्ययन।

संवहनी पौधे : संवहन तंत्र वाले पौधे अर्थात् जिनमें तरल को संचालित करने वाली वाहिकाएँ होती हैं।

सिकुड़न : क्षेत्रफल की कमी।

सूक्ष्म जलवायु : अकेले पौधे या प्राणी जाति के एकदम निकटता में स्थानीय जलवायु।

सौर ऊर्जा : सूर्य से प्राप्त ऊर्जा।

संकटग्रस्त जाति : ऐसी जाति जो अपने परास के कुछ भागों में प्रचुर है, लेकिन अन्य भागों में गंभीर रूप से अवक्षयित है।

संदूषण : कोई खराब अथवा अशुद्ध चीज मिलाकर अशुद्ध अथवा अनुपयुक्त बना देना।

संस्थापित क्षमता : किसी मशीनरी को लगाते समय उसकी कुल उत्पादन/जनन क्षमता।

शैल वृष्यांश : शैल परत के पृष्ठों में उबड़-खाबड़ क्षैतिज संरचना।

इकाई 10 वायुमंडलीय प्रदूषण

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
10.2 वायुमंडलीय संघटक
10.3 वायु प्रदूषकों के प्रकार
प्राकृतिक प्रदूषक
प्राथमिक प्रदूषक
द्वितीयक प्रदूषक
10.4 कुछ प्रमुख वायु प्रदूषक
सल्फर के आक्साइड
नाइट्रोजन के आक्साइड
हाइड्रोकार्बन
कार्बन मोनोआक्साइड
सीसा-प्रदूषण
निलम्बित कणाकार पदार्थ
धूम्रपान
रेडियोधर्मिता
ध्वनि-प्रदूषण
10.5 वायु प्रदूषण पर भू-भौतिकीय प्रभाव
भूगोल
जलवायु
मौसम
हवा
10.6 अजैव मंडल पर प्रदूषण के प्रभाव
जलवायु संबंधी प्रभाव
संक्षारक एवं दूषण प्रभाव
ओज़ोन क्षीणता (अवक्षय)
10.7 जैव प्रणाली पर प्रदूषण के प्रभाव
पेड़-पौधों पर
जीव-जंतुओं पर
10.8 सारांश
10.9 अंत में कुछ प्रश्न
10.10 उत्तर

10.1 प्रस्तावना

पिछले खंड में आप यह पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार मनुष्य के क्रियाकलाप पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। आपने यह भी देखा है कि एक ओर कृषि के तीव्र विकास और दूसरी ओर तेजी से शहरीकरण के साथ औद्योगीकरण ने भौतिक और जैव दोनों प्रकार के संसाधनों को नष्ट कर दिया है। आज हमारे भौतिक संसाधन, मिट्टी, जल और वायुमंडल बहुत अधिक प्रदूषित हो गए हैं।

इस इकाई में हम आपको वायुमंडलीय प्रदूषण तथा वायु प्रदूषकों के विभिन्न स्रोतों, उनकी प्रकृति एवं जीव-जंतुओं तथा पेड़-पौधों पर उनके हानिकारक प्रभाव पर चर्चा करेंगे।

इसके बाद की अगली इकाई में हम जल-प्रदूषण, मृदा-प्रदूषण तथा रेडियोधर्मी अपशिष्ट और उनके निपटान संबंधी समस्याओं के विषय में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- **पर्यावरण परिवर्तन के साथ मानव हस्तक्षेप के विषय में जान सकेंगे,**
- **उन विभिन्न प्राकृतिक और मानव-निर्मित कारकों को व्याख्यायित कर सकेंगे, जिनसे वायु प्रदूषण होता है,**
- **"ग्रीन हाउस प्रभाव", अम्ल वर्षा, ओज़ोन क्षीणता और प्रकाश रासायनिक कुहरा के कारणों और प्रभावों को बता सकेंगे।**

- वायु प्रदूषकों के संक्षारक और दूषण के प्रभावों की सूची तथा उनके उदाहरण दे सकेंगे, और
- पेड़-पौधों तथा जीव-जंतुओं पर वायु प्रदूषकों के हानिकारक प्रभावों को बता सकेंगे।

10.2 वायुमंडलीय संघटक

वायुमंडल विभिन्न मात्रा में गैसों का एक मिश्रण है। इसमें 78% नाइट्रोजन, 21% आक्सीजन तथा लगभग 10% आरगन और अन्य निष्क्रिय गैसें होती हैं। इसके अलावा वायुमंडल का अन्य महत्वपूर्ण संघटक कार्बन डाइआक्साइड है जिसकी मात्रा 0.1% से 0.3% तक होती है। यह अंतर मुख्यतः दहन और प्रकाश-संश्लेषी प्रक्रिया के कारण होता है। अन्य गैसें जैसे — सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रोजन डाइआक्साइड, ओज़ोन आदि बहुत कम मात्रा में पाई जाती हैं। जल वाष्प भी एक महत्वपूर्ण संघटक है जो एक स्थान से दूसरे स्थान में भिन्न-भिन्न मात्रा में होती है।

यदि हम वायुमंडल के रासायनिक संघटकों और पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व पर नज़र डालें तो हम पाते हैं कि जल वाष्प के साथ-साथ नाइट्रोजन, आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड वायुमंडल के मुख्य संघटक हैं जो जीवन-प्रक्रिया से जुड़े हुए हैं। नाइट्रोजन गैस, रासायनिक रूप से अमिश्रित रूप में अपेक्षाकृत अधिक अक्रियाशील होती है। जीवों (प्राणी या वनस्पति) में यह एमिनो-एसिडों तथा प्रोटीनों के रूप में विद्यमान रहती है। मिट्टी में नाइट्रोजन, नाइट्रेट और अमोनियम यौगिक के रूप में पाई जाती है।

जीवित प्राणियों द्वारा नाइट्रेट और अमोनियम लवण का आत्मसात (assimilation) किया जाना एक ऐसी प्रमुख प्रक्रिया है जिसके द्वारा अकार्बनिक नाइट्रोजन, जीवित प्राणियों में प्रवेश करती है। यदि एक बार नाइट्रोजन, जीवित प्राणियों में समाविष्ट या स्थिर हो जाए तो वह अपने आप एक क्रम से चरणवार बार-बार जाती रहती है। इस प्रक्रिया को नाइट्रोजन चक्र कहते हैं। इसे आप इकाई 4 में विस्तार से पढ़ चुके हैं।

विद्युत क्रिया होने पर वायुमंडलीय नाइट्रोजन आक्सीजन से अभिक्रिया करता है जिससे नाइट्रोजन के आक्साइड बनते हैं जो वर्षा या हिमपात के जरिए पृथ्वी पर नाइट्रस या नाइट्रिक अम्ल के रूप में पहुँचता है।

नाइट्रोजन के विपरीत आक्सीजन एक बहुत ही अभिक्रियाशील पदार्थ है। आक्सीजन, सभी पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं के जीवित रहने के लिए अनिवार्य होती है। वास्तव में उपापचय (metabolism) को एक सफल आक्सीकरण प्रक्रिया माना जा सकता है। श्वसन क्रिया के दौरान जीव-जंतु और पेड़-पौधे आक्सीजन को अपने अंदर खींचते हैं तथा कार्बन डाइआक्साइड एवं जल वाष्प बाहर निकालते हैं। वायुमंडलीय आक्सीजन पेड़-पौधों की प्रकाश संश्लेषी क्रिया के परिणामस्वरूप बनती है। पेड़-पौधे, सूर्य के प्रकाश में कार्बन डाइआक्साइड अंदर खींचते हैं और आक्सीजन बाहर निकालते हैं।

वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड यद्यपि नाइट्रोजन और आक्सीजन की अपेक्षा बहुत कम मात्रा में विद्यमान होती है फिर भी यह जीवन के लिए महत्वपूर्ण है। खाद्य श्रृंखला प्रकाश संश्लेषण से शुरू होती है जिसमें पौधे सूर्य के प्रकाश में कार्बन डाइआक्साइड और जल का उपयोग करते हैं जिससे स्टार्च और शर्करा बनती है। वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा भी पृथ्वी के तापमान को निर्धारित करने में प्रमुख भूमिका निभाती है।

वायुमंडल में भी जल वाष्प होती है। चूँकि जल का अनुपात, तापमान पर आधारित होता है इसलिए यह बहुत ज्यादा भिन्न-भिन्न होता है। फिर भी, वायुमंडलीय आद्रता का लगभग आधा भाग पृथ्वी के तल से लेकर एक से डेढ़ किलोमीटर की ऊंचाई में उपस्थित होता है तथा भू-पृष्ठ से 10 कि.मी. की ऊँचाई के बाद वायुमंडल में आर्द्रता शायद ही पाई जाती हो।

गैसें और जल-वाष्प के अलावा वायुमंडल में सूक्ष्म ठोस कण भी होते हैं। ये कण, धूल कण के रूप में दिखाई देते हैं। धूल कणों की उत्पत्ति स्थल पर ही होती है, इसीलिए ये भू-पृष्ठ से वायुमंडल के मुख्यतः 1.8 कि.मी. की ऊँचाई तक रहते हैं। वायुमंडल, ऊष्मारोधी परत का कार्य दिन और रात करता है। ध्वनि-कंपन तथा ध्वनि संचरण भी वायुमंडल के विद्यमान होने के कारण संभव होता है। इन सबके अलावा वायुमंडल के बिना कोई मौसम, वर्षा तथा वनस्पतियाँ नहीं होंगी और न ही मौसम में कोई परिवर्तन होगा। इसके बिना सूर्य से पृथ्वी पर बहुत से घातक विकिरण आपतित होने लगेंगे जिससे पृथ्वी पर सबके लिए प्रतिकूल स्थितियाँ उत्पन्न होंगी।

गैसों के अनुपात की प्रतिशतता, संपूर्ण वायुमंडल में कम से कम 24 कि.मी. की ऊँचाई तक लगभग स्थिर होती है। परंतु यह बात बड़े शहरों और औद्योगिक केंद्रों के चारों ओर के वायुमंडल के मामलें में सही नहीं है। शहरों और औद्योगिक केंद्रों में विद्युत संयंत्रों और मोटर गाड़ियों में ईंधन के दहन तथा भारी संख्या में मनुष्यों की घनी आबादी के परिणामस्वरूप कार्बन डाइआक्साइड में वृद्धि तथा आक्सीजन में कमी होती है। आगे बढ़ने से

बोध प्रश्न 1

1) बताएँ — निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

   i) विद्युत क्रिया होने पर वायुमंडलीय नाइट्रोजन, आक्सीजन से अभिक्रिया करता है, जिससे नाइट्रोजन आक्साइड बनता है। यह पृथ्वी पर वर्षा या हिमपात के जरिए नाइट्रस या नाइट्रिक अम्ल के रूप में पहुँचता है। [ ]

   ii) पेड़-पौधों की प्रकाश-संश्लेषी क्रिया के परिणामस्वरूप वायुमंडलीय आक्सीजन बनती है। [ ]

10.3 वायु प्रदूषकों के प्रकार

वायुमंडलीय प्रदूषण, भू-मंडल की गुणता में एक अनचाहा परिवर्तन है, जिसका कारण जीवाश्म ईंधनों के जलने से गैसों के निकलने, ज्वालामुखियों के फूटने से राख और गैसों का निकलना, जंगल की आग से धुएँ का उठना और मृदा-अपरदन के कारण कणाकार पदार्थों में बढ़ोत्तरी होना है। वनस्पतियों से उत्पन्न पराग कण तथा कार्बनिक यौगिक और विद्युत-स्फुरण (lightning) भी वायुमंडल को प्रदूषित करते हैं।

अब हम उन विभिन्न कारकों का अध्ययन करेंगे जिनसे वायु-प्रदूषण होता है। सुविधा के लिए वायु-प्रदूषकों को निम्नलिखित तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

i) प्राकृतिक प्रदूषक
ii) प्राथमिक प्रदूषक
iii) द्वितीयक प्रदूषक

10.3.1 प्राकृतिक प्रदूषक

बिजली गिरने, जंगल में आग लगने, पराग कणों का हवा में बिखरने, मृदा-अपरदन होने, ज्वालामुखी के फटने, पेड़ों और पत्तियों से वाष्पशील कार्बनिक यौगिकों के निकलने, कार्बनिक पदार्थों के अपघटित होने तथा प्राकृतिक रेडियोधर्मिता के होने आदि जैसे प्राकृतिक स्रोतों से निकलने वाले प्रदूषकों को प्राकृतिक प्रदूषक कहते हैं। इस प्रकार का वायुमंडलीय प्रदूषण होना कोई नई बात नहीं है। इस प्रकार के प्रदूषण संभवतः उतने ही पुराने हैं जितनी कि यह धरती है। ऐसे प्रदूषकों से निपटने के लिए प्रकृति की अपनी व्यवस्था होती है। किसी भी हालत में प्राकृतिक स्रोतों से उत्पन्न प्रदूषकों की सांद्रता प्रायः बिल्कुल कम होती हैं और इसके परिणामस्वरूप कोई गंभीर क्षति कभी-कभी होती है।

10.3.2 प्राथमिक प्रदूषक

किसी प्राथमिक प्रदूषक को एक हानिकारक रसायन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह प्राकृतिक घटना या मानव-क्रियाकलापों के परिणामस्वरूप वायुमंडल में सीधे प्रवेश करता है। उदाहरणार्थ — जब कोयला, प्राकृतिक गैस या लकड़ी जलाई जाती है तब कार्बन डाइआक्साइड और कार्बन मोनोआक्साइड बनती है। मोटर-गाड़ियों से भी भारी मात्रा में कार्बन मोनोआक्साइड निकलती है। ये सभी गैसें वायुमंडल में प्रवेश करती हैं। इसका अन्य महत्वपूर्ण प्रदूषक सल्फर डाइआक्साइड (SO_2) है, जो विद्युत शक्ति संयंत्रों में कोयले तथा तेल के जलने तथा जिसमें गंधक अशुद्धता के रूप में रहती है और वायुमंडल में मिल जाती है। अन्य प्राथमिक प्रदूषक नाइट्रोजन आक्साइड, हाइड्रोकार्बन और निलंबित कणाकार पदार्थ होते हैं।

10.3.3 द्वितीयक प्रदूषक

द्वितीयक प्रदूषक दो या दो से अधिक घटकों के बीच हानिकर रासायनिक अभिक्रिया के फलस्वरूप बनते हैं। उदाहरणार्थ — सल्फर डाइआक्साइड, प्राथमिक प्रदूषक है और यह वायुमंडल में आक्सीजन के साथ अभिक्रिया करती है जिससे द्वितीयक प्रदूषक सल्फर ट्राइआक्साइड (SO_3) बनता है —

$$2SO_2 + O_2 \longrightarrow 2SO_3$$

इसके बाद सल्फर ट्राइआक्साइड, वायुमंडल में जलवाष्प के साथ अभिक्रिया करके सलफ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) की बूँदें बनाता है जो द्वितीयक प्रदूषक (चित्र 10.1) है।

$$SO_3 + H_2O \longrightarrow H_2SO_4$$

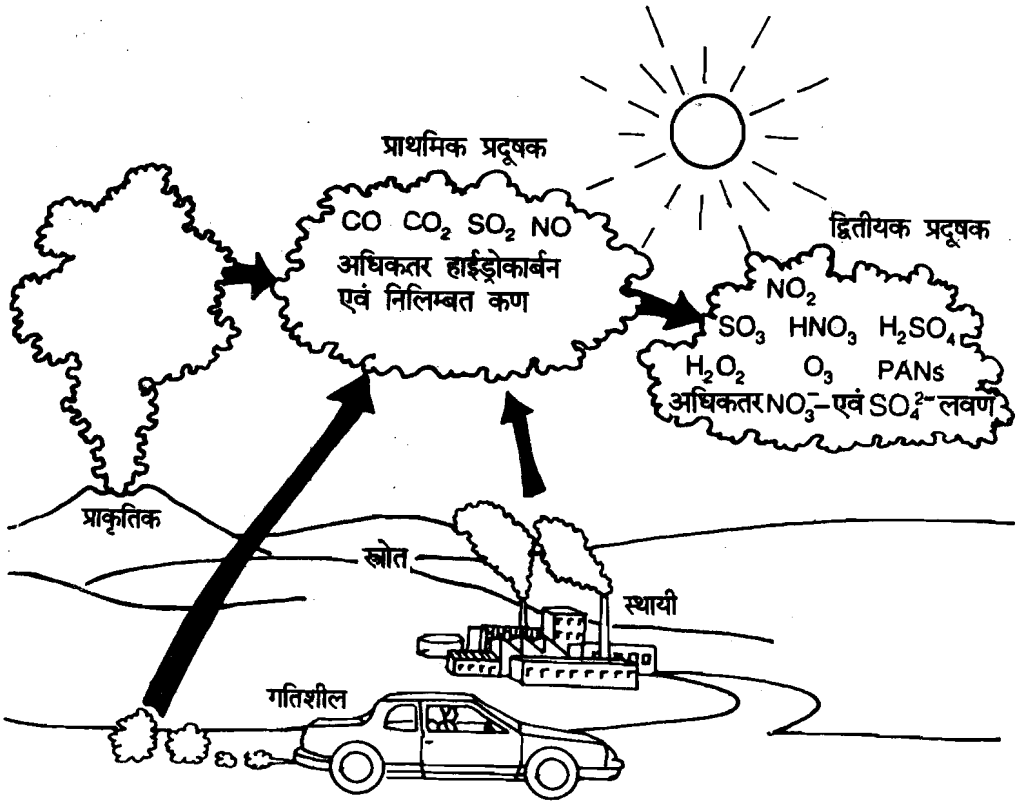

चित्र 10.1 : प्राथमिक और द्वितीयक वायु-प्रदूषक

बोध प्रश्न 2

1) द्वितीयक प्रदूषक किन्हें कहते हैं? नीचे दिए गए रिक्त स्थान में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.4 कुछ प्रमुख वायु प्रदूषक

प्रमुख वायु प्रदूषक वे हैं जो भारी मात्रा में उत्पन्न होते हैं और स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर खतरनाक प्रभाव डालते हैं। यहाँ हम ऐसे कुछ प्रदूषकों के विषय में वर्णन करेंगे।

10.4.1 सल्फर डाइआक्साइड

सल्फर डाइआक्साइड, पर्यावरणीय हानिकर प्रभाव डालते हैं। वे विद्युत संयंत्र, जो कोयले का उपयोग करते हैं, वायुमंडल में सल्फर डाइआक्साइड उत्सर्जित करने के लिए व्यापक रूप से दोषी हैं।

सल्फर डाइआक्साइड स्वयं ही, पेड़-पौधों तथा जीव-जंतुओं के लिए खतरनाक है। यह वायुमंडल में ओज़ोन, हाइड्रोजन पर-आक्साइड या जल वाष्प के साथ भी अभिक्रिया कर सकती है जिससे सलफ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) बनता है। सलफ्यूरिक अम्ल सबसे तेज अम्लों में से एक है। यह चूना पत्थर तथा धातुओं को संक्षारित करता है तथा कपड़ों को भी नष्ट कर देता है। यह श्वसन-ऊतकों पर भी खतरनाक प्रभाव डालता है। सलफ्यूरिक अम्ल को अम्ल वर्षा (Acid rain) का मुख्य घटक होने के कारण एक अत्यंत विषैला और खतरनाक वायु प्रदूषक के रूप में माना जाता है। आप इस इकाई के आगे के परिच्छेदों में अम्ल वर्षा के विषय में और अधिक विस्तार से अध्ययन करेंगे।

चूँकि सल्फर डाइआक्साइड सबसे अधिक विद्युत संयंत्रों में कोयले के जलने से निकलती है इसलिए वायुमडल में सल्फर डाइआक्साइड के उत्सर्जन पर नियंत्रण रखना इस बात पर निर्भर करेगा कि संयंत्रों में उत्पादन कितना ज्यादा होता है और ऊर्जा का इस्तेमाल कितना होता है तथा इस्तेमाल किए गए कोयले की गुणता कैसी है।

10.4.2 नाइट्रोजन के आक्साइड

ईंधन के उच्च तापमान पर जलने से नाइट्रोजन आक्साइड उत्पन्न होता है। नाइट्रोजन, जो सामान्यतया अक्रिय गैस होती है, उच्च तापमान की लपट में आक्सीजन से मिल जाती है और यदि निकलने वाली गैसें शीघ्र ठंडी हो जाती हैं तो वह संयुक्त रूप से ही वायुमंडल में रहती हैं।

सामान्य स्थिति में नाइट्रोजन के आक्साइड अपेक्षाकृत हानिकर नहीं होते हैं। ये मुख्यतः मोटर गाड़ियों के धुएँ, विद्युत संयत्रों, औद्योगिक स्थापनाओं, वाणिज्यिक संस्थाओं और रिहायशी स्थानों से वायुमंडल में फैलते रहते हैं। मोटर गाड़ियों स निकलने वाले धुएँ से बहुत अधिक मात्रा में नाइट्रोजन आक्साइड बनती है जो कुल मात्रा का लगभग 50% होती है। विद्युत संयंत्रों से लगभग 33% नाइट्रोजन आक्साइड बनती है और बाकी की प्रतिशतता क्रमशः 12%, 14% और 1% होती है। भारत के शहरों में डीज़ल से चलने वाली मोटर गाड़ियों से लगभग 90% नाइट्रोजन के आक्साइड वायुमंडल में जाते हैं।

वायुमंडलीय नाइट्रोजन का उच्च तापमान पर आक्सीजन के साथ संयोग होने से सर्वप्रथम नाइट्रिक आक्साइड (NO) बनती है। उच्च सांद्रण पर नाइट्रिक आक्साइड से, साँस लेने में अवरोध (asphyxia) उत्पन्न होता है। इसके बाद नाइट्रिक आक्साइड, वायुमंडलीय आक्सीजन के साथ आसानी से संयोग करती है, जिससे नाइट्रोजन डाइआक्साइड (NO_2) बनती है। नाइट्रोजन डाइआक्साइड से मनुष्य में कई प्रकार की बीमारियाँ हो सकती हैं। ये बीमारियाँ मसूढ़ों में सूजन से लेकर आंतरिक रक्त स्राव, निमोनिया, फेफड़े का कैंसर आदि तक हो सकती हैं।

10.4.3 हाइड्रोकार्बन

हाइड्रोकार्बन ऐसे यौगिक हैं जो कार्बन और हाइड्रोजन से बनते हैं। कुछ हाइड्रोकार्बन मनुष्यों पर सीधे प्रभाव डालते हैं और अपनी प्रकृति में कैंसरजन्य (carcinogenic) होते हैं, अर्थात् कैंसर पैदा करने वाले होते हैं। ये कोक उत्पादन तथा कोयले की खानों के निकट कूड़ा-करकट के ढ़ेर का अंदर ही अंदर सुलगकर जलने के दौरान अथवा कोयले के अनुचित रूप से जलने के दौरान उत्पन्न होते हैं।

10.4.4 कार्बन मोनोआक्साइड

कार्बन मोनोआक्साइड (CO) मोटर गाड़ियों से निकलने वाले प्रदूषकों में से एक है। मोटर गाड़ियों से जितना उत्सर्जन होता है उनमें 80% कार्बन मोनोआक्साइड होता है। यह ज्वालामुखियों तथा जंगल की आग से भी कुछ मात्रा में उत्सर्जित होता है। कार्बन मोनोआक्साइड, ईंधन के अपूर्ण रूप से जलने का उत्पाद है। कार्बन मोनोआक्साइड, रक्त की आक्सीजन वहन क्षमता को कम कर देता है। यह 1000 ppm से अधिक सांद्रता पर घातक हो सकता है। अतः बंद कमरे में कोयला जलाकर काम करना उचित नहीं होता है।

10.4.5 कार्बन डाइआक्साइड

कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) जीवाश्म ईंधनों, कागज़, पत्तियों, तंबाकू और कार्बन युक्त अन्य सामग्री के जलने से उत्पन्न एक मूलभूत अंत्य उत्पाद है। कार्बन डाइआक्साइड को अपेक्षाकृत कम हानिकारक माना गया है, क्योंकि इसका स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव नहीं पड़ता है। किंतु इसके बहुत से महत्वपूर्ण प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। इससे अम्ल वर्षा तथा "ग्रीन हाउस" प्रभाव होते हैं।

10.4.6 सीसा प्रदूषण

सीसा एक रासायनिक प्रदूषक है जो मोटर गाड़ियों के निकलने वाले धुएँ से वायुमंडल में प्रवेश करता है। सीसा यौगिक टेट्राएथिल लेड (TEL) का उपयोग मोटर गाड़ियों के सुचारु रूप से चलने के लिए पेट्रोल या गैसोलीन में अपस्फोटरोधी (anti-knock agent) के रूप में किया जाता है। यदि पेट्रोल की आक्टेन दर कम है तो ईंधन और वायुमिश्रण अपने नियत समय से पूर्व जल सकता है और ईंधन को सुचारु रूप से जलने में अवरोध उत्पन्न हो सकता है तथा अपस्फोट हो सकता है। अतः गैसोलीन की आक्टेन दर को टेट्राएथिल लेड प्रति लीटर 0.3 और 0.6 ग्राम के बीच सांद्रित अवस्था में मिलाकर बढ़ाया जाता है। देशों ने कुल मिलाकर टेट्राएथिल लेड का अपस्फोट रोधी कारक के रूप में उपयोग बंद कर दिया है और गैसोलीन की ऑक्टेन दर को बढ़ाने के लिए अन्य पद्धतियों का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है। चिंता की बात यह है कि भारत में हम अभी भी सीसायुक्त गैसोलीन का ही उपयोग कर रहे हैं।

यदि सीसा मिश्रित वायु साँस द्वारा अंदर जाती है तो इससे गुर्दे, रक्त और जिगर पर खतरनाक प्रभाव पड़ सकता है। यह जल और खाद्य पदार्थों में मिलकर संचयी विषाक्तता (cumulative poisoning) पैदा कर सकती है।

बढ़ते हुए बच्चों में इसके दूरगामी प्रभाव पड़ते हैं। बच्चों के शरीर में सीसा का स्तर बढ़ जाने से उनकी बुद्धि मंद हो सकती है। अतः यह वायु प्रदूषण का एक महत्वपूर्ण घटक बनता है।

10.4.7 निलंबित या तैरते हुए कणाकार पदार्थ

वायुमंडल में तैरते हुए या लटकते हुए छोटे-छोटे ठोस कण और द्रव (तरल) की बूँदों को कणाकार पदार्थ के रूप में जाना जाता है। वायुमंडल में उनके लटकते रहने का निर्धारण उनके आकार और विशेषकर भार से होता है जो कुछ सैकंड से लेकर महीनों तक होता है। इस प्रकार के कणाकार पदार्थ बहुत अधिक मात्रा में उन स्थापनाओं से उत्सर्जित होते हैं जिनमें कोयले का इस्तेमाल ईंधन के रूप में किया जाता है। ये वायु प्रदूषक एअरोसॉल (वायु विलयन (aerosols)) के रूप में भी जाने जाते हैं।

एअरोसॉल, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के प्रभाव में हमेशा रहते हैं। वायुमंडल में दो प्रकार के ऐअरोसॉल होते हैं, पहला प्राकृतिक, जैसे — कुहरा, बैक्टीरिया, पौधों के बीजाणु, परागकण आदि। आमतौर पर इनसे कोई पर्यावरणीय प्रदूषण नहीं होता है। इसका दूसरा प्रकार — सीमेंट का पाउडर है। कोयले के जलने से उत्पन्न राख, चिमनी की राख, क्वार्टज़ और ऐसबेस्टो का पाउडर, तेल का धुआँ, तंबाकू का धुआँ और रेडियोधर्मी ऐअरोसॉल आदि जो मुख्यतः मानव के कार्यकलापों के कारण उत्पन्न होने वाले प्रदूषक हैं और वायुमंडल के लिए लगातार खतरा बने रहते हैं तथा क्षति पहुँचाते हैं।

10.4.8 धूम्रपान

धूम्रपान का अभिप्राय तंबाकू का धुआँ पीने से है किंतु ऐसे अन्य पदार्थ भी हैं जिनका धुआँ पिया जा सकता है, उदाहरणार्थ — अफीम, धतूरा और अन्य जड़ी-बूटियाँ।

सिगरेट पीने से बहुत सी बीमारियाँ होती हैं क्योंकि सिगरेट के धुएँ में कैंसर पैदा करने वाला तारकोल (tars) पाये जाते हैं। सिगार और पाइप पीने से कैंसर पैदा करने वाले पीले-गाढ़े द्रव्य, टार का असर अपेक्षाकृत कम होता है, क्योंकि जिस तापमान पर तंबाकू का धुआँ पिया जाता है वह अपेक्षाकृत निम्न होता है। इसी हानिकारक प्रभाव के कारण भारत सरकार ने देश के सिगरेट निर्माताओं के लिए एक सांविधिक उपबंध बनाया है कि वे सिगरेट के प्रत्येक पैकेट पर यह चेतावनी छापें कि "सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है"।

इसके अलावा यह भी निश्चित हो चुका है कि जो लोग सिगरेट नहीं पीते किंतु उन्हें धुएँ से भरे वातावरण में कार्य करना पड़े तो उन्हें भी धुएँ से उत्पन्न स्वास्थ्य की समस्या का सामना करना पड़ता है। अनेक चेतावनी के बावजूद भी लोग सिगरेट पीते हैं, इससे भविष्य में अधिक से अधिक समस्याएँ पैदा होने की संभावना है। स्वास्थ्य के लिए सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसके प्रयोग से फेफड़े और गले का कैंसर हो सकता है। धूम्रपान से स्वास्थ्य संबंधी अन्य समस्या हृदय रोग है। प्रायः सिगरेट पीने वालों को साधारण खाँसी हो जाती है जिससे प्रदाह (smokers cough) और श्वासनली शोथ (bronchitis) की बीमारी होती है। यह निश्चित है कि मध्यम आयु वर्ग के वे लोग जो एक दिन में 20 से अधिक सिगरेट पी जाते हैं उनमें सभी रोगों को ध्यान में रखते हुए सिगरेट न पीने वालों की अपेक्षा मृत्यु-दर दुगुनी होती है।

फिर भी, सिगरेट पीने की आदत पर नियंत्रण केवल इच्छा शक्ति द्वारा रखा जा सकता है। कुछ मामलों में सिगरेट के स्थान पर चूसने वाली अरुचिकर मीठी चीज का भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

10.4.9 रेडियोधर्मिता

आप यह अवश्य जानते होंगे कि रेडियोधर्मी पदार्थ, विकिरण उत्सर्जित करके विघटित हो जाते हैं। तीन प्रकार के विकिरण जैसे — अल्फा, बीटा और गामा की पहचान की गई है। ये विकिरण जीवित ऊतकों के साथ अंतः क्रिया करके उन्हें नष्ट कर देते हैं। विकिरण के स्रोत प्राकृतिक हो सकते हैं जिसमें अंतरिक्षी (cosmic) और स्थलीय (terrestrial) अर्थात् कृत्रिम या मानव निर्मित दोनों शामिल हैं। अंतरिक्षी किरणें विकिरण की प्राथमिक स्रोत हैं जो अंतरिक्ष से वायुमंडल में प्रवेश कर जाती हैं। प्राथमिक विकिरण वायुमंडल में प्रवेश करके वायुमंडल में परमाणुओं के साथ अंतःक्रिया करके द्वितीयक विकिरण उत्पन्न करती है।

स्थलीय रेडियोधर्मिता, पृथ्वी की रेडियोधर्मी वस्तुओं से उत्पन्न होती है। यह विकिरण बहुत बड़े अंश में रेडियोधर्मी वस्तुओं जैसे — यूरेनियम, थोरियम, प्लैटिनम, पोटैशियम तथा कार्बन से होता है। स्ट्रान्शियम-90, वनस्पतियों तथा डेयरी उत्पादों में समाविष्ट हो जाता है और यह भवन सामग्री जैसे — ईंट तथा कंक्रीट आदि में भी मिल जाता है। इस तत्व के विकिरण से दीर्घकालिक खतरा है। ऐसा समझा जाता है कि ये वस्तुएँ पृथ्वी पर प्रारंभ से ही विद्यमान हैं।

पिछली दशाब्दी में रेडियोधर्मी वस्तुओं का काफी मात्रा में इस्तेमाल बिजली पैदा करने, अनुसंधान तथा औषधीय प्रयोजनों के लिए किया गया है। औद्योगिक और अनुसंधान एककों को परिरक्षक तरीकों से रखा गया है तथा इनमें इतने सुस्पष्ट उपाय निर्धारित किए गए हैं कि "रिएक्टर कोर" के बाहर विकिरण-स्तर, खतरे के स्तर से बहुत कम होता है। इसके अलावा ये रिएक्टर इस प्रकार बनाए गए हैं कि वे परमाणु बम की तरह फट नहीं सकते।

वास्तविक खतरा, विनाशकारी उद्देश्यों के लिए जानबूझकर रेडियोधर्मी वस्तुओं का इस्तेमाल करने से होता है। दुनिया उस विनाश को अब तक नहीं भूली है, जो द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होते-होते हिरोशिमा और नागासाकी में दो विखंडन बमों के डालने से हुआ था। विभिन्न स्रोतों से निकलने वाले विकिरणों का स्तर नीचे सारणी 10.1 में दिया गया है।

सारणी 10.1 विशिष्ट विकिरण स्तर

मिलिरम/वर्ष (millirem/year)		मिलिरम/वर्ष (millirem/year)	
अंतरिक्ष (कॉस्मिक) किरणों से	35	एक समुद्र तट से दूसरे समुद्र तट तक जेट फ्लाइट में	5
वायुमंडल से	5	रंगीन टेलीविजन से	1
भवन निर्माण सामग्री से	34	छाती के एक बार के एक्सरे से	5
खाद्य पदार्थों से	25	न्यूक्लियर पावरप्लांट से 50 मील के इर्दगिर्द रहने से	0.001
स्थल से	11		

सारणी 10.1 से यह स्पष्ट है कि मानव निर्मित या कृत्रिम स्रोतों की अपेक्षा प्राकृतिक स्रोतों से विकिरण काफी अधिक होता है बशर्ते कि ऐसी कोई घटना न घटे जैसी चेरनोबिल या थ्री माइल आइलैंड में घटी थी।

विकिरण के हानिकारक प्रभाव से कैंसर, जीन-उत्परिवर्तन (gene mutation) होता है तथा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र, रक्त बनाने वाले ऊतक, आँख, चमड़ी तथा बहुत से अन्य अंगों को क्षति पहुँचती है। यद्यपि वर्तमान समय में मानव निर्मित सभी स्रोतों से निकलने वाला कुल विकिरण काफी कम है तथापि, आने वाले वर्षों में रेडियोधर्मी वस्तुओं का व्यापक इस्तेमाल होने से इसमें वृद्धि हो सकती है। अतः जीवों पर विकिरण के प्रतिकूल प्रभाव का मूल्यांकन सावधानी से किया जाना चाहिए।

10.4.10 ध्वनि-प्रदूषण

ध्वनि की परिभाषा के अनुसार इसका मतलब है — "अर्थहीन ध्वनि" या "ऐसी ध्वनि जो सुनने वालों को अवांछित लगे"। इस प्रकार अन्य प्रकार के प्रदूषण से ध्वनि प्रदूषण का पर्यावरणीय प्रभाव थोड़ा-सा भिन्न है।

आमतौर पर शहरी इलाकों में बहुत अधिक शोर होता है क्योंकि वहाँ पर घनी आबादी होती है तथा औद्योगिक और अन्य गतिविधियाँ जैसे — परिवहन और गाड़ियों का आना-जाना आदि लगातार होता रहता है। शोर के औद्योगिक स्रोतों के अतिरिक्त अन्य स्रोत धार्मिक या राजनीतिक प्रचार के लिए सार्वजनिक भाषण के सहायक उपकरण, मनोरंजन, हाकरों की आवाजें अथवा गलियों और सड़कों की अन्य प्रकार की आवाजें शामिल हैं। शोर-शराबा, प्राकृतिक स्रोत जैसे — बादलों की गड़गड़ाहट से भी हो सकता है।

ध्वनि प्रदूषण का एक प्रबल खतरा है। इसका मूल्यांकन "ध्वनि स्तर" पैमाने में या डेसिबेल (decibles, (dB)) में किया जा सकता है। फिर भी स्वास्थ्य-जोखिम, "महसूस किया गया ध्वनि स्तर डेसिबेल (pNdB-perceived noise level decibels) जो विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दिन में 45 dB और रात में 35 dB के रूप में अनुकूलतम ध्वनि स्तर के रूप में निर्धारित किया गया है। सारणी 10.2 में ध्वनि-स्रोतों की सूची और उसकी मात्रा दी गई है।

सारणी 10.2 : ध्वनि के स्रोत और उनकी मात्रा

	ध्वनि स्रोत	ध्वनि पैमाना		ध्वनि स्रोत	ध्वनि पैमाना
1.	साँस लेना	10 dB	12.	यातायात का शोर	60-90 dB
2.	वृक्षों से चलने वाली हवा	20 dB	13.	स्पोर्ट कार	80-95 dB
3.	नितांत वार्तालाप	20-30 dB	14.	भारी ट्रक	90-100 dB
4.	घड़ी की सूइयाँ	10 dB	15.	मोटर साइकिल	105 dB
5.	शांत गली में मकान्	35 dB	16.	वातचालित ड्रिल	90-100 dB
6.	रेडियो संगीत	50-60 dB	17.	गरज वाला तूफान	110 dB
7.	ऊँची आवाज़ में वार्तालाप	60 dB	18.	ताल-संगीत (बिजली से तेज की गई आवाज)	120 dB
8.	दफ्तर का शोर	60 dB	19.	वायुयान की ध्वनि	90-120 dB
9.	बच्चों का खेलना	60-80 dB	20.	जेट विमानों का उतरना (100 मी. की दूरी पर)	120 dB
10.	लॉन काटने वाला	60-80 dB	21.	जेट इंजन (25 मी. की दूरी पर)	140 dB
11.	निर्वात-मार्जक	80 dB	22.	स्पेस वेहिकल लॉंच (कम दूरी से)	140-170 dB

ध्वनि प्रदूषण के अन्य बहुत से भिन्न खतरे हैं। उदाहरणार्थ — जो लोग 110 के ध्वनि स्तर से प्रभावित हो जाते हैं उन्हें मानसिक सदमा, बहरापन, शारीरिक थकान और उच्च रक्त चाप, हृदय तथा रक्त वाहिकाओं संबंधी रोग अनिद्रा रोग (insomania), पेट का अल्सर, एक्ज़ीमा और अस्थमा हो सकता है। मनोवैज्ञानिकों की राय में केवल एक दिन के लिए ज्यादा समय तक शोर-शराबे के बीच रहने से अत्यंत मानसिक भ्रम हो सकता है और कुछ मामलों में हिंसात्मक व्यवहार भी देखने में आता है।

साधारणतः शोर-शराबे से होने वाले प्रदूषण और उनकी मात्रा पर नियंत्रण आपसी सूझ-बूझ और सहयोग की भावना से रखा जा सकता है। फिर भी कुछ मामलों में ध्वनि-प्रदूषण को सख्त कानून बनाकर और विधि प्रवर्तन विभाग के सत्प्रयासों से कम किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 3

उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

i) ..... को अम्ल वर्षा का मुख्य घटक होने के कारण एक अत्यंत विषैला और खतरनाक वायु-प्रदूषक के रूप में माना जाता है।

ii) ..... ईंधन का एक अधजला उत्पाद है। यह रक्त की आक्सीजन वहन क्षमता को कम कर देता है।

iii) अंतरिक्षी किरणों से उत्सर्जित विकिरण प्रतिवर्ष ..... मिलिरम होता है।

iv) विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार निर्धारित अनुकूलतम ध्वनि स्तर दिन में ..... और रात में .....है। .....से अधिक होना खतरनाक है।

10.5 वायु प्रदूषण पर भू-भौतिकीय प्रभाव

जैसा कि आप यह जानते हैं कि गैसीय आवरण (ब्लैंकेट), जिससे पृथ्वी का वायुमंडल बनता है, जीवन को सुरक्षित रखने में बुनियादी भूमिका निभाता है। वायुमंडल की ऊपरी परत को समतापमंडल (stratosphere) कहते हैं। यह उल्का, कॉस्मिक किरणों, सूर्य से आने वाले पैराबैंगनी विकिरण, पृथ्वी पर पहुँचने वाले अन्य हानिकर विकिरण तथा कणों से पृथ्वी-तल के लिए कवच का काम करती है तथा उसे सुरक्षित रखती है। वायुमंडल की निचली परत को क्षोभमंडल (troposphere) कहते हैं। यह विभिन्न पदार्थों को संचित रखने तथा उन्हें वितरित करने का एक माध्यम है। हम सभी जल वाष्प तथा ऊष्मा-ऊर्जा से संबंधित इन कार्यों से भली-भाँति परिचित हैं। जल वाष्प तथा ऊष्मा-ऊर्जा के वितरण से जलवायु संतुलित होती है।

क्षोभमंडल में हर प्रकार के जीवन से संबंधित आक्सीजन-कार्बन डाइआक्साइड वितरण चक्र चलता रहता है। क्षोभमंडल उन सभी संदूषकों को एकत्रित और वितरित करता है, जिसे हम इसमें छोड़ते रहते हैं। इसका यही कार्य वायु प्रदूषण के विषय में हमारे लिए प्रारंभिक रुचि का विषय है।

सैद्धांतिक रूप में कोई प्रदूषक, क्षोभमंडल से होकर ही जा सकता है किंतु यह समतापमंडल में प्रवेश नहीं कर सकता। सामान्यतः वायु प्रदूषण की बहुत सी समस्याएँ भू-तल से ऊपर वायुमंडल के प्रथम 100 मीटर तक की ऊँचाई तक ही सीमित होती हैं। वायुमंडल गतिविधि ही ऐसा अकेला कारक है जो पूर्ण रूप से स्वयं यह निर्धारित करता है कि हमारे द्वारा उत्पन्न प्रदूषण हमें ही नुकसान पहुँचाएगा या उससे किसी अन्य स्थान को खतरा पैदा होगा।

10.5.1 भूगोल

पृथ्वी द्वारा प्राप्त सौर ऊर्जा का वितरण, भूमध्य रेखा की अपेक्षा ध्रुवों के निकट काफी बड़े क्षेत्रफल में होता है। (चित्र 10.2 देखें) इस प्रकार प्रति इकाई क्षेत्रफल द्वारा प्राप्त ऊर्जा की मात्रा, भूमध्य रेखा पर ज्यादा होती है जिसके फलस्वरूप ध्रुवों की अपेक्षा भूमध्य रेखा का भाग अधिक गर्म रहता है।

इसके विपरीत बाहर जाने वाला विकिरण अक्षाँश पर ज्यादा समरूप मात्रा में वितरित होता है। इन दोनों स्थितियों के एक साथ होने के कारण भूमध्य क्षेत्रों से ध्रुवों की ओर ऊष्मा ऊर्जा का बड़ी मात्रा में अंतरण होता है। यह कार्य वायुमंडल की गतिशीलता अर्थात् हवा के चलने से पूरा होता है। वायुमंडल में विद्यमान प्रदूषक इन्हीं हवाओं द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते जाते हैं। अतः एक राष्ट्र का प्रदूषण अपने पड़ोसी राष्ट्र के लिए समस्या बन सकता है (चित्र 10.2)।

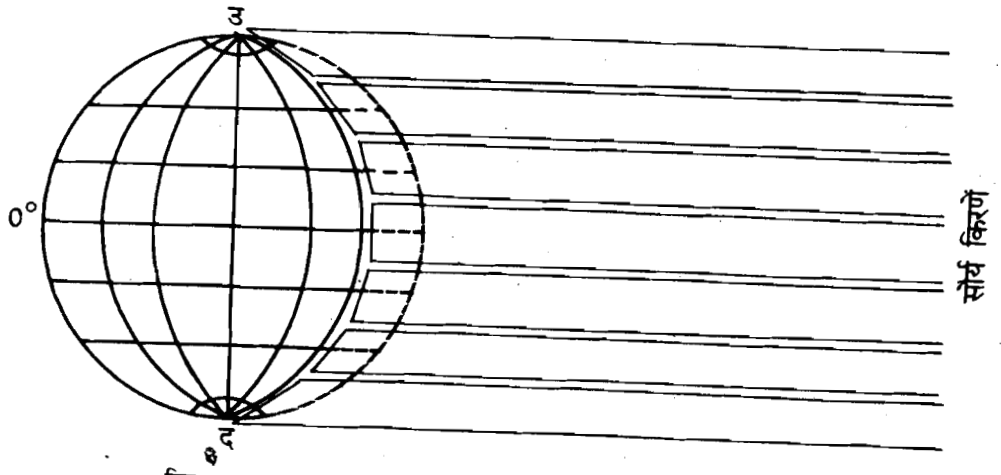

चित्र 10.2 : अक्षांश से होने वाले विकिरण के वितरण में अंतर

पृथ्वी तल अपने आवरण, वायुमंडल और बादलों के साथ मिलकर आने वाले सौर विकिरण को मिश्रित रूप से ग्रहण करता है। सौर ऊर्जा का कुछ भाग वायु द्वारा, कुछ भाग बादलों द्वारा और कुछ भाग पृथ्वी द्वारा अवशोषित होता है और कुछ भाग अंतरिक्ष में परावर्तित हो जाता है (चित्र 10.3)। आपको पता होगा कि विकिरण का बहुत बड़ा भाग, वायुमंडल की अपेक्षा भू-तल द्वारा अवशोषित होता है। इसका मतलब यह है कि सामान्यतः वायु भू-तल से गर्म होती है अर्थात् भू-तल के संपर्क से सूर्य से गर्म होती है न कि सूर्य के सीधे विकिरण से। अतः दिन के समय भू-तल के निकट बहने वाली हवा अक्सर गर्म होती है (चित्र 10.3)।

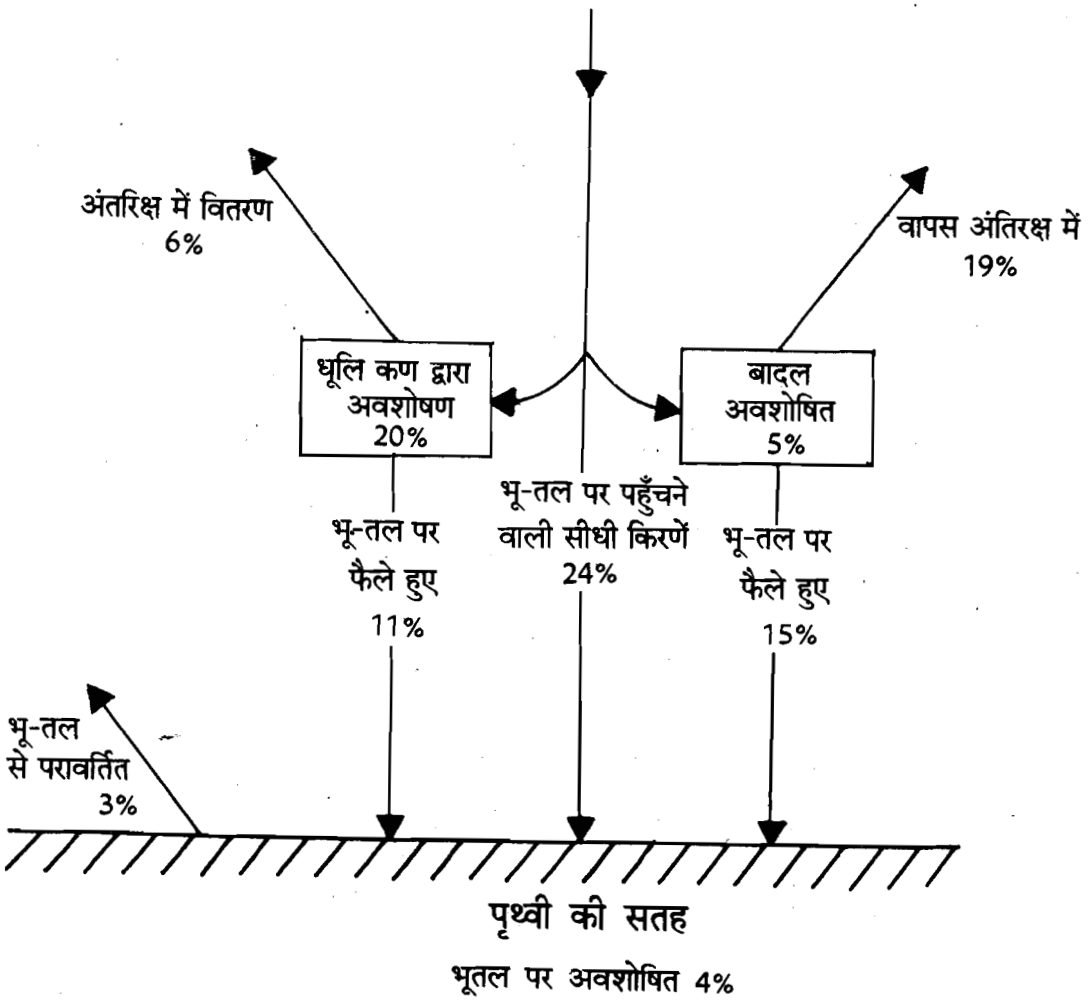

यद्यपि वायु को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का प्रमुख कारक तापमान का अंतर है फिर भी स्थलाकृति-क्षेत्र वायु को एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में कुछ प्रभाव डालते हैं और इस प्रकार प्रदूषण पर भी असर पड़ता है। यहाँ हम दो बातों पर चर्चा करेंगे—स्थल-समुद्री समीर और पर्वत-घाटी हवा जिसका स्थानीय वायु प्रदूषण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

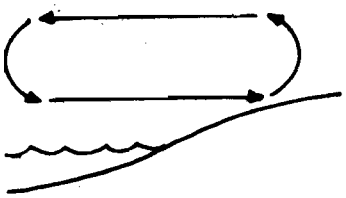

क

चित्र 10.4 : (क) स्थलीय समुद्री समीर

समुद्रतटीय क्षेत्रों में स्थल और समुद्र के तापमान में अंतर के कारण परिसंचरण होता है। प्रातःकाल सूर्य, जल की अपेक्षा स्थल को ज्यादा तेजी से गर्म करता है। स्थल की गर्म वायु ऊपर उठती है और फिर समुद्र की ठंडी वायु उस स्थान को भर देती है जिससे समुद्री समीर बनता है (चित्र 10.4 क)। समुद्री समीर का वायु प्रदूषण पर दो प्रकार से प्रभाव पड़ता है। पहला — यह (समुद्री समीर), समुद्र के निकट उत्पन्न प्रदूषण को स्थलीय क्षेत्रों की ओर ले जाने में बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। दूसरा — यदि सायँकालीन स्थलीय समीर प्रदूषण को समुद्र की तरफ ले गया हो तो प्रातःकालीन समुद्री समीर उस प्रदूषण को वापस स्थल की ओर ला सकता है।

पर्वत-घाटी हवा भी इसी प्रकार से चलती है सिवाए इसके कि तापमान का अंतर ऊँचाई में अंतर होने के कारण होता है। चित्र 10.4 ख में बिंदु क पृथ्वी तट के ज्यादा नजदीक है इसलिए वहाँ की वायु बिंदु ख की अपेक्षा ज्यादा गर्म है। बिंदु क की गर्म वायु ऊपर उठती है जिससे घाटी की ओर प्रातःकालीन समीर बनती है। सायंकाल ठीक इसके प्रतिकूल होता है। चूँकि प्रदूषण स्रोत प्रायः घाटी में ही स्थित होते हैं इसलिए इसके परिसंचरण को अनपेक्षति ढंग से प्रदूषकों की तरफ बढ़ते रहने की संभावना होती है।

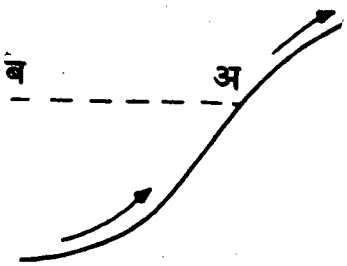

ख

(ख) पर्वत घाटी समीर

10.5.2 जलवायु

जलवायु से अभिप्राय, उस औसत स्वरूप से है जिसमें समय-समय पर मौसम बदलता रहता है। औसत स्वरूप का निर्धारण एक महीने से लेकर दशाब्दी तक की लंबी अवधि तक किया जाता है। किसी स्थान की जलवायु वहाँ पर जल के होने या न होने, सौर विकिरण के परावर्तित होने, वायुमंडल में जल को अंतरित करने की क्षमता (अर्थात् वाष्पीकरण करना), ऊष्मा को संचित करने की क्षमता तथा उस स्थान की स्थलाकृति और बनावट पर निर्भर करती है।

यद्यपि ये सभी पृथ्वी के संपूर्ण जमीनी क्षेत्र का अंशमात्र भाग ही बनाते हैं फिर भी घनी आबादी वाले महानगरीय क्षेत्र भारी मात्रा में वायु प्रदूषक छोड़ते हैं। ये वायु प्रदूषक तापमान, दृष्टिगोचरता और हिमपात तथा जलवायु संबंधी अन्य तत्वों को प्रभावित करते हैं।

हम इस तथ्य से परिचित हैं कि शहर, निकटवर्ती ग्रामीण पर्यावरण की अपेक्षा अधिक गर्म होते हैं। इस प्रकार की "सूक्ष्म जलवायु" के बनने में शहरी ऊष्मा एक महत्वपूर्ण कारक है। इस प्रकार की ऊष्मा शहर में रहने वाले लोगों द्वारा छोड़ी गई जैव ऊष्मा (biological heat), मकान को गर्म रखने वाले साधनों तथा उद्योगों एवं मोटर गाड़ियों द्वारा छोड़ी गई ऊष्मा भी शामिल है। इसके अन्य कारक अवक्षेपण का अवशोषण या वाष्पीकरण होने के बजाए उन्हें शीघ्रता से बहा देना तथा परिवर्तित विकिरण और ऊष्मा संचित रखने की क्षमता का होना है। ऐसा इसलिए होता है कि जंगलों और खेतों के स्थान पर पक्के मकान बन रहे हैं जिसके फलस्वरूप जमीन की सतह काफी ऊबड़-खाबड़ होती जा रही है। अतः मानव जाति, स्थानीय जलवायु पर नाटकीय प्रभाव डालने का प्रयास कर रही है।

शहर की जलवायु में परिवर्तन का अन्य कारक उस शहर पर तैरते हुए प्रदूषकों का है जो एक आवरण बना लेते हैं। यह आवरण, पृथ्वी की सतह से ऊपर की ओर जाने वाले तापीय विकिरण का एक अंश अवशोषित कर लेता है। विकिरण का यह अंश, प्रदूषकों द्वारा पुनः छोड़ा जाता है और दूसरा अंश, आसपास के वायुमंडल को गर्म करता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे शहर की निम्न स्तर वाली वायुमंडलीय स्थिरता में वृद्धि होती है और इससे उच्च प्रदूषक सांद्रता की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। इस प्रकार, वायु द्वारा ले जाए गए प्रदूषण न केवल अत्यधिक "ऊष्मा द्वीप (heat island)" बनने का कारण बनते हैं बल्कि ऊर्ध्वाधर तापमान के बनावट को इस रूप में परिवर्तित भी करते हैं कि उनका अपना (तापमान) विवरण भी बाधित होता है।

मनुष्य के क्रिया-कलापों से छोड़ी गई अत्यधिक कार्बन डाइआक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन और मीथेन गैस, पृथ्वी के वायुमंडल में फँसी रहती है। ये भू-पृष्ठ से पुनर्विकिरित सुर्यताप को आकाश में जाने से रोक देती हैं जिससे "ग्रीन हाउस प्रभाव (Green house effect)" होता है। इससे एक लंबी अवधि तक पृथ्वी के औसत तापमान में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। "ग्रीन हाउस प्रभाव" के बारे में आप परिच्छेद 10.6 में विस्तार से पढ़ेंगे।

आइए, अब हम आपको इसके विपरीत एक अन्य दृष्टिकोण से अवगत कराएँ। वायुमंडल में धुआँ और राख जैसे कणाकार पदार्थों की वृद्धि होने से वायुमंडल की विकिरणधारिता बढ़ जाती है। इसका मतलब यह होगा कि सूर्य से निकलने वाला अधिकाँश विकिरण, भू-पृष्ठ पर पहुँचने से पहले अंतरिक्ष में परावर्तित हो जाएगा। इससे अंततोगत्वा पृथ्वी के तापमान में गिरावट आएगी, जिससे हमारे भू-मंडल के लिए दूसरा हिमानी-युग (ice-age) शुरू हो जाएगा। न्यूक्लियर युद्ध होने के उपरांत न्यूक्लियर शीत (nuclear winter) की भविष्यवाणी एक ऐसे ही हिमानी युग के बारे में प्रसिद्ध वैज्ञानिक कार्ल्ड सागन ने की है।

10.5.3 मौसम

मौसम और जलवायु एक ही चीज नहीं हैं। तापमान की बदलती हुई दशाओं बदली, पवन, आर्द्रता तथा कुछ क्षणों तक होने वाली वृष्टिपात अथवा कुछ घंटों से लेकर कुछ दिनों तक की अवधि में ऐसी दशाओं के औसत को मौसम कहते हैं। मौसम प्रति घंटा, प्रतिदिन या प्रति सप्ताह बदल सकता है।

क्षोभमंडल ही वह माध्यम है जिसमें मौसम संबंधी अनेक घटनाएँ घटती रहती हैं। क्षोभमंडल की संरचना और उसके तल में सबसे अधिक गर्म वायु ऊर्ध्वाधर अस्थिरता को बढ़ाती है, जिससे गर्म वायु ऊपर उठती है और ठंडी वायु नीचे की ओर आती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि गर्म वायु, ठंडी वायु की अपेक्षा हल्की होती है, अतः क्षोभमंडल ऊर्ध्वाधर (खड़े रूप में) रूप में अच्छी तरह से मिल जाता है। फिर भी कतिपय परिस्थितियों में स्थल के निकट क्षोभमंडल का सामान्य तापमान परिवर्तित हो जाता है, जिससे ऊँचाई के साथ-साथ तापमान में वृद्धि हो। ऐसी स्थिति में गर्म हल्की वायु के ऊपर जाने और ठंडी भारी वायु के नीचे आने को उत्क्रमण (inversion) कहते हैं। इसमें ऊर्ध्वाधर (खड़े रूप में) मिश्रण, उस ऊँचाई पर अवरुद्ध होता है जिस पर तापमान में वृद्धि हो चुकी होती है। ऊर्ध्वाधर मिश्रण उन दशाओं में भी अवरुद्ध हो जाता है जहाँ तापमान ऊँचाई के साथ घटता है किंतु इतना अधिक नहीं घटता है कि घनत्व परिवर्तन का स्तरीकृत प्रभाव विफल हो सके। वायुमंडल में काफी मात्रा में कणाकार पदार्थ के होने से उत्क्रमण हो सकता है।

उत्क्रमण, मौसम विज्ञान के लिए विशेष महत्व रखते हैं क्योंकि ये प्रदूषण के विसांद्रण (dilution) में अवरोध उत्पन्न करते हैं जिसके कारण "धूम कुहरा" (smog) होता है। "धूम कुहरा" शब्द का आविष्कार इंग्लैंड में किया गया। "धूम कुहरा" — प्रदूषण उस देश में संबद्ध है, इसलिए अंग्रेजी के स्मोक (अर्थात् धूम कुहरा) इंग्लैंड में प्रचलित हुआ। दिसंबर 1952 में लंदन 10 दिनों तक धूम कुहरा से आच्छादित रहा। यद्यपि उस समय हुई मौतें, सीधे धूम कुहरे से हुई नहीं मानी गई किंतु बाद में चलकर आँकड़ों से यह पुष्ट हुआ था कि उस वर्ष में उन दिनों 6000 से अधिक मौतें, विशेषकर बीमार और बूढ़े लोगों की हुई। यह धूम-कुहरा, धुआँ और कणाकार राख के कारण ही नहीं हुआ था बल्कि शहर में ताप और औद्योगिक प्रयोजनों के लिए कोयले के जलने के कारण वायुमंडल में बहुत बड़ी मात्रा में सल्फर डाइआक्साइड गैस के होने के कारण भी हुआ था।

"लंदन स्मॉग" (लंदन का धूम कुहरा), "लॉस एंजिल्स स्माग" अथवा "प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा (Photochemical smog) से बिल्कुल भिन्न होता है। प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा, एक नए किस्म का धूम कुहरा है जो मोटर गाड़ियों से होता है। प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा का बनना, योगवाहिता (synergism) का उदाहरण है, अर्थात् इसे सामान्य जन की अभिव्यक्ति में "दो और दो मिलकर चार से अधिक होते हैं" कहने के बराबर है। आइए, प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा के बनने में योगवाहिता पर विचार करें। आप जानते हैं कि नाइट्रोजन के आक्साइड और बिना जले हाइड्रोकार्बन दोनों मोटर गाड़ियों के धुये के रूप में निकलते हैं। सूर्य के प्रकाश में पैराबैंगनी विकिरण की मौजूदगी में प्रदूषक परस्पर क्रिया करते हैं जिससे पेरॉक्सी एसिटल नाइट्रेट (PAN) और ओज़ोन बनते हैं। पैन (PAN) और ओज़ोन नाइट्रोजन आक्साइड और हाइड्रोकार्बन से ज्यादा हानिकारक होते हैं बल्कि इन दोनों को मिला कर जो हानि होती है उससे ज्यादा हानिकारक पैन और ओज़ोन होते हैं। पूर्वी प्रशांत महासागर में हवा के स्वरूप के कारण तथा लॉस एंजिल्स घाटी के चारों तरफ पर्वत वलय (ring of maintains) के कारण उत्क्रमण बनने की परिस्थितियों के लिए यह एक आदर्श स्थान है। ज्यादातर ये परिस्थितियाँ नदी घाटी के तल से लगभग 2000 फीट ऊँचाई पर होती हैं। लॉस एंजिल्स के वायु प्रदूषण समस्या को बढ़ाने में जलवायुगत जो दूसरी विशेषता है वह यह है कि वहाँ पर सूर्य का प्रकाश प्रचुर मात्रा में होता है, जो पैन, ओज़ोन व हाइड्रोकार्बन के साथ उपरोक्त चर्चा के अनुरूप पारस्परिक क्रिया करके प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा पैदा करता है (चित्र 10.5)।

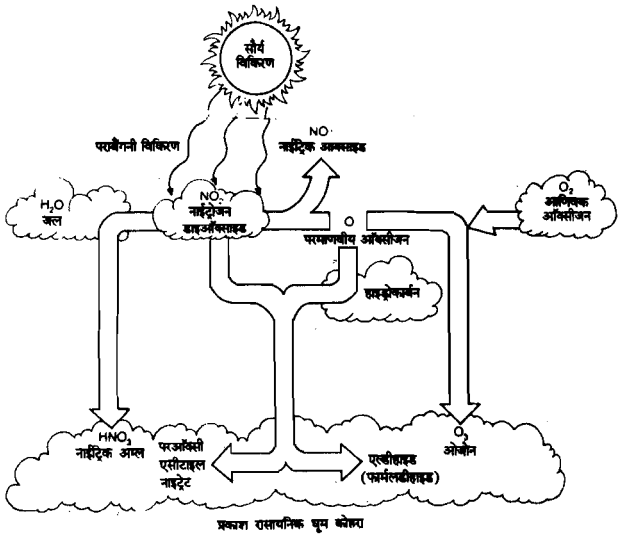

चित्र 10.5 : प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा बनने का सरल रेखाचित्र

अवक्षेपण अर्थात् वर्षा, बर्फ, करकावृष्टि और ओले के साथ वृष्टि भी वायुमंडल में तैरते हुए प्रदूषकों को भू-पृष्ठ पर अपने साथ लाते हैं। यद्यपि क्लोरोफ्लोरो कार्बन जैसे प्रदूषक वर्षा आदि के साथ नीचे नहीं आ सकते किंतु सल्फर डाइआक्साइड के अणुओं और जल के अणुओं में प्रबल आकर्षण होता है। इनके संयोग से अम्ल का वर्षण के रूप में अवक्षेपण होता है। अम्ल वर्षण न केवल मनुष्य के स्वास्थ्य और पेड़ पौधों तथा जीव-जंतुओं के जीवन के लिए विनाशकारी होता है बल्कि मकानों के लिए भी यह विनाशकारी होता है। आप परिच्छेद 10.6 में अम्ल वर्षा के बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।

10.5.4 पवन

जल या स्थल प्रदूषण की अपेक्षा वायु प्रदूषण से काफी भारी संख्या में लोग प्रभावित होते हैं। वायु समान रूप से सभी को प्रभावित करती है। यह लोगों में भेद नहीं रखती। हम लोग एक ही प्रकार की वायु साँस द्वारा भीतर खींचते हैं और हवा इसे प्रत्येक कोने तक फैला देती है। दिसंबर 1984 में भोपाल में एक बड़ी त्रासदी घटित हुई थी। यूनियन कार्बाइड फैक्ट्री से दुर्घटना के कारण 45 टन मिथाइल आइसोसायनेट रिस गई। ठंडी, रात्रिकालीन उतरी हवा ने इस जहरीले बादल (गैसों का बादल) को लगभग समूचे भोपाल में फैला दिया। किंतु इसकी सांद्रता, फैक्ट्री के 1.5 कि.मी. व्यास में सबसे ज्यादा रही जिससे लगभग 3000 मौतें हुई और 60,000 से अधिक लोग उम्र भर के लिए शारीरिक अशक्तता तथा अकथनीय दुख के शिकार हुए।

सामान्य रूप से गैसीय और कणाकार पदार्थों का बिखरना, उत्सर्जन के प्रकार तथा वायु एवं वायुमंडल के तापमान की संरचना पर निर्भर करता है। यद्यपि वायु और वायुमंडल के तापमान की संरचना में पारस्परिक संबंध है फिर भी वायु की भूमिका का अलग मूल्यांकन करना संभव है।

आइए अब हम 100 फुट ऊँची ईंटों की चिमनी पर विचार करते हैं। इसके बिल्कुल ऊपर से एक निश्चित दर पर प्रदूषक गैसें और कण निकलते हैं और उसके बिल्कुल ऊपर से ही होकर विभिन्न गति से क्षैतिज वायु चलती है। वायु जितनी तेज होगी उतनी ही अधिक मात्रा में चिमनी से होकर वायु गुज़रेगी। अतः हवा में जितनी शीघ्रता और तीव्रता होगी उतनी ही शीघ्रता और तीव्रता से प्रदूषक तितर-बितर होंगे। इस प्रकार भू-पृष्ठ पर चलने वाली तेज हवाएँ हल्की हवाओं की अपेक्षा उत्सर्जित सामग्री की अल्प सकेंद्रता होने पर भी धूम पिच्छक (smoke

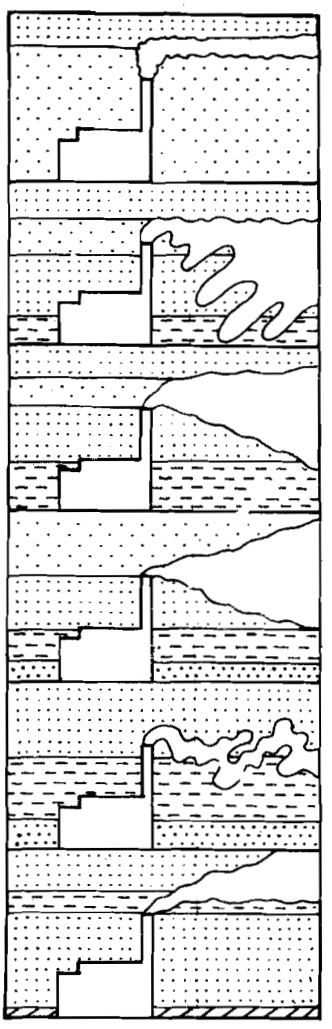

रात के समय जब आसमान साफ रहता है और हवा धीरे-धीरे बहती है तब पृथ्वी के निकट की अत्यधिक ठण्डी वायु की परत ऊपर गर्म वायु पायी जा सकती है (तापमान उत्क्रमण)। इन परिस्थितियों में धुआँ पट्टी अथवा चादर के रूप में बहता है।

सुबह के समय गर्म पृथ्वी अपने समीप की वायु को गर्म करती है और इस प्रकार उत्क्रमण को समाप्त करती है कुछ समय के लिये वायु के आपस में मिलने से धुआँ नीचे की ओर आने लगता है।

उत्क्रमण के लगातार नीचे से समाप्त होने के कारण धुआँ पिच्छक की शक्ल ग्रहण कर लेता है पहले लगता है कि धुयें पिच्छक नीचे की ओर झुका हुआ है।

कुछ समय के बीतने के बाद तापमान ऊँचाई के साथ स्थिर हो जाता है। और कोन ज्यादा सममित हो जाता है।

जब सूर्य से पृथ्वी अत्यधिक गर्म हो जाती है तब बड़ी संवाहक धारा द्वारा धुआँ पिच्छक टूट जाता है या फंदेनुमा आकार में बदलने लगता है।

शाम होते ही अगर धीमी हवा बहती है और आसमान साफ रहता है तो ताप उत्क्रमण पृथ्वी के तापीय शीलन के कारण स्थापित हो जाता है। धुआँ पिच्छक का ऊपर की ओर झुकाव यह इंगित करता है कि उत्क्रमण के ऊपर परत पर धुयें का वितरण हो रहा है।

चित्र 10.6 : चिमनी से धूम पिच्छक (पूँछ की शक्ल में धुआँ) निकलने की अनुक्रिया। इस आरेख में वायु की सामान्यीकृत तापीय संरचना बताई गई है जिसमें कटी हुई रेखा, गर्म वायु की परत और बिंदुओं से ठंडी वायु की परत को प्रदर्शित करता है।

plume) उत्पन्न करती है। चित्र 10.6 में यह स्पष्ट किया गया है कि तापमान और हवा की गति एवं दिशा चिमनी से निकलते धूम पिच्छक के फैलने को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

10.6 अजैव मंडल पर प्रदूषण के प्रभाव

बहुत दिनों से यही समझा जाता रहा है कि वायु प्रदूषण, स्थानीय जलवायु विशेषकर वर्षा को ही प्रभावित कर सकते हैं। हाल के वर्षों में विश्व जलवायु पर वायु प्रदूषण के संभावित प्रभाव के बारे में काफी विचार-विमर्श किया जाता रहा है। आइए, अब हम वायु प्रदूषण के जलवायु संबंधी कुछ प्रभावों के विषय में जानकारी प्राप्त करें।

10.6.1 जलवायु संबंधी प्रभाव

''ग्रीन हाउस प्रभाव'': विगत दो शताब्दियों में वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में भारी वृद्धि हुई है। इसका संभावित कारण जीवाश्म ईंधनों का जलाना तथा किसानों द्वारा जंगलों का सफाया करना है। वैज्ञानिक इस बात पर चिंतित हैं कि कार्बन डाइआक्साइड और अन्य गैसों की मात्रा में हो रही वृद्धि से पृथ्वी की जलवायु बदल सकती है। सामान्य दशाओं में बहुत अधिक सौर विकिरण, जो पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करता है, भू-पृष्ठ से ताप के रूप में पुनः विकिरित होता है और अंतरिक्ष में गायब हो जाता है।

किंतु कार्बन डाइआक्साइड में वृद्धि होने से अधिकांश सौर विकिरण वायुमंडल में प्रवेश तो करता है परंतु स्थल और जलाशयों से पुनः विकिरित अंश का अंतरिक्ष में जाना रुक जाता है। जैसे-जैसे कार्बन डाइआक्साइड संचित होती है वैसे-वैसे अधिकाधिक मात्रा में ताप वायुमंडल में बढ़ता जाता है और धीरे-धीरे वायुमंडल गर्म हो जाता है।

मीथेन और क्लोरोफ्लोरो कार्बन ऐसी अन्य गैसें हैं जिनसे ''ग्रीन हाउस प्रभाव'' होता है। मीथेन गैस पशुओं की खाद से, चावल की अधिक खेती करने से तथा जंगलों की व्यापक सफाई से छूटी हुई सड़ी-गली लकड़ियों पर प्रचुर मात्रा में पैदा हो रही दीमकों के आत्मसात्मकरण से उत्सर्जित गैस होती है।

औद्योगिक संयंत्रों तथा फैक्टरियों से उत्सर्जित गैसों का अधिकांश भाग निकट के क्षेत्रों में चला जाता है। कुछ उत्सर्जन को हवा उड़ा ले जाती है जो आकाश से हिम, वर्षा या कुहासे द्वारा साफ हो जाता है। किंतु कुछ रासायनिक तत्व जैसे क्लोरोफ्लोरो कार्बन निम्न स्तर पर घुलते नहीं हैं या फिर से रासायनिक मिश्रण नहीं बनाते हैं। वे अधिक स्तर पर उठते हैं और समताप मंडल को दूषित कर देते हैं। क्लोरोफ्लोरो कार्बन का इस्तेमाल प्रशीतक (refrigerants) के रूप में किया जाता है और कुछ स्थानों पर इसका इस्तेमाल अभी भी ''स्प्रे कैन प्रोपेलैंट'' के रूप में किया जाता है। ये जैसे ही ऊपर की ओर बहते हैं वैसे ही ग्रीन हाउस प्रभाव डालते हैं।

शोधकर्ताओं ने यह अनुमान लगाया है कि यदि ग्रीन हाउस गैसें वर्तमान दर पर बढ़ती रहीं तो इस शताब्दी के अंत तक वायुमंडल के तापमान में संभावित वृद्धि 2°C होगी। भू-मंडल का तापमान अधिक होने से हिम नदियाँ पिघलेंगी और समुद्र की सीमा में भी विस्तार होगा, क्योंकि गर्म जल ठंडे जल की अपेक्षा अधिक स्थान घेरता है। यदि वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों का स्तर दुगुना हो गया तो समुद्र जल का स्तर ऊपर उठेगा, इसके औसत वृद्धि का आकलन 0.5 से लेकर 2.5 मीटर के बीच भिन्न-भिन्न होगा। यह उम्मीद की जाती है कि ऐसी घटना धीरे-धीरे अगली शताब्दी में घटेगी जिससे समुद्र के तटवर्ती क्षेत्र प्रभावित होंगे जहाँ लगभग एक अरब लोग इस समय रहते हैं और जो विश्व की आबादी का एक चौथाई भाग है। इसके अलावा समुद्री पारिस्थितिकीय तंत्र भी बहुत अधिक प्रभावित होगा (चित्र 10.7)।

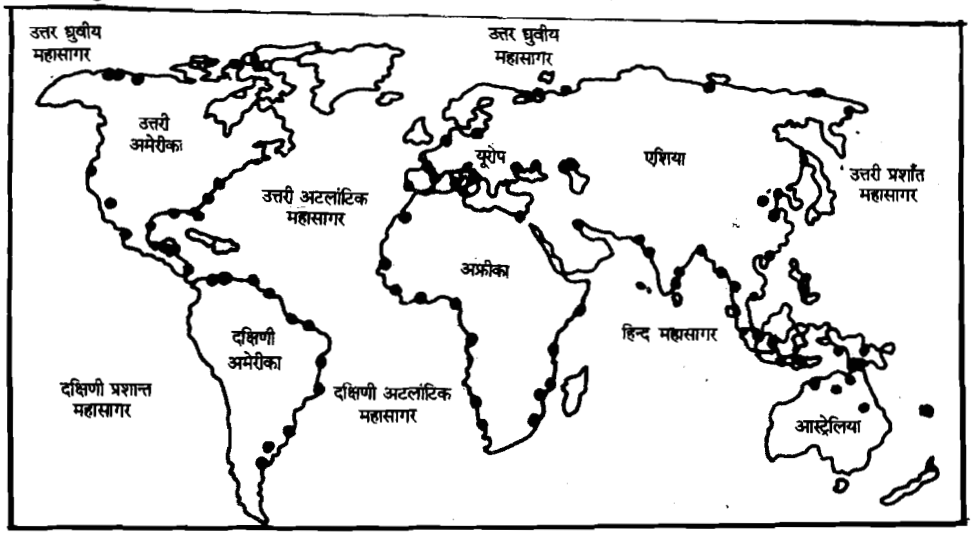

चित्र 10.7 : भूमंडलीय ताप बढ़ने से विश्व के प्रभावित स्थान

अम्ल वर्षा : विद्युत संयंत्रों, औद्योगिकि बॉयलरों और स्मेलटरों (smelters) में कोयले के जलने से निकली हुई सल्फर डाइआक्साइड सामान्यतः वायुमंडल में चली जाती है जिससे उसका आक्सीकरण हो जाता है। किंतु जब यह वायु में तैरते हुए धूलि कण, उड़ने वाले राख कण आदि जैसे कणाकार पदार्थों को अपने में सोख लेती है और फिर आर्द्र बूँदों से मिश्रित होकर सलफ्यूरिक अम्ल बनाती है। फिर यह फेफड़ों के आर्द्र ऊतकों के संपर्क में आती है और मानव के शरीर तंत्र का क्षरण कर देती है। इसी प्रकार मोटर गाड़ियों के उत्सर्जन से निकली हुई नाइट्रोजन डाइआक्साइड, नाइट्रिक अम्ल में बदल जाती है। जब तक ये वायुमंडल में क्षारीय यौगिकों के साथ अभिक्रिया करके निष्क्रिय नहीं हो जातीं, ये तेज अम्ल अंततोगत्वा "अम्ल वर्षा" के रूप में पृथ्वी पर लौट आएँगे।

अप्रदूषित क्षेत्रों में वर्षा सामान्यतः थोड़ी सी अम्लीय होती है और उसमें 5.5 और 6.5 के बीच pH होता है क्योंकि कार्बन डाइआक्साइड जल के साथ वायुमंडल में मिलकर एक तनु अम्ल बनाती है, जिसे कार्बनिक अम्ल कहते हैं। अम्ल वर्षा का pH प्रायः 4 से कम होता है, यहाँ तक कि यह 3 से 3.5 तक भी हो सकता है।

अम्ल वर्षा, धातुओं और चूना पत्थर की संक्षारित कर देती है जिससे अत्यधिक क्षति होती है। यह वनस्पतियों तथा वन्य जीवन को नष्ट कर देती है और कार की सजावट वाली ऊपरी परत (फिनिश) को निक्षारित कर देती है एवं मकानों तथा फूलों का क्षय कर देती है। इसके अलावा अम्ल वर्षा कभी-कभी ही स्थानीय होती है। अधिकतर ये प्रदूषक, सैकड़ों कि.मी. यहाँ तक कि हजारों कि.मी. की यात्रा करके वर्षा कर सकते हैं। ये प्रदूषक किसी राष्ट्र की सीमा में बँधे हुए नहीं होते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र पर कुल मिलाकर अम्ल वर्षा का प्रभाव अभी तक अच्छी तरह समझ में नहीं आया है किंतु इससे गंभीर क्षति की संभावनाएँ हैं। 1950 में स्वीडन के जंगलों के बढ़ने की दर में कमी आई है जिसका कारण अम्ल वर्षा मानी जाती है। सालमन (Salmon) और ट्राइट (Trout) जैसी मछली स्वीडन के झीलों और छोटी-छोटी नदियों से गायब हो गई क्योंकि वहाँ पर pH 5 से काफी नीचे था। स्वीडन में हुई अम्ल वर्षा का उद्गम स्थान पश्चिमी यूरोप विशेषकर यूनाइटेड किंग्डम था। अम्ल वर्षा, से पश्चिमी जर्मनी के चीड़ (conifers) वनों में भी बड़ी मात्रा में हानि हुई। चूँकि अम्ल, पौधों की पत्तियों और मिट्टी से पोषक तत्वों को अपने साथ घोलकर बहा ले जाता है इसलिए वहाँ उगने वाले वृक्ष सूख जाते हैं। ऐल्युमिनियम और भारी धातुएँ जैसे — कैडमियम, बहुत सी मृदा में विद्यमान रहते हैं किंतु सामान्य स्थितियों में ये मृदा कणों के साथ युक्त रहते हैं। अम्ल वर्षण वाले क्षेत्रों जैसे — जर्मनी में ये घुलनशील हो गए हैं और वृक्षों द्वारा सोख लिए गए हैं, जिससे पहले से ही कमज़ोर हो गए वृक्षों को बहुत क्षति पहुँची है। अम्ल वर्षा मृदा के सूक्ष्म अवयवों विशेषकर नाइट्रोजन यौगिकरण के लिए उपयोगी सूक्ष्म जीवाणु भी कम कर सकती है। अम्ल वर्षण से बैक्टीरिया और फंगस संबंधी रोगाणुओं की अनुक्रिया भी प्रभावित हो सकती है।

10.6.2 संक्षारक और दूषण प्रभाव

इसके प्रभाव से भवन, पुल और मानव निर्मित अन्य संरचना दूषित हो सकती हैं और प्रदूषण द्वारा अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो सकती है। संचित धूलि और अन्य अवयव उन भवनों की संरचना को परिवर्तित कर सकते हैं जिनमें प्रदूषित उत्पादों का इस्तेमाल होता है। किंतु अधिकांश क्षति, वायु और वर्षा-जल दोनों में विद्यमान अम्लों के कारण होती है। पत्थर की चिनाई संक्षारित हो सकती है। ऐसा उदाहरण एथेंस में "मारबल पार्थेनन" (Marble Parthenon) का है। एथेंस में धूम कुहरा में मौजूद सल्फर डाइआक्साइड रासायनिक रूप से संगमरमर को जिप्सम (Gypsum) चूर्ण में परिवर्तित कर देती है जिससे इसमें दरार पड़ गई और कई परतें बाहर निकल आयी। इसके कारण बिगत 24 वर्षों में पैराथेनॉन के प्रस्तर गल पैनल (Frieze pannels) में इतना अधिक क्षरण हुआ जितना चौबीस शताब्दियों में भी नहीं हुआ था। लंदन में "वेस्टमिनिस्टर ऐबे (Westminster Abbey) और प्राचीन रोमन कोलोसियम में भी अम्ल निक्षेपण के कारण बहुत ज्यादा क्षति पहुँची।

भारत में अम्ल वर्षा से हमारे प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्मारक ताज महल को खतरा है। इसके निकट मथुरा शहर में कच्चे तेल की परिष्करणशालाएँ वायुमंडल में भारी मात्रा में सल्फर डाइआक्साइड उगलती हैं। इस सल्फर डाइआक्साइड को हवा अन्य स्थानों के साथ-साथ आगरा तक भी उड़ा ले जाती है जहाँ पर यह जल की बूँदों द्वारा सोख ली जाती है और फिर ताजमहल पर वर्षा के साथ गिरती है। ताजमहल केवल संगमरमर के पत्थरों से बना हुआ है इसलिए इसके संक्षारित होने का डर है। यदि इस ऐश्वर्यशाली ऐतिहासिक शाही स्मारक को एक बार क्षति पहुँची तो यह एक अपूरणीय क्षति होगी। अतः यह आवश्यक है कि परिष्करणशाला से निकलने वाली सल्फर डाइआक्साइड की गुणता तथा उस क्षेत्र में हवा की दिशा दोनों पर निगरानी रखी जाए। दोनों स्थितियों में यह आवश्यक है कि परिष्करणशाला से निकलने वाली सल्फर डाइआक्साइड के स्थानांतरण के लिए पहले से ही उपयुक्त उपाय किए जाएँ।

10.6.3 ओज़ोन अवक्षय

समताप मंडलीय ओज़ोन लगातार उत्पन्न और नष्ट हो रही है। यह तब उत्पन्न होती है जब आण्विक आक्सीजन

O_2 पराबैंगनी सौर विकिरण द्वारा विखंडित होती है और विखंडित आक्सीजन परमाणु "O" स्वयं को अन्य O_2 अगुओं से संयुक्त कर लेती है :

$O_2 \longrightarrow O + O$

$O + O_2 \longrightarrow O_3$ ओज़ोन

इसके विखंडन का निबल परिणाम इस प्रकार है :

$2O_3 \longrightarrow 3O_2$

ओज़ोन जब धूम कुहरे में उत्पन्न होती है तब यह मनुष्य को अंधा बना सकती है और श्वसन क्रिया को रोक सकती है। किंतु जब यह ऊपरी वायुमंडल में जमीन से 12 से 30 मील ऊपर होती है तब यह सूर्य से निकली क्षतिकारक पराबैंगनी विकिरण को बीच में रोक कर पृथ्वी पर रहने वाले जीवों की रक्षा करती है। फिर भी विगत दस वर्षों में ओज़ोन की यह संरक्षी परत, दक्षिण ध्रुव में पतली हो गई है। 1979 से अब तक इसका छिद्र काफी बड़ा हो चुका है जिससे होकर ओज़ोन की सान्द्रता लगभग 40% गिर चुकी है।

कुछ वैज्ञानिकों का विश्वास है कि व्यापक रूप से इस्तेमाल किए गए औद्योगिक रसायनों जैसे — क्लोरोफ्लोरो कार्बन से मुक्त हुई क्लोरीन गैस ने ओज़ोन पर हानिकारक प्रभाव डाले हैं। जब क्लोरोफ्लोरो कार्बन ऊपर की ओर बहकर समताप मंडल में पहुँचता है तब वह ओज़ोन के साथ विनाशकारी ढंग से अभिक्रिया करता है। ओज़ोन, वायुगतिकीय (सुपरसॉनिक) जेटों से निकलने वाली नाइट्रिक आक्साइड से भी नष्ट हो जाती है। यह भी संभव है कि ओज़ोन, वायुमंडल की निचली सतह से ऊपर जाती हुई तेज वायु द्वारा अलग कर दी गई हो। चाहे जो भी कारण हो, संभावित प्रभाव गंभीर हो सकते हैं। यदि ओज़ोन, जो अत्यधिक पराबैंगनी विकिरण से हमारी रक्षा करती है, लगातार नष्ट होती रही तो इससे मेलानॉमास (melanomas) की बीमारी और चमड़ी के कैंसर तथा फसलों की पैदावार में कमी जैसी घटनाएँ हो सकती हैं।

10.7 जैव प्रणाली पर प्रदूषण के प्रभाव

पिछले परिच्छेद में आप अजैव मंडल पर प्रदूषण के प्रभाव के विषय में पढ़ चुके हैं। इस परिच्छेद में हम जैव प्रणाली पर वायु प्रदूषण के प्रभावों के विषय में अध्ययन करेंगे।

10.7.1 पेड़-पौधों पर

पेड़-पौधे भी हमारे द्वारा पैदा किए गए प्रदूषकों से अछूते नहीं रह सकते हैं। वास्तव में पेड़-पौधे ही हमारे लिए भोजन सामग्री पैदा करने वाले एक मात्र घटक हैं और इन्हीं से पृथ्वी पर जीवन संभव है। हमसे वे जिन प्रदूषणों को ग्रहण करते हैं उन्हें वे फिर किसी न किसी रूप में हमारे ऊपर छोड़ देते हैं। इससे कृषि उपज बहुत अधिक प्रभावित होती है और मानव जाति के लिए यह घातक सिद्ध हो सकता है।

प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा पेड़-पौधों पर विषैला प्रभाव डालता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि सूर्य के प्रकाश की मौजूदगी में विभिन्न प्रदूषक एक साथ मिलकर ओज़ोन और पेरॉक्सीएसिटल नाइट्रेट बनाते हैं। ओज़ोन, पेड़-पौधों को अत्यधिक क्षति पहुँचा रही है। यह सामान्य गैस विनिमय के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले संरंध्र (Stomata) के जरिए पत्तियों में प्रवेश कर जाती है और संरंध्र झिल्ली की प्रवेश्या (Permeability) को भी बदल देती है। इससे पोषक तत्वों और विद्युत-अपघट्य (Electrolights) पदार्थों के बीच असंतुलन पैदा होता है जिससे कोशिकाएँ मर जाती हैं। वस्तुतः ओज़ोन, पत्तियों की श्वसन-क्रिया को बढ़ा देती है और पौधों के भोजन भंडार को क्षीण करके उन्हें समाप्त कर देती है। अधिक दिनों तक लगातार ओज़ोन के प्रभाव से ग्रस्त होने के कारण पौधे कमजोर हो जाते हैं और उनके रोगग्रस्त होने की संभावना बढ़ जाती है अथवा वे समय से पहले पक जाते हैं जिससे बाहर से देखने पर रोग का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता किंतु उनकी पैदावार कम हो जाती है।

पेरॉक्सीएसिटल नाइट्रेट जो प्रकाश रासायनिक धूम कुहरे का अन्य संघटक है, पौधों के लिये विष है। यह प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया को रोक देता है तथा पौधों के भोजन ग्रहण का कार्य बंद करके उन्हें मार डालता है।

सल्फर डाइआक्साइड अम्ल वर्षा करके पौधों को गंभीर क्षति पहुँचा सकती है। जैसा कि पहले कहा गया है कि अम्ल वर्षा मृदा और पत्तियों से पोषक तत्वों को अपने में घोलकर बहा ले जाती है और मृदा के उन अवयवों को प्रभावित करती है जिनसे नाइट्रोजन का नियतन होता है। इसने (अम्ल वर्षा ने) यूरोप और पश्चिमी संयुक्त राज्य

10.7.2 जीव-जंतुओं पर

जानवर जो भी दूषित भोजन करते हैं उनसें होने वाले बहुत से प्रदूषण जतु ऊतकों द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं और वे (जानवर) वायु में फैले हुए प्रदूषकों से सीधे भी प्रभावित होते हैं। चूँकि वायु प्रदूषको का जानवरों पर वही प्रभाव पड़ता है जो मनुष्यों पर पड़ता है इसलिए हम निम्नलिखित चर्चा को "वायु प्रदूषको का मनुष्य पर प्रभाव" पर केंद्रित करेंगे।

चित्र 10.8 : श्वासनली शोथ — वात स्फीति ऐसा रोग है जो वायु प्रदूषण के कारण होता है या उसके कारण बढ़ जाता है। सामान्य फेफड़े में श्वासनली, लाखों वायु थैलियों में जाकर फैल जाती है जहाँ पर आक्सीजन का खून से अंतरण होता रहता है। रोगग्रस्त फेफड़ों में वायु कोशिकाएं एक-दूसरे में सम्मिलित हो जाती हैं जिससे आक्सीजन अंतरण का क्षेत्र कम हो जाता है। श्वासनली भी संकुचित हो जाती है जिससे वायु के अंदर जाने और बाहर निकलने की दर कम हो जाती है।

औसत प्रौढ़ व्यक्ति प्रति दिन लगभग 14,000 लीटर वायु साँस के रूप में लेता है। यह वायु नाक के रास्ते और फेफड़े में वायु को छानने (फिल्टर करने) की विभिन्न युक्तियों से स्वच्छ होती है। साँस द्वारा जो बड़े कण अंदर जाते हैं, उन्हें नाक के बाल फँसा लेते हैं। नाक के रास्ते में कोमल शंक्वाकार हड्डी वायु को सँकरी घुमावदार स्रोत में जाने के लिए विभाजित कर देती है, जिसमें से होकर बिल्कुल-छोटे-छोटे कण, नाक के रास्ते की चिपचिपी दीवार में लग जाते हैं। अन्य अशुद्धियाँ, श्वासनली और अन्य श्वसनी में एक चिपचिपी पतली परत द्वारा फँसा ली जाती है, जो गले की ओर एक लहराते आवरण की तरह धकेल दी जाती है, जहाँ पर चिपचिपी पतली परत और अशुद्धियाँ दोनों झटके से धकेल दी जाती हैं। फेफड़ों में छोटी-छोटी वायु थैलियाँ या कूपिकाएँ (alveoli) मार्जन कोशिकाओं द्वारा उन छोटे-छोटे कणों से रक्षित होती हैं जो इन कोशिकाओं में चली जाती हैं तथा इस रक्षा तंत्र में प्रवेश कर जाती हैं।

सामान्य वायुमंडलीय दशाओं में छानने (filtering) की ये रक्षा प्रणालियाँ काफी अच्छा कार्य करती हैं। किंतु बहुत से शहरों में वायुमंडल प्रदूषकों के बोझ से इतना आक्रांत होता है कि इन रक्षा प्रणालियों पर असहय भार पड़ता है। इसके अलावा, बहुत से अति खतरनाक प्रदूषक बहुत छोटे आकार के धूलि कणों से सहयुक्त हो जाते हैं कि वे छानने की रक्षा प्रणालियों से बिल्कुल बच जाते हैं और गैसीय रूप में अन्य प्रदूषक अंततोगत्वा रक्त में चले जाते हैं। कुछ प्रदूषकों के अति गंभीर प्रभावों में से एक प्रभाव यह पड़ता है कि जिस दर पर आक्सीजन, वायु थैली से रक्त वाहिनी में जानी चाहिए, वह दर धीमी पड़ जाती है। इससे एक अतिरिक्त भार न केवल फेफड़ों पर पड़ता है बल्कि हृदय पर भी पड़ता है। यही कारण है कि ज्यादा दिन तक रहने वाला धूम कुहरा हृदय और श्वसन रोगीयों के लिए घातक होता है।

ओज़ोन और पेरॉक्सीएसिटलनाइट्रेट, दोनों ही प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा के संघटक होते हैं। इनसे आँखों में जलन होती है, दृष्टि चली जाती है, साँस लेना कठिन हो जाता है और अस्थमा का प्रभाव बढ़ जाता है।

वायु में मौजूद सल्फर डाइआक्साइड साँस लेने में बाधा पहुँचाती है और आँखों में जलन पैदा करती है। किंतु इसका प्रभाव उस स्थिति में बहुत अधिक होता है जब यह फेफड़ों में आर्द्र ऊतकों को सोख लेती है। फिर यह सल्फ्यूरिक अम्ल बनाती है जो फेफड़ों में जलता है और श्वसन रोगों का कारण बनता है। इसी तरह से नाइट्रिक अम्ल भी बनता है और इसमें भी इसी प्रकार से श्वसन रोग उत्पन्न होता है। NO_2 और SO_2 दोनों ही से अम्ल वर्षा होती है। अम्ल वर्षा, जलीय जीवों पर अत्यंत प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। कुछ विशेष प्रकार की मछलियाँ, pH में थोड़े घट-बढ़ को भी सहन नहीं कर सकतीं जिसका परिणाम यह होता है कि छोटी-छोटी नदियों और झीलों में रहने वाली मछलियों पर अम्ल वर्षा के कारण बहुत ज्यादा असर पड़ता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि स्वीडन की नदियों और झीलों से सॉमन और ट्राउट जाति की मछलियाँ गायब हो गई क्योंकि वहाँ पर pH 5 से कम हो गई थी।

मोटर गाड़ियों से निकलने वाला सीसा वायुमंडल में चला जाता है। जब यह साँस द्वारा अंदर चला जाता है तब यह हड्डियों और अन्य ऊतकों में संचित हो जाता है जिससे मस्तिष्क और गुर्दे की अपूरणीय क्षति होती है। छोटे बच्चे इसके अधिक शिकार बनते हैं क्योंकि उनकी तंत्रिका तंत्र (nervous system) विकसित हो रही होती है। सीसे का अत्यधिक अंदर जाना बच्चे की बुद्धि को मंद कर सकता है तथा किसी चीज पर ध्यान केंद्रित करने की शक्ति को कम कर सकता है जिसके कारण उनमें सीखने-पढ़ने की अयोग्यता आ जाती है। लेकिन कभी-कभी वे सक्रिय भी हो जाते हैं। प्रौढ़ पुरुषों के रक्त में सीसे का स्तर बढ़ जाने से इसका संबंध उच्च रक्त चाप से जोड़ा गया है और यह इस बात का संकेत है कि बहुत से हार्ट अटैक (हृदय गति रुक जाना) शरीर तंत्र में सीसे के कारण हुए होंगे।

कार्बन मोनोआक्साइड मोटर गाड़ियों से निकलने वाले धुएँ तथा किसी कार्बनिक पदार्थ के पूरा न जलने से उत्पन्न होती है। यह रंगहीन और गंधहीन गैस होती है किंतु जीवित प्राणियों के लिए बहुत जहरीली होती है। कार्बन मोनोआक्साइड, हेमोग्लोबिन में मिलकर रक्त की आक्सीजन वहन क्षमता को कम कर देती है और कार्बोक्सी-हेमोग्लोबिन बनाती है। इस प्रकार यह श्वसावरोध उत्पन्न करती है। सूक्ष्म मात्रा में भी यह श्वासहीनता और थकान

बोध प्रश्न 4

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइए।

i) तापमान उत्क्रमण से निम्नलिखित हो सकता है।
   क) ग्रीन हाउस प्रभाव
   ख) सूक्ष्म जलवायु
   ग) धूम कुहरा
   घ) तापीय द्वीप

ii) पृथ्वी के ओज़ोन परत की अवक्षय निम्नलिखित में से किस कारण होती है?
   क) क्लोरोफ्लोरो कार्बन
   ख) मीथेन
   ग) कार्बन डाइआक्साइड
   घ) सल्फ्यूरिक अम्ल

iii) पेरॉक्सी एसिटल नाइट्रेट (PAN) पौधों को निम्नलिखित क्रिया द्वारा नष्ट कर देती है —
   क) उन्हें समय से पहले पकाकर
   ख) प्रकाश संश्लेषण क्रिया को बंदकर
   ग) उनके भोजन को क्षीणकर
   घ) उनके पोषक तत्वों को अपने साथ मिलाकर या बहाकर

iv) वायुमंडल में सीसा होने से निम्नलिखित हो सकता है —
   क) मस्तिष्क क्षति
   ख) श्वास रोग
   ग) आँखों में जलन
   घ) श्वसनहीनता

10.8 सारांश

इस इकाई में आपने यह अध्ययन किया है कि :

- वायु में 78% नाइट्रोजन, 21% आक्सीजन और 1.0% आर्गन तथा अन्य अक्रिय गैसें होती हैं। वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा 0.1% से 0.3% के बीच होती है। अन्य गैसें जैसे — सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रोजन डाइआक्साइड, ओज़ोन आदि बहुत कम मात्रा में पाई जाती हैं। वायुमंडलीय प्रदूषण, पृथ्वी के वायुमंडल की गुणता में एक अनचाहा परिवर्तन है।

- मनुष्य के क्रियाक्लाप, वायु-प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। ये क्रियाकलाप हैं - उर्जा में दहन स्रोत, परिवर्तनशील या चलदहन स्रोत (जैसे — मोटर गाड़ियों में ईंधन का जलना आदि) और विस्फोण-स्रोत। महत्वपूर्ण प्रदूषक हैं — सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, कार्बन मोनोआक्साइड और निलंबित कणाकार पदार्थ।

- रेडियोधर्मी पदार्थों से होने वाला विकिरण भी बड़े पैमाने पर पर्यावरणीय समस्या पैदा कर रहा है। इससे बहुत से जैविक कुप्रभाव पड़ते हैं जिसमें जनन-क्षति भी शामिल है। रेडियोधर्मी उत्सर्जन की अल्पमात्रा के अतिरिक्त हम प्राकृतिक और मानव निर्मित स्रोतों से भी लगातार प्रभावित हो रहे हैं जिससे खतरे का स्तर बढ़ता जा रहा है क्योंकि न्यूक्लियर दुर्घटनाओं से उत्सर्जित बहुत बड़ी मात्रा में विकिरण भी विद्यमान हैं। पर्यावरणीय एक गंभीर समस्या यह है कि रेडियोधर्मी अपशिष्ट (radioactive waste) का सुरक्षित और समुचित निपटान कैसे किया जाए।

- शोर-शराबा जिसे अनचाही ध्वनि या आवाज के रूप में परिभाषित किया गया है, इन दिनों बढ़ रहा है। यह भी वायुमंडल प्रदूषकों में से एक है किंतु भिन्न अर्थों में। इससे श्रवण शक्ति खत्म हो जाती है तथा चिंता, तनाव, भय और अन्य शारीरिक तथा मानसिक प्रभाव पड़ता है।

- मौसम विज्ञान संबंधी औसत दशाओं के अंतर्गत वायु का तापमान ऊँचाई पर लगातार गिरता जाता है। फिर भी यदि ऊपर की वायु अपने नीचे की वायु से गर्म है तो वायुमंडल बिल्कुल स्थिर हो जाता है और प्रदूषक [illegible] इस दशा को **वायुमंडलीय उत्क्रमण** कहते हैं।

- वायु प्रदूषण से भू-मंडल का तापमान प्रभावित होता है। बढ़ी हुई मात्रा में कार्बन डाइआक्साइड, मीथेन और अन्य गैसें पृथ्वी से निकलने वाले अवरक्त विकिरण को सोख लेती हैं और इसे ऊपर नहीं जाने देती। इससे गर्मी बढ़ती है जिसे "**ग्रीन हाउस प्रभाव**" के रूप में जाना जाता है।
- अन्य वायु-प्रदूषक, जिसके कारण इन दिनों बहुत ज्यादा चिंता हो रही है, वे — क्लोरोफ्लोरो कार्बन हैं। ये ओज़ोन की परत में पहुँच जाते हैं और ओज़ोन को आक्सीजन में अपघटित करके ओज़ोन की परत को नष्ट कर देते हैं। चूँकि ओज़ोन, भू-पृष्ठ पर पहुँचने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों से कवच के रूप में रक्षा करती है इसलिए ओज़ोन की क्षीणता से मनुष्यों में त्वचा का कैंसर हो सकता है और अन्य जैव प्रभाव पड़ सकते हैं।
- नाइट्रोजन के आक्साइड और सल्फर आक्साइड, वायुमंडल में अभिक्रिया करते हैं जिससे तेज अम्ल बनता है जो अम्ल वर्षा, हिमपात या धूल के रूप में अवक्षेपित होता है। इस अम्लीय अवक्षेपण ने जंगलों और मत्स्य उद्योगों का अत्यधिक विनाश किया है, साथ ही पत्थर की इमारतों, धातुओं तथा ऐसे ही अन्य पदार्थों का क्षरण किया है।

  मोटर गाड़ियों से निकलने वाला धुआँ इत्यादि सूर्य के प्रकाश में प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा बनाता है। प्रकाश रासायनिक धूम कुहरे से जैव मंडल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- सामान्यतः वायु प्रदूषण, जैव मंडल को भिन्न-भिन्न रूपों में प्रभावित करता है और अंततोगत्वा पौधों और जीव-जंतुओं को नष्ट कर देता है।

10.9 अंत में कुछ प्रश्न

i) बताइए निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

क) वायु अपनी प्राकृतिक अवस्था में शुद्ध होती है।
ख) प्राकृतिक वायु में गैस, धूल और जल वाष्प होता है।
ग) वायु मुख्यतः ईंधनों के जलने से प्रदूषित होती है।
घ) क्लोरोफ्लोरो कार्बन, ओज़ोन की विघटन प्रक्रिया को तीव्र कर देते हैं।
ङ) क्लोरोफ्लोरो कार्बन, ओज़ोन की विघटन और उसकी निर्माण प्रक्रिया को तीव्र कर देते हैं।

ii) निम्नलिखित के उत्तर चार-पाँच पंक्तियों में लिखिए।

क) लंदन-धूम कुहरा और प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा में अंतर।

.....

.....

.....

.....

.....

ख) ग्रीन हाउस प्रभाव क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

ग) अम्ल वर्षा क्या है समझाइये।

.....

.....

.....

.....

घ) अम्ल वर्षा से ताज़महल किस प्रकार प्रभावित होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

ङ) समतापमंडल से ओज़ोन का अवक्षय होना मानव जीवन को किस प्रकार प्रभावित करेगा?

.....

.....

.....

.....

.....

10.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) सही ii) सही

2) कृपया परिच्छेद 10.3.3 देखें।

3 i) सल्फर डाइआक्साइड
ii) कार्बन मोनोआक्साइड
iii) 35
iv) 45, 35, 80

4) i) ग ii) क iii) ख iv) क

अंत में कुछ प्रश्न

i) क) सही ख) गलत ग) गलत घ) सही

ii) क) लंदन-धूम कुहरा, धुआँ, कुहरा, राख , धूल और सल्फर डाइआक्साइड का एक मिश्रण है। प्रकाश रासायनिक धूम कुहरा, सूर्य के प्रकाश की मौजूदगी में मोटर-गाड़ियों से निकलने वाले हाइड्रोकार्बन और नाइट्रोजन आक्साइड की परस्पर अभिक्रिया के फलस्वरूप होता है। ओज़ोन और परॉक्सी एसिटल-नाइट्रेट, इस सहक्रियात्मक अभिक्रिया से हुए उत्पाद, मूल अभिक्रियाकारी (रिऐक्टैंट) से अधिक क्षति पहुँचाने में समर्थ होते हैं।

ख) कोयले के जलने से उत्पन्न कार्बन डाइआक्साइड, वायुमंडल में फँसी रहती है। यह भू-पृष्ठ से परावर्तित सौर ऊर्जा को अंतरिक्ष में पुनः विकिरित होने से रोकती है। इससे पृथ्वी का वायुमंडल गर्म हो जाता है जिससे उस पर पड़ने वाले प्रभाव को ग्रीन हाउस प्रभाव कहते हैं।

ग) औद्योगिक संयंत्रों द्वारा वायुमंडल में छोड़ी गई सल्फर डाइआक्साइड, जल की बूँदों और आर्द्र धूल कणों को सीख लेती है। फिर ये संघनित होकर अम्ल वर्षा के रूप में अवक्षेपित होती हैं।

घ) मथुरा कूड आयल रिफाइनरीज द्वारा निकलने वाली सल्फर डाइआक्साइड, ताजमहल पर अम्ल वर्षा जन्य का प्रमुख कारण है। ताजमहल संगमरमर के पत्थरों से बना है और अम्ल वर्षा से संगमरमर पत्थरों का संक्षारण होगा और उसमें पपड़ी निकल आएगी।

यदि समताप मंडल में ओज़ोन की संरक्षी परत नष्ट हो गई तो सूर्य से होने वाला पराबैंगनी विकिरण, पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश कर जाएगा। इससे त्वचा के कैंसर और मेलानॉमा जैसी बीमारियों में वृद्धि होगी।

इकाई 11 जल प्रदूषण

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
जल प्रदूषण के प्रकार
11.2 जल प्रदूषण संबंधी कुछ अवधारणाएँ
प्राकृतिक जल का स्वतःशोधन
जैविक ऑक्सीजन मांग (बी.ओ.डी.)
अतिपोषण
जल-प्रदूषण के प्रकार
11.3 अलवण जलीय प्रदूषण के स्रोत
घरेलू
औद्योगिक
कृषीय अवशेष
11.4 मल जल या वाहित मल (सीवेज) का उपचार
उपचारित मल जल के अभिलक्षण
11.5 भूमिगत जल प्रदूषण
11.6 समुद्रीय जल प्रदूषण
तेल का छलकाव या अधिप्लव
औद्योगिक रासायनिक पदार्थ
ताप प्रदूषण
बहु धात्विक पिंड़ों का खनन
11.7 सारांश
11.8 अंत में कुछ प्रश्न
11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.1 प्रस्तावना

पर्यावरण की समस्याओं में जल प्रदूषण अत्यन्त गंभीर समस्या है। जब, जल जानवरों के मल, विषैले औद्योगिक रासायनिक, कृषीय अवशेष, तेल और उष्मा जैसे पदार्थों से प्रदूषित होता है तब यह समस्या उत्पन्न होती है। हमारे अधिकाँश जल निकाय समूह — नदी, झील, समुद्र, महासागर, मुहाने (ज्वार नदी मुख), भूमिगत जल स्रोत (अर्थात् ट्यूबवैल, बोरिंग या वेधित कूप) धीरे-धीरे प्रदूषित होते जा रहे हैं। अब तक पढ़े गये पाठ्यक्रम में आप ने जाना कि किस प्रकार वनों की कंटाई, शहरीकरण, गहन खेती और औद्योगिकरण ने हमारी जल राशियों को प्रदूषित कर दिया है। वायु प्रदूषण के विविध पहलुओं से, जिसमें अम्लीय वर्षा के हानिकारक परिणाम भी शामिल हैं, आप अवगत हैं। इस इकाई में हम विभिन्न प्रदूषण स्रोतों या कारकों से होने वाले विविध जल-प्रदूषण के बारे में संक्षेप में बतायेंगे। इसके अलावा कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाओं पर भी चर्चा करेंगे, जैसे बिन्दु और अबिन्दु स्रोत, जैविक आक्सीजन माँग (BOD), अति पोषण, प्राकृतिक जल राशियों की स्वतः शोधन क्षमता, भूमिगत जल राशियों में प्रदूषकों का अन्तःस्पंदन (या रिसाव)। इसी इकाई में हम तापीय जल प्रदूषण और तेल वाहक टेंकर जहाजों में होने वाली दुर्घटनाओं से हुए प्रदूषण की चर्चा भी करेंगे। अगली इकाई में आप पृथ्वी के मृदा संसाधनों और पार्थिव आकार में होने वाली विकृति के बारे में पढ़ेंगे।

प्रदूषित जल देखने में साफ या गंदला हो सकता है, परन्तु इस में सर्वव्यापक रूप से जीवाणु, रासायनिक या अन्य पदार्थ होते हैं, जिनके कारण असुविधा, बीमारी या मृत्यु तक हो सकती है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

उद्देश्य

- जलाशय में अतिपोषण के कारण होने वाले परिवर्तनों को क्रम से गिना सकेंगे,
- जैव आक्सीजन माँग की अवधारणाओं का उपयोग कर सकेंगे,
- प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों की सूची बना सकेंगे,
- प्रदूषण के विभिन्न स्रोतों को गिना सकेंगे,
- वाहित मल या अपजल के प्राथमिक एवं द्वितीयक उपचारण की तुलना कर सकेंगे,
- समुद्रों में प्रदूषकों के भूमिगत जल में अंतः स्पंदन (रिसाव) के कुछ उदाहरण दे सकेंगे,

- समुंद्री प्रदूषण के कारणों और प्रभावों को समझ सकेंगे और तेल के छलकाव, तापीय विसर्जन तथा बहुधात्विक पिंडों के खनन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को समझ सकेंगे।

11.2 जल प्रदूषण संबंधी कुछ अवधारणाएँ

जल प्रदूषण के कारणों या स्रोतों को आमतौर से दो बड़े वर्गों में जाना जाता है। पहला है — बिन्दु प्रदूषण स्रोत (Point sources) जिसमें प्रदूषण का स्रोत एक सुनिश्चित स्थान पर होता है जैसे — मलजल का निकास द्वार या फैक्टरी की नाली अर्थात् वह पाइप जिसके द्वारा फैक्टरी का अपजल नदियों आदि में छोड़ा जाता है। प्रदूषण का ऐसा स्रोत प्रभावपूर्ण ढंग से, उचित तकनीकी विधियों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। दूसरे वर्ग में अबिन्दु प्रदूषण स्रोत आते हैं जो अधिक विस्तृत क्षेत्र में फैले होते हैं। मिसाल के तौर पर फार्मों, चारागाहों, निर्माण स्थलों, परित्यक्त खानों एवं गड्ढों आदि से बहकर आये हुए जल में साद (silt) होते हैं जो अनियत स्थानों से विकीर्ण होकर नदी धाराओं और झीलों आदि में पहुच जाते हैं। ऐसे प्रदूषण की रोकथाम आसान नहीं है और इसमें बड़े पैमाने पर सतत व्यापक प्रयास की आवश्यकता होती है।

जल प्रदूषण कई ऐसी क्रियाओं को गड़बड़ा देता है जो जल राशियों में स्वभावतः होती रहती हैं। वे प्रक्रम जल में घुली ऑक्सीजन का उपयोग करके पानी के अपद्रव्यों को हानिरहित बना देते हैं। आइए, कुछ ऐसी प्रक्रियाओं का अध्ययन करें।

11.2.1 प्राकृतिक जल का स्वत:शोधन

यदि आप किसी जलाशय को जिसमें सीमित मात्रा में अपघटन योग्य कार्बनिक अपद्रव्य हैं, यों ही छोड़ दें तो यह कुछ समय बाद स्वभावतः कार्बनिक प्रदूषकों से रहित हो जाएगा। आपने प्रथम ब्लाक की इकाई 3 में पढ़ा कि विघटनकारी वातापेक्षी सूक्ष्म जीव कार्बनिक पदार्थों को अकार्बनिक पोषक तत्वों में परिवर्तित कर देते हैं। कार्बनिक अपशेषों की सफाई के अलावा ये जीवधारी जलाशय में अरोगजनक बैक्टीरिया बनाए रखने में भी सहायक होते हैं। कार्बनिक पदार्थों में कैद पोषक तत्व वातापेक्षी सूक्ष्म जीवों की प्रक्रिया द्वारा बाहर निकल आते हैं जो अब दूसरे जलीय जीवों, हरे पौधों, द्वारा इस्तेमाल किये जा सकते हैं। इस प्रकार कार्बनिक अपशेषों की सफाई के अलावा ये जीव किसी जलाशय का स्वास्थ्य बनाए रखने में सहायक सिद्ध होते हैं। इस प्रक्रिया में लगा समय इस बात पर निर्भर करेगा कि किस कार्बनिक अपद्रव्य की मात्रा (load) कितनी है और वातावरण का तापमान कितना है।

किसी भी प्राकृतिक जलधारा में वायु में साधारणतः मौजूद गैसें घुली रहती हैं और इनकी मात्राएं वायुमंडल से संतुलित अवस्था में रहती हैं। इस प्रकार मछली और दूसरे जलीय जीव अपने श्वसन के लिए आवश्यक ऑक्सीजन को प्राप्त करते हैं। संतृप्त अवस्था में जल जितना ऑक्सीजन धारण कर सकता है, ऑक्सीजन की वह मात्रा ताप पर निर्भर करती है और यह ताप बढ़ने से कम होती जाती है। जैसा कि गैसों की घुलनशीलता का नियम है पानी को गरम करने पर उसमें घुली गैसें, बुलबुले के रूप में बाहर आ जाती हैं।

अपजल में मौजूद अपघटित और आक्सीकृत होने योग्य पदार्थ बैक्टीरिया और ऐसे ही अन्य वातापेक्षी जीवों के द्वारा वहां मौजूद घुली ऑक्सीजन का हरण करके अपघटित हो जाते हैं। वातापेक्षी जीव कार्बनिक अपद्रव्यों को अपने भोजन के काम में लाते हैं और घुली ऑक्सीजन का अपने श्वसन के लिए उपयोग करते हैं। यदि ऐसे अपद्रव्यों की मात्रा अधिक हो तो यह प्रक्रिया घुली ऑक्सीजन की मात्रा को तेजी से काफी कम कर देती है और जलाशय में मछली और दूसरे प्राणी समूह का जीवन संकट में पड़ जाता है। यदि पूरी घुली हुई ऑक्सीजन काम में आ जाती है तो जीवन समाप्ति की ऐसी दशा उपस्थित होती है कि प्राकृतिक जलाशय के सारे वातापेक्षी जीव दम घुटने से मर जाते हैं। ऐसी दशा में जलाशयों को अतिपोषित हुआ माना जाता है। ऐसे जलाशय में घृणाजनक दुर्गंध आती है और देखने में यह बहुत भद्दा लगता है क्योंकि इसकी स्वतः शोधन की क्षमता नष्ट हो जाती है।

बोध प्रश्न 1

बताइए कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य। अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिला लें।

क) किसी भी प्राकृतिक जल-राशि में अपने-आप शुद्ध होने की क्षमता रहती है, यदि —

i) प्रदूषण को और आगे बढ़ने से रोक दिया जाए और जल-राशि को अपने-आप स्वस्थ होने के लिए काफी समय दिया जाए।

ii) जल राशि में केवल बायोअपघटनीय प्रदूषक मौजूद हों।

iii) जल में काफी मात्रा में घुलित आक्सीजन मौजूद हों।

iv) कार्बनिक पदार्थों के आक्सीकरण के लिए उचित तापमान हो।

ख) शोधन के बाद जल राशि में निम्नलिखित रह जाता है

i) रोगजनक (पैथोजेनिक) बैक्टीरिया
ii) अपघटनीय रासायनिक पदार्थ
iii) केवल कार्बनिक अपद्रव्य
iv) अपघटनीय रासायनिक पदार्थ और अरोगजनक बैक्टीरिया।

11.2.2 जैविक ऑक्सीजन माँग (BOD या जै. आ. मां.)

वातापेक्षी बैक्टीरिया अपद्रव्यों को अपघटित करते समय जल में घुली हुई आक्सीजन का उपयोग करते हैं। वातापेक्षी बैक्टीरिया द्वारा अपघटन के लिए आवश्यक आक्सीजन की अपजल के नमूने में उपस्थित मात्रा को माप कर वैज्ञानिक इस बात का पता लगा सकते हैं कि अपजल में कितना कार्बनिक द्रव्य है। किसी जलाशय में मौजूद कार्बनिक द्रव्य के वातापेक्षी सूक्ष्म जीवों द्वारा वायरासायनिक अपघटन के लिये आवश्यक आक्सीजन की मात्रा को जैविक आक्सीजन मांग (जै.आ.मां. Biological Oxygen Demand)) कहते हैं क्योंकि जै.आ.मां. का मान आमतौर से पानी में मौजूद कार्बनिक द्रव्य की मात्रा के अनुपात में होता है इसलिए जै.आ.मां. मान अपद्रव्य-सांद्रता को मापने में काम में आ सकता है और यह प्रदूषण की डिग्री या कोटि का सूचक भी हो सकता है। जल में आक्सीकृत हो सकने योग्य कार्बनिक द्रव्य की मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी अधिक मात्रा में इन पदार्थों का जैव अपघटन करने के लिए आक्सीजन की आवश्यकता होगी और इसलिए जल के नमूने का जै.आ.मां. मान उतना ही अधिक होगा। दूसरी ओर ऐसी जल-राशियों में जो प्रदूषित नहीं हैं; जै.आ.मां. मान अपेक्षाकृत कम होगा।

जै.आ.मां. मान जल प्रदूषण नियंत्रण के प्रबन्ध में कई बातों की उपयोगिता को मापने के लिए अच्छी कसौटी सिद्ध होता है। ये बाते निम्नलिखित हैं : जल संसाधन क्रियाविधि की रूपरेखा , भारण संबंधी गणनायें, संयंत्रों की कार्यकुशलता संसाधन और इसके अलावा यह मान प्राकृतिक जल-राशियों की अपने आप स्वच्छ होने की क्षमता के मूल्यांकन करने की भी अच्छी कसौटी है। जै.आ.मां. का मानांकन करने के लिए पानी के नमूने को अंधेरे में पाँच दिन तक 20° सेंटीग्रेड पर उष्मायन (incubation) करते हैं और वातापेक्षी इस क्रिया के पहले और बाद में जल के नमूने की आक्सीजन सांद्रता मांप ली जाती है। दोनों मात्रकों के अंतर को प्रतिशत मान में दिखाया जाता है। इन मात्रकों के अन्तर का प्रतिशत निरूपण जल के नमूने का जै.आ.मां. मान कहलाता है। जै.आ.मां. मान पर प्रभाव डालने वाले विविधकारक इस प्रकार हैं : जल में मौजूद जीवधारियों की किस्म, जैव विषों और कार्बनिक पदार्थों की प्रचुरता फास्फेट जैसे उपलब्ध पोषक तत्व और नाइट्रीकरण की दर। इस संबंध में और अधिक जानकारी आप अतिपोषण वाले खंड में प्राप्त करेंगे।

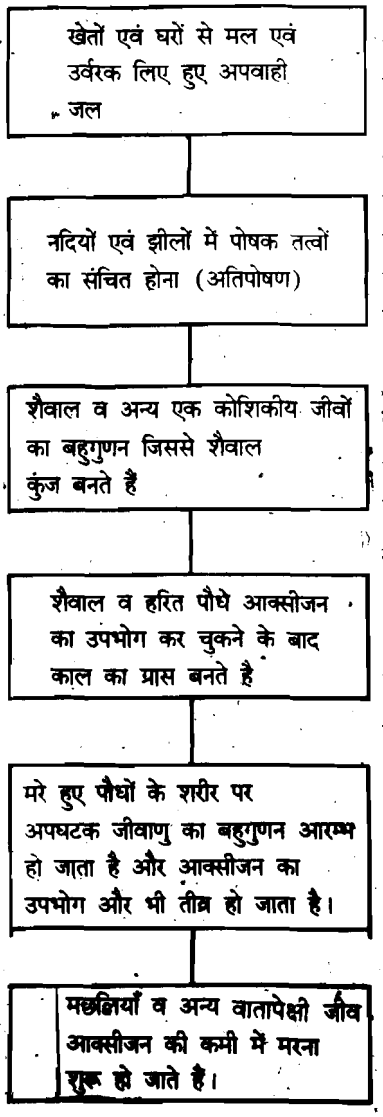

चित्र 11.1 : अतिपोषण के परिणामों को घटना क्रम के रूप में निरूपित किया गया है।

बोध प्रश्न 2

नीचे दिये कथनों में सही कथन के सामने सही का निशान लगायें और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

क) जै.आ.मां. (बी.ओ.डी.) प्रकट करता है —

i) जल, के नमूने में सूक्ष्म जीवों द्वारा ली गई ऑक्सीजन की मात्रा
ii) किसी दिये गये ताप पर और दिये समय में जल के किसी नमूने के इकाई आयतन में उपस्थित वातापेक्षी जीवों द्वारा वायरासायनिक उपचयन में प्रयुक्त आक्सीजन की मात्रा

ख) जै.आ.मां. परीक्षण निम्नलिखित का पता लगाने के लिए काम में आता है —

i) किसी जल के नमूने में कार्बनिक और अकार्बनिक अपद्रव्य की मात्रा कितनी है
ii) जल के नमूने में कार्बनिक अपद्रव्य की मात्रा कितनी है
iii) जल के नमूने में अकार्बनिक अपद्रव्य की मात्रा कितनी है।

11.2.3 अतिपोषण

जल में पोषक तत्वों की बहुत अधिक मात्रा आ [illegible] की अवस्था उत्पन्न क[illegible] है। कार्बनिक अपद्रव्यों के अधिक मात्रा में बढ़ने से भी पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ [illegible]कती है। जलाशयों में पोषक तत्वों की (परिसांद्रण) प्रचुरता को अतिपोषण द्वारा व्यक्त किया जाता है। खासतोर पर ये पोषक तत्व हैं — नाइट्रेट और फास्फेट। प्रकृति में चट्टानों के विघटन और कार्बनिक द्रव्य के खनिजीकरण से भी बहुत से पोषक पदार्थ बनते हैं, प्राकृतिक अतिपोषक बहुत धीमी प्रक्रिया है जो सौ साल से ऊपर ले सकती है किन्तु कृत्रिम अतिपोषण जो मानवीय क्रियाकलापों से होता है एक चमत्कारी तेज प्रक्रिया है। जब घरेलू कचरा, कृषीय अवशेष और औद्योगिक अपद्रव्य किसी जल राशि में पहुँच जाते हैं तो जल में [illegible] वातापेक्षी बैक्टीरिया ऑक्सीजन की उपस्थिति में जैव अपघटन की क्रिया द्वारा मौजूद पोषक तत्वों को मुक्त कर देते हैं। [illegible]षक तत्व जलीय जीवों की वृद्धि की रफ्तार को बढ़ा देते हैं। चित्र 11.1 में अतिपोषण की प्राकृतिक प्रक्रिया दिखाई गई है [illegible]सारे पोषक पदार्थ सूक्ष्म जल के पौधों जैसे एलगी (शैवाल) तथा बड़े जल पादपों जैसे बत्तख घास और जल कुम्भी के बढ़ने में सहायता करते हैं। अधिक मात्रा में निवेषित

(आये) पोषक पदार्थों से जलीय पौधे और अधिक संख्या में उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे-जैसे अधिक पौधे बढ़ते हैं, पहले के मुकाबले में और अधिक संख्या में मरते भी जाते हैं और उसी अनुपात में फिर सड़ते भी हैं। ये दोनों प्रक्रियाए (बढ़ना और सड़ना) ऑक्सीजन को काम में लाती हैं। और जलाशय में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।

चित्र 11.1 में दिखाया गया है, पोषक पदार्थों और कार्बनिक अपद्रव्यों के कृत्रिम आधिक्य से जलाशय के परिचक्रण का संतुलन बिगड़ जाता है। अधिक रफ्तार से पोषक तत्वों के मिलने से एलगी (शैवाल) के वृद्धि की दर बढ़ जाती है। जैसे-जैसे उत्तरोत्तर एलगी मरते हैं, अबसादित अपद्रव्य की मात्रा भी बढ़ती है।

इसके अलावा अपद्रव्य की इतनी बड़ी मात्रा को जैव अपघटित करके पोषक पदार्थों में बदलने के लिये जीवाणु कभी-कभी इतनी अधिक ऑक्सीजन खर्च कर देते हैं कि मछलियां ऑक्सीजन की कमी में बच नहीं पातीं।

ऐसी झील में से दुर्गंध आती है। जै.आ.मां. बढ़ जाती है। जल राशि का मान खत्म हो जाता है। देखने में अरोचक होती है। अतिपोषण के कारण जलीय पौधों में काफी बढ़ोत्तरी होती है। कालांतर में प्रायः एलगी के विशाल पुंज बन जाते हैं। ऐसी जलराशि अतिपोषित जलाशय कहलाती हैं और अंत में जलराशि समाप्त हो जाती है। जल सूख जाने से ऐसे स्थान स्थलीय पारितंत्रों में बदल जाते हैं।

शैवाल व हरित पौधे आक्सीजन का उपयोग कर चुकने के बाद काल का ग्रास बनते हैं

मरे हुए पौधों के शरीर पर अपघटक जीवाणुओं का बहुगुणन आरम्भ हो जाता है और आक्सीजन का उपयोग और भी तीव्र हो जाता है

मछलियाँ व अन्य वातापेक्षी जीव आक्सीजन की कमी में मरना शुरू हो जाते हैं।

बोध प्रश्न 3

उचित शब्दों में से रिक्त स्थानों को भरिये और इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइये।

क) झीलों और तालाबों के प्राकृतिक रूप से काल प्रभावित होने का घटनाक्रम जिसके द्वारा वे दलदल और अंत में स्थलीय पारितंत्रों में बदल जाते हैं ..... के नाम से जाना जाता है।

ख) अतिपोषण कृत्रिम भी हो सकता है, जिसमें किसी जलाशय के पोषक तत्वों में वृद्धि होने की दर मानव निर्मित कारणों से ..... हो जाती है।

ग) अतिपोषण किसी जलाशय में .... मात्रा में ..... के संचित होने को कहते हैं जो पौधों और जंतु जीवन की .... बढ़ोत्तरी को सहारा देता है। जीवधारियों के शवों में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से (जैव अपघटन) से उथले पानी में ऑक्सीजन की मांग वाले (वातापेक्षी) जीवधारी पोषित होते हैं। ऐसे प्रदूषित जलाशय से ..... गंध आती है।

(प्रचुर, घृणास्पद, अतिपोषण, पोषक तत्वों, बहुत तेज, अत्याधिक)

घ) किसी जलाशय में कार्बनिक अपद्रव्यों (जिनमें पोषक तत्व मौजूद होते है) के विसर्जन से होने वाले प्रभाव का नीचे दी गई तीन या चार लाइनों में वर्णन कीजिए :

.....

.....

.....

.....

ङ) किसी जलाशय में अतिपोषण की रोकथाम के तरीकों को नीचे दिये गये स्थान में बताइये।

.....

.....

.....

.....

11.2.4 जल प्रदूषण के प्रकार

जल प्रदूषण का वर्गीकरण इस बात पर निर्भर करता है कि प्रदूषण के वर्गों को अलग-अलग मानने की क्या कसौटी है? जिस माध्यम में प्रदूषक होते हैं उसके आधार पर जल प्रदूषण को अलवणजलीय और समुद्री प्रदूषण में विवेचित किया जा सकता है। अलवणजलीय प्रदूषण के दो वर्ग माने जा सकते हैं : भू-पृष्ठ जल का प्रदूषण और भूमिगत जल का प्रदूषण। जब प्रदूषक किसी झील, तालाब या नदी में प्रवेश पाते हैं तो इसको भू-पृष्ठ जल प्रदूषण कहते हैं। किन्तु यदि प्रदूषक अंतःस्रावी जल के साथ किसी जलभर में प्रवेश पा जाते हैं तो ये भूमिगत जल के स्वभाव को बिगाड़ देते हैं और इसलिए यह भूमिगत जल प्रदूषण कहलाता है। आप जानते हैं कि भूमिगत जल के आशय और भू-पृष्ठ जल के आशय एक ही वर्ग यानि अलवण जलीय आशयों में वर्गीकृत किये जाते हैं क्योंकि उन में लवण की मात्रा बहुत कम (सदैव 5 ppt यानि भाग प्रति हजार से कम) होती है। इसके विपरीत यदि जलाशयों में लवण की मात्रा 35 ppt या उससे अधिक हो तो इन्हें समुद्री जलाश्य कहते हैं। मुहानों और

प्रकार के अन्य जलाशयों के प्रदूषण को समुद्री प्रदूषण कहते हैं। इस पर हम अलग से विचार करेंगे क्योंकि समुद्रों में प्रदूषण, जलाशयों के अत्यन्त विस्तृत होने के कारण, एक नया आयाम पा जाता है।

11.3 अलवण जलीय प्रदूषण के स्रोत

कभी-कभी जल प्रदूषण के प्राकृतिक कारण मानव निर्मित कारणों से इतने जटिल प्रकार से मिले होते हैं कि दोनों एक दूसरे से अलग पहचाने नहीं जा पाते। उदाहरण के लिये साद (सिल्ट) का निर्माण (अर्थात् किसी जलाशय में निलंबित कणों की प्रचुरता में वृद्धि या कणों का और अधिक मात्रा में बनना) अधिकतर जलाशयों की एक सामान्य समस्या है। नदियाँ अपने बहाव के साथ पहाड़ों पर पत्थरों के आपस में रगड़ाहट के साथ टकराने से बनी सिल्ट (साद) को स्वभावतः मैदानों की ओर लाती हैं। प्राकृतिक तौर पर अवसाद के रूप में साद के निक्षिप्त होने का कारण पानी के बहाव के वेग का तेज़ उतार-चढ़ाव है जो समय के थोड़े अन्तराल में ही शून्य बहाव से आकस्मिक बाढ़ का रूप ले सकता है। जलाशयों का कृत्रिम अवसादन भी हो सकता है। उदाहरणतः वाहित मल, औद्योगिक बहिस्राव और कृषीय भूमि से बहता अपशिष्ट पानी कभी-कभी टनों की मात्रा में अवसाद को नदियों के तलों में लाते हैं जिसके कारण वे दुर्गंध युक्त दलदली क्षेत्र बन जाते हैं। यहां प्राकृतिक और कृत्रिम (मानव निर्मित) कारणों को अलग-अलग पहचानना कठिन है।

आइये एक अन्य उदाहरण लें। फ्लोराइड एक प्रबल प्रदूषक है और "घुटन-तोड़" (knock-nee) बिमारी का हेतू है, जलाशयों में यह प्राकृतिक तौर पर पाया जाता है। परन्तु सीरेमिक उद्योग, फास्फेट उर्वरक संयंत्र और ऐलमूनियम के कारखाने जैसी औद्योगिक गतिविधियों में भी उत्पाद के रूप में निकलता है।

इस इकाई में हम जल प्रदूषण के कुछ मानव निर्मित (कृत्रिम) स्रोतों अर्थात् जलाशयों में मानव की गतिविधियों के कारण उत्सर्जित पदार्थों द्वारा प्रदूषण पर विचार करेंगे। घरेलू वाहित मल, औद्योगिक अवशेष, कृषि अवशेष, रेडियोधर्मी पदार्थ और गरम हुआ अपजल ऐसे प्रमुख प्रदूषकों की मिसाल है जो मनुष्य की गतिविधियों के द्वारा बनते हैं। यद्यपि कोई जलाशय एक से अधिक स्रोतों से एक साथ प्रदूषक ग्रसित हो सकता है, किन्तु यहां हम सुविधा के लिये जल प्रदूषण के कारणों की निम्न उप-शीर्षकों में अलग-अलग चर्चा करते हैं :

- घरेलू गंदा पानी या अपजल और वाहित मल
- औद्योगिक अवशेष
- कृषीय अवशेष
- भौतिक प्रदूषक (रेडियोधर्मी और तापीय) कारक

इनमें से पहले तीन कारकों की यहां चर्चा की गई है। भौतिक प्रदूषकों जिसमें रेडियोधर्मी और तापीय प्रदूषक शामिल हैं, पर चर्चा समुद्रीय प्रदूषण नामक अनुच्छेद में की जाएगी।

11.3.1 घरेलू अपजल और वाहित मल

इसमें घरेलू कामकाज से उत्पन्न जल — वाहित अपद्रव्य शामिल हैं। ये क्रियाकलाप हैं — नहाना, कपड़ों की धुलाई, खाना बनाना और बर्तनों आदि का साफ करना। घरेलू अपद्रव्यों में जो पदार्थ होते हैं वे इस प्रकार हैं — कूड़ा-कचरा, साबुन, डिटर्जेन्ट, जूठन (बचा भोजन) कागज-कपड़ा, प्रयोग किया अंगराग (कॉस्मेटिक), टॉयलेट से वाहित जल और टट्टी। यह अपद्रव्य जिसे वाहित मल या (sewage) कहते हैं जल के प्रदूषण का सबसे बड़ा प्राथमिक स्रोत है। दूषित जल के प्रयोग से कई प्रकार के विकार हो जाते हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से **जल वाहित रोग** कहते हैं। अपमार्जकों (डिटर्जेन्ट) में प्रमुख तौर से फास्फेट होते हैं। पानी में बहाए जाकर ये फास्फेट एलगी (शैवाल) में प्रचुर वृद्धि का कारण बनते हैं। जो अपघटित होकर स्ट्रिकनीन (strychnine) जैसे विषालु पदार्थ बनाते हैं। ये पदार्थ मवेशी तथा अन्य जानवरों के लिए घातक होते हैं। इसके अलावा फास्फेट जलाशयों के अतिपोषण का भी कारण बनते हैं।

11.3.2 औद्योगिक अवशेष

अधिकांश नदियां और मीठे पानी के झरने आदि शहरों, नगरों और अन्य मानव बस्तियों के पास से गुजरते हैं और औद्योगिक अवशेष और बहि-स्राव से प्रदूषित हो जाते हैं। आप तालिका 11.1 का अध्ययन कर सकते हैं। इसमें प्रमुख भारतीय नदियों और उनको प्रदूषित करने वाले उद्योगों की सूची दी गई है। आप पाएंगे कि आमतौर पर ऐसे उद्योग हैं — कागज उद्योग, कपड़ा और चीनी की मिलें, शराब के कारखाने और ताप बिजली घर। इन उद्योगों से अनेक प्रकार के बहि-स्राव बनते हैं। पेंट और वारनिश उद्योगों से दीर्घ शृंखला वाले एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन् बनते हैं, कपड़ा उद्योग से बहुत से रंजक पदार्थ तथा रंग बंधक (रंग स्थापक) के तौर पर काम में लाये गये धातु लवण निकलते हैं। बहुत से प्रदूषकों को उत्पन्न करने वाले अन्य औद्योगिक बहि-स्राव में तेल, ग्रीस, प्लास्टिक, अधिस्थानी धातु अपद्रव्य (जैसे तांबा, जस्ता, कैडमियम, लैड, पारा) ऐसिड ऐल्कली सायनाइड और क्लोरीन जैसे पदार्थ होते हैं। ये अपद्रव्य पदार्थ तालिका 11.2 में दिये गये उद्योगों में भी बनते हैं।

तालिका 11.1

भारत की कुछ प्रदूषित नदियाँ और उनके प्रमुख प्रदूषण स्रोत

नदी का नाम	प्रदूषण का स्रोत
भद्रा (कर्नाटक)	कागज और स्टील उद्योग
कावेरी (तमिलनाडु)	चर्मशोधनशाला, शराब का कारखाना, कागज और रेशम की मिलें
चम्बल (मध्य प्रदेश)	रेशम मिल, कास्टिक सोडा की मिलें
कूअम (तमिलनाडु)	मोटर-कार वर्कशाप
दामोदर (बोकारो और पानचेट के बीच)	उर्वरक, स्टील की मिलें, कोयला प्रक्षालन घर और पावर स्टेशन
गंगा (कानपुर में)	रसायन, धातु एवं सर्जरी के उपकरण से संबंधित उद्योग, चर्मशोधशाला और कपड़ा उद्योग
गोदावरी (आंध्र प्रदेश)	कागज का कारखाना
गोमती (लखनऊ के पास)	कागज और लुगदी मिलें
हुगली (कलकत्ता के पास)	ताप बिजली घर, कागज की लुगदी, जूट, कपड़ा (टेक्सटाइल) रसायन की मिलें, रंग, वार्निश, धातु, स्टील, वनस्पति तेल, रेयन और साबुन, दियासलाई और पॉलीथीन उद्योग
यमुना (दिल्ली के पास)	डी डी टी फैक्टरी, इन्द्रप्रस्थ ताप बिजली घर मथुरा की पैट्रोल शोधन रिफायनरी
कालीं (मेरठ)	चीनी की मिलें, शराब, रंग, साबुन, रेयन, सिल्क, धागे, टिन और ग्लिसरीन के उद्योग
नर्मदा (मध्य प्रदेश)	कागज की मिलें
सिवान (बिहार)	कागज, सीमेंट, गन्धक और चीनी की मिलें
सोन (उत्तर प्रदेश)	कागज की मिलें
सुवाओं (बलरामपुर)	चीनी उद्योग

घरेलू अपजल में पदार्थों की एक समानता पायी जाती है इसके विपरीत औद्योगिक अपजल में पदार्थों की विभिन्नता होती है और यह विविधता औद्योगिक क्रियाविधि की जटिलता के साथ बढ़ती जा रही है। 11.2 में प्रमुख उद्योगों की सूची दी गई है और साथ ही उनके अपजलों का सामान्य स्वभाव और/अथवा अवांछित अभिलक्षण भी दिये गये हैं।

तालिका 11.2

प्रदूषित अपजलों में पाये जाने वाले अपद्रव्यों की सामान्य प्रकृति

उद्योग	क्रियाविधि या अपद्रव्य	उप-उत्पाद और प्रभाव
मद्य निर्माण शाला	माल्ट का किंवन, किंवणित द्रव्य	कार्बनिक अपद्रव्य और/या अपद्रव्य
डेरी	दुग्ध संसाधन, बोतलभरण, पैक करना, मक्खन और पनीर का बनाना	कार्बनिक अम्ल और अपशेष
खाद्य संसाधन	डिब्बों में भरना और ठंडा करके जमाना	कार्बनिक भारण, अम्लीय और क्षारीय
लॉंड्री	कपड़े धोना, ड्राइक्लीनिंग	फास्फेट, कार्बनिक विलायन
रसायनिक उद्योग	विविध	अम्लीय और क्षारीय
कपड़ा उत्पादन और रंगाई	कलफ लगाना, रंग काटना और कपड़ों की रंगाई, ऊन की मंजाई	कार्बनिक और अकार्बनिक उद्भार (लोड), रंजक पदार्थ, धातुओं के लवण, अम्लीय और क्षारीय अपद्रव्य
चमड़ा उद्योग	चमड़े की सफाई और कमनना	कार्बनिक उद्भार, अम्लीय और क्षारीय अपद्रव्य
धातु उद्योग	अयस्क का खनन, फिर सज्जीकरण और प्रगालन	अकार्बनिक उद्भार (सिल्ट) अम्लीय
कागज उद्योग	लुगदी और कागज का उत्पादन	अम्लीय अपजल, धातु के लवण, लकड़ी के रेशों के अवशेष
विद्युत लेपन	कलई लगाना, लेपन	अम्लीय अपशेष और धातुओं के लवण

11.3.3 कृषीय अवशेष

इसमें निम्नलिखित प्रकार के अवशेष हो सकते हैं : खाद तथा फार्म तथा मुर्गी खाने से प्राप्त अन्य अपद्रव्य, बूचड़खाने का अवशेष, पीड़कनाशी और खेत से पानी द्वारा बहाकर लाये गये लवण तथा साद (सिल्ट), ये अपद्रव्य कृषीय भूमि से बहकर पानी के साथ आवाही नालियों में आ जाते हैं। आपने इकाई 8 में पढ़ा है कि यदि किसी जलाशय में उर्वरक या खाद बहकर आ जाते हैं तो जल में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है जिससे अति पोषण और आक्सीजन का निःशेषण हो जाता है। भौम जल में अधिक नाइट्रेटों के रिसने या अन्तःस्रवरण से और फिर उस पानी को बच्चों द्वारा पी लेने से मेटहीमोग्लाबिनिया नामक भयंकर बीमारी हो गई थी। नाइट्रेटों के जहरीले प्रभाव को राजस्थान के कई क्षेत्रों में देखा गया है। इस इकाई के आगे के कुछ अनुच्छेदों में आप

जल के सबसे व गंभीर प्रदूषक, पीड़कनाशी पदार्थ होते हैं, इनमें से मुख्य है डी डी टी (डाइक्लोरो डाइफिनाईल ट्राइक्लोरो ऐथेन) जिसका उपयोग मच्छरों और कृषीय पीड़क जन्तुओं का नियंत्रण करने में किया जाता है। अन्य जीवघाती पदार्थों में कुछ इस प्रकार हैं : (बैन्जीन हैक्साइक्लोराइड; 2, 4 डाइक्लोरोफिनॉक्सी एसीटिक एसिड; 2, 4-5 ट्राईक्लोरोफिनॉक्सी एसीटिक ऐसिड)। प्राकृतिक दशाओं में अविघटनशील होने के कारण बार-बार के प्रयोग से मिट्टी और जल तंत्रों में ये इकट्ठे होते जाते हैं कृषि भूमि से पीड़कनाशियों के बारिश के पानी में मिल कर पास की नदियों में बह जाने से मछलियों के नाश की गंभीर घटनाएं हुई हैं। अधिकांश पीड़कनाशी वसा में घुलनशील होने के कारण जानवरों के (जिनमें आदमी भी शामिल हैं) भोजन में मिल कर एडिपोज उत्तक में पहुँच जाते हैं। वसा के विघटन पर ये पीड़कनाशी रुधिर धारा में मिल जाते हैं और अपना विषजन्य प्रभाव दिखाते हैं।

बोध प्रश्न 4

कोष्ठकों में से उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए और अपने उत्तरों को इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

क) कभी-कभी देखने में साफ लगने वाले पानी में ..... या अन्य ..... पदार्थ हो सकते हैं जो ..... बीमारी या कई बार ..... तक का कारण बनते हैं।

ख) वे जलाशय जिनमें लवण की मात्रा 35 भाग प्रति हजार से अधिक होती है ..... जल कहलाते हैं।

ग) घरेलू उपजलों में प्रदूषकों की एक समानता की तुलना में उद्योगों से प्राप्त अपजल में कहीं अधिक ..... वाले रासायनिक यौगिक बनते हैं जो औद्योगिक ..... की जटिलता के साथ-साथ बढ़ती जाती है।

घ) जल प्रदूषण से गंभीर विकार हो जाते हैं जिनको सामूहिक रूप से ..... के नाम से जाना जाता है।

ङ) डी डी टी वसा में घुलनशील यौगिक हैं जो भोजन के साथ मनुष्य शरीर में एडिपोज ऊतक में रिस कर पहुँच जाता है। बीमारी से होने वाले अपोषण के दौरान वसा के विघटन से यह पीड़कनाशी ..... में विमुक्त हो जाता है जिससे विषप्राय प्रभाव पड़ता है।

च) जल में नाइट्रेट का आधिक्य ..... नामक गंभीर बीमारी पैदा करता है।

(खारी, असुविधा, विविधता, रासायनिक, रुधिर प्रवाह, जल वाहित, मेटहिमोग्लोबिनीमिया, प्रक्रम या प्रक्रिया, जीवाणु, मृत्यु)

11.4 मलजल या वाहित मल का उपचार

घरेलू, औद्योगिक, व्यापारिक भवनों और संस्थानों से बहकर आये अपजल में शहर का कूड़ा-करकट और दूसरे अपद्रव्य पदार्थ होते हैं जिसको आमतौर से वाहित मल, मलजल या सीवेज कहते हैं। कभी-कभी इस में बारिश का पानी और जमीन के ऊपर से बहकर आया हुआ पानी भी हो सकता है। अपजल के उपचार में नीचे दिये गये वह चरण इस प्रकार हैं :

अवसादन
जमाव या स्कंदन
निस्पंदन
रोगाणुनाशन/विसंक्रमण
मृदुलीकरण, और
वातन/वायु मिश्रण

यदि अपजल को किसी नदी, नहर या अन्य ग्राही जल राशि में विसर्जित करना है तो उपचार के पहले चार चरण चानी अवसादन, स्कंदन निस्पंदन, रोगाणुनाशन आवश्यक हैं। ये सब विधियाँ प्राथमिक उपचार के अंतर्गत आती हैं। आजकल अपद्रव्य इतने जटिल हो चले हैं कि सीवेज को ग्राहक जल राशि में बिना उपचार के छोड़ देने की अनुमति नहीं दी जाती। दूसरे शब्दों में अपजल का पहले मोटी-मोटी अशुद्धियों को दूर करने के लिये **प्राथमिक उपचार** किया जाता है और फिर दुबारा प्राप्त विक्रमित जल को जलधाराओं में छोड़ा जाता है। यदि इस प्रकार प्राप्त पानी का पीने के लिये उपयोग करना है तो इसका पुनः उपचार करना आवश्यक है। इसमें मृदुलीकरण और वातन आवश्यक हैं। इन दो विधियों को संयुक्त रूप से **द्वितीयक उपचार** कहते हैं।

उपचार के लिये बने विशेष प्रकार के संयंत्रों में अपजल/वाहित मल की अभिक्रिया कराई जाती है। हमारी राय

मल का उपचार जल को उसकी मूल शुद्धता दिलाने के लिये किया जाता है, ताकि यह ग्राही जलाशयों में छोड़ा जा सके फिर पेय जल के रूप में काम आ सके। नीचे के परिच्छेद में हम सीवेज के उपचार के विविध चरणों पर चर्चा करेंगे।

अवसादन : यह प्रक्रिया अपने-आप प्राकृतिक जलाशयों में होती है। इसके लिए अपजल या मलजल को उपचार के लिए बने हुए बड़े-बड़े हौजों या टंकियों में निपटने के लिए छोड़ दिया जाता है। यदि पानी को इस प्रकार स्थिर रहने दिया (अनुसादित किया) जाता है या बहुत धीमी गति से शान्त बहने दिया जाता है तो सिल्ट, चिकनी मिट्टी के कण और दूसरे मोटे-मोटे कण नीचे बैठ जाते हैं। अति महीन कणों या कोलायडीन पदार्थों को सरल अवसादन क्रिया नीचे नहीं बैठा पाती। मुख्य रूप से यह चरण उपचार के आरंभिक पद के रूप में प्रयुक्त होता है।

स्कंदन द्वारा महीन कणों और कोलायडीय कणों को बड़े आकार में संयुक्त किया जाता है। ये आवर्धित (बड़े) कण ऊर्ण कहलाते हैं और टंकियों में बैठ जाते हैं तथा फिल्टर में से छाने जा सकते हैं। स्कंदन के लिए विशेष रासायनिक पदार्थों जैसे नौशादर का प्रयोग किया जाता है जिन्हें स्कंदक या ऊर्णक कहते हैं। इस चरण का नाम ऊर्णन भी है।

निलंबित कणों, कोलायडीय पदार्थ, बैक्टीरिया और दूसरे जीवों को (छानकर अलग) **निस्पंदित** करने के लिए अपजल को रेत या महीन कोयला चूर्ण के संस्तर (परत) से या फिर छिद्र युक्त अभ्यंतर (कोर) पर जमी हुई रेशेदार पदार्थ की मैट्रिक्स पर से गुजारा जाता है। निस्पंदन या फिल्टर करने से घुले हुए पदार्थ जैसे — लवण और धातुओं के आयन दूर नहीं होते।

निस्पंदन के बाद जल का **रोगाणुनाशन** किया जाता है। जल में मौजूद जीवों, विशेष तौर पर रोगकारी जीवाणुओं के नाश के लिए जल कई प्रकार से उपचार कर सकते हैं। आमतौर से रोगाणुनाशन के लिए क्लोरीन या इसके किसी यौगिक जैसे — विरंजक (bleaching) पाउडर का उपयोग किया जाता है। कम प्रचलित रोगाणुनाशन के तरीके भी होते हैं — पराबैंगनी प्रकाश, ओजोन या सिल्वर आयनों का उपयोग। घरेलू आपातकालीन रोगाणुनाशन का एक तरीका यह भी है, कि जल को उबाल कर पिया जाए।

अब तक बताये गये अपजल के उपचार के तरीके **प्राथमिक उपचार** विधियाँ कहलाते हैं और ऐसा करके वाहित जल या मलजल को बचे अपद्रव्य के लिये जाँच कर जलधाराओं में निरापद रूप से छोड़ा जा सकता है। किन्तु यह पानी अभी पीने के योग्य नहीं है और इस का मृदुलीकरण और वातन करना इसे पीने योग्य बनाने के लिए जरूरी है। ये विधियाँ **द्वितीयक उपचार** के अन्तर्गत आती हैं।

आप जानते हैं कि **मृदुलीकरण** में कठोर जल से कैल्सियम और मैग्निशियम जैसे अवांछित धनायन दूर कर दिये जाते हैं। इसके दो तरीके हैं : (1) पानी में चूना और सोडा मिलाया जाता है जिससे कैल्सियम और मैग्निशियम आयन कार्बोनेट के रूप में अवक्षिप्त हो जाते हैं जिसको फिल्टर कर लेते हैं, (2) पानी को छिद्र युक्त धनायन एक्सचेंजर में से गुजारा जाता है। जिससे जल धनायन मुक्त हो जाता है।

वातन की प्रक्रिया में जल के भीतर से हवा बुलबुलों के रूप में तेजी से गुज़ारी जाती है। इस प्रकार जल में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है और कार्बन डाइआक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड और स्वाद देने वाले अवांछित वाष्प या गैसें मात्रा में कम हो जाती हैं।

11.4.1 उपचरित मलजल के अभिलक्षण

उपचार करने पर वाहित मल में से साद (silt) निकल जाता है, जल रंगहीन हो जाता है। रोगजनक जीवाणुओं की संख्या घटकर करीब-करीब शून्य हो जाती है, जैविक ऑक्सीजन मांग (बी.ओ.डी. B.O.D.) और कोलाई काउन्ट कम हो जाते हैं। और विषालु अपद्रव्य उदासीन हो जाते हैं। जल की (धुँधलापन या turbidity) पंकिलता चली जाती है, निलंबित कणों से जल मुक्त हो जाता है और इसमें जीवनदायक ऑक्सीजन भरपूर मात्रा में आ जाती है।

भारत में दिल्ली और दूसरे बड़े शहरों की एक विचित्र बात यह है कि पेय जल का स्रोत बहती नदी होती है जिसमें हम मानवीय और रासायनिक अपद्रव्य विसर्जित करते हैं। अपनी तसल्ली के लिए हम पीने का पानी द्वितीयक उपचार द्वारा शुद्ध तो करते हैं परन्तु उतने ही विश्वास से यह नहीं कह सकते कि शोधन प्रक्रिया में अशुद्धियाँ शत-प्रतिशत दूर हो जाती हैं। बहाव की दृष्टि से नीचे की ओर रहने वाले समुदायों को प्रदूषकों और रोगाणुओं (pathogens) का खतरा बना रहता है। कभी-कभी अधूरे या अपूर्णतः उपचारित किये जल के विसर्जन से महामारियाँ फैल जाती हैं। सन् 1988 में इस प्रकार हैजे के फैलने से दिल्ली शहर में 300 मनुष्यों की जानें चली गईं।

एक रोचक बात यह है कि क्लोरीन के द्वारा रोगाणुनाशन करने से रोगाणु तो मर जाते हैं परन्तु जल में न्युनांशों में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ क्लोरीन के साथ संयुक्त होकर क्लोरीनीकृत हाइड्रोकार्बन बना सकते हैं। जिनमें कैंसर उत्पन्न करने की (कैंसर कारी) क्षमता होती है। क्लोरीन एक हैलोजन तत्व है। हमारे देश में अधिकांश शहरों की जल सप्लाई हैलोज़न यौगिकों के लिये सकारात्मक परीक्षण देती हैं। अतः यह आवश्यक है कि क्लोरीनीकरण से

प्राथमिक उपचार से मिली कुल (अपशिष्ट वस्तुएं) अशुद्धियाँ संयुक्त रूप से अवपंक (sludge) कहलाती हैं जिसके कम्पोस्टीकरण से स्लज गैस निकलती है। कम्पोस्टीकरण में अवपंक के कार्बनिक द्रव्य पर वायु निरपेक्ष जीवाणु अभिक्रिया करके स्लज गैस पैदा करते हैं। स्लज गैस में अधिकांश मीथेन गैस होती है, जिसको खाना पकाने, रोशनी करने और दूसरे घरेलू काम करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। आप खंड 5 के भौतिक संसाधनों का संरक्षण (I) नामक इकाई 21 में भारत में स्लज गैस के उपयोग के बारे में पढ़ेंगे। कम्पोस्टीकरण के बाद बची स्लज को मुक्तशेष कर्दम (spent slurry) कहते हैं, जो सूखने पर एक ठोस अवशेष बनाती है। यह ठोस अवशेष एक अच्छे उर्वरक के तौर पर काम आ सकता है। कभी-कभी इस का उपयोग गढ़े भरने में भी होता है जिसके बारे में आप विपत्तिजनक अपशिष्ट पदार्थ नामक इकाई 13 में पढ़ेंगे।

पहले जल में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बिल्कुल कम कर दी जाये। अच्छा यह होगा कि रोगाणुनाशन के अन्य साधन जैसे — पराबैंगनी किरणें, ओजोन और सिल्वर आयन आदि काम में लाये जायें।

जल की गुणता को मापने के लिये वैज्ञानिकों ने विभिन्न मानदंड विकसित किये हैं। ये प्रदूषित जल के अभिलक्षणों और प्राकृतिक जलाशयों में घटित होने वाली क्रियाविधियों के ज्ञान पर आधारित है। आप, यदि चाहें तो भारतीय मानक भवन (ब्यूरो ऑफ इंडियन स्टैंडर्डस) नई दिल्ली से उनके द्वारा प्रकाशित मानक जल की गुणता के मानदंडों की पुस्तिकाएं निरापद उपयोग के लिये निशुल्क प्राप्त कर सकते हैं।

उद्योगों द्वारा उपवाहित (लापरवाही से छोड़े गये) विषालू अपजल ने भौम जल की सप्लाई के लिए खतरा उपस्थित कर दिया है। आप नीचे दिये गये कुछ पैराग्राफों में पढ़ेंगे कि ग्रामीण पेय जल सप्लाई भौम जल प्रदूषण से कितनी दूषित हो गई है और यह भी पढ़ेंगे कि ऐसा जल पीने के क्या संभावित परिणाम हो सकते हैं।

बोध प्रश्न 5

कालम क में दिये गये पदों को कालम ख में दी गई उनकी परिभाषाओं से मिलान कीजिये, और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से जांचिए :

i)

	कालम "क"		**कालम "ख"**
क)	उर्णन या स्कंदन	क)	जल में उपस्थित सूक्ष्म जीवधारियों को खासतौर पर रोगकारी जीवाणुओं को मारने के लिये जल का उपचार।
ख)	अवसादन	ख)	आवर्धित अशुद्धि कणों को दूर करने के लिए जल को रेत के संस्तर से या फिर छिद्रयुक्त अभ्यंतर पर जमी हुई रेशेदार पदार्थ की मैट्रिक्स पर से गुजारना।
ग)	रोगाणुनाशन	ग)	पानी को कम रफ्तार से शांतिपूर्वक बहने देना और इस प्रकार साद, चिकनी मिट्टी और दूसरे महीन कणों को नीचे बैठाना।
घ)	निस्पंदन	घ)	विशेष रासायनिक पदार्थों का उपयोग करके महीन कण और कोलायडीय कणों को बड़े आकार के कणों में आवर्धित करना।

ii) रिक्त स्थानों को भरिये और अपने उत्तरों को इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों में से मिलाइये :

आमतौर से जल का उपचार दो चरणों में होता है। उपरिनदवासी उपभोक्ता जल का उपयोग पहले करते हैं और अपने मलजल को .... उपचार के बाद ग्राही जलधारा में छोड़ देते हैं। जलधारा के अनुप्रवाह से नीचे की ओर के उपभोक्ता उसी स्रोत से जल ग्रहण करते हैं, परंतु जल का पीने और दूसरे घरेलू काम करने से पहले ..... उपचार करते हैं।

iii) बताइये कि नीचे का कथन सत्य है या असत्य।

यदि उपचार न किया हुआ जल ग्राही जल राशियों में छोड़ दिया जाता है तो बहुत संभव है कि इस जल की दूषितता का स्तर वातापेक्षी बैक्टीरिया की विघटन क्षमता के परे चली जाए।
इसका परिणाम क्या होगा?

.....

.....

11.5 भूमिगत जल प्रदूषण

अपरिष्कृत वाहित मल को कम गहरे सोक-पिटों में छोड़ देने (अपवाहित कर देने) की बहु-प्रचलित परम्परा से बहुत से शहरों में भौम जल प्रदूषित हो गया है। निस्पंदन (सीपेज) गड्ढों अवस्रावण गड्ढों, कचरा-गर्त, सेप्टिक टैंक आदि से प्रदूषक, मिट्टी की तहों से होते हुए भौम जल में पहुँच सकते हैं। कभी-कभी परिवहन दुर्घटना भी जल के अंतर्भौम श्रोतों को दूषित कर सकती है। कुछ औद्योगिक उत्पाद और विधियों से प्राप्त अपद्रव्य भी भौम जल का प्रदूषण कर सकते हैं। पंजाब और हरियाणा के औद्योगिक क्षेत्र, जैसे — अम्बाला, लुधियाना, सोनीपत जहाँ साइकिल और ऊनी कपड़े बनते हैं, से ऊँची मात्रा में निकिल, लोहा, कापर, क्रोमियम और सायनाइड भौम जलाशयों में पहुँचे हुए पाये गये हैं (देखिए चित्र 11.2)।

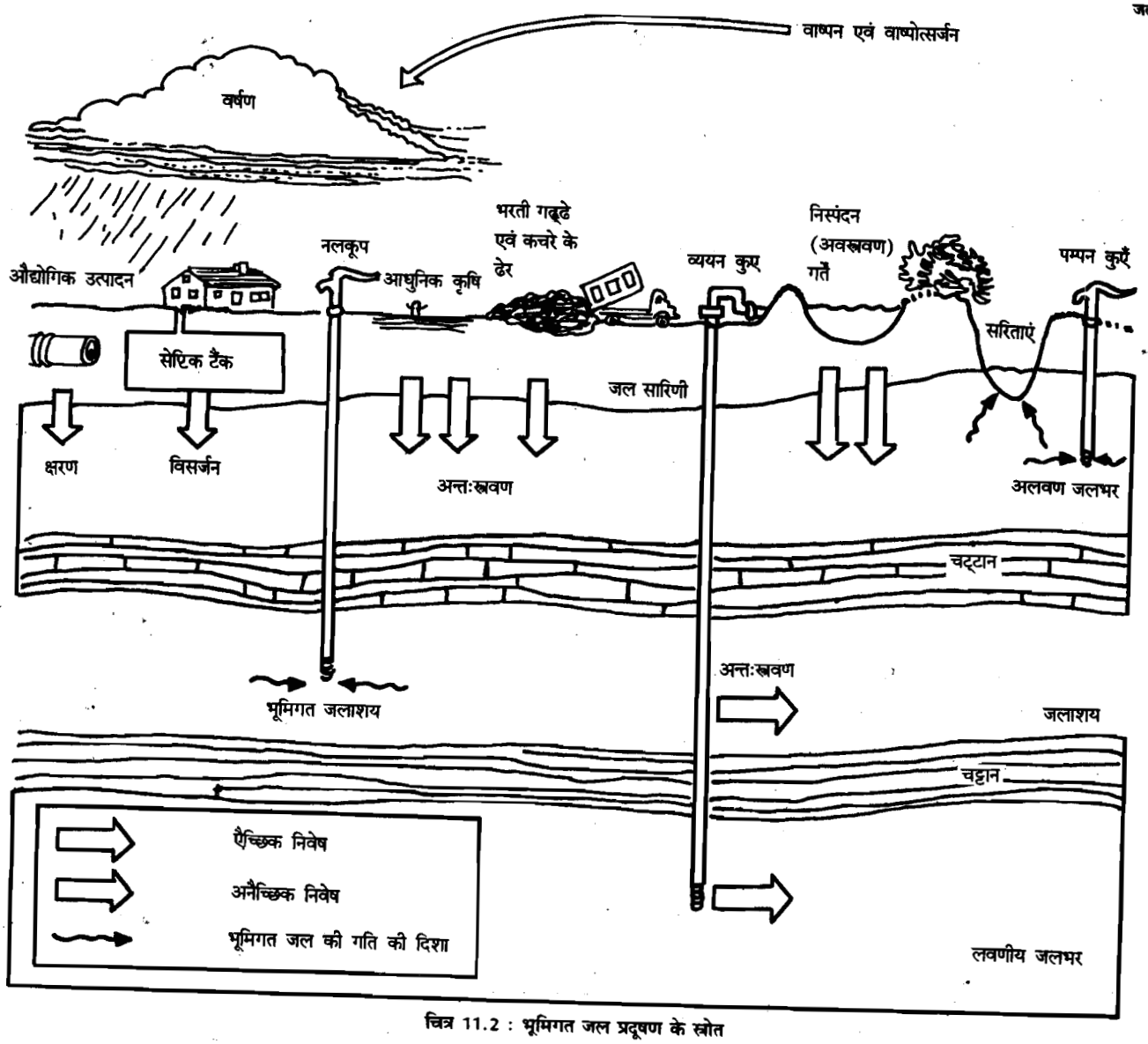

चित्र 11.2 : भूमिगत जल प्रदूषण के स्रोत

खेती के आधुनिकीकरण ने नाइट्रोजन उर्वरकों के अति प्रयोग को बढ़ावा दिया है। आपने अनुच्छेद 11.2.3 में पढ़ा है कि किस प्रकार सिंचाई जल के भौम जल श्रोत में रिसने से गाँवों में मेटहीमोग्लोबिनीमिया नामक बीमारी हो जाती हैं। यहाँ इकाई 8 से यह याद दिलाना भी प्रासंगिक रहेगा कि आजकल आधुनिक खेती वाले खेतों में नाइट्रेट के अति अधिक प्रयोग से स्वास्थ्य के लिये गहरा संकट पैदा हो गया है। जल में घुलनशील होने के कारण नाइट्रेट मिट्टी की परतों से होते हुए जल के अंतर्भौम (भूमिगत) स्रोतों तक पहुंच जाते हैं। बहुत से गाँव और नगरों में पीने के पानी का स्रोत केवल भौमजल ही है, ऐसे जल को पीने से मेटहीमोग्लोबिनीमिया बीमारी हो जाती है। आपने खंड 11.3.3 में पढ़ा कि यह बीमारी खासतौर पर दूध पीते बच्चों में होती है क्योंकि वे इस प्रदूषक के प्रति अतिसंवेदी होते हैं।

अब आप यह जानना चाहेंगे कि यह बीमारी कैसे होती है। इसे यों समझ सकते हैं, जब नाइट्रेट युक्त जल पिया जाता है तो यह आंतों में जाता है जहाँ बैक्टीरिया नाइट्रेट को नाइट्राइट में बदल देते हैं। नाइट्राइट आयन हीमॉग्लोबिन से संयुक्त होकर मेटहीमोग्लोबिन बनाता है जो रुधिर की आक्सीजन वाहन क्षमता को बाधित कर देता है जिससे फिर मेटहीमोग्लोबिनीमिया नाम की बीमारी हो जाती है। नाइट्रेट को जल से दूर करना आसान नहीं है। नाइट्रेट एक घुलनशील विषालु अपद्रव्य है। घुलनशील विषालु अपद्रव्यों को दूर करने के लिए उपचार की जटिल विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। जैसे रासायनिक स्कंदन और निस्पंदन, कार्बन अवशोषण, रासायनिक उपचयन (ऑक्सीकरण), आयन विनिमयन, विद्युत अपोहन और व्यउत्क्रम या प्रतिलोम परासरण। नाइट्रेट को दूर करने के लिए कोई भी एक या अधिक विधियों को मिलाकर काम में लाया जा सकता है बशर्ते साधन मौजूद हों।

विषालु औद्योगिक अपद्रव्यों जैसे — आर्सेनिक लैड, कैडमियन और पारे के यौगिक और बहु क्लोरीनिकृत बाइफिनाइल (PCB's) इत्यादि के अविवेकपूर्ण विसर्जन से प्रकृति के अन्तर्भौम जल श्रोतों का रिस जाने से प्रदूषण

हो सकता है। यह बात भूमिगत की गुणता के लिए बहुत बड़ा खतरा हो सकती है, खासतौर से उस जगह जहाँ भूमिगत जल स्तर ऊँचा अर्थात् पृथ्वी के पृष्ठ के समीप है। इससे वैज्ञानिक चिंतित हैं क्योंकि कई साल तक थोड़ी मात्रा में भी पिया गया पानी शरीर में इन विषालु पदार्थों का जैव संचयन अथवा बायोसांद्रण कर देगा। होता यह है कि ये यौगिक उत्सर्जन के लिए कठिन होने के कारण शरीर में ज्यादातर वसीय उत्तकों में संग्रहीत (इकट्ठा) हो जाते हैं। दूषित जल-सप्लाई पर निर्भर रहने वाला व्यक्ति प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी मात्रा में इनको इकट्ठा करता जाता है। मनुष्य ऐसे पौधों से प्राप्त पदार्थों को भी खाता है जो प्रदूषित हैं। मनुष्य ऐसे पौधों से प्राप्त पदार्थों को भी खाता है जो प्रदूषित जल पर पलते हैं और अपने शरीर में इन विषालु पदार्थों को इकट्ठा करते रहते हैं। मछली, "पोर्क" और "स्टीक" जैसे मांसाहारी भोजन भी ऐसे जानवरों से प्राप्त हो सकते हैं जिन्होंने अपनी जैव-मात्रा में इन प्रदूषकों को इकट्ठा कर लिया है। मनुष्य यहां एक ऐसा केन्द्र बन जाता है जिस के शरीर में विविध प्रकार के स्रोतों से प्रदूषक आ जाते हैं देखिए चित्र 11.3। विषालु पदार्थों की मात्रा इस प्रकार और आवर्धित (अधिक) हो जाती है। इस प्रक्रम में प्रदूषक मनुष्य शरीर में जैविक स्रोतों से संचित होकर मात्रा में बढ़ते (आवर्धित) होते जाते हैं। इसलिए इस प्रक्रम को **जैव संचयन** कहते हैं और साथ ही क्योंकि विषमय पदार्थों की मात्रा जीव द्वारा बढ़ाई जाती है, इसी प्रक्रम को **जैव आवर्धन** भी कहते हैं। भूखे रहने पर (क्षुधावस्था में) जब शरीर अपने में संचित आहार या भोजन पर निर्भर करता है तो ये यौगिक रुधिर प्रवाह में मुक्त हो जाते हैं और अपना विषाक्त असर दिखाते हैं।

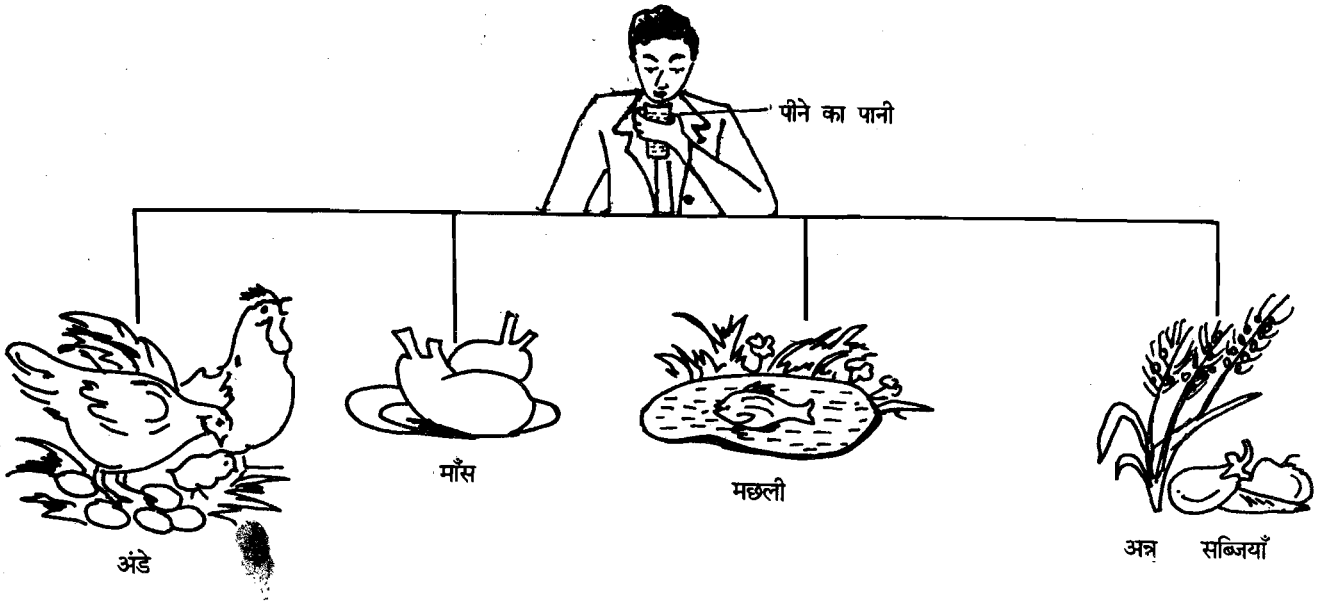

चित्र 11.3 : मनुष्य खाद्य शृंखला के शीर्ष पर स्थित है। क्योंकि वह प्रकाश संश्लैषी जीवों को और मांसाहारी यहाँ तक कि अपरद हारी जीवों को भोजन के रूप में ग्रहण करता है।

उन क्षेत्रों में भी जहाँ भूमि स्तर नीचा होता है, भूमिगत जल का संदूषण गंभीर समस्या उत्पन्न कर सकता है, जैसा कि नीचे के उदाहरण से स्पष्ट है:

एक दृष्टान्त अध्ययन: पाली (राजस्थान) का जल प्रदूषण भूमिगत जल प्रदूषण का उत्तम उदाहरण है। शहर की लगभग एक लाख की आबादी के लिए पेय जल का एक मात्र स्रोत अंतर्भौम जल है। वहां 450 से अधिक कपड़ा उद्योग की इकाइयाँ हैं जो कपड़े के डिजाइन करने, रंग करने और रंग उड़ाने (विरंजन) का काम करती हैं ये सब इकाइयां ऐसे बहि:स्राव जिसमें गंधक का तेजाब और कैंसर जनक पदार्थ होते हैं, को विसर्जित करती हैं। इन विषाक्त पदार्थों से रंगीन बहि:स्राव शहर के बड़े क्षेत्र पर फैलता रहा है। राजस्थान प्रदेश जल एवं वायु प्रदूषण एवं नियंत्रण परिषद्, राजस्थान स्टेट बोर्ड फार प्रिवेंशन एडं कंट्रोल ऑफ वाटर एडं एयर पालूशन द्वारा किये गये और टाइम्स ऑफ इंडिया 11 जुलाई, 1988 में प्रकाशित अध्ययनों में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मानसून आरम्भ होने पर ये पदार्थ रिसकर भूमि में नीचे पहुंच जाते हैं और भौमजल से मिलकर उसको संदूषित कर देते हैं। बताया जाता है कि संदिग्ध जगहों में विभिन्न गहराइयों से भूमिगत जल के नमूने मानीटर करके और फिर समय रहते समुचित उपायों द्वारा इस समस्या का बिल्कुल निवारण किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 6

क) नीचे दिये गये शब्दों का प्रयोग कर निम्न कथनों में जो भूमिगत जल प्रदूषण के बारे में बतातें हैं, रिक्त स्थानों को भरिये और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

..... और ..... के औद्योगिक क्षेत्रों में जहाँ साइकिल और ..... बनते हैं, भूमिगत जल में धातु प्रदूषक पाये गये हैं। ..... में ..... प्रदूषण का एक उदाहरण

पाली में हैं। यहां के रंगीन बहिःस्राव में गंधक का तेजाब और ..... पदार्थ होते हैं जो भूमिगत जल तक पहुँचकर उसे पीने के अयोग्य बना देते हैं।

(कैंसरजनक, राजस्थान, ऊनी कपड़े, पंजाब और हरियाणा, भूमिगत जल)

सही कथनों पर सही का निशान लगाइए और गलत पर क्रास का निशान लगाइए।

ख) मेटहीमोग्लोबिनीमिया बीमारी निम्नलिखित कारणों से हो जाती है —

i) फास्फेटयुक्त अपमार्जक के अत्यधिक उपयोग से

ii) आर्सेनिक, कैडमियम और पारे के यौगिकों तथा पी.सी.बी. के भूमिगत जल में रिसने से, खासतौर से, उस जगह जहाँ जल स्तर ऊँचा हो

iii) पीने वाला भूमिगत जल जो नाइट्रेटों से संदूषित हो गया हो

iv) पिया जाने वाला भू-पृष्ठ जल जिसमें स्ट्रिक्नीन जैसे पदार्थ पाये जाते हों।

11.6 समुद्रीय जल प्रदूषण

महासागर जो पृथ्वी के धरातल के करीब 71 प्रतिशत भाग को घेरे हुए है पर्यावरण के ठीक (सुचारु रूप से) रखने में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। क्योंकि वे जीव मंडल (biosphere) में मूलभूत ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइआक्साइड के बीच संतुलन बनाये रखते हैं जिस पर मानव और जन्तुओं का जीवन निर्भर करता है। पृथ्वी पर पाये जाने वाली ऑक्सीजन का करीब 20 प्रतिशत समुद्र के पादपप्लवकों से बनता है। सागरों का जल वाष्पित होकर बादल बनता है जो मैदानों और पहाड़ों की ओर वायु द्वारा ले जाया जाता है। जहाँ वे बादल बारिश करते हैं। पृथ्वी पर उपलब्ध जल का मुख्य स्रोत समुद्र है। मनुष्य के हस्तक्षेप जैसे प्रदूषकों की मात्रा में कृत्रिम वृद्धि, सागरीय संसाधनों का विवेकहीन उपयोग, तेल का अधिप्लाव और नाभिकीय परीक्षण इत्यादि से सार्वभौम जल चक्र में प्रबल असंतुलन आ जाने का खतरा है और इससे जलवायु का प्रारूप भयानक रूप में बदल सकता है।

समुद्र के किनारे स्थित नदियों के अंतिम भाग को मुहाना अथवा ज्वारनदमुख कहते हैं। पृथ्वी पर पाये जाने वाले वे सबसे अधिक उत्पादनशाली पारितंत्र हैं। समुद्री तट को अपरदन या अवकर्ष से बचाने में मुहाने महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। हरे भरे पेड़ पौधों से भरे होने के कारण वे समुद्र और नदी के बीच में (समन्वयकारी buffer) क्षेत्र का काम करते हैं। कहना न होगा कि उनको नाजुक तरीके से संतुलित पारितंत्र माना जाता है।

इसी प्रकार मूंगा चट्टाने समृद्धतम जैव विविधता वाले वास हैं जो प्राकृतिक सुन्दरता की मिसाल है। ये चूनेदार संद्यजीवी सीलेन्ट्रेट, प्राणियों और उन के अस्थिपंजर से बनती है। पृष्ठवंशी जीवों में मछलियों और अपृष्ठवंशियों की बहुत सी प्रजातियों के लिये ये बहुमुखी सूक्ष्म आवास का काम करती हैं।

समुद्री पारितंत्र का प्रदूषण अधिकतर मानव की आर्थिक गतिविधियों का परिणाम है। जबकि कुछ समस्याएं पुरानी हैं और इसलिए कुछ देशों में काफी जटिल भी हैं किन्तु अन्य देशों में अपेक्षाकृत सरल प्रकार की हैं। भारत की करीब 7,000 किलोमीटर लम्बी तट रेखा है। जिसमें समुद्री किनारे के पास बसे जन समुदाय, उद्योग और कृषि फार्म समुद्र में 1645 घन कि.मी. अपजल छोड़ते हैं। आप जानते हैं कि सब नदियां नहरे और दूसरी जलधाराएं अंत में समुद्र में मिलती हैं। भारत की चौदह बड़ी नदियां अपने बहिःस्राव का 85 प्रतिशत जल भारतीय महासागर में ला कर गिराती हैं और अपने साथ लाये गये प्रदूषकों को भी समुद्र में विसर्जित कर समुद्री जल के प्रदूषण का कारण बनती हैं।

समुद्री संसाधनों के उपयोग का यह बड़ा अविवेकी तरीका है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे कि वर्तमान में दिये गये ध्यान की तुलना में मनुष्य को कही अधिक परवाह समुद्रों की करनी चाहिए।

इन सामान्य स्रोतों के अलावा समुद्री जल कुछ ऐसे तरीकों से प्रदूषित होता है जो समुद्रों और सागरों के लिए अपने अनूठे हैं। इन विशिष्ट तरीकों में हम तेल बिखराव, औद्योगिक बहिःस्राव, गरम पानी के विसर्जन और बहुधात्विक पिंडों के खनन से होने वाले समुद्रीय जल प्रदूषण पर चर्चा करेंगे।

11.6.1 तेल का छलकाव या अधिप्लाव

तेल के अधिप्लाव का अर्थ है, मुहानों, मूंगा चट्टानों और समुद्री जल में तेल और उससे संबंधित उत्पादनों का अकस्मात (चू जाना) विसर्जन। यद्यपि बड़े-बड़े तेल अधिप्लावों पर पर्यावरण संबंधी घटनाओं के रूप में अधिक चर्चा होती है, परन्तु दुनिया भर में हुए वार्षिक तेल छलकाव के कुल आयतन का यह (बड़ी घटनाओं में होने वाला छलकाव) 25-30 प्रतिशत ही है। तेल अधिप्लाव की बहुत सी छोटी-छोटी घटनाओं का कोई जिक्र नहीं होता। इसके द्वारा तेल द्वारा प्रदूषण के और भी कई कारक हैं। जैसे समुद्र में तेल की खोज, तेल की रिफाइनरी (पेट्रोकैमिकल तेल रसायन परिष्करणशाला) और आटों तेंक केसों और तेल उद्योग मशीनरी से होने वाला प्रदूषण

इत्यादि भी समुद्री तेल प्रदूषण में योगदान करते हैं। प्रतिवर्ष 50 लाख मीट्रिक टन से अधिक तेल समुद्री पारितंत्र में छलक जाता है। यह तेल की काफी बड़ी मात्रा है और पर्यावरण संबंधी चिंता का महत्वपूर्ण विषय है।

तेल एक मूल्यवान पदार्थ है। आर्थिक हानि और तेल से संदूषित समुद्री तट के आरंभिक सौंदर्य विरोधी प्रभाव के अलावा तेल के बिखराव का प्रमुख पारिस्थितिकी परिणाम है जल चारी पक्षियों का मरना। मछली, बड़ी सीपी और शँखों का दम घुट कर मर जाना, क्योंकि उनके गिल या श्वसनतंत्र तेल की सतह से ढक जाते हैं। प्रकाश के न मिलने से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया भी रुक जाती है और समुद्री पौधे मर जाते हैं। तेल के उन अवयवों का असर जो पानी में जल्दी ही घुल जाते हैं और भी गंभीर और विषालु होता है। इन अवयवों से जीवधारियों म प्रजनन दीर्घ अंतराल तक रुक जाता है या विलोपशील पेड़ पौधों और प्राणियों को आनुवंशिक क्षति पहुँच सकती है। कभी-कभी दुर्घटना ऐसे क्षेत्रों में हो सकती है जो पारिस्थिति विज्ञान की नजर से महत्वपूर्ण हो। बड़े पैमा पर तेल के छलकाव की हाल की एक दुर्घटना पर यह बात सिद्ध होती है । मार्च 24, 1989 को अलास्का पास प्रिंस विलियम साउन्ड्स रीफ पर एक पांच करोड गैलन तेल वाले टैंकर एक्सान में तेल छलक कर बह निकला। यह मूंगे की चट्टान समुद्रीय और स्थलीय जीवधारियों की बहुत बड़ी संख्या को जिनमें बहुत से विलोपशील स्पीसीज हैं, यहां वास करती है। समुद्री जल के इस क्षेत्र को रासायनिक पदार्थों (तेल में मौजूद रसायन और वे जिनका तेल समेटने के लिये काम में लाया जाता है) द्वारा होने वाले प्रदूषण से पूरी तरह मुक्त होने में वर्षों लगेंगे और तब तक पारितंत्र को हानि पहुँचती रहेगी।

आपको यह जान कर हैरानी होगी कि मानव कई बार जानबूझ कर तेल को समुद्र में छोड़कर तेल का इस्तेमाल जंगी शस्त्र की तरह करता है। 1991 की लड़ाई में ईराक हजारों गैलन कच्चा तेल समुद्र में छोड़ता रहा और इस से समुद्री जीव जन्तुओं की भयानक मौतें हुईं साथ ही पड़ोसी देशों को अपने जल अलवणीकरण कारखाने संदूषित हो जाने के भय से बंद कर देने पड़े। इस वजह से उन्हें पानी की सख़्त तंगी का सामना करना पड़ा।

11.6.2 औद्योगिक रासायनिक पदार्थ

तेल, जो कम से कम दिखता तो है, से कहीं अधिक खतरनाक उद्योगों में उत्पन्न बहुत से अदृश्य किन्तु विषालु रासायनिक पदार्थ हैं। कुछ जलीय जीव कई रासायनों के विषालु प्रभाव को बढ़ा देते हैं। क्योंकि वे बाहर से आये पदार्थों को उत्सर्जित करने की बजाय शरीर में एकत्रित कर लेने की प्रवृत्ति रखते हैं और इस प्रकार उन के शरीर में विषालु पदार्थों की मात्रा चारों ओर के जल में मौजूद मात्रा के मुकाबले ऊंचे स्तर पर होती है। जब यह प्रक्रिया पोषक सीढ़ी में कई बार दुहराई जाती है तो विषालु प्रभाव का **जैव आवर्धन** हो जाता है। अब यह देखें कि इस पद का अर्थ क्या है। क्योंकि पोषक सीढ़ी के उच्चतर चरण में पाये जाने वाले जीव इन प्रथम श्रेणी के जीवों को खा कर ही पेट भरते हैं और वे भी विषालु पदार्थ को उत्सर्जित करने के बजाय अपने शरीर में संग्रहित कर लेते हैं। अब इन के शरीर में प्रदूषकों की मात्रा पहले प्रकार के जीवों की तुलना में कई गुना अधिक हो जाती है।

जब दूसरे चरण में पाये जाने वाले ऐसे जीव अपने से उच्चतर चरण वाले जीवों का भोजन बनते हैं तो उनके शरीर में विषालु रसायन की प्रति इकाई मात्रा और भी अधिक गुणा बढ़ जाती है। क्योंकि उनके भोजन का स्रोत पहली दो प्रकार के जीवों की स्रोत की तुलना में कही अधिक विषाक्त है। इस प्रकार ज्यों-ज्यों प्रदूषक रसायन पोषण सीढ़ी में चढ़ता जाता है, उसकी शरीर में पायी जाने वाली मात्रा जीवों में बढ़ती चली जाती है। अर्थात् प्रदूषक रसायन का **जैव आवर्धन** होता चला जाता है। या रसायन पोषक सीढ़ी में पाये जाने वाले जीव में सीढ़ी दर सीढ़ी सांद्रित होता चला जाता है। यदि पोषण शृंखला लंबी हो तो इस प्रविधि के कई बार दुहराये जाने से सब से उच्च मांसाहारी में विषालु रसायन की मात्रा अत्याधिक परिमाण में बढ़ जाती है। मनुष्य भी अपने भोजन के लिए पोषण सीढ़ी में ऊंचे स्तर के पशुओं को पसंद करते हैं (देखिए चित्र 11.3)। इससे कुछ मतस्य क्षेत्रों में मछली खाने का मनुष्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है जैसा कि नीचे उदाहरण के तौर पर दिया गया है।

1930 के दशक के अंत में एक बड़े औद्योगिक संस्थान ने जापान में मिनिमाटा खाड़ी के तट पर एक फैक्टरी बहुलीकृत विनाइल क्लोराइड (PVC) और फार्मेल्डीहाइड बनाने के लिए स्थापित की। उप उत्पाद जिसमें पारे के यौगिक मौजूद थे, खाड़ी में विसर्जित कर दिया गया। जैव आवर्धन के द्वारा मछलियों और शंखमीन ने मेथिल मर्करी क्लोराइड नाम के विषालु अपद्रव्य को उच्च मात्रा में इकट्ठा कर लिया। ये मछलियाँ और शंखमीन उस क्षेत्र के निवासियों द्वारा खाये गये। जिन्हें खाकर मनुष्यों ने और भी अधिक मात्रा में विषालु अपद्रव्य को अपने शरीर में जमा कर लिया। एक विचित्र स्थाई रूप से असमर्थता पैदा करने वाला स्नायविक रोग निवासियों में होने लगा। इस रोग को **मिनामाटा बीमारी** कहा जाने लगा। अन्वेषण के द्वारा 1960 में जाकर कहीं इस बीमारी का कारण एक सक्रिय पारे का यौगिक पाया गया।

बोध प्रश्न 7

बताइए कि निम्न कथन सत्य हैं या असत्य। अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

ख) कुछ जीवधारी जो अपने परभक्षी के लिये भोजन बन जाते हैं, अपने शरीरों में बहुत बड़ी मात्रा में विषालु पदार्थों को इकट्ठा कर लेते हैं।

ग) जल में विषालु पदार्थों की उपस्थिति केवल छोटे आमाप वाले जीवधारियों की वृद्धि में सहायक है।

घ) केवल माँसभक्षी ही विषाक्तता के लक्षण दिखाते हैं क्योंकि विषालु पदार्थ केवल उनके शरीर में बहुत अधिक मात्रा में पहुँचते हैं।

ङ) कोई जीवधारी जितने और जैसे दूषित भोज्य पदार्थों को खाता है, उसी के अनुसार उस के शरीर में विभिः प्रकार के विषालु पदार्थ एकत्रित होते हैं।

11.6.3 ताप प्रदूषण

इकाई 3 में आपने ऊष्मागतिकी के नियम और एंट्रोपी के प्रत्यय के बारे में पढ़ा है। ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम बिजली के तापीय उत्पादन पर भी लागू होता है। दूसरे शब्दों में इस नियम के अनुसार उपयोगी कार्य (हमारे माडल में विद्युत ऊर्जा का उत्पादन) बिना ढेर सारी अनुपयोगी ऊष्मा को उत्पन्न किए नहीं हो सकता। बची हुई ऊष्मा अनुपयोगी इसलिए है क्योंकि यह उपयोगी कार्य करने के काम नहीं लाई जा सकती। ताप बिजली घर (थर्मल पावर प्लांट) के उदाहरण में यह प्रक्रिया कोयले के जलाने से आरंभ होती है। ऊर्जा का सांद्रित रूप अवक्रमित हो जाता है और पानी को गरम करने के काम में आता है जो अधिक गर्म किये जाने पर भाप बनता है। अधिक दाब पर पाइप लाइनों में बंद गर्म भाप फिर टर्बाइन चलाने को छोड़ी जाती है जिससे विद्युत उत्पन्न होती है। इस प्रक्रिया में ढेर सारा गर्म पानी बचता है। वास्तव में गर्म पानी भाप के मुकाबले कम सान्द्रित रूप वाली ऊर्जा है जिसकी उपयोगी कार्य करने में कोई क्षमता नहीं है। यह गर्म पानी पारिस्थिति के अनुसार जहां थर्मल पावर प्लांट है, वहीं पास की नदियों, जलधाराओं या समुद्र में छोड़ दिया जाता है। क्योंकि सागरों में ये समस्या गंभीर रूप धारण कर लेती है। इसलिए हम गर्म पानी को सागरों में विसर्जित करने के परिणामों पर चर्चा करेंगे।

जीवाश्म ईंधन व नाभिकीय ऊर्जा इस्तेमाल करने वाले रासायनिक उद्योगों व बिजली घरों में संयंत्रों को ठंडा करने हेतु ढेर सारे पानी का प्रयोग होता है और प्रयोग में लाये पानी को जो उच्चतर ताप पर होता है, नदियों, जलधाराओं और समुद्रों में छोड़ देते हैं। समुद्री जल का फायदा उठाने के लिये ही समुद्री तट के किनारे ये संयंत्र स्थित किये जाते हैं। गर्म पानी के इस प्रकार विसर्जन से समुद्री पेड़-पौधों और जंतुओं में असंतुलन आ गया है। गर्म पानी से तापीय प्रदूषण होता है। जल में घुली ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है जो फिर जलीय जीवन पर बुरा असर डालती है। नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र उत्पन्न की गई ऊष्मा का पचास प्रतिशत तटीय सागर जल में विसर्जित कर देते हैं। खासतौर पर गर्मियों के महीनों में ऊष्ण कटिबंधी पेड़-पौधों और जंतुओं के लिये यह ताप घातक सिद्ध होता है। ताप की इस सीमा के ऊपर थोड़ा सा भी परिवर्तन जीवों के ऊपर ताप संबंधी तनाव का कारण होता है। गर्म लवणीय जल का विसर्जन वायु मंडल के साथ मिल कर तट के दूरवर्तीय भाग की ओर से आने वाली धाराओं को परिवर्तित कर देता है। और उनके आपस में मिलने के ढंग को बदल देता है। उष्ण कटिबंधी क्षेत्रों में जहाँ ज्वार भाटे की रेंज काफी ऊँची है यह परिवर्तन और भी अधिक चिंताजनक सिद्ध होता है।

11.6.4 बहुधात्विक पिंडों का खनन

आपने विज्ञान एवं तकनीकी के आधारभूत पाठ्यक्रम के खंड 5 में समुद्री संसाधन शीर्षक के अंतर्गत अनुच्छेद 17.2.2 में धात्विक पिंडों के बारे में पढ़ा है। भारत, पश्चिमी जर्मनी और अन्य देश प्रशान्त और भारतीय महासागरों के उर्वर क्षेत्र से बहुधात्विक पिंडों के निष्कर्षण और संसाधन की योजना बना रहे हैं। ये आलू के आकार के पिंड समुद्रतलों में 5,000 मीटर की गहराई पर पड़े होते हैं। इनमें 30 प्रतिशत से 40 प्रतिशत मैगनीज (जो स्टील के कुछ मिश्र धातु बनाने में काम आता है) और थोड़ी मात्रा में निकल और कोबाल्ट जैसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक धातु होते हैं। ऐसा सुझाव दिया गया है कि एक बड़े वैक्यूमक्लीनर (चूषकयंत्र) जैसी मशीन विकसित की जाये जो इन पिंडों का गहरे समुद्र के तल से खींच ले और एक लंबे पाइप के द्वारा खनन स्थान के ऊपर स्थित एक जहाज तक पहुँचा दे। पर्यावरण विशेषज्ञ मानते हैं कि ऐसा समुद्री तल पर किया गया खनन भू-पृष्ठ या थल पर किए गए खनन से शायद कम हानिकारक होगा परन्तु उनको इस बात की चिंता है कि समुद्री गहरी परतों को झकझोर देने से इनमें उपस्थित अवसादों के महीन कण निलंबित हो जायेंगे जो समुद्री जीवों के गिल और फिल्टर करने के अंगों को घोंट देंगे। ये प्रक्रिया गहरे समुद्री पोषी शृंखलाओं पर ऐसे अज्ञात प्रभाव भी डाल सकती है जिनका आज तक उद्धरण नहीं हुआ। खनन जहाजों, तैरते प्लेटफार्मों और द्वीपों पर स्थित यूनिटों के द्वारा की गई प्रक्रियाओं से विसर्जित अवसाद से भी समुद्रों का सतही जल प्रदूषित हो सकता है।

संसार के समुद्रों को, भोजन के अक्षय स्रोत और हमारे अपद्रव्यों को अपने में समा लेने वाले और विष रहित करने की असीम सामर्थ्य वाले जल राशि बताया गया है। हाल ही में औद्योगिक कच्चे माल के स्रोत के रूप में उनकी एक उपयोगिता और बढ़ गई है। यह जाहिर है कि इन मान्यताओं की अपनी सीमाएं हैं और मानव जाति उपलब्ध तकनीकी साधनों के द्वारा थल की भांति समुद्र पर भी बहुत भारी क्षति पहुँचाने की क्षमता रखती है। अब तक समुद्री थल के मुकाबले अच्छी दशा में हैं, किन्तु हम भविष्य में उनको अवक्रमित करने की अनुमति

नहीं दे सकते क्योंकि ऐसा मानव समाज के हित में नहीं है। हमें सावधान रहना चाहिए कि समुद्रों की अन्तःशक्ति का उपयोग तो करें परन्तु उनकी कोई पारिस्थितिकीय क्षति न होने दें।

11.7 सारांश

इस इकाई में हमने जल प्रदूषण पर, उसके स्रोतों, प्रकारों और जलीय जीवन पर उसका प्रभावों, के संदर्भ में विचार किया है। हमने सीखा कि :

- जल प्रदूषण का अर्थ है किसी पदार्थ या ताप के आधिक्य का जल में जुड़ जाना जो मनुष्यों, जानवरों या दूसरे वांछित जलीय जीवों के लिये हानिकारक है या फिर जलीय वातावरण के पास या उसमें रहने वाले विविध जीव-समुदायों के साधारण क्रियाकलापों में असुविधाकारी परिवर्तन ला देता है।
- मल जल (वाहित मल या sewage) घरेलू अपद्रव्य, औद्योगिक अपद्रव्य, कृषीय अपद्रव्य और भौतिक प्रदूषक, पृष्ठीय जल प्रदूषण के विभिन्न स्रोत हैं। ये स्रोत किन्हीं नियत स्थानों में सीमित हो सकते हैं या फिर बड़े क्षेत्र के ऊपर फैले हुए हो सकते हैं।
- जैवघाती (कीटनाशी, शाकनाशी, फफूंदनाशी आदि), बहुलीकृत अणु (polymer), प्लास्टिक के अवशेष और अधिस्थानी धातुएँ बहुत से खतरनाक जल प्रदूषकों में से कुछ हैं।
- फॉस्फेट उर्वरकों से अति पोषण होता है, जबकि नाइट्राइट और नाइट्रेट उर्वरक मनुष्यों में गंभीर बीमारियों के कारण बनते हैं। कभी-कभी ये प्रदूषक रिसकर भूमि की गहरी सतहों में पहुँच सकते हैं।
- तापीय प्रदूषण से जल में घुली हुई आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है, जिससे जलीय जीवन पर बुरा असर पड़ता है।
- कभी-कभी तेल वाहक बड़े टैंकर चू सकते हैं, इसके साथ-साथ भारण और स्थानांतरण की क्रिया में हुए तेल अधिप्लाव से सागरों का भी प्रदूषण हो सकता है।
- जल राशियों में अविवेकपूर्ण ढंग से छोड़े गये विषालु यौगिकों का **जैव आवर्धन** एक गंभीर समस्या है जो जलीय पेड़-पौधों और जन्तुओं पर गहरा असर डालती है।

11.8 अन्त में कुछ प्रश्न

1) निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा प्रदूषित जल का वर्णन करने के लिये सब से अधिक उपयुक्त है?

प्रदूषित जल —

क) धुंधला होता है और पीने, नहाने, कपड़े धोने और दूसरे मानवीय क्रियाकलापों के लिए उपयुक्त नहीं होता।

ख) धुंधला होता है, पीने, घरेलू, कृषि, मनोरंजन, मछली पालन और दूसरी क्रियाओं के लिये कम उपयुक्त होता है।

ग) धुंधला होता है, और जलीय जीवन की क्रियाओं में गड़बड़ी करता है।

घ) धुंधला होता है, कभी बुरी गंध देता है, पीने में अच्छा नहीं लगता या जीवधारियों जिसमें मनुष्य भी शामिल हैं, के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है।

2) निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिये स्थान में चार या पाँच लाइनों में उत्तर दीजिए।

क) जब नाइट्रेट (NO_3^-) युक्त जल पीने के काम में लाया जाता है तो इससे मेटहीमोग्लोबिनीमिया नाम की बीमारी हो जाती है।

i) यह बीमारी कैसे होती है?

.....

.....

.....

.....

.....

ii) अपजल के उपचार के कौन से तरीके आपके विचार में ठीक रहेंगे?

.....

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित संक्षिप्ताक्षरों को पूर्ण रूप में लिखिए :
BHC, DDT, PCB, 2, 4-D, 2, 4, 5-T

4) मीठे (अलवणीय) पानी के जलाशयों पर अपमार्जकों (डिटर्जेन्ट) का क्या प्रभाव होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

5) भौम जल प्रदूषण के स्रोतों का तीन या चार लाइनों में वर्णन कीजिए। अपने उत्तर को दिये स्थान में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) i) सत्य ii) सत्य iii) सत्य iv) सत्य
ख) i) असत्य ii) असत्य iii) असत्य iv) सत्य

2) क) i) × ii) √
ख) i) × ii) √ iii) ×

3) क) अतिपोषण

ख) बहुत तेज

ग) प्रचुर, पोषक तत्वों, अत्यधिक, घृणास्पद

घ) पोषक पदार्थ जलाशय में पहुँच कर उसको कार्बनिक अपद्रव्यों में प्रचुर बना देते हैं। इससे जलीय पारितंत्र की उत्पादकता बढ़ जाती है जिससे अतिपोषण की अवस्था आ जाती है। इसके परिणामस्वरूप घुली हुई ऑक्सीजन में कमी आ जाती है और जल, जलीय जीवों की वृद्धि और उनको स्वस्थ बनाये रखने के काबिल नहीं रहता।

ङ) i) अपजल के उपचार से पोषक पदार्थों की सप्लाई को सीमित कर देना।
ii) समय-समय पर एलगी के शैवाल पुंजों को काटकर हटा देना, और
iii) बैक्टीरियों द्वारा बढ़े हुए विघटन से जल में पोषक पदार्थों की मात्रा को कम कर देना।

4) क) रोगाणु (Germ), रासायनिक, असुविधा, मृत्यु
ख) समुद्री
ग) विविधता. प्रक्रिया या क्रियाविधि
घ) जल वाहित या जल से फैलने वाली
ङ) रुधिर प्रवाह
च) मेटहीमोग्लोबिनीमिया

5) i)

कालम "क"	कालम "ख"
क	घ
ख	ग
ग	क

ii) प्राथमिक, द्वितीयक

iii) सत्य, जलाशय की जै.आ.मां. बढ़ जाएगी और अन्ततः वह अतिपोषित हो जाएगा।

6) क) पंजाब, हरियाणा, ऊनी वस्त्र, राजस्थान, भूमिगत जल, कैंसरकारी

7) क) असत्य
ख) सत्य
ग) असत्य
घ) असत्य
ङ) सत्य

अन्त में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1) घ

2) क i) जब ऐसा पानी पिया जाता है तो उसके द्वारा शरीर में गये नाइट्रेट आंतों के बैक्टीरिया द्वारा विषालु नाइट्राइटों में बदल जाते हैं जो फिर हीमोग्लोबिन से संयुक्त होकर मेटहीमोग्लोबिन बनाते हैं। यह रुधिर के ऑक्सीजन धारण करने की क्षमता को बाधित कर देता है जिससे मेटहीमोग्लोबिनीमिया बीमारी हो जाती है।

ii) रसायनिक स्कंदन और निस्पंदन, कार्बन अवशोषण रसायनिक ऑक्सीजन, आयन विनिमय, वैद्युत अपोहर और विलोम परासरण

3) — बैंजीन हैक्साक्लोराइड BHC
— डाइक्लोरो डाइफिनाइल ट्राइक्लोरोईथेन DDT
— 2, 4, — डाइक्लोरोफैनाक्सी एसीटिक एसिड (2, 4-D)
— 2, 4, 5, —ट्राइक्लोरोफैनोक्सी एसीटिक एसिड 2, 3, 5-T

4) मीठे (अलवणीय) जल में फास्फेट युक्त अपमार्जक एलगी की विपुल वृद्धि कराते हैं। जिसके कारण ऑक्सीजन का ह्रास हो जाता है और दुर्गंध आने लगती है। कुछ विघटित होने वाले पौधे जिनमें सड़कर स्ट्रिकनीन जैसे विषालु पदार्थ बनाते हैं जो जंतुओं को (जिनमें मवेशी भी शामिल हैं) मार देते हैं।

5) भौम जल के प्रदूषण का सबसे सामान्य स्रोत कम गहरे सोक पिटों में अनुपचरित सीवेज या मल जल को डालते रहने की बहु प्रचलित आदत है। अन्य स्रोत हैं : अवस्रावण गर्त (seepage pits) कूड़ा कचरा के गढ़े, सेप्टिक टैंक और कुछ कृषीय तथा औद्योगिक प्रदूषक।

इकाई 12 भूनिम्नीकरण

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
12.2 भूनिम्नीकरण
मृदा अपरदन
12.3 भूनिम्नीकरण का कारण
प्राकृतिक
मानव क्रियाएं
भूनिम्नीकरण की सीमा
12.4 भूनिम्नीकरण का प्रभाव
पृष्ठ कटाव तथा बाढ़
मरुस्थलीकरण
पोषकों का अभाव तथा भू-उत्पादकता
मृदा अपरदन की कीमत
12.5 प्रत्युपचार
12.6 सारांश
12.7 अन्त में कुछ प्रश्न
12.8 उत्तर

12.1 प्रस्तावना

इस खण्ड के पूर्व इकाइयों में आप वायु प्रदूषण तथा जल प्रदूषण के बारे में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में हम भूनिम्नीकरण के लिए जिम्मेदार कारकों का अध्ययन करेंगे।

मृदा अपरदन तथा भूनिम्नीकरण सामान्य रूप से संसार तथा विशेष रूप से भारत में विस्तृत पारिस्थितिक संकट उत्पन्न करते हैं। मानव सभ्यता के लम्बे 6000 पुराने इतिहास में ठीक रूप से ही प्रेक्षित किया गया है कि सम्पन्न सभ्यताओं के समाप्त होने के दो कारण थे गाद और नमक और ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि केवल प्राथमिक उत्पादन के लिए भूमि की आवश्यकता नहीं होती बल्कि वह प्रत्येक सामाजिक प्राथमिकता तथा आवश्यक एवं वांछनीय आर्थिक क्रियाओं को भी पूरा करती है।

इस इकाई में, हम भूनिम्नीकरण के प्राकृतिक तथा मानव क्रियाकलापों से उत्पन्न कारणों का वर्णन करेंगे। हम भूनिम्नीकरण के प्रभावों का वर्णन पृष्ठ कटाव तथा बाढ़ के पदों में करेंगे। अन्त में मृदा अपरदन तथा भूनिम्नीकरण से बचाव के कुछ उपाय सूझाए गए हैं।

उद्देश्य

इस भूनिम्नीकरण के पढ़ने के पश्चात, आप

- मृदा अपरदन तथा भूनिम्नीकरण को परिभाषित कर सकेंगे,
- भूनिम्नीकरण के कारणों तथा विशिष्ट अध्ययन प्रदान करने वाले उसके सीमाओं के वर्णन कर सकेंगे,
- भूनिम्नीकरण के प्रभावों के वर्णन कर सकेंगे,
- भूनिम्नीकरण को रोकने के उपायों की रूपरेखा दे सकेंगे।

12.2 भूनिम्नीकरण

मृदा एक जटिल वस्तु है तथा इसको भू-पृष्ठ एवं कार्यकारी मृदा परिच्छेदिका गहराई द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यह भौतिक, रसायनिक तथा जैविक रूप में कार्य करती है। इसलिए, इसके स्वास्थ्य तथा विभिन्न भू-प्रयोगों के लिए इसके उपयोगिता का जांच इन्हीं तीन दृष्टियों से किया जाता है। भारतीय भूमि की उपयोगिता अत्यधिक सीमित है ऐसा शताब्दियों से हो रहे उपयोग के फलस्वरूप इसकी आनुवांशिक उत्पादकता स्तर के कम होने के कारण है। कार्बनिक पूनर्चक्रण तथा पोषकों के निम्न परतों से उत्पादक उच्च परतों में परिवहन द्वारा भूमि उर्वरता का पुनरुत्थान होता है। यह प्रक्रिया सहायक वनस्पति द्वारा समान होती है। सहायक वनस्पति का नियत आवरण

भी भारतीय भूमि के कम उपजाऊ होने का कारण है। ईंधन तथा चारे के अभाव के कारण ऐसा होता है। यहाँ तक कि खेतिहर फसल के अवशेष भी भूमि में समावेशित नहीं हो पाते। गोबर का अधिकांशतः प्रयोग ईंधन के रूप में किया जाता है, साथ ही जंगली ह्यूमस भी उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि वनोन्मूलन लगातार बढ़ता जा रहा है। लम्बे शुष्क मौसम तथा सूखे के कारण पानी का अभाव होना दूसरा कारण है। यह इसलिए है कि जल की पूर्ति सीमित होती जा रही है जबकि पूरे वर्ष के दौरान विभिन्न उद्देश्यों के लिए जल की मांग बढ़ती जा रही है। यद्यपि भारत एक देश के रूप में औसत वार्षिक वर्षा की दृष्टि से खुशहाल है, फिर भी, इसके अधिक भाग में वर्षा बहुत ही कम होती है। वे स्थान जहां प्रचुर वर्षा होती है, वहाँ भी वर्षा का अधिकांश जल बह जाता है तथा दूसरे स्थानों पर बाढ़ की समस्या उत्पन्न करता है। अतः जल का उपयोग करने वाले मानव, तथा जन्तु और पौधे के लिए यह तभी उपलब्ध हो पाता है जब यह भू-पृष्ठ से होकर मृदा परिच्छेदिका में प्रवेश कर जाए। भू तथा जल चक्र के मध्य एक घनिष्ठ संबंध होता है। यह संबंध सभी तरह से और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि पृष्ठ कटाव तथा बाढ़, पोषकों का अवक्षय तथा उत्पादकता में अभाव के मुख्य कारण हैं। अब हम मृदा अपरदन के बारे में अध्ययन करेंगे जो भूनिम्नीकरण को जन्म देने वाली एक घटना है।

12.2.1 मृदा अपरदन

मृदा अपरदन उन सभी भौतिक प्रक्रियाओं को सम्बोधित करता है जो मृदा कणों को शिथिल करते हैं अथवा तोड़ देते हैं तथा जनक सतह से विलगित कणों को विस्थापित करते हैं। अपरदन अधिकतर गुरूत्व के फलस्वरूप भूखण्ड के अस्थायित्व के कारण होता है तथा पृथ्वी संहति (earth mass) में अत्यधिक नमी अथवा जल के कारण संतुलन खो जाता है। अक्सर इसको गुरूत्व अपरदन कहते हैं जैसे कि पतन, स्खलन, अथवा बहाव। भूस्खलन, वेग धारा अथवा नदी अपरदन से विखंडित चट्टान, दूसरे विलगित पदार्थ तथा टूटे हूए भूमि के संहति का बहाव होता है। इसलिए इसको संहति अपरदन (mass wasting) से जाना जाता है। इस प्रकार की प्रक्रियाएं भौतिक हैं तथा इनको भूमि प्रतिरोध के विश्लेषण से समझा जा सकता है। ऐसा प्रतिरोध वर्षा बूंद के प्रभाव तथा अपरदक के बहाव जैसे कार्यकारी बलों के विरुद्ध सँसजन तथा घर्षण के रूप में उत्पन्न होता है। देश के विभिन्न भागों में ऐसे समस्या क्षेत्र का वितरण चित्र 12.1 में दिखाया गया है।

मृदा अपरदन प्राकृतिक प्रक्रियाओं तथा मानव क्रिया कलापों द्वारा सम्पन्न होता है। प्राकृतिक प्रक्रियाओं को

(i) भूवैज्ञानिक अपरदन (Geological erosion) तथा (ii) त्वरित अपरदन (accelerated erosion) में विभक्त किया जा सकता है।

1) भूवैज्ञानिक अपरदन

भूवैज्ञानिक मृदा अपरदन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसकी प्रवृत्ति पृथ्वी के तल को एक समान बनाना है। इस प्रक्रिया की प्रथम अवस्था अपक्षय (weathering) है जिसकी प्रकृति निश्चित रूप से भौतिक रासायनिक है। इससे पदार्थों का विघटन द्वारा, निम्नीकरण होता है। इस प्रक्रिया को उन निश्चित जैविक प्रभावों से सहायता मिलती है जो आगे और विघटन के लिए जिम्मेदार है। इस प्रक्रिया से जटिल भूमि पिंडों का विकास होता है जिनके भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुण होते हैं। इसलिए, भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के रूप में, अपरदन, विभिन्न अपक्षय प्रक्रियाओं से होकर सम्पन्न होता है। आप भूवैज्ञानिक अपरदन का और अधिक अध्ययन खंड 12.3.1 में करेंगे।

2) त्वरित अपरदन

खेती के दौरान, भूमि पर बाहर से अत्यधिक दाब पड़ता है और इसके परिणामस्वरूप वनस्पति आवरण (vegetation cover) तथा जलवायु के मध्य संतुलन बिगड़ जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक साधनों से पृष्ठभूमि के कटाव की दर भूमि निर्माण की दर से अधिक होती है। इन दशाओं में होने वाले अपरदन को त्वरित अपरदन से सम्बोधित करते हैं। इसकी दर तथा परिमाण सामान्य भूवैज्ञानिक अपरदन से अधिक होता है।

अपरदन उत्पन्न करने वाले कारणों के आधार पर अपरदन निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जाता है :

जल अपरदन : जल एक महत्वपूर्ण बल है जिससे मृदा का परिवहन होता है। जल द्वारा अपरदन वर्षा की बूंदों, पानी की धाराओं तथा बर्फ के माध्यम से होता है। वर्षा के जल, जिसमें पिघली हुई बर्फ शामिल हैं, के द्वारा अपरदन को वर्षा बूंद अपरदन (rain drop) कहते हैं। भू-तल पर गिरने वाले वर्षा बूंदों से उन मृदा कणों का विलगन हो जाता है जो बाद में बहते जल के साथ दूर चले जाते हैं। मृदा की एक पतली परत विलगित हो जाती है तथा भू-पृष्ठ पर बहने वाले जल के साथ वह कुछ दूर चली जाती है। इस प्रकार के अपरदन को "धावन" अथवा "परत" अपरदन (sheet erosion) के नाम से जाना जाता है (चित्र 12.2 अ)। परती अपरदन बड़े रूप में भले ही न जाहिर हो परन्तु भूखण्ड का वह भाग जहाँ परती अपरदन होता हैं, प्रत्येक वर्ष उपजाऊ मिट्टी की एक परत खोता रहता है। परती अपरदन की दूसरी अवस्था जिसमें दृश्यभूमि पट अंगुली के समान रिल (rills) प्रगट होने लगते हैं, रिल अपरदन कहलाती है (चित्र 12.2 ब) ये रिल प्रत्येक वर्ष खेती की सामान्य प्रक्रियाओं द्वारा समतल होने लगते हैं। परन्तु प्रत्येक वर्ष रिलों की संख्या, आकृति तथा आकार धीरे-धीरे बढ़ने लगती है।

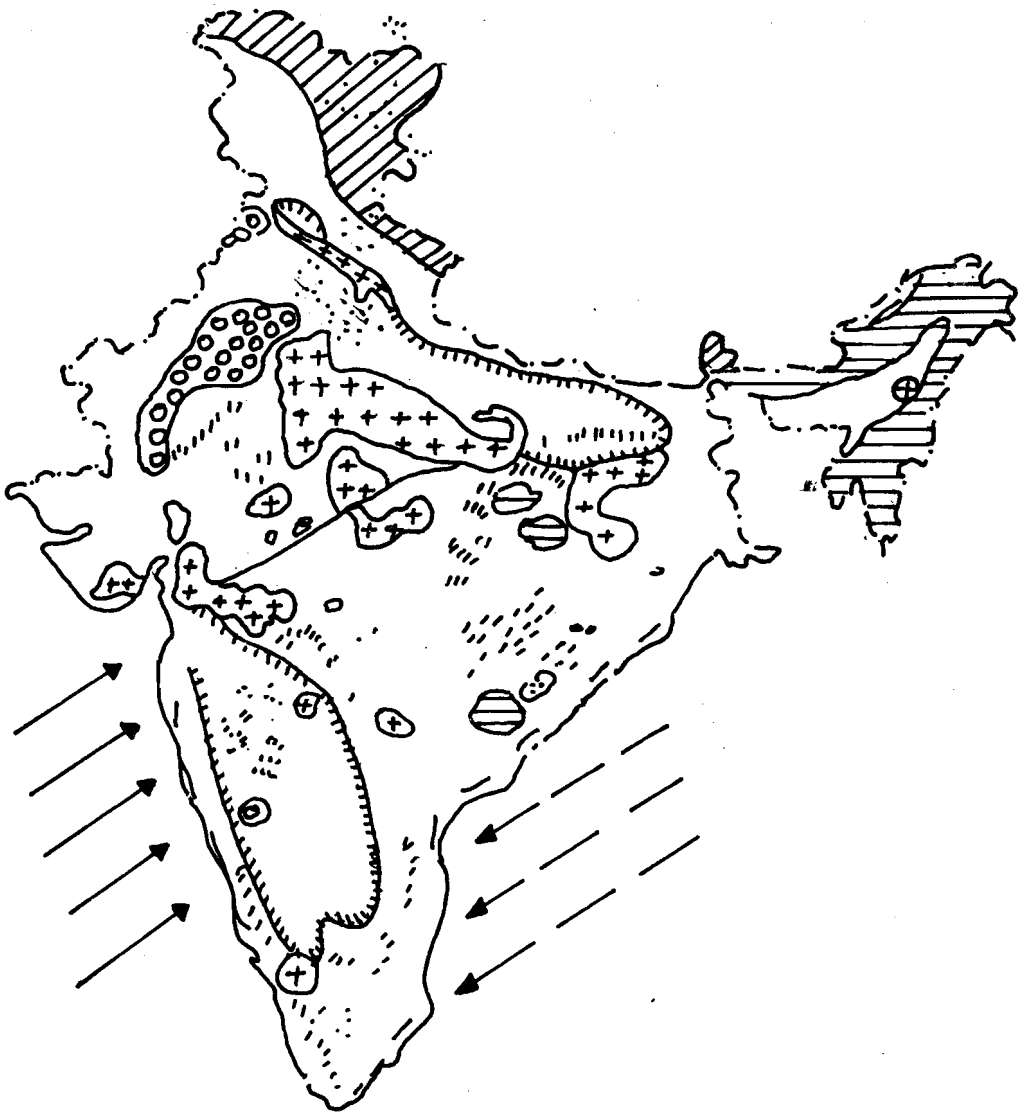

चित्र 12.1 : भारत में मृदा अपरदन (यह मानचित्र राजनैतिक सरहदें नहीं प्रदर्शित करता है)

अवनालिका अपरदन (gully erosion) रिल अपरदन की बढ़ी हुई अवस्था है (चित्र 12.2 स) । नगण्य रिल (छुद्र सरिता) आकार में बढ़ने लगते हैं तथा अवनालिका रूप धारण कर लेते हैं। अवनालिकाएं खेतिहर भूमि के एक बिन्दु पर पृष्ठकटाव से उत्पन्न द्रव्यमान के सांद्रण से भी बनती है। यदि अवनालिकाओं पर नियंत्रण न किया जाए तो वर्षों तक ये फैलते जाते हैं। खड्ड अवनालिकाओं के ही एक रूप हैं। बहते हुए जल के द्वारा सरिता तीर के कटाव को सरिता तीर अपरदन कहते हैं। कुछ निश्चित क्षेत्र का अपरदन जहाँ नदियां तथा नाले अपनी धारा को परिवर्तित करते रहते हैं, अत्यधिक त्वरित गति से होता है। सरिता तीर अपरदन खेतिहर भूमि, सड़क मार्ग, रेलमार्ग तथा पुलों को क्षतिग्रस्त करते हैं।

खड्डे पूरे देश में वर्ष भर में 3000 हैक्टेयर भूमि नष्ट करते हैं जहां खड्ड कटाव क्षेत्रफल का लगभग 0.5% अपरदित हो जाता है। खड्ड अधिकांशतः युमना, चम्बल, साबरमती, माही, गोमती जैसे नदियों के किनारे पाए जाते हैं।

तटीय अपरदन : समुद्री किनारों पर तरंग क्रिया तथा कुछ स्थानों पर समुद्र के बढ़ने के कारण होता है। तटीय अपरदन पर नियंत्रण पाना जल अपरदन के दूसरे प्रकारों की अपेक्षा अधिक कठिन है।

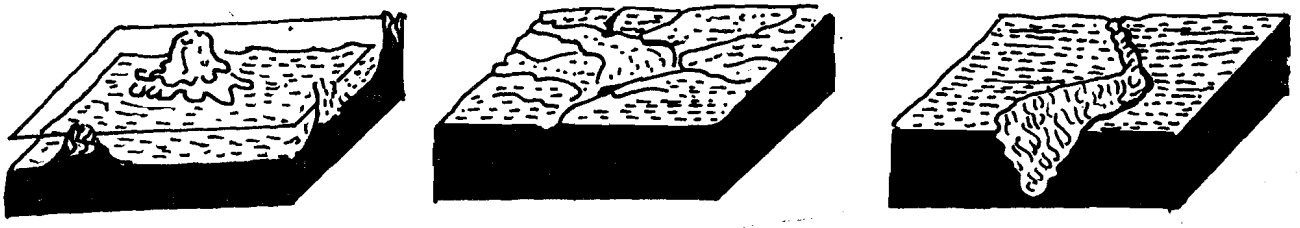

(अ) (ब) (स)

चित्र 12.2 मृदा अपरदन के प्रकार (अ) परत अपरदन (ब) रिल अपरदन (स) अवनालिका अपरदन

वायु अपरदन : वायु द्वारा मृदा अपरदन उन क्षेत्रों में बहुत सामान्य है जहाँ वनस्पति भूमि को ढकने तथा उसको सुरक्षा प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं है। ऐसी दशाएं शुष्क भूमि में तथा समुद्र, झील तथा नदियों के रेतीले किनारों पर होती हैं। बारीक हल्के मिट्टी के कण भूमिसतह से उड़ा लिए जाते हैं तथा वायु द्वारा दूर ले जाये जाते हैं। कई छोटे-छोटे उच्छलनों (short bounces) द्वारा परिवहित मृदा गादन (siltation) कहलाती हैं। छोटे-छोटे मिट्टी के कण निलम्बन के रूप में लम्बी दूरी तक ले जाए जाते हैं। मृदा की ऐसी गति को निलम्बन गति (suspension movement) कहते हैं। वायु के उच्च वेग के परिणामस्वरूप भारी मृदा कण पृथ्वी के सतह पर से ले जाए जाते हैं, इसको पृष्ठ सपर्ण (surface creep) से परिभाषित करते हैं।

रेत वायु के द्वारा लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ती जाती है। और यह रेत खेतिहर भूमि, फलोद्यान, इत्यादि जो भी रास्ते में पड़ते हैं, को ढक लेती है तथा समय के साथ धीरे-धीरे अनुत्पादी हो जाते हैं। इस प्रकार पौधे रेत में धंस जाते हैं तथा हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं। जैसे-जैसे रेत आगे बढ़ती है, रेगिस्तान आकार में बड़े होते जाते हैं।

बोध प्रश्न 1

उपरोक्त शब्दों का प्रयोग करते हुए खाली स्थानों की पूर्ति कीजिए।

अ) इन भौतिक प्रक्रियाओं ..... से संबोधित करते हैं जो विलगित कणों को मूल स्थान से विस्थापित करते हैं।

ब) वर्षा के जल द्वारा मृदा अपरदन की तीन अवस्थाएँ हैं (i) ..... अपरदन, (ii) ..... अपरदन तथा (iii) ..... अपरदन।

स) समुद्री किनारे पर तटीय अपरदन का कारण ..... क्रिया तथा समुद्र का बढ़ना है।

द) गादन, निलंबन गति तथा पृष्ठीय सपर्ण ..... अपरदन की घटनाएं हैं।

12.3 भूनिम्नीकरण के कारण

भूमि का विखंडन प्राकृतिक प्रक्रियाओं तथा मानव क्रियाकलापों द्वारा होता है। आइए हम इन दोनों का संक्षिप्त अध्ययन करें।

12.3.1 प्राकृतिक

मृदा एक जटिल पिंड है। इससे पृथ्वी के पतले बाह्य परत का निर्माण होता है। यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से चट्टानों के खनिज रचकों से विकसित होती है। इस प्रक्रिया की प्रथम अवस्था अपक्षय है जिसकी प्रकृति निश्चित रूप से भौतिक-रासायनिक है। अपक्षय से जटिल पदार्थों का सरलीकरण होता है। जिससे विखंडन द्वारा चट्टान बनते हैं। दूसरी अवस्था में संपिडन की प्रक्रिया द्वारा मृदा का निर्माण होता है। इसकी प्रकृति जैव-भू रासायनिक है। यह प्रक्रिया कुछ निश्चित जैविक प्रभावों द्वारा सम्पन्न होती है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न पदार्थों का संश्लेषण होता है तथा अन्त में भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुण धर्मों वाले जटिल मृदा पिण्डों का निर्माण होता है। अपक्षय की यह प्राकृतिक प्रक्रिया धीमे-धीमे सम्पन्न होती है तथा यह विकास चक्र का एक भाग है।

इस प्राकृतिक अपरदन प्रक्रिया की तीव्रता को अनाच्छादन (denudation) की दर अथवा भू-पृष्ठ के नीचे आने की दर से जाना जा सकता है। अनाच्छादन दर भारत में विशेषकर हिमालय की तराई से अधिक प्रारम्भ तक परिवर्तित

होती है। सतलज तट के लिए इसका मान प्रतिवर्ष 21 मिलीमीटर होता है जबकि दार्जलिंग में यह 20 mm प्रतिवर्ष है। परन्तु सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए इसका सामान्य आकलन प्रतिवर्ष 0.1 से 1 मिलीमीटर के मध्य होता है। अधिकांश प्राकृतिक अपरदन भू-पृष्ठ के उत्थान अथवा ऊपर उठने से उदासीन हो जाता है। आकलित परास 1 मिलीमीटर से 9 मिलीमीटर प्रतिवर्ष है। फिर भी, मृदा क्षति के बारे में उपलब्ध जानकारी, अवसादन दर तथा भारत से प्राप्त दूसरे आंकड़ों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि आकलित उत्थान दर 5 मिलीमीटर प्रति वर्ष से कम है।

वर्तमान समय में आकलित भूवैज्ञानिक अपरदन दर का मान 10 सेंटीमीटर प्रति 1000 वर्ष पाया गया है जो बीते हुए चालीस मिलियन वर्ष के दर से पांच गुना ज्यादा है। हाल के बीते समय के दौरान किसी प्रकार के अप्रायोगिक भू-वैज्ञानिक प्रोत्थान का किसी विस्तृत क्षेत्र में कोई प्रमाण नहीं है जबकि अन्तिम दो या तीन शताब्दियों में जनसंख्या तथा सम्बंधित क्रियाकलापों में काफी बढ़ोत्तरी हुई है जो भू-विखंडन में मानव के मध्यवर्ती भूमिका को बताता है।

12.3.2 मानव की क्रियाएं

सभी प्रकार के जीवों में जो इस पृथ्वी पर रह चुके हैं तथा रह रहे हैं, मानव जाति ने अपने विभिन्न प्रकार के सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक रूपान्तरण किया है। ये हस्तक्षेप करने वाली भूमिकायें बहुमुखी हैं। प्रायः इनका उद्देश्य मातृभूमि से अधिक से अधिक संसाधनों को प्राप्त करना है तथा इस प्रक्रिया में जैव भू-भौतिक तन्त्र को अस्तव्यस्त कर देता है। पृथ्वी द्वारा हानिकारक प्रभावों के सहन करने की क्षमता को कम किया है तथा समुप्रयोजन के कारण हुए अभावों को खत्म करने की पुनर्दभावित योग्यता भी कम हो जाती है। दूसरी तरफ पृथ्वी पर कई विनाशकारी घटनाएं भी हुई जैसे विश्व-युद्ध के दौरान की वे घटनाएं जो इस ग्रह के प्राकृतिक रक्षात्मक व्यवस्थाओं पर गंभीर असर डालती है।

कुछ महत्वपूर्ण प्रभाव निम्न प्रकार है :

अ) वनोन्मूलन
ब) खेती
स) आर्थिक क्रियाएं, खनन, इत्यादि
द) विकास क्रियाएं, बन्दोबस्त, परिवहन तथा संचार

हम भूमि की गुणता पर उनके प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

अ) वनोन्मूलन

वनोन्मूलन की प्रक्रिया में भौतिक रूप से बार-बार लकड़ी का काटना, गिराना, वन ऋण संस्तर को हटाना, पशुओं द्वारा चारण तथा ट्रैम्प, आग लगाना इत्यादि शामिल हैं। 1976 से 1985 के मध्य वनोन्मूलन की जांच से पता चलता है कि भारत में 0.174 मेगाहैक्टेयर जंगल प्रतिवर्ष उन्मूलित किए गए हैं। जैसा कि आप खण्ड 8.31 से जानते हैं कि 1951 से 1972 तक 4 मेगाहैक्टेयर वन विभिन्न उद्देश्यों के लिये नष्ट किए गए हैं।

भारत और नेपाल में विभिन्न प्रकार के अध्ययन से यह सिद्ध हो चुका है कि भोजन, पशुधन तथा आग जलाने के लिए लकड़ी की बढ़ती हुई मांग ही वनोन्मूलन के प्रत्यक्ष कारण है। इस प्रकार के खाद्य पदार्थों के उत्पादन वृद्धि के प्रयास प्रायः असफल हैं तथा प्रायोगिक रूप से वायुमंडलीय वनाश को जन्म दिया है। मृदा अपरदन, भूविखंडन, पोषक तत्वों के अभाव तथा भूमि, पौधे एवं वायुमंडल के मध्य के नाजुक साम्य को सर भूमि तथा अनुपजाऊ भूमि के लम्बे क्षेत्र के रूप में देखा जा सकता है जहाँ कभी हरे पौधे थे।

वन रूपान्तरण (forest conversion) का दूसरा महत्वपूर्ण कारण ईंधन के लिए लकड़ी की मांग है। उष्णकटिबंध के क्षेत्र वाले गाँव की आबादी, पूर्णरूपेण ईंधन लकड़ी पर निर्भर है और यह उनकी ऊर्जा का एक मुख्य साधन है। ऐसा आकलित किया गया है कि गाँवों में आवश्यक ऊर्जा की प्रतिशत मात्रा केनिया में 90%, जाम्बिया में 88% तथा नेपाल, श्रीलंका एवं थाईलैंड में 95% जो ईंधन के रूप में लकड़ी से मिलती है। ईंधन लकड़ी के खपत का आकलित मान औसत खपत 1.5 मीटर^3/कैपिटल/वर्ष के साथ 0.8 से 2.0 मीटर^3/कैपिटल/वर्ष तक परिवर्तित होता है। वनोन्मूलन तब तक जारी रहेगा जब तक कि गाँव वाली आबादी को एक विश्वसनीय तथा सस्ता ईंधन का कोई अन्य साधन उपलब्ध नहीं कराया जाता।

आप इकाई 8 में पढ़ चुके हैं कि भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलूर, नार्थ ईस्ट हिल यूनिवर्सिटी, शिलांग, पर्यावरण अध्ययन केन्द्र, नई दिल्ली तथा दूसरी संस्थाओं द्वारा किए गए हाल के अध्ययन से यह पता चलता है कि वनोन्मूलन की बढ़ती हुई दर के लिये जंगलों में तथा इसके इर्द-गिर्द रहने वाले समुदाय तथा उन व्यक्तिओं को जो महत्वपूर्ण रूप से अपने निर्वाह के लिए वन उत्पादों पर निर्भर हैं, दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। वास्तव में, वन उत्पाद के पारम्परिक प्रवाह का विश्लेषण यह इंगित करता है कि ये लोग जंगल उत्पाद का प्रयोग वन कवच को बिना नुकसान पहुँचाए करते हैं। दूसरी तरफ वन, संसाधन के केन्द्रीकृत व्यवस्था के बावजूद आबादी वाले वनों का अधिकांश भाग समुदाय द्वारा नष्ट कर दिया गया तथा उसे (समुदाय को) अन्य विकल्पों की जरुरत है। इससे

कुछ सीमित क्षेत्र के समुदाय द्वारा त्वरित समुप्रयोजन हो सकता है। वास्तव में, बड़े पैमाने पर वनोन्मूलन जब भी जारी है। ऐसा संसाधनों को प्राप्त करने अथवा स्थानीय समुदाय द्वारा अपने निर्वाह के लिए आवश्यकताओं की मांग को पूरा करने के लिए हो रहा है। वनों और समुदाय के मध्य पारम्परिक सम्बन्ध के स्थान पर बढ़ती हुई असंबद्धता और उदासीनता और व्यापक होती जा रही है। बड़े पैमाने पर वनोन्मूलन के सम्भव पारिस्थितिक प्रभाव अब आर्द्र तथा अर्द्ध आर्द्र कटिबंधीय (subhumid tropics) स्थानों पर पड़ रहे हैं, जिससे संसार के वैज्ञानिकों, वायुमंडल शास्त्रियों तथा योजना बनाने वालों का ध्यान आकर्षित हुआ है।

जलवायु पर स्थानीय तथा ग्लोबीय पर्यावरण परिवर्तनों, तथा भंगुर मृदा संसाधनों के विखंडन का अनुमान लगाने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि भली-भांति सुनियोजित तथा उपयुक्त लम्बे समय के उन अध्ययनों से ठोस आंकड़े एकत्रित किए गए जो वनोन्मूलन के प्रभावों का मात्रात्मक रूप देते हैं। वन रूपान्तरण के कुछ प्रभावों का वर्णन सारणी 12.1 में किया गया है।

सारणी 12.1

वनोन्मूलन तथा उष्ण कटीबंधीय भूमि में गहन कृषि से भूमि एवं सूक्ष्म जलवायु में परिवर्तन

जल विज्ञान चक्र (Hydrologic cycle)
वनस्पति द्वारा अवरोधन में कमी
जल प्रेषण तथा भूमि के धारण लक्षण में कमी
50 सेंटीमीटर गहराई के नीचे की उपभूमि द्वारा जल ग्रहण करने में कमी
वाष्पीकरण में वृद्धि
पृष्ठकटाव में बढ़ोत्तरी
अन्तरप्रवाह घटकों में बढ़ोत्तरी

सूक्ष्म जलवायु (Microclimate)
ताप आयाम में बढ़ोत्तरी
औसत आपेक्षिक आर्द्रता में घटोत्तरी
मृदा पृष्ठ पर पहुँचने वाले विकिरण में बढ़ोत्तरी

ऊर्जा संतुलन (Energy balance)
मृदा ताप के उच्चावचन (fluctuation) में बढ़ोत्तरी
भूमि की उष्मा धारिता में परिवर्तन
प्रावस्था कोण, आवर्तिता तथा अवमदन गहराई में परिवर्तन

मृदा जन्तु एवं पौधे (Soil Flora and Fauna)
वृहद् तथा सूक्ष्म जीवधारियों, विशेषकर केंचुआ के जैविक क्रियाओं में घटोत्तरी
वनस्पति के प्रकार में परिवर्तन
चौड़ी पत्ती वाले पौधों से घास तक तथा बहुवर्षीय से एकवर्षीय तक
जलवायु की चरम अवस्था में परिवर्तन

ब) खेती

मृदा अपरदन तथा जैव विभिन्नता का एक बड़ा कारण बहुउद्देशीय कृषि था जिसके द्वारा मानव का हस्तक्षेप होता रहा। यह उन प्राकृतिक साधनों के साथ हस्तक्षेप करती है जिनसे भू उत्पादकता पुनरुद्भावित होती है तथा उपलब्ध नमी भंडार की पुनः आपूर्ति की जाती है। इस प्रकार की खेती ने मृदा की उत्पादकता का स्वाभाविक रूप से पुनरुत्पादन बढ़ाने और नमी स्रोतों के आपूरण में बाधा पहुँचाई है। जैव रसायनों तथा सिंचाई से मृदा तथा नमी स्रोत दोनों ही दूषित होते हैं। खेतिहर भूमि में होने वाले अपरदनों में सबसे हानिकारक धावन अथवा परती अपरदन हैं। यह धीमे-धीमे सम्पन्न होता है तथा उतना कौतुक्तपूर्ण नहीं होता है। जैसा कि पहले बताया गया है कि ऊपरी अपरदित भूमि के बहाव के कारण रिक्त बनते हैं तथा इसके तुरन्त बाद अवनालिकाएं तथा खड्ड बनते हैं। शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में, रेत के झोंके तथा रेत का स्थानांतरण ठीक उसी प्रकार होता है जिस प्रकार परती अपरदन होता है यही जल मुख्य कर्मक है। परिणामस्वरूप, मरुस्थलीकरण विसर्पी प्रभाव स्थापित हो जाता है तथा लगातार भू उत्पादकता तथा इसके सहायक क्षमता को नष्ट करता है।

पर्वती वक्र भूमि पर अनियंत्रित कृषि जिसमें किसी प्रकार का भू उपचार जैसे बंध बनाना, वेदना, खाई खोदना जैकेट बनाना, रिवेट लगाना इत्यादि नहीं किये जाते हैं तो उस भूमि में पोषकों की कमी हो जाती है। इसी प्रकार आबादी बढ़ने के कारण एक ही भूमि पर बार-बार फसल उगाने से अथवा सीमान्तीय तथा उपसीमान्तीय भूमि पर अत्यधिक कृषि के कारण प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की पूर्व रूप में लाने तथा अपरदन से भूमि को बचाने के लिए बहुत कम समय मिलता है। स्थानांतरित कृषि (shift cultivation) वाले क्षेत्रों में आबादी का दबाव खाली चक्र को बहुत कम करता है तथा इस प्रकार यह पौधों की अनेक जाति जो बहुपक्षीय जंगल में होती हैं, के प्राकृतिक पूनरुद्भाव को रोकता है। दूसरी तरफ पशुओं की बढ़ती हुई संख्या जिसमें भटकने वाले जानवरों के अतिरिक्त बकरी तथा भेड़ विशेष रूप से शामिल हैं। घटती हुई सामुदायिक भूमि तथा अन्य चरागाहों की भूमि को अधिकाधिक चरते जा रहे हैं। इसका सबसे बड़ा परिणाम अपरदन में बढ़ोत्तरी तथा पौधों की वृद्धि में घटोत्तरी है।

स) आर्थिक क्रियाएं

समुदाय भूमि के अतिरिक्त, खनिज, धातु तथा जीवाश्म ईंधन दूसरे प्रकार के प्राकृतिक संसाधन हैं जिनपर समाज अपने ऊर्जा की आवश्यकता तथा दूसरे प्रकार की क्रियाओं के लिए आश्रित है। ऐसे प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण के लिए वनोन्मूलन तथा दृश्यभूमि में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है, जिनसे प्राकृतिक भूमि संसाधन आधार में अनुत्क्रमणीय परिवर्तन होता है। खान वाले क्षेत्र तथा खानं अपाशिष्ट, अपरदन तथा भूविखंडन के बड़े स्रोत हैं, जिनके साथ-साथ जल संसाधन तथा भू उत्पादकता में अत्यधिक कमी होती है। अधिक गहराई से खनन जैसे तेल, गैस इत्यादि के कारण अवतलन तथा इससे संबंधित अपरदन होता है। इकाई 7 में आप पहले ही अध्ययन कर चुके हैं कि अत्याधिक खनन के कारण भू-गुणता घट जाती है।

द) विकास कार्य

मानव समाज के लिए अनेक सामाजिक प्राथमिकताए हैं जैसे रहने का आवास, परिवहन, संचार, मनोरंजन इत्यादि। इन सभी कार्यों के लिए, भूमि तथा भूमि पर आधारित सामग्री आवश्यक हैं। मानव बस्ती मृदा तथा भूखण्ड के लिए एक बड़ी विभीषिका है क्योंकि किसी भी विकास में निर्माण के दौरान त्वरित अपरदन होता है। परिणामस्वरूप बस्तियों के कारण भूखण्ड सिर्फ अनुत्क्रमणीय अनुपजाऊ प्रयोग के लिए ही रह जाता है। सड़क, रेल, इत्यादि को सीध में लाना होता है जिसमें उनको प्रकृति में उपस्थित पर्वत श्रेणी, घाटी, झरना तथा नदियों को काटते हुए पार करना पड़ता है।

ऐसी सुविधाओं के निर्माण के लिए बड़ी चट्टानों तथा बड़े क्षेत्रों में मृदा को हटाना पड़ता है जिससे बहुत ज्यादा अपरदन होता है और प्राकृतिक अपवाह तंत्र नष्ट हो जाता है। इस कारण जगह-जगह पानी इकट्ठा हो जाता है जिससे भूस्खलन तथा फिस्लन हो जाती है।

12.3.3 मृदा अपरदन की सीमा

मृदा अपरदन की सीमा के लिए पूरे देश का न तो कोई विस्तृत सर्वेक्षण ही किया गया और ना ही कोई ऐसा तेज सर्वेक्षण किया गया जो देश के किसी यथार्थ सीमा तक अपरदन को बता सके। 15 वर्ष पहले तक विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध सूचनाओं को एकत्रित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था तथा इसको दूसरे सांख्यिकी से सहसम्बंधित करने का भी प्रयास नहीं किया गया जिससे देशभर में भूमि से संबंधित विभिन्न समस्याओं के विस्तार का परीक्षण निर्धारित होता हो। 1970 के प्रारम्भ में, राष्ट्रीय कृषि आयोग (National Commission on Agriculture) ने देश भर में एक अभ्यास किया जिससे यह इंगित होता है कि लगभग 175 मेगाहैक्टेअर अथवा देश के भौगोलिक क्षेत्रफल का 53% भाग विभिन्न प्रकार के मृदा अपरदन तथा भूनिम्नीकरण की समस्या से ग्रसित है। देश के विभिन्न भागों में फैले अपरदन समस्या को चित्र 12.1 में प्रदर्शित किया गया है।

आइए हम दो उदाहरणों (case study) का अध्ययन करें। एक उदाहरण भारत का है तथा दूसरा अमेरिका का। दून घाटी एक सुन्दर स्थान है जहाँ विभिन्न प्रकार के पौधे तथा जीव-जन्तु पाये जाते हैं। यह एक तरफ से शिवालिक तथा हिमालय से घिरा है और दूसरी तरफ गंगा तथा यमुना से घिरा है। परन्तु आजकल यह सुन्दर घाटी में खतरा है कि यह बर्बाद हो रही है क्योंकि वहाँ से चूने के पत्थर अनियंत्रित ढंग से निकाले जाते हैं तथा वहाँ वनोन्मूलन भी जारी है। घाटी में पेड़ आवरण केवल 12% है जबकि सरकारी तौर पर 60% की संस्तुति है। दून घाटी मानव क्रियाओं जैसे खान खोदने तथा वनोन्मूलन के कारण होने वाले अपरदन का एक अच्छा उदाहरण है। पर्यावरण विभाग की रिपोर्ट के अनुसार खान के मलवे को नदी तथा नालों में गिरा दिया जाता है जिससे पानी के बहाव में बाधा उत्पन्न होती है तथा सिंचाई की आपूर्ति प्रभावित होती है।

पुनश्च, चूने के पत्थर वाले क्षेत्र कई वर्षों तक जल को इकट्ठा करने रोकने तथा छोड़ने के साधन के रूप में कार्य करते रहे। सभी महत्वपूर्ण नदियां तथा झरने जैसे यमुना, बिन्दल, सोंग, सुसवा तथा सहस्त्रधारा इत्यादि इसी क्षेत्र से प्रारम्भ होती है जहां चूने के पत्थर के निक्षेप उपस्थित हैं। चूने के पत्थर की खुली खान वनोन्मूलन में सहायक हुई है तथा चरागाह में कमी हुई है। चूना निकालने की प्रक्रिया से वन तथा प्राकृतिक झरने नष्ट हुए हैं तथा उस क्षेत्र में अत्यन्त हानिकारक पारिस्थितिक उत्पन्न हुई है। खनन प्रक्रियाएं पहाड़ियों को कमजोर करती हैं जिससे भूस्खलन होता है तथा नदियों में गाद की समस्या बढ़ती जाती है।

सरकार द्वारा किये गये कई लागत-लाभ विश्लेषण यह बताते हैं कि यदि उस क्षेत्र में सभी प्रक्रियाएं बन्द कर दी जाती तब भी चूने पत्थर उद्योग को नुकसान नहीं होगा। इसीलिए सरकार को एक कानून बनाकर घाटी को पारिस्थितिक भंगुर क्षेत्र (Ecologically Fragile Zone) घोषित कर सकती है। उपरोक्त केस स्टडी में आप समझ चुके हैं कि खनन कैसे अपरदन को बढ़ाते हैं तथा भू-उत्पादकता को नष्ट करते हैं।

अब हम यह अध्ययन कर सकते हैं कि कृषि कार्य कैसे भूमि, किसान तथा उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। हालाँकि इसी से संबंधित मुद्दा यह है कि कृषि प्रदूषण कैसे अकृषीय पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करते हैं। जब खेतों से मृदा का अपरदन होता है तो केवल खेत ही नहीं बल्कि वायु भी धूल से भर जाती है तथा गाद झरनों

में एकत्रित हो जाता है। विभिन्न पोषक तत्वों के अतिरिक्त कीटनाशक पदार्थ भी झरनों में गिरते रहते हैं तथा सप्लाई किये गये भौम जल में निक्षालित हो जाते हैं। कुछ कृषीय क्षेत्रों में कुएं के जल में नाइट्रेट की इतनी अधिक सांद्रता होती है कि वह पीने के अयोग्य होता है। इसलिए अच्छी तरह समझने के लिए, हम संयुक्त राज्य अमेरिका में की गई केस स्टडी नीचे प्रस्तुत करते हैं।

प्रारम्भिक यूरोपी निवासियों को अमेरिका में कई मिलियन हैक्टेयर ऐसी भूमि मिली जहाँ पहले कभी खेती नहीं हुई थी। पूर्वी तट में सघन जंगल लगे थे तथा इस प्रकार यह स्वाभाविक ही था कि उन्होंने पश्चिम में खेती करने का निश्चय किया। यहां की मिट्टी चट्टानरहित, पेड़रहित, चौड़ी, आसानी से जुताई करने, बोने तथा फसल काटने योग्य थी जो उनको आकर्षित कर गई। 1889 में, ओकलामा प्रदेश घर बनाने के लिए खुला। उसके थोड़े ही हफ्ते बाद, गैर-भारतीय आबादी लगभग शून्य से 60,000 तक हो गई। 1900 तक आबादी 390,000 हो गई। फिर भी 20 से 35 वर्ष पश्चात्, अनुचित ढंग से खेती करने की क्रिया से मृदा की उत्पादकता घटने लगी। उर्वरकों का कम प्रयोग — मृदा का वायु तथा जल अपरदन द्वारा अपना प्रभाव दिखाने लगे। अन्त में जब सूखा पड़ा तो बीज अंकुरित नहीं हो सके और बर्बाद हो गए। 1934 में, गर्म हवा पूरे देश में चली तथा ऊपरी मृदा को उड़ा ले गई। यहाँ तक की उसका कुछ भाग धूल के रूप में 1300 कि.मी. पूर्व दूर अटलांटिक महासागर में उड़कर जा पड़ा। सब मिलाकर 3.5 मेगाहैक्टेअर भूमि नष्ट हो गई तथा इसके अतिरिक्त 30 मेगाहैक्टेअर भूमि की उत्पादकता बहुत अधिक से कम हो गई। आज भी खतरनाक वायु अपरदन जारी है तथा कुछ कृषि शास्त्रीयों को यह भय है कि दूसरा बड़ा धूल से भरा अनउपजाऊ क्षेत्र बन रहा है।

बोध प्रश्न 2

यह बतायें कि निम्न कथन गलत हैं अथवा सही :

अ) प्राकृतिक साधनों की तुलना में मानव के हस्तक्षेप से मृदा को बहुत अधिक नुकसान पहुँचा है। यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि अप्रयोगिक भूवैज्ञानिक प्रोत्थान का बीते हुए समय में विस्तृत क्षेत्र में अभाव रहा है जबकि मानव क्रियाएं इस काल में असंमुखी अनुपात में मानी गई है।

ब) वनोन्मूलन के बढ़ते हुए दर के लिए जंगल में रहने वाले उस समुदाय को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है जो अपने निर्वाह के लिए इस पर निर्भर हैं बल्कि इसके वे दोषी हैं जो जंगलों को बाहर की आपूर्ति के लिए इसको काटते हैं और अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं जैसे ठेकेदार।

स) रेतीले जमीन पर सतत खेती करने तथा सीमांत भूमि पर जुताई बुआई से इतना बीच का अवकाश नहीं पड़ता कि पारिस्थितिक तंत्र भूमि की उत्पादकता को पुनः पूर्व रूप में ला सके।

द) मकान, सड़क, रेल, पुल, बांध इत्यादि के निर्माण से पृथ्वी पर भार का स्थानांतरण हो जाता है। इससे बड़े क्षेत्र में भूस्खलन तथा भूसर्पण होता है।

12.4 भूनिम्नीकरण का प्रभाव

मृदा अपरदन भूनिम्नीकरण की एक सबसे अधिक विनाशकारी घटना है। इससे न केवल जल तथा पादप पोषकों की ही बरबादी होती बल्कि अन्त में स्वयं मृदा ही समाप्त हो जाती है, जो बदले में फसल की उपज को प्रभावित करती है। झरनों तथा नदियों के पेंदों में मृदा जाकर जम जाती है जिससे उसकी जल को ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है जो बाढ़ को जन्म देती है। हम भूनिम्नीकरण के प्रभावों पर एक-एक करके विचार करेंगे।

12.4.1 पृष्ठ कटाव तथा बाढ़

पृष्ठ कटाव के कारण अधिकांश मृदा नष्ट हो जाती है। आइए हम यह समझें कि पृष्ठ कटाव का अर्थ क्या है। किसी क्षेत्र का वर्षण या वर्षा जो क्षेत्र से धारा जलमार्ग द्वारा विसर्जित होती है, बिना मिट्टी में प्रवेश किये नष्ट हो जाती है इसको पृष्ठ कटाव कहते हैं। पृष्ठ कटाव भूमि में जल का अन्तःस्रवण कम करता है या बिल्कुल रोक देता है। कटाव का स्तर क्षेत्रों से क्षेत्रों तक तथा भूमि से भूमि तक परिवर्तित होता है। कुछ अपद्र प्रभागों में, ऐसा नुकसान इतना अधिक होता है कि यह वार्षिक वर्षा का 50-60% तक हो जाता है। जबकि वार्षिक कटाव से नुकसान अर्द्ध शुष्क तथा शुष्क क्षेत्रों में बहुत कम होता है, उच्च दर की क्षति उन क्षेत्रों में आने वाली बृहद् आंधियों के दौरान असामान्य नहीं है। कटाव से अवसादन (sedimentation) तथा बाढ़ में भी बढ़ोत्तरी होती है।

भारत में बाढ़ की समस्या का क्रोड सिन्धु-गंगा के बेसिन में है जहाँ 60 मेगाहैक्टेअर उपजाऊ भूमि प्रभावित होती है तथा पूरे देश में बाढ़ से प्रभावित होने वाले कुछ क्षेत्र का 60% भाग इसी प्रकार बनता है। यह बेसिन भारत के 40% आबादी तथा संक्रिय उद्योगों की सहायता करती है तथा ये देश के खनिज संसाधनों को प्रदान करती हैं। दूसरी तरफ, ब्रह्मपुत्र बेसिन इस तथ्य के कारण महत्वपूर्ण है कि वहां बार-बार बाढ़ आती है जिससे कि विकास

के कार्यों को गंभीर रूप से प्रभावित होना पड़ता है। यह जानना रोचक होगा कि सिंधु गंगा के बेसिन में बाढ़ आने के कारण केवल अत्यधिक वर्षा का होना तथा पहाड़ी पर बर्फ का पिघलना ही नहीं है बल्कि इसका कारण गंगा के दाहिने किनारे की सहायक भूमि द्वारा उपयुक्त समय में पानी के निकास की अयोग्यता तथा बृहद् क्षारीय क्षेत्र द्वारा वर्षा के जल को अवशोषित तथा प्रयोग करने की अयोग्यता भी हैं।

कम समय में ही यदि असामान्य भारी वर्षा हो तो उसके कारण बाढ़ आ जाती है। फिर भी, मानव के विभिन्न हस्तक्षेप करने वाले क्रियाकलापों के कारण भू-पृष्ठ तथा मृदा परिच्छेद द्वारा वर्षा के जल का अवशोषण, अवरुद्ध तथा उपभोग करने की क्षमता बुरी तरह प्रभावित होना है तथा अन्तराप्रवाह हो जाना भी मुख्य सहयोगी कारक हैं।

12.4.2 मरुस्थलीकरण

मरुस्थलीकरण सामान्यतया देश के शुष्क भूखण्ड से सम्बंधित एक समस्या है। जबकि जल प्रतिबल तथा सूखे का प्रभाव शुष्क रेगिस्तान, अर्द्धशुष्क तथा कम वार्षिक वर्षा वाले बड़े क्षेत्र में पड़ता है, उत्पादकता के अतिरिक्त अच्छे स्वच्छ वातावरण की समस्या के विवेचनात्मक रूप को देखना होगा। मरुस्थलीकरण की सबसे बड़ी समस्या है। भूमि की जैविक उत्पादकता का निम्नीकरण जिससे अन्ततः मरुस्थल का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पूरे पारिस्थितिक तंत्र का ह्रास होता है जिससे पादप और जन्तुओं की हानि होती है।

वायु अपरदन तथा शुष्क परिस्थितियों के क्षेत्र अनुमानतः 38.73 मेगा हैक्टेयर है जिसमें 7.03 मेगा हैक्टेयर ठंडा मरुस्थल शामिल है। गर्म मरुस्थली और शुष्क क्षेत्र भारत में सात प्रदेशों में बिखरे हुए हैं जो निम्न प्रकार से हैं : राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, आंध्र प्रदेश, कर्नाटका और महाराष्ट्र। मृदा की अपरदन क्षमता जब तेज हवाओं और कम हुई वनस्पति आवरण के साथ मिल जाती है तो उस क्षेत्र में जहाँ मरुस्थलीकरण प्रारंभ हो चुका है वहां ज्यादा निम्नीकरण होने लगता है। फिर भी मरुस्थलीकरण के फैलने का ज्यादा खतरा वहां नहीं रहता।

आपने इकाई 7 में मरुस्थलीकरण के कारणों और प्रभावों के बारे में पहले ही विस्तार से पढ़ा है। अब हम उत्पादकता पर भूमि के निम्नीकरण के प्रभावों के विषय में विचार करेंगे।

12.4.3 पोषकों की हानि और भूमि उत्पादकता

मृदा अपरदन का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव है मृदा का पानी के साथ बह जाना। भारतीय उपमहाद्वीप अनुमानतः 6000 मेगाटन मृदा एक साल में नष्ट होती है। अपरदन के कारण समुद्र में 5 मिलीमीटर मृदा समाहित होती है। अपरदित मृदा अपने साथ अनेक महत्वपूर्ण पोषक तत्व भी ले जाती है। जो हमेशा के लिये समाप्त हो जाते हैं। मुख्य पादप पोषकों (NKP) के रूप में हर साल इस प्रकार का नुकसान 5.37 से 8.4 मेगाटन होता है।

अनेक पोषकों का पृष्ठ कटाव तथा निक्षालन के दौरान नष्ट हो जाते हैं। वे भाग जहाँ जल अन्तःस्रवण उच्च होता है, निक्षालन की मात्रा भी उच्च होती है। मृदा गुणधर्मों का पोषक निक्षालन अभाव पर भी एक निश्चित प्रभाव पड़ता है। दुमट मिट्टी की अपेक्षा रेतीली जमीन में पोषकों का अभाव अत्यधिक होता है ऐसा रेतीली जमीन में अन्तःस्रवण की दर के उच्च होने तथा पोषकों के अवशोषण की क्षमता के कम होने के कारण होता है। इस प्रकार, रेतीली भूमि में ऊपरी सतह में पोषकों का अभाव वायु अपरदन तथा तीव्र निक्षालन के कारण भी होता है।

बहुपक्षीय जंगल के अतिरिक्त, किसी भी प्राथमिक उत्पादन तंत्र के अन्तर्गत गहन भूप्रबन्ध से भूखण्ड की उपादियता समाप्त हो जाती है। कार्बनिक स्रोतों द्वारा ऊर्जा के नुकसान की वापसी के लिए निश्चित सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न तरीकों से होने वाले मृदा अपरदन तथा परिच्छेदिका के भौतिक क्षमता तथा ठोस, जल, वायु अनुपात एवं रासायनिक तथा जैविक संतुलन के पदों में वायुमंडल को प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में, ये पौधों के लिए पोषकों तथा जल की उपलब्धता को कम करते हैं तथा अन्त में भूमि की उत्पादकता समाप्त हो जाती है।

किसी क्षेत्र के सक्रिय जनसंख्या सहायक क्षमता का अध्ययन यह इंगित करता है कि सतत मृदा अपरदन से क्षेत्र का लगभग 33% हिस्सा उत्पादकता की दृष्टि से महत्वहीन हो जाता है : जबकि ऐसे अपरदित क्षेत्र में उत्पादन लगभग 36% से नीचे गिरता है। इसलिए भारत सहित 16 देशों में सिंचित जमीन की कुल उत्पादकता के बढ़ने के बावजूद भी जैसा कि अध्ययन से पाया जाता है कि हमारे देश की कुल उत्पादकता लगभग 12% कम होने वाली है।

जब अनुमेय मृदा ह्रास के आधिक्य में 12 (टन/हैक्टेयर/वर्ष) मृदा संरक्षण को लागू किया जाता है तो भूमि की उत्पादकता गिर जाती है तथा फिर अंत में शून्य हो जाती है। भूमि को आठ उत्पादकता वर्ग में बाँटा जा सकता है। वह वर्गीकरण उसकी जुताई तथा संरक्षण की आवश्यकता के अनुसार किया गया है।

1. खेती के लिए उपयुक्त
2. अच्छे मृदा प्रबन्ध पद्धति की आवश्यकता
3. मध्यम संरक्षण पद्धति की आवश्यकता

4. गहन संरक्षण पद्धति की आवश्यकता
5. खेती के लिए अनुपयुक्त
6. प्रयोग के लिए किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है
7. प्रयोग में सामान्य प्रतिबंध तथा
8. प्रयोग में गंभीर प्रतिबंध

प्रथम वर्ग की मृदा चिपटी अथवा लगभग चिपटी होती है। वह कृषि के लिए उपयुक्त होती है परन्तु इनमें भी कुछ संरक्षण पद्धति की आवश्यकता होती है। II, III, तथा IV, इस प्रकार के भूमि के लिए कृत्रिम उर्वरक की आवश्यकता होती है, किन्तु संरक्षण प्रबन्ध के विशेष उपायों को भी साथ में लेना चाहिए। वर्ग V, VI, VII, की भूमि चरागाह अथवा जंगली भूमि होती है जिनमें प्रयोग की भिन्न-भिन्न सीमाएं होती हैं। आठवें वर्ग की भूमि जंगली जीवन तथा मनोरंजन के लिए उपयुक्त होती है। सारणी 12.2 मृदा अपरदन तथा दीर्घकाल में भूमि उत्पादकता में होने वाली गिरावट के मध्य संबंध प्रस्तुत करती है।

सारणी 12.2

मृदा अपरदन की दर तथा भू उत्पादकता में दीर्घकालीन गिरावट के मध्य संबंध

मृदा ह्रास की दर (टन प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष)	पूर्वानुमानित दीर्घकालीन उत्पादकता ह्रास
12 से कम	भू-उत्पादकता में कोई परिवर्तन नहीं
12-15	अत्यधिक उत्पादक भूमि का पचास प्रतिशत उत्पादक भूमि में परिवर्तित हो जाती है तथा शेष अपरिवर्तित रहती है।
50-100	सभी उत्पादक भूमि का 100% एक उत्पादक वर्ग से नीचे आ जाती है।
100-200	सभी उत्पादक भूमि का 50% अनुपयुक्त भूमि (अनुत्पादक भूमि) में परिवर्तित हो जाती है, शेष एक उत्पादक वर्ग के नीचे आ जाती है।
201 से अधिक	उत्पादक भूमि की सब सीमाएं अनुपयुक्त भूमि (अनुपजाऊ भूमि) में परिवर्तित हो जाती है।

12.4.4 मृदा अपरदन की कीमत

मृदा अपरदन विश्व में आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक विनाशकारी घटना है। इससे केवल अपरदित भूमि की उत्पादकता ही नष्ट नहीं होती बल्कि अपरदित मृदा उत्पादक भूमि तक पहुँच जाती है जो अपनी उत्पादकता खो देते हैं। मरुस्थल का प्रसार एक अच्छा उदाहरण है। फसली भूमि की वह उत्पादकता जो वार्षिक तौर पर नष्ट हो जाती है, सारणी 12.3 में दी गई है।

सारणी 12.3

भूमि उत्पादकता का वार्षिक नुकसान (भारत में)

	स्रोत		नुकसान हैक्टेयर/वर्ष
1)	**भूमि उत्पादका का वार्षिक नुकसान**		
	अ) उत्पादक भूमि में अवनलिकाओं तथा खड्डों द्वारा अतिक्रमण		8,000
	ब) कृष्य भूमि जो उत्पादन के लिए अनुपयुक्त हो जाते हैं		22,50,000
	स) बस्तियों की ओर झुकाव, कस्बा, शहर इत्यादि		15,00,000
	द) (1953-1988) के लिए बाढ़ से औसत विनाश		38,20,000
	खनन क्रियाकलापों से नुकसान जैसा कि 1989 में हुआ था		500
		योग	75,78,500
	वर्ष 2000 ए.डी. तक 1440 हैक्टेयर/वर्ष बढ़ सकता है		
2)	**वनभूमि का निम्नलिखित द्वारा नुकसान**		
	अ) सही उद्देश्यों के लिए वनोन्मूलन		1,47,000
	ब) स्थानांतरित जुताई के अंतर्गत आस्फालन तथा आग लगना		1,00,000
	स) आज तक बांध तथा भंडार में जल प्लावन		12,500
		योग	2,59,500
		कुल योग	78,38,000

इस प्रकार कुल 7.84 मेगा हैक्टेयर भूमि को आकलित किया गया है जो उत्पादकता की दृष्टि से बुरी तरह प्रभावित है। कुछ में, नुकसान अनुत्क्रमणीय है जबकि दूसरों में यह धीमे-धीमे होती है तथा नुकसान को पुनः संचयित किया जा सकता है। फिर भी, हम उसकी विवेचना कुछ उदाहरणों के साथ करेंगे।

खड्डों तथा अवनालिकाओं के बढ़ने के कारण उपजाऊ भूमि का अभाव अधिकाशतः आदेशी भूमि में होता है। इनका कम से कम 50% उच्च उत्पादक फसली भूमि है, प्रत्येक हैक्टेयर की कीमत 1000-2000 रुपये के मध्य आती है। यदि वार्षिक रूप से अभावग्रस्त 8000 हैक्टेयर भूमि के आधे की औसत कीमत 15000 रुपए है तो कुल नुकसान $4000 \times 15000 = 60 \times 10^6$ अथवा 60 मिलियन रुपए/वर्ष होगी। कोयला खान के कारण यह मान 500×10^4 अथवा 5 मिलियन रुपए प्रतिवर्ष आता है।

सबसे ज्यादा क्षति बाढ़ के द्वारा हुई है जो औसतन वर्ष 1953 तथा 1988 के बीच के समय के लिए सभी नुकसानों जैसे खेतिहर, भूमि; वन-जीवन, जानवर तथा उत्पादकता को मिलाकर 886 करोड़ रुपये है। 1000 रुपये/हैक्टेयर की दर से 3.82 हैक्टेयर/प्रतिवर्ष की औसत खेतिहर भूमि की आर्थिक क्षति 3820 रुपये या 382 करोड़ रुपये हैं।

मृदा अपरदन का एक सबसे अधिक विनाशकारी परिणाम विभिन्न जलाशयों का अवसादन है। 5344 मेगाटन अपरदित पदार्थ का 480 मेगाटन भारत के विभिन्न जल भंडारों में निक्षेपित होकर समाप्त हो जाते है जिससे जल भंडारों की सिंचाई तथा जलशक्ति क्षमता कम हो जाती है। भंडार अवसादन के पदों में अपरदन की वार्षिक कीमत को कम से कम 10000×100 मिलियन अथवा 1000000 रुपए (1 मिलियन प्रतिवर्ष) आंकी गई है। अपरदित भूमि से अधिकांश पादप पोषक जैसे — नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पौटेशियम (NPK) बाहर निकल जाते है जिसको 5.37 से 8.4 मेगाटन के मध्य आकलित किया गया है। यद्यपि आकलन अधिक बदलते रहते हैं, फिर भी सम्पूर्ण नुकसान उर्वरक के उस भाग के बराबर है जिसका प्रयोग देशभर में किया जाता है। प्रतिवर्ष लगभग 0.03 किलोग्राम/हैक्टेयर और पोषक अपरदन से और कई चीजों का नुकसान होता है, उनके आर्थिक मान को निर्धारित करना कठिन है। ये निम्न प्रकार हैं,

1) चरागाह तथा चारा उत्पादन में कमी, लकड़ी के उत्पादन में बढोत्तरी
2) वनस्पति तथा जन्तुओं के प्राकृतिक जातियों का अभाव होना तथा उसके परिणामस्वरूप जैव विभिन्नता में घटोत्तरी
3) जल संसाधन में कमी के कारण झरने एवं नाले सूखने लगते हैं तथा कुंओं में जलस्तर नीचे गिरने लगता है।
4) भौतिक रासायनिक तथा जैविक विखंडन के अलावा वायु अपरदन अथवा जल अपरदन के कारण भूमि का ह्रास होने लगता है, तब वहां रोजगार के अवसर भी कम होने लगते हैं। इसके कारण मानव शहरों तथा कस्बों में चले जाते हैं तथा अनियोजित शहरीकरण से संबंधित समस्याएं पैदा होती हैं।

इस प्रकार मृदा अपरदन की कीमतों में मानव महत्व के विभिन्न घटक शामिल हैं।

बोध प्रश्न 3

रिक्त स्थानों को उचित शब्दों द्वारा भरिए :

अ) यह आकलित किया गया है कि कुल 7.84 मेगाहैक्टेयर भूमि की उत्पादकता विभिन्न मानव क्रियाओं से बुरी तरह प्रभावित होती है। सबसे गंभीर नुकसान ..... के द्वारा होता है जिससे 3 82 मेगाहैक्टेयर अच्छी भूमि अनुपजाऊ हो जाती हैं।

ब) ..... का अवसादन मृदा अपरदन का एक सबसे विनाशकारी परिणाम है। इसकी कीमत लगभग 1 मिलियन प्रतिवर्ष है।

स) यदि अपरदन में मृदा अभाव की दर 100-200 टन प्रतिहैक्टेयर प्रतिवर्ष हो तो ऐसा अनुमान किया जाता है कि कुल क्षेत्रफल का ..... प्रतिशत अनुपजाऊ हो जाएगा।

द) दुमट मिट्टी की अपेक्षा रेतीली भूमि में पोषकों का नुकसान अधिक होता है क्योंकि ..... की दर उच्च होती है जबकि पोषक की ..... क्षमता रेतीली भूमि में कम होती है।

य) भूमि को आठ उत्पादक वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है। ऐसा वर्गीकरण कृषि की क्षमता तथा संरक्षण की आवश्यकता के आधार पर किया जाता है। वे आठ उत्पादकता वर्ग कौन से हैं। नीचे दिए गए स्थान में इंगित कीजिए —

.....

.....

12.5 प्रत्युपचार

पूर्व के खण्डों में आप भूनिम्नीकरण के कारणों तथा प्रभावों के बारे में अध्ययन कर रहे थे। अब आप उपचार के उन उपायों के बारे में अध्ययन करेंगे जो यदि प्रयोग में लाए जाएं तो भूमि को निम्नीकरण से बचाव करेंगे।

मृदा अपरदन को कम करने वाले उपाय कम से कम दस शताब्दियों पहले से ही ज्ञात है। खेतिहर भूमि में एक सबसे अधिक प्राचीन उपाय सोपान बनाना है, जो प्राचीन मानव के प्रभावकारी उपाय को प्रदर्शित करता है। उस प्राचीन तकनीक को महत्वपूर्ण ढंग से परिष्कृत किया गया है तथा इनमें विभिन्न रूपान्तरण किए गए हैं। आजकल मृदा नमी संरक्षण के लिए एक समकालिक प्रयास अभ्यास में लाया जाता है।

सर्वप्रथम, किसी भूमि के भूखण्ड की क्षमता को निर्धारित किया जाता है अर्थात् भूमि का वह प्रकार जिसका प्रयोग किया जाता है, आर्थिक उत्पादन जिसके लिए भूखण्ड ढाल, मृदा प्रकार, जल बहाव, वायु प्रवाह और दूसरे पारिस्थितिक लक्षणों के अनुसार उपयुक्त हो, इत्यादि को निर्धारित करते हैं। एक बार भूखण्ड की क्षमता निर्धारित हो जाए तब मृदा अपरदन इसको आठ वर्गों में वर्गीकृत किया गया है जिसके बारे में आप खण्ड 12.4.3 में पढ़ चुके हैं।

वर्ग I की भूमि के लिए उपचार अभ्यास की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जुताई के दौरान प्राकृतिक पोषक खनिज में घटोत्तरी के प्रारम्भ होने के पश्चात् कार्बनिक एवं अकार्बनिक उर्वरकों को मिलाना आवश्यक हो जाता है। मृदा अपरदन नियंत्रण के लिए बचावकारी उपचार उपाय की आवश्यकता वर्ग II, III तथा IV में होती है। ये भूमि संयुक्त रूप से विखंडित जुताई योग्य कहलाती है। उपचार के उपाय दो प्रकार के होते हैं :

1) बचावकारी उपचार के उपाय
2) विखंडित भूमि का पुनर्वास।

आइए अब हम उनके बारे में अध्ययन करें।

चित्र 12.3 : कन्टूर कृषि

12.5.1 बचावकारी प्रत्युपचार

वायु अपरदन को रोकने के लिए पेड़ उगाए जाते हैं जो वायु के बल को तोड़ने का कार्य करते हैं। पेड़ केवल भूमि को सूर्य से ढकने का ही केवल कार्य नहीं करते वे मृदा कणों को बांधने में भी मदद करते हैं। वायु की दिशा के अनुसार उपयुक्त कोण से जुताई करने से वायु अपरदन से बचाव में सहायता मिलती है।

ढलुआ जमीन पर जल अपरदन, खड़े **ढाल पर सीढ़ियाँ बनाकर** अथवा साधारण जमीन पर **कन्टूर कृषि** के द्वारा रोका जा सकता है। कन्टूर कृषि में ढाल की जुताई उन क्षैतिजवत् रेखाओं से अनुदिश किया जाता है जिनकी उन्नयन समान हो (चित्र 12.3)। जल अपरदन को रोकने की दूसरी तकनीक पट्टीदार खेती है जिसमें घनी उगने वाली फसल को उस फसल के साथ एकान्तरित करते हैं जिसमें खाली जमीन बचती हो। खाली क्षेत्रों से बह कर आयी हुई मृदा घनी उगने वाली फसल से बंध जाती है। उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पेड़ों का छाँव अथवा जमीन के ऊपर का वितान वर्षा की बूंदों के बलों को तोड़ने का साधन प्रदान करती है तथा उस प्रकार उनके अपरदक शक्ति को कम करते हैं। पेड़ों के वितान के कारण सीधे पड़ने वाले सूर्य प्रकाश को भी कम करते हैं। सूर्य प्रकाश कुछ निश्चित फसलों को नुकसान पहुँचाने के साथ भूमि में कार्बनिक पदार्थों के विखंडन को उस दर से त्वरित करता है जो एच्छिक दर से कहीं ज्यादा होती हैं।

12.5.2 निम्नीकृत भूमि का पुनर्वास

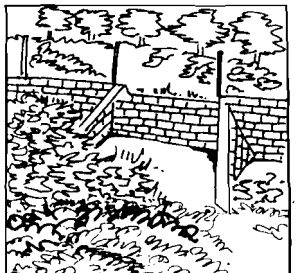

चित्र 12.4 : अपरदन से भूमि की सुरक्षा हेतु कंक्रीट बांध

पूर्व के खण्डों में वर्णित उपायों को बचाव के तौर पर उपयोग किया जा सकता है। पूनर्वास के उपाय वहाँ उपयोग में लाये जा सकते हैं जहाँ अपरदित भूमि के पुनःसंरक्षण की सम्भावना बनती है। वर्ग V, VI, VII तथा VIII जिनके मुख्य लक्षण यह है कि उस भूमि का प्रयोग जोतने बोने के लिए नहीं बल्कि और उद्देश्यों के लिए किया जाता है और वहाँ मृदा अपरदन नियंत्रण की पुनर्वासी विधियां आवश्यक हैं। वे विधियां विखंडित भूमि की दशाओं के प्रयास से संबंधित हैं। मुख्य सिद्धान्त में एक है — कि भूमि पर सतत आवरण बनाये हुए लकड़ी तथा दूसरे — उत्पादों का अत्यधिक उत्पादन। यांत्रिक हथियारों के प्रयोग द्वारा छोटे-छोटे रोकने वाले बांध अथवा पूर्वबनी अवनालिकाओं के इर्द-गिर्द बंध निर्माण की सहायता भूमि का तलसंतुलन रखना एक ऐसा ही उदाहरण है (चित्र 12.4)।

दूसरे पुनर्वासीय अपरदन नियंत्रण उपाय का उद्देश्य सरिता तीर अपरदन को कम करना है। यह रिवेटमेन्ट के द्वारा किया जाता है जिसमें दिवाल तथा जेटी बनाये रखते हैं जो किनारों के कटाव को कम करते हैं तथा रेत एवं गाद को कोनों के इर्द-गिर्द बांधते हैं। मृदा को बांधने वाले वाइटेक्स *(Vitex)*, लेन्टाना *(Lantana)*, आइपोमिया *(Ipomea)* तथा दूसरी वनस्पतियाँ इन रिवेटमेंट में स्थापित हो जाती हैं। अवसाद रोधक भंडार (Sediment detection reservior) धारा की अपरदनकारी क्षमता को भी कम करते हैं। जल ग्रहण बेसिन (Catchment basin) अथवा बाढ़ नियंत्रक भंडार उच्च प्रवाह को कम करने में मदद करते हैं। ये उपाय मंहगे हैं तथा भू-क्षमता को धीरे-धीरे पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

अपरदित परास भूमि ताथ घास स्थल के लिए चारे के योग्य पौधों को समायोजित किया जाना चाहिए। जानवरों द्वारा चरने की प्रक्रिया को उसी सीमा तक बढ़ाया जाना चाहिए जहाँ तक कि चारे वाले पौधे किसी भी समय पड़ सकते सूखे की अवधि में पर्याप्त रूप से सक्रिय रह सकें।

बोध प्रश्न 4

रिक्त स्थानों को उपयुक्त शब्दों से भरिए :

अ) वायु अपरदन को रोकने के लिए ..... वायु के बल को तोड़ने के लिए लगाए जाते हैं।

ब) ..... केवल सूर्य से पृथ्वी को ढकने का ही कार्य नहीं करते बल्कि वे मृदा कणों को बांधने का भी कार्य करते हैं।

स) ढलुए जमीन पर जल अपरदन को खड़े ढाल पर ..... के द्वारा अथवा ..... जुताई के द्वारा रोका जा सकता है। ..... जुताई में किसी ढाल की जुताई उन क्षैतिज रेखाओं के अनुदिश की जाती है जिनका उन्नयन समान होता है।

द) खाली क्षेत्रों से धावन द्वारा मृदा ..... उगने वाली फसल द्वारा बंधी रहती है।

य) कुछ फसलों को नुकसान पहुँचाने के अलावा, सूर्य प्रकाश भूमि के कार्बनिक पदार्थ ..... को उस दर से त्वरित करते हैं जो एच्छिक दर से ज्यादा होते हैं।

12.6 सारांश

इस एकक में आप अध्ययन कर चुके है कि :

- प्राकृतिक प्रक्रियाओं तथा मानव क्रियाकलापों द्वारा भूनिम्नीकरण होता है। मृदा अपरदन एक भूनिम्नीकरण की घटना है जो जल तथा वायु द्वारा होती है।
- मानव की मुख्य क्रियाओं, जो मृदा अपरदन की दर को त्वरित करती हैं, में वनोन्मूलन, गहन कृषि, खनन तथा दूसरी विनाशकारी क्रियाएं शामिल हैं। दून घाटी में खान से नदियों में गाद, भूखण्ड में अस्थायित्व होता है जिसके परिणामस्वरूप सिंचाई के जल की आपूर्ति में कमी होती है तथा चरागाह का नुकसान होता है।
- भूनिम्नीकरण के परिणामस्वरूप पृष्ठ कटाव तथा बाढ़, मरुस्थलीकरण तथा पोषकों तथा भू-उत्पादकता में कमी होती है।
- मृदा अपरदन आर्थिक रूप से सबसे अधिक विनाशकारी घटना है। अपरदित भूमि की केवल उत्पादकता ही नष्ट नहीं होती बल्कि अपरदित भूमि उपजाऊ भूमि को भी नष्ट कर देती है।
- मृदा के विखंडन को बचावकारी उपायों द्वारा रोका जा सकता है। निम्नीकृत भूमि को भी उपयुक्त पूनर्वासी तकनीकों द्वारा पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

12.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) संक्षेप में निम्न पर टिप्पणी कीजिए :

अ) परत अपरदन .....

.....

ब) रिल अपरदन .....

....

स) अवनालिका अपरदन .....

.....

द) तटीय अपरदन .....

.....

2) वनोन्मूलन के प्रभावों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए .....

.....

.....

3) भूनिम्नीकरण के क्या प्रभाव हैं? नीचे दिए गए स्थान में उनका संक्षिप्त वर्णन कीजिए .....

.....

.....

4) मृदा संरक्षण के लिए दो बचावकारी उपचार उपायों को संक्षिप्त वर्णन कीजिए .....

.....

.....

12.8 उत्तर

1) अ) मृदा अपरदन
   ब) परत, अवनालिका, तटीय
   स) तरंग
   द) वायु

2) अ) सत्य ब) सत्य स) सत्य द) सत्य

3) i) अ) बाढ़
   ब) भंडार
   स) 50
   द) अन्तःस्रवण, अवशोषण

   ii) वर्ग I कृषि के लिए उपयुक्त
   वर्ग II अच्छे मृदा प्रबन्ध उपायों की आवश्यकता होती है
   वर्ग III मंद संरक्षण अभ्यास आवश्यक है
   वर्ग IV गहन संरक्षण अभ्यास आवश्यक है
   वर्ग V कृषि के लिए अनपयुक्त
   वर्ग VI प्रयोग के लिए प्रतिबन्ध नहीं
   वर्ग VII प्रयोग के लिए मंद सीमाएं
   वर्ग VIII प्रयोग के लिए गंभीर सीमाएं

4) अ) पेड़
   ब) पेड़
   स) सीढ़िया बनना
   द) घना उगाना
   य) निम्नीकरण

अन्तस्थ प्रश्न

1) अ) कृपया खण्ड 12.2.1 देखें
   ब) कृपया खण्ड 12.2.1 देखें
   स) कृपया खण्ड 12.2.1 देखें
   द) कृपया खण्ड 12.2.1 देखें

2) खण्ड 12.3.2 देखें

3) कृपया खण्ड 12.4 देखें

4) कृपया खण्ड 12.5.2 देखें

इकाई 13 विपत्तिजनक रासायनिक अपशेष

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
13.2 विपत्तिजनक अपशिष्ट पदार्थों के लक्षण
जहरीला बनाम विपत्तिजनक अपशेष
विपत्तिजनक अपशेष की परिभाषा
अपशिष्ट पदार्थों का वर्गीकरण
13.3 अपशेषों के व्यवस्थापन की अवधारणा
अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा को कम से कम करना
औद्योगिक अपशेष को दुबारा उपयोगी बनाना
विपत्तिजनक अपशेष को निरापद बनाना
अपशिष्ट रसायनों का रख-रखाव
13.4 विपत्तिजनक अपशेष का विसर्जन
भरती गड्ढों में विसर्जन
दाहन
समुद्र में फेंकना
ज़मीन के भीतर (भूमिगत तहों में) दबा देना
13.5 भारत में विपत्तिजनक अपशेष के विसर्जन की व्यवस्था
अपशेषों के स्रोत
विसर्जन के विभिन्न तरीके
13.6 अनुचित विसर्जन के अनुषंगी प्रभाव
13.7 सारांश
13.8 अंत में कुछ प्रश्न
13.9 उत्तर

13.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि सभी जीवधारियों को भोजन की आवश्यकता होती है। वे अपने विकास तथा वृद्धि के लिए भोजन का इस्ते॰ करते हैं। इस प्रक्रिया में वे त्याज्य पदार्थ भी पैदा करते हैं। उद्योग भी कच्चा माल प्रयोग करके त्याज्य अवशेष पैदा करते हैं जो कभी-कभी तो इस्तेमाल किए गए कच्चे माल के आधे से भी ज्यादा होता है। जैसे-जैसे उद्योग पर निर्भरता और जटिलता बढ़ती जा रही है, उत्पादन के दौरान अपशेषों का निकलना भी ला॰ पी होता जा रहा है। हम इकाई 6 में पढ़ चुके हैं कि प्राकृतिक पारितंत्र तो भोजन की जरूरतों के साथ-साथ निकृष्ट पदार्थों के निपटान की स्वतः व्यवस्था कर लेते हैं, लेकिन उद्योगों में से बचे कचरे के निपटान की समुचित व्यवस्था न की जाए तो यह जमा होता चला जाता है। कचरे के रूप में निकलने वाले कुछ पदार्थ खतरनाक भी होते हैं और इनके निपटान में विशेष सावधानी जरूरी होती है।

यहाँ तक कि कुछ औद्योगिक कचरे का 15 प्रतिशत अंश तक ऐसे खतरनाक रासायनिक पदार्थ होते हैं जिनके बेहद नुकसानदेह होने के कारण इनको सावधानी से और उचित तरीके से निपटाया जाना जरूरी है। अगर ऐसा नहीं किया गया तो प्राकृतिक संसाधन बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो सकते हैं, जिससे पूरे पर्यावरण, खासतौर से मानवीय स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न हो सकता है। इस इकाई में ऐसे खतरनाक अपशिष्ट रसायनों को निपटाने के विभिन्न तरीके बताए गए हैं।

वैज्ञानिक विपत्तिजनक अपशिष्टों की सर्वमान्य, व्यापक परिभाषा तथा उन्हें वर्गीकृत करने की कसौटियों के बारे में अभी तक एक मत नहीं हो पाए हैं क्योंकि अपशिष्टों की विनाशकारिता को परखने के लिए प्रयुक्त होने वाले मापंदडों को निर्धारित नहीं किया जा सकता है। असहमति का एक प्रमुख कारण यह भी है कि नुकसानदेह कचरे की परिभाषा के सही मानदंड समझ पाना मुश्किल है। इस इकाई में आप नुकसानदेह कचरे की परिभाषा और विषैले रसायनों से इसके अंतर को समझ सकेंगे।

अपशेष अक्सर एक जटिल मिश्रण होता है और इसके संघटन का विश्लेषण कठिन और प्रायः काफी खर्चीला होता है। भले ही विश्लेषण के लिए पर्याप्त आँकड़ें उपलब्ध हो जाए, फिर भी अपशेष के किसी विशेष संघटक का महत्व सही तरीके से नहीं आँका जा सकता। इस इकाई में आप विपत्तिजनक अपशेषों के व्ययन के प्रबंध की अवधारणा के बारे में भी पढ़ेंगे। जिसका अर्थ है निपटान से पहले कचरे का क्या किया जाए, और अपशेषों के

गलत तरीके से निपटान के दूरगामी परिणाम क्या होते हैं। भारत में अपशेषों के व्ययन की व्यवस्था का खासतौर पर उल्लेख किया गया है।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- अपशिष्ट पदार्थों में पाए जाने वाले विपत्तिजनक रसायनों को परिभाषित और वर्गीकृत कर सकेंगे तथा विषैले रसायनों से उनका अंतर स्पष्ट कर सकेंगे,
- विपत्तिजनक अपशेषों के रख-रखाव के लिए जरूरी पूर्व शर्तें समझा सकेंगे,
- विपत्तिजनक अपशेषों के व्ययन के विभिन्न तरीकों की तुलना कर सकेंगे,
- यह बता सकेंगे कि हमारे देश में इस समय विपत्तिजनक अपशेषों के व्ययन की क्या व्यवस्था है,
- अपशेषों में पाए जाने वाले विपत्तिजनक रसायनों के गलत तरीके से व्ययन के दुष्प्रभाव बता सकेंगे।

13.2 विपत्तिजनक अपशेष के लक्षण

"विपत्तिजनक अवशेष" के अंतर्गत किसी उद्योग, फैक्टरी या रासायनिक संयंत्र के सभी रासायनिक उप-उत्पाद आते हैं जिनसे जीवन को संकट पैदा हो सकता है। ऐसे पदार्थ किसी घरेलू कार्य से अथवा किसी अस्पताल या अनुसंधान प्रयोगशाला में भी पैदा हो सकते हैं। परमाणु अथवा रासायनिक हथियारों के इस्तेमाल करने वाले युद्धों से भी बड़ी मात्रा में ऐसा नुकसानदेह अवशेष पैदा होता है। इनमें से किसी भी स्रोत से पैदा होने वाला कोई रासायनिक पदार्थ, जो मानव स्वास्थ्य के लिए संकट पैदा करने की क्षमता रखता हो, पर्यावरण को प्रदूषित करता हो अथवा गलत तरीके से निपटान किए जाने पर इससे जीवन के लिए कोई अदृश्य खतरा हो, विपत्तिजनक कहा जाता है। अवशेष के किसी घटक में अगर निम्न में से कोई भी एक लक्षण उपस्थित हो तो समूचे उप-उत्पाद को विपत्तिजनक माना जाता है यदि उसमें : (1) ज्वलनशीलता, अर्थात् जल्दी आग पकड़ता हो, (2) क्षरण की क्षमता, अर्थात् अन्य पदार्थों को जंग लगा देता हो, (3) प्रतिक्रियाशीलता, अर्थात् पानी से तीव्र प्रतिक्रिया करे अथवा अन्य रसायनों से प्रतिक्रिया होने पर विस्फोट हो जाए, (4) रेडियोधर्मिता, अर्थात् पदार्थों को आयनीकृत करने वाले विकिरण छोड़े और (5) विषैलापन, अर्थात् शारीरिक क्रियाओं में गड़बड़ी, विषाक्तता, बीमारी, शरीर में अकस्मात् परिवर्तनकारी लक्षण (उत्परिवर्तन), कैंसर अथवा अन्य अपरूपताएँ पैदा कर सकता हो।

13.2.1 जहरीला बनाम विपत्तिजनक अपशेष

आमतौर पर दो शब्दों विपत्तिजनक (hazardous) और विषजन्य (toxic) को समान अर्थ में ही इस्तेमाल कर लिया जाता है परन्तु यह सही नहीं है। विषैला होना पदार्थ का आंतरिक (निहितात्मक) गुण है जबकि विपत्तिजनक होने में उसकी बाह्य विशेषताएँ भी शामिल हैं। कोई पदार्थ किसी जंतु या वनस्पति की शारीरिक प्रक्रिया में शामिल होकर जो नुकसान पहुँचाता है, उसे विषैलापन कहते हैं। शरीर में विषैले पदार्थ पहुँचने से रोगकारी (pathogenic) उत्परिवर्तनकारी (mutagenic), विकृतिकारी (teratogenic) या कैंसरकारी (carcinogenic) परिवर्तन हो सकते हैं। ऐसे परिवर्तन कारकों को विषैला अपशेष कहा जाता है। जबकि विपत्तिजनक का अर्थ किसी पदार्थ के विभिन्न लक्षणों की जीवों या भवनों को संकट में डालने की अथवा नुकसान पहुँचाने की अदृश्य क्षमता से है। ये लक्षण हैं : विषैलापन, क्षरणकारी प्रभाव, प्रतिक्रिया शीलता, विस्फोटक होना या रेडियोधर्मिता। इस तरह "विपत्तिजनक" व्यापक शब्द है, जिसमें विषैलापन भी शामिल है।

किसी यौगिक के संपर्क में आने से यदि उल्टी आने, सिर चकराने, दस्त जैसे लक्षण पैदा हों तो उसे रोगकारी कहा जाता है। जब उसके इस्तेमाल से वंशानुगत लक्षणों में बदलाव आ जाए तो उसे उत्परिवर्तन-कारी कहा जाता है। जब उससे शारीरिक विकृतियाँ हो जाएँ तो उसे विकृतिकारी कहा जाता है। अगर उससे कैंसर होता हो तो उसे कैंसरकारी कहा जाता है।

आप समझ सकते हैं कि विपत्तिजनक अवशेष पदार्थ में एक से अधिक नुकसानदेह लक्षण हो सकते हैं। जैसे, बैंजीन विषैला भी है और ज्वलनशील भी। तेज अम्ल और क्षारों के मिश्रण पदार्थों का क्षरण तो करते ही हैं, गलत इस्तेमाल से विस्फोट भी कर सकते हैं। परन्तु पदार्थों का अगर गलत तरीके से निपटान न किया जाए तो वे हानिरहित सिद्ध होते हैं।

13.2.2 विपत्तिजनक अपशेष की परिभाषा

चूँकि विपत्तिजनक शब्द में आंतरिक तथा बाह्य — दोनों गुण शामिल हैं। विपत्तिजनक अपशेष की पूर्ण परिभाषा ऐसी होनी चाहिए जिसमें से निम्न पाँच प्रश्नों का उत्तर मिलना चाहिए :

1) किसके लिए नुकसानदेह हैं?
2) कितना नुकसानदेह हैं?
3) किस वजह से नुकसानदेह है?

5) किस परिस्थितियों में नुकसानदेह हैं?

आइये इन प्रश्नों का उत्तर देने वाली, विपत्तिजनक अपशेष की पूर्ण परिभाषा को ढूंढे। यह इस प्रकार हो सकती है :

नुकसानदेह अपशिष्ट पदार्थ ऐसा कचरा है जो अपनी मात्रा, सांद्रण अथवा भौतिक, रासायनिक या फिर जैव लक्षणों से —

क) किसी की मृत्यु का या लोगों की मृत्यु दर बढ़ने का कारण बने या गंभीर, ठीक न हो सकने वाली या ठीक होने पर भी अक्षम बना देने वाली बीमारी पैदा करे।

ख) गलत तरीके से इस्तेमाल, भंडारण, लाने-ले जाने, निपटान या अन्य तरीकों से प्रयोग किए जाने से मानव के वर्तमान स्वास्थ्य में खतरा पैदा करे या ऐसे खतरे की संभावना पैदा करे।

अब आप निम्नलिखित बोध प्रश्न को हल कीजिए ताकि यह पता चल सके कि आपको नुकसानदेह कचरे के लक्षण समझ में आए हैं या नहीं।

बोध प्रश्न 1

खाली स्थानों में नीचे दिए गए कोष्ठक से उचित शब्द चुनकर भरिए और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जाँच कीजिए।

1) शरीर में पहुँचकर आनुवंशिक परिवर्तन लाने वाले यौगिक को ..... कहते हैं। अगर इससे जहर फैले या शारीरिक विकृति आने की संभावना हो तो इसे ..... कहते हैं, अगर इससे कैंसर होने की संभावना हो तो इसे ..... कहा जाता है।

2) किसी अपशेष को विपत्तिजनक कहा जाता है, जब उसमें निम्न में कोई लक्षण हो —

   क) ..... अर्थात् जल्दी आग पकड़ ले।
   ख) ..... अर्थात् अन्य पदार्थों का क्षरण करे।
   ग) ..... अर्थात् पानी से तीव्र क्रिया करे।
   घ) ..... अर्थात् आयनीकरण करने वाले विकिरण पैदा करे।
   ङ) ..... अर्थात् विषाक्तता पैदा करने वाले लक्षण पैदा करें।

3) "विपत्तिजनक अपशेष" की पूर्ण परिभाषा में अपशेष के ऐसे भौतिक, रासायनिक या जैव लक्षण शामिल हैं, जो परिमाण या सांद्रण से —

   क) ..... का कारण बने या इसकी दर बढ़ाने में योगदान करे या गंभीर रूप से ..... अथवा अक्षम बनाने वाली मगर ..... बीमारी बढ़ाए।

   ख) ऐसे अपशेष जिनका गलत तरीके से ....., ... या वहन या ..... करने से मानव के वर्तमान स्वास्थ्य अथवा पर्यावरण के लिए भविष्य खतरा बने या ऐसे खतरा पैदा करने में ..... हो विपत्तिजनक अपशेष कहलाते हैं।

   (ज्वलनशील, इस्तेमाल, ठीक हो सकने वाली, उत्परिवर्तनकारी, सक्षम, क्षरणकारी, भंडारण, ठीक न हो सकने वाली, विकृतिकारी, निपटान करने, मृत्यु, प्रतिक्रियाशीलता, कैंसरकारी, रेडियोधर्मी, विषैलापन)

13.2.3 अपशिष्ट पदार्थों का वर्गीकरण

विपत्तिजनक अपशिष्ट पदार्थों की कारगर व्यवस्था और व्ययन के लिए अर्पाशष्ट पदार्थों का वर्गीकरण आवश्यक पूर्व-शर्त है। अपशिष्ट पदार्थों के वर्गीकरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर निम्न तरीके अपनाए जाते हैं :

- स्रोतों को सूचीबद्ध करने का तरीका
- शुद्ध संघटकों को सूचीबद्ध करने का तरीका
- लक्षणों के आधार पर अवशेषों का वर्गीकरण
- व्यापक सूची का तरीका

स्रोतों को सूचीबद्ध करने का तरीका

कुछ मानवीय गतिविधियां ऐसी होती हैं जिनसे विपत्तिजनक अपशिष्ट उत्पाद पैदा होता है। वर्गीकरण के इस तरीके में, कचरे को उसके पैदा होने के स्रोत के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। तालिका 13.1 में ऐसे स्रोत और उनसे पैदा होने वाले खतरनाक अपशेषों को सूचीबद्ध किया गया है।

तालिका 13.1

अपशिष्ट पदार्थों को पैदा करने वाले स्रोत और उनकी गतिविधियाँ

क्र. सं.	स्रोत	गतिविधि
1.	कोयला उद्योग	कोयला और इसके उत्पादों का निकाला जाना
2.	पेट्रोलियम उद्योग	पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस निकाला जाना, पेट्रोलियम परिष्करण
3.	धातुकर्म उद्योग	खनन तथा अयस्क की शुद्धि, अयस्क से धातु निकालना
4.	इलेक्ट्रोप्लेटिंग उद्योग	मेटल फिनिशिंग करना, दर्पण बनाना
5.	रासायनिक उद्योग	प्राथमिक कार्बनिक और अकार्बनिक रसायनों, कीटनाशकों, दवाओं, धुलाई के साबुनों आदि का उत्पादन
6.	पेंट तथा संबद्ध उद्योग	स्याहियों, वार्निशों, पेंटों, चिपकने वाले पदार्थों, फोटोग्राफी से संबंद्ध उत्पादों, रबर, कृत्रिम सुगंधों, विस्फोटकों तथा अन्य गौण रसायनों का उत्पादन
7.	चमड़ा उद्योग	चमड़े की रँगाई तथा रंग-उत्पादन से जुड़े गौण उत्पाद
8.	वस्त्र उद्योग	कपड़ों की धुलाई, विरंजन तथा रंजन
9.	ऑटोमोबाइल उद्योग	ऑटोमोबाइल इंजनों की सफाई तथा मरम्मत
10.	अस्पताल	चिकित्सा सेवाएँ, बाह्य रोगियों को सहायता, उपकरणों को कीटाणु-रहित करना, रेडियोथैरेपी
11.	प्रयोगशालाएँ	पुराने रसायनों (पदार्थों) के अनुसंधान और विश्लेषण, नए रसायनों (पदार्थों) की खोज
12.	ईंधन को दुबारा काम में लाने योग्य बनाने वाले उद्योग	नाभिकीय ऊर्जा संयत्र के अवशेष में से रेडियोधर्मी ईंधन को फिर उत्पन्न और प्राप्त करना
13.	घरेलू काम	नहाने, भोजन बनाने और धुलाई जैसे घरेलू काम
14.	प्रदूषण नियंत्रण सुविधाएँ	प्रदूषण नियंत्रण के काम से निकलने वाले अवशेष

केवल संघटक के आधार पर सूचीबद्ध करने का तरीका

इस तरीके में अपशेष में पाए जाने वाले "विपत्तिजनक" और विषैले पदार्थों के घटकों के आधार पर उसे वर्गीकृत किया जाता है। इकाई के अंत में दिये गये परिशिष्ट-I में अपशिष्ट पदार्थों के विषैले तथा विपत्तिजनक घटकों को सूचीबद्ध किया गया है।

लक्षणों के आधार पर अपशिष्ट पदार्थों का वर्गीकरण

सामान्यतः कोई रसायन या यौगिक घटक किसी अपशेष में शुद्ध रूप में नहीं पाया जाता। अपशेष आमतौर पर अनेक रसायनों और अथवा यौगिकों का जटिल मिश्रण होता है जिनके विशिष्ट सामूहिक लक्षण होते हैं। अपशिष्ट पदार्थों के वर्गीकरण के इस तरीके में निम्न लक्षणों वाले कचरे को नुकसानदेह कचरा अथवा विपत्तिजनक अपशिष्ट पदार्थ माना जाता है।

- ज्वलनशीलता, जैसे हाइड्रोकार्बन
- प्रतिक्रियाशीलता, जैसे नाइट्रेट, क्रोमेट और परमैंगनेट लवण
- क्षरण की क्षमता, जैसे अम्ल और क्षार
- विषजन्यता, जैसे कीटनाशक, सीसा आर्सेनिक तथा कैडमियम के यौगिक
- ई.पी. विषाक्तता, जैसे रेडियोधर्मी पदार्थ.

ज्यादातर देशों में विपत्तिजनक अपशेषों के निर्धारण और उसके वर्गीकरण में इन सभी तरीकों को संयुक्त रूप से अपनाया जाता है। उदाहरण के लिए, अमरीका, ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी आदि में स्रोत के आधार पर और लक्षणों के आधार पर वर्गीकरण के तरीकों को मिलाकर अपनाया जाता है। नार्वे ने शुद्ध संघटक तरीके को अपनाया है।

कुछ समय पूर्व, भारत सरकार ने विषैले और विपत्तिजनक अपशेषों की समुचित व्यवस्था के लिए कानून पारित किए। हमारे देश में शुद्ध संघटक और स्रोत — दोनों आधार पर नुकसानदेह कचरे की पहचान की जाती है। भारत सरकार द्वारा पहचाने गये विपत्तिजनक अपशेषों की सूची इकाई के अंत में परिशिष्ट-II में दी गई हैं।

व्यापक सूची का तरीका

इस तरीके में अपने अंदाज के आधार पर ऐसे रासायनिक कचरे (अपशेष) की सूची बना ली जाती है, जो मानवीय स्वास्थ्य, पर्यावरण और जीवन पर बुरा असर नहीं डालता। जो कचरा (अपशेष) इस सूची में नहीं आता उसे नुकसानदेह मान लिया जाता है। वर्गीकरण का यह मनमाना तरीका है और इसमें वर्गीकरण करने वाले की व्यक्तिगत राय पर ही परिणाम निकाले जाते हैं। इसलिए यह वर्गीकरण का उचित तरीका नहीं है।

अगले भाग में हम विपत्तिजनक अपशेष (नुकसानदेह कचरे) के व्ययन (निपटान) एवं प्रबंध आदि के बारे

बोध प्रश्न 2

1) कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(अट्ठारह, अपशिष्ट पदार्थों का वर्गीकरण, तेल तथा तेलीय इमल्शनों के अपशेष (कचरा), विषैली, चौदह, नुकसानदेह, अधिकतम)

1) नुकसानदेह कचरे के प्रबन्ध [illegible] व्यय[illegible] की कारगर योजना बनाने के लिए ..... एक आवश्यक पूर्वशर्त है

2) स्रोत के आधार पर अपशिष्ट पदार्थों (कचरे) का वर्गीकरण करने के लिए अपशिष्ट उत्पाद पैदा करने वाली ..... गतिविधियाँ निर्धारित की गई हैं।

3) शुद्ध संघटक तरीके में अपशेष में मौजूद ..... और ..... घटकों के आधार पर 35 प्रकार के अपशेषों की पहचान की गई है।

4) भारत सरकार ने शुद्ध संघटक तथा स्रोत की सूची बनाने दोनों तरीकों को विपत्तिजनक अपशेषों (नुकसानदेह कचरे) के निर्धारण के लिए अपनाया है। सूची में कचरे के ..... वर्ग पहचान में आये हैं। वर्ग 10 अर्थात् ..... अनुमति प्राप्त मात्रा वाले वर्ग में, ... के रूप में अपशेष पैदा होता है, जिसकी निर्धारित मात्रा 1000 किलोग्राम प्रतिवर्ष है। (देखिए, परिशिष्ट-II)

2) कॉलम 1 में दिए गए विषयों का कॉलम 2 में दी गई व्याख्या से उनकी मिलान कीजिए :

कॉलम क	कॉलम ख
क) रसायन उद्योग	क) धातु फिनिशिंग कार्य, दर्पण बनाना
ख) चमड़ा उद्योग	ख) अयस्कों का खनन तथा परिष्करण, अयस्क से धातु निकालना
ग) पेंट तथा संबद्ध उद्योग	ग) प्राथमिक कार्बनिक तथा अकार्बनिक रसायन, कीटनाशक, दवाएँ, साबुन आदि बनाना
घ) इलेक्ट्रोप्लेटिंग उद्योग	घ) स्याही, वार्निश, पेंट, गोंद, फोटोग्राफी संबंधी वस्तुएँ, रबर, कृत्रिम सुगंध, विस्फोटक तथा अन्य द्वितीयक रसायन बनाना
च) धातुकर्म उद्योग	च) चमड़े की रँगाई, रंजक त[illegible] यमिक रंजक उत्पादन

13.3 अपशेष के व्यवस्थापन की अवधारणा

विपत्तिजनक अपशेष की समस्या महत्वपूर्ण पर्यावरणीय और जनस्वास्थ्य संबंधी मुद्दा बन गया है, जिसके प्रति अनेक देशों में चिंता व्यक्त की जा रही है। विपत्तिजनक अवशेष (नुकसानदेह कचरे) के व्यवस्थापन के बारे में, इस समय, चार तरीके के उपाय किए जा रहे हैं :

1) अपशेष की मात्रा कम से कम करना
2) औद्योगिक अपशेषों को फिर से उपयोगी बनाना
3) अपशेषों को हानिरहित बनाना
4) पर्यावरण की दृष्टि से उपयुक्त तरीके से अपशेष को जमा करना, लाना-ले जाना और इसका व्ययन करना

ये चारों तरीके महत्वपूर्ण हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं। नुकसानदेह कचरे की किसी समस्या के समाधान के लिए इन चारों तरीकों की समन्वित रूप से आवश्यकता रहती है। हम प्रत्येक तरीके के बारे में संक्षेप में बताएंगे।

13.3.1 अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा को कम से कम करना

[illegible] प्रबंध में पहली प्राथमिकता कचरे की मात्रा को कम से कम करना है। कचरा कम करने के तीन प्रमुख [illegible] का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

प्रक्रिया में सुधार लाना

[illegible] औद्योगिक प्रक्रिया को ऐसा बनाया जा सकता है ताकि कच्चे माल का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल हो सके और [illegible] नुकसानदेह कचरा कम से कम निकले। उदाहरण के लिए, जस्ते की विद्युतलेपन प्रक्रिया में थोड़ा सा बदलाव

लाकर सल्फेट लवण के स्थान पर क्लोराइड लवण इस्तेमाल किया जा सकता है। इससे साइनाइड के अपशेष के रूप में निकलने की समस्या दूर हो सकती है।

2) अपशेष सांद्रण

वाष्पन, अवक्षेपीकरण या निथारने जैसे तरीकों से अपशेष का बड़ा भाग नष्ट हो सकता है। अर्थात् इन विभिन्न तरीकों से अवशेष के बड़े भाग को न्यूनतम कर देना संभव है।

ज्वलनशील कचरे को ऑक्सीकरण, द्वारा भस्म करने का तरीका अर्थात् दाहन अक्सर इस्तेमाल होता है। इसमे कचरे की मात्रा काफी कम हो जाती है। यह बढ़िया तरीका है, परन्तु कुल लाभ की तुलना में लागत अक्सर अधिक आती है। दाहन के बारे में आप भाग 13.4.2 में और अधिक जानकारी प्राप्त करेंगे।

3) निरापद अपशेषों को अलग करना

विपत्तिजनक अपशेष को निरापद अपशेष से अलग कर देने से विपत्तिजनक अवशेष की वास्तविक मात्रा कम रह जाती है और फिर इसको हानिरहित बनाना आसान हो जाता है।

13.3.2 औद्योगिक अपशेष को दुबारा उपयोगी बनाना

कथित अनुपयोगी अपशेष में ेक उपयोगी अँश भी होते है। जिनमें काँच, लकड़ी के रेशे और धातु शामिल हैं। वैज्ञानिकों ने अपशिष्ट पदार्थ में से अनेक पदार्थों को फिर उपयोगी बनाने के तरीके ढूँढ निकाले हैं। लगभग सभी पदार्थों को फिर उपयोग किया जा सकता है। केवल कुछ मामलों में, दुबारा उपयोगी बनाने में उसके उपयोग से कहीं अधिक ऊर्जा खर्च हो जाती है।

विपत्तिजनक अपशेष के अभिक्रमण या संसाधन (processing) के दो तरीके हैं — अपशेष का पुनर्उपयोग करना और दूसरे पुनःचक्रण अर्थात् उससे अन्य उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करना।

1) अपशेषों का पुनर्उपयोग

कुछ मामलों में कचरे को बड़ी मामूली-सी प्रोसेसिंग (संसाधन) के बाद ही फिर कच्चे माल के तौर पर सीधे ही इस्तेमाल किया जा सकता है। कचरे को उसी रूप में बिना किसी संसाधन के किसी दूसरे इस्तेमाल में लिया जा सकता है। इसे अपशेष का पुनः उपयोग कहते हैं। कुछ औद्योगिक संस्थान अपशेष का नियमित रूप से आदान प्रदान करते हैं। व्यापारिक दृष्टि से अनावश्यक पदार्थ जैसे पुराने पड़ गए रसायन और बाजार में बिक्री की गुणवत्ता स्तरों से नीचे के अपरीक्षित पदार्थ बिना ज्यादा संसाधन के फिर इस्तेमाल हो सकते हैं। औद्योगिक प्रक्रम से बचे बेकार कार्ड बोर्ड गत्ते को सीधे ही कागज की लुगदी बनाने के काम में लाया जा सकता है। इसी प्रकार ताँबें अथवा अन्य धातुओं के बेकार लवणों से धातु प्राप्त की जा सकती है। बचे-खुचे तेलों का इस्तेमाल ईंधन के तौर पर कर सकते हैं, इस प्रकार, अन्य विभिन्न अपशिष्ट पदार्थों का इस्तेमाल औद्योगिक कच्चे माल की तरह हो सकता है।

2) अपशेषों का पुनः चक्रण

पुनःचक्रण, पुनर्उपयोग से अलग अभिव्यक्ति है। इस प्रक्रिया में उपयोग से पहले विभिन्न साधनों के जरिए किसी अपशेष को उत्पादक प्रक्रिया के योग्य बनाया जाता है। जब अपशेष का उसी रूप में इस्तेमाल संभव नहीं होता तो उससे कोई उपादेय पदार्थ फिर प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रक्रियाएँ की जाती है। इसे पुनःचक्रण (recycling) कहते हैं। उदाहरण के लिए, स्टील अभिक्रमण की छीलन से प्राप्त बैगहाउस डस्ट को बेकार गंधक के तेजाब से क्रिया करा के गैल्वेनाइजर्स पिकल एसिड बनाया जाता है। इस प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किये जाने वाले तरल जिसे पिकल लिकर (pickle liquor) कहते हैं में 8 से 10 प्रतिशत तक जिंक और लौह लवण होते हैं तथा इसका इस्तेमाल खेती में जिंक उर्वरक के तौर पर किया जा सकता है। इसके अलावा कुछ अन्य उद्योगों में बचे खुचे कार्बनिक विलायकों का इस्तेमाल भी अपशेष के पुनः चक्रण द्वारा उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन का श्रेष्ठ उदाहरण है।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए शब्दों में से उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1) विपत्तिजनक अपशेषों का पर्यावरण की दृष्टि से उचित व्ययन के लिए निम्न 4 प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं :
   क) अपशेष की मात्रा को .....
   ख) औद्योगिक अपशेषों का .....
   ग) अपशेषों को .....
   घ) अपशेष को ..... और अंत में विसर्जन

2) अपशेषों की मात्रा कम करने के निम्नलिखित तीन तरीके हैं :
   क) .....

ख) .....

ग) .....

3) कुछ अपशेषों का बिना संसाधित (process) किए दूसरे काम के लिए उसी रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसे ..... कहते हैं। जब उसी रूप में अपशेष का इस्तेमाल न हो सके तथा कारखानों में इस्तेमाल के पूर्व उसमें से अन्य उपयोगी वस्तुओं की पुनः प्राप्ति के लिए अपशेष का फिर संसाधन किया जाता है, इसे ..... कहते हैं।

(प्रक्रिया में सुधार लाना, अपशेष का दुबारा इस्तेमाल, अपशेष सांद्रण, अपशिष्ट पदार्थों को अलग करना, पुनः चक्रण, कम से कम करना, पुनर्उपयोग हानिरहित बनाना, निरापदीकरण, भंडारण (जमा करना) तथा वहन)

4) नीचे दिए गए कथनों में जो ठीक हैं उनके आगे सही का निशान (√) लगाइए :

क) विपत्तिजनक अपशेषों के व्यवस्थापन में पहली प्राथमिकता अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा कम से कम करना है।

ख) अपशेष को जला देना विसर्जन का बहुत अच्छा उपाय है, परंतु इसकी लागत काफी ज्यादा पड़ती है।

ग) विपत्तिजनक अपशेषों के व्ययन का कारगर, सस्ता और पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित कोई तरीका नहीं है।

घ) किसी उत्पादन प्रक्रिया में उपयोग करने से पहले यदि अपशिष्ट पदार्थों का विभिन्न तरीकों से संसाधन किया जाए तो इसे अपशेष का पुनः चक्रण कहा जाता है

13.3.3 विपत्तिजनक अपशेष को निरापद बनाना

उपयोगी अवयवों को निकाल लेने के बाद, अपशेष में उपस्थित विपत्तिजनक रसायनों को विभिन्न उपायों द्वारा हानिरहित बनाया जाता है। विपत्तिजनक अपशेषों के अंतिम विसर्जन से पहले उसे निरापद बनाने की अनेक प्रौद्योगिक विधियाँ उपलब्ध हैं। अपशेष के भौतिक और रासायनिक गुणों को बदलकर उसे हानिरहित बनाया जाता है। हानिरहित बनाने की प्रक्रिया का चयन अनेक बातों पर निर्भर करता है, जैसे अपशेष की रासायनिक प्रकृति को हम किस रूप में बदलना चाहते हैं, आर्थिक और ऊर्जा संबंधी कारण। अपशेष को हानिरहित बनाने के तरीकों को निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है :

1) भौतिक उपचार
2) रासायनिक उपचार
3) जैव उपचार
4) अवपंक का संसाधन
5) अपशेष को ठोस बनाना
6) अपशेष का दाहन

भौतिक उपचार के अनेक तरीके हैं। इनमें से एक तरीका विभिन्न चरणों में अवशेष के विभिन्न हिस्सों को अलग करने का है। इस विधि को "प्रावस्था विभक्तिकरण' कहते हैं। इस विधि के तीन चरण हैं : लैगूनिंग, लंबे समय तक टंकियों में भंडारण और अवपंक को सुखाना। लैगूनिंग और टैंकों में भंडारण के चरण में अपशेष में उपस्थित कणों को अवसादित किया जाता है। हमारी सलाह है आप इस विधि की तुलना इकाई 11 में दिए अपजल उपचारण के "अवसादन" क्रिया से करें।

रासायनिक उपचार में विपत्तिजनक अपशेष को पूरी तरह विभिन्न घटकों में विभाजित किया जाता है। इससे अक्सर अपशेष के रासायनिक गुण बदल दिए जाते हैं। जैसे पानी में अपशेष पदार्थ की विलयशीलता कम कर दी जाती है या अम्लीयता और क्षारीयता कम कर दी जाती है। इसकी तकनीकों में अपशिष्ट पदार्थों का ऑक्सीजन, रासायनिक तरीकों से (उदासीनीकरण) अधिस्थानी धातु निक्षेपण तेल/पानी अलग करना, अर्थात् विलायक/ईंधन को अलग करना पृथ्कीकरण इत्यादि शामिल हैं। जैव उपचार के बारे में आप इकाई 11 में पढ़ चुके हैं, जिसके अंतर्गत प्राकृतिक जल का स्वतः शोधन और नाले-नालियों के जल को स्वच्छ बनाना शामिल है।

हाल ही में औद्योगिक अपशेषों की सफाई के तरीकों में सुधार आने के बाद से **अवपंक संसाधन** बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। अवपंक संसाधन की प्रौद्योगिकी में कंडीशनिंग (अथवा प्रानुकूलन), डाइजेशन (पाचन), कंपोस्ट बनाना, पानी अलग करना और ठोस बनाना शामिल है। (देखिए पारिभाषिक शब्दावली)

ठोस बनाने की प्रक्रिया में अपशेष को ठोस, अविलेय, सख्त पदार्थ में बदला जाता है ताकि इसके बाद इसे निर्धारित भरती गड्ढों (land fill) में फेंका जा सके। इसके लिए अपशेष की विभिन्न रसायनिक पदार्थों से प्रतिक्रिया कराकर ठोस रूप दे दिया जाता है। इस प्रक्रिया का मूल उद्देश्य अपशेष के खतरनाक अवयवों को निर्धारित भरती गड्ढों (लैंड फिल) से रिसकर या बिखरकर फैलने से रोकना है।

इन तरीकों के अलावा, दाहन भट्टियों में जलाकर अपशिष्ट पदार्थों के खतरनाक अंश नष्ट किए जा सकते हैं। इस प्रक्रिया में ऑक्सीकरण द्वारा अपशेष के विषैले अंश समाप्त किए जाते हैं। इस बारे में आप भाग 13 4.2 में पढ़ेंगे। यह अपशेष की मात्रा को कम से कम करने और उसे व्ययित करने का अच्छा तरीका है।

13.3.4 अपशिष्ट रसायनों का रख-रखाव

अपशिष्ट रसायनों का रख-रखाव कई चरणों में किया जाता है। अपशेष जमा करना, अस्थायी तौर पर इसे रखने की व्यवस्था करना, लाना-ले जाना, हानिरहित बनाना और निपटान — ये सभी चरण तकनीकी और संगठनात्मक दृष्टि से एक-दूसरे पर काफी निर्भर हैं। अपशेष के पैदा होने के स्थान पर ही उसे हानिरहित बनाना तथा निपटान के स्थान पर जमा करना और लाना-ले जाना जैसे महत्वपूर्ण शृंखलाबद्ध काम हैं। खतरनाक वस्तुओं के रख-रखाव में जो सावधानियाँ बरतनी जरूरी हैं वही सावधानियाँ अपशेषों के रख-रखाव के लिए भी जरूरी हैं। लेकिन विपत्तिजनक अपशेषों के साथ कुछ और भी समस्याएँ हैं जैसे —

1) आमतौर पर उत्पादनकर्ता के लिए अपशेष की कोई आर्थिक कीमत नहीं होती।

2) रसायनिक अपशेष एक ऐसा जटिल मिश्रण है जिसमें से आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद सभी पदार्थ निकाल दिए गए होते हैं, इसलिए इसके भौतिक और रसायनिक लक्षणों की ठीक-ठीक जानकारी भी नहीं होती।

3) अपशेषों में एक-दूसरे के साथ विस्फोटक प्रतिक्रिया करने वाले अवयवों को सुविधा की दृष्टि से एक साथ रख देने से तुरंत या बाद में भंडारण या वहन की प्रक्रियाओं के दौरान भारी खतरा हो सकता है। (जैसे ईथर वाले कचरे के साथ सोडियम अवशेष वाले रासायनिक अपशेषों के मिल जाने से विस्फोट हो जाएगा)।

इसलिए अपशिष्ट पदार्थों के सुरक्षित एवं विपत्तिरहित व्ययन के लिए उन्हें जमा करने, लाने-ले जाने और रखने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। एक-दूसरे से प्रतिक्रिया करने वाले अपशेषों को अलग-अलग रखा जाना (भंडारण) और लाया-ले जाया (वाहित किया) जाना चाहिए।

बोध प्रश्न 4

1) नीचे दिए गए शब्दों में से उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   1) उपयोगी अवयवों को निकालने के बाद अपशेष को ..... बनाया तथा ..... किया जाता है। इसका उद्देश्य अपशेषों के भौतिक तथा/अथवा रासायनिक गुणों में परिवर्तन लाकर उन्हें ..... बनाना है।

   2) अपशिष्ट पदार्थों को हानिरहित बनाने (निरापदीकरण) के तरीके का चुनाव अपशेष की रासायनिक प्रकृति, और आर्थिक तथा .... कारकों के आधार पर किया जाता है।

   3) भौतिक उपचार की विधियों में प्रावस्था विभक्तिकरण प्रमुख है, इस विधि में अपशेष के विभिन्न हिस्सों को अलग किया जाता है। इसके तीन चरण हैं :
   ....., ..., ... ।

   4) अवपंक संसाधन में ....., ..., ..., और उसे ठोस रूप देना अथवा पानी अलग करना शामिल है।

   5) दाहन विधि में अपशेषों का ..... किया जाता है। इससे ज्वलनशील अपशेष के जहरीले अंश समाप्त हो जाते हैं। इससे अपशेष की ..... भी कम हो जाती है और फिर इसका आसानी से व्ययन किया जा सकता है।
   (कंडीशनिंग, डाईजेशन, कम्पोस्टिंग, उदासीनीकृत, ऊर्जा संबंधी, लैगूनिंग, टंकियों में भंडारण, विषहीन, हानिरहित, अवपंक सुखाना, ऑक्सीकरण, मात्रा)

13.4 विपत्तिजनक अपशेष का विसर्जन

अपशिष्ट पदार्थों के अंतिम व्ययन की भी सावधानी से योजना बनाना आवश्यक है। विपत्तिजनक अपशेष के विसर्जन के चार तरीके हैं :

भरती गड्ढों में विसर्जन (लैंडफिल डिस्पोसल)
दाहन
समुद्र में फेंक देना
जमीन के भीतर भूमिगत तहों में दबा देना

अब हम इनमें से हर तरीके के बारे में पढ़ेंगे।

13.4.1 भरती गड्ढों में विसर्जन

अनेक देशों में भूमि में कचरे का निपटान एक महत्वपूर्ण तरीका है। इसका अर्थ है विपत्तिजनक पदार्थों को भूमि के नीचे जमा करना। इस तरीके में अपशेष को एक निर्धारित स्थान पर जमा कर दिया जाता है। भारत में अस्वच्छ तरीके से खुले ढेरों में भी अपशेष व्ययन किया जाता है और स्वच्छता का उचित ध्यान रखते हुए सुरक्षित भरती गड्ढों (लैंडफिल) में भी। खुले ढेर में अपशेष फेंकना एक घटिया तरीका है क्योंकि इससे पर्यावरणीय समस्याएँ पैदा होती है। इनसे इलाके का सौंदर्य भी नष्ट हो जाता है और चूहों-छंछूदरों के लिए भी जगह बनती है जो बीमारियाँ फैलाते हैं। खुला अपशेष सड़ने से बदबू भी फैलाता है। ऐसे अपशेष को जलाने से धुआँ फैलता है। इसके अलावा, बरसाती पानी अपशेष से छनकर प्राकृतिक जल स्रोतों और नदी-नालों तक में पहुँचता है और उनमें नुकसानदेह पदार्थों को पहुँचाता है।

सही तरीके से और स्वच्छता का ध्यान रखते हुए बनाए गए लैंडफिल पर्यावरण को बहुत कम नुकसान पहुँचाते हैं। अपशेष वाले स्थान के पैंदे और चारों ओर कड़ी मिट्टी की या अछिद्रीय पदार्थ की परत बिछाई जाती है। ताकि अपशेष में से आसपास के क्षेत्र में परिस्पंदन (रिसाव) न हो। अपशेष को निर्धारित स्थान पर रोज फेंकने के बाद ऊपर मिट्टी से ढँक देते हैं। इस तरह, ढक देने से कीटाणु और चूहे ढेर में नहीं घुस पाते। यहाँ अपशेष जलाया नहीं जाता। जब भरती गड्ढा (लैंडफिल) भर जाए तो कई लोग इस क्षेत्र को पूरी तरह ढँक देते हैं और इस क्षेत्र को मनोरंजन के क्षेत्र के तौर पर इस्तेमाल करने लगते हैं।

सामान्य भरती लैंडफिल क्षेत्रों में सबसे नीचे कृत्रिम दोहरी परत होती है और सबसे ऊपर अपशेष होता है। ऐसे एक लैंडफिल का डिजाइन चित्र 13.1 में दिखाया गया है।

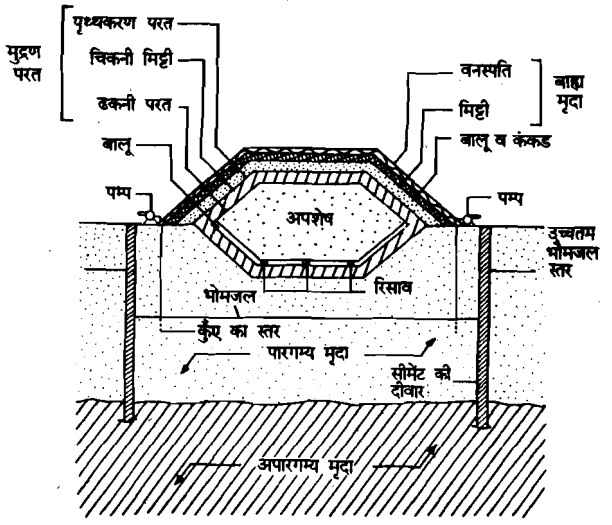

चित्र 13.1 : एक दोहरी परत वाले भरती गड्ढे का ख़ाका

इस डिजाइन में अपशेषों के संग्रहण के स्थान की देख-रेख और मरम्मत की व्यवस्था नहीं होती। इस बीच दूसरे तरीके के भरती गड्ढे लैंडफिल बनाए जाने लगे हैं जिनमें एक विभिन्न कक्षों वाली एक बुनियादी संरचना होती है। कक्ष (सेल) ऐसा स्थान है, जहाँ कारीगर जाकर किसी भी गड़बड़ी की मरम्मत कर सकते हैं। ऐसा अति सुरक्षित भरती गड्ढा (लैंडफिल) चित्र 13.2 में दिखाया गया है।

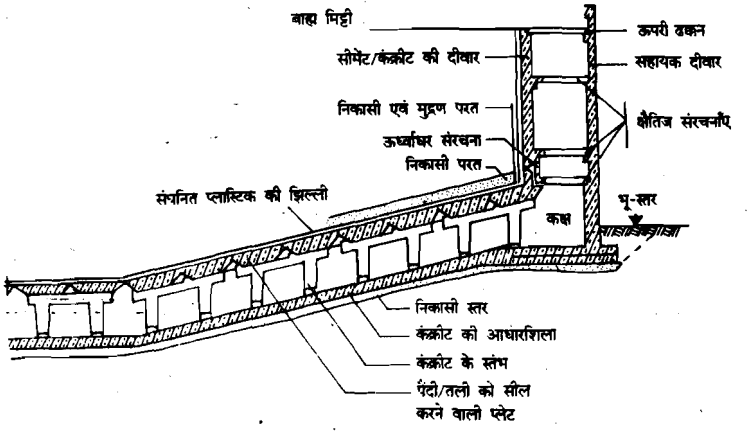

चित्र 13.2 : अति सुरक्षित भरती गड्ढे का ख़ाका

कई वर्षों तक लैंडफिल में कूड़ा डालते रहने के बाद उसका आकार चित्र 13.3 जैसा हो जाता है।

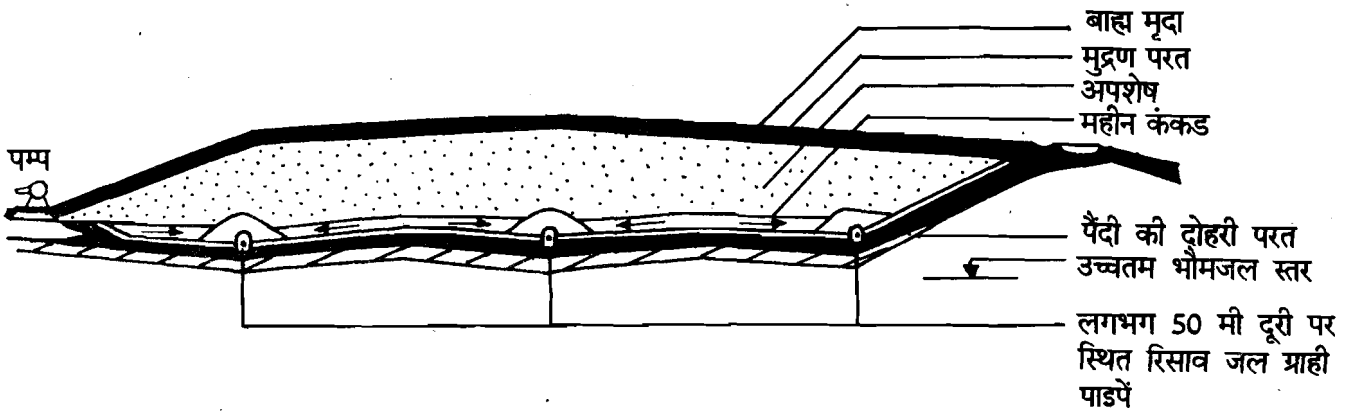

चित्र 13.3 : कई वर्षों तक इस्तेमाल होने के बाद भरती गड्ढे का आकार

13.4.2 दाहन

दाहन की क्रिया में आग पकड़ सकने वाले बेकार के अपशेष जला दिये जाते हैं। अनेक उद्योगों के पास और बड़े शहरों में अपशिष्ट पदार्थों को डालने के लिए पर्याप्त खाली स्थान नहीं होता। ऐसी स्थिति में जलाने का तरीका इस्तेमाल होता है। इस तरीके से ज्यादातर खतरनाक पदार्थ ऑक्सीजन की क्रिया द्वारा हानिरहित बन जाते हैं। अपशेष की मात्रा को कम से कम करने का भी यह बढ़िया तरीका है, (देखिए चित्र 13.4) परंतु इसकी लागत काफी ज्यादा है।

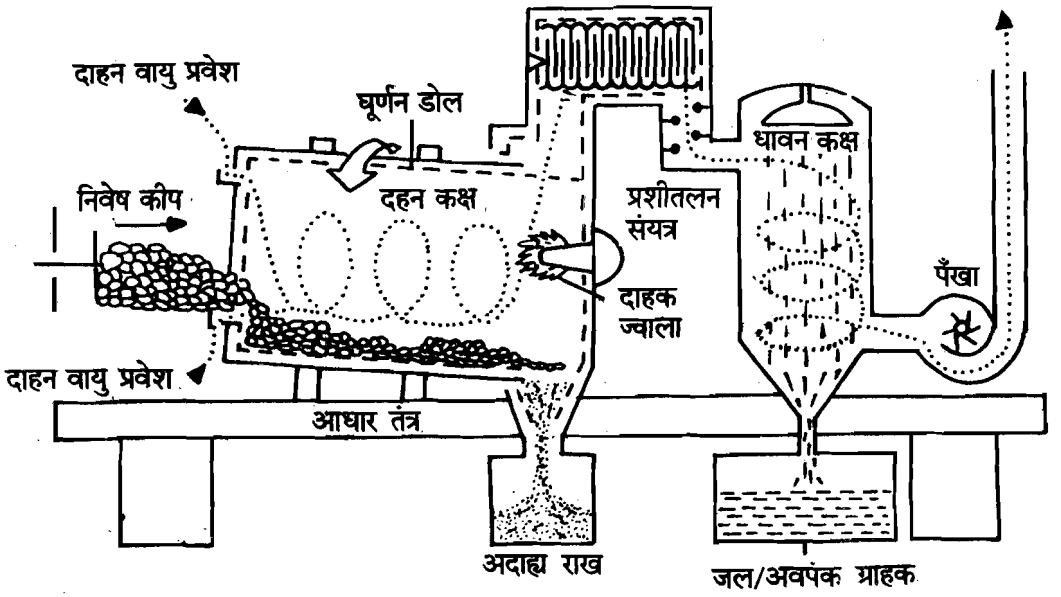

चित्र 13.4 : एक प्रारूपी दाहन भट्टी

दाहन-संयंत्र का चुनाव अपशेष की प्रकृति और लक्षणों पर निर्भर करता है। एक सामान्य दाहन संयंत्र में दाहन कक्ष, बर्नर कक्ष, प्रीकूलर अर्थात् प्रशीतलन संयत्र, धावन कक्ष अर्थात् सक्रंबर, वातन पंखा और गैस बाहर निकलने की प्रणाली होती है।

लाभ

यह द्रव अथवा ठोस अपशेष का उच्च ताप पर ऑक्सीकरण करने की प्रक्रिया है जिसमें अपशिष्ट पदार्थों को गैसों तथा अदहनशील अवशेष में बदल दिया जाता है। गैसों को (ऊर्जा प्राप्त करके या उसके बिना और सफाई करके या उसके बिना) वायुमंडल में जाने दिया जाता है। बाकी बचा अवशेष तथा गैसें जमीन पर किसी भरती गड्ढे (लैंडफिल) में डाल दिया जाता है। कुल मिलाकर, दहन ऐसे बेहद विषैले अपशेष को विषरहित बनाने का वैकल्पिक तरीका है जिससे अब कोई उपयोगी पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकता। वह अपशेष की मात्रा कम करने का बहुत अच्छा तरीका है और कचरे से ऊष्मा के रूप में ऊर्जा भी प्राप्त हो सकती है। कई स्थानों पर अपशेष को जला कर भाप प्राप्त की जाती है और इस भाप से इंजन को चलाकर बिजली प्राप्त की जाती है।

अपशेष में पाए जाने वाले ज्वलनशील पदार्थ

आमतौर पर ज्वलनशील अपशेषों को ही जलाया जाता है। उसमें भी निम्नलिखित पदार्थ धारण करने वाले अपशेषों को अक्सर जलाया जाता है :

- विलेय अपशेष तथा अवपंक (स्लज)
- बेकार खनिज तेल
- वार्निश और पेंट बनाने से निकला अपशेष तथा अवपंक
- प्लास्टिक, रबर तथा लेटेक्स का अपशेष तथा अवपंक
- तेल, इमल्शन और तेल एवं पानी का मिश्रण
- फीनोल वाले अवशेष
- खनिज तेल का अवपंक
- रेसिन (राल) के अवशेष
- ग्रीज तथा मोम के अपशेष
- कीटनाशकों के अपशेष
- अम्ल टार और इस्तेमाल हो चुकी पक्की मिट्टी
- हैलोजनों, गंधक और फास्फोरस के यौगिकों वाले कार्बनिक अपशेष

क्लोरीन, गंधक, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पॉलीक्लोरीनेटेडबाई फिनाइल (पी.सी.बी.) की ज्यादा मात्रा तथा अधिस्थानक धातुओं और कैंसर पैदा करने वाले पदार्थों वाले अपशेष के दहन में विशेष सावधानी तथा प्रौद्योगिक की जरूरत पड़ती है। अनेक शहरों के दहन-संयंत्रों में प्रदूषण नियंत्रण की समुचित व्यवस्था नहीं होती। इन संयंत्रों में दाहन से ऐसी गैसें और ठोस कण निकल सकते हैं, जो मानवीय स्वास्थ्य के लिए घातक हों, सम्पत्ति का नुकसान करें या पेड़-पौधों को नष्ट कर दें। समुचित प्रदूषण नियंत्रण व्यवस्था के बिना काम करने वाले सामान्य दाहन-संयंत्रों से निकली गैसें खतरनाक हो सकती हैं। दाहन कभी-कभी बेहद मंहगा पड़ सकता है।

13.4.3 समुद्र में फेंकना

विपत्तिजनक अपशेष के निपटान का एक और तरीका उसे गहरे समुद्र में डाल देना है ताकि भू-जल में विषाक्तता न आए।

जमीन पर पैदा हुए अपशेष को समुद्र में फेंकने के पीछे यह गलत धारणा है कि समुद्र में पानी का जो विशाल भंडार है, उसमें अपशेष की गंदगी इतनी विरल हो जाएगी कि बिना स्थायी नुकसान के कूड़े का निपटान किया जा सकता है। परंतु यह धारणा भ्रामक भी है और अनुचित भी इस तरीके को चुनने के पीछे शायद इसका आमतौर पर सस्ता होना है, क्योंकि व्ययन के क्षेत्र का चुनाव अपशेष पैदा करने वाले स्रोत की भौगोलिक स्थिति के आधार पर होता है।

समुद्र के कमरे के निपटान पर अंतर्राष्ट्रीय कानूनों तथा इसकी पुष्टि के लिए बने राष्ट्रीय कानूनों द्वारा नियंत्रण किया जाता है। अपशेष फेंके जाने से समुद्रों में प्रदूषण रोकने के लिए बने अंतर्राष्ट्रीय कानून में बेहद खतरनाक अपशेष को समुद्रों में फेंकने पर रोक लगाई गई है। ऐसे अपशेष में कार्बनिक सिलिकॉन यौगिक, कार्बनिक हैलोजनिक पदार्थ, पारा और इसके यौगिक, कैडमियम, कैंसर पैदा करने वाले पदार्थ, प्लास्टिक आदि शामिल हैं। प्लास्टिक के अपशेष से मछली पकड़ने और नौ-वहन में काफी दिक्कतें आती हैं। इकाई 11 से आपने पढ़ा कि किस प्रकार औद्योगिक अपशेषों का समुद्र में विसर्जन करने से जापानी मछुआरों में "मिनामाता" नाम का रोग फैल गया था।

13.4.4 जमीन के भीतर भूमिगत तहों में दबा देना

रेडियोधर्मी अपशिष्ट पदार्थ परमाणु ऊर्जा के राष्ट्रीय सुरक्षा संयत्रों तथा शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए उपयोग संबंधी प्रक्रियाओं से भी पैदा होते हैं। ये प्रक्रियाएँ रेडियोधर्मी अयस्क को खानों से निकालने, परमाणु ईंधन तैयार करने, चिकित्सा अनुसंधान कार्य आदि से जुड़ी हैं। ऐसी दशा में रेडियोधर्मी अपशेष जैसे हानिकारक पदार्थों का जमीन पर जलाकर, पर्यावरण की दृष्टि से उचित तरीके से निपटान काफी मँहगा पड़ सकता है। भूमि में दबा देना ही रेडियोधर्मी अपशेष के लिए पर्यावरणीय और आर्थिक दृष्टि से अनुकूल तरीका हो सकता है। निष्क्रिय या आंशिक रूप से सक्रिय खानों में ही ऐसे अपशेष के भूमिगत निपटान की अनुमति दी जाती है। इस समय दुनिया भर में केवल एक गहरी खान में भूमि के नीचे निपटान की सुविधा उपलब्ध है। यह पश्चिम जर्मनी में हर्फा न्यूरोद की हेलाइट/पौटाश लवण की इस्तेमाल हो चुकी गुफानुमा खान है।

रेडियोधर्मी अवशेषों के विसर्जन के लिए अक्सर नमक की खानें चुनी जाती हैं क्योंकि इसमें कुछ विशिष्ट गुण हैं। नमक का जमाव अपशेषों को अन्य भू-गर्भीय पदार्थों के सम्पर्क से रोकता है। नमक का होना ही इस बात का आश्वासन है कि भूमि के नीचे स्थित यह निर्धारित स्थान लाखों वर्षों तक पानी से अप्रभावित रहा है, नमक से

नमक अंदर आते पानी को अपने में जज्ब कर लेता है और दीवार में आयी मामूली टूट-फूट को पुनः क्रिस्लीकरण द्वारा ठीक कर लेता है। इस तरह अपारगम्यता बनी रहती है। इसके साथ ही, ऊपर की परत पत्थर जैसी चीजों के बने होने से अपारगम्यता और मजबूत हो जाती है। नमक की खान का भीतरी वातावरण बेहद शुष्क होता है। अतः धातु उपकरणों तथा डिब्बों आदि पर जंग नहीं लगती। कोयला खानों की तरह यहाँ मीथेन विस्फोट का खतरा भी नहीं होता। चट्टानों की खुदाई के दौरान नमक की खानों में कार्बन डाइआक्साइड गैस के विस्फोटों जैसी घटनाएँ हो सकती हैं परंतु इससे कोई खतरा नहीं होता खासतौर से जब खान में से खनन-कार्य समाप्त हो गया हो। नमक की ताप-चालकता अच्छी होती है। नमक मजबूत होता है और खुदाई के दौरान खान में से बड़ी-बड़ी गैलरी निकल सकती हैं। साथ ही दबाव पड़ने पर नमक में कुछ सुघट्यता (लचीलापन) भी होता है, जिससे खान की दबाव सहने की शक्ति बढ़ जाती है और कुल मिलाकर स्थायित्व बना रहता है।

इस तरह, सिद्धांत रूप में, आपने जाना कि विपत्तिजनक अपशेषों के विसर्जन के चार तरीके हैं :

1) ठोस अवशेषों को भरती गड्ढों में डालना
2) ज्वलनशील कार्बनिक अपशेषों का दाहन
3) समुद्र में फेंकना, और
4) रेडियोधर्मी अपशेषों को आमतौर से भूमिगत तहों में दबा देना।

आगे आप पढ़ेंगे कि वास्तव में ये तरीके किस तरह से भारत में अपनाए जा रहे हैं।

बोध प्रश्न 5

नीचे दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1) विपत्तिजनक अपशेष के व्ययन के साथ निम्न समस्याएं जुड़ी हैं — (क) अपशिष्ट पदार्थों का इसके उत्पादनकर्ता के लिए आमतौर से कोई ..... मूल्य नहीं होता, (ख) इसके भौतिक और रासायनिक ..... की जानकारी नहीं हो सकती, और (ग) .... अवशेषों को आलस्यवश साथ-साथ रख देने से बड़े खतरे हो सकते हैं।

2) लापरवाही से खुले में कूड़ा फेंकना अपशेष व्ययन का घटिया तरीका है क्योंकि इससे चूहों को घर मिलता है, अपशिष्ट पदार्थों के सड़ने से ..... आती है, अपशेष के ..... अवयव परिस्पंदित हो कर प्राकृतिक जल स्रोतों और नदी-नालों में पहुँच जाते हैं।

3) सही तरीके से व्यवसाधित .... में अपशिष्ट पदार्थों के भंडारण से पर्यावरण का कोई नुकसान नहीं होता। सबसे पहले ऐसे स्थान की पैंदी में ..... पदार्थ जैसे चिकनी मिट्टी की परत बिछाई जानी चाहिए, ताकि अपशेष के अंश ..... होकर आस-पास के इलाके में न फैलें।

4) नमक की खानें रेडियोधर्मी अपशेषों के व्ययन के लिए बेहतर इस्तेमाल होती है क्योंकि नमक पानी के लिए ..... हैं और पानी को अपने में जज्ब कर लेता है। यह पुनः क्रिस्टीकरण के जरिए मामूली टूट-फूट की ..... कर लेता है। नमक की खानों का वातावरण शुष्क होने से धातु की वस्तुओं पर ..... नहीं लगता। साथ ही, नमक में ..... होती है, जिससे खान की दबाव सह सकने की शक्ति बढ़ जाती है और स्थायित्व बना रहता है।

(आर्थिक, निक्षालित, लक्षणों, जंग, भरती गड्ढों, बदबू, सुघट्यता, अपारगम्य, हानिप्रद, अछिद्रीय, मरम्मत, एक-दूसरे से प्रतिक्रिया करने वाले)

13.5 भारत में विपत्तिजनक अपशेष के विसर्जन की व्यवस्था

अब हम भारत में अपशेष के पैदा होने तथा इसके व्ययन की स्थिति की संक्षेप में चर्चा करेंगे।

13.5.1 अपशेषों के स्रोत

आमतौर से विपत्तिजनक अपशेष के स्रोतों को दो भागों में बांटा जा सकता है—प्रक्रिया-केन्द्रित और पर्यावरण नियंत्रण-केन्द्रित। प्रक्रिया-केन्द्रित अपशेष कच्चे माल से निर्मित सामग्री बनाने के दौरान पैदा होता है, जबकि पर्यावरण नियंत्रण-केन्द्रित अपशेष औद्योगिक अधिष्ठानों से गैसीय तथा द्रव्य बहीस्रावों को हानिरहित बनाने के दौरान पैदा होता है। भारत में मुख्यतः प्रक्रिया-केन्द्रित विपत्तिजनक उत्पादों द्वारा प्रदूषण होता है।

उद्योगों से निकले नुकसानदेह बहिस्रावों की मात्रा तथा लक्षण विभिन्न कारकों पर निर्भर करते हैं जैसे औद्योगिक इकाई की उत्पादन क्षमता, उत्पादन की तकनीक, प्रक्रिया की कार्य-कुशलता, कच्चे माल के संसाधन की विधि इत्यादि। आमतौर पर बड़े पैमाने पर पैदा करने वाले कई उद्योगों के ठोस अपशेष में नुकसानदेह अंश कम मात्रा

दूसरी ओर, कीटनाशकों संयंत्रों, इलेक्ट्रोप्लेटिंग, मेटल फिनिशिंग संयंत्रों फोटोग्राफ़िक रसायन इकाइयों आदि उद्योगों में ठोस अपशेष तो कम निकलता है लेकिन इसमें विषैले और विपत्तिजनक पदार्थ बड़ी मात्रा में होते हैं। ऐसे अपशिष्ट उत्पादों को जमा करने, हानिरहित बनाने और निपटान के लिए विशेष तकनीकें होती हैं।

उद्योगों द्वारा उत्पादित कुल अपशेष का करीब 15 प्रतिशत विपत्तिजनक अपशेष के वर्ग में आता है अर्थात् हालाँकि नुकसानदेह कचरा, कुल कचरे का एक छोटा हिस्सा होता है। परन्तु इसके प्रभाव घातक होते हैं। यह न केवल पर्यावरण पर बुरा असर डालता है, बल्कि खाद्य शृंखला के जरिए **अवार्धित** होकर मानव स्वास्थ्य के लिए भी खतरनाक हो जाता है।

13.5.2 विसर्जन के विभिन्न तरीके

चूंकि हमारे देश में अपशेषों के रख-रखाव, उदासीनीकरण (हानिरहित बनाने) और विसर्जन के बारे में समुचित कानूनी प्रावधान नहीं हैं। इसलिए आमतौर पर विपत्तिजनक अपशेष, जहाँ सुविधाजनक और नज़दीक हो, वहीं फेंक दिया जाता है। इस समय हमारे देश में अपशिष्ट उत्पादों के व्ययन के निम्न तरीके अपनाए जाते हैं :

1) शहर के अपजल के साथ ही व्ययन निपटान
2) नदियों में या नदियों के किनारे व्ययन
3) खुले गड्ढों में जलाकर व्ययन
4) जल के बहाव की दृष्टि से समुद्र के निचले इलाकों और मुहानों में व्ययन
5) अपनी सुविधानुसार डिजाइन किए गए दाहन संयंत्रों में जलाकर व्ययन।

ज्यादातर अधिस्थानी धातुओं वाला अपशेष और कीटनाशकों, विलेयक डिस्टिलेट्स, फेनोलिक्स, साइनाइड जैसे बेहद विषैले अपशेषों के व्ययन के लिए भी यही तरीके अपनाए जाते हैं। जहाँ तक प्रभाव का प्रश्न है, महत्वपूर्ण बात यह है कि इस बात का सही मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि व्ययन के कौन से तरीके से पर्यावरण पर क्या अनुषंगी प्रभाव (प्रतिकूल असर) और प्रतिक्रिया होती है। भारत में इन नीतियों के उचित आकलन की व्यवस्था नहीं है इसलिए अधिकांशतः अपशेषों का सस्ता और अनुचित व्ययन होता है। आइए, अब हम गलत तरीके से कचरे के निपटान (अपशेषों के विसर्जन) के हानिप्रद प्रभावों की चर्चा करें।

13.6 अनुचित विसर्जन के अनुषंगी प्रभाव

गलत तरीके से अपशेष के विसर्जन से स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर प्रतिकूल असर पड़ता है। खासकर विपत्तिजनक अपशेषों को अस्वच्छ तरीके से खुले में या नदी में फेंक कर और खुले में गड्ढों में जलागर नष्ट नहीं करना चाहिए। इन तरीकों में सुधार जरूरी है। गलत तरीके से अपशेष के निपटान का मुख्य नुकसान है — भूमि और भू-जल का विषाक्त हो जाना। अक्सर विपत्तिजनक अपशेषों को खुले में फेंक देने से ऐसी स्थिति आती है। चित्र 13.5 में सरल तरीके से यह समझाया गया है कि कैसे नुकसानदेह पदार्थ जमीन पर फेंककर व्ययन किए जाने के बाद फिर मानवीय पर्यावरण में पहुँचते हैं।

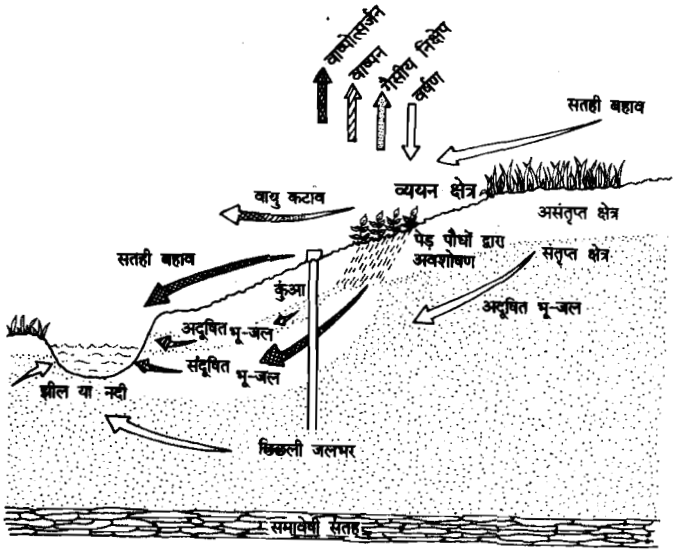

चित्र 13.5 : हानिप्रद रसायन भूमि की सतह के नीचे भू-जल को प्रदूषित कर देते हैं। अनेक गाँव और शहर पेयजल के लिए, भू-जल पर निर्भर करते हैं। अपशेष के कुछ नुकसानदेह पदार्थ नदियों और झीलों में निक्षालित होकर उनको प्रदूषित कर देते हैं, जिससे मछलियाँ, जलीय पौधे मर जाते हैं। और नगरों की जलापूर्ति के जहरीले होने का खतरा हो जाता है। कुछ अपशेष खाद्य पदार्थों को विषैला बना देते हैं, जिसका मनुष्य और पशुओं पर घातक असर पड़ता है। कुछ जहरीले पदार्थ छूने से या

विपत्तिजनक अपशेष का पानी के माध्यम से ही कम से कम पाँच तरीकों से आदमी पर असर पड़ सकता है :

1) पेयजल के जरिए सीधा प्रभाव
2) पानी के गरम होने से, विषाक्त पदार्थों का वाष्प रूप में सूँघे जाने से
3) नहाने और सफाई के दौरान, त्वचा द्वारा विषाक्त पदार्थों को सोख लिए जाने से
4) प्रदूषित भू-जल का इस्तेमाल कर रहे पौधों और जंतुओं से प्राप्त उत्पादों के उपयोग से
5) विषाक्त मिट्टी के संपर्क में आने पर, मानव त्वचा द्वारा ऐसे पदार्थों को ग्रहण कर लेने से।

बोध प्रश्न 6

खाली स्थानों का नीचे दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द लेकर भरिए :

1) हमारे देश में औद्योगिक अपशेषों के व्ययन के निम्न तरीके अपनाए जाते हैं।
   क) ..... के साथ ही व्ययन
   ख) ..... में व्ययन
   ग) नदियों या ..... पर व्ययन
   घ) समुद्र तथा समुद्रों के ..... पर व्ययन
   च) ..... में
   छ) अपनी इच्छानुसार डिजाइन किए गए ..... में जलाकर
2) गलत तरीके से किए गए अपशेष के विसर्जन का मुख्य नुकसान ..... और ..... का विषाक्त होना है।
3) कचरे के कुछ अंश नदियाँ, और झीलों को प्रदूषित कर ..... को विषाक्त बना देते हैं, जिससे मनुष्यों तक भी जहर फैलता है।
4) कचरे के कुछ हानिप्रद अंश ..... को भी प्रदूषित कर देते हैं तो कुछ से ..... का खतरा पैदा हो सकता है।

   (शहर की गंदगी, भू-जल, दहन-संयंत्रों, मुहानों, नदी-तटों, वायु, आग लगने, मृदा, खुले गड्ढ़ों, निचले इलाकों, खाद्य सामग्री)

पूरे विश्व भर में लोगों में हाल ही में विपत्तिजनक अवशेषों के गलत और अनियंत्रित तरीके से फेंके जाने के खिलाफ जागरुकता पैदा हुई है। इस तरह अपशेष के व्ययन से मवेशियों की जानें गई हैं और मनुष्यों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा है। अपशेषों के गलत तरीके से विसर्जन के खतरों के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

सत्तर के दशक में हालैंड से लेकरकर्क नगर में ऐसे स्थान पर 250 से अधिक मकान बनाए गए, जहाँ पहले विपत्तिजनक और विषैले अवयवों वाला अवशेष फेंका गया था। करीब दस साल बाद, इस अपशेष के नुकसानदेह प्रभावों का स्थानीय निवासियों को पता चला और तब करीब डेढ़ लाख टन प्रदूषित मिट्टी खोदकर उसका उचित तरीके से निपटान किया गया। अतिदूषित अपशेष को हटाने के इस काम में करीब 20 करोड़ डच गिल्डर खर्च हुए।

जापान में कमिओका नगर में जस्ता खनन उद्योग से निकलने वाले अपशेष के विषैले अवयवों को बिना हानि रहित बनाए जितसू नदी में विसर्जित कर दिया जाता था। इस नदी का पानी पीने के तथा सिंचाई के लिए इस्तेमाल होता था और आज भी होता है। 1919 में एक 35 वर्षीय व्यक्ति में इताइ-इताइ (itai-itai) नामक बीमारी के लक्षण पहली बार दिखे। अब पता चला है कि यह बीमारी कैडमियम नाम अधिस्थानी धातु के विषप्राय प्रभावों से होती है। 1955 में सोसाइटी ऑफ मेडिसन को इस बीमारी की खबर दी गई। लेकिन इसके बहुत बाद में, 1963 में जापान के सार्वजनिक स्वास्थ्य और कल्याण मंत्रालय ने प्रदूषण से जुड़ी इस बीमारी की जाँच के लिए एक सर्वेक्षण समिति बनाई। इस समिति ने भी दस वर्ष का समय लिया। इसके बाद ही जापान सरकार ने अपने निष्कर्षों की घोषणा की कि इताइ-इताइ बीमारी कैडमियम द्वारा शरीर को नुकसान पहुँचाए जाने से होती है।

जर्मनी के हैम्बर्ग नगर में 1935 से 1971 के बीच करीब डेढ़ लाख मीट्रिक टन बेकार तेल तथा तरल रासायनिक अपशेष और पचास हजार ड्रम विषजन्य रासायनिक अपशेष शहर की गंदगी के साथ जार्जस्वर्डर के भरती गड्ढे (कचरा फेंकने के स्थान) में फेंका गया। इस क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल 42 हैक्टेयर है और यहाँ 40 मीटर ऊँचा ढ़ेर लग गया। 1983 में कचरे के स्थान से निक्षालित हो (रिस) कर आ रहे तैलीय पदार्थ में **डायोक्सीन** नामक घातक रसायन पाया गया है। इस इलाके की सफाई में 10 करोड़ डच मार्क से ज्यादा की राशि लगेगी।

उदयपुर के बिछड़ी नामक गाँव का दृष्टान्त सामने आया जब 1988 में सिल्वर कैमिकल्स फैक्टरी से निकले हुए अपवाही जल के प्रयोग से भारी संख्या में मौते हुई। पानी सारा लाल हो गया है। जिसे पीने से उल्टी आती है। सिंचाई के लिए निकृष्ट इस पानी में घास तक नहीं उग सकती। जो आज तक संदूषित है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्व

विद्यालय के अनुसार इसमें मानक निरापद मात्रा से 1.5 हजार गुना अधिक मात्रा में प्रदूषक उपस्थित हैं। आब्जर्वर ने रिपोर्ट दी है कि दोषियों को न्यायालय में पेश किया गया है। परन्तु न्यायव्यवस्था क्रियान्वित होने में काफी समय लगता है और बिछड़ी के निवासियों को अभी तक कोई राहत नहीं मिली है।

विपत्तिजनक अपशेष को अनियंत्रित तरीके से फेंकने का एक दृष्टांत

साइनाइड का इस्तेमाल विद्युतलेपन (इलेक्ट्रोप्लेटिंग) तथा धातुओं से जुड़ी अन्य विभिन्न प्रक्रियाओं में कच्चे माल की तरह होता है। इन प्रक्रियाओं से अवपंक के रूप में जो अपशेष बनता है, उसमें साइनाइड का अंश बहुत अधिक पाया जाता है।

मद्रास के पास अनेक बड़ी-छोटी इकाइयाँ कच्चे माल के तौर पर साइनाइड का इस्तेमाल करती हैं। इस समय नुकसानदेह अपशेष के व्ययन पर कोई नियंत्रण नहीं है। अतः मनमाने तरीके से इस अपशेष का विसर्जन होता है। 21 अगस्त, 1989 को मद्रास में भैंसों के मरने की घटनाओं से साइनाइड वाले अपशेष के खुले में फेंके जाने का मामला सामने आया। पुलिस रिपोर्टों के आधार पर तमिलनाडु प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने मैसर्स टी.टी. साइकिल्स को मुकदमे का नोटिस जारी किया। यह पता चला कि इस इकाई ने अपना **साइनाइड** वाला अपशेष एंजिल नगर नहर के पास फेंक दिया था। इससे नहर का पानी प्रदूषित हो गया और इस जहरीले पानी को पाने से भैंसों की मृत्यु हुई, यह बात प्रमाणित हो गई। औद्योगिक इकाई ने स्वीकार किया कि उसने एक ठेकेदार को बड़ी मात्रा में साइनाइड वाला अवशेष, समुद्र तल से 7 किलोमीटर की निर्धारित दूरी पर समुद्र में फेंकने के लिए दिया था। ठेकेदार ने सायनाइड अपशेष नहर के किनारे फेंक दिया था। नहर के पानी की जांच से पता चला कि इसमें प्रति लीटर 210 मिलीलीटर के करीब साइनाइड की भारी मात्रा है। यह नहर कम आय वर्ग के लोगों के घरों के पास से गुज़रती है इसलिए यह भी संभव था कि अगर पता नहीं चलता तो आगे इस विषाक्त जल को पीने से आदमियों की भी जानें जातीं।

मद्रास नगर निगम तथा तमिलनाडु प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने मिलकर नहर को विषरहित बनाने का काम हाथ में लिया। इस काम में लगे लोगों में से 45 को अस्पताल में दाखिल करना पड़ा और जैव-रासायनिक तथा फोरेंसिक परीक्षणों से पता चला कि उनमें से ज्यादातर के शरीर में साइनाइड पहुँच चुका था।

13.7 सारांश

बुनियादी सिद्धांत के रूप में, विपत्तिजनक अपशेषों का ऐसे निपटान होना चाहिए कि समाज के हित में इसके कुप्रभाव कम से कम हों, इससे मानवीय स्वास्थ्य को खतरा न हो और पर्यावरण की स्वच्छता पर बुरा असर न पड़े।

अपशेष को उसी रूप में पुनर्उपयुक्त या अन्य तरीकों से पुनः चक्रित करके दुबारा इस्तेमाल किया जा सकता है और जलाकर इसकी मात्रा कम से कम की जा सकती है। विषैले अपशेषों को निपटान से पहले हानिरहित बनाना जरूरी है। इसके उदासीनीकरण के लिए उपचार के रासायनिक भौतिक तथा जैव वैज्ञानिक तरीके अपनाए जा सकते हैं। विषरहित बनाने के बाद, अपशेष को सावधानी से निपटान के लिए निर्धारित स्थान पर ले जाया जाना चाहिए ताकि आपस में प्रतिक्रिया करने वाले पदार्थ साथ-साथ न रखे जाएँ। इस दौरान रख-रखाव का ध्यान रखा जाना चाहिए।

इसके बाद कचरे को सही तरीके से इस्तेमाल किए जा रहे कूड़े के स्थान पर भरती गड्ढों (लैंडफिल) या समुद्र में फेंका जाता है। कूड़े को जलाया भी जा सकता है, या फिर नमक की खानों में दबाया जा सकता है।

हमने भारत तथा अन्य देशों में कचरे के गलत तरीके से निपटान के हानिप्रद प्रभावों का भी अध्ययन किया।

13.8 अंत में कुछ प्रश्न

1) विषैले तथा विपत्तिजनक अपशेष के बीच क्या अंतर है?

2) निम्न कथनों में कौन सही हैं और कौन गलत :
   1) विषैलापन एक बाह्य लक्षण है।
   2) ज्यादातर देशों में अपशेषों को व्यापक सूची के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।
   3) तैलीय अवपंक को जमीन पर अपशेष विसर्जन के निर्धारित स्थान पर भरती गड्ढों (लैंडफिल) में फेंका जाना चाहिए।
   4) अस्पतालों में अपशेष को जलाया जाना चाहिए।
   5) प्रदूषण नियंत्रण के कामों में विपत्तिजनक अपशेष पैदा नहीं होता।
   6) इस समय, हमारे देश में विपत्तिजनक अपशेषों का सही तरीके से व्ययन हो रहा है।

3) अपशेष के वर्गीकरण के व्यापक सूची वाले तरीके को बताइए।

4) विभिन्न विपत्तिजनक अपशेषों के व्ययन की कैसी व्यवस्था होनी चाहिए?

5) रासायनिक अपशेषों में ऐसे कौन-कौन से पदार्थ हैं, जिन्हें जलाने के लिए विशेष प्रौद्योगिकी चाहिए?

6) अवशेष के उसी रूप में पुनः उपयोग तथा अन्य रूप में इस्तेमाल (पुनःचक्रण) के एक-एक उदाहरण दीजिए।

7) विपत्तिजनक अपशेषों के सात स्रोतों और उनकी अपशिष्ट पदार्थ पैदा करने वाली गतिविधियों के नाम लिखिए।

13.9 उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) 1) उत्परिवर्तनकारी, विकृतिकारी, कैंसरकारी
   2) क) ज्वलनशीलता
      ख) क्षरणकारिता
      ग) प्रतिक्रियाशीलता
      घ) रेडियोधर्मिता
      ङ) विषैलापन
   3) क) मृत्यु, ठीक न हो सकने वाली, ठीक हो सकने वाली
      ख) इस्तेमाल, भंडारण, निपटान, सक्षम

बोध प्रश्न 2

1) 1) अपशेष का वर्गीकरण
   2) चौदह
   3) विषैले, विपत्तिकारक
   4) अट्ठारह, बेकार तेल तथा तैलीय इमल्शन, अधिकतम (देखिए परिशिष्ट-II)

2) क) ग
   ख) च
   ग) घ
   घ) क
   च) ख

बोध प्रश्न 3

1) 1) क) कम से कम करना
      ख) पुनः चक्रण
      ग) निरापद (हानिरहित) बनाना
      घ) जमा करना (भंडारण)
      च) वहन
   2) क) प्रक्रिया प्रक्रम में सुधार लाना
      ख) अपशेष को नष्ट करना
      ग) अपशेषों को अलग करना
   3) क) अपशेष का पुनः उपयोग
      ख) पुनःचक्रण
   4) क) सही
      ख) सही
      ग) गलत
      घ) सही

बोध प्रश्न 4

1) विषहीन, उदासीनीकृत, हानिरहित
2) ऊर्जा संबंधी
3) लैगूनिंग, अवपंक सुखाना, टंकियों में भंडारण

4) कंडीशनिंग, डाइजेशन, कम्पोस्टिंग
5) ऑक्सीकरण, मात्रा

बोध प्रश्न 5

1) आर्थिक, लक्षणों, एक-दूसरे से प्रतिक्रिया करने वाले
2) बदबू, हानिप्रद
3) भरती गड्ढों, अछिद्रीय, निक्षालित
4) अपारगम्य, मरम्मत, जंग, सुघट्यता

बोध प्रश्न 6

1) क) शहर की गंदगी
   ख) निचले इलाकों
   ग) नदी तटों
   घ) मुहानों
   च) खुले गड्ढे
   छ) दहन-संयंत्रों
2) मिट्टी, भू-जल
3) खाद्य-सामग्री
4) वायु, आग लगने

अंत में कुछ प्रश्न

1) विषैलेपन का अर्थ पदार्थ की जैव क्रियाओं को विषाक्त करने की क्षमता से है, जबकि विपत्तिजनक होने का अर्थ इस आशंका से है कि पदार्थ के इस्तेमाल से संभावित नुकसान हो सकता है। विषैलापन पदार्थ का निहितात्मक लक्षण है जबकि किसी पदार्थ का पर्यावरण की दृष्टि से विपत्तिजनक होना उसकी आन्तरिक एवं बाह्य लक्षणों के आधार पर निर्धारित घातकता को सम्बोधित करता है।
2) 1) गलत
   2) सही
   3) गलत
   4) सही
   5) गलत
   6) गलत
3) अपशेष के व्यापक सूची वर्गीकरण विधि में अपने अंदाज़ से केवल ऐसे कचरे की सूची बनातें हैं, जो नुकसानदेह न हो। इस सूची में शामिल न होने वाले बाकी अपशेषों को विपत्तिजनक मान लिया जाता है। वर्गीकरण का यह तरीका अच्छा नहीं है।
4) विपत्तिजनक अपशेष की उचित और कारगर व्ययन प्रणाली में निम्न नीति अपनाई जाती है :
   1) कम अपशेष पैदा करने वाली और प्रदूषण न फैलाने वाली प्रौद्योगिकी इस्तेमाल कर विपत्तिजनक अपशिष्ट उत्पादों की मात्रा कम से कम की जाती है।
   2) अपशेष को कच्चे माल के तौर पर इस्तेमाल करने या इसमें से निकालने योग्य सभी उपयोगी वस्तुएँ निकाल लेने के बाद ही इसके व्ययन की बात सोची जाती है।
   3) उपचारण के भौतिक, रासायनिक और जैव-वैज्ञानिक तरीकों अथवा अवपंक संसाधन और ठोस रूप देकर अपशेष को अम्लीयता क्षारीयता तथा विषैलेपन से मुक्त किया जाता है।
   4) विपत्तिजनक और निरापद अपशेषों को अलग-अलग कर दिया जाता है। इसके बाद विपत्तिजनक अंशों को कचरे फेंकने के सुरक्षित भरती गड्ढों में दबा दिया जाता है।
5) क्लोरीन, गंधक, नाइट्रोजन, फास्फोरस का अंश, पॉ लीक्लोराइड बाइ फिनाइल तथा भारी धातुओं और कैंसर पैदा करने वाले अवयवों पदार्थों से मुक्त अपशेष के दहन के लिए विशेष प्रौद्योगिकी और सावधानी जरूरी है।
6) संसाधन के दौरान प्राप्त पुनः उपयुक्त हो सकने वाले अपशेष जैसे बेकार के कार्ड बोर्ड को कागज उद्योग में फिर लुगदी बनाने के काम म लाया जा सकता है। स्करैप स्टील प्रक्रिया से प्राप्त बैगहाउस धूल के गंधक के तेजाब वे साथ प्रतिक्रिया से स्पेंट पिकल लिकर नाम का उपयोगी उर्वरक बनता है।
7) देखिए तालिका 13.1।

परिशिष्ट—I

अपशिष्ट पदार्थों के प्रकार

क्र. सं.	अपशिष्ट उत्पाद जिसमें निम्नलिखित संघटक शामिल हों
1.	शल्य क्रियाओं से जुड़े पदार्थ, अस्पताल की गतिविधियों से जुड़ा कचरा
2.	फार्मास्यूटिकल्स, दवाइयाँ, औषधियाँ, पशु-चिकित्सा संबंधी यौगिक
3.	लकड़ी को खराब होने से बचाने वाले पदार्थ
4.	बायोसाइड और फाइटो-फार्मास्यूटिकल पदार्थ
5.	विलायक के रूप में इस्तेमाल किए गए पदार्थों के अवशेष
6.	विलायक के तौर पर इस्तेमाल न किए जाने वाले हैलोजनीकृत कार्बनिक पदार्थ
7.	टैंपरिंग (मृदुलीकरण) में उपयुक्त होने वाले लवण जैसे कि साइनाइड
8.	खनिज तेल या तेलीय पदार्थ, तेलीय अवशेष
9.	तेल और पानी के इमल्शन, हाइड्रोकार्बनों और पानी के मिश्रण
10.	पी.सी.बी. तथा/अथवा पी.सी.टी. वाले पदार्थ, यथा डाइलेक्ट्रिक्स (पाली क्लोरीनेटेड बाइफिनाइल एवं ट्राइफिनाइल)
11.	परिष्करण, आसवन और किसी अग्निभंजक (पाइरोलिटिक) प्रक्रिया से पैदा हुआ गाढ़े द्रव्य जैसे तली में जमा पदार्थ
12.	स्याहियाँ, रंजक, पिगमेंट्स, रोगन, वार्निश
13.	राल (रेजिन) लेटेक्स, प्लास्टिसाइजर्स, चिपकाने वाले पदार्थ
14.	शिक्षण गतिविधियों या अनुसंधान और विकास गतिविधियों के दौरान बनने वाले ऐसे रासायनिक पदार्थ, जिनकी पहचान नहीं हो सकी है और/अथवा जो नए पदार्थ हैं जिनका मानव और/अथवा पर्यावरण पर प्रभावों की जानकारी नहीं है। उदाहरणार्थ प्रयोगशालाओं के अवशेषी पदार्थ
15.	अग्निभंजक अर्थात् पाइरोटेकनीक्स और अन्य विस्फोटक पदार्थ
16.	फोटोग्राफी से सम्बद्ध रसायन और अभिकरण (प्रोसेसिंग) सामग्री
17.	ऐसा पदार्थ जो पॉलीक्लोरीनेटेड डाइबेंजोफ्यूरान से विषाक्त हो गया है
18.	पॉलीक्लोरीनेटेड डाइब्रेंजोफ्यूरॉन अथवा समजातीय यौगिक पदार्थ
19.	जंतु तथा वनस्पति पदार्थों से बने साबुन, वसाएं और मोम
20.	विलायक के तौर पर प्रयोग न किए जाने वाले अहैलोजनीकृत कार्बनिक पदार्थ
21.	धातु-रहित अकार्बनिक पदार्थ
22.	राख अथवा/और भस्में
23.	नदी आदि की तली से निकाली गई चीजों सहित मिट्टी, बालू आदि
24.	गैर-साइनाइड (मृदुलीकारक टैंपरिंग) लवण
25.	धातु चूर्ण
26.	इस्तेमाल हो चुके उत्प्रेरक पदार्थ
27.	ऐसा तरल या अर्द्धतरल मिश्रण, जिसमें धातुए हों
28.	प्रदूषण नियंत्रण गतिविधियों से प्राप्त अवशेष
29.	अकार्बनीकरण अपशेष
30.	आयन आदान-प्रदान के दौरान बनने वाले अवशेष
31.	टैंकों और/अथवा उपकरणों की सफाई से निकले अवशेष
32.	नुकसानदेह और विषैले रसायनों से दूषित हो चुके डिब्बे
33.	बैटरी तथा अन्य विद्युत सेल
34.	वनस्पति तेल, घरेलू कूड़ा-कचरा
35.	घरेलू कूड़े में से अलग किए गए ऐसे पदार्थ जिनमें नुकसानदेह लक्षण हो।

परिशिष्ट-II

भारत सरकार द्वारा निर्धारित विषत्तिजनक अपशिष्ट पदार्थों के विभिन्न वर्ग

अपशिष्ट पदार्थों के वर्ग	अपशेष का प्रकार	नुकसानदेह पदार्थ की कानून द्वारा निर्धारित अधिकतम मात्रा
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 1	साइनाइड अपशेष	साइनाइड की मात्रा एक किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 2	धातु फिनिशिंग अपशेष	शुद्ध धातु के रूप में निर्धारित पदार्थ की मात्रा 18 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 3	सीसे, ताँबें, जस्ता, क्रोमि॰॰, निकल, सेलेनियम, बेरियम और एंटीमनी के जल में विलेय रासायनिक यौगिकों वाला अपशेष	शुद्ध धातु के रूप में निर्धारित धातु की मात्रा 10 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 4	पारे, आर्सेनिक, थैलियम और कैडमियम	शुद्ध धातु के रूप में निर्धारित पदार्थ की मात्रा 5 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 5	विलायकों सहित अहैलोजेनीकृत हाइड्रोकार्बन	अहैलोजनीकृत हाइड्रोकार्बन की मात्रा 100 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 6	विलायकों सहित हैलोजेनेटेड हाइड्रोकार्बन	हैलोजेनेटेड हाइड्रोकार्बन की मात्रा 50 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 7	पेंट, पिगमेंट, चिपकाने वाले पदार्थ वार्निश और छपाई की स्याही के उत्पादन में पैदा होने वाला अपशेष	तेल और तेलीय इमल्शन के रूप में कचरे की मात्रा 250 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 8	रंजकों तथा रंगसाज़ी से जुड़े माध्यमिक पदार्थ, जिनमें अकार्बनिक यौगिक हों	अकार्बनिक रसायनों के रूप में मात्रा 200 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 9	रेजकों तथा रंजकों से जुड़े माध्यमिक पदार्थ जिनमें कार्बनिक यौगिक हों	कार्बनिक रसायनों के रूप में मात्रा 50 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 10	तेलों और तेलीय इमल्शनों के रूप में अपशेष	तेल और तेलीय इमल्शनों के रूप में मात्रा 1000 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 11	परिष्करण के दौरान निकले राल किस्म के अर्धतरल प्रदार्थ पाइरोलिटिक प्रक्रिया के दौरान निकले टैरी अवशेष	राल के रूप में मात्रा 200 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 12	भारी धातुओं, विषैले जीवाणुओं, तेलों, इमल्शलों इस्तेमाल हो चुके रसायनों और जलाने से बची भस्म से लेकर बेकार पानी को शुद्ध करने के बाद बचने वाला अर्द्धतरल कचरा (स्लज)	मात्रा का कोई निर्धारण नहीं
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 13	फीनोल	फीनोल के रूप में मात्रा 5 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 14	एस्बेस्टॉस	एस्बेस्टॉस के रूप में मात्रा 200 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 15	कीटनाशकों तथा खरपतवारनाशकों के उत्पादन से होने वाले कचरे तथा इनकी उत्पादन इकाईयों से प्राप्त अवशेष	कीटनाशक और इन माध्यमिक उत्पादों के रूप में मात्रा 5 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 16	अम्ल/क्षार युक्त अवशेष (कचरा)	अम्ल/क्षार के रूप में मात्रा 200 किलोग्राम प्रतिवर्ष
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 17	अनिर्धारित, बेकार उत्पाद	मात्रा का कोई निर्धारण नहीं
अपशिष्ट पदार्थ वर्ग 18	नुकसानदेह तथा विषैले रासायनिक रेडियोधर्मी पदार्थों के बेकार डिब्बे	मात्रा का कोई निर्धारण नहीं

पारिभाषिक शब्द (Glossary)

अन्तःस्रवण — भूमि से होकर जल की नीचे की तरफ गति। अन्तःस्रवण प्रभावी रूप से नीचे की दिशा में होता है।

अग्निभंजन तकनीक — वे तकनीक जिनमें द्रव्य का उच्च ताप पर अपघटन होता है।

अपक्षय — किसी भूखण्ड के वायु अपक्षेषण, सजीव कर्मक तथा रासायनिक क्रियाओं द्वारा अपक्षयित होने के लिए प्रयोग किया गया एक शब्द। इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि यह जल में भूखण्ड को प्रभावित करती हैं तथा उनका संरक्षण नहीं होने देती। यह कारक इसको अपरदन से स्पष्ट रूप से भिन्न बनाता है।

अपस्फोटरोधी — कम मात्रा में गेसोलिन में मिलाया जाने वाला पदार्थ (1% से कम) जिससे विस्फोटी दहन रुक जाता है (अपस्फोटन)। इनमें भली-भांति ज्ञात टेट्राएथिल लेड, $Pb(C_2H_5)_4$ है।

अनाच्छादन — उन प्रक्रियाओं के कुल योग को सम्बोधित करता है जो सामान्यतया भूमि तल को नीचे गिराते हैं। इसमें अपक्षय, संचरण तथा अपरदन शामिल हैं।

अनुक्रमण — समय के साथ समुदाय परिवर्तन की प्रक्रिया।

अविलता — जल में विलम्बित कणों के कारण दृश्यता में कमी की स्थिति।

आक्टेन संख्या — उन हल्के मोटर ईंधनों (पेट्रोल) के अपस्फोटन की मात्रा को इंगित करने वाली संख्या जिसका प्रयोग आन्तरिक दहन इंजन में किया जाता है। इसको आइसो आक्टेन (आक्टेन संख्या 100) तथा n हेक्टेन (आक्टेन संख्या शून्य) जिनको 100:0 के अनुपात के मानक मिश्रण के संदर्भ में मापा जाता है।

आवरण फसल — वे फसले जो मुख्य रूप से भूमि को ढकने तथा जल और वायु द्वारा निक्षालन एवं अपरदन के कारण हुए नमी के अभाव को कम करने के लिए उगाई जाती हैं। ऐसी फसलें ज्यादातर काटी नहीं जातीं।

इम्लशन — एक द्रव जिसमें दूसरे द्रव के सूक्ष्म कण निलंबित हों; उदाहरणार्थ — दूध जल में बसा कणों का निलम्बन है। इम्लशन साबुन के निर्माण, खाद्य उद्योग (मक्खन तथा कृत्रिम मक्खन) प्राकृतिक रबर की प्रक्रियाओं में प्रयोग आने वाले कई द्रव स्नेहकों, दवाईयों तथा पेंटिग इत्यादि के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

इ. कोलाई — एशरिशिआ कोलाई स्तनधारियों में रहने वाला एक-जीवाणु। एक सूक्ष्म जीवाणु जिससे बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। जल का सभी सम्भव रोगजनकों के लिए परीक्षण असम्भव है तथा उनमें अधिकांश एशरीशिआ कोलाई के अतिरिक्त शरीर से बाहर जीवित नहीं रहते। परिणामतः इ. कोलाई की अनुपस्थिति मे यह अर्थ लगाया जाता है कि रोगाणु अनुपस्थित हैं।

उत्परिवर्तजन — किसी प्रकार का रासायनिक पदार्थ अथवा भौतिक कर्मक (उदाहरणार्थ परमाणु विकिरण) जो उत्तराधिकारिक आनुवांशिक परिवर्तन की क्षमता को रखते हैं, पदार्थ अथवा कर्मक उत्परिवर्तक कहलाते हैं। अनुवांशिक परिवर्तन उत्परिवर्तन (mutation) कहलाते हैं। उत्परिवर्तन कैंसर अथवा जन्म जात त्रुटियों को भी (प्रायः) उत्पन्न करने में समर्थ है। परन्तु उत्परिवर्तजन से विशेष संबंध संतति तथा भावी पीड़ियों पर प्रभाव के कारण होता है क्योंकि सभी उत्परिवर्तजन स्पष्ट रूप से किसी जाति के जीवन के प्रति हानिकारक होते हैं।

कीलन — मृदा अपरदन से बचने के लिए कंक्रीट की दिवाल का निर्माण।

कोलाई काउण्ट — जल के इकाई आयतन में इ. कोलाई बैक्टिरिया की संख्या जो अबिन्दु स्रोत द्वारा जल के विष्ठा प्रदूषण के लिए संकेतक के तौर पर प्रयोग किए जाते हैं।

कूपिकाएँ — छोटे, पतले, दिवाल वाले झिल्लीदार माँस की थैली जो केशिकाओं के जालकों से ढके रहते हैं, तथा ये फेफड़ों में पाए जाते हैं।

कंटूर — (1) पृथ्वी के पृष्ठ पर एक काल्पनिक रेखा जो समान उन्नयन के बिन्दुओं को जोड़ती है। (2) किसी नक्शे पर खींची गई रेखा जो समान उन्नयन के बिन्दुओं के स्थान को प्रदर्शित करती है। नक्शे पर कंटूर रेखाओं की श्रेणियाँ भूमि के स्थालाकृति को प्रदर्शित करती हैं।

कम्पोस्टिंग — कार्बनिक अपशिष्ट वाहित-मल का जैविक अपघटतकरण जिससे अपशिष्ट हानिरहित हो जाते हैं।

गैल्वनीकरण — किसी धातु की वस्तु पर गलित धातु का प्रयोग कर रक्षात्मक परत को निक्षेपित करने की विधि।

प्लैस्टीकारक — एक अवाष्पशील कार्बनिक विलायक जो उसमें मिलाए गए पदार्थ के साथ जेल (gel) बनाता है। ये बहुलक पदार्थों के मृदुकरण ताप को घटाने, उनके प्रत्यास्थता तथा विखंडन के विरुद्ध प्रतिरोध को बढ़ाने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। इनका मुख्य प्रयोग प्लास्टिक, रबर, संश्लेषण चमड़ा, लैकर तथा रंग के निर्माण में होता है। अधिकतर प्रयोग किए जाने वाले प्लैस्टीकारक थैलिक अम्ल के एस्टर, फॉस्फोरिक अम्ल के एस्टर तथा विभिन्न तेल हैं।

वातीय खुदाई — वायु की गति के बल द्वारा क्रियान्वित होने वाला एक ड्रिल (खनन यंत्र)।

के लिए किया जाता है। ऐसा किसी धातु के लवण के जलीय विलयन में वैद्युत अपघटन से किया जाता है।

श्वसनीशोथ — श्वास नली की शाखाओं (जो वायुनली का कार्य करती हैं तथा जिनको श्वसनीशोथ कहते हैं), में सृजन।

समुपयोजित अन्योन्य क्रिया — विभिन्न जातियों अथवा एक ही जाति के विभिन्न सदस्यों के मध्य किसी संसाधन के लिए संघर्ष जिसकी आपूर्ति बहुत कम हो

साम्य — किसी तंत्र को साम्य में तब कहा जाता है जब उस पर कार्य कर रहे विभिन्न जल उसकी क्रियात्मक अवस्था में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं करते हैं।

सीढीनुमा खेत — सीढ़ी के रूप में कंटूर के साथ विभिन्न प्लेटफार्म होते हैं जो हिल दाल में पिण्डों के समान कटे होते हैं। ये प्लेटफार्म नियमित अन्तरालों पर उर्ध्वाधर बूदों अथवा खड़े फलकों द्वारा विलगित रहते हैं तथा वनस्पतियों एवं कभी-कभी बंधे हुए पत्थर जो दिवाल से लगे रहते हैं, के द्वारा सुरक्षित रहते हैं।

पट्टीदार खेती — मृदा के सक्रिय वृद्धि के लिए जुताई, अपरदन से बचाव के लिए स्तर के ढाल के इर्द-गिर्द उपयुक्त चौड़ी पट्टियों में फसल उगाए जाते हैं। मृदा रक्षात्मक अथवा अपरदन से बचाने वाले फसल की पट्टियों को एक दूसरे के पीछे लगाया जाता है।

प्रानुकूलन (कंडीशनिंग) — औद्योगिक अपशिष्ट, धातुमल का किसी निश्चित समय तक के लिए प्रभावन करना। जब तक कि एच्छिक स्थिरता प्राप्त नहीं हो जाती है।

परिरक्षक — वे पदार्थ जो जीवाणु क्रिया, वृद्धि किण्वन तथा अपघटन को रोकते हैं।

भ्रंश — किसी ऐसे चट्टान में विदार जिसके साथ पड़ोसी चट्टान के पृष्ठ में दरार आ गई हो।

मृदा परिच्छेद — उस संशोषित मृदा की पट्टी जो इस तरह जलवायु नियंत्रित तथा पूरी तरह विकसित हो कि अपक्षय क्षेत्र के साथ साम्य बना रहे। क्षैतिजवत रेखाओं का अनुक्रमण जैसा कि मृदा के पिंड के खुली संरचना में विचार किया गया है। मृदा पृष्ठ से ऊर्ध्वाधर काट जो स्पेरे में सभी क्षेतिज रेखाओं से होकर जाती है।

पैथोजन रोगाणु — विशेषण रोग उत्पन्न करने वाले।

लैगून — औद्योगिक अपशिष्ट धातुमल के भण्डारण के लिए बड़ा बाह्य बेसिन।

लेगूनन — अनभिकृत औद्योगिक अपशिष्ट जल का लैगून में भंडारण।

भू-क्षमता इस भूमि की उपादेयता जो बिना किसी नुकसान के प्रयोग में लाई जाय।

लैरिंक्स ...ने का वह भाग जिसमें वाक नलिका होती है।

ताप अपघटन अथवा अग्नि भंजन — जटिल कार्बनिक अणुओं को उच्च ताप पर सरल अणुओं में टूटना। ताप अपघटन में तापी के द्वारा अपघटन होता है, परन्तु उसमें संघनन, समावयवीकरण तथा दूसरी समान प्रक्रियाएं भी शामिल हैं। लगभग 700°C पर वायु की अनुपस्थिति में तथा प्रायः उत्प्रेरक की उपस्थिति में पेट्रोल का परिष्करण इस शब्द को सही अभिव्यक्त करते हैं। पीट तथा बिटुमेनी कोककारी कोयले के भंजक आसवन में भी ताप अपघटन होता है।

तापीय प्रदूषण — ताप में बढोत्तरी से पर्यावरण का अवकर्ष आविषाक्त रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप ये मारने, चोट पहुँचाने तथा जीवाणुओं को कमजोर करने के योग्य होते हैं।

टार अथवा तार — कोयला, लिग्नाइट, लकड़ी तथा शेल के भंजक असवन से प्राप्त एक द्रव उत्पाद।

धातु की गतिशीलता — विलेय धातु अथवा लवण को मृदा की परतों में से अन्तःस्रवण जल द्वारा निष्कर्षण को सम्बोधित करता है।

धातुओं का अम्लोपचार — धातु बर्तनों के सतह की सफाई हेतु इसको मंद अम्ल में डुबोना।

निक्षालन — मृदा के विलेय घटकों का द्रव जल द्वारा घोलना।

जैव नियंत्रण — किसी पीड़क के निवास स्थान में उपयुक्त पदार्थों को प्रवेश कराके उसकी (पीड़क की) कमी अथवा नियंत्रण करना। उदाहरणार्थ — पौधा घर को श्वेत मक्खियों थ्राहरोडल का छोटे कैल्सिड इनकार्सिया द्वारा नियंत्रण। रोगाणु, दूसरा प्राणी जो एक पीड़क है, की जनसंख्या नियंत्रण के लिए परभक्षी का प्रयोग।

जैव आवर्धन — पोषण स्तर में बढ़ोत्तरी के साथ प्राणियों के शरीर में रसायनों की सांद्रता में बढोत्तरी।

धातु संचकन — तापानुशीतन की प्रक्रिया जिसमें कठोर धातु को एक सेकेण्ड के समय में क्रान्तिक ताप के नीचे ही गर्म किया जाता है तथा तत्पश्चात् ठंडा किया जाता है। धातु संचकन तकनीक में जल को सांचावालू मिश्रण के साथ मिलाया जाता है।

ज्वारनदमुख — आंशिक रूप से घिरा हुआ तटीय खाड़ी जहाँ ताजा जल, तथा समुद्री जल मिलते तथा मिश्रित होते हैं।

डाइजेशन (पाचन) — अवपंक संसाधन के इस चरण में लम्बी शृंखला वाले अपशिष्ट रसायनों को क्रिया करा के लघु शृंखला वाले सरल अणुओं में बदल दिया जाता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

ब्राउन एल.आर., ए. डर्निंग, सी. फ्लेविन, एल हीज़, जैकोवसन, एम.पोस्टल, एम. रेनर, सी.पो. शीगा तथा हफ स्टार्क (1988) *स्टेट ऑफ दा वर्ड*, 1989 डब्ल्यू; डब्ल्यू नार्टन तथा कम्पनी, इन्क, न्यूर्याक।

बोटकिन, डी.बी.; एम.एफ. कास्वेल, जे.ई. इस्टेल तथा ए.ए. ओरिओ (1989) *चेजिंग दी ग्लोबल इनवायरमेंट*, प्रास्पेक्टिव आन हयूमन इनवाइरनमेंट, एकेडमिक प्रेस इन न्यूयार्क।

डॉ. हरिमोहन (1991) पर्यावरण और लोक अनुभव, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-2।

वेद प्रकाश दुबे (1991) पर्यावरण की पुकार, मगध प्रकाश, दिल्ली-32।

इकाई 14 पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य-I

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
14.2 पर्यावरण संबंधी स्वास्थ्य का परिचय
सामुदायिक स्वास्थ्य
14.3 पर्यावरण और स्वास्थ्य का संबंध
14.4 जानपदिक रोग विज्ञान
14.5 आविष तथा पर्यावरण स्वास्थ्य
14.6 भोजन-संबंधी स्वास्थ्य समस्याएँ
14.7 जल-संबंधी स्वास्थ्य समस्याएँ
रासायनिक संकट
जैविक संकट
विकासात्मक गतिविधियाँ तथा रोग
14.8 संचरणीय रोग
14.9 सारांश
14.10 अंत में कुछ प्रश्न
14.11 उत्तर

14.1 प्रस्तावना

वायु, जल और मृदा के प्रदूषण से संबंधित पिछली इकाइयों में आपने पढ़ा कि मनुष्य ने पृथ्वी के तीनों परिमंडलों — पृथ्वी, जल और वायु को अपने हित साधन के लिए मनमाने ढंग से प्रदूषित किया है। विडम्बना है कि पर्यावरण की सुरक्षा की ओर मनुष्य अब इसलिए सचेत नहीं हो रहा है कि उसे प्रकृति से प्यार है बल्कि बहुत हद तक इसलिए कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से वह अपनी सुख-सुविधा, स्वास्थ्य और कल्याण की रक्षा तथा बीमारियों और रोगों से अपने को बचाने के लिए चिंतित है। जिस वायु में हम साँस लेते हैं, जो जल हम पीते हैं, जो भोजन हम खाते हैं, हमारे काम करने की जो परिस्थितियां हैं और यहां तक कि हमारे इर्द-गिर्द होने वाला तेज शोर हमारे स्वास्थ्य और कल्याण को खतरा पैदा कर रहा है।

कैंसर और श्वास संबंधी रोगों तथा संक्रमित भोजन और जल द्वारा उत्पन्न समस्याओं पर किये गये अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि इनका संबंध उन प्रदूषकों से है जो पर्यावरण में फेंक दिए जाते हैं। इस इकाई में हम आपको इन अध्ययनों के आधार पर स्वास्थ्य पर विभिन्न प्रदूषकों के कुप्रभावों के बारे में बताएंगे।

हमने इस इकाई को दो भागों में बांटा है। पहले भाग में कुछ परिभाषाएँ दी गई हैं और सामुदायिक स्वास्थ्य की संकल्पना और महत्व को बताया गया है। दूसरे भाग में व्यक्ति के स्वास्थ्य पर पर्यावरण के प्रभावों को बताया गया है। पर्यावरण सदूषकों का रोगों से क्या संबंध है इसकी चर्चा अगले भाग में की गई है।

इस इकाई का दूसरा भाग उन स्वास्थ्य समस्याओं के बारे में है जो भोजन तथा जल के संदूषण के कारण उत्पन्न होती हैं। चूँकि भोजन और जल के कारण सूक्ष्म जैविक संक्रमण फैलता है, इसलिए इस इकाई के अंत में एक छोटा सा भाग संचरणीय रोगों के बारे में भी शामिल किया गया है।

पर्यावरण के कारण उत्पन्न स्वास्थ्य की समस्याओं पर हमारी यह चर्चा अगली इकाई में भी जारी रहेगी। तब हम वायु प्रदूषण से उत्पन्न समस्याओं, व्यावसायिक रोगों और स्वास्थ्य पर विकिरण तथा तनाव के प्रभावों की चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप :

- सामुदायिक स्वास्थ्य के महत्व को बता सकेंगे,
- स्वास्थ्य और पर्यावरण के संबंधों को समझा सकेंगे,
- पर्यावरण से संबंधित स्वास्थ्य समस्याओं के अध्ययन के लिए प्रयुक्त जानपदिकरोग विज्ञान संबंधी उपगमन का वर्णन कर सकेंगे,
- शरीर पर आविष के प्रभावों को समझा सकेंगे,

- भोजन तथा जल संबंधी स्वास्थ्य समस्याओं की व्याख्या कर सकेंगे और उन समस्याओं पर विचार कर सकेंगे जो अनियोजित विकासात्मक परियोजनाओं के कारण उत्पन्न होती हैं,
- संचरणीय रोगों के फैलने के तरीकों का वर्णन कर सकेंगे।

14.2 पर्यावरण संबंधी स्वास्थ्य का परिचय

पर्यावरण संबंधी स्वास्थ्य की परिभाषा देने से पहले आइए हम स्वास्थ्य की परिभाषा पर विचार करें। आमतौर पर कोई रोग या पीड़ा शरीर में न होना और जीवन लंबा होना ही अच्छा स्वास्थ्य माना जाता है। निस्संदेह बीमार न होना भी स्वास्थ्य का एक पहलू है, किन्तु इसमें जीवन की गुणवत्ता तथा सुख-सुविधा की प्राप्ति भी शामिल है, जो केवल अच्छे स्वास्थ्य द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। प्रेम और सुख की तरह स्वास्थ्य भी जीवन का एक गुण है जिसको परिभाषित करना कठिन है और इसका माप तोल नहीं किया जा सकता है। तथापि मोटे तौर पर स्वास्थ्य की व्यापक रूप में प्रयुक्त परिभाषा विश्व स्वास्थ्य (WHO) द्वारा दी गई है जिसके अनुसार स्वास्थ्य पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक सुख की अवस्था है और केवल रोगहीनता अथवा अपंगता का न होना मात्र नहीं है। स्वास्थ्य की एक पैमाइश उपलब्ध पर्यावरण में कुशलतापूर्वक कार्य करने की क्षमता है। चूंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवनपर्यन्त शारीरिक, जैविक और सामाजिक पर्यावरण परिवर्तित होता रहता है इसलिए अच्छे स्वास्थ्य में उन परिवर्तनों के प्रति अनुकूलन की प्रक्रिया शामिल है।

पर्यावरण संबंधी स्वास्थ्य को इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि "जन स्वास्थ्य का वह पहलू जो उन सभी बाहरी परिस्थितियों, जैसे सभी प्रकार के जीवों, पदार्थों, बलों, समस्याओं और चुनौतियों और मनुष्य के चारों ओर पाए जाने वाली अन्य दशाओं से संबंधित है जो मनुष्य के स्वास्थ्य और सुख-सुविधा पर प्रभाव डालती है।" इस रूप में रोग, मनुष्य का उसके वातावरण के प्रति कुसमायोजन को प्रदर्शित करता है।

यद्यपि प्राचीन सभ्यताएं स्वास्थ्य पर पर्यावरण के प्रभावों से सचेत थीं, परंतु आधुनिक काल में स्वच्छ वातावरण के महत्व को सन् 1842 की औद्योगिक क्रांति के पश्चात यूरोप में समझा गया। यह क्रांति "महान स्वच्छता जागृति" के नाम से जानी जाती है। परिणामस्वरूप सार्वजनिक स्वास्थ्य नामक विषय की स्थापना हुई। इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है, व्यवस्थित सामुदायिक प्रयासों द्वारा रोगों से बचने, जीवन काल को बढ़ाने और स्वास्थ्य तथा दक्षता को बढ़ाने से संबंधित विज्ञान तथा कला का नाम **जन स्वास्थ्य** है। जन स्वास्थ्य के उद्देश्यों को नीचे दिया जा रहा है :

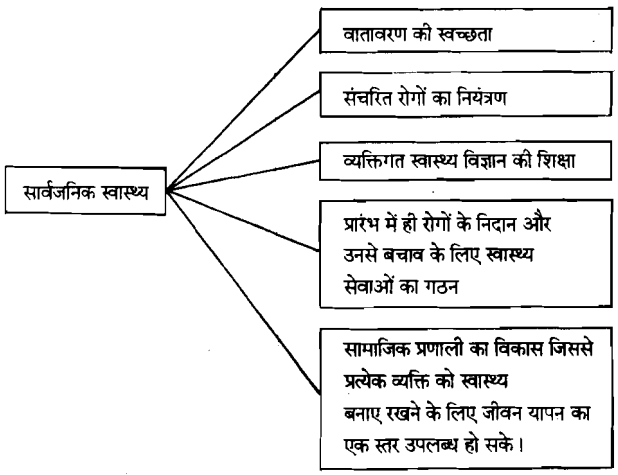

अभी तक भारत जैसे विकासशील देशों में जन स्वास्थ्य जैसे कथित लक्ष्यों को प्राप्त करने में उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली है जबकि विकसित देशों में स्वच्छता की दशाएँ सुधार कर संचरणीय रोगों को लगभग पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया है। इसलिए अब जोर जन स्वास्थ्य का दीर्घकालिक रोगों और व्यवहार संबंधी अव्यवस्थाओं जैसे सिगरेट पीना, औषधि दुरुपयोग, और शराब पीना जिनका पाश्चात्य देशों में अधिक प्रचलन है — निरोधक (preventive), चिकित्सीय (therapeutic) तथा पुनर्वास (rehabilitative) संबंधी पहलुओं पर आ गया है। अतः आजकल जन स्वास्थ्य अधिक जोर स्वास्थ्य संबंधी गतिविधियों, कार्यक्रमों तथा पद्धतियों के आयोजन तथा मूल्यांकन पर देता है। इस प्रकार की चुनौतियों के होते हुए जन स्वास्थ्य को अब "सामुदायिक स्वास्थ्य" का नाम दिया गया है।

14.2.1 सामुदायिक स्वास्थ्य

सामुदायिक स्वास्थ्य को अधिक विस्तृत रूप से परिभाषित किया गया है इसके अंतर्गत सम्पूर्ण समुदाय द्वारा व्यवस्थित प्रयास आते हैं जो लोगों के स्वास्थ्य को बनाए रखने, उसको सुरक्षित रखने और सुधारने की दिशा में किए जाते हैं। इसमें व्यक्तियों और समूहों के रहन-सहन एवं व्यवहार के प्रतिमान को बदलने के लिए प्रेरणा दी जाती है। साथ ही यह पूरे समुदाय के सदस्यों को अधिकतम स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए स्वास्थ्य सेवाओं की योजना भी बनाता है।

पहले सामुदायिक स्वास्थ्य के विषय को स्वास्थ्य विज्ञान, जन स्वास्थ्य अथवा निरोधक तथा सामाजिक चिकित्सा के अंतर्गत रखा जाता था।

सामुदायिक स्वास्थ्य में प्रत्येक व्यक्ति के रोग के अध्ययन की बजाय यह समझना जरूरी है कि

- रोगी समुदाय का सूचक है।
- समुदाय के रोग का निदान यानि सामुदायिक निदान आवश्यक है।
- समुदाय के लिए उपचार का आयोजन इसका उद्देश्य होता है।

उदाहरण के लिए गाँव में हैजे के एक रोगी का होना खतरे की घंटी है। इसका मतलब यह हुआ कि समुदाय में यह रोग विद्यमान है और इस प्रकार के और भी रोगी हो सकते हैं। यदि इस रोग को फैलने से न रोका जाए तो संपूर्ण गाँव इसकी चपेट में आ जाएगा। इसलिए रोग के उपचार तथा नियंत्रण के उपयुक्त उपायों के लिए पहले से ही योजना बना ली जाती है। हैजा जल द्वारा फैलने वाला रोग है इसलिए जल स्रोत जैसे नदी, कुएँ अथवा भूमिगत जल में संक्रमण का पता लगाने के लिए जाँच की जाती है और आवश्यकतानुसार उन्हें स्वच्छ किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रभावित लोगों का आवश्यक उपचार किया जाता है और रोग से बचने के लिए पूर्वोपाय किए जाते हैं, जैसे कि संवेदनशील व्यक्तियों को टीके लगाना। सामुदायिक निदान के लिए निम्नलिखित सुसंगत आँकड़ों की आवश्यकता होती है। इन्हें एकत्रित किया जाता है और इनका विश्लेषण किया जाता है।

- अध्ययनगत समष्टि में आयु और सैक्स वितरण और समुदाय में उसका सामाजिक वर्गों में वितरण।
- अशोधित जन्मदर, बाल-मृत्युदर, मातृ-मृत्युदर, शिशु-मृत्युदर, नवजात-मृत्युदर तथा जन्म पश्च मृत्युदर इत्यादि।
- क्षेत्र में कुछ रोगों का आपतन तथा व्यापकता।

स्वास्थ्य समस्याओं की जाँच करने के अतिरिक्त यह भी जरूरी है कि क्षेत्र के उन विभिन्न सामाजिक तथा आर्थिक कारकों का पता लगाया जाए जो उपर्युक्त आँकड़ों को प्रभावित करते हैं। इससे स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत ज़रूरतों और स्वास्थ्य समस्याओं को, जिनका समुदाय को सामना करना पड़ता है, पहचानने में मदद मिलती है। सभी समस्याओं का अध्ययन कर लेने के बाद प्राथमिकताएं स्थापित की जाती हैं और सामुदायिक कार्यों की योजना बनाई जाती है। इसमें स्वास्थ्य सेवाओं की सहायता ली जाती है जो जल संभरण में सुधार लाने, प्रतिरक्षीकरण, स्वास्थ्य शिक्षा, विशिष्ट रोगों के नियंत्रण की योजना बनाती है। इसके लिए स्वास्थ्य संबंधी विधानों की भी ज़रूरत होती है। इस प्रकार की स्वास्थ्य सेवाओं का व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामुदायिक स्तर पर आयोजन किया जाता है। यह भी जरूरी है कि स्वास्थ्य की देखभाल का कार्यक्रम इस रूप में आयोजित किया जाए कि इसका प्रयोग सभी आसानी से कर सकें और लोगों को उन कार्यक्रमों में हिस्सा लेने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। सामुदायिक कार्य की एक और अच्छी बात यह है कि यह इसी प्रकार की समस्याओं को नियंत्रित करने के लिए प्रयत्नशील स्वयंसेवी संगठनों और सरकारी एजेन्सियों के बीच समन्वय स्थापित करता है।

हमें आशा है कि उपर्युक्त पाठ्य सामग्री से आप मानवमात्र पर विभिन्न पर्यावरणीय प्रभावों का अध्ययन करने में सामुदायिक स्वास्थ्य का महत्व समझ सकेंगे। यह सामुदायिक चिकित्सा के विषय की स्थापना करती है जिसके अंतर्गत बीमार तथा स्वस्थ दोनों वर्गों के लोगों की देखभाल आती है। इसके लिए स्वास्थ्य सेवाओं का आयोजन, संगठन सुविधाएं देना तथा उनका मूल्यांकन होता है जो कि देश की जरूरतों और आर्थिक स्थिति पर आधारित होती है।

हाल ही के कुछ वर्षों में एक अन्य नाम का चलन हुआ है वह है पर्यावरण इंजीनियरी। इसके अंतर्गत मानव व पर्यावरण के पारस्परिक संबंधों तथा मानव के हित तथा उसके अस्तित्व बनाए रखने के लिए पर्यावरण में बदलाव की आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाता है व उन्हें लागू किया जाता है।

बोध प्रश्न 1

क) तीन बाह्य दशाओं को बताइए जिनकी जानकारी पर्यावरण संबंधी स्वास्थ्य के अध्ययन के लिए आवश्यक होती है।

.....

.....

.....

ख) सामुदायिक स्वास्थ्य का मुख्य उद्देश्य क्या है?

.....

.....

.....

14.3 पर्यावरण और स्वास्थ्य का संबंध

हम बता चुके हैं कि व्यक्तिगत स्वास्थ्य, व्यक्ति पर पड़ने वाले बहुसंख्यक प्रभावों की पारस्परिक क्रियाओं का परिणाम होता है। हम इन प्रभावों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बांट सकते हैं : 1) आनुवंशिक प्रभाव 2) व्यवहारात्मक प्रभाव और 3) पर्यावरण संबंधी प्रभाव।

अब हम संक्षेप में इनका वर्णन करेंगे।

1) **आनुवंशिक प्रभाव (Genetic Effects)** : सभी प्राणियों में अपने माता-पिता के जीन्स का समुच्चय वंशागत होता है जिसे जीनोम कहते हैं। जीन ही प्राणी की शारीरिक तथा शरीर क्रियात्मक विशेषताओं का निर्धारण करते हैं। यही कारण है कि बालक अपने माता-पिता से मिलता-जुलता होता है। हम यह भी देखते हैं कि कुछ मनुष्य अपसामान्यताओं के साथ जन्म लेते हैं। इन वंशगत अपसामान्यताओं को आनुवंशिक रोग कहते हैं। ये रोग माता-पिता से उनकी संतान में पहुँचते हैं। आनुवंशिक रोगों के कुछ उदाहरण हाशिए में दिए गए हैं।

कुछ सामान्य आनुवंशिक रोग :

फीनाइल कीटोन्यूरिया (Phenyl ketonuria)
हीमोफीलिया (Haemophilia)
मंगोलिज्म (Mongolism)
सिकल सेल एनीमिया (Sickle-cell anaemia)
थेलेसिमिया (Thalesemia)

कुछ अन्य प्रकार के रोग, जैसे एलर्जी, मधुमेह, अति तनाव, शाइजोफ्रीनिया इत्यादि जिन्हें पूरी तरह से वंशागत रोगों की तरह के आनुवंशिक रोग नहीं माना जा सकता। तथापि ये रोग पर्यावरण के साथ जीन्स की अन्योन्यक्रियाओं के कारण उत्पन्न होते हैं। इन बीमारियों पर पोषण, तनाव, भावनाओं, हॉर्मोन, औषधियों तथा अन्य पर्यावरण से संबंधित पारस्परिक क्रियाओं का प्रभाव होता है और ये इन्हीं के कारण उत्पन्न होती हैं। दूसरे शब्दों में, यदि पर्यावरण व्यक्ति के अनुकूल होता है तब ये बीमारियां नहीं होतीं। अतः मनुष्य इनसे अप्रभावित तथा स्वस्थ रहता है। ऐसी बीमारियों को आनुवंशिक प्रभावों के कारण उत्पन्न माना जाता है। एक व्यक्ति की कुल मिलाकर जैनेटिक संरचना ऐसी हो सकती है कि वह किसी श्वास रोग से ग्रस्त होने के लिए अधिक संवेदनशील है जो दूसरे व्यक्ति आनुवंशिक संरचना से भिन्न है।

2) **व्यवहारात्मक प्रभाव (Behavioural Effects)** : शराब पीना, सिगरेट पीना, नशीली दवाएँ लेना, तंबाकू चबाना अथवा अनियमित रूप से भोजन करना भी कई प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी खराबियाँ उत्पन्न करते हैं। मनुष्य की आदतें उसके जीवन भर बदलती रहती हैं। ये परिवर्तन व्यक्ति के स्व-उत्तरदायित्व, पोषण संबंधी जागरुकता, तनाव नियंत्रण, शारीरिक स्वच्छता तथा पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता पर आश्रित होते हैं।

3) **पर्यावरणीय प्रभाव (Environmental Effects)** : आप पर्यावरण के विविध घटकों के बारे में जानते हैं। ये सभी हमारे स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। जैसा कि चित्र 14.2 में दिखाया गया है, ये घटक शारीरिक, रासायनिक, जैविक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक होते हैं।

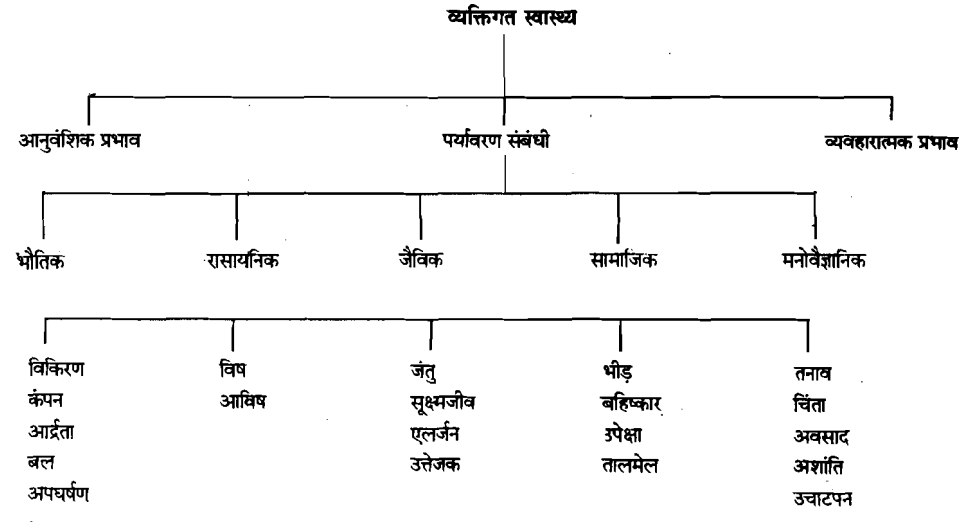

मनुष्य पर बदलते हुए पर्यावरण के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए हमें मानव स्वास्थ्य पर विभिन्न प्रकार के प्रभावों के विविध पहलुओं का विस्तार से अध्ययन करने की आवश्यकता है। अब हम यह बताएंगे कि इनका अध्ययन कैसे किया जाता है।

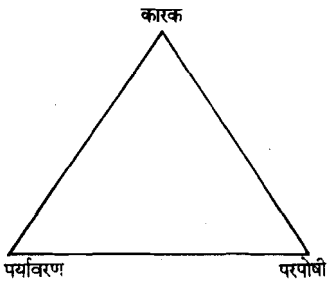

खराब स्वास्थ्य त्रिसंयुज—कारक, परपोषी तथा पर्यावरण की परस्पर क्रिया का परिणाम है। स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का अध्ययन हम इन्हीं तीन बातों की जानकारी से करते हैं।

खराब स्वास्थ्य के विविध कारक होते हैं, जैसे कि भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक जिन्हें प्रयोगशाला में परीक्षणों की मदद से पता लगाकर पहचाना जा सकता है। परपोषी स्वयं मनुष्य होता है जो प्रेक्षण के लिए उपलब्ध होता है। कारक परपोषी संबंध को आसानी से बताया जा सकता है। परन्तु तीसरे घटक यानी पर्यावरण का संबंध समझना मुश्किल है क्योंकि यह जटिल और सदैव परिवर्तनशील होता है।

1) **खराब स्वास्थ्य के कारक (Agents of Ill Health)** : खराब स्वास्थ्य अथवा रोग के कारक जीवित अथवा अजीवित पदार्थ, मूर्त अथवा अमूर्त बल हो सकते हैं तथा शरीर में किसी पदार्थ की अधिकता अथवा न्यूनता हो सकती है। कुछ रोग जैसे हृदय रोग और पेप्टिक अल्सर इत्यादि के संबंधी कारकों का पता नहीं लग पाया है। कुल मिलाकर इन कारकों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है :

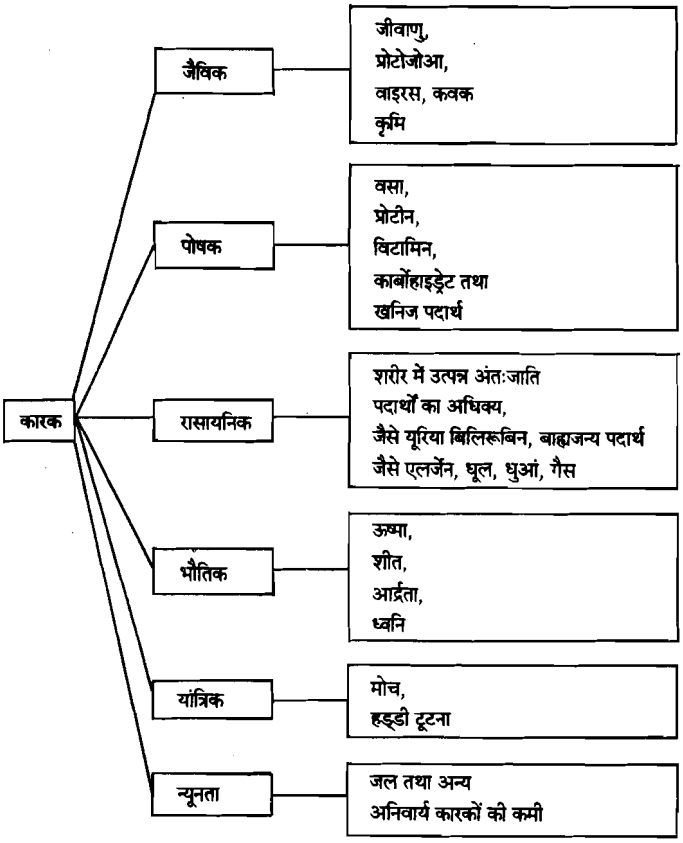

2) **मानव परपोषी (Human Host)** : मानव परपोषियों और उनको होने वाले रोगों के उपचारों का अध्ययन निम्नलिखित कारकों के अनुसार भिन्न होता है :

परिपोषक (Host) : जीव जिसमें परजीवी आश्रय लेता है।

परजीवी (Parasite) : जीव जो परिपोषी में रहता है।

रोगाणु : परजीवी जिसके कारण रोग होते हैं।

i) **आयु**—बचपन से लेकर बुढ़ापे तक विभिन्न रोग होते हैं, उदाहरणार्थ संक्रामक रोग, जैसे खसरा, चेचक, पोलियो इत्यादि बच्चों में अधिक होते हैं जबकि अति तनाव, हृदय रोग जैसे रोग प्रमुखतः अधिक आयु के व्यक्तियों में पाए जाते हैं।

ii) **सैक्स**—गर्भ इत्यादि के कारण उत्पन्न विकार प्रमुखतः केवल महिलाओं में ही देखे जाते हैं।

iii) **जाति**—सिकल सैल ऐनिमिया रोग प्रमुखतः नीग्रो लोगों में देखा जाता है।

iv) **आनुवंशिक कारक**—पारसी समुदाय में प्रमुखतः जी-6 पी डी की न्यूनता देखी जाती है। हीमोफिलिया और मंगोलता (down syndrome) भी खास किस्म के आनुवंशिक दोषों के कारण होते हैं।

v) **वैवाहिक स्थिति**—गर्भाशय के सर्विक्स का कार्सिनोमा रोग अविवाहित महिलाओं की अपेक्षा विवाहितों में अधिक व्यापक होता है।

vi) **पोषण**—प्रोटीन या कैलोरी की कमी से सामान्यतः क्वाशियोरकार और सूखा रोग हो जाते हैं। शरीर का अपर्याप्त पोषण होने से संक्रमण का खतरा अधिक बढ़ जाता है।

vii) **व्यवसाय**—व्यवसाय तथा कार्य संबंधी वातावरण विविध प्रकार के संकट जैसे कैंसर, श्वास संबंधी समस्याएं, बहरापन तथा कई अन्य रोग पैदा कर देते हैं।

viii) **प्रतिरक्षा**—रोगों से लड़ने के लिए प्रतिरोध को प्रतिरक्षा या असंक्राम्यता कहते हैं। प्रतिरोध शक्ति के घट जाने से व्यक्ति रोगों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है।

ix) **सामाजिक वर्ग**—अधिकतर निम्न आय वर्ग के लोगों में गठिया, पुराना श्वसनी शोध हो जाता है। जबकि उच्च आय वर्ग के लोगों में अति तनाव, हृदय रोग जैसे रोग अधिक होते है।

x) **शैक्षिक स्थिति**—सामाजिक वर्ग से संबंधित।

xi) **जीवन यापन का तरीका**—यह व्यक्तियों की आदतों से संबंधित होता है — जैसे सिगरेट पीने से फेफड़ों का कैंसर हो सकता है और व्यायाम की कमी से हृदय रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

xii) **गतिशीलता**—तेज गति के यातायात साधनों से रोग एक देश से दूसरे देश में जल्दी फैलते हैं।

इन महत्वपूर्ण कारकों का जानपदिक रोग विज्ञान के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है क्योंकि ये रोगों के कारणों (aetiology) का पता लगाने में मदद देते हैं। हम अगले खंड में रोग के जानपदिक रोग विज्ञान की चर्चा करेंगे।

3) **पर्यावरण (Environment)** : यह त्रिसंयुज की सबसे जटिल संकल्पना है। प्राथमिक तौर पर हमारा सरोकार स्वास्थ्य पर पर्यावरण के प्रभाव से है। जैसा कि आप जानते हैं पर्यावरण की कुछेक दशाएँ, जैसे वायु, जल और भोजन मनुष्य के जीवित रहने के लिए आवश्यक होती हैं। जीवित रहने के लिए उनकी उपलब्धता के अतिरिक्त उनके गुण तथा मात्रा भी मनुष्य की प्राकृतिक तथा उपार्जित क्षमता के अनुसार सुनिश्चित होनी चाहिए। परन्तु औद्योगीकरण में हुई प्रगति के साथ-साथ वायु, जल और भोजन प्रदूषित हो रहे हैं और अन्य पर्यावरण संबंधी संकट भी उत्पन्न हो रहे हैं जैसे वायु, जल, ध्वनि और विकिरण प्रदूषण आदि। इनसे अनेक स्वास्थ्य संकट और रोग पैदा हो गए हैं। जैविक पर्यावरण के प्रभावों के बारे में पिछली सदी से अब तक काफी खोज हुई है, हम जानते हैं कि विषाणु, जीवाणु, कृमि कीट तथा कुछ अन्य प्राणी, लगातार अपने जीवन के लिए संघर्ष करते रहते हैं और रोगोत्पादक परजीवियों, रोग-वाहकों अथवा मध्यवर्ती परजीवियों में जीते हैं। चूँकि ये हमें घेरे रहते हैं इसलिए हमारा इनसे पूरी तरह बच पाना कठिन है। तथापि इनके द्वारा उत्पन्न रोगों से बचने के विभिन्न उपाय ढूंढ लिए गए हैं।

मनो-सामाजिक पर्यावरण स्वयं मनुष्य की ही एक अनोखी देन है। सामाजिक तथा चिकित्सा वैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक पर्यावरण तथा कुछ रोगों की व्यापकता के बीच स्पष्ट संबंध स्थापित किया है। उदाहरण के लिए यह दर्शाया गया है कि फेफड़ों का कैंसर सिगरेट के धुएँ में विद्यमान रासायनिक पदार्थों से होता है परन्तु सिगरेट पीने की लत अकसर मनो-सामाजिक कारणों से पड़ती है। आप इस तथा अगली इकाई में स्वास्थ्य पर पड़ने वाले विभिन्न पर्यावरण प्रभावों के बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न 2

क) निम्नलिखित में से कौन सा रोग आनुवंशिक प्रभावों के कारण होता है :

1) शाइजोफ्रेनिया 2) अति तनाव 3) हीमोफीलिया 4) मधुमेह 5) एलर्जी
6) सिकल सैल ऐनीमिया 7) मंगोलता 8) शराब की लत (alcoholism)

ख) निम्नलिखित किस्मों के पर्यावरण प्रभावों का उनकी अपनी श्रेणी के साथ मेल बैठाइए।

पर्यावरण प्रभाव	श्रेणी
क) आविष	1) मनोवैज्ञानिक
ख) विकिरण	2) जैविक
ग) प्रतिबल	3) भौतिक
घ) सूक्ष्म-जीव	4) रासायनिक
ङ) उपेक्षा	5) सामाजिक

14.4 जानपदिक रोग विज्ञान

जानपदिक रोग विज्ञान (epidemiology) : epid माने ऊपर और डिमोस माने people यानि "लोगों में ऐसी घटनाओं का अध्ययन जैसे संचारी रोग, असंचारी रोग, मानव विकृतियां, दुर्घटनाओं, मृत्यु, युद्ध आदि के कारण।

जब आप किसी तकलीफ के कारण चिकित्सक के पास जाते हैं तो वह आप के शारीरिक तथा शरीर क्रियात्मक लक्षणों को देखता है तथा औषधि विज्ञान के अनुसार दवाइयाँ लिखता है और केवल उन दवाइयों का नुस्खा देता है जिनकी वैज्ञानिकों ने सिफारिश की है और जो चिकित्सा विज्ञान के अधिकारियों द्वारा स्वीकृत हैं। दूसरे शब्दों में, चिकित्सक द्वारा रोग का निदान उसकी प्रमुख कुशलता है जबकि वैज्ञानिक रोगों के कारणों की खोज करते हैं और उनको ठीक करने के उपाय ढूंढते हैं। वैज्ञानिक मानव रोगों का निम्नलिखित तीन पद्धतियों का अनुसरण करके अध्ययन करते हैं जो एक दूसरे की अनुपूरक होती है।

1) आधारभूत वैज्ञानिक पद्धति
2) चिकित्सीय पद्धति
3) जानपदिक रोग विज्ञान पद्धति

आधारभूत वैज्ञानिक पद्धति में रोग के शारीरिक, रासायनिक, जैविक तथा अन्य कारणों की विस्तार से खोज-बीन की जाती है। चिकित्सीय पद्धति में बीमार व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता है और रोग के कारण शरीर में उत्पन्न क्रियात्मक लक्षणों तथा उन दशाओं का अध्ययन किया जाता है जो उन लक्षणों की रोकथाम कर सकते हैं अथवा रोग से छुटकारा दिला सकते हैं। जानपदिक रोग विज्ञान संबंधी पद्धति में नियत आबादी अथवा उसके एक अंश में, जो बड़ा या छोटा हो सकता है, रोग की सापेक्ष आवृति की जाँच की जाती है। स्पष्टतः लोगों का एक वर्ग; समुदाय अथवा अपेक्षाकृत

बड़ी आबादी समान पर्यावरण में ही रहते हैं। इसलिए जानपदिक रोग विज्ञान पद्धति एक महत्वपूर्ण तरीका है जिससे मनुष्यों पर पर्यावरण संदूषकों के प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है। इसमें दो क्षेत्र आते हैं :

क) वर्णनात्मक जानपदिक रोग विज्ञान जिसमें मानव समष्टि में रोगों का वितरण अथवा स्वास्थ्य संकटों का अध्ययन किया जाता है।

ख) विश्लेषणात्मक जानपदिक रोग विज्ञान जिसमें रोगों के निर्धारकों, कारकों अथवा रोगों का खतरा उत्पन्न करने वाले कारकों का अध्ययन किया जाता है।

जानपदिक रोग विज्ञान का मुख्य उद्देश्य रोगों के कारणों को समझना अथवा उनकी खोज करना है। साथ ही इन रोगों की रोकथाम के सर्वोत्तम तरीकों को सुझाना, उनके फैलने को नियंत्रित करना और स्वास्थ्य सेवाओं का मार्गदर्शन करना है।

जानपदिक रोग विज्ञान में हम निम्नलिखित पाँच मूलभूत प्रश्नों के उत्तरों की अपेक्षा करते हैं:

1) रोग कब होता है (समय)
2) रोग कहां होता है (स्थान)
3) कौन से लोग प्रभावित हुए हैं (संबंधित व्यक्ति)
4) रोग क्यों हुआ है (कारण)
5) रोग की रोकथाम अथवा नियंत्रण के लिए क्या किया जाना चाहिए (रोकथाम, नियंत्रण तथा उन्मूलन)।

इस प्रकार की पद्धति, रोग के पर्यावरण कारकों की पहचान करने में मदद देती है और रोग की रोकथाम के तरीके सुझाती है। उदाहरण के लिए, किसी क्षेत्र में श्वास संबंधी विकारों के जानपदिक रोग विज्ञान के अध्ययन के दौरान यह देखा गया कि रोग कुछ वर्षों से चल रहा है, प्रभावित लोग कपड़ा उद्योग में काम करते हैं और उनमें रोग के समान लक्षण देखे जाते हैं। मज़दूरों में से केवल वे ही प्रभावित होते हैं जिनकी सांस के साथ रूई के रेशे भी फेफड़ों में पहुँच जाते हैं। इसलिए रेशों का रोग से संबंध है। इस प्रकार के आँकड़ों की भली प्रकार जाँच करने के बाद रोग को भौतिक तथा चिकित्सा के तरीकों द्वारा नियंत्रित किया जाता है तथा रोकथाम की योजना बनाई जाती है।

पर्यावरण कारकों पर रोगोत्पादक क्षेत्र तथा उसमें रहने की अवधि को ध्यान में रखकर विचार किया जाता है। उदाहरण के लिए, केवल रासायनिक संयत्र में हुई एक दुर्घटना के कारकों का तत्कालीन अध्ययन, कोयला और जस्ते की खान की खुदाई के कारण उत्पन्न दीर्घकालीन संकट के कारकों से भिन्न होते हैं।

अगले खंड में हम आपको शरीर पर होने वाले विषैले रसायनों के प्रभावों के बारे में बताएंगे।

14.5 आविष तथा पर्यावरण स्वास्थ्य

आपने पढ़ा है कि कई रसायन भी खराब स्वास्थ्य के कारक होते हैं। जो रसायन जीवित प्राणियों पर बुरा प्रभाव उत्पन्न करते हैं उन्हें आविष कहते हैं। आविषों के प्रभावों को दो किस्मों में वर्गीकृत किया जाता है। अगर उद्भासन के उपरांत आविष का तत्काल प्रभाव होता है तो इसे **तीव्र प्रभाव (acute effect)** कहते हैं। यह प्रभाव थोड़े समय तक रहता है और आविष के हटाने से तुरंत लुप्त हो जाता है। यह अकसर तब होता है जब व्यक्ति का अल्पकाल के लिए आविष की उच्च सांद्रता में उद्भासन होता है, उदाहरण के लिए भीड़ में फंस जाने पर मोटर गाड़ियों से निकलने वाले धुएँ में पाई जाने वाली कार्बन मोनोक्साइड गैस की उच्च सांद्रता का प्रभाव। जब आविष का प्रभाव महीनों या सालों तक कायम रहता है तो **चिरकालिक प्रभाव (chronic effect)** कहते हैं। यह थोड़े रसायन का लंबी अवधि तक उद्भासन के कारण होता है। उदाहरण के लिए सिगरेट पीने या तंबाकू खाने से क्रमशः फेफड़ों और मुख का कैंसर हो जाता है। वैसे एक आविष तीव्र तथा चिरकालिक दोनों ही प्रभावों को उत्पन्न कर सकता है।

आविषी पदार्थ अपना प्रभाव कोशिका के रचक तत्वों पर डालते हैं और उनके कार्य को निरूद्ध करते हैं। ये ऐसे कुछ हार्मोनों का ऐसी मात्रा में मोचन शुरू कर देते हैं जिनका शरीर पर कुप्रभाव हो सकता है।

यद्यपि वायु, जल, भोजन अथवा त्वचा द्वारा अनेक आविषी पदार्थ हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, परन्तु उनका शरीर पर आविषी प्रभाव निम्नलिखित चार कारकों पर निर्भर करता है : 1) प्रवेश का मार्ग 2) आविष की मात्रा 3) प्राणी की संवेदनशीलता 4) योगवाहिता के कारण वृद्धि।

शरीर में प्रवेश पाने वाले पदार्थ का प्रभाव उस समय अधिकतम होता है जब आविष त्वचा के कटे हुए भाग के ज़रिए, अवशोषण द्वारा या किसी अन्य तरीके से तत्काल रूधिर परिसंचरण में पहुँच जाता है। इसका कारण यह है कि आविष तुरंत ही शरीर के कुछेक प्रमुख कार्यों में बाधा डाल सकता है। आप जानते हैं कि सायनाइड और कार्बन मोनोक्साइड शक्तिशाली विष के रूप में कार्य करते हैं क्योंकि ये रुधिर की आक्सीजन वहन क्षमता को निरुद्ध कर देते हैं। आविष की मात्रा भी एक महत्वपूर्ण कारक होती है क्योंकि कुछ आविष कम मात्रा में नुकसानदायक नहीं होते। इसके विपरीत कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं कि कुछ रसायन शरीर के लिए अनिवार्य होते हैं परन्तु उनकी अधिक मात्रा शरीर को क्षति पहुँचाती है। वह मात्रा जिससे शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव अभिव्यक्त होता है को अवसीमा मात्रा (threshold dose) कहते हैं और इस अवसीमा मात्रा से अधिक मात्रा में आविष के शरीर में पहुँचने पर खतरा बढ़ जाता है। इसका एक

योगवाहिता (synergism) : जब दो रसायनों का मनुष्य पर मिला हुआ प्रभाव, उन रसायनों के अलग-अलग प्रभावों के योग से अधिक हो।

अच्छा उदाहरण फ्लोराइड है जो कि अल्प मात्रा में स्वस्थ मसूड़ों के लिए आवश्यक होता है। परन्तु जल में इसकी जरा सी मात्रा में बढ़ जाने पर फ्लोरोसिस हो जाता है। आविष की मात्रा का प्रभाव व्यक्तियों पर अलग-अलग हो सकता है जो कि व्यक्ति की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है। आविषी पदार्थों की क्रिया योगवाही हो सकती है और इस प्रकार क्षति बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, उन लोगों में कैंसर का खतरा बढ़ जाता है जिनका उद्भासन ऐस्बेस्टॉस रेशों से होता है साथ ही वह धूम्रपान करते हैं। यह उन लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है जो या तो धूम्रपान करते हैं या रेशे के सम्पर्क में होने के कारण उसमें सांस लेते हैं।

बोध प्रश्न 3

क) निम्नलिखित वाक्यों के रिक्त स्थानों को उपयुक्त शब्दों द्वारा पूरा कीजिए :

1) मनुष्यों पर पर्यावरण संदूषकों के प्रभावों को ..... द्वारा अध्ययन किया जाता है।

2) साइनायड का प्रभाव तेज होता है क्योंकि यह तुरन्त ही ..... में पहुँच जाता है।

3) खराब स्वास्थ्य से संबंधित त्रिसंयुज के परस्पर क्रिया करने वाले घटक .....,
..... और ..... हैं, जिनका अध्ययन किया जाता है।

4) कार्बन मोनोक्साइड के प्रभाव के कारण होने वाला श्वासावरोध ..... प्रभाव होता है।

14.6 भोजन-संबंधी स्वास्थ्य समस्याएँ

हम सभी जानते हैं कि भोजन, संक्रमण का शक्तिशाली स्रोत होता है। जब भी हमारा पेट खराब होता है हमें यही शक होता है कि वह भोजन के कारण हुआ है। भोजन के संदूषण का कारण सूक्ष्मजीवी, रोगाणु और अरोगाणु आविष तथा कृमि हो सकते हैं या भोजन में मिलाए गए रसायन, जो स्वयं भोजन में प्राकृतिक रूप में नहीं होते। भोजन के उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचने के मार्ग में किसी भी स्थल पर भोजन का संदूषण हो सकता है। इसलिए हर अवस्था पर सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। व्यापक रूप में देखें तो भोजन-संबंधी स्वास्थ्य विज्ञान में सभी प्रकार के भोजन तैयार करते समय, उठाने रखने के दौरान तथा भोजन के वितरण, उसको पकाने से परोसने तक बरती गई स्वच्छता संबंधी बातें शामिल होती हैं।

हम भोजन-जनित रोगों को तालिका 14.1 में दिए गए रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं।

तालिका 14.1 : भोजन-जनित रोगों का वर्गीकरण

रोग के कारक	उदाहरण
प्रोटोजोआ विषाणु	विषाणु हिपेटाइटिस, विषाणु गैस्ट्रोएन्टेराइटिस, पोलियो।
जीवाणु	टायफायड, पैराटायफायड, भोजन का विषाक्त होना, बोटुलिज्म, शिशुओं में दस्त, शिजेलोसिस, जीवाणु पेचिश, स्ट्रैप्टो तथा स्टेफाइलोकोकल संक्रमण, हैजा, साल्मोनेलोसिस।
कृमि	फीताकृमि, विपकृमि, हुक कृमि, गोल कृमि, गिनीकृमि।
प्राकृतिक आविष	कलॉयखंज, महामारी, ड्रोप्सी, ऐफ्लेटॉक्सिन
रासायनिक विष (योज्य तथा मिलावट)	पीड़कनाशी, भोजन के कुछ रसायन योज्य तथा मिलावट
धातुएं	पारा, सीसा, कैड्मियम, टिन, जस्ता।

आइए अब हम इन रोगोत्पादक कारकों में से कुछ की चर्चा करें।

1) सूक्ष्म जीव (Microorganisms) : रोगाणु विशेष रूप से जीवाणु या तो खाद्य विषाक्तता या खाद्य संक्रमण के कारक होते हैं। आपने देखा होगा कि कम ताप पर लंबे समय के लिए रखा गया भोजन खराब हो जाता है। इसका कारण यह है कि रोगाणु सर्वव्यापी होते हैं और खाद्य पदार्थ उनकी वृद्धि का माध्यम होते हैं। जहाँ ये बढ़ते, पनपते हैं और कुछ समय बाद बहुगणित होते हैं और इस प्रकार बड़ी संख्या में पैदा हो जाते हैं। इनकी उपापचयी प्रक्रियाओं के दौरान आविषी पदार्थों का स्राव होता है। कुछ आविष ताप अस्थिर होते हैं अर्थात् यदि भोजन को पर्याप्त गर्म किया जाए तो ये नष्ट हो जाते हैं। परन्तु कई आविष ताप स्थायी होते हैं। यही कारण है कि ऐसे भोजन को ग्रहण कर लेने से खाद्य विषाक्तता उत्पन्न हो जाती है। हम अकसर भोजन को देखकर या उसकी दुर्गंध से जान लेते हैं कि वह खराब है या नहीं। उसके उपरांत ही उसके उपयोग का निश्चय करते हैं। परन्तु कुछ संक्रमण जैसे बोटुलिज्म को देखकर नहीं पता लगता सामान्यतः यह संक्रमण डिब्बा बंद खाद्यों में, विशेष रूप से हिमशीतित मांस में होता है। यदि उसे परिरक्षित रखने के लिए आवश्यक उपाय नहीं किए गए हों। बोटुलिज्म का आविष यद्यपि घातक होता है परन्तु ताप अस्थिर होता है।

दूसरी ओर भोजन को असावधानी से रखने, पकाने या परोसने के दौरान रोगोत्पादक जीवाणुओं के प्रवेश कर जाने पर खाद्य संक्रमण, होते हैं। उदाहरण के लिए, खांसते समय वायु विलय (aerosol) के फुहारे के निकलने से विषाणु या जीवाणु भोजन में प्रवेश कर लेते हैं। ये रोगाणु भोजन में बहुगुणित नहीं होते बल्कि ये मानव शरीर में प्रवेश करके बहुगुणित होते हैं, और गंभीर बीमारी पैदा करते हैं। शरीर में घुस आए थोड़े से जीवाणु ही रोग उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होते हैं।

खाद्य वाहित रोगों के सामान्य लक्षण ये हैं :

i) ज्वर, ii) दस्त, iii) उल्टी या पेट में दर्द, iv) सामान्य कमजोरी और, v) निर्जलीकरण।

2) परजीवी (Parasites) : ये सामान्यतः कृमि होते हैं जो शरीर में वृद्धि कर सकते हैं। वास्तव में भोजन इन कृमियों के अंडों से संदूषित हो जाता है जो मल के साथ विसर्जित होते हैं। भोजन को अस्वास्थ्यकर तरीके से रखने या पकाने के लिए स्थिर पानी या संक्रमित पानी का प्रयोग करने पर अंडे भोजन में आ जाते हैं। शरीर में अंडों से कृमि उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, गोल कृमि रोग को ही लीजिए। मादा गोलकृमि ऐस्कारिस संक्रमित व्यक्ति की आंत में प्रति दिन लगभग 200,000 अंडे देती है जो मल के साथ मिट्टी में चले जाते हैं। इन अंडों से लारवा निकल आते हैं। यदि ये लारवा किसी प्रकार शरीर में पहुँच जाते हैं तो आंत में पहुँच कर ये नन्हें कृमि के रूप में वृद्धि कर लेते हैं।

3) प्राकृतिक आविष (Natural Toxins) : आप जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न आविषों के बारे में पहले पढ़ चुके हैं। अनेक प्रकार की फफूंदियाँ जो खाद्य पदार्थों पर उगती हैं, आविषों को उत्पन्न करती हैं व मनुष्य के लिए विषैली होती हैं। उदाहरण के लिए, मैदानी फफूंद अर्गट (ergot) यह बीज निर्माण के समय बाजरा, गेहूँ और राई जैसे अनाजों के दानों को संक्रमित करती है। इस प्रकार संक्रमित अनाज को खाने से अर्गट रोग हो जाता है जिसके लक्षण हैं जी मिचलाना, बार-बार उल्टी होना, चक्कर आना और नींद की स्थिति में रहना। चिरकालिक रोगियों के हाथ पैरों में दर्द के साथ बाँयटा आ जाता है तथा गैंग्रीन हो जाता है। एक और फफूंद ऐस्पर्जिलस फ्लेवस (aspergillus flavus) जो मूंगफली के दानों, शकरकंदी और कपास के बीजों तथा उनकी खली को संक्रमित करती है — आविषों को उत्पन्न करती है जिन्हें ऐफ्लेटॉक्सिन (aflatoxin) कहते हैं। इनमें से ऐफ्लेटॉक्सिन बी शक्तिशाली कैंसरजनी होता है जो यकृत का कैंसर उत्पन्न करता है। हमारे देश में यकृत कैंसर के सबसे ज्यादा रोगी देखे जाते हैं। फफूंदी से उत्पन्न आविषों को माइकोटॉक्सिन (mycotoxin) कहते हैं। कभी-कभी खाद्य पदार्थ, विशेष रूप से अनाज, दालें और तेल युक्त बीज अचानक ही विषैले बीजों से संदूषित हो जाते हैं जो स्वास्थ्य के लिए संकट उत्पन्न कर देते हैं। उदाहरण के लिए सरसों के बीजों में आर्जिमोन मेक्सिकाना (argemone maxicana) नामक विषैले पौधे के बीज मिल जाते हैं जिनसे जलशोफ (dropsy) हो जाता है। इसी प्रकार मिलेट (ज्वार, बाजरा आदि) भी क्रोटालेरिया (crotalaria) के बीजों से संदूषित हो जाते हैं जिनमें विषैला ऐल्कैलाइड होता है। इससे यकृतविष पीलिया तथा ऐसाइटिस (ascites) रोग हो जाता है। केसरी दाल के कारण क्लॉयरवंज (lathyrism) नामक तंत्रिका तंत्र का रोग हो जाता है जिसकी वजह से पुरुषों में पैरों का संस्तंभी अंगघात (spastic paralysis) हो जाता है।

गैंग्रीन (gangrene) : का अर्थ है ऊतक क्षय नेक्रोसिस जिसमें शरीर का कोई भी अंग परिसंचरण में रूकावट होने के कारण अपघटित हो जाता है।

मध्यप्रदेश के सर्गुजा जिले के कुसुमी ब्लॉक की स्थानीय आबादी मिलेट गोंधी पर ही निर्भर रहती हैं जो अकसर क्रोटेमोरिया द्वारा संदूषित रहता है।

कई जंतुओं में, अधिकांश समुद्री जंतुओं में आविष पाए जाते हैं। मछलियों की लगभग 500 स्पीशीजों के बारे में हमें मालूम है कि वे विषैली होती हैं। कवची जीव (clams) और मस्ल (mussel) जीवों को खाने से कभी भी अंगघाती शैलफिश विषाक्तता (paralytic shellfish poisoning) उत्पन्न हो जाती है।

4) खाद्य पदार्थों में रसायन (Chemicals in Food) : खाद्य पदार्थों में रंग, सुगंध या प्रतिरक्षी रसायनों को मिलाने का चलन नया नहीं है। इस समय 3000 से भी अधिक कृत्रिम तथा आधुनिक रसायनों का विभिन्न कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता है। बाज़ार में मिलने वाले अधिकांश खाद्य पदार्थों में कुछ रसायन मिले होते हैं जिन्हें खाद्य पदार्थों के योज्य कहते हैं। इनको "अपोषक" पदार्थ कहा जाता है और ये जानबूझकर खाद्य पदार्थों में थोड़ी मात्रा में इसलिए मिलाए जाते हैं कि जिससे खाद्य पदार्थों की शक्ल, गंध और बनावट अच्छी हो जाती है और उनका संग्रह किया जा सकता है। तालिका 14.2 में दिए गए खाद्य योजकों की विभिन्न श्रेणियों पर ध्यान दीजिए।

यहाँ यह बात बताना जरूरी है कि सामान्यतः खाद्य पदार्थों में नए योज्यों का प्रयोग, उनके लंबे अरसे तक होने वाले शरीर क्रियात्मक प्रभावों की पर्याप्त रूप में जाँच किए बिना ही कर लिया जाता है। वास्तव में, जाँच करना एक लंबा और अत्यंत खर्चीला काम है। कभी-कभी तो इसमें लाखों रुपए और अनुसंधान में कई वर्ष लग जाते हैं। भारत में सामान्यतः योज्य पश्चिमी देशों से आते हैं जब उनके कुप्रभावों का पता लग जाता है और यहाँ तक की पश्चिमी देशों में इनके प्रयोग पर रोक लगा दी जाती है तब भी हमारे देश में उनका प्रयोग जारी रहता है।

खाद्य पदार्थों के योज्यों की संख्या बढ़ती ही जा रही है और उनका अनियंत्रित, अव्यवस्थित प्रयोग उपभोक्ताओं में स्वास्थ्य संकट पैदा कर रहा है। इसलिए खाद्य योज्यों का प्रयोग सरकार द्वारा नियमन किया जाना आवश्यक है।

5) धातुएं (Metals) : आविषी धातु, जैसे पारा, सीसा, टिन, जस्ता, आर्सेनिक तथा ऐन्टिमनी, शरीर में खाद्य पदार्थों से, पानी में अथवा इन धातुओं की धूल वाले वातावरण में श्वास लेने से पहुँच जाते हैं। इनके प्रवेश का तरीका कुछ भी हो, हम इसी खंड में स्वास्थ्य पर उनके प्रभावों की चर्चा करेंगे।

आप जानते होंगे कि 1950 के दशक में जापान में विष से लोग सामूहिक रूप में ग्रस्त हुए थे जो मिनामेटा खाड़ी की मछलियों को खाने से हुआ था, जहां पानी मेथिल मर्करी द्वारा प्रदूषित हो गया था। मुख्यतः पारा भोजन में, ऐसी दूषित

तालिका 14.2 : खाद्य योज्यों के विभिन्न वर्ग

योज्यों की किस्म और उद्देश्य	प्रयुक्त रसायनों के उदाहरण
कृत्रिम रंग (Artificial colours) उत्पाद की शक्ल को अच्छा बना देते हैं जिससे वह उपभोक्ताओं को आकर्षक लगे।	केसर, हल्दी और अनेक प्रकार के प्राकृतिक तथा कृत्रिम रंग।
सुरूचि कर्मक (Flavouring agents) ये खाद्य पदार्थ को उपयुक्त सुवास प्रदान करते हैं और अधिक स्वादिष्ट तथा क्षुधावर्धक बनाते हैं। विज्ञापन के उद्देश्य से इन्हें उत्पाद की पहचान के रूप में प्रयोग में लिया जाता है।	वनिला का सत (essence) तथा अन्य फलों की खुशबू, अनेक प्राकृतिक तथा कृत्रिम रसायन। आमतौर पर यह दो कृत्रिम रसायन अधिकतर प्रयोग में लाये जाते हैं: मोनोसोडियम ग्लूटैमेट और सैकेरीन।
परिरक्षक (Preservatives) जीवाणु अथवा फफूंद की वृद्धि द्वारा सड़ने में कमी करते हैं।	बेन्जोइक अम्ल, सोडियम बेन्जोएट, सिट्रिक अम्ल, सोर्बिक अम्ल, पोटैशियम मैटा बाइसल्फाइड, सोडियम नाइट्रेट।
विरंजक (Bleaching agents) अवांछित रंग को विरंजित कर देते हैं।	क्लोरीन गैस।
प्रतिऑक्सीकारक (Antioxidant) रासायनिक उपचयन को मंद करके ताज़ापन बनाए रखते हैं।	प्रोपाइल गैलेट, ब्यूटाइलेटेड हाइड्रॉक्सी ऐनीसोल, ब्यूटाइलेटेड हाइड्राक्सी टॉलूईन।
मीठा बनाने वाला (Sweetner) वांछित मीठापन और स्वाद प्रदान करते हैं।	साइक्लेमेट
पायसीकारक (Emulsifier) खाद्य पदार्थों को ब्लैंड करता है।	लेसीथिन, ग्लिसराइड पॉलीसोर्बेट
स्थायीकारी तथा प्रगाढ़क (Stabilizers and Thickners) खाद्य की तंतु रहित बनावट में बदल देते हैं और मसृण गाढ़ापन उत्पन्न करते हैं, जैसे आइसक्रीम में।	जिलेटीन, डेक्सट्रिन, वनस्पति गोंद, समुद्री घास का रस
अम्लता प्रदान करने वाला कारक वांछित स्वाद और सुवास प्रदान करते हैं। इन्हें अचार बनाने के काम में लिया जाता है।	सिट्रिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल
पोषण संबंधी अनुपूरक इन्हें कुछ उत्पादों में मिलाया जाता है जिससे भोजन के अनिवार्य पोषक तत्वों की कमी की पूर्ति की जा सके।	विटामिन, खनिज ऐमिनो अम्ल तथा प्रोटीन

जापान में मर्करी द्वारा विष फैलना : रोगियों में हाथ पैरों में, होठों में और जिव्हा में असंवेदनशीलता पैदा हो गई थी और उनमें पेशीय नियंत्रण समाप्त हो गया था। इसके अतिरिक्त इससे बहरापन, दृष्टि का धुंधला जाना, बेढ़गापन, भावरहन्यता और मानसिक अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी।

मछली खाने के कारण होता है जो पारा मिले पानी में पनपने से विषयुक्त हो जाती हैं। शरीर में पारे के प्रभाव से कोशिकाऐं मर जाती हैं और वे अंग नष्ट हो जाते हैं जो इसके संपर्क में आते हैं। इस प्रकार यह अंगों के कार्यों में बाधा उत्पन्न कर देती है। बहुत दिनों तक पारा मिली हुई वस्तुओं का प्रयोग करने से मुँह और त्वचा कटनी शुरू हो जाती है और तंत्रिकीय समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। श्वास द्वारा पारे की वाष्प को ले लेना उसके अंतर्ग्रहण किए जाने से अधिक खतरनाक होती है। वाष्प द्वारा पारे के विषाक्त होने के लक्षण ये हैं : i) उत्तेजनशीलता, ii) उत्तेज्यता, iii) स्मृति नाश, iv) अनिद्रा, v) कंपन और vi) मसूड़ा शोध।

एक और शक्तिशाली विष वाली धातु है — सीसा, जो सीसे के पाइपों से गुज़रने वाले पानी को पीने, सीसे के डिब्बों में पैक किए हुए भोजन को ग्रहण करने, भोजन के प्रकमण अथवा पैकिंग के लिए सीसे की बनी मशीनों को प्रयोग करने और सीसा युक्त कीटनाशक औषधि का स्प्रे करने से हमारे भोजन में प्रवेश पा लेता है। सीसे का प्रयोग करने वाली फैक्ट्रियों में काम करने वाले लोगों में सीसे की सक्रिय धूल सांस के द्वारा शरीर में प्रवेश करती है। सीसा मस्तिष्क पर असर करता है। बढ़ते हुए बच्चों में इससे मानसिक मंदता उत्पन्न हो जाती है। यह हीमोग्लोबिन के निर्माण को कम कर देता है और वृक्कों को क्षति पहुँचाता है।

कैडमियम का, व्यापक रूप में उद्योग में प्रयोग किया जाता है। अंतर्ग्रहण हो जाने अथवा सांस के साथ शरीर में पहुँच जाने पर यह वृक्क में जमा हो जाता है। लंबे अरसे तक कैडमियम के प्रभाव से हड्डियां भंगुर हो जाती हैं, वृक्कों, वृषणों और यकृत को क्षति पहुँचती हैं। **इटाई इटाई** रोग की सूचना पहली बार जापान से मिली थी और पता चला है कि यह रोग कैडमियम विषाक्तता के कारण होता है।

सस्ते किस्म के खाना पकाने के बर्तनों के द्वारा जो धातुएँ भोजन में प्रवेश कर लेती हैं ये ऐन्टिमनी, जस्ता और टिन हैं। परिरक्षित खाद्य पदार्थों को टीन के कनस्तरों में रखा जाता है। ऐसे खाद्य पदार्थों को बड़ी सतर्कता से प्रयोग करना

चाहिए। कुछ हद तक हम धातुओं से होने वाले संदूषण को पहचान सकते हैं, जैसे रंग में बदलाव या धातुई स्वाद से। आपने देखा होगा कि अम्लीय खाद्य पदार्थ धातुई कनस्तर की सतह की शक्ल ही बदल देते हैं। अम्ल, कनस्तर की धातु के साथ अभिक्रिया करता है और यौगिक बनाता है जो खाद्य पदार्थ में मिल जाते हैं। अंत में हम यह भी बता दें कि आयरन, कॉपर, मैग्नीसियम इत्यादि धातुएँ जो कि हमारे शरीर के लिए अनिवार्य हैं — केवल विशिष्ट रसायनों के रूप में और नियंत्रित मात्रा में ही शरीर के लिए उपयोगी हैं अन्यथा ये घातक भी हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, कॉपर शरीर के लिए अनिवार्य होता है परन्तु कॉपर द्वारा संदूषित भोजन विषैला होता है।

धातु धुआँ ज्वर (Metal fume fever) : विषैली धातुओं के धुओं में सांस लेने से शरीर का ताप बढ़ जाता है। इस ज्वर को धातु धुआं ज्वर कहते हैं। इसके लक्षण हैं गला सूख जाना, छाती में खिचाव, थकावट, सिरदर्द, कमर का दर्द, मतली और पेशियों का दर्द।

खाद्य पदार्थों में अपमिश्रण (Food Adulteration)

वह पदार्थ जिसकी खाद्य पदार्थ में उपस्थिति स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है अपमिश्रक (adulterant) कहलाता है। यह परिभाषा सन् 1954 में पास हुए **भारतीय खाद्य अपमिश्रण निरोध अधिनियम (Prevention of Food Adulteration Act)** द्वारा दी गई है। सामान्य अपमिश्रित खाद्य पदार्थों में दालें, मसाले, कॉफ़ी, चाय की पत्ती, खाने योग्य तेल, घी, मक्खन, आटा इत्यादि आते हैं। दालों में उनसे मिलती-जुलती केसरी दाल मिलाई जाती हैं, कॉफ़ी पाउडर में भुनी हुई इमली और खजूर के बीज पीस कर मिला दिए जाते हैं, ताजा चाय में पहले प्रयुक्त सुखाई हुई चाय की पत्तियों या बुरादे को रंग कर मिलाया जाता है। सस्ते किस्म के बीजों को कालीमिर्च, जीरा और इलायची में मिला दिया जाता है और खाने के तेलों में अखाद्य तेलों को मिला दिया जाता है। हमने पहले बताया है कि **आर्जिमोन मेक्सिकाना** के बीज विषैले होते हैं और अनजाने में सरसों के बीजों के साथ मिल जाते हैं। दुर्भाग्यवश, लालची लोग इन बीजों का तेल निकाल कर इसे खोपरे के तेल, तिल के तेल और मूंगफली के तेल के साथ अपमिश्रित कर देते हैं। आजकल अकसर देखा गया है कि जो बाज़ार में ताजा मटर बिकती है वह सूखे मटर होते हैं जिन्हें पानी में भिगो कर और रंग देकर ताजा मटर की तरह बना दिया जाता है। इस प्रकार के अपमिश्रण या उनसे होने वाले खतरों की अकसर जाँच पड़ताल नहीं हो पाती है। अगले उपखंड में हम बतायेंगे कि बाजार में उपलब्ध कुछ उत्पादों की गुणवत्ता को आप कैसे जान सकते हैं।

गुणवत्ता नियंत्रण (Quality Control)

कोडैक्स ऐलिमेन्टेरियस (Codex Alimentarius) अंतर्राष्ट्रीय मानक है जो एफ ए ओ /डब्ल्यू एच ओ (विश्व स्वास्थ्य संस्थान) ने सभी प्रमुख खाद्य पदार्थों के लिए तय किए हैं। केवल कुछ स्थानों पर आवश्यक परिवर्तन कर दिया गया है। आपने बाज़ार में अनेक वस्तुओं पर आई एस आई (ISI) निशान देखा होगा जिसका अर्थ है कि वह वस्तु भारतीय मानक संस्थान द्वारा स्थापित मानकों के अनुसार है। खाद्य पदार्थों के योज्यों पर आई एस आई (ISI) मानक लागू होते हैं। यद्यपि ऐसे बहुत से संगठन हैं जो खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता, उनके उत्पादन और वितरण को नियंत्रित करते हैं, फिर भी अनेक अपमिश्रित खाद्य पदार्थ बाज़ार में बिकते हैं। निम्नलिखित विधान भारत में खाद्य पदार्थों के लिए गुणवत्ता मानक निर्धारित करते हैं :

"कृषि उत्पाद वर्गीकरण तथा विपणन अधिनियम" (The Agricultural Produce Grading and Marketing)
कृषि तथा अन्य उत्पादों के वर्गीकरण तथा विपणन की व्यवस्था करता है।

एगमार्क (Agmark) : खाद्य पदार्थों को ए, बी, सी, डी, या 1, 2, 3, 4 के रूप में वर्गीकृत करता है जिन्हें आप बाजार से खरीदे जाने वाले उत्पाद पर देख सकते हैं।

खाद्य उत्पाद आदेश (Food Product Order, FPO)
पैक किए हुए फलों और सब्जियों की गुणवत्ता से संबंधित न्यूनतम मानक निर्धारित करता है।

मांस उत्पाद आदेश (Meat Product Order)
कच्चे तथा संसाधित मांस के उत्पादन, गुणवत्ता और वितरण को नियंत्रित करता है।

वनस्पति तेल नियंत्रण आदेश (Vegetable Oil Control Order)
निष्कर्षित तेल के उत्पादन, वितरण तथा गुणवत्ता के लिए मानकों की व्यवस्था करता है।

अब आप इस इकाई के आधे से ज्यादा भाग को पूरा कर चुके हैं इसलिए कुछ विश्राम करें उसके पश्चात् आप निम्नलिखित बोध प्रश्न हल करें। अगले भाग में आप स्वास्थ्य पर जल प्रदूषण के प्रभावों का अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न 4

क) कॉलम 2 में दिए हुए रोगों के उत्पादन कारकों का कॉलम 1 में दिए गए अनुरूपी रोगों के साथ मेल बैठाइए :

रोग	कारण
क) पैरों का संस्तंभी अंगघात	1) खाद्य पदार्थों में संक्रमण
ख) टायफॉयड	2) खाद्य पदार्थों में विषाक्तता
ग) यकृत कैंसर	3) केसरी दाल
घ) अर्गट रोग	4) ऐफ्लेटॉक्सिन

ख) निम्नलिखित में से प्रत्येक के लिए प्रयोग में लिए जाने वाले दो रसायनों के नाम लिखिए :

1) खाद्य रूप को सुधारने के लिए 2) स्वास्थ्य वर्धक 3) खाद्य को सड़ने से रोकने के लिए

.....

.....

ग) कॉलम 1 में दी हुई आविषी धातुओं को कॉलम 2 में वर्णित मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले उनके प्रभाव के साथ मेल बैठाइए :

कॉलम 1 धातुएं	कॉलम 2 स्वास्थ्य पर प्रभाव
क) कैडमियम	मानसिक अवमंदता, घटी हुई बोध-गम्यता और बच्चों में व्यवहारात्मक अवसामान्यताएँ
ख) सीसा	वृषणों को नष्ट कर देता है और यकृत के कार्यों पर प्रभाव डालता है।
ग) पारा	संपर्क में आने वाली शरीर की कोशिकाओं को मार देता है और अंगों के कार्यों को अवरुद्ध कर देता है।

14.7 जल-संबंधी स्वास्थ्य समस्याएँ

वाहित मल (sewage) तथा औद्योगिक एवं कृषि से उत्पन्न कूड़े करकट द्वारा होने वाले जल प्रदूषण के बारे में आप पढ़ चुके हैं। वाहित मल में अपघटनशील कार्बनिक पदार्थ और रोगजनक कारक (pathogenic agents) होते हैं। औद्योगिक अपशिष्टों और कृषि के अपशिष्टों में आविषी रसायन भी होते हैं। जल प्रदूषकों को मोटे तौर पर हम दो किस्मों में वर्गीकृत कर सकते हैं : 1) **रासायनिक कारक** जैसे पॉलीफीनाइल, फीनोल, उर्वरक, पीड़कनाशी दवाएँ, जटिल कार्बनिक रसायन, धातु इत्यादि। 2) **जैविक कारक** जैसे जीवाणु, वाइरस, प्रोटोज़ोआ, कृमि तथा अन्य जीवों के अंडे तथा अन्य परजीवी। अब हम इन जल प्रदूषकों के प्रभावों का वर्णन करेंगे।

14.7.1 रासायनिक संकट

ये मुख्यतः उद्योगों से निष्कासित विभिन्न रासायनिक पदार्थों के कारण उत्पन्न होते हैं। आम तौर पर इनमें विलायक (solvents), अपमार्जक (detergents), भारी धातुएँ (heavy metals), वर्णक (dyes), रंजक (pigments), सल्फाइड (sulphides) तथा कार्बनिक पदार्थ इत्यादि मिले होते हैं। ये रसायन त्वचा के संपर्क में आते ही अपना असर करते हैं और गंभीर त्वचा रोगों से एलर्जियों अथवा ऐग्ज़ीमासम (exzemoid) अभिक्रियाओं अथवा रसायनों द्वारा जलन उत्पन्न करते हैं। कुछ आविष तीव्र प्रभाव उत्पन्न करते हैं तो कुछ अन्य चिरकालिक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। यदि भोजन करने से पहले कार्मिक अपने हाथ अच्छी तरह न धोए तो यह रसायन शरीर में पहुँच सकते हैं। तालिका 14.3 में विभिन्न आविषी रसायनों तथा स्वास्थ्य पर पड़ने वाले उनके प्रभावों को दिखाया गया है। जल के अतिरिक्त किसी अन्य माध्यम से भी इनसे संपर्क हो सकता है।

14.7.2 जैविक संकट

जलवाहित रोग, जठर संबंधी समस्याएं, हैजा, टॉयफाइड, अमीबी पेचिश, पेचिश (जीवाणु), गोल कृमि, गिनी कृमि, पीलिया, पोलिया।

जलवाहित (water-borne) संक्रमण, भारत तथा अन्य अल्पविकसित देशों की गंभीर समस्याएँ हैं। इन देशों में 80 प्रतिशत रोग संदूषित पानी के कारण उत्पन्न हुए बताए जाते हैं। जलवाहित रोगों की सूची हाशिए में दी गई है। प्रदूषित अशुद्ध पानी को पीने, खाना पकाने के काम में लेने या अन्य निजी कार्यों के प्रयोग में लेने से हमारे स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है। कुछ रोगों के सूक्ष्मजीव संक्रमित व्यक्ति के शरीर में ही बहुगुणित होते हैं और यह संक्रमण विष्ठा अथवा मूत्र के साथ उत्सर्जित हो जाता है। मानव विष्ठा का गलत स्थान पर विसर्जन नदियों, कुओं, तालाबों और उथले हैंड पंपों के पानी के संदूषित होने का प्रमुख कारण हैं और इसी के परिणामस्वरूप ये रोग फैलते हैं। तालिका 14.4 में विष्ठा में पाए जाने वाले कॉलीफार्म जीवाणुओं की संख्या द्वारा भारत, पाकिस्तान व बंगलादेश की नदियों में संदूषण की मात्रा दर्शाई गई है।

यद्यपि चहुँमुखी उन्नति का ढिंढोरा हमेशा पीटा जाता है परन्तु, वास्तव में स्वतंत्रता के चार दशक बीत जाने के बाद भी हमारा देश गाँवों और कई शहरी इलाकों में, पानी विशेषकर पीने का पानी, उपलब्ध कराने में सफल नहीं हो पाया है। यह स्थिति हमें निश्चय ही हतोत्साहित करती है। तालिका 14.5 में भारत, श्रीलंका और बंगलादेश के लोगों को उपलब्ध पीने के पानी तथा सफाई सुविधाओं के आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। अनेक रोग, जैसे ट्रेकोमा (trachoma), स्केबीज (scabies), त्वचा का सेप्सिस (skin sepsis), और फफूंदी द्वारा संक्रमण हॉलांकि जलवाहित रोग नहीं होते परन्तु इन रोगों का होना पानी की उपलब्ध मात्रा पर अधिक निर्भर करता है।

जल संबंधी रोगों में पेचिश, पीलिया, गिनी कृमि, जापानी मस्तिष्क शोथ (Japanese encephalitis), मलेरिया, डेंगू, फाइलेरिया (filariasis), नॉक नीज़ (knock knees) रोग हमारे देश में आमतौर से व्याप्त हैं। इनमें से कुछ का आपतन विकासात्मक परियोजनाओं के कार्यान्वयन के कारण बढ़ता जा रहा है, जैसा कि आप आगे पढ़ेंगे।

तालिका 14.3 : आविषी प्रदूषक, स्रोत और उनका स्वास्थ्य पर प्रभाव

आविष का नाम	स्रोत	स्वास्थ्य पर प्रभाव
पॉलीक्लोरिनेटेड बाईफीनाइल (PCBs)	इसका प्रयोग ट्रांसफॉर्मरों तथा अन्य विद्युतीय उपकरणों के निर्माण में, प्लास्टिक के ड्रमों, एपॉक्सी रेज़िनों, दीवारों और फर्नीचर आदि को ढकने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बनाने में, साबुन, क्रीम, पेन्ट, गोंद, काग़ज़, मोम और अन्य अनेक वस्तुओं के बनाने में होता है।	थकावट, उल्टी, त्वचा पर काले धब्बे, पेट का दर्द, आंत के रोग, अस्थायी अंधापन, मृत जन्म तथा कैंसरजनी होने की आशंका।
वीनाइल क्लोराइड	इसका प्रयोग प्लास्टिक बनाने में होता है, जैसे पॉलीवीनाइल क्लोराइड (PVC)।	यकृत, अस्थि तथा परिसंचरण तंत्र की क्षति। मस्तिष्क, यकृत और लसिका तंत्र में कैंसर, जन्मजात असमान्यताएँ।
बैन्जीन	इसका प्रयोग कला तथा शिल्प में, अपमार्जक, मोल्डिंग सूत और कीटनाशी दवाएँ बनाने में होता है। यह चूल्हे की गैस के योज्य है।	आरक्तता, अस्थिमज्जा की क्षति तथा ल्यूकीमिया
थैलेट	प्लास्टिसाइजर (जो प्लास्टिक रेजिनों में मिलाया जाता है)।	केंद्रीय तंत्रिकीय को क्षति
नाइट्रोसैमीन	भोजन में विद्यमान अन्य ऐमीनो के साथ नाइट्राइटों की अभिक्रिया द्वारा उत्पन्न। नाइट्रेटों का प्रयोग मांस, सलामी और साथ ही धूमीकृत मछलियों में किया जाता है।	कैंसरजनी
डी.डी.टी.	कीटनाशी	शरीर में कंपन, केंद्रीय तंत्रिकीय तंत्र का अपकर्षण, और कैंसरजनी की आशंका।
ऐल्ड्रिन/डाइऐल्ड्रिन	कीटनाशी	शरीर में कंपन, व्याक्षोभ, वृक्क क्षति और कैंसरजनी की आशंका
डाइऑक्सैन	शाकनाशी	शक्तिशाली कैंसरजनी व दुस्सह मुंहासे बने रहना तथा स्वास्थ्य पर अन्य बुरे प्रभाव।
क्लोरीनयुक्त कार्बन यौगिक	अनुपयोगी पानी का क्लोरीनेशन करने से उत्पन्न और पीने के पानी में प्रवेश	कैंसरजनी
नाइट्रेट तथा नाइट्राइट	सेप्टिक टैंकों से, कोठारों से, अत्यधिक उर्वरीकृत फसलों से और गंदे पानी के उपचार करने वाले संयंत्रों से। नाइट्रेट मानव की आंतों में नाइट्राइटों में बदल जाते है।	नाइट्राइट हीमोग्लोबीन के साथ संयुक्त हो जाते हैं। तीन साल से छोटे बच्चों के लिए घातक होते हैं। इस रोग को मीथाइल नाइट्रोसोमनिया कहते हैं।

जापान में खाना पकाने के तेल में अकस्मात PCBs मिल जाने से उत्पन्न संदूषण के फलस्वरूप हजारों लोगों का यकृत बड़ा हो गया, आंतें खराब हो गईं तथा लसीका तंत्र बिगड़ गया।

तालिका 14.4 : नदियों के पानी की विषाक्तता

देश	नदी	मल में कॉलीफार्म जीवाणु (संख्या प्रति 100 मिली लिटर)
बंगलादेश	ब्रह्मपुत्र	2,606
	गंगा का निचला भाग	1,963
	मेघना	3,193
भारत	माही	550,000
	नर्मदा	260,000
	ताप्ती	37,000
	बाण गंगा	3,699
	कावेरी	439
	कृष्णा	57
	गोदावरी	7
	पेरियार	767
	साबरमती	1,147
पाकिस्तान	सिंधु	120

स्रोत : वर्ल्ड रिसोर्स 1987 : इन्टरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर एन्वायरमेन्ट एण्ड डेवलपमेंट तथा वर्ल्ड रिसोर्स इंस्टीट्यूट न्यूयार्क, बेसिक बुक्स इंकॉर्पोरेशन द्वारा दी गई रिपोर्ट।

अभी तक दस्त हमारे देश में एक स्थायी महामारी के रूप में व्याप्त है। इसके शिकार प्रमुख रूप से शिशु तथा बच्चे हैं। दस्त के साथ-साथ कुपोषण होने के कारण यह दुष्चक्र महामारी का रूप ले लेता है। कुछ हद तक शिशुओं में आजकल दस्त का आपतन बढ़ने का कारण बोतल से दूध पिलाना है जिसका विज्ञापन दूध के पाउडर की एजेंसियाँ करती हैं।

तालिका 14.5 : भारत और उसके पड़ोसी देशों में पीने के पानी तथा सफाई की सुविधाओं की उपलब्धता

देश	पीने का पानी आबादी का प्रतिशत जिन्हें सुरक्षित पीने का पानी मिल रहा है।			सफाई की सुविधाएँ आबादी की प्रतिशतता जिन्हें सुरक्षित पीने का पानी मिल रहा है।		
	कुल	शहरी	ग्रामीण	कुल	शहरी	ग्रामीण
भारत	55	80	47	8	30	1
पाकिस्तान	40	78	24	20	53	6
श्रीलंका	37	76	26	67	80	63
बंगलादेश	41	29	43	4	21	2

स्रोत : वर्ल्ड रिसोर्स 1987 : इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर एन्वायरमेंट एण्ड डेवलपमेंट तथा वर्ल्ड रिसोर्स इंस्टीट्यूट न्यूयार्क, बेसिक बुक्स इंकॉर्पोरेशन, 1987 द्वारा दी गई रिपोर्ट।

हमारे देश के 8,000 गांवों के लगभग 17 लाख भारतीय गिनी कृमि रोग से ग्रस्त हैं। इस कृमि के लारवा पीने के पानी के साथ शरीर में पहुँचते हैं। श्रिम्प की तरह के साइक्लाप्स नामक सूक्ष्मदर्शी क्रस्टेशियाई होते हैं। जो पानी से इस कृमि के लारवों को लेकर मनुष्यों में पहुँचाने का काम करते हैं। यदि ये साइक्लाप्स मनुष्यों में प्रवेश नहीं कर पाते तो ये मछलियों में पहुँच जाते हैं और मछलियों से लारवे मनुष्यों में पहुँच जाते हैं। शरीर में पहुँचने पर ये लारवे वृद्धि करके लगभग 1.7 मीटर तक लंबे कृमियों में बदल जाते हैं।

रूक-रुक कर पानी आने वाले नलों से एक अन्य प्रकार का खतरा सामने आया है जो ध्यान देने योग्य है। जब पाइपों में पानी नहीं होता, उनमें दबाव कम हो जाता है, तब आसपास के रिसते हुए पाइपों का पानी स्वच्छ जल के पाइपों में प्रवेश कर जाता है। इसी कारण बड़े शहरों में पीलिया रोग का आपतन बढ़ रहा है।

14.7.3 विकासात्मक गतिविधियाँ तथा रोग

हमारे देश में विकासात्मक गतिविधियों विशेष रूप से सिंचाई परियोजनाओं ने मलेरिया, जापानी एन्सेफैलाइटिस जैसे रोगों और साथ ही घुटन तोड़ (नॉकनीज knock knees) की समस्या को बढ़ाने में योग दिया है। विकासात्मक गतिविधियों के कारण ये रोग अब बड़े क्षेत्रों में फैल गए हैं।

सन् 1952 से 1965 के दौरान पीड़कनाशी डी डी टी के व्यापक प्रयोग के कारण मलेरिया से ग्रस्त लोगों की संख्या 1000 लाख से घट कर लगभग एक लाख रह गई थी। इस प्रकार तराई क्षेत्र में जब मलेरिया की रोकथाम की गई तो कृषि के लिए नए क्षेत्रों का उपयोग करने में सुगमता हो गई। परन्तु सिंचाई के साधन बढ़ाने का सबसे भयंकर परिणाम यह हुआ कि 1976 में मलेरिया फिर फैल गया और 64 लाख लोग इसकी चपेट में आ गये क्योंकि मच्छरों ने पीड़कनाशी दवाओं के अत्यधिक प्रयोग के कारण प्रतिरोध विकसित कर लिया। अब तो मच्छरों ने बहुत सी कीट नाशियों के प्रति भी प्रतिरोध विकसित कर लिया है। इसके अतिरिक्त मलेरिया परजीवी प्लैज्मोडियम ने भी क्लोरोक्वीन नामक औषधि के प्रति प्रतिरोध विकसित कर लिया है जो कि दुर्भाग्यपूर्ण है।

जापानी एन्सेफैलाइटिस (Japanese encephalitis) : यह रोग भारत में एक नया रोग है और लगातार बढ़ रहा है। जैसा कि इस रोग के नाम से स्पष्ट होता है, इस रोग का उद्भव सर्वप्रथम जापान में हुआ। वहाँ से यह दक्षिण पूर्व एशिया में चारों ओर फैल रहा है। यह रोग विषाणु द्वारा होता है। आम तौर पर इसे "मस्तिष्क ज्वर" (brain fever) कहते हैं। यह अधिकांशतः घातक होता है और इससे प्रभावित लोगों में, दो में से एक की मृत्यु हो जाती है यानि इससे प्रभावित 50% लोग मर जाते हैं। यह विषाणु मच्छरों द्वारा फैलता है जो कि धान के खेतों में प्रजनन करता है। धान की खेती के बढ़ने के साथ-साथ इसके आवास स्थल में वृद्धि हो गई है और मच्छरों की आबादी बढ़ गई है। सामान्यतः मच्छर इसके विषाणु को सुअरों में संचरित करता है और जो लोग सुअर पालते हैं वे अचानक ही इसके शिकार हो जाते हैं। प्रायः यह रोग सामाजिक-आर्थिक किस्म का है और गरीब लोगों को प्रभावित करता है।

मच्छरों द्वारा संचरित एक अन्य रोग फाइलेरिया है जो देश में पिछले तीन दशकों से फैला हुआ है। इसका कारण पर्याप्त जलनिकास सुविधाओं से वंचित क्षेत्र में पानी भर जाना है क्योंकि गन्दे जल वाले गड्ढे मच्छरों के प्रजनन स्थल बन जाते हैं। अपनी अंतिम अवस्था में यह रोग एन्सेफैलाइटिस जैसा ही प्रतीत होता है। बताया जाता है कि राष्ट्रीय फाइलेरिया कार्यक्रम के जरिए 1986 तक लगभग 380 लाख लोगों को सुरक्षित कर दिया गया था। तथापि लाखों लोग अब भी इससे ग्रस्त हैं।

हमने घुटन तोड़ यानि नॉक नीज़ रोग की पहले ही चर्चा की है जो पीने के जल में फ्लोराइड की अधिकता से होता है। इसके शिकार वह लोग हैं जो आँध्र प्रदेश में नागार्जुन सागर के कमांड क्षेत्र के इर्द-गिर्द रहते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि सिंचाई परियोजना ने इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के अंतः संबंधित परिवर्तन कर दिए हैं। बांध के जलाशयों और नहरों से पानी के अवस्रवण के कारण, अवमृदा (subsoil) जल का स्तर बढ़ गया है। परिणामस्वरूप मृदा की क्षारीयता में परिवर्तन हो जाने से सोरघम (sorghum) पौधा भारी धातुओं को बड़ी मात्रा में ग्रहण कर लेता है। गाँव के लोगों का प्रमुख भोजन सोरघम है और ऐसे पौधों को खाने से शरीर में तांबे की कमी हो जाती है जो कि बहुत ही कम मात्रा में हमारे शरीर के लिए अनिवार्य धातुओं में से एक है। पता चला है कि तांबे की कमी होने पर फ्लोराइड की मात्रा अधिक ग्रहण कर ली जाती है जिससे कंकालीय फलोरोसिस (skeletal fluorosis) हो जाता है। घुटनों के विरूपण के कारण चलने की क्षमता समाप्त हो जाती है। अतः हम देखते हैं कि किस प्रकार एक घटना दूसरी घटनाओं से जुड़ती चली जाती है और भयंकर रूप से घातक सिद्ध होती है। इस प्रकार अंततः क्षेत्र के गरीब लोगों को बड़े-बड़े बाँधों की कीमत, अपंगता के रूप में चुकानी पड़ रही है।

सन् 1965 में यह सूचित किया गया था कि शरीर के ऊतकों में डी डी टी का संचय भारतीयों में सर्वाधिक है। इसका कारण संभवतः अनाज, सब्जियाँ, फल इत्यादि का प्रयोग है जिन पर पीड़कनाशियों (pesticides) के अवशेष बड़ी मात्रा में रह जाते हैं। खाने के पदार्थों को पकाने या उबालने से पीड़कनाशी नष्ट नहीं होता। एक रोग के अध्ययन के दौरान पीड़कनाशी का अधिकतम कुप्रभाव प्रकाश में आया है इस रोग को **एन्डेमिक फैमिलियल आथ्राइटिस (Endemic Familial Arthritis)** कहते हैं। सन् 1975 में कर्नाटक के मलनाड इलाके में रह रहे गरीब हरिजन लोग इसके शिकार हो गए थे। यह रोग कूल्हे और घुटनों के जोड़ों में रूक-रूक कर होने वाले दर्द के रूप में शुरू हुआ और बाद में लगातार रहने लगा। कुछ लोग तो इससे इतने अधिक प्रभावित हो गए कि खड़े ही नहीं हो पाए। खोजबीन से पता चला कि इन रोगियों को कुछ समय पहले अनाज उपलब्ध नहीं था इसके कारण उन्हें केक्ड़ों को खाना पड़ा जिन्हें उन्होंने उन धान के खेतों से पकड़ा था जहाँ उच्च उत्पादकता वाली किस्मों का धान उगाने के लिए कीटनाशक का छिड़काव किया गया था।

वास्तव में यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अधिकांश मामलों में हम देखते हैं कि हमारे समाज में गरीब और शोषित वर्गों के लोग ही आयोजनाबद्ध विकास तथा कुप्रबंधित पर्यावरण के परिणामों को भुगतते हैं।

बोध प्रश्न 5

क) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति आविषी प्रदूषक का नाम लिखकर कीजिए।

1) ..... का प्रयोग प्लास्टिक रेजिन में किया जाता है और यह केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को क्षति पहुँचाता है।
2) ..... का प्रयोग प्लास्टिक के बर्तनों को बनाने में किया जाता है परन्तु इसके कैंसरजनी होने का शक रहता है।
3) ..... का प्रयोग कला तथा शिल्प में किया जाता है और यह एनीमिया और ल्यूकीमिया उत्पन्न कर सकता है।
4) ..... शिशुओं में मीथाइलनाइट्रोसोमनिया उत्पन्न कर सकता है।
5) .... और ..... कीटनाशी कैंसरजनी हो सकते हैं।
6) ..... के कारण स्थायी और गंभीर किस्म के मुँहासे होते हैं।

ख) निम्नलिखित रोगों में से कौन से विकासात्मक गतिविधियों के परिणामस्वरूप होते हैं :

1) गिनीकृमि 2) फाइलेरिया 3) जापानी एन्सेफैलाइटिस 4) पेचिश 5) घुटन तोड़
6) मलेरिया 7) टायफाइड।

14.8 संचरणीय रोग

हम पढ़ चुके हैं कि भोजन और जल के जरिए अनेक रोगोत्पादक कारक शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इनमें से अनेक रोग संचरणीय होते हैं। संचरणीय रोग उन रोगों को कहते हैं जो रोग ऐसे संक्रमण अथवा ग्रसन (infestation) से होते हैं जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में , जंतु से मनुष्य में अथवा जंतु से जंतु में, वायु, धूल, मृदा, जल, भोजन इत्यादि के जरिए संचरित हो सकते हैं। ऐसे सामान्य रोग हैं : टायफॉइड, हैजा, मलेरिया, छोटी माता, गिनी कृमि इत्यादि। संचरण की श्रृंखला में तीन कड़ियाँ होती हैं : 1) संक्रमण का भंडार, 2) संचरण का तरीका, 3) परपोषी। नीचे दिए गए विस्तृत विवरण से आप प्रत्येक कड़ी को समझ सकेंगे।

क) **संक्रमण का भंडार (Reservoir of Infection)**

मनुष्य आम तौर पर संक्रमण का भंडार अथवा स्रोत होता है। संक्रमक कारक, जैसे जीवाणु, विषाणु अथवा कृमियों के अंडाणु, शरीर से कफ, मल, उलटी, थूक अथवा मूत्र के रास्ते बाहर निकलते हैं। आप जानते ही होंगे कि एक

संक्रमित व्यक्ति, जो संक्रमणीय रोग से ग्रस्त है, संक्रमण को कई लोगों में फैला सकता है। वह परिपोषी संक्रामक कारकों को आश्रय देता है। फिर भी उसमें संक्रमण के कोई संकेत दिखाई नहीं देते। तथापि वह एक स्वस्थ व्यक्ति में संक्रमण को संचरित कर सकता है। ऐसे स्वस्थ व्यक्ति को हम **वाहक** (carrier) कहते हैं।

ख) संचरण के तरीके (Modes of Transmission)

संचरण के विभिन्न तरीकों का वर्णन हम नीचे दे रहे हैं। कुछ रोग केवल एक ही मार्ग से होकर संचरित होते है, जबकि अन्य विविध मार्गों से फैल सकते हैं।

1) **संपर्क संचरण** (Contact transmission) : यह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष तरीकों से हो सकता है।

   i) **प्रत्यक्ष संचरण** (Direct transmission) : यह एक संक्रमित व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति के साथ शारीरिक संपर्क से हो सकता है। इसके कुछ उदाहरण हैं : सिफलिस (syphilis), गनोरिया (gonorrhea) और आंखों के रोग।

   ii) **अप्रत्यक्ष अथवा परोक्ष संचरण** (Indirect transmission) : इसमें संक्रमित वस्तुओं, कपड़ों, चम्मचों, प्यालों इत्यादि के माध्यम से संक्रामक कारक का, परपोषी में संचरण होता है, जैसे टायफॉयड, संक्रमी यकृत शोथ (हिपैटाइटिस)।

2) **वाहक संचरण** (Vehicle transmission) : जब रोग के कारकों का संचरण जल, भोजन, दूध, बर्फ, सीरम, इत्यादि के माध्यम से होता है तो इसे **वाहक संचरण** कहते हैं। जल सामान्य स्रोत से प्राप्त किया जाता है। यदि स्रोत ही संक्रमित हो तो परिणामस्वरूप संक्रमण बहुत सारे लोगों में फैल जाता है। टायफॉइड, ज्वर, हैजा, पोलियो, कृमि संक्रमण, यकृत शोथ इत्यादि वाहन संचरण द्वारा फैलते हैं।

3) **रोगवाहक द्वारा संचरण** (Vector transmission) : कीट, जैसे मच्छर, मक्खी और सेट्सी मक्खी (tse-tse fly) इत्यादि जो रोगोत्पादक कारकों को लाने ले जाने का काम करते हैं, **रोगवाहक** कहलाते हैं। संक्रमण का अंतरण 1) काटने से 2) प्रत्यावहन (regurgitation) से 3) खुजलाने से और 4) परपोषी के संदूषित शरीर के तरलों द्वारा या रोगवाहकों से होता है। जैसे मलेरिया, गिनी कृमि, पेचिश, जापानी मस्तिष्क शोथ, रैबीज।

4) **वायु वाहित संचरण** (Air-borne transmission) : जब कोई संक्रमित व्यक्ति खांसता, छींकता अथवा तेज़ी से बोलता है, उसकी लार अथवा थूक की बुंदिकाएँ हवा में 5 से 10 मीटर तक फैल जाती हैं। हवा से ऐसी बुंदिकाएँ सांस द्वारा ग्रहण कर लिए जाने पर संक्रमण हो जाता है। इसे **बुंदिका संक्रमण** (droplet infection) भी कहते हैं। इसके उदाहरण हैं ट्यूबरकुलोसिस, जुकाम, खसरा, डिप्थीरिया, कर्णमूलशोथ इत्यादि। अधिकांश विषाणु संक्रमण वायु वाहित ही होते हैं।

5) **उदग्र संचरण** (Verticle transmission) : जब कोई संक्रमित मादा गर्भ के जरिए भ्रूण में ही संक्रमण का संचरण करती है तो उसे **उदग्र संचरण** कहते हैं। उदाहरण के लिए ऐडस (AIDS) और सिफलिस (syphilis) रोग माँ के जरिए गर्भ में संचरित होते हैं।

ग) परपोषी (Host)

तीसरी कड़ी आमतौर पर मनुष्य होता है जिसमें संक्रमण कारक आश्रय लेता है। परपोषी के शरीर में कारक के बहुगुणित होने से रोग हो जाता है। परपोषी यदि रोग के लिए संवेदनशील है और रोग ग्रस्त हो सकता है। संक्रमण कारक रोग को फैलाता है, यदि उसे नाक, मुहँ, विष्ठा अथवा मूत्र के जरिए निकल कर वातावरण में जाने का अवसर प्राप्त हो जाए जैसा कि टायफाइड, जुकाम, डिप्थीरिया, खसरा आदि रोगों में होता है। यदि पर्यावरण में पहुँचने के लिए कोई निकास नहीं मिलता तो वह अवरूद्ध रोग कहलाता है जैसा कि रैबीज़ में होता है।

संचारी रोग तेजी से समुदाय में फैल जाते हैं। एफ एस टी पाठ्यक्रम की इकाई 22 में हमने इनकी और विस्तार से चर्चा की है। आपको सलाह दी जाती है कि इस इकाई को पढ़ें और इससे संबंधित वीडियो "संक्रामक रोग" भी देखें।

हमने शुरू में बताया था कि संचरणीय रोग विकासशील देशों में एक बड़ी समस्या है। इसके लिए बड़े पैमाने पर सुरक्षात्मक कार्यक्रमों के अतिरिक्त व्यापक स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम चलाए जाने की आवश्यकता है जिसमें सफाई संबंधी जागरूकता, अच्छी आदतों को डालने और व्यक्तिगत स्वास्थ्य के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए। साथ ही यह भी समझाना चाहिए कि इन रोगों को समूल नष्ट करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति का इस कार्यक्रम से जुड़ना जरूरी है।

बोध प्रश्न 6

क) कॉलम 1 में सूचीबद्ध संचरणीय रोगों को कॉलम 2 में दिए गए उनके संचरण के तरीके के साथ मेल बैठाइए।

कॉलम 1 रोग	कॉलम 2 संचरण का तरीका
क) हिपैटाइटिस	1) वायुवाहित
ख) जापानी मस्तिष्क शोथ	2) वाहन (vehicle)
ग) जुकाम	3) रोगवाहक
घ) सिफलिस	4) संपर्क

14.9 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि :

- व्यक्ति का स्वास्थ्य आनुवंशिक व्यवहारात्मक तथा पर्यावरण की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। मनुष्य का उसके पर्यावरण के साथ समन्वय बिगड़ जाने का ही नाम रोग है।
- एक समुदाय के लोग समान वातावरण में रहते हैं इसलिए उनकी स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ सामान्यतः समान होती हैं। इसलिए सामुदायिक स्तर पर इनकी जांच पड़ताल और स्वास्थ्य की देखभाल का आयोजन किया जाता है।
- बीमारी कारक, परपोषी और पर्यावरण के त्रिसंयुज के कड़ियों के बीच पारस्परिक क्रिया है। समुदाय की स्वास्थ्य समस्या को जानने के लिए तीनों की विस्तृत जानकारी प्राप्त की जाती है।
- पर्यावरणीय प्रदूषकों के प्रभाव और उनकी रोकथाम का अध्ययन करने के लिए जानपदिक रोग विज्ञान पद्धति अपनाई जाती है।
- प्रतिदिन विविध प्रकार के विषैले रसायन हमारे शरीर में भोजन, जल और वायु के माध्यम से पहुँचते रहते हैं। तथापि शरीर को वे किस सीमा तक नुकसान पहुँचाएंगे यह आविष की मात्रा, शरीर का भाग जिसमें वे पहुँचते हैं, व्यक्ति की संवेदनशीलता और उनकी रोग वाहिता पर निर्भर करता है।
- कुछेक खाद्य योज्य तथा अपमिश्रक आविषी होते हैं और इनका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
- रसायन, जैसे बहुक्लोरीनीकृत बाइफीनाइल, डाइआक्ज़ीन, डी डी टी, नाइट्रोसैमीन, भारी धातुएँ तथा कई अन्य रसायन जो पिछली कुछ शताब्दियों में पर्यावरण में आ गए हैं, स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक हैं।
- योजनारहित विकास परियोजनाएँ और कुप्रबंद्धित पर्यावरण के कारण जापानी ऐन्सेफैलाइटिस, फाइलेरिया, घुटन तोड़, फिर से मलेरिया का अधिक आपतन तथा डेंगू ज्वर आदि शुरू हो गए हैं।
- पर्यावरण में भी रोगोत्पादक सूक्ष्मजीव तथा अन्य रोगाणु मौजूद होते हैं जो संक्रामक रोगों को उत्पन्न करते हैं। कुप्रबंधित पर्यावरण संचरणीय रोगों के फैलने में मदद देता है।

14.10 अंत में कुछ प्रश्न

1) पर्यावरण संबंधी स्वास्थ्य को समझने के लिए सामुदायिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना क्यों जरूरी होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) मनुष्यों में पर्यावरणीय संदूषकों से उत्पन्न रोगों का अध्ययन कैसे किया जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) डाक्टर नशीले पेयों के साथ प्रशान्तकों (tranquiliser) को न लेने की चेतावनी क्यों देते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.11 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) सभी प्रकार के जीव, भौतिक तथा रासायनिक जल और सामाजिक पर्यावरण।

   ख) मुख्य उद्देश्य यह है कि समुदाय के प्रत्येक सदस्य के स्वास्थ्य की देखभाल की जाए और उन्हें इष्टतम स्वास्थ्य स्तरों को उपलब्ध कराया जाए।

2) क) 1, 2, 4, 5.

   ख) क) 5, ख) 3, ग) 1, घ) 2, ङ) 4

3) क) 1) जानपदिक रोग विज्ञान पद्धति, 2) रूधिर परिसंचरण, 3) कारक, परपोषी, पर्यावरण, 4) तीव्र

4) क) क) 3, ख) 1, ग) 4, घ) 5, ङ) 2

   ख) 1) केसर, रंजन कारक, 2) विटामिन तथा ऐमीनो अम्ल,
   3) वेंजोइक अम्ल, पोटेशियम मैटा सल्फाइड।

   ग) क) 2, ख) 1, ग) 3

5) क) 1) थैलेट 2) बहुक्लोरीनीकृत बाइफिनाइल 3) बेन्जीन 4) नाइट्रेट तथा नाइट्राइट
   5) डी डी टी, 2-4 डी, ऐल्ड्रीन 6) डाइऑक्सीन

   ख) 2, 3, 5

6 क) क) 2, ख) 3 ग) 1 घ) 4

अंत में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1) चूंकि समुदाय के प्रत्येक सदस्य बहुत हद तक एक से ही पर्यावरण के सम्पर्क में रहते हैं इसलिए उनकी स्वास्थ्य समस्याओं का सामुदायिक स्तर पर अध्ययन किया जाता है और उसी के अनुसार सामुदायिक स्तर पर उपयुक्त कार्यवाही करने की योजना बनाई जाती है।

2) इसका अध्ययन जानपदिक रोग विज्ञान पद्धति से किया जा सकता है। संदूषक के प्रभाव का प्रभावित आबादी में अध्ययन किया जा सकता है। रोग की सापेक्ष आवृत्ति, प्रभावित लोगों की किस्म, जैसे आयु, सैक्स, सामाजिक वर्ग इत्यादि और रोग को उत्पन्न करने वाले कारणों अथवा उनके जोखिम के स्तर की जाँच की जाती है।

3) योगवाहिता अर्थात प्रशांतक और ऐल्कोहॉलीय पेयों का सम्मिलित प्रभाव उन दोनों के अलग-अलग प्रभाव से अत्यंत तीव्र होता है।

इकाई 15 पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य—II

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
15.2 वायु प्रदूषण तथा स्वास्थ्य
15.3 व्यवसाय तथा स्वास्थ्य
कार्यस्थल का पर्यावरण तथा स्वास्थ्य
शोर से उत्प्रेरित रोग
15.4 स्वास्थ्य तथा तनाव
पर्यावरण संबंधी तनाव के कारक
तनाव से संबंधित रोग
15.5 विकिरण तथा स्वास्थ्य
15.6 कैंसर
15.7 धूम्रपान, शराब तथा नशीली दवाएं
15.8 देश में स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति
रोगों के बदलते रूप
देश में स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति
15.9 भविष्य में मनुष्य कल्याण की संभावना
15.10 सारांश
15.11 अंत में कुछ प्रश्न
15.12 उत्तर

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य-I में हमने भोजन और जल में जैविक तथा रासायनिक संदूषकों से होने वाले संभावित स्वास्थ्य संकटों के बारे में बताया था। इस इकाई में हम अपनी चर्चा जारी रखेंगे और वायु प्रदूषण, व्यावसायिक पर्यावरण तथा विकिरण के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

हम वायु प्रदूषण तथा स्वास्थ्य से शुरू करते हैं। जैसा कि आप पढ़ चुके हैं अधिकांश प्रौद्योगिक नगरों और महानगरों में विभिन्न प्रकार के प्रदूषक अब सामान्य रूप में पाए जाते हैं। हम स्वास्थ्य पर उनके पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या करने के साथ ही बतायेंगे कि ये श्वसन तंत्र के विभिन्न भागों पर किस प्रकार प्रभाव डालते हैं और श्वास के रोग उत्पन्न करते हैं। उद्योगों द्वारा उत्पन्न कई प्रकार के प्रदूषक भी वायु में मिल जाते हैं। ऐसे पर्यावरण में सांस लेने वाले श्रमिकों का स्वास्थ्य खतरे में रहता है। हर वर्ष हजारों श्रमिक इन्हीं व्यावसायिक रोगों के कारण मर जाते हैं। यहां हम खदानों, फैक्ट्रियों तथा अन्य स्थानों पर काम करने वाले श्रमिकों की स्वास्थ्य समस्याओं तथा उनके पर्यावरण की जांच करने पर ध्यान केन्द्रित करेंगे जहां वे लगातार संदूषित वायु में सांस लेते हैं। भारी मशीनी कार्य, परिवहन तथा तेज आवाज का संगीत इत्यादि से उत्पन्न होने वाले उच्च स्तर के शोर में लगातार रहना भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है।

चारों ओर के पर्यावरण से संबंधित एक और पहलू है तनाव का। यह अनेकों स्वास्थ्य समस्याओं को बढ़ाता है। इसके अलावा पर्यावरण संबंधी संकटों में विकिरण सबसे अधिक खतरनाक है। संपूर्ण विश्व के लोग मानव निर्मित उस विकिरण के खतरे से डरते हैं जो नाभिकीय शक्ति संयंत्रों और नाभिकीय शस्त्रों से उत्पन्न हो सकते हैं। आप जानते हैं कि विगत काल में भी बहुत सारे लोग परमाणु बम के विस्फोट, नाभिकीय परीक्षणों तथा नाभिकीय शक्ति संयंत्रों में दुर्घटना के परिणाम से रेडियम सक्रिय पदार्थों के फैल जाने से प्रभावित हो चुके हैं। दुर्भाग्य की बात है कि विकिरण का प्रभाव अनेक पीढ़ियों तक बना रहता है। इस इकाई में हम कुप्रबंधित पर्यावरण के कारण हमारे देश में विद्यमान विभिन्न रोगों के बारे में भी विचार करेंगे। इसके अतिरिक्त आपको अपने देश में वर्तमान स्वास्थ्य स्तर से अवगत कराया जाएगा। अंत में हम अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए उपलब्ध विकल्पों की छानबीन करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन कर लेने के बाद आप :

- यह बता सकेंगे कि किस प्रकार वायु द्वारा प्रदूषक हमारे श्वसन तंत्र को प्रभावित करते हैं।
- यह जान सकेंगे कि सांस के विभिन्न रोग किस प्रकार वायु प्रदूषकों से प्रभावित होते हैं।
- देश भर में ऐसी बीमारियों की कितनी व्यापकता है।

- अपने क्षेत्र के व्यवसाय संबंधी रोगों के उदाहरण दे सकेंगे और कुछ प्रभावित लोगों की पहचान कर सकेंगे।
- शोर के कारण स्वास्थ्य समस्याओं का विवरण दे सकेंगे और उनसे प्रभावित होने वाले कुछ वर्गों को सूचीबद्ध कर सकेंगे।
- तनाव उत्पन्न करने वाले कारकों की सूची बना सकेंगे, और उदाहरणों द्वारा यह स्थापित कर सकेंगे कि तनाव और स्वास्थ्य संबंधित हैं।
- विकिरण द्वारा उत्पन्न होने वाले स्वास्थ्य संकटों की व्याख्या कर सकेंगे।
- देश के घातक तथा शरीर क्षीण कर देने वाले मुख्य रोगों के बारे में बता सकेंगे।

15.2 वायु प्रदूषण तथा स्वास्थ्य

विश्व में वायु प्रदूषण स्वास्थ्य के लिए बढ़ता हुआ खतरा है। सन् 1955 में अमरीका और जापान में दमा महामारी की भयानक घटना घटी थी और लंदन में सन् 1952 में। इसके कारण लगभग 4000 लोगों की मृत्यु हो गई थी। इन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के पश्चात वायु प्रदूषण को सबसे अधिक खतरनाक माना गया। भारत में भोपाल गैस त्रासदी ने देश भर में सभी वर्गों के लोगों को वायु प्रदूषण से सावधान कर दिया है। आप इस पाठ्यक्रम की इकाई एक में इस त्रासदी तथा इसके परिणामों के बारे में पढ़ चुके हैं। यूनियन कार्बाइड द्वारा दी गई मुआवज़े की कोई भी राशि प्रभावित लोगों के स्वास्थ्य पर पड़े हुए कुप्रभावों को दूर नहीं कर सकती।

जिस वायु में हम सांस लेते हैं उसमें प्रदूषण होने के कारण ऑक्सीजन की कमी हो जाती है तथा उसकी गुणवत्ता भी घट जाती है। इसके अलावा हमें सांस में उन प्रदूषकों को भी लेना पड़ता है जो हमारे फेफड़ों के लिए हानिकारक हैं। अकसर हम अनुभव करते हैं कि धुएं या बारीक धूल के कणों के संपर्क में आते ही हमारी आंखों, नाक, गले इत्यादि में जलन पैदा हो जाती है। कुछ अन्य प्रदूषकों से तो आंखों में पानी आने लगता है, नाक में जलन के अलावा अवरोध पैदा हो जाता है, छींकें आने लगती हैं या सिर दर्द होने लगता है, साथ ही साथ गले की खराश, आवाज में परिवर्तन, सूखी खांसी भी होने लगती है। यह सब लक्षण प्रदूषकों के कुप्रभाव के संकेत देते हैं। अगर प्रदूषित गैसें श्वसन तंत्र के अन्य भागों तक पहुंच जाती हैं तो लगातार खांसी, सांस लेने में कठिनाई और तेज सांस या श्वसन की अन्य समस्याएं पैदा हो जाती हैं जो घातक सिद्ध हो सकती हैं। यह सब वायु प्रदूषकों के प्रभावों के तीव्र लक्षण हैं जो इनके संपर्क में आते ही शुरू हो जाते हैं। विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि अधिकांश वायु प्रदूषक श्वसन संबंधी समस्याएं उत्पन्न कर देते हैं। लम्बे समय तक इनके संपर्क में रहने से वातस्फीति (emphysema), श्वसनी शोथ (bronchitis), पुरानी खांसी (chronic cough) और दमा (asthma) जैसे रोग हो जाते हैं।

धुएं से प्रदूषित वायु, एलर्जी तथा हृदय रोग जैसी गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न करने में योग देती हैं। कार्बन मोनोक्साइड धुएं का एक रचक तत्व है। यह सांस द्वारा शरीर में पहुँच कर लाल रूधिर कणिकाओं में हीमोग्लोबिन से ऑक्सीजन आबंधन का अवरोध करती है क्योंकि यह ऑक्सीजन प्रतियोगिता निरोधक (competitive inhibitor) है और ऑक्सीजन की तरह हीमोग्लोबिन से आबंध बनाती है। भीड़-भाड़ के कारण यातायात रूक जाने पर या लम्बा सफर करने के पश्चात शायद आपने कभी सिर दर्द का अनुभव किया हो। इसका कारण है अत्यधिक भीड़-भाड़ वाले यातायात के स्थान पर हवा में कार्बन मोनोक्साइड के स्तर में वृद्धि। घरों में भी धूम्रपान करने से इस दूषित गैस का स्तर बढ़ सकता है। इसलिए सिगरेट पीने वाले के आसपास रहना भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है क्योंकि सिगरेट पीने वाले के मुहं से निकला हुआ धुआं अन्य व्यक्तियों की सांस में चला जाता है। अन्य वायु प्रदूषकों से भी आप परिचित होंगे। जैसे नाइट्रोजन के ऑक्साइड, सीसा, हाइड्रोकार्बन, मोटर वाहनों से निकले धुएं में कणयुक्त पदार्थ, और गंधक

तालिका 15.1 : स्वास्थ्य पर प्रमुख वायु-प्रदूषकों के प्रभाव

प्रदूषक	स्वास्थ्य पर प्रभाव
सल्फर के ऑक्साइड	खांसी, दम घुटना, श्लेष्मा अस्तर (lining) तथा फेफड़ों में जलन, सांस का फूलना, ऊतक-तरलों का इकट्ठा हो जाना, पुराना श्वसनी शोथ, फुस्फुसीय तंतुमयता (fibrosis), तीव्र तथा पुराना दमा और वातस्फीति इत्यादि।
नाइट्रोजन ऑक्साइड	आंखों में जलन, रूधिर की आक्सीजन वहन-क्षमता में कमी, फेफड़ों की कार्यक्षमता में कमी और श्वास-नली में शोथ।
कार्बन मोनोक्साइड	श्वासावरोधन (asphyxiation), हृदय तथा मस्तिष्क को क्षति, दुर्बल अवगम (impaired perception), रूधिर बढ़ाव में प्रतिरोध, कमजोरी, थकावट तथा सिरदर्द।
प्रकाश-रासायनिक ऑक्सीकारक जैसे ओज़ोन	आंखें दुखना, खांसी तथा छाता में दर्द, फेफड़ों की कार्यक्षमता में कमी, वातस्फीति, तंतुमयता, श्वसनी ऊतक और फेफड़ों की कार्यशक्ति में गिरावट, दाएं हृदय की गति रूक जाना।
बेन्जोपाइरीन	कैंसर के कारण मृत्यु।
कणिकीय पदार्थ	कणिकीय पदार्थ की किस्म और आकार पर उसका प्रभाव निर्भर करता है। जलन, रोगक्षम प्रतिरक्षा व्यवस्था में बदलाव, फुप्फुस (pulmonary) की कार्यशक्ति में गिरावट, हृदय और फेफड़ों पर असर।

युक्त कोयले या तेल जलने से सल्फर डाइऑक्साइड का बनना इत्यादि। तालिका 15.1 में इन प्रदूषकों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों को प्रदर्शित किया गया है। शायद आप तालिका में दिए गए रोगों के नामों से परिचित न हों। आप इन रोगों के बारे में अगले खंड में पढ़ेंगे।

आइए अब हम यह देखें कि प्रदूषकों के संपर्क में आते ही किस प्रकार हमारा श्वसन तंत्र उनके प्रति अभिक्रिया करता है और हमें उनसे प्रभावित होने के संकेत देता है। हमारे विचार से यह जानकारी देना सुसंगत है क्योंकि यह आपको (i) आपके इर्द-गिर्द वायु की गुणवत्ता को पहचानने और (ii) उससे उत्पन्न होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं की चेतावनी देने में सहायक होंगी।

इन समस्याओं को समझने के लिए आपको श्वसन तंत्र के विभिन्न भाग, उनकी प्रतिरक्षा विधि और प्रदूषकों तथा अन्य आक्रामकों (invaders) के प्रति उनकी अनुक्रिया की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

श्वसन तंत्र (The Respiratory system)

श्वसन तंत्र के बारे में आपने स्कूल में अवश्य पढ़ा होगा। सबसे पहले हम उसे दोहरा लेते हैं। नीचे दिए गए रेखाचित्र 15.1 में मोटे तौर पर श्वसन तंत्र की बनावट दर्शायी गई है इनके भागों को नामांकित कीजिए पूरा करने के पश्चात नीचे दिए कोष्ठक में उत्तरों से मिलाइए।

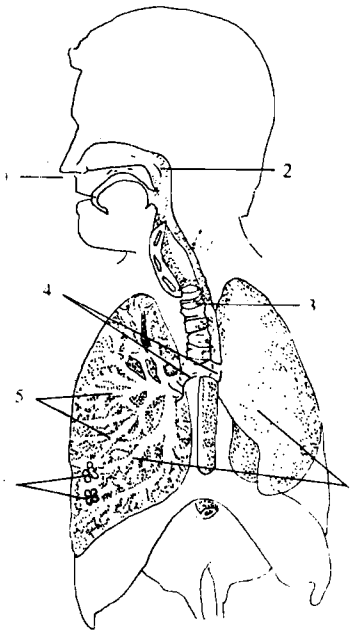

चित्र 15.1 : हमारा श्वसन तंत्र

श्वसन तंत्र के विभिन्न भाग
1) नाक 2) नासिका मार्ग 3) श्वासनली 4) श्वसनियाँ (bronchi) 5) श्वसनिकाएँ (bronchioles) 6) फेफड़े 7) कूपिकाएँ (alveoli),

हाशिए में दिए गए चित्र 15.2 में कूपकीय थैलियों की विस्तृत संरचना प्रदर्शित की गई है। यह सामूहिक रूप में वातावरण से गैस विनियम के अंगों के रूप में कार्य करती है। इनमें पतली सी लाइनिंग होती है जो अनेक रूधिर कोशिकाओं द्वारा घिरी रहती है। कूपिकाएँ अंतर्ग्रहण की गई वायु से भरी रहती हैं।

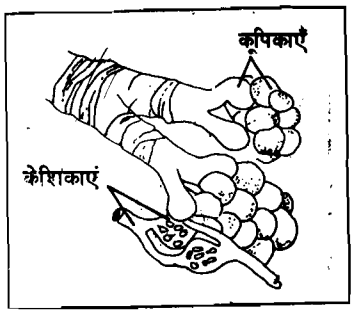

चित्र 15.2 : कूपकीय थैलियों की विस्तृत संरचना।

प्रदूषकों के विरुद्ध प्रतिरक्षा

श्वसन नली की पूरी लम्बाई में एक प्रतिरक्षा-क्रिया विधि बनी होती है जो कणिकामय और गैसीय प्रदूषकों से उसकी रक्षा करती है।

प्रतिरक्षा में निम्नलिखित कार्य करते हैं,

i) नासा रोम,
ii) नासिका मार्ग,
iii) श्वसन नली की श्लेष्मा झिल्ली की लाइनिंग (नाक से श्वसनी वृक्ष का ऊपरी भाग),
iv) श्वसन नली के ऊपरी तथा निचले भागों में बारीक रोमों का अस्तर,
v) कूपिकाओं में परिग्राही कोशिकाएँ (engulfing cells)।

श्वसन कार्यों के लिए श्वसन नली का निचला भाग महत्वपूर्ण होता है और यह श्वसन नली के ऊपरी भाग द्वारा सुरक्षित रहती है।

प्रदूषकों के प्रति शरीर की अनुक्रिया

जब कभी कणिकामय पदार्थ या आविषी गैस प्रदूषक नाक में प्रवेश करते हैं तब यह उपरोक्त रोधकों को पार करने के बाद ही अंततः फेफड़ों में पहुँचते हैं। श्वसन मार्ग से गुजरते हुए, प्रदूषक संपर्क में आए क्षेत्रों को उत्तेजित कर सकते हैं, उनमें सूजन पैदा कर सकते हैं अथवा उन्हें क्षतिग्रस्त भी कर सकते हैं। नाक में घुसने पर पहले नाक के नासा-रोम प्रदूषक कणों को रोकते हैं। नासा रोम, कार, वातानुकूलको तथा भट्टियों इत्यादि में प्रयुक्त वायु फिल्टर की तरह कार्य करते हैं। प्रदूषण कण बाद में छींक द्वारा बाहर फेंक दिए जाते हैं या निगल लिए जाते हैं। यदि कोई हानिकारक गैस साँस द्वारा अंदर चली जाए तो वह नासा-मार्ग द्वारा शीघ्रता से अवशोषित कर ली जाती है जिससे वह निचले अधिक नाजुक तथा महत्वपूर्ण भागों जैसे कि श्वासनिकाओं में प्रवेश न कर सकें। गंभीर परिस्थितियों में श्वास नली की श्लेष्मा झिल्ली उत्तेजकों को बाहर निकाल देती है। नाक से पानी बहना, खाँसी तथा छींक और बलगम यहाँ तक कि आँखों से आँसू भी प्रदूषक को शीघ्र ही बाहर निकालने की प्रक्रिया में मदद करते हैं। इसके साथ ही श्वसन नली में पक्ष्माभ यानी सिलिया (cilia) का अस्तर, म्यूकस तथा कणों को ऊपरी भाग से बाहर की ओर ले जाने का कार्य करता है। अंततः प्रदूषण कण बाहर फेंक दिए जाते हैं या निगले जाते हैं। अगर यह आक्रामक अंत में श्वासनिकाओं अथवा कूपिकाओं में पहुँचने में सफल हो जाते हैं तो परिग्राही कोशिकाएँ उन्हें पचा लेती हैं या वापिस श्वसन नली में धकेल देती हैं। परिग्राही कोशिकाएँ केवल जीवाणुओं को मार सकती हैं लेकिन कणिकामय अविलेयशील पदार्थ जैसे धूल, कार्बन कण, ऐसबेस्टॉस इत्यादि फेफड़ों में निक्षेपित हो जाते हैं और अघुलनशील पदार्थ जैसे धातुई धूम (metal fumes) रूधिर में प्रवेश करके शरीर के अन्य भागों में चली जाती हैं जहाँ वह जमा हो सके। दोनों ही परिस्थितियों में प्रदूषक कोशिकाओं को हानि पहुँचा सकते हैं तथा नष्ट कर सकते हैं।

प्रदूषित वायु में वर्षों तक साँस लेने से या तम्बाकू पीने से पक्ष्माभ, कूपिकाएँ तथा फेफड़े कमजोर हो जाते हैं।

परिणाम

थोड़े ही समय में कई कोशिकाओं की अचानक मृत्यु से द्वितीय प्रभाव शुरू हो जाते हैं। मृत कोशिकाएँ हानिकारक पदार्थों का मोचन करती हैं जो रूधिर केशिकाओं (capillaries) को फैला देते हैं और कोशिकाओं में से पानी बाहर के ऊतकों में आ जाता है। अगर यह पानी श्वासनिकाओं अथवा कूपिकाओं में इकट्ठा हो जाता है तो फेफड़ों द्वारा वायु विनिमय की दर घट जाती है। दूसरे शब्दों में फेफड़े ऑक्सीजन को कम मात्रा में शरीर को पहुँचाते हैं। बदले में (inturn) हृदय पर भी असर पड़ता है क्योंकि उसे ऑक्सीजन की कमी की पूर्ति के लिए अधिक काम करना पड़ता है। आपको हम यह भी बता दें कि फेफड़ों द्वारा वायु के विनिमय में कमी होने अथवा सांस लेने या छोड़ने में किसी प्रकार का अवरोध होने से श्वसन रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

यद्यपि श्वसन तंत्र के समस्त भाग प्रदूषक को बाहर निकालने में कठिन परिश्रम करते हैं फिर भी प्रदूषक की अधिक मात्रा या लम्बी अवधि तक उसके प्रभाव में रहने से तीव्र तथा चिरकालिक जलन, सूजन, अधिक मात्रा में म्यूकस और फेफड़ों के कार्यों में अवरोध पैदा हो जाता है। लक्षण स्वयं रोगों के रूप में दिखाई पड़ते हैं जैसे कि श्वसनी मरोड़, पुराना श्वसनी शोथ, दमा, वातस्फीति, फुस्फुस धूलिमयता (pulmonary fibrosis)। इन मुख्य रोगों का संक्षेप में वर्णन हम नीचे दे रहे हैं।

1) श्वसनी मरोड़ या आकुंचन (Bronchospasm)

प्रदूषकों के द्वारा अधिक उत्तेजन से जब श्वसनिकाओं की पेशियों में शोथ (inflammation) हो जाता है तब श्वसनिकाएँ अवरूद्ध हो जाती हैं (चित्र 15.3 क) अतः फेफड़ों से वायु के निकलने में रुकावट पैदा हो जाती है इस स्थिति को श्वसनी मरोड़ कहते हैं।

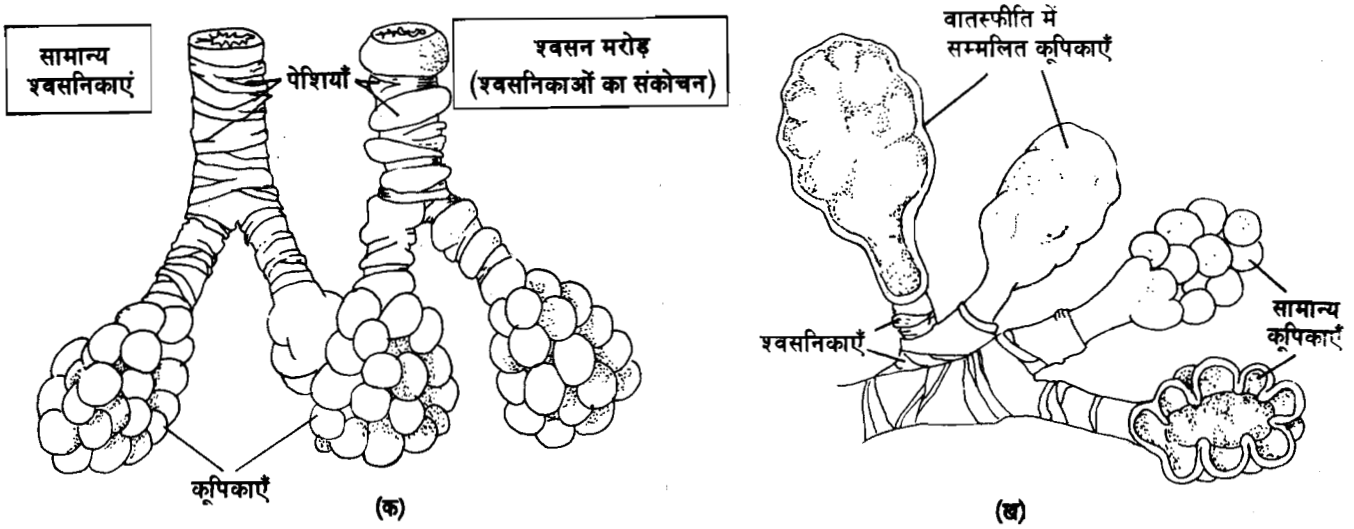

चित्र 15.3 क) श्वसनी मरोड़ में श्वसनिकाओं की दशा ख) वातस्फीति का आरेखीय चित्र

2) **पुराना श्वसनी शोथ (Chronic Bronchitis)**
इसका कारण है श्वसनियों के अस्तर में शोथ तथा शोफ (edema) उत्पन्न होना और इसके लक्षण हैं अधिक म्यूकस उत्पादन और खाँसी। रोग की गंभीर अवस्था में छोटी श्वासनिकाएँ नष्ट हो जाती हैं। पुराना श्वसनी शोथ की अगली अवस्था वातस्फीति है।

3) **वातस्फीति (Emphysema)**
कूपिकाओं की दीवारें नष्ट हो जाने से अलग-अलग कूपिकाएँ जुड़ कर बड़ी थैलियाँ बना देती हैं जैसा कि चित्र 15.3 ख में दिखाया गया है। इससे फेफड़ों में वायु के विनिमय के लिए उपलब्ध सतह का कुछ क्षेत्र कम हो जाता है।

4) **फुप्फुसीय तंतुमयता (Pulmonary Fibrosis)**
चूँकि धूल के कणों को कूपिकाओं के बृहत् भक्षकाणु (macrophages) बाहर नहीं निकाल सकते इसलिए यह कण अनेक वर्षों तक वहीं पड़े रहते हैं और धीरे-धीरे उनके ऊपर कुछ तंतुमय ऊतक निक्षेपित हो जाते हैं इसी को तंतुमयता कहते हैं जिसके कारण फेफड़ों की कार्यशक्ति घट जाती है।

5) **पुराना तथा बिगड़ा हुआ दमा (Chronic and Aggravated Asthma)**
दमा एलर्जी की एक दशा है जो आमतौर पर बाह्य पदार्थों द्वारा कुछ हद तक मनुष्य में भावुकता से अधिक आवेश की परिस्थिति में शुरू हो जाती है। इसमें श्वसनी मरोड़ के कारण वायु मार्ग सिकुड़ जाते हैं। इसलिए वायु फेफड़ों में फंसी रह जाती है क्योंकि व्यक्ति उसे निश्वास के समय बाहर नहीं निकाल पाता। उत्तेजक प्रदूषक और कणकीय पदार्थ जैसे आटा, कोयला, टेल्कम पाउडर, ऐसबेस्टॉस की धूल इत्यादि दमे को तीव्र कर देते हैं। लगातार इनके संपर्क में रहने से दमे के रोगी में चिरकालीन दमा हो जाता है। गंभीर स्थिति होने पर साँस लेना कठिन हो जाता है और अकसर ऐसी दशा बने रहने पर मृत्यु हो जाती है।

6) **धूल से उत्पन्न रोग (Dust Diseases or Pneumoconioses)**
यह खास प्रकार के प्रदूषकों की धूल के कणों, जिनका आकार 0.5 से 5 μm तक हो, साँस द्वारा ग्रहण करने के कारण होते हैं। अधिकांशतः विपदग्रस्त व्यक्ति या तो प्रदूषकों के वातावरण में कार्य करते हैं या वह इर्द-गिर्द के इलाके में रहते हैं। विभिन्न पदार्थों की धूल से होने वाले रोगों की सूची तालिका 15.2 में दी गई है।

तालिका 15.2 : धूल से उत्पन्न रोग

रोगों के नाम	कारण
सिलिकोसिस (silicosis)	सिलिकन
बाइसिनोसिस (byssinosis or brown lung)	कपास के तंतु, फ्लैक्स, सन
बैगैसोसिस (bagassosis)	ईख के तंतु
ऐसबेस्टॉसिस (asbestosis)	ऐसबेस्टॉस के तंतु
एन्थ्रोकोसिस (anthrocosis or black lung)	कोयले के कणों की धूल
टैल्कोसिस (talcosis)	टैल्कम पाउडर

जैसा हम पहले बता चुके हैं, यदि धूल कई वर्षों तक श्वसन तंत्र में रह जाए तो ऊतकों में ततुमयता पैदा हो जाती है और फेफड़ों की कार्यक्षमता घट जाती है। इसका प्रभाव हृदय पर पड़ता है। गंभीर अवस्था में रोगी का हर समय दम फूलता है और अंत में वह मर जाता है। विभिन्न पदार्थों की धूल का प्रभाव निम्न बातों पर निर्भर करता है।

i) धूल के रासायनिक घटक

ii) धूल के कणों की बारीकी या आकार

iii) वायु में धूल की सांद्रता

iv) धूल के प्रभाव की अवधि

v) प्रभावित व्यक्ति के स्वास्थ्य की दशा

उपरोक्त चर्चा से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि स्वास्थ्य पर वायु प्रदूषण के गंभीर प्रभाव पड़ते हैं और लंबे समय तक आविषी प्रदूषकों के संपर्क में रहने पर मृत्यु भी हो सकती है। गंभीर रोग जैसे कि श्वसनीय शोथ, श्वसन मरोड़, पुरानी खांसी, वातस्फीति, तथा पुराना दमा, फुप्फुसीय तंतुमयता, फेफड़ों का कैंसर इत्यादि रोगी के लिए अत्यधिक

कष्टदायी होते हैं और मौत के पश्चात ही वह इनसे छुटकारा पाता है। अगला खंड व्यवसायिक स्वास्थ्य पर है उसमें आप पढ़ेंगे कि कुछ गरीब, अभागे व्यक्तियों को अपनी जीविका निर्वाह के लिए लंबे अरसे तक इन वायु प्रदूषकों के पर्यावरण में रहना पड़ता है क्योंकि उनके पास कोई रोजी रोटी कमाने के लिए कोई अन्य विकल्प नहीं होते।

अगला खंड पढ़ने से पहले आप निम्न बोध प्रश्नों को हल करें :

बोध प्रश्न 1

क) कॉलम 1 में सूचीबद्ध श्वास-अवरोधकों का कॉलम 2 में दिए गए अनुरूपी रोगों के साथ मेल बैठाइए।

कॉलम 1	कॉलम 2
क) म्यूकस उत्पादन और खांसी का बढ़ना	i) वातस्फीति
ख) श्वसनिकाओं की पेशियों में सूजन	ii) पुराना श्वसनी शोथ
ग) कूपिकाओं का भंग होकर बड़ी थैलियां बनना	iii) बिगड़ा हुआ दमा
घ) फेफड़ों में कणिकीय प्रदूषकों के चारों और तंतुमय ऊतकों का निक्षेपण	iv) श्वसनी मरोड़
ड) फेफड़ों में वायु का फँस जाना	v) फुप्फुस तंतुमयता

ख) उपयुक्त शब्दों की सहायता से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

i) धूमयुक्त प्रदूषित वायु .... और ..... में योग देती है।

15.3 व्यवसाय तथा स्वास्थ्य

अधिकांश लोगों को अपनी पसंद की नौकरी करने के अवसर सीमित होते हैं। गरीब और अल्पसुविधा प्राप्त लोग, जो सबसे अधिक खतरे वाली तथा संकट युक्त नौकरी करते हैं और खराब से खराब पर्यावरण में रहते हैं, ऊपर बताए गए कुछ रोगों से ग्रस्त होते हैं। परन्तु कार्यालयों में सुविधापूर्ण पर्यावरण में काम कर रहे लोग भी रोगों से बचे नहीं रहते। वे शारीरिक बीमारियों और मनोवैज्ञानिक तनाव से ग्रस्त रहते हैं। वास्तव में, मानसिक तनाव अनेक स्वास्थ्य समस्याओं का मूल कारण है। कई अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि काम करने के स्थान के पर्यावरण में आविषी रसायनों और भौतिक कारकों के प्रभाव में रहने से फेफड़ों के रोग, हृदय रोग, त्वचा की विसंगतियां, कैंसर, बहरापन इत्यादि रोगों को बढ़ावा मिलता है। काम करने के स्थान पर बिगड़े हुए पर्यावरण के कारण उत्पन्न रोगों को हम व्यावसायिक रोग कहते हैं। अगले दो उपभागों में हम इन्हीं रोगों के बारे में चर्चा करेंगे।

15.3.1 कार्यस्थल का पर्यावरण तथा स्वास्थ्य

इस उपभाग में हम आपको उन रोगों के बारे में बतायेंगे जो फैक्ट्रियां, खानों, कृषि-भूमि, कार्यालयों इत्यादि में काम करने के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। शोर संबंधी रोगों की चर्चा पृथक उपभाग में ही की जाएगी। बढ़ते चले जा रहे औद्योगिकीकरण के कारण ही वर्तमान सदी में इन रोगों का आपतन बढ़ रहा है।

1) **खनन तथा फैक्ट्री का काम**

वायु-प्रदूषण संबंधी पिछले उपभाग में हमने आपको धूल से उत्पन्न रोगों के बारे में बताया था जिन्हें फुप्फुस धूलमयता कहते हैं। खनन अथवा अन्य काम करने के स्थान पर वहां काम करने वाले लोग किसी प्रकार के प्रक्रम के दौरान उत्पन्न होने वाले धूल के कण अथवा रासायनिक धूल को अनेक वर्षों तक सांस के जरिए ग्रहण करते रहते हैं। इस प्रकार से वे अपने जीवन काल में कई हजारों घंटों इन्हें सांस में लेते हैं और श्वास संबंधी रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं।

भारत में सिलिकोसिस के बारे में प्रथम सूचना सन् 1947 में कोलार में सोने की खानों से प्राप्त हुई थी। उसके पश्चात यह पता लगा कि यह अन्य उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों को भी होता है। यह कोयला, सोना, चांदी, सीसा, जस्ता, मैंगनीज तथा अन्य धातु-खनन उद्योगों, मिट्टी के बर्तन तथा चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने वाले उद्योग में, लोहा तथा स्टील के उद्योगों, सैंड ब्लास्टिंग (sand blasting) तथा भवन-निर्माण कार्य तथा अन्य अनेक कार्यों में लगे हुए लोगों में सामान्य रूप में पाया जाता है। बिहार में अभ्रक उद्योग के क्रमिकों में फुप्फुस धूलिमयता का आपतन 34 प्रतिशत तक पाया गया और चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने वाले उद्योग में भी 15 प्रतिशत पाया गया। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं एक और प्रमुख बीमारी बाइसिनोसिस है यह कपड़ा उद्योग के उन कर्मचारियों में सामान्य रूप में मिलती है जो गांठ खोलने वाले कक्ष में, रूई धुनने वालों कक्ष में, ब्लो कक्ष में और सूत लपेटने तथा काटने वाले कक्षों में काम करते हैं। काम करते समय श्रमिक ऐलर्जी उत्पन्न करने वाले प्रदूषकों को सांस द्वारा ग्रहण कर लेते हैं और इससे उन्हें नाक, गले या कान की बीमारियां हो जाती हैं। रसायन बनाने वाली फैक्ट्रियों में काम करने वाले श्रमिकों में नाक और गले का कैंसर होता देखा गया है। यहां तक कि कुछ फैक्ट्रियों के रसायनों के उच्च स्तर के प्रभाव से मृत्यु तक हो सकती है।

अमरीका के व्यावसायिक सुरक्षा तथा स्वास्थ्य संबंधी राष्ट्रीय संस्थान के लिए तैयार किए अध्ययन के अनुसार संकटमय उद्योगों को क्रमवार हाशिए में दिखाया गया है। अध्ययन में यह क्रम निम्नलिखित मदों पर आधारित था

i) संबंधित कैंसरजन की सापेक्ष आविषता और

ii) श्रमिक उनके प्रभाव में कितनी अवधि तक रहे।

सबसे अधिक संकट पैदा करने वाले उद्योग (कैंसर उत्पन्न करने वाले रसायनों को कोष्ठकों में दिया गया है)।

1) औद्योगिक तथा वैज्ञानिक औज़ार (ऐसबेस्टॉस, सीसा, सोल्डर)।
2) संरचित धातु-उत्पाद (सीसा, निकल, ऐसबेस्टॉस, कुछ विलायक)।
3) विद्युतीय उपकरण तथा संभरण (सीसा, ऐसबेस्टॉस, पारा, क्लोरोहाइड्रो-कार्बन तथा कुछ विलायक)।
4) मशीनरी (विद्युत से चलने वाली मशीनों को छोड़कर : काटने, शमन करने तथा स्नेहक तेल बनाने वाली मशीनें)।
5) परिवहन उपकरण (प्लास्टिक के संघटक जिनमें फॉर्मैल्डिहाइड तथा फीनोल शामिल हैं)।
6) पेट्रोल तथा पेट्रोल से बने उत्पाद (बैन्जीन, नैफ्थैलीन)।
7) चमड़े से बने उत्पाद (क्रोम लवण तथा कार्बनिक यौगिक जिनका प्रयोग खाल को कमाने में किया जाता है)।
8) पाइपलाइन द्वारा परिवहन (पेट्रोल से व्युत्पन्न पदार्थ, वैल्डिंग में प्रयुक्त धातुएं)।

भारत में अनेक घरेलू उद्योग अव्यवस्थित निजी सैक्टर में लगाए गए हैं जहां लोग अत्यधिक अस्वास्थ्यकर दशाओं में काम करते हैं। पर्याप्त स्थान, प्रकाश, उपयुक्त संकलन तथा सुरक्षा उपायों की कमी के कारण ये लोग अनेक रोगों की चपेट में आ जाते हैं। उदाहरण के लिए वैल्डिंग उद्योग में काम करने वाले श्रमिक जल्दी अंधे हो जाते हैं और उन्हें श्वास-संबंधी रोग हो जाते हैं, आटा मिलों में काम करने वाले श्रमिकों को फेफड़ों के रोग हो जाते हैं, छानने के उद्योगों में काम करने वालों को कान, नाक और गले के रोग हो जाते हैं, मिर्च मसाला उद्योग में श्रमिकों को फेफड़े का पैपरिकोसिस (paprikosis) रोग हो जाता है, और तंबाकू की फैक्ट्रियों में काम करने वालों को फेफड़ों की बीमारियां और त्वचा के एलर्जी रोग हो जाते हैं।

हम अगले उपभाग में ऊंचे स्तर के शोर से उत्पन्न होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं की चर्चा करेंगे।

शोर के प्रभाव में लगातार काम करने से शोर-उत्प्रेरित (तंत्रिकीय) बहरापन हो जाता है। यह बॉयलर अनुभाग या सैंड ब्लास्टिंग प्रक्रिया अथवा भारी इंजीनियरी अनुभागों में काम करने वाले श्रमिकों में सामान्य है। टेलीफोन ऑपरेटरों पर काम करने वाली महिला कर्मचारी बहुत वर्ष बाद बहरेपन से ग्रस्त हो जाती हैं। कुछेक व्यावसायिक समस्याएं जागरूकता की कमी और लापरवाही के कारण उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए अधिकांश श्रमिक तेज चमकीली रोशनी में काम करते समय सुरक्षा के लिए चश्मों अथवा कैंसरजन रसायनों का प्रयोग करते समय दस्तानों का प्रयोग नहीं करते। इसलिए उनपर तेज प्रकाश का प्रभाव होता है और उन्हें नेत्र-रोग हो जाते हैं, अंततः वे अंधे हो जाते हैं। कैंसरजन रसायन कैंसर उत्पन्न करते हैं जो रंगरेजों, शोधकों, पेंटरों और रसायन उद्योग में काम करने वाले लोगों में सामान्य रूप से होता है। आप पिछली इकाई में आविषी रसायनों के प्रभावों के बारे में पढ़ ही चुके हैं।

2) कृषि संबंधी खेती का काम (Agricultural Field Work)

आजकल किसान पौधों की रक्षा के लिए उर्वरकों और कीट नाशियों अथवा पीड़कनाशियों के रूप में विभिन्न प्रकार के रसायनों का प्रयोग करते हैं, जैसे डायज़िनोन, मैलाथियन, कार्बोरिल (सेविन), ऐल्डिकार्ब (टेमिक) इत्यादि। क्लोरडेन का व्यापक रूप में प्रयोग दीमक द्वारा ग्रसन को नियंत्रित करने के लिए और 2, 4-डी का प्रयोग सामान्यतः अपतृणों (weeds) को समाप्त करने के लिए किया जाता है। इन रसायनों के प्रभाव के कारण किसान तंत्रिकीय पक्षाघात रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं या उनके शरीर में जहर फैल जाता है या कैंसर हो जाता है। देखा गया है कि ऐसे फार्मों में काम करने वाली महिलाएं निरपवाद रूप में अनियमित अनुस्राव, गर्भपात, कैंसर से ग्रस्त रहती हैं और अपसामान्य बच्चों को जन्म देती हैं।

मेथिल आइसोसायनेट (methyl isocyanate अथवा MIC) : इससे भोपाल गैस त्रासदी में बहुत सारे लोगों पर जहरीला प्रभाव पड़ा था, पीड़कनाशी कार्बोरिल (सेविन), ऐल्डिकार्ब (टेमिक) के निर्माण में इसका प्रयोग किया जाता है।

3) कार्यालयी काम (Office Work)

कार्यालयों में काम करने वाले लोगों को रीढ़ की हड्डी के रोग, कमर का दर्द तथा स्पोंडिलाइटिस हो जाता है। इसका कारण असुविधाजनक फर्नीचर का प्रयोग और बैठने की असामान्य स्थिति हो सकती है।

कैंसरजन्य-रसायन जिनके कारण कैंसर होत है।

4) काम करने की आदतें (Working Habits)

काम करने की अवधि के दौरान व्यक्ति के स्वास्थ्य को निर्धारित करने में व्यक्तिगत आदतों की भी बड़ी भूमिका होती है। भारत में उत्तरप्रदेश और बिहार के कुछ लोग चूना मिलाकर तंबाकू चबाते हैं। कपड़ा उद्योग में काम करने वाले कुछ श्रमिकों को यह भ्रम है कि चूना और तंबाकू खाने से उन्हें लगातार खांसी या फेफड़ों के अन्य रोग नहीं होंगे। जो श्रमिक काम करते समय विश्राम के उद्देश्य से सिगरेट पीते हैं उन्हें फेफड़ों का कैंसर हो सकता है। दफ्तरों में काम करने वाले अक्सर लोग जरूरत से ज्यादा चाय और कॉफी पीते हैं। ये पेय यद्यपि उत्तेजक होते हैं फिर भी इनकी आदत पड़ जाती है और ये स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। चाय से आमाशय में अम्लीयता पैदा हो जाती है।

जैसा कि पहले भी बताया गया है कि रसायन निर्माण करने वाली फैक्ट्रियों में काम करने वाले श्रमिक दस्ताने पहने बिना कैंसरजन पदार्थों का प्रयोग करते हैं, इनमें से कई नहाते नहीं हैं या खाना खाने से पहले अपने हाथ नहीं धोते हैं। परिणामस्वरुप वे संकट पैदा करनेवाले रसायनों का अंतर्ग्रहण कर लेते हैं। वे सीसा, पारा इत्यादि द्वारा उत्पन्न आविषी जहर के कारण अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। लापरवाही में या कार्य स्थल अथवा कारखाने में सफाई रखने संबंधी ज्ञान के अभाव के कारण भी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं जिनसे छोटी मोटी चोट, हड्डी टूटना और यहां तक कि मृत्यु तक हो जाती है। अस्वास्थ्यकर आदतों की वजह से रसायन त्वचा के संपर्क में आते हैं जिससे खाज तथा त्वचा की एलर्जी हो जाती है, जैसे त्वचा का चिरकालीन अल्सर और मशीन के तेल से उत्पन्न हाथों की डर्मेटाइटिस।

5) यात्रा

जो लोग तेजी से वाहन चलाते हैं और विश्राम नहीं करते या सुरक्षात्मक और निवारक उपायों का प्रयोग नहीं करते वे दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं। लगातार वाहन चलाने से शरीर पर तनाव बढ़ जाता है और व्यक्ति उच्च रक्त चाप तथा

6) **अनियमित समय पर पारी**

बहुत से लोग रात की पारी में काम करते हैं। यह ड्यूटी अक्सर अदल बदल कर होती है जिसके कारण व्यक्ति की शरीर क्रियात्मक आवर्तिताएँ (rhythms) बदल जाती हैं और वह अनिद्रा (insomnia), सिरदर्द, उच्च रक्त चाप तथा उत्तेजनशीलता (irritability) से ग्रस्त हो सकता है। ऐसे लक्षण श्रमिक को अकुशल बना देते हैं या उसे काम पर अनुपस्थित रहने के लिए बाध्य करते हैं।

7) **अन्य व्यवसाय**

जो लोग प्रयोगशालाओं में काम करते हैं उन्हें विभिन्न प्रकार के संक्रामक पदार्थों को हाथ लगाना पड़ता है। हिपैटाइटिस, पीलिया अथवा एड्स (AIDS) जैसी बीमारियों का संक्रमण इन लोगों को हो सकता है। कुछ श्रमिक तो रेडियम, सक्रिय आइसोटोपों अथवा कैंसरजन पदार्थों के सम्पर्क में रहते हैं। परिणामस्वरूप उन्हें स्वास्थ्य संबंधी खतरों का सामना करना पड़ता है। जिनके बारे में पहले बताया जा चुका है।

इनके अलावा कार्य करने के वातावरण में नियोक्ता की प्रत्याशा, अंतर्वैयक्तिक संबंध, कार्य का दबाव इत्यादि भी मानसिक तनाव पैदा करते हैं जो अन्य बीमारियों का कारण होते हैं। तनाव (stress) से संबंधित बीमारियों के बारे में हम अगले भाग में विस्तार से बताएंगे। देखा गया है कि अधिकांश व्यावसायिक रोग शरीर के अंगों को स्थायी रूप से नष्ट कर देते हैं।

15.3.2 शोर से उत्प्रेरित रोग

वर्तमान शताब्दी को "शोर-शताब्दी" कहना सही है। औद्योगिकीकरण का बहुत बड़े पैमाने पर विकास होने के कारण हमें चारों ओर उच्च स्तर का शोर सुनाई देता है। शोर हमारे आधुनिक जीवन में एक अत्यंत महत्वपूर्ण तनाव कारक बन गया है। इससे अनेक स्वास्थ्य संकट पैदा हो सकते हैं। शोर प्रदूषण के कुछ प्रमुख स्रोतों में हम हवाई जहाज, मोटर गाड़ियों, फैक्ट्रियों, सार्वजनिक भाषणों और रॉक-एन-रॉल संगीत को शामिल कर सकते हैं। शोर का स्वास्थ्य पर प्रभाव शोर की तीव्रता और आवृत्ति पर निर्भर करता है। किसी भी स्रोत से उत्पन्न 80 से 90 dB प्रतिशत से अधिक शोर तथा लगातार आठ घंटे से अधिक, मानव कान के लिए हानिकारक होता है। ध्वनि की आवृत्ति को **हर्ट्ज (Hertz)** द्वारा व्यक्त किया जाता है। एक **हर्ट्ज**, एक चक्र प्रति सैकण्ड के बराबर होता है। मानव कान 20 से लेकर 20,000 हर्ट्ज तक की आवृत्तियों को सुन सकता है। यह विस्तार आयु अथवा कुछ अन्य कारकों के कारण कम हो जाता है। 20Hz से नीचे की आवृत्तियाँ **अवश्रव्य (infrasonic)** अथवा सुनाई न देने वाली आवृत्तियाँ कहलाती हैं और 20,000Hz से ऊपर की आवृत्तियाँ **पराश्रव्य (ultrasonic)** होती हैं और ये भी मानव कान द्वारा नहीं सुनी जा सकतीं।

ध्वनि की तीव्रता, उसकी आवृत्ति और श्रवण क्षमता को यंत्रों द्वारा मापा जा सकता है। ध्वनि तीव्रता को dB में ध्वनि स्तर मीटर (Sound Level Meter) द्वारा मापा जाता है। आवृत्ति अर्थात् ध्वनि के उच्च अथवा निम्न तारत्व को ऑक्टेव बैंड फ्रीक्वेन्सी ऐनेलाइजर (Octave Band Frequency Analyser) द्वारा और व्यक्ति की श्रवण-क्षमता को ऑडियोमीटर (Audiometer) द्वारा मापा जाता है। यह यंत्र विभिन्न आवृत्तियों के संदर्भ में किसी व्यक्ति के सुनने की शक्ति में किस हद तक क्षति हुई है पहचानने के काम में आता है ताकि बधिरता की किस्म का सही अन्दाजा लगाया जा सके।

मानव स्वास्थ्य पर शोर का प्रभाव निम्नलिखित तीन मुख्य कारकों पर निर्भर करता है : (i) गुणता, (ii) अवधि और (iii) व्यक्ति की संवेदनशीलता। शोर निम्नलिखित तीन मुख्य प्रभाव उत्पन्न करता है।

1) **मनोवैज्ञानिक प्रभाव (Psychological Effects)**

शोर के कारण भावात्मक विक्षोभ उत्पन्न हो जाते हैं जो नापे नहीं जा सकते। शोर का प्रभाव अकसर खीज के रूप में व्यक्त होता है। इसकी तीव्रता चाहे कितनी भी हो यह नींद में तो बाधक होता ही है उदाहरण के लिए नल से पानी का बूंद-बूंद करके टपकना अथवा यातायात की घरघराहट। काम करने के स्थान पर उत्तेजनात्मक शोर के कारण एकाग्रता, दक्षता तथा काम करने की क्षमता कम हो जाती है।

2) **प्रच्छादन प्रभाव (Masking Effect)**

प्रच्छादन शोर हमारे कान को अन्य महत्वपूर्ण आवाज़ों अथवा संकेतों को सुनने नहीं देता। ऐसे प्रभाव भारी इंजीनियरी उद्योगों अथवा मोटरगाड़ियों के कारखानों में दुर्घटनाओं के खतरों को बढ़ा देते हैं।

3) **शरीर क्रियात्मक प्रभाव (Physiological Effects)**

यह दो प्रकार के होते हैं : श्रवण-संबंधी और अश्रवण संबंधी।

श्रवणात्मक प्रभाव

i) **श्रवण संबंधी-थकान (Auditory Fatique)** : यह तब होती है जब शोर का स्तर 85 से 90dB के बीच होता है। उदाहरण के लिए फूड ब्लैंडर का शोर। यह शोर अधिकतम होता है जब शोर की आवृति 4000 Hz होती है। इसके साथ संबंधित बुरे प्रभाव हो सकते हैं जैसे कानों में सीटी बजाने जैसी आवाज और भन्न-भन्न इत्यादि।

ii) **बहरापन या कम सुनाई देना (Deafness or Impaired Hearing)** : यह एक गंभीर समस्या होती है जो अस्थायी अथवा स्थायी हो सकती है। अस्थायी श्रवण हानि शोर में लगातार काम करने पर होती है जैसा कि टेलीफोन ऑपरेट करने वाले व्यक्तियों में हो जाती है। परन्तु यह असमर्थता 24 घंटे में ही खत्म हो जाती है, यदि

वांछित समय के लिए विश्राम मिल जाता है। तथापि बार बार अथवा लगातार 90dB से अधिक स्तर के शोर में रहने से स्थायी रूप से श्रवण शक्ति खत्म हो जाती है। जिन लोगों को बचपन से ही कान की बीमारियां होती हैं जैसे कान का बहना या सुनने में कठिनाई जो किसी बढ़ती हुई बीमारी का परिणाम हो उनकी श्रवण शक्ति पर आमतौर पर अन्य लोगों की अपेक्षा स्थाई कुप्रभाव होता है। अतः जिन लोगों को कान की बीमारियां हों उन्हें जहां तक हो सके, शोर वाले स्थान पर काम नहीं करना चाहिए।

अश्रवणात्मक प्रभाव

i) **बोलने और संचार में व्यतिकरण :** जब पड़ोस में उच्च स्तर का शोर हो रहा होता है तब व्यक्ति अपनी आवाज पर अधिक दबाव डालकर चीखता है और अपनी आवाज को बोध गम्य बनाता है। उदाहरण के लिए फाउंड्रियों, बॉयलर केबिनों इत्यादि में। कभी-कभी गली-कूचों में फेरी लगाने वाले या भीड़ वाले बाजार में छोटी दुकानों के बिक्री कर्मचारी भी चिल्ला-चिल्ला कर सामान और उसकी कीमत बताते हैं। ऐसे कर्मचारी अपने बाद के जीवन में आवाज की खराबी या कंठ के कैंसर से ग्रस्त हो जाते हैं।

ii) **खीज (Annoyance) :** बहुत से लोग शोर सुनकर क्रोधित हो जाते हैं परन्तु संतुलित लोगों की तुलना में न्यूरोटिक व्यक्ति अधिक संवेदनशील होते हैं। न्यूरोटिक लोग शोर में बहुत जल्दी अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और चिड़चिड़े हो जाते हैं।

iii) **दक्षता :** अधिकांश लोग निम्न स्तर की आवाज पसंद करते हैं। शोर विहीन वातावरण अधिक क्षमता बढ़ाने में मदद देता है। इसके विपरीत ऊंचे स्तर के शोर वाले वातावरण में काम कम होता है और इससे काम करने की दक्षता घट जाती है।

iv) **शरीर में सामान्य परिवर्तन :** शोर के प्रभाव में रक्त चाप, नाड़ी की गति स्पंद, श्वसन तथा पसीने निकलने की दर में तथा सिर दर्द में वृद्धि हो जाती है। जी घबराना, थकावट, लगातार नींद न आना, रंग को न पहचान पाना और रात्रि में कम देख पाना इत्यादि सामान्य लक्षण है जो प्रभावित रोगियों में देखे गए हैं। रात की पारी में काम करने वाले लोगों में या पहले से ही अनिवार्यतः अति तनाव ग्रस्त लोगों में, शोर का प्रभाव अन्य लोगों की तुलना में जल्दी होता है।

बोध प्रश्न 2

क) कॉलम 1 में लोगों की स्वास्थ्य समस्याओं की क़िस्म लिखिए जो कॉलम 2 में दिए गए अनुरूपी काम करने के वातावरण के कारण उत्पन्न होती है।

कॉलम 1	कॉलम 2
क)	i) खनन
ख)	ii) वस्त्र उद्योग
ग)	iii) लगातार डेस्क पर बैठकर कार्य करना
घ)	iv) अत्यधिक यात्रा
ङ)	v) पीड़कनाशियों को उपयोग में लाना
च)	vi) रात की पारी में काम करना
छ)	vii) रंगना और पेंट करना

ख) उपयुक्त शब्दों को लिखकर निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) टेलीफोन प्रचालक ....., ... से ग्रस्त हो सकते हैं।

ii) सामान्यतः ऊंचे स्तर का शोर ..... व ..... पर प्रभाव डालता है और ..... उत्पन्न करता है।

iii) शोर के ..... प्रभाव के कारण भारी इंजीनियरी उद्योग में ..... हो सकती है।

iv) ..... के शोर का प्रभाव उन व्यक्तियों पर सबसे बुरा होता है। जिनको बचपन से ....., ... या ..... होता है।

15.4 स्वास्थ्य तथा तनाव

आजकल लोगों को अनेकों तनाव वाली स्थितियों का सामना करना पड़ता है। तनाव के कारण अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह भी देखा गया है कि तनाव कई रोगों में महत्वपूर्ण कारक होता है जैसे कि न्यूरोसिस, कोरोनरी हृदय रोग, जठर अल्सर, उच्च रक्तचाप, एलर्जी, दमा तथा कई अन्य रोग।

15.4.1 पर्यावरण संबंधी तनाव के कारक

तनाव पैदा करने वाले पर्यावरणीय कारकों को दो श्रेणियों में रख सकते हैं 1) भौतिक और 2) मनोवैज्ञानिक। भौतिक पर्यावरण संबंधित तनाव के कारक होते हैं — शोर, कंपन, ताप, प्रकाश इत्यादि। इनसे तनाव पैदा होता है और विविध प्रकार के स्वास्थ्य-संकट उत्पन्न हो जाते हैं तथा जीवन की गुणवत्ता घट जाती है। मनोवैज्ञानिक कारक बहुत महत्वपूर्ण होते हैं और ये सामाजिक पर्यावरण तथा गरीबी के कारण उत्पन्न होते हैं। हम ऐसे सामाजिक वातावरण में रहते हैं — जिसमें जीवन भर कभी समाप्त न होने वाली चुनौतियों के व्यूह में फंसे रहते हैं। ये दैनिक कार्यों को पूरा करने या जीवन के किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने से संबंधित हो सकती हैं जैसे परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करना, विशिष्ट जीवनवृत्ति के लिए प्रयत्न करना, किसी प्रतियोगिता को जीतना या किसी रोजगार को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना। इसके अतिरिक्त भावनात्मक चुनौतियां होती हैं, जैसे संबंध बनाए रखना, जीवन साथी ढूंढ़ना अथवा अड़ियल लोगों के साथ रहना। ऐसी चुनौतियों का सामना करते समय हम तनाव ग्रस्त रहते हैं। तनाव उत्पन्न करने वाली अन्य मनोवैज्ञानिक दशाएँ हैं — गरीबी, बेरोजगारी, निकट संबंधियों की मृत्यु, अंतर्वर्गीय पूर्वाग्रह, सांस्कृतिक रूप में भिन्न देशों में प्रवसन इत्यादि। नीरसता, मशीन या मशीनों के साथ गति रखने वाला कार्य, अत्यधिक कौशल वाला काम बार-बार करना, शोर का वातावरण और इसी प्रकार की अन्य परिस्थितियां तनाव उत्पन्न करती हैं।

अध्ययनों से यह ज्ञात हो गया है कि वायुयान संबंधी यातायात के नियंत्रक सदैव तनाव ग्रस्त रहते हैं क्योंकि उनकी लगातार यह चिंता होती है कि वायुयान दुर्घटनाग्रस्त न हो जाए या टकरा न जाए। उन्हें अक्सर पेप्टिक अल्सर हो जाता है।

तनाव उत्पन्न हो जाने पर हमारे मन में नकारात्मक भाव आने लगते हैं, जैसे कि चिंता, निराशा और उदासी, डर, गुस्सा जिसके परिणामस्वरूप बीमारियां पैदा हो जाती हैं, जैसे सिरदर्द, नींद न आना, पेट की गड़बड़ और पेशीयतनाव। इसका अर्थ यह है कि नकारात्मक भावनाएं हमारे मनोवैज्ञानिक संतुलन की अवस्था में विघटन शुरू कर देती हैं और बदले में तनाव का प्रभाव हमारी शरीर की क्रियात्मक अनुक्रियाओं पर पड़ता है। दूसरे शब्दों में तनाव के कारण मन और शरीर के बीच सामंजस्यता नहीं रह जाती है।

तनाव को उत्पन्न करने वाले उद्दीपन को तनावजन्य (stressor) कहते हैं और उसके द्वारा उत्पन्न अभिक्रियाओं अथवा लक्षणों को तनाव कहते हैं। तनाव वे परिस्थितियाँ तथा घटनाएँ होती हैं जो मन और शरीर के बीच सामंजस्य को नष्ट कर देती हैं। आगे दिए गए आलेख में हमने बताया है कि किस प्रकार तनाव के कारण स्वास्थ्य बिगड़ सकता है।

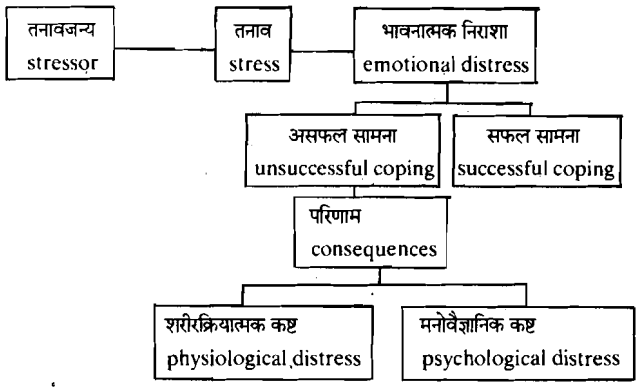

15.4.2 तनाव से संबंधित रोग

सामान्यतः लोग दैनिक जीवन में उत्पन्न तनाव का ध्यान दिए बिना सामना कर लेते हैं। परंतु तनाव की अवस्थाओं को निराकरण न कर पाने से अनेक प्रकार के तनाव संबंधी रोग हो सकते हैं। भावनात्मक दुख के समय तंत्रिकीय तंत्र, अंतःस्रावी तंत्र और प्रतिरक्षी तंत्र सक्रियित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए तनाव के प्रभाव में हमारा अंतःस्रावी तंत्र अधिक मात्रा में एपिनेफ्रीन (epinephrine) पैदा करता है जो एक हॉर्मोन होता है। इससे रक्तचाप बढ़ जाता है। वास्तव में ये तंत्र सामान्य शरीरक्रियात्मक दशाओं के अंतर्गत काम करते हैं और अल्पावधि वाली तनाव संबंधी घटनाओं का सामना करने के योग्य बनाते हैं। तथापि, लंबे अरसे तक तनाव के प्रभाव में ये तंत्र अगर लगातार सक्रियित होते रहते हैं तो स्वास्थ्य-संबंधी समस्याएँ शुरू हो जाती हैं। परंतु बीमारी तनावजन्य के आरंभिक प्रभाव के बहुत अरसे बाद दिखाई देती है। आंशिक रूप में प्रतिरक्षी तंत्र भी लंबे समय तक तंत्रिकीय तथा अंतःस्रावी तंत्र के सक्रियित होने के कारण प्रभावित होता है। इसका सामान्य प्रकार्य अवरूद्ध हो जाता है। अतः तनाव के दौरान रोग के प्रति व्यक्ति की संवेदनशीलता बढ़ जाती है। आपने देखा होगा कि जब लोग भावनात्मक परिस्थितियों में परेशान होते हैं तब वे आसानी से बीमार हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ छात्र परीक्षाओं के दौरान खांसी, ठंड तथा ज्वर से पीड़ित हो जाते हैं। जब लोग तनाव का सामना नहीं कर पाते हैं और तनाव पर नियंत्रण नहीं रख पाते हैं तब विपरीत अभिक्रियाएँ होने लगती हैं, मनोवैज्ञानिक और शरीर क्रियात्मक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं, जिनकी सूची नीचे दी जा रही है :

1) **मनोवैज्ञानिक तथा व्यवहारात्मक प्रभाव :** चिंता, अवसाद, थकावट, निराशा, शर्म, उत्तेजनशीलता, खराब स्वभाव, अपनी क्षमता को कम मानना या हीन भावना (जिससे दुर्घटनाएं होने की संभावना अधिक होती है), नशीली दवाएं लेना, शराब पीना, सिगरेट पीना, आवाज़ का बिगड़ना, घबराहट के कारण हंसना, बेचैनी और कंपकपाना इत्यादि हैं। चरम स्थितियों में व्यक्ति आत्महत्या तक करने की सोचने लगता है। अन्य प्रभाव ये हो सकते हैं — निर्णय न कर पाना, मन को एकाग्र न कर पाना, बहुधा विस्मरणशीलता, आलोचना के प्रति संवेदनशीलता और मानसिक मंदता हो सकते हैं।

2) **शरीर क्रियात्मक तथा स्वास्थ्य पर होने वाले प्रभाव :** रक्तचाप तथा हृदय की गति की दर बढ़ जाना, मुख सूखना, पसीना आना, गले में गोली-सी अटकना, हाथ-पैरों में झनझनाहट होना तथा उनका सुन्न हो जाना इत्यादि हैं। स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में दमा, हृदय-रोध, डिस्पेप्सिया, अल्सर, सिरदर्द, नींद न आना, काम भावना का समाप्त हो जाना, कमज़ोरी, डायबेटीज़ मैलिटस, त्वचा रोग, वासोमोटर राइनाइटिस शामिल हैं।

3) **संघटनात्मक :** अनुपस्थित रहना, उच्च दुर्घटनादर, कम उत्पादन, कार्यस्थल पर प्रतिरोध तथा नौकरी से असंतुष्ट होना।

बोध प्रश्न 3

दो मुख्य तनाव कारकों के नाम लिखिए जो आपके जीवन में प्रतिबल पैदा करने में योग देते हैं। इनके प्रति आपकी शारीरिक तथा भावनात्मक तनाव प्रतिक्रियाएं क्या होती हैं?

.....

.....

.....

.....

15.5 विकिरण तथा स्वास्थ्य

आप जानते हैं कि डाक्टर विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं के निदान के लिए एक्स-किरणों का प्रयोग करते हैं।

दृश्यहीन प्रकाश की तरह एक्स-किरणें एक प्रकार का विद्युत चुम्बकीय विकिरण हैं परंतु इनमें ऊर्जा अधिक होती है। आपको बताया ही जा चुका है कि ऐल्फा (α), बीटा (β) और गामा (γ), उच्च ऊर्जा विद्यमान विकिरण होते हैं। शायद आप जानते हैं कि पराबैंगनी विकिरण भी हानिकारक होता है। जब ऐसे उच्च ऊर्जा वाले विकिरण मानव शरीर पर पड़ते हैं तो वे ऊतकों में प्रवेश कर लेते हैं और उनमें होकर गुजरते हुए अपनी ऊर्जा उनमें अंतरित करते जाते हैं। तालिका 15.3 में शरीर पर विभिन्न विकिरणों के प्रभावों को दर्शाया गया है।

α और β विकिरण प्रकृति में कणिकीय होते हैं। इसी कारण इन्हें α कण और β कण कहा जाता है।

तालिका 15.3 : विभिन्न प्रकार के विकिरण तथा शरीर पर उनके प्रभाव

विकिरण की किस्में	शरीर पर प्रभाव
α-कण	ये वायु में केवल कुछ ही सेंटीमीटर तक जा सकते हैं और जीवित ऊतकों में केवल 30 μ मीटर तक (लगभग 3 कोशिकाओं को पार कर सकते हैं) सामान्यतः ये त्वचा में घुसने में असमर्थ होते हैं। शरीर के भागों जैसे अस्थि अथवा फेफड़े में प्रवेश पा जाने से उनको अपूरणीय (irrepairable) क्षति होती है।
β-कण	ये वायु में लगभग 8 सेंमी. तक जा सकते हैं और ऊतकों में लगभग 1 सेंमी. तक। ये त्वचा में घुस सकते हैं परंतु भीतर के ऊतकों में नहीं पहुंच पाते, ये त्वचा को क्षति पहुंचाते हैं, त्वचा का कैंसर उत्पन्न करते हैं और मोतियाबिंद उत्पन्न कर देते हैं।
γ-विकिरण	ये वायु में लगभग 100 मीटर तक जा सकते हैं और शरीर में आसानी से घुस सकते हैं और उसमें होकर गुजर सकते हैं।
एक्स किरणें	ये बहुत अधिक दूर तक जा सकती हैं और हड्डियों को छोड़कर शरीर की ऊतकों में से गुजर सकती हैं। ये कोशिकाओं के अणुओं को क्षति पहुंचाती हैं।
परा-बैंगनी किरणें	इनमें एक्स किरणों की तुलना में कम ऊर्जा होती है। ये त्वचा का कैंसर उत्पन्न कर सकती हैं।

विकिरण की ऊर्जा, कोशिकाओं के अणुओं को क्षतिग्रस्त करती हैं। यदि जीवित कोशिकाओं के प्रमुख अणुओं पर असर हो जाता है तो कोशिकीय कार्यों में बाधा पड़ती है और कोशिकाओं की मृत्यु भी हो सकती है। कभी-कभी यह क्षति तुरंत सुधर जाती है परन्तु अकसर यह क्षति वर्षों बाद दिखाई पड़ती है। यह तब होता है जब डी.एन.ए. अणु जिसमें कोशिका के कार्य करने और उसके रखरखाव के लिए सभी आवश्यक आनुवंशिक सूचनाएं विद्यमान होती हैं, प्रभावित हो जाता है। यदि जर्म (germ) कोशिकाओं के डी.एन.ए. के अणुओं में परिवर्तन हो जाता है तो यह प्रभाव अगली पीढ़ी में अंतरित कर दिया जाता है।

क्षति का विस्तार विकिरण की उस मात्रा पर निर्भर करता है जिसके प्रभाव में व्यक्ति रहता है। इसको रेड्स (rads) यूनिट में मापा जाता है। अवशोषित विकिरण की मात्रा, यानि (radiation absorbed doses) एक रेड प्रतिग्राम ऊतक में निक्षेपित 100 अर्ग ऊर्जा के बराबर होता है। ऊतकों में ऊर्जा के अंतरण की दर भी महत्वपूर्ण होती है। इसे हम रैखिक ऊर्जा अंतरण (Linear energy transfer संक्षेप में LET) कहते हैं। यह ऊर्जा की वह मात्रा है जो ऊतक में होकर गुजरने वाले विकिरण की प्रति इकाई दूरी में अंतरित होती है। α कणों की धीमी गति होती है इसलिए ये β कण और एक्स किरणों जिसकी गति अपेक्षाकृत अधिक तेज होती है, से अधिक ऊर्जा अंतरित करते हैं।

रेड् और रैम के स्थान पर धीरे-धीरे नई अंतर्राष्ट्रीय इकाइयाँ ग्रे (Grey) तथा सीवट (Sievert) (1 ग्रे = 100 रैड तथा 1 सीवर्ट = 100 रैम) का प्रयोग किया जाने लगा है।

विकिरण की और यूनिट है रेम (rem यानि roentegen equivalent man) जो रैखिक ऊर्जा अंतरण का भी लेखा करके व्यक्त की जाती है। यह विकिरण के प्रभाव को नापने के लिए प्रयोग में ली जाती है। यह परोक्ष रूप से ऊतकों में उस क्षति को व्यक्त करती है जो विकिरण की दी हुई मात्रा होती है। रेड और रेम अनिवार्यतः एक्स किरणों, α-किरणों और β-किरणों के समतुल्य होते हैं परन्तु α कणों के लिए एक रेड 10 से 20 रेम के बराबर होता है। किसी व्यक्ति पर 5 से 10 रेम प्रति वर्ष से कम का प्रभाव सामान्यतः निम्न स्तर का माना जाता है।

स्वास्थ्य पर विकिरण के प्रभाव निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करते हैं : (i) विकिरण की किस्म, (ii) विकिरण की ऊर्जा, (iii) विकिरण की मात्रा, (iv) व्यक्ति की आयु और (v) बाह्य तथा आंतरिक प्रभाव। आयनिक विकिरण से मनुष्यों और वास्तव में सभी जीवित प्राणियों जिनमें पौधे भी शामिल हैं में निम्नलिखित तीन प्रकार के जैविक प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं :

1) **कैंसरजन्य प्रभाव (Carcinogenic effect)** कैंसर उत्पन्न करते हैं। आयनिक विकिरण द्वारा अधिकांश प्रकार के कैंसरों के होने की संभावना बढ़ जाती है।

ये तीनों प्रकार के दोष रासायनिक कारकों द्वारा भी उत्पन्न हो सकते हैं, इसलिए इन रसायनों को कैंसरजन, उत्परिवर्ती और विरूपात्मक कहते हैं।

2) **उत्परिवर्ती प्रभाव (Mutagenic effects)** आनुवांशिक पदार्थ में परिवर्तन कर देते हैं जो आगे संतान में चले जाते हैं।

3) **विरूपात्मक प्रभाव (Teratogenic effects)** से भ्रूण के विकास में कमी रह जाती है जिससे जन्मजात दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

इसके साथ ही यह भी देखा गया है कि (i) गर्भ भ्रूण विकिरण के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील होते हैं। वयस्कों की तुलना में बच्चे अधिक संवेदनशील होते हैं, (ii) ऊतकों में कोशिकाएं जो तेजी से कोशिकीय विभाजन कर रही हों विकिरण के प्रति अत्याधिक संवेदनशील होती हैं। हम सभी प्राकृतिक रूप में आयनिक विकिरण के प्रभाव में रहते हैं जो औसतन 80 से 100 रेम प्रतिवर्ष के बीच रहता है। इसलिए प्रकृति में ऐसे जैविक प्रभाव स्वभावतः प्रकट हो जाते हैं और प्राणियों की आनुवंशिक रचना में परिवर्तन कर देते हैं। वास्तव में यह सुझाव देने के लिए पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है कि इस ग्रह पर जीवन का उद्भव आयनिक विकिरण से हुआ है। अब यह व्यंगात्मक लग सकता है कि विकिरण मानव मात्र के लिए अत्याधिक खतरा बना हुआ है।

सभी विकिरणों α, β और एक्स किरणों में इतनी ऊर्जा होती है कि वह परमाणुओं के सबसे बाहरी खोल से इलेक्ट्रोनों को अलग हटाकर आयन उत्पन्न कर सकते हैं, इसलिए इन्हें आयनिक विकिरण कहते हैं।

यद्यपि विकिरण का प्रभाव सामान्य घटना नहीं है और इसके संकट कुछ हद तक स्थानीकृत ही रहे, परंतु नाभिकीय शक्ति संयंत्रों में दुर्घटना होने और नाभिकीय अस्त्रों के प्रयोग का खतरा बना हुआ है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस प्रकार के संकट विस्तृत क्षेत्र को चपेट में ले सकते हैं और बड़ी संख्या में लोगों के लिए, इसके द्वारा बड़े भयंकर परिणाम हो सकते हैं।

कारण स्पष्ट है कि मनुष्यों पर विकिरणों के प्रभावों का अध्ययन नहीं किया जा सकता। इसलिए जानवरों पर अधिक अथवा न्यून मात्रा का प्रयोग करके विकिरण का अध्ययन किया गया है। हालांकि इन अध्ययनों के परिणामों से हमें विकिरणों के विविध प्रकार के हानिकारक प्रभावों का कुछ अनुमान हो जाता है परन्तु यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि यही प्रभाव मनुष्यों पर होंगे। इसके अतिरिक्त कई बार विकिरण के प्रभाव अनेक पीढ़ियों के बाद ही देखे जाते हैं। इसलिए फिलहाल तो उन लोगों का अध्ययन करके काफी सूचना प्राप्त की गई है जो गत वर्षों में उच्च या निम्न स्तर के विकिरण से प्रभावित हुए थे। निम्न स्तर का विकिरण का प्रयोग डाक्टरी निदान के लिए किया जाता है और साथ ही कुछ रोगों के उपचार के लिए भी। यह सिद्ध किया जा चुका है कि इस प्रकार के प्रभावों का भी कुछ न कुछ खतरा होता ही है। पिछली कुछ दशाब्दियों में लोगों के विकिरण के प्रभाव में रहने की अवधि में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, खास तौर से कुछेक व्यावसायिक वर्गों में , जैसे यूरेनियम की खुदाई करने वालों, घड़ी के डायलों पर पेंट करने वालों, विकिरणों द्वारा उपचाराधीन रोगियों, परमाणु बम विस्फोटों से बचे लोगों, एक्स किरणों वाले यंत्रों को चलाने वाले तकनीसियनों और नाभिकीय शक्ति संयंत्रों और रेडियो आइसोटेप इत्यादि का प्रयोग करने वाले लोगों में।

इस शताब्दी के प्रारंभ में एक्स-किरण मशीनों अथवा रेडियम का प्रयोग करने वाले रेडियोलोजिस्टों तथा वैज्ञानिकों के हाथों पर पहली बार दुर्दम अर्बुदों (malignant tumors) को देखा गया था। ऐसे लोगों में कुछ वर्षों बाद सामान्य जनता की तुलना में ल्यूकीमिया का आपतन तीन चार गुना ज्यादा देखा गया। चूंकि विकिरण के खतरों का पता नहीं था इसलिए शुरू में श्रमिक रेडियम सक्रिय पदार्थ का इस्तेमाल करने में सावधानी नहीं बरतते थे। रेडियम उपचार का सामान्य रूप से प्रयोग 1945 में उन रोगियों पर किया गया जो एन्काइलोजिंग स्पोंडिलाइटिस (ankylosing spondilitis) से बीमार थे, जिन बच्चों के टांसिल थे और जिन महिलाओं को स्तन की बीमारियां या फेफड़ों का तपेदिक था, विकिरण के प्रभाव वर्षों बाद दिखाई दिए। इनमें से कुछ खोजों की सूची तालिका 15.4 में दी गई है।

अब यह देखा जा चुका है कि लगातार निम्न स्तर के विकिरण का प्रभाव बिल्कुल भी सुरक्षित नहीं है क्योंकि इसका संचयी प्रभाव होता है। अमरीका में किए गए सांख्यिकीय अध्ययन से यह सिद्ध हो गया है कि बार-बार एक्स-किरणों के प्रभाव से व्यक्ति ल्यूकीमिया के लिए दस गुना अधिक संवेदनशील हो जाता है।

पराबैंगनी विकिरण भी त्वचा का कैंसर उत्पन्न करते हैं। विषुवतीय क्षेत्र में रह रहे खासतौर से हल्के वर्ण वाले लोगों में त्वचा के कैंसर का अधिक आपतन देखा गया है। गहरे वर्ण वाली त्वचा में विशेष प्रकार का वर्णक होता है जिसे मैलानिन (melanin) कहते हैं। यह वर्णक अधिकांश पराबैंगनी विकिरण को अवशोषित कर लेता है और उसे जीवित

तालिका 15.4 : निम्न स्तर के विकिरणों के प्रभाव

प्रभावन (exposure)	वर्षों बाद देखे गए प्रभाव
मुहाँसे, मेरूदंड के रोग और सिफिलिस के लिए विकिरण चिकित्सा	ल्युकीमिया का खतरा बढ़ जाता है
स्तन की सूजन का रोग और स्त्रियों में फेफड़ों की तपैदिक के लिए विकिरण चिकित्सा	स्तन-कैंसर
टॉन्सिलों को सिकोड़ने के लिए अथवा बच्चों में छाती की बीमारियों का उपचार करने के लिए ग्रीवा का डाक्टरी एक्स-रे अथवा विकिरण चिकित्सा	थाइरॉयड ग्रंथि का कैंसर, लार-ग्रंथि का ट्यूमर
यूरेनियम तथा फ्लोरस्पार (कैल्सियम फ्लोराइड) खनिकों पर रेडॉन गैस का प्रभावन	फेफड़ों का कैंसर
घड़ी के डायल तथा वायुयान के उपकरणों को पेंट करने वाले (जिस पेंट में रेडियम मिला होता है।)	हड्डी का कैंसर, एप्लास्टिक एनीमिया (अस्थिमज्जा का गंभीर किस्म का रोग)।
नैदानिक एक्स किरणों के प्रभावन में गर्भवती माताएँ (2 से 3 रेड)	जन्में बच्चों में ल्युकीमिया, लसीका तंत्र का ट्यूमर, मस्तिष्क ट्यूमर तथा अन्य प्रकार के कैंसरों में 50 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई है।
नाभिकीय परीक्षणों के कारण प्रभाव	बच्चों और वयस्कों में भी मृत्यु दर का बढ़ना।

कोशिकाओं के डी.एन.ए. में प्रवेश नहीं करने देता। जीवित ऊतकों का जल पराबैंगनी विकिरण अवशोषित कर लेता है और इसलिए यह त्वचा को पार करके भीतर नहीं घुस पाता।

विकिरण का उच्च स्तर का प्रभाव कभी-कभी ही होता है। हिरोशिमा तथा नागासाकी के परमाणु विस्फोट से बचने वाले लोगों पर घातक, अर्धघातक तथा गैरघातक विकिरण के प्रभावों की खोज की गई है। इन तथ्यों को तालिका 15.5 में सारबद्ध किया गया है। चूंकि विकिरण का प्रभाव अकसर बच्चों में प्रकट होता है इसलिए यह अनुमान लगाना कठिन है कि प्रभावित व्यक्ति की कितनी पीढ़ियों के बाद प्रभाव देखा जाएगा। इसके अतिरिक्त प्रभावित व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से भी उसका परिणाम भुगतते हैं। नागासाकी और हिरोशिमा के बाद में बचे लोगों को बिबाकुशा (bibakusha) कहते हैं। अर्थात् जिन पर बम गिराया गया था। जब उनके विवाह का प्रश्न उठता है उनको बहिष्कृत कर दिया जाता है।

आस्ट्रेलिया के 70 वर्ष तक जीवित रहने वाले तीन में से दो व्यक्ति अपने जीवनकाल में कम से कम एक बार चर्म कैंसर से ग्रसित होते हैं। कैंसर के इतने अधिक आपतन का सीधा संबंध दक्षिणी आस्ट्रेलिया पर ओज़ोन परत (4.9 से 10.6 प्रतिशत) के ह्रास के कारण है। जिसमें भूमि की सतह पर परा बैंगनी विकिरण अधिक आता है। आस्ट्रेलिया में ओज़ोन विवर उतना ही बड़ा है जितना अमेरिका तथा उतना गहरा है जितना एवरेस्ट पर्वत। जो आस्ट्रेलिया महाद्वीप में चिंता का कारण है।

तालिका 15.5 : उच्च स्तर के विकिरण के प्रभाव

मात्रा (डोज़)	प्रभाव
650 रेड की डोज़ (उच्च घातक डोज़)	सारी समष्टि को कुछ घंटे से लेकर कुछ दिन में नष्ट कर देती है।
300 रेड (घातक डोज़)	आधी समष्टि को 60 दिन के भीतर ही नष्ट कर देती है।
50 से 200 रेड (अर्ध घातक डोज़)	तुरंत मृत्यु नहीं होती पर व्यक्ति विकिरण संबंधी बीमारी से ग्रस्त रहता है।
i) 2 से 14 दिन के बाद होने वाले तात्कालिक प्रभाव	थकावट, मतली, उलटी, पेचिस तथा बालों का गिरना, रूधिर की पट्टिकाणु (platelet) का कम होना, गले की खराबी। प्रभाव के कुछ ही दिनों में फिर से पहले जैसी स्थिति प्राप्त हो सकती है।
ii) सामान्य विलंबित प्रभाव	कैंसर, ल्युकीमिया, मोतियाबिंद, अनुर्वरता (बांध्यता) तथा जीवित रहने की अवधि कम हो जाती है।
iii) माताओं पर प्रभाव	माताओं में स्वतः गर्भपात में बढ़ोत्तरी, मृतजन्म तथा शिशु की जल्दी ही मृत्यु।

बोध प्रश्न 4

क) i) क्या आप बता सकते हैं कि वयस्कों की अपेक्षा शिशु तथा बच्चे विकिरण के प्रति अधिक संवेदनशील क्यों होते हैं?

.....

.....

.....

ii) विकिरण के प्रभाव अगली पीढ़ी में क्यों चले जाते हैं?

.....

.....

.....

iii) पराबैंगनी किरणों की अपेक्षा एक्स-किरणें क्यों अधिक हानिकारक होती हैं?

.....

.....

ख) निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सत्य है? कोष्ठक में सत्य के लिए स और असत्य के लिए अ लिखिए।

i) जो कोशिकाएँ तेजी से प्रगुणित होती हैं वे विकिरण द्वारा सबसे अधिक प्रभावित होती हैं। ☐

ii) मनुष्यों में विकिरण की संवेदनशीलता इस क्रम में होती है वयस्क > बच्चे > गर्भ। ☐

iii) विकिरण के प्रभाव अकसर कई पीढ़ियों बाद दिखाई देते हैं। ☐

iv) रोगों के निदान के लिए प्रयुक्त निम्न स्तरीय विकिरण बिल्कुल हानिकारक नहीं होता है। ☐

ग) निम्नलिखित रोगों का उच्च आपतन उस वर्ग के व्यक्तियों में कई वर्ष बाद देखा गया जो विकिरण के प्रभाव में रहे थे। कॉलम 1 में सूचीबद्ध व्यक्ति-वर्गों का कॉलम 2 में सूचीबद्ध रोगों के साथ मेल बैठाइए।

कॉलम 1 **व्यक्ति वर्ग**	**कॉलम 2** **रोग**
i) टॉसिलाइटिस के उपचार के लिए विकिरण के प्रभाव में रखे गए बच्चे	क) ल्यूकीमिया
ii) यूरेनियम तथा फ्लोरस्पार खनिक	ख) थाइरॉयड ग्रंथि का कैंसर
iii) रेडियोलोजिस्ट	ग) अस्थि कैंसर
iv) रेडियम युक्त पेंट का प्रयोग करने वाले लोग	घ) फेफड़ों का कैंसर

15.6 कैंसर

सबसे पहले कैंसर शब्द का प्रयोग ग्रीस के प्रसिद्ध चिकित्सक हीपोक्रेट्स जिन्हें औषधि विज्ञान का जन्मदाता भी कहा जाता है, द्वारा किया गया। लैटिन में कैंसर का अर्थ है केकड़े की तरह। रोग पूरे शरीर में हर तरफ फैलता है, अंत में अपने द्विमुखी आक्रमण द्वारा यह जीवन ही समाप्त कर देता है।

जैसी कि गलत धारणा है कैंसर कोई नई बीमारी नहीं है। तथापि इन दिनों इसका आपतन बढ़ रहा है। इस समय विश्व में कुल आबादी के लगभग 20 से 25 प्रतिशत लोग कैंसर से ही मरते हैं और इस बात का भय है कि भविष्य में यह रोग मानव मात्र का सबसे बड़ा शत्रु बन सकता है।

कैंसर में शरीर की कोशिकाओं का अनियंत्रित रूप में विभाजन होता है। शरीर का कोई भी भाग — त्वचा, फेफड़े, मस्तिष्क, अस्थि मज्जा, अंडाशय अथवा आमाशय कैंसर से ग्रस्त हो सकता है। सामान्यतः उचित रूप में विकास तथा कार्य करने के लिए हर कोशिका का विभाजन नियमित होता है। जब कोशिकाओं पर यह नियंत्रण नहीं रहता तो बार-बार कोशिका विभाजन के फलस्वरुप असाधारण कोशिकाओं की एक संहति बन जाती है जिसे ट्यूमर कहते हैं। ट्यूमर का शरीर में कोई कार्य नहीं होता। बल्कि जब यह शुरू हो जाता है — जिसका कारण तेजी से कोशिकाओं की वृद्धि होती है, यह काफी जगह घेर लेता है और इर्द-गिर्द के ऊतकों और अंगों को एक ओर धकेल देता है। यह उनका पोषण स्वयं ग्रहण कर लेता है और इस प्रकार उनके महत्वपूर्ण कार्य अवरूद्ध हो जाते हैं।

नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर ऑक्यूपेशनल सेफ्टी एण्ड हैल्थ (अमरीका) के अनुसार कैंसर उत्पन्न करने वाले सबसे प्रमुख 10 संकटकारी रसायन हैं : ऐसबेस्टॉस, फॉर्मैल्डिहाइड, बैंजीन, सीसा, मिट्टी का तेल, निकल, क्रोमियम, कोलतार में पाए जाने वाले वाष्पशील पदार्थ, कार्बन टेट्राक्लोराइड और सल्फयूरिक अम्ल।

ट्यूमर दो प्रकार के होते हैं : सुदम्य (benign) और दुर्दम (malignant)। सुदम्य ट्यूमर धीरे-धीरे प्रगुणित होते हैं और केवल अपने स्थान पर ही सीमित रहते हैं। रसौलियां (cysts), मस्से (mole) और पोलिप (polyp) सुदम्य ट्यूमर होते हैं। परंतु यह खतरा बना रहता है कि ये दुर्दम रूप में न बदल जाएं। दुर्दम ट्यूमर की कोशिकाएं तेजी से वृद्धि गुणित होती हैं और बाद में कुछ कोशिकाएं उनसे अलग हो कर रूधिर धारा के साथ अन्य महत्वपूर्ण अंगों में पहुंच जाती है तथा वहां नए ट्यूमर बना देती हैं। इस अवस्था को मैटास्टैसिस (अपररूपांतरत) अथवा द्वितीयक अवस्था कहते हैं। कैंसर यकायक विकसित नहीं होता। यह अनेक वर्षों अथवा दशकों तक शरीर पर किसी कारक के प्रभावों का संचयी परिणाम होता है। अनेक खतरे वाले कारक, जैसे विकिरण, पर्यावरण में रसायन, आनुवंशिक प्रवणता (predisposition), पोषण संबंधी कारक, प्रतिरक्षात्मक कमियां, तनाव तथा नकारात्मक मानसिक अवस्था, कैंसर को प्रेरित करने अथवा उसके होने में योग देते हैं। यह कुछ वाइरसों द्वारा भी प्रेरित हो सकता है। सारे कैंसरों में 20 से 40 प्रतिशत कैंसर ही कार्य स्थल पर संकट उत्पन्न करने वाली दशाओं और अन्य पर्यावरण प्रदूषकों द्वारा उत्पन्न होते हैं। शेष कैंसर प्राकृतिक कोशिकीय परिवर्तनों का परिणाम होते हैं।

कैंसर की चार श्रेणियां हैं जिनका विवरण नीचे दिया गया है।

1) कार्सिनोमा (Carcinomas) : वे कैंसर जो त्वचा ग्रंथियों के चारों ओर की झिल्लियों, तंत्रिकाओं, स्तनों, श्वास, मूत्र तथा पाचन मार्गों के अस्तर से उत्पन्न होते हैं।

2) सार्कोमा (Sarcomas) : वे कैंसर जो संयोजी ऊतकों, अस्थियों, पेशियों, तथा रुधिर वाहिनियों से उत्पन्न होते हैं।

3) ल्यूकीमिया (Leukemias) : अंगों और ऊतकों का कैंसर तथा लसीका ग्रंथियों, अस्थि मज्जा इत्यादि का कैंसर, जो रूधिर कोशिकाएं बनाती हैं, जिसके कारण उपरिपक्व श्वेत रूधिर कोशिकाओं का अधिक उत्पादन होता है।

4) लिम्फोमा (Lymphomas) : वे कैंसर जो ल्यूकीमिया के समान होते हैं और जिनके कारण प्लीहा तथा लसीका तंत्र द्वारा श्वेत रुधिर कोशिकाओं का उत्पादन असाधारण रूप में होने लगता है।

अधिक कैलोरी वाले भोजन, वसायुक्त पदार्थ, मुटाया और पोषण संबंधी कमियां, विशेषकर विटामिन A और खाद्य पदार्थों में रूक्ष-अंश (roughage) की कमी कैंसर उत्पन्न कर सकती है।

15.7 धूम्रपान, शराब तथा नशीली दवाएं

जो लोग धूम्रपान करते हैं, शराब पीते हैं अथवा नशीली दवाएं लेते हैं वे अपने शरीर में हानिकारक रसायनों को पहुंचाते हैं। तंबाकू के धुएं में निकोटीन के अतिरिक्त अनेक विषैले रसायन होते हैं, जैसे ऐसीटोन, ऐक्रोलीन, कार्बन मोनोक्साइड, मीथेनॉल, अमोनिया, नाइट्रोजन के ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, विभिन्न खनिज तत्वों के अंश, रेडियम सक्रिय तत्वों के अंश, अम्ल, कीटनाशक औषधियां तथा अन्य पदार्थ। धुएं में पाए जाने वाले बारीक कण तंबाकू के पीले भूरे अवशिष्ट होते हैं जिसे टार (tar) कहते हैं। धुएं में कैंसरजन रसायन तथा पोलोनियम तत्व के रेडियम सक्रिय आइसोटोप भी होते हैं। वास्तव में रेडियम सक्रिय सीसा, मिट्टी में पाया जाने वाला पदार्थ है जो विखंडित होकर रेडियम सक्रिय पदार्थ पोलोनियम बनाता है। पोलोनियम तंबाकू की पत्ती पर पाए जाने वाले चिचचिपे रोमों पर निक्षेपित हो जाता है और इस प्रकार सिगरेट के धुएं का एक हिस्सा बन जाता है। शायद आप जानते होंगे कि सिगरेट पीने के आदी लोगों को चिरकालीन खांसी, लगातार थूक का पैदा होते रहना और सांस लेने में तकलीफ होती है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि सिगरेट पीना अनेक बीमारियों का कारण होता है, जैसे ब्रोंकाइटिस, वातस्फीति, कंठ, मुखगुहा, ग्रसनी और मूत्राशय का कैंसर, आमाशय और पक्वाशय का अल्सर, यकृत का सिरोसिस (cirrhosis) और हृदय रोग। उन माताओं के शिशुओं में जो गर्भ के दौरान सिगरेट पीती हैं — प्रसव पूर्व तथा प्रसव पश्च नवजात शिशु मृत्यु दर का उच्च आपतन देखा जाता है। साथ ही शिशु सामान्यतः कम वजन के होते हैं।

शराब का गलत प्रयोग एक सामान्य स्वास्थ्य-संबंधी समस्या है। भारत में शराब पीने की आदत समाज के कमजोर वर्गों के लोगों में अधिक पाई जाती है। शराब केंद्रीय तंत्रिकीय तंत्र को अवनमित करता है। यह मस्तिष्क के उस हिस्से पर असर करता है जो बोलने, सोचने, गति तथा अन्य मस्तिष्कीय कार्यों को नियंत्रित करता है। यही कारण है कि शराब पी लेने के बाद व्यक्ति स्मृति, समझने की शक्ति, संकेंद्रण, विरोध और स्वनियंत्रण खो देता है। अधिक मात्रा में शराब पीने से बोलने, देखने, सुनने, समन्वय और चलने की शक्ति में उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति की मनोवृति में व्यापक उतार-चढ़ाव हो सकते हैं और आरंभिक यूफोरबिया (euphorbia) के पश्चात दिल बैठने लगता है। शराब और अधिक खतरनाक हो जाती है जब इसे प्रशांतकों (tranquilisers), एस्पिरीन, नींद की गोलियां इत्यादि औषधियों के साथ लिया जाता है क्योंकि इसके सिनर्जेटिक (synergetic) असर होते हैं। शराब यकृत, वृक्क और पाचन तंत्र के अंगों को भी प्रभावित करती है।

शराब पीने वालों में आम तौर पर देखा जाता है कि उनका यकृत उत्तरोत्तर खराब होता जाता है जिसे सिरोसिस (cirrhosis) कहते हैं। यह आमाशय के अस्तर को क्षति पहुंचाती है और इसी कारण उसमें अल्सर हो जाता है। जिन स्त्रियों को शराब पीने की आदत होती है उनके बच्चों में हृदय की विकृति, चेहरे की विरूपता और बौद्धिक अवरोध देखा जाता है। उनके शिशु आकार में सामान्य शिशुओं से अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। उनमें शराब के प्रति शारीरिक आसक्ति पाई जाती है जिसे **गर्भजात एल्काहॉली संरक्षण** (फीटल ऐल्काहॉलिक सिन्ड्रोम) कहते हैं।

ड्रग (drugs) यानि औषधियां, रासायनिक पदार्थ होती हैं जो चिकित्सीय दृष्टि से दर्द दूर करने, संक्रमण का मुकाबला करने, बीमारी ठीक करने अथवा स्वास्थ्य को अच्छा बनाए रखने के लिए दी जाती हैं। तथापि हम ड्रग को सामान्य रूप में दवाएं या औषधियां कहते हैं और ड्रग या नशीली दवाएं उन पदार्थों को कहते हैं जो मूड परिवर्तित करने के लिए और अवगम बढ़ाने के लिए, आनंद की संवेदना को बढ़ाने के लिए और जीवन की समस्याओं से अस्थायी रूप में छुटकारा पाने के लिए खाई जाती हैं। हमें विश्वास है कि आपने कुछ ड्रगों के बारे में सुना होगा, जैसे कोकिन, म्यरिजुआना, (marijuana), हशीश या ब्राउन शुगर (hashish), एल एस डी (LSD), हेरॉइन (heroin) इत्यादि। चूंकि ये ड्रग केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर असर करती हैं इसलिए इन्हें मनोसक्रिय औषधियां (psychoactive drugs) कहते हैं। ये ड्रग शारीरिक तथा मानसिक कार्यों को बदल देती है और शरीर को दुर्बल कर देती है।

ऐसी ड्रगों का प्रयोग करने का सबसे बड़ा खतरा यह है कि इनकी आदत पड़ जाती है या यों कहिए कि शरीर इन पर आश्रित हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि ड्रग का इस हद तक अनिवार्यतः प्रयोग करना पड़ता है कि यह व्यसनी के सामान्य जीवन मापन की क्षमता को गंभीर रूप से अवरूद्ध कर देती है। साथ ही अगर व्यसनी इनका प्रयोग करना बंद कर दे तो उसमें ड्रग न लेने के लक्षण (withdrawal symptoms) दिखाई देने लगते हैं। टेलीविजन पर प्रसारित वृत्त चित्रों में आपने देखा होगा कि ड्रग लेने पर व्यसनियों की कैसी दयनीय स्थिति हो जाती है। इन ड्रगों में से अनेक इस हद तक मनोवैज्ञानिक निर्भरता पैदा कर देती हैं कि उनको खरीदने के लिए बहुत सारे धन की आवश्यकता होती है, इसलिए प्रयोगकर्ता इनको खरीदने के लिए अपराध करता है। अन्यथा ड्रग लेने की आदत, और अपराध करने में कोई संबंध नहीं होता जैसी कि गलत धारणा बनी हुई है। चूंकि इन ड्रगों की बिक्री तथा प्रयोग पर प्रतिबंध लगा हुआ है इसलिए ड्रग का लेन-देन चोरी-छिपे होता है। इसमें मोटी रकम खर्च होती है इसलिए इसके लिए संगठित

अपराध होते हैं। अर्थात् ड्रग डीलरों और बेचने वालों का एक गिरोह बना हुआ है जो विभिन्न देशों और यहां तक कि महाद्वीपों में फैले हुए हैं।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि विश्वभर में नवयुवकों का बहुत बड़ा प्रतिशत ड्रग दुरूपयोग का शिकार है। भारत में भी स्थिति भयावह होती जा रही है। यद्यपि ड्रगों का विक्रय तथा प्रयोग अवैध होता है परन्तु कुछेक धन के लोभी लोग नवयुवकों को ड्रग लेने और ड्रग उपलब्ध कराने जैसे घृणित अपराध करवाते हैं। ये नवयुवक हमारे देश की भावी आशा है। इसलिए ऐसा वातावरण तैयार करने की जरूरत है जो लोगों की मानसिकता को बदल सके। नवयुवकों को रचनात्मक • कार्य की ओर मोड़ने के लिए दिशा निर्देशन की आवश्यकता है जिससे वे साहस और पौरूष से जीवन की प्रतिकूल अवस्थाओं का सामना करने योग्य हो सकें।

अंधाधुंध औषधियों का प्रयोग इन दिनों अधिकाधिक सामान्य बात हो गई है। कुछ उदाहरणों में तो औषधि के प्रभाव और उनसे उत्पन्न खतरनाक बीमारियां केवल तभी प्रकट होती हैं जब काफी देर हो चुकती है। हम इस बात को एक दुखद घटना से संबंधित अध्ययन का उल्लेख करके करेंगे जो थैलिडोमाइड (thalidomide) नामक एक शामक (sedative) औषधि के कारण हुई।

1950 और 1960 के दशकों में पश्चिमी जर्मनी, इंग्लैंड और कई अन्य देशों में यह औषधि शामक तथा नींद की गोली के सक्रिय रचक तत्व के रूप में प्रयोग की जाती थी। बच्चों और वयस्कों को यह औषधि दी जाती रही और इसके तात्कालिक प्रभाव दिखाई नहीं दिए। गर्भवती महिलाओं को भी यह दी जाती थी। 1960 के दशक में विश्व भर में कई हज़ार बच्चों ने जब जन्म लिया और उनमें असामान्य किस्म के जन्मजात दोष देखे गए। इन शिशुओं के विकृत हाथ और पैर और आँख अथवा कान के दोष देखे गए। बाद में खोजबीन करने पर यह स्पष्ट हुआ कि प्रभावित बच्चों की माताओं ने गर्भावस्था के दौरान थैलिडोमाइड ड्रग ली थी। हम पहले बता चुके हैं कि विकासमान भ्रूणों में जन्मजात दोष उत्पन्न करने वाले रसायनों को टेराटोजन (teratogens) कहते हैं। कुछ प्रतिजीवियों पर भी टैराटोजन होने का संदेह है, जैसे टेट्रासाइक्लीन और स्ट्रैप्टोमाइसीन, ऐल्कोहॉल, सेक्स स्टेरॉइड, लीथियम इत्यादि।

बोध प्रश्न 5

क) निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा सत्य है? कोष्ठक में सत्य के लिए स और असत्य के लिए अ लिखिए।

i) प्रदूषित वातावरण नए किस्म के रोगों के लिए जिम्मेदार है जिन्हें कैंसर कहते हैं। ☐

ii) मेटास्टैसिस कैंसर की उन्नत अवस्था है। ☐

iii) कुछ खाद्य पदार्थ भी कैंसर उत्पन्न कर सकते हैं। ☐

ख) जो माताएं धूम्रपान करती हैं उनके बच्चों में किस प्रकार के खतरों का भय रहता है?

.....

ग) अत्यधिक धूम्रपान द्वारा उत्पन्न तीन प्रमुख वर्गों के रोगों के नाम लिखिए।

.....

घ) निम्नलिखित कथनों में उपयुक्त शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) सिगरेट के धुएं में ..... रसायन तथा ..... तत्व पाए जाते हैं।

ii) गर्भवती माताओं द्वारा शराब पीने से बच्चों में जन्मजात दोष और शराब के लिए शारीरिक ..... आ जाती है जिसे ..... कहते हैं।

iii) ड्रग, जो भ्रूण के विकास में दोष उत्पन्न कर देते हैं ..... कहलाते हैं।

iv) शराब के साथ ..... या ..... नहीं लेने चाहिए।

15.8 देश में स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति

आप हमारे परिवर्तनशील पर्यावरण के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले असर का विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं पर्यावरण में प्रदूषकों के प्रविष्ट हो जाने से मानव स्वास्थ्य और मानव कल्याण को खतरा उत्पन्न हो गया है। इसलिए हमारी पीढ़ी को कई नई बीमारियों का सामना करना पड़ रहा है। इस भाग में हम इन घातक तथा कमजोर कर देने वाले रोगों के बदलते रूप और भारत में स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति को स्पष्ट करेंगे।

15.8.1 रोगों के बदलते रूप

आप जानते ही हैं कि भारत के कई भागों में व्यापक रूप में औद्योगिकीकरण हुआ है शहरीकरण तेजी से बढ़ रहा है। उद्योगों के बढ़ने के साथ-साथ ग्रामीण जनता निकटतम औद्योगिक क्षेत्रों की ओर प्रवास करती जा रही है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार हमारी ग्रामीण जनता के तीन प्रमुख शत्रु हैं — गरीबी, कुपोषण और परजीवी ग्रसन (parasitic infestation)। इन परिस्थितियों के कारण नव-प्रवासित क्रमिक जनता की जीवन शक्ति कम हो गई है और ये औद्योगिक प्रदूषकों के स्वास्थ्य पर खराब प्रभावों के प्रति अधिक संवेदनशील हो गए हैं। ये प्रवासी अस्वास्थ्यकर घनी आबादी वाली गंदी बस्तियों में रहते हैं जहां अकसर उचित आवास और स्वच्छता का अभाव होता है। बहुधा वे अपने परिवार के लोगों को भी वहां लाने में असमर्थ होते हैं। परिणाम यह होता है कि वे शराब पीते हैं ड्रग लेने के आदी हो जाते हैं और वेश्याओं के पास जाने लग जाते हैं जिनकी वजह से उनका स्वास्थ्य गिरता जाता है और रुग्णता बढ़ती जाती है। वे तपेदिक, हृदयरोग तथा कैंसर जैसे घातक रोगों का आसानी से शिकार हो जाते हैं।

15.8.2 देश में स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति

भारत की जनसंख्या 844 करोड़ है और यह विश्व के सबसे अधिक आबादी वाले देशों में दूसरे स्थान पर है। यद्यपि सकल जन्म दर 33.3 (1978) से गिरकर 24 (1987) प्रति हजार तक गई है, और सामान्य मृत्यु दर भी 27.4 (1951) से गिरकर 14 (1980) प्रति हजार हो गई है तथापि इसमें बड़े पैमाने पर अंतर्राज्यीय विविधताएं देखी जाती हैं। मृत्यु के कारणों के बारे में हमें पूरी सूचना भी प्राप्त नहीं है।

रूग्णता की स्थिति (Morbidity Profile)

पिछली दशाब्दियों में रूग्णता का स्वरूप अधिक नहीं बदला है। हमारी आबादी के बड़े भाग में रूग्णता के प्रमुख कारण एक से रहे हैं। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

क) **संक्रामक और परजीवी ग्रसन :** इनके कारण सार्वजनिक अस्पतालों में प्रवेश लेने वालों की संख्या 60 प्रतिशत होती है, यद्यपि चेचक जैसे कुछ रोगों का उन्मूलन हो चुका है या वे नियंत्रण में हैं, पोलियो, विषाणु हिपेटाइटिस नामक रोग सन् 1973 में बहुतायत में होते थे और जापानी एन्सेफैलाइटिस बीमारी तो महामारी के रूप में फैल गई थी। हैजे जैसे जीवाणुजन्य रोगों का आपतन घटा है परंतु वायु वाहित रोगों जैसे दस्त और पेचिश का आपतन कम नहीं हुआ है। यक्ष्मा की व्यापकता अधिक बनी हुई है और अनुमानतः 80 लाख से एक करोड़ तक लोग इससे ग्रस्त हैं।

ख) विश्व भर में पाए जाने वाले कोढ़ के रोगियों का एक तिहाई भाग हमारे देश में ही है। अच्छे प्रतिरक्षीकरण द्वारा टेटनस और डिप्थीरिया शहरी क्षेत्रों में काफी नियंत्रण में हैं परंतु परजीवी ग्रसन और सैक्स द्वारा संचालित रोग अभी भी बढ़ोत्तरी पर हैं।

ग) **कुपोषण :** भारत की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा कुपोषित है और लोगों में खून की कमी है। विटामिन "ए" की कमी से अंधापन और इसी प्रकार नमक में आयोडिन की अनुपस्थिति के कारण स्थानिक गाइटर हो जाता है। यह भी पता चला है कि भारत में कुपोषण का कारण साधनों या तकनीकों की कमी नहीं है वरन यह अधिकांशतः सामाजिक और प्रबंध कारणों से है।

घ) **असंचरणीय रोग :** अधिकांश हृदय रोगों की तरह कैंसर अंधता, बधिरता भी धनात्मक रूप में कुछेक सामाजिक वर्गों में खतरा पैदा कर रहे हैं। सिलिकोसिस, बैगोसोसिस जैसे व्यावसायिक रोग बढ़ रहे हैं। एलर्जी संबंधी बीमारियां दिन-ब-दिन बढ़ रही हैं। सर्वेक्षणों से पता चला है कि ग्रामीण आबादी में बीमारों की संख्या 7 से 13 प्रतिशत है।

15.9 भविष्य में मनुष्य के कल्याण की संभावना

इन दो इकाइयों में आपने पढ़ा कि अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त करने का केवल एक ही तरीका है और वह है पर्यावरण की उच्च गुणवत्ता को बनाए रखना। वास्तव में रोग और वातावरण के बीच घनिष्ट संबंध की संकल्पना कोई नई नहीं है। प्राचीन काल में स्वास्थ्य और पर्यावरण के संबंध को माना जाता रहा है। अब तो समग्र स्वास्थ्य की बात को फिर से महत्व दिया जा रहा है। इस प्रकार का दृष्टिकोण शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक, दैविक तथा अन्य पर्यावरण कारकों के बीच आपसी संबंधों को मान्यता देता है जो कि समग्र स्वास्थ्य तथा व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने में सहायक है। बहुत समय नहीं बीता जब लोग प्लेग, चेचक, हैजा, इन्फ्लूएंजा (जुकाम) इत्यादि महामारियों से शिकार होते थे जिनपर उनका कोई नियंत्रण नहीं था। उन्नीसवीं सदी में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में हुई उन्नति ने इन रोगों को जानने और इनको नियंत्रित करने में मदद की है। यह पता लगा है कि इन बीमारियों के फैलने का कारण पर्यावरण ही है।

ऊपर की गई चर्चा के अनुसार पर्यावरण के ह्रास के कारण हमारी वर्तमान तथा भावी पीढ़ियां इस खतरे में हैं कि उन्हें नए प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इसलिए तत्काल समुचित उपाय आवश्यक है। तथापि हमारे पास सीमित विकल्प हैं और वे भी स्पष्ट नहीं हैं क्योंकि हमें इन पर आने वाला खर्च और लाभ, दोनों को ध्यान में रखकर विचार करना होगा।

पिछले अध्यायों को पढ़ चुकने के बाद आपने यह महसूस किया होगा कि अनेक विकासशील राष्ट्र किस दुविधा की स्थिति का सामना कर रहे हैं और वह दुविधा है विकास और पर्यावरण का गुणत्व दोनों में से किसे चुना जाए। यह ठीक है कि हर मनुष्य को अच्छी तरह जीने का अधिकार है परंतु क्या पर्यावरण को खराब किए बगैर यह संभव है?
उदाहरण के लिए कुछ पश्चिमी मानकों के अनुसार बिजली का अधिक से अधिक उपयोग जीवन स्तर के उत्कर्ष का

सूचक माना गया है जिसके लिए अधिकाधिक शक्ति संयंत्रों को बनाने की आवश्यकता होगी। परन्तु अगर उपयुक्त उपाय न किए जाएं तो पर्यावरण की गुणवत्ता पर इनका बुरा प्रभाव पड़ेगा। एक और उदाहरण हम दे सकते हैं और वह है ब्राज़ील का। अभी कुछ समय पहले तक ब्राज़ील दुर्लभ किस्म के आमेज़न वनों को नष्ट करके अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में लगा हुआ था परन्तु इससे भूमंडलीय जलवायु का स्वरूप ही बदल गया है। समय की आवश्यकता यह है कि हम ऐसा विकास करें जिसे स्थाई बनाए रख सकें। इसका अर्थ यह है कि वह विकास जिसमें पर्यावरण को सुरक्षित रखने के उपायों और उसपर पड़ने वाले दबावों को ध्यान में रखा जाए।

ऐसा भी प्रतीत होता है कि हम आंतरिक पर्यावरण यानि स्वास्थ्य की गुणवत्ता को बदले बिना आधुनिक जीवन की मांगों को पूरा नहीं कर सकते। इसके लिए एक उदाहरण लें। गंभीर किस्म की अनेक बीमारियां लोगों के जीवन के रहन सहन से संबंधित होती हैं। एक प्रकार की स्थिति अत्यधिक स्पर्धी संस्कृति से उत्पन्न होती है, जो पाश्चात्य देशों के लोगों की नकल के कारण है। यह एक प्रकार की होड़ होती है जो निस्संदेह भौतिक सुविधाएं तो उपलब्ध कराती है परंतु साथ ही, काम के बारे में चिंताएं, जीवनवृत्ति की चिंता, आर्थिक स्थिति से उत्पन्न चिंता इत्यादि जिनसे तनाव भी उत्पन्न होता है। आप पढ़ चुके हैं कि तनाव, चिंताएं और निराशा भी लोगों को तनाव संबंधी बीमारियों को उत्पन्न कर सकती हैं। दूसरे वर्ग में वे लोग आते हैं, जो ऊपर दिए गए कारणों से उत्पन्न तनाव से ग्रस्त नहीं रहते, बल्कि इसलिए कि वे गरीब और अज्ञान हैं उन्हें उचित पोषण प्राप्त नहीं होता और अज्ञानवश भी विभिन्न प्रकार की शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक बीमारियों का मुकाबला नहीं कर पाते।

इधर कुछ वर्षों में वर्ल्ड बैंक की अनेक परियोजनाओं में पर्यावरण की गुणवत्ता पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में नहीं रखा गया, इससे लोगों को काफी चिन्ता है।

निष्कर्ष रूप में हम इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि स्थिति खराब अवश्य है, पर निराशाजनक नहीं है फिर भी इसका हल आसान नहीं है। इस पाठ्यक्रम की अंतिम इकाई में हम इस बात की चर्चा करेंगे कि सतत् विकास (sustainable development) के लिए किस प्रकार के उपाय किए जा सकते हैं, जिससे कि हमारा पर्यावरण बिगड़ने न पाए।

15.10 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि :

- पुराना ब्रोंकाइटिस, पुरानी खांसी, फुप्फुसीय तंतुमयता, वातस्फीति, बिगड़ा हुआ दमा और न्यूमोकोनियोसिस जैसी श्वास-संबंधी बीमारियां वायु-प्रदूषण से संबंधित हैं। कैंसरजन्य रसायनों के श्वास द्वारा ग्रहण किए जाने पर कैंसर हो जाता है।
- हमारा श्वसन-तंत्र प्रदूषकों के प्रति तत्काल अनुक्रिया करता है। कुछेक अनुक्रियाएं ये हैं : छींकें आना, गले में खराश, खांसी, म्यूकस का अधिक उत्पन्न होना, सांस लेने में कठिनाई इत्यादि।
- काम करने के स्थान के पर्यावरण में, प्रदूषकों के प्रभाव में लंबे समय तक रहने से श्रमिकों में बाद के जीवन में श्वास-संबंधी रोग हो जाते हैं। खनन, वस्त्र निर्माण, मिट्टी और चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने, बालू ब्लास्ट करने, रसायन बनाने तथा अनेक ऐसे उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों को अक्सर श्वास संबंधी बीमारियां तथा कैंसर हो जाता है। जो लोग दफ्तरों में काम करते हैं, वे कमर-दर्द, स्पोंडिलाइटिस, अति तनाव, उच्च रक्तचाप इत्यादि से पीड़ित हो सकते हैं और जो उच्च स्तर के शोर वाले वातावरण के प्रभाव में रहते हैं, उनमें विभिन्न प्रकार के श्रवण दोष उत्पन्न हो जाते हैं, साथ ही तनाव भी पैदा हो जाता है।
- भौतिक तथा सामाजिक वातावरण के कारण उत्पन्न तनाव कई रोगों को जन्म देने में मदद देता है, जैसे दमा, अल्सर, डायबेटीज़, अति तनाव, निराशा, शाइज़ोफ्रेनिया इत्यादि। व्यवहार संबंधी अपसामान्यताएँ जैसे अधिक शराब पीना और धूम्रपान करना अथवा ड्रग लेना भी तनाव के कारण ही उत्पन्न होती हैं।
- निम्न तथा उच्च स्तर के विकिरणों के प्रभाव से संबंधित अध्ययनों से पता चलता है कि उच्च स्तर के विकिरण खतरनाक होते हैं। इसके अतिरिक्त निम्न स्तर का विकिरण भी हानिकारक होता है, यद्यपि इसके प्रभाव कई वर्षों के बाद दिखाई पड़ते हैं।
- कैंसर का आपतन बढ़ रहा है क्योंकि कैंसरजन्य रसायनों और आयनिक विकिरणों का उत्पादन बढ़ रहा है। कैंसर, धूम्रपान से भी संबंधित होता है। धूम्रपान न करने वाले लोग, जब धूम्रपान करने वालों द्वारा निकाले गए धुएँ में जब सांस लेते हैं तो उन्हें भी उतनी ही हानि होती है। उनमें भी धूम्रपान करने वालों जैसी बीमारियां उत्पन्न हो सकती हैं।
- गर्भावस्था के दौरान अंधाधुंध ड्रग लेना, शराब पीना या धूम्रपान करना गर्भ के लिए अत्यधिक हानिकारक होता है।
- भारत के स्वास्थ्य-संबंधी आकड़ों से पता चलता है कि संक्रामक तथा परजीवी ग्रसन द्वारा उत्पन्न बीमारियां अब भी व्यापक रूप में पाई जाती हैं और उनके उन्मूलन के लिए किए गए प्रयत्न बहुत सफल नहीं रहे हैं। अब तो नई घातक बीमारियां भी बढ़ रही हैं, संभवतः पर्यावरण के बिगड़ने के कारण।
- मानव कल्याण का भविष्य विकास की उन योजनाओं पर निर्भर करता है, जो पर्यावरण के लिए खतरनाक साबित

15.11 अंत में कुछ प्रश्न

1) उन हानिकारक रसायनों तथा अन्य पर्यावरण संबंधी कारकों को लिखिए, जिनसे सामान्यतः लोग प्रभावित होते हैं।

.....

.....

.....

2) भारत में संक्रामक तथा परजीवी-ग्रसन का उन्मूलन करने के प्रयत्न बहुत सफल नहीं रहे हैं। आपकी दृष्टि में कौन-सी बाधाएं हो सकती हैं?

.....

.....

.....

3) अपने मुहल्ले का सर्वेक्षण कीजिए और उन व्यक्तियों की सूची बनाइए जिनके रहने या कार्य करने के स्थान का पर्यावरण स्वास्थ्य को हानि पहुँचा सकता है या गंभीर बीमारियां पैदा कर सकता है।

.....

.....

.....

15.12 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) क) ii ख) iv ग) i घ) v ङ) iii

ख) श्वास-संबंधी रोग, एलर्जी तथा हृदय के रोग

2) क) क) न्यूमोकोनियोसिस ख) बाइसिनोसिस ग) कमरदर्द और स्पोंडिलाइटिस
घ) उच्च रक्तचाप, अपच, अतिअम्लीयता ङ) तंत्रिकीय पक्षाघात संबंधी रोग,
च) नींद न आना, उच्च रक्तचाप छ) त्वचा का कैंसर

ख) i) अस्थायी श्रवण-हानि
ii) संक्रेंद्रण, दक्षता, खीज
iii) अच्छादन दुर्घटना
iv) उच्च स्तर, कान का रोग या रिसना या बहरापन

3) क) कुछेक सामान्य तनाव ये हैं :
काम का दबाव, धन की कमी, काम को पसंद न करना, सहकर्मियों के साथ संबंध, परिवार के सदस्यों के साथ संबंध, जीवनवृत्ति संबंधी आकांक्षाएं, शारीरिक दृष्टि से असुविधाजनक जीवन।

कुछेक सामान्य प्रतिबल अभिक्रियाएं ये हैं :
अति तनाव, सिरदर्द, थकान, घरघराहट के साथ सांस लेना, तेज़ हृदय-गति दर, कब्ज़, अनिद्रा, त्वचा पर ददोरे, उच्च रक्तचाप, पेट में ऐंठन, चक्कर आना, घबराहट और खराश।

4) i) विकिरण का प्रभाव कोशिका-विभाजन पर सर्वाधिक होता है, जो विकासशील प्राणी में अधिकतम होता है। चूंकि शिशु तथा बच्चे विकासशील अवस्था में होते हैं, इसलिए वयस्कों से अधिक संवेदनशील होते हैं।

ii) विकिरण से डी.एन.ए. की अणु रचना में परिवर्तन हो सकता है, जो उत्परिवर्तन के रूप में दिखाई देता है और इसकी प्रतिकृतियाँ तैयार हो सकती हैं। यदि यह परिवर्तन जर्म कोशिकाओं के डी.एन.ए. में होता है तो यह अगली पीढ़ी में अंतरित हो सकता है।

iii) एक्स किरणें, पराबैंगनी विकिरण की तुलना में ऊतक को अधिक क्षति पहुंचाती हैं, क्योंकि उनमें उच्च ऊर्जा होती है।

ख) i) स ii) अ iii) स iv) अ

ग) i) ख ii) घ iii) क iv) ग

5) क) i) अ ii) स iii) स

ख) जन्म से पहले या बाद में शिशुओं की मृत्यु-दर में वृद्धि

ग) i) श्वास-संबंधी रोग-ब्रोंकाइटिस, वातस्फीति, कंठ का कैंसर
ii) हृदय के रोग
iii) आमाशय तथा अग्न्याशय का अल्सर

घ) i) कैंसरजन, रेडियम-सक्रिय
ii) आसक्ति, फीटल एल्कोहॉलिक सिन्ड्रोम
iii) टेराटोजन
iv) शामक, एस्पिरीन

अंत में कुछ प्रश्न

1) सिगरेट अथवा तंबाकू का धुंआ, कोयले का धुंआ, घरेलू पीड़कनाशी, मिट्टी का तेल, एक्स-किरणें, कोयले का धुआं, सिलिकन की धूल, मोटर गाड़ियों का धुंआ इत्यादि।

2) रुकावटें ये हैं : गरीबी, कुपोषण, अनभिज्ञता, अनपढ़ होना, अस्वास्थ्यकर दशाएं, सीमित मन चाहे अवसर, चिकित्सा सुविधाओं का न होना। आशा की जाती है कि आप उत्तर देते समय इस बात को विस्तार से बताएंगे कि किस प्रकार एक बाधा दूसरी से जुड़ी रहती है।

3) इस प्रकार के कुछ लोग हैं : सड़क के क्रॉसिंग पर यातायात पुलिस, चालक, आटा चक्की को चलाने वाले लोग, निर्माण स्थल पर काम करने वाले श्रमिक, पेंटर, वेल्डर, रंगरेज़, टेलीफोन चालक, बैठे रहने वाले मोटे (अधिक वजन वाले) लोग, जो छोटी दुकान इत्यादि का प्रबंध करते हैं।

इकाई 16 विकासात्सक परियोजनाओं के सामाजिक प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
16.2 विकासात्मक परियोजनाएं
16.2.1 ऊर्जा का उत्पादन
16.2.2 वस्तुओं का उत्पादन
16.2.3 रोज़गार के अवसर
16.3 विकासात्मक गतिविधियों के परिणाम
16.3.1 रोज़गार के स्वरूप में परिवर्तन
16.3.2 अर्थव्यवस्था में परिवर्तन
16.3.3 जीवन-स्तर में परिवर्तन
16.3.4 समष्टि का विस्थापन और प्रवासन
16.3.5 गंदी बस्तियों का बनना
16.3.6 विस्थापित लोगों का पुनर्वास
16.4 सारांश
16.5 अंत में कुछ प्रश्न
16.6 उत्तर

16.1 प्रस्तावना

स्वास्थ्य और पर्यावरण संबंधी पिछली इकाइयों में हमने विकासात्मक गतिविधियों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना की थी। इस इकाई में हम आपको विकासात्मक गतिविधियों के सामाजिक प्रभावों के बारे में बताएंगे।

बड़े पैमाने पर विकास के लिए आयोजन आवश्यक होता है जिससे कि देश का चहुंमुखी विकास संभव हो सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत में सात पंचवर्षीय योजनाएं पूरी हो चुकी हैं जिनका ध्येय संपूर्ण उत्पादन को बढ़ाना, राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय एवं रोज़गार के अवसरों को बढ़ाना था जिससे कि भारत के सभी नागरिकों की मूलभूत ज़रूरतें पूरी हो सकें। योजनाओं में खाद्य पदार्थों, ऊर्जा तथा औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने से संबंधित परियोजनाएं शामिल थीं। बहुत सारी परियोजनाएं पूरी की जा चुकी हैं, कुछ पर कार्य प्रगति पर है और कुछेक नई परियोजनाओं का आयोजन किया जा रहा है। निस्संदेह इन विकासात्मक परियोजनाओं से देश को बहुत लाभ हुआ है। फिर भी, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि योजना बनाते समय भौतिक और सामाजिक पर्यावरण पर पड़ने वाले खराब प्रभावों को ध्यान में नहीं रखा गया था।

सामान्यतः जब भी कोई विकासात्मक परियोजना शुरू की जाती है उसके लिए कोई कृषि के काम में प्रयुक्त होने वाली भूमि या वन-भूमि का प्रयोग किया जाता है। उस स्थान पर रहने वाली समष्टि को वहां से विस्थापित कर दिया जाता है। प्रभावित लोगों को घरबार तथा व्यवसाय छोड़ना पड़ता है और नए रोज़गार और रहने की जगह तलाश करनी पड़ती है। यह उनके रहन-सहन की परिस्थितियों, रोज़गार के पैटर्न और बड़ी समष्टि के सामाजिक संगठन में व्यापक परिवर्तन लाता है।

इस इकाई में, हम उन घटनाओं तथा परिस्थितियों के क्रम का वर्णन करेंगे जिनके कारण ये परिवर्तन होते हैं। आप यह भी पढ़ेंगे कि किस प्रकार शहरों में लोगों की बस्तियों की संख्या आश्चर्यजनक रूप में बढ़ गई है, जिसके कारण गंदी बस्तियां बन गई हैं। इकाई 9 में आप पढ़ चुके हैं कि गंदी बस्तियां पर्यावरणीय अवकर्षण की सबसे खराब दशा को दर्शाती हैं।

इस इकाई को दो प्रमुख भागों में बांटा गया है। प्रथम भाग में हम अपने देश की प्रमुख विकासात्मक परियोजनाओं और स्वाधीन होने के समय से लेकर अब तक उनके द्वारा की गई प्रगति का वर्णन करेंगे। द्वितीय भाग में हम सकारात्मक और नकारात्मक परिवर्तनों को उजागर करेंगे, जो इन परियोजनाओं के परिणामस्वरूप हमारे रहन-सहन में आए हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- विकासात्मक परियोजनाओं के महत्व को बता सकेंगे।
- कृषि-उत्पादनों को बढ़ाने के लिए आवश्यक विभिन्न निवेशों के बारे में बता सकेंगे।
- कृषि, ऊर्जा तथा औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में अर्जित की गई प्रगति का वर्णन कर सकेंगे।

- बहुत बड़ी संख्या में पाए जाने वाले श्रमिकों के लिए रोज़गार के अवसरों के बारे में बता सकेंगे।
- विकासात्मक गतिविधियों के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों तथा सामाजिक पर्यावरण पर उनके प्रभावों की चर्चा कर सकेंगे।

16.2 विकासात्मक परियोजनाएं

आप अपने देश की बड़ी नदी-घाटी परियोजनाओं के नामों से तो परिचित होंगे। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण परियोजनाएं हैं : भाखड़ा-नंगल, ब्यास-सतलुज योजक नहर, दामोदर, तुंगभद्रा, कोसी और चंबल। शायद आपने अपने क्षेत्र में चलाई गई परियोजनाओं को देखा होगा। नदी-घाटी परियोजनाएं बहुत बड़े क्षेत्र की सिंचाई के लिए जल प्रदान करती हैं तथा अनेक उद्योगों और घरेलू कार्यों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए बिजली पैदा कर सकती हैं। इनके साथ ही हमारे देश में नाभिकीय, तापीय तथा कोयले से चलने वाले पावर उत्पादन संयंत्र भी हैं। निश्चित रूप से आप सब यह भी जानते होंगे कि बड़े पैमाने पर रासायनिक उर्वरकों के उत्पादन के संयंत्र सिंदरी, नांगल, राउरकेला, नइवेली और ट्राम्बे में लगे हुए हैं। शायद आपको फैक्ट्रियों के नाम भी याद हों, जहां भारी मशीनें, इंजीनियरी के सामान, मोटरगाड़ियां, वस्त्र, रसायन, रेलवे इंजन और डिब्बे, जहाज़ और हवाई जहाज़ इत्यादि बनते हैं। जल-विद्युत, तापीय तथा नाभिकीय पावर संयंत्र, सिंचाई, उद्योग आदि जैसी सभी परियोजनाएं — जो वृद्धि के साथ परिवर्तन लाती हैं — विकासात्मक परियोजनाएं कहलाती हैं।

भारत जैसे देश में जोकि बहुत ही गरीब है, सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross national product) में होने वाली वृद्धि को, विकास का सही सूचक नहीं माना जाता है। सम्पत्ति के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ सार्वजनिक गरीबी दूर होनी चाहिए, आर्थिक असमानताएं कम होनी चाहिए और रोज़गार पैदा होने चाहिएं। हम जानते हैं कि भारत की आर्थिक स्थिति का मुख्य आधार अभी तक कृषि रहा है। कृषि उत्पादन में वृद्धि तभी संभव होती है जब सिंचाई की अच्छी सुविधाएं, अच्छे किस्म के बीज, उर्वरक उपलब्ध हों, नाशकीटों पर नियंत्रण हो और ट्रैक्टरों तथा थ्रेशरों इत्यादि का व्यापक प्रयोग हो। भारत में हरित क्रांति की सफलता पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश में इन्हीं निवेशों के कारण संभव हुई है। दूसरे शब्दों में, कृषि के विकास के लिए औद्योगिक प्रगति आवश्यक है। औद्योगिक आधार प्रौद्योगिकी विकास तथा आत्मनिर्भरता के लिए भी जरूरी होता है। कृषि तथा औद्योगिक गतिविधियों के लिए निवेशों की आवश्यकता होती है जैसे मानव श्रम, कच्चा माल और उर्जा।

बोध प्रश्न 1

क) विकास के मापदंड क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

ख) भारत को विकासात्मक परियोजनाओं की आवश्यकता क्यों है?

.....

.....

.....

ग) कृषि के लिए सुदृढ़ औद्योगिक आधार क्यों जरूरी है?

.....

.....

.....

.....

.....

16.2.1 ऊर्जा का उत्पादन

हम दैनिक जीवन में, उद्योगों में और कृषि में ऊर्जा का इस्तेमाल करते हैं। देश की समृद्धि की पैमाइश इस बात से की जाती है कि उसकी ऊर्जा की खपत कितनी है। तालिका 16.1 में कुछ चुने हुए देशों में औसत ऊर्जा वृद्धि दर और प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत को दर्शाया गया है।

तालिका 16.1 : कुछ चुने हुए देशों में औसत ऊर्जा वृद्धि दर तथा व्यापारिक ऊर्जा की प्रति व्यक्ति खपत

देश	औसत वार्षिक ऊर्जा वृद्धि दर (प्रतिशत)		प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत (किलोग्राम तेल तुल्यांक)
	1965-80	1980-88	1988
बंगलादेश	—	14.0	50
श्रीलंका	10.04	8.6	162
पाकिस्तान	6.5	6.6	210
भारत	5.6	6.9	211
फिलीपीन्स	9.0	9.0	244
चीन	10.0	5.5	580
मैक्सिको	9.7	2.4	1.305
जापान	- 0.4	3.7	3.306
यू.के.	3.6	1.7	3.756
जर्मनी	- 0.1	0.4	4.421
अमरीका	1.1	0.4	7.655
कनाडा	5.7	4.2	9.683

स्रोत : वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट, 1990 से संकलित

भारत में ऊर्जा के प्रमुख स्रोत अब भी गोबर और ईंधन की लकड़ी ही हैं, क्योंकि ये आसानी से और कम पैसों में मिल जाते हैं। भारत की ऊर्जा की आवश्यकता का लगभग 40 प्रतिशत भाग इन्हीं दो स्रोतों से प्राप्त होता है। शेष भाग पेट्रोल, कोयला, बिजली, नाभिकीय ऊर्जा इत्यादि से प्राप्त होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही ऊर्जा के व्यावसायिक उत्पादन पर उल्लेखनीय ज़ोर दिया गया है। जैसा कि आप पढ़ चुके हैं, गोबर को उर्वरक के रूप में और बायोगैस के उत्पादन के लिए प्रयोग में लाना बेहतर होता है। साथ ही, वनों को सुरक्षित रखना भी आवश्यक है जो पारितंत्र के परिरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अब हम विद्युत, कोयला, पेट्रोलियम तथा गैस उत्पादन में हुई प्रगति पर नज़र डालेंगे। आइए, इनमें से प्रत्येक पर एक-एक करके विचार करें।

विद्युत उत्पादन

सन् 1947 में हमारे देश की संपूर्ण विद्युत उत्पादन क्षमता केवल 1400 मेगावाट थी। 1988-89 के अंत में स्थापित क्षमता 59,000 मेगावाट से अधिक हो गई थी। विद्युत-उत्पादन में नियमित वृद्धि हो रही है। तालिका 16.2 में दिए गए आंकड़ों पर दृष्टि डालिए जिसमें हाल के कुछ वर्षों में जल-विद्युत तथा तापीय विद्युत उत्पादन में हुई प्रगति को दर्शाया गया है।

तालिका 16.2 : पिछले कुछ वर्षों में भारत में विद्युत उत्पादन

विद्युत उत्पादन (बिलियन किलोवाट आवर में)	1985-86	1986-87	1987-88
जल-विद्युत	51.0	53.9	47.4
तापीय (नाभिकीय शामिल करके)	119.4	133.9	154.5
कुल	170.4	187.8	201.9

सन् 1985-86 में 170 बिलियन किलोवाट आवर से भी अधिक बिजली का उत्पादन किया गया। सन् 1986-87 में यह बढ़कर 187.8 बिलियन किलोवाट आवर और 1987-88 में 201.9 बिलियन किलोवाट आवर हो गई। सन् 1988-89 में अनुमान लगाया गया था कि कुल उत्पादन क्षमता 220 बिलियन किलोवाट आवर की सीमा को पार कर जाएगी। यदि हम इन वर्षों में विद्युत-उत्पादन में हुई वृद्धि का हिसाब लगाएं तो यह एक काफी बड़ी उपलब्धि है। यह वृद्धि 1985-86 की तुलना में 1986-87 में 11 प्रतिशत हो गई, अगले वर्ष यह वृद्धि 7.6 प्रतिशत और वर्ष 1988-89 में 8.5 प्रतिशत हो गई।

विद्युत उत्पादन में नियमित रूप से वृद्धि होने के बावजूद अब भी बिजली की बहुत कमी है, जिसका कारण इसकी बढ़ती हुई मांग है। कृषि के लिए हर वर्ष अधिक संख्या में ट्यूबवैल लगाए जा रहे हैं, नए उद्योग स्थापित किए जा रहे हैं तथा अधिकाधिक ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली पहुंचाई जा रही है। इसके अतिरिक्त आजकल के रहन-सहन में बिजली की अधिक खपत होने के कारण बिजली की मांग भी बढ़ती जा रही है। रोशनी, बिजली के पंखों, हीटरों, गीज़रों और

वाट और किलोवॉट पावर की और वाट-घंटा और किलोवाट-घंटा विद्युत ऊर्जा की इकाई है। वाट को परिभाषित इस प्रकार किया जाता है।

$$1 \text{ वाट (watt)} = \frac{1 \text{ जूल (joule)}}{1 \text{ सैकंड}}$$

जहां जूल ऊर्जा की इकाई है इस तरह
1 वाट × 1 सैकंड = 1 जूल
$1 \text{ kW} = 10^3 \text{ watt}$
$1 \text{ MW} = 10^6 \text{ watt.}$

कूलरों में बिजली की खपत के अतिरिक्त अनेक प्रकार के बिजली से चलने वाले उपकरण आज घर-घर में काम में लिए जा रहे हैं। कुछ दशक पहले तो यह संभव ही नहीं लगता था कि ये उपकरण औसत परिवार तक पहुंच जाएंगे।

कोयले का उत्पादन

हमारे देश में कोयला ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत है। यह विभिन्न प्रकार के उद्योगों में जैसे धातुकर्म संबंधी (metallurgical), उर्वरक उद्योगों में तथा तापीय विद्युत संयंत्रों में, रेल-इंजनों में और घरों में प्रयुक्त होता है। तालिका 16.3 में वर्ष 1989-90 की कोयले की मांग दर्शाई गई है। तालिका से हमें यह पता चलता है कि कोयले की सर्वाधिक मांग विद्युत उत्पादन के लिए होती है और उसके बाद लोहे, ईंट और अन्य उद्योगों का स्थान आता है।

तालिका 16.3 : विभिन्न क्षेत्रों में 1989-90 के दौरान कोयले की मांग

सैक्टर	मांग (मिलियन टन)
विद्युत (उपयोग)	118.0
स्टील तथा कोक भट्टियां	33.0
ईंट तथा अन्य उद्योग	27.0
स्थैतिक विद्युत संयंत्र	12.7
सीमेंट	11.5
रेलवे	6.5
उर्वरक	5.5
कोयला खान	4.0
कम कोलतार वाला कोक (सॉफ्ट कोक)	3.5
निर्यात	0.3
कुल	222.0

आइए अब हम तालिका 16.4 को देखें, जिसमें भारत में कोयले के उत्पादन के आंकड़ें दिए गए हैं। हम देखते हैं कि इसमें उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। सन् 1973-74 में उत्पादन लगभग 78 मिलियन टन था, जो सन् 1989-90 में 200 मिलियन टन से भी अधिक हो गया। आशा की जाती है कि वर्ष 2000 तक यह मात्रा 400 मिलियन टन से भी अधिक हो जाएगी।

तालिका 16.4 : भारत में कोयले का उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (मिलियन टन)
1973-74	78.17
1989-90	211.20
1994-95*	307.41
1999-2000*	417.00

* नियोजित उत्पादन

भारत में मिलने वाले कोयले में सल्फर की मात्रा कम होती है सामान्यतः 1 प्रतिशत से भी कम। परन्तु राख की मात्रा 25-40 प्रतिशत तक होती है।

इस समय भारत में 60 प्रतिशत से भी अधिक बिजली तापीय विद्युत संयंत्रों द्वारा उत्पन्न की जाती है, जो कोयले पर निर्भर रहते हैं। जब पहली पंचवर्षीय योजना शुरू की गई थी, तब केवल 3000 गांवों में ही बिजली थी। 31 मार्च, 1989 तक 4.5 लाख गांवों में बिजली पहुंच चुकी थी और 78 लाख पंप सेट बिजली से चल रहे थे। कोयले के अधिक उत्पादन के कारण अधिक बिजली पैदा की जा रही है और इसी के कारण औद्योगिक वस्तुएं भी तैयार की जा रही हैं, जिनका उत्पादन कोयले पर निर्भर है। 1973-74 से अब तक सरकार ने 10,000 करोड़ रुपए की लागत की 453 कोयला परियोजनाओं को स्वीकृति दी है।

पेट्रोलियम-उत्पादन

ऊर्जा के अन्य प्रमुख स्रोतों में पेट्रोलियम उत्पाद आते हैं, जैसे पेट्रोल, मिट्टी का तेल, डीज़ल, एल.पी.जी., नेप्था इत्यादि। आइए पहले हम तालिका 16.5 को देखते हैं, जिसमें 1970 से पेट्रोलियम उत्पादों की खपत दिखाई गई है।

हम देखते हैं पेट्रोलियम उत्पादों की खपत 1970-71 से अब तक लगभग तीन गुनी हो चुकी है। साथ ही उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि हुई है। पेट्रोलियम की खपत को विकासात्मक गतिविधियों का सूचक माना जाता है, क्योंकि यह परोक्ष रूप से उत्पादक क्षमता में हुई वृद्धि को सूचित करता है। भारत में देश की पेट्रोलियम की आवश्यकता का अधिकांश आयात कच्चे तेल (अपरिष्कृत तेल) और इसके उत्पादों के रूप में अधिक रहा है। तालिका 16.6 में कच्चे पेट्रोलियम और पेट्रोलियम उत्पादों के आयातों को दर्शाया गया है। सन् 1970 से अब तक कच्चे तेल का आयात लगभग डेढ़ गुना बढ़ा है और पेट्रोलियम उत्पादों का 6 गुना बढ़ा है। अधिक मात्रा में कच्चा तेल प्राप्त करने के लिए भारत में प्रभावशाली कदम उठाए गए हैं जैसे कि बॉम्बे हाई से कच्चा तेल निकालना। सन् 1984-85 में हम लगभग 29 मिलियन टन कच्चा तेल उत्पन्न कर रहे थे। कच्चे तेल का उत्पादन, वर्ष 1994-95 तक बढ़कर 38.5 मिलियन

भारत में तेल के भंडार असम, गुजरात और पश्चिमी बंबई के तट से दूर स्थित क्षेत्रों (बॉम्बे हाई), गोदावरी और कावेरी नदियों के डेल्टा में मिले हैं। बॉम्बे हाई का वार्षिक उत्पादन लगभग 22 मिलियन टन है, जो हमारी कुल आवश्यकता से आधे से कुछ ही कम है।

तालिका 16.5 : पेट्रोलियम उत्पादों की खपत

वर्ष	कुल खपत (मिलियन टनों में)
1970-71	17.9
1975-76	22.4
1980-81	30.9
1985-86	40.0
1986-87	43.7
1987-88	46.4
1988-89	49.9

टन, तथा वर्ष 2000 तक लगभग 45 मिलियन टन हो जाने का अनुमान है। पेट्रोलियम उत्पादों का असंख्य तरीकों से उद्योगों, परिवहन, बिजली उत्पादन, कृषि इत्यादि में प्रयोग होता है। खपत में लगातार वृद्धि होने का अर्थ यह है कि हम इन क्षेत्रों में आगे बढ़ रहे हैं।

तालिका 16.6 : कच्चे तेल और तेल उत्पादों का आयात

वर्ष	कच्चा तेल	तेल उत्पाद (मिलियन टन)	कुल
1970-71	11.7	1.1	12.8
1980-81	16.2	7.3	23.5
1982-83	16.9	5.0	21.9
1985-86	15.1	3.9	19.0
1986-87	15.5	3.1	18.6
1987-88	16.0	3.9	19.9
1988-89	17.3	6.4	23.7

अभी तक हमने ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में हमारे देश में हुई प्रगति की चर्चा की है। अगले भाग में आप उर्वरकों, बीजों और उनके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में हुई प्रगति के बारे में पढ़ेंगे। साथ ही साथ औद्योगिक तथा उपभोक्ता वस्तुओं में विकास के बारे में भी पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न 2

क) भारत में ऊर्जा के व्यावसायिक रूप में उत्पादन में हुई प्रगति का पांच पंक्तियों में वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ख) निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा सही है? नीचे दिए गए कोष्ठकों में सही के लिए "स" और गलत के लिए "ग" लिखिए :

i) देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद जी.एन.पी. में वृद्धि, विकास का एक पैमाना है। ☐

ii) कृषि में विकास के लिए औद्योगिक वृद्धि जरूरी होती है। ☐

iii) ऊर्जा की खपत की मात्रा देश की खुशहाली को व्यक्त करती है। ☐

iv) भारत में 40 प्रतिशत से अधिक ऊर्जा घरेलू कार्यों में प्रयुक्त होती है। ☐

16.2.2 वस्तुओं का उत्पादन

अब हम आपको हमारे देश में हुई औद्योगिक प्रगति के बारे में बताएंगे। स्वाधीनता प्राप्ति से पहले भारत की औद्योगिक संरचना ब्रिटिश शासकों और बड़े ज़मींदारों के अनुकूल हुआ करती थी। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्थिति बदलने लगी। ज़मीदारी खत्म कर दी गई और भूमि-सीमाएं लागू कर दी गईं। फलस्वरूप भूमि का वितरण अच्छे ढंग से हो सका। अब अधिक उत्पादन करना ज़मीन जोतने वाले के अपने हित में था। सरकार ने भी कृषकों को लाभ पहुंचाने के लिए अनेक उपाय किए हैं। उदाहरण के लिए, सिंचाई की सुविधाएं विकसित की गईं। सन् 1951 में केवल 22.6 मिलियन हेक्टेयर भूमि को सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध थी। छठी पंचवर्षीय योजना 1980-85 के अंत तक 68 मिलियन हेक्टेयर भूमि के लिए सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध करा दी गई हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक 30 मीटर ऊंचाई से भी अधिक ऊंचाई वाले लगभग 2000 बांध बनाए जा चुके हैं। बहुत से बांध अभी निर्माणाधीन हैं। इन बांधों के बन जाने से सिंचाई की संभावना बढ़ गई है और बहुत से बांधों का इस्तेमाल बिजली पैदा करने के लिए हो रहा है।

कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए सिंचाई के अतिरिक्त अन्य उपायों का करना अनिवार्य है। ये उपाय मुख्यतः उर्वरकों का उत्पादन और उनका प्रयोग, मृदा की उर्वरता में सुधार, बढ़िया किस्म के बीजों का उत्पादन और प्रयोग, फसल सुरक्षा उपाय इत्यादि हैं। पिछले कुछ वर्षों में इन सभी क्षेत्रों में काफी प्रगति हुई है। तालिका 16.7 में सन् 1970 से अब तक रासायनिक उर्वरकों की खपत को दर्शाया गया है। इसे देखने से पता चलता है कि फसल उत्पादन में सुधार हुआ है। इसी प्रकार अच्छी किस्म के उन्नत बीजों का वितरण भी इन वर्षों में लगातार बढ़ा है (तालिका 16.8)।

तालिका 16.7 : भारत में रासायनिक उर्वरकों की खपत

वर्ष	उर्वरकों की खपत (मिलियन टनों में)
1970-71	2.18
1975-76	2.89
1978-79	5.12
1981-82	6.06
1984-85	8.21
1987-88	9.01
1988-89 (अस्थायी रूप में)	11.33

सन् 1978-79 में धान का उत्पादन लगभग 53.5 मिलियन टन था, जोकि 1987 में बढ़कर लगभग 56.5 मिलियन टन हो गया। सन् 1978-79 में गेहूं का उत्पादन 35.5 मिलियन टन था, जोकि 1987-88 में बढ़कर 45 मिलियन टन से अधिक हो गया, अर्थात् लगभग 10 मिलियन टन की वृद्धि हई। गन्ने का उत्पादन 1978-79 में 151.6 मिलियन टन से बढ़कर 1987-88 में 196.5 मिलियन टन से भी अधिक हो गया। अन्य फसलों जैसे चना, कपास, मूंगफली और कच्चे जूट के उत्पादन में यद्यपि उतार-चढ़ाव आते रहे हैं, परंतु कुल मिलाकर आज की स्थिति 30 वर्ष पहले की अपेक्षा काफी अच्छी है।

तालिका 16.8 : भारत में उन्नत बीजों के वितरण में वृद्धि

वर्ष	बीज (लाख क्विंटलों में)
1980-81	25.01
1982-83	42.06
1984-85	48.46
1986-87	55.83
1987-88 (अस्थायी रूप में)	56.30

कृषि उत्पादन के साथ-साथ यह भी ज़रूरी है कि अन्य आवश्यक वस्तुओं का पैदावार भी बढ़ाया जाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में उद्योगों से संबंधित परियोजनाओं को महत्व दिया गया है। आज देश में वे उद्योग और विनिर्माण इकाइयां स्थापित हो गई हैं, जिन क्षेत्रों में उद्योगों पर पहले कोई ध्यान ही नहीं दिया गया था। यदि हम हाल के वर्षों में हुई प्रवृत्ति को देखें तो जो तस्वीर आज हमारे सामने आती है, वह इतनी असंतोषजनक नहीं है। तालिका 16.9 में 1980-81 से 1987-88 तक औद्योगिक उत्पादन के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। आप इन्हें देखकर आसानी से पता लगा सकते हैं कि कुछ क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। यह बड़ी संख्या में परियोजनाएं स्थापित हो जाने से और उनके सफलतापूर्वक कार्य करने से ही संभव हुआ है। उदाहरण के लिए, आइए हम केवल सार्वजनिक उद्यमों पर दृष्टि डालें (तालिका 16.10)। फसलों के उत्पादन में सामान्य वृद्धि के साथ इस प्रकार के प्रयत्नों के परिणाम मेल खाते हैं, जैसे धान, गेहूं, गन्ना, कपास, मूंगफली, जूट, चना इत्यादि जैसा कि चित्र 16.1 में दिखाया गया है।

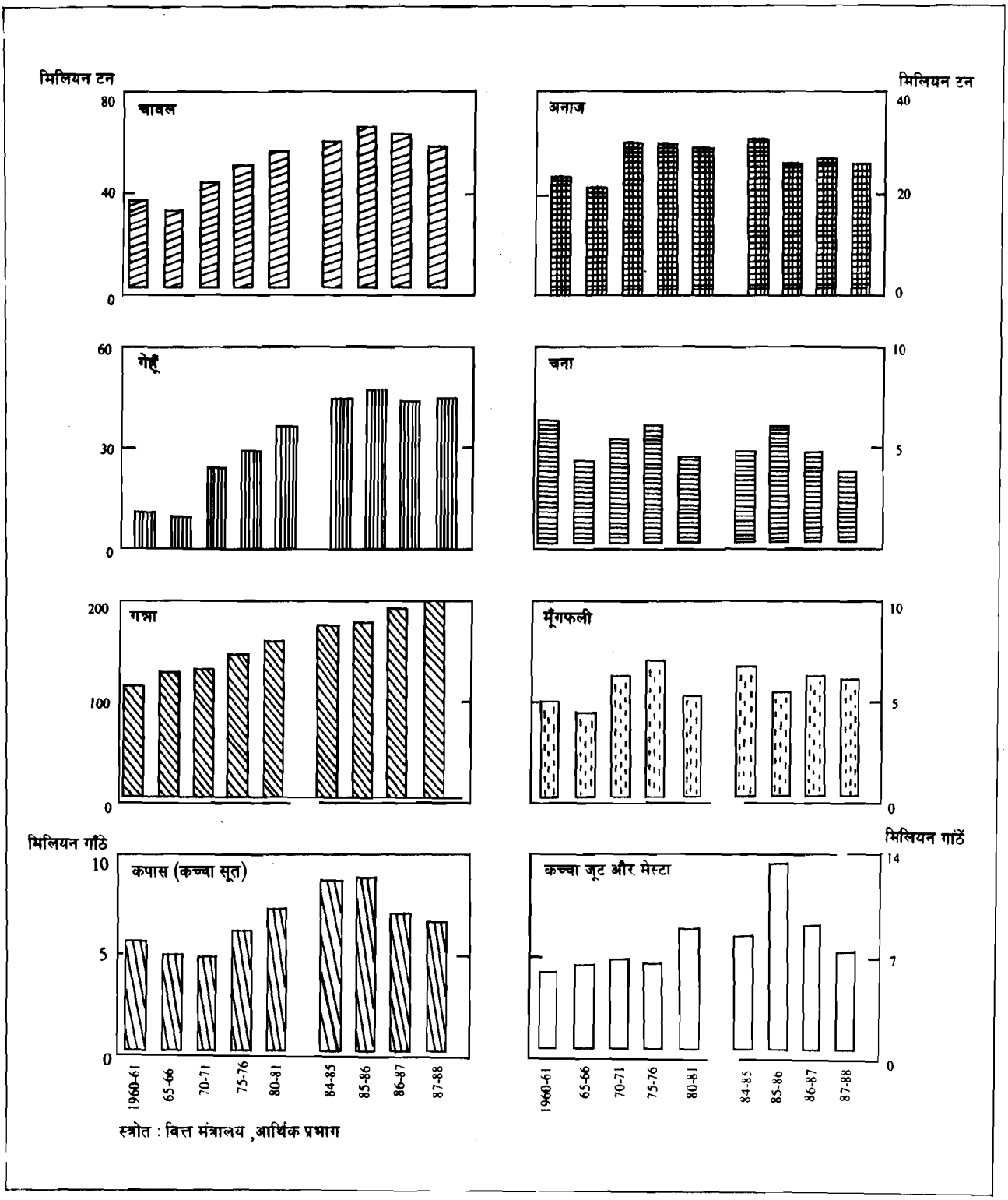

चित्र 16.1 : भारत की मुख्य फसलों का उत्पादन पिछले तीन दशकों में

तालिका 16.9 : भारत में औद्योगिक उत्पादन (आधार वर्ष 1980-81 = 100)

वर्ष	आधारभूत वस्तुएं	पूंजीगत वस्तुएं	उपभोक्ता वस्तुएं	मध्यवर्ती वस्तुएं
1981-82	110.9	106.7	113.8	103.7
1982-83	118.7	110.6	112.0	104.6
1983-84	125.7	123.5	113.8	114.9
1984-85	139.7	127.2	122.0	126.1
1985-86	149.2	140.7	137.3	135.5
1986-87	163.0	166.3	147.1	141.5
1987-88	172.2	192.9	158.0	148.1

सन् 1980-81 में 163 यूनिटें काम कर रही थीं। 1987-88 में इनकी संख्या बढ़कर 221 हो गई थी। 1980-81 में इन यूनिटों में लगाए गए धन की मात्रा 18,200 करोड़ रुपए थी। 1987-88 में यह राशि 58,000 करोड़ रुपए से भी अधिक हो गई थी। सन् 1980-81 में इन यूनिटों द्वारा धन का टर्न ओवर (turnover) केवल लगभग 28,600 करोड़ रुपए था, परंतु 1987-88 में यह 80,000 करोड़ रुपए से भी अधिक हो गया था। कुल मिलाकर इन सभी विकासात्मक

तालिका 16.10 : केवल सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) में वृद्धि

वर्ष	यूनिटों की संख्या	प्रयोग में ली गई पूंजी (करोड़ रुपयों में)	धन का टर्न ओवर (करोड़ रुपयों में)
1980-81	163	18,200	28,600
1987-88	221	58,000	80,000

परियोजनाओं ने उत्पादन को बढ़ाया है और देश में वस्तुओं की उपलब्धता को सुधारा है। फिर भी, हमारी अर्थव्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र ऐसे हैं, जिनके परिणाम बहुत संतोषजनक नहीं रहे हैं।

16.2.3 रोज़गार के अवसर

विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू अधिक संख्या में बेरोज़गार श्रमिकों के लिए रोज़गार पैदा करना है। भारी उद्योगीकरण के साथ-साथ अन्य विकासात्मक गतिविधियां शुरू हुईं, जैसे विद्युत उत्पादन, खान खोदने, रेलवे, सड़क-निर्माण, वायुयान, यातायात, डाक तथा तार सेवाएं इत्यादि। उद्योगों और अन्य परियोजनाओं द्वारा लाखों, करोड़ों लोगों को काम मिला है, जिसकी वजह से आज उन्हें सुनिश्चित आय प्राप्त हो रही है।

औद्योगिक क्षेत्र में कितने लोग काम कर रहे हैं, इसका अंदाजा लगाने के लिए आइए हम निम्नलिखित आंकड़ों पर विचार करें। कोयला खानों में प्रायः 8 लाख से भी अधिक लोग काम कर रहे हैं। आज भूमि के ऊपर काम करने वाले व्यक्ति की न्यूनतम दैनिक मज़दूरी 15.30 रुपए है, जबकि भूमि के भीतर काम करने वाले श्रमिक को 18.45 रुपए मिलते हैं। रेलवे द्वारा लगभग 18 लाख कर्मचारियों को रोज़गार दिया गया है। भारतीय इस्पात प्राधिकरण में कुल मिलाकर 2,35,000 कर्मचारी काम कर रहे हैं। इसी प्रकार, अन्य संगठनों में बड़ी संख्या में लोगों को रोज़गार उपलब्ध है।

लोगों के औद्योगिक उत्पादन से सीधे जुड़े होने के अतिरिक्त सामान बेचने, उसके वितरण तथा बहुत से उद्योगों में उपकरणों की मरम्मत में भी बड़ी संख्या में लोग लगे हुए हैं। इतनी प्रगति होने के बावजूद भी भारत में अभी भी गरीबी विद्यमान है। अर्थशास्त्री गरीबी की परिशुद्ध परिभाषा का प्रयोग करना पसंद करते हैं। पूरे परिवार के लिए 6400 रुपए की वार्षिक आय को गरीबी रेखा (poverty line) माना गया है। यदि कोई परिवार इससे कम राशि कमात है, जोकि स्वयं में बहुत ही कम है, उसे गरीबी की रेखा से नीचे माना जाता है। भारत में अधिकांश गरीब लोग ग्रामीण तथा जनजातीय क्षेत्रों में हैं।

तालिका 16.11 : NREP के माध्यम से उत्पन्न रोज़गार

वर्ष	उत्पन्न रोज़गार (मिलियन श्रम दिवस)
1980-81	413.6
1981-82	354.5
1982-83	351.2
1983-84	302.8
1984-85	352.3

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में 9000 करोड़ से भी अधिक की राशि ग्राम विकास कार्यक्रमों के लिए निर्धारित की गई थी। इस राशि में से NREP, SCP, RLEGS जैसे रोज़गार पैदा करने वाले कार्यक्रमों को 5000 करोड़ रुपए दिए गए थे।

ग़रीबी से छुटकारा दिलाने के लिए सरकार ग्रामीण लोगों को रोज़गार देने की विशेष परियोजनाओं को चला रही है। ये परियोजनाएं निम्नलिखित हैं :

परियोजना	उद्देश्य
राष्ट्रीय ग्राम रोज़गार कार्यक्रम NREP	रोज़गार देने के लिए
एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम IRDP	घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए, जो बदले में रोज़गार पैदा कर सकें
न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम MNP	श्रम की एवज में न्यूनतम राशि उपलब्ध कराना
ग्राम भूमिहीन रोज़गार गारंटी कार्यक्रम RLEGP	ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों को प्रति वर्ष नियत अवधि के लिए रोज़गार उपलब्ध कराना

सन् 1980-85 के दौरान (छठी पंचवर्षीय योजना) में NREP के ज़रिए उत्पन्न रोज़गारों की तालिका 16.11 में दर्शाया गया है। NREP द्वारा प्रति वर्ष काफी संख्या में रोज़गार उपलब्ध कराए गए थे। इस प्रगति से ग्रामीण जनता को लंबी अवधि तक मिलने वाले लाभ प्राप्त हुए हैं।

बोध प्रश्न 3

क) ग़रीबी दूर करने में विकासात्मक परियोजनाएं कैसे मदद करती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

ख) सरकार ने ग़रीबी कम करने वाली विशिष्ट परियोजनाओं को क्यों शुरू किया?

.....

.....

.....

.....

.....

16.3 विकासात्मक गतिविधियों के परिणाम

प्रगति का अर्थ होता है उन्नति और इसी विकास से संपत्ति का सृजन होता है और विभिन्न स्तरों पर रोज़गार उपलब्ध होते हैं। इसके कारण अधिकाधिक लोगों के हाथ में अधिक पैसा आता है और इस प्रकार विकास लोगों के जीवन के स्तर में सुधार लाता है। अगले उप-भाग में हम आपको बताएंगे कि किस प्रकार विकासात्मक गतिविधियों के कारण रोज़गार का स्वरूप बदल रहा है।

16.3.1 रोज़गार के स्वरूप में परिवर्तन

आइए पहले हम उत्पादन के दो क्षेत्रों, यानि कृषि तथा औद्योगिक में अंतर देखें। औद्योगिक क्षेत्र दो क्षेत्रों का बना होता है — सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) और निजी क्षेत्र (Private Sector)। सार्वजनिक क्षेत्र में वे उद्योग अथवा संस्थान आते हैं, जो सरकार के स्वामित्व में हों, जबकि निजी क्षेत्र निजी स्वामित्व में होते हैं। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह बड़ी संख्या में लोगों को रोज़गार उपलब्ध कराता है।

मार्च, 1986 में व्यवस्थित क्षेत्र (Organised Sector) ने 250 लाख लोगों को रोज़गार उपलब्ध कराया। मार्च, 1988 तक यह संख्या 257 लाख हो गई थी। अतः दो वर्ष की अवधि में सात लाख नए रोज़गार पैदा किए गए। इन सात लाख लोगों में से अधिकांश निश्चय ही पहले पूरी तरह से या आंशिक रूप में कृषि क्षेत्र में काम रहे थे। विकासात्मक गतिविधि में वृद्धि का परिणाम यह होता है कि कृषि क्षेत्र के लोग व्यवस्थित क्षेत्र में स्थानांतरित हो जाते हैं और ऐसा होना भी चाहिए। हमारी कृषि पर जन-शक्ति ज़रूरत से ज्यादा लगी हुई है। कृषकों को मौसम आने पर ही नौकरी दी जाती है। औसतन वर्ष के आधे दिन वे बिना नौकरी के रहते हैं। कृषि उत्पादन का वर्तमान स्तर काफी कम श्रमिकों को रखकर प्राप्त किया जा सकता है और अधिक मात्रा में उपलब्ध जन-शक्ति को अन्य उत्पादक क्षेत्रों में लगाया जा सकता है, जैसे कृषि-आधारित उद्योगों, घरेलू उद्योगों, वन-आधारित उत्पाद इत्यादि में।

भारत की स्थिति का औद्योगीकृत देशों की स्थिति से तुलना करना ज्ञानवर्धक होगा, जैसा कि तालिका 16.12 में बताया गया है। इन देशों में कृषि में लगभग 2 से 12 प्रतिशत जन-शक्ति ही काम करती है और शेष 90 प्रतिशत श्रमिक अन्य क्षेत्रों में काम करते हैं। जबकि भारत में कुल आबादी का 69 प्रतिशत भाग कृषि में ही लगा रहता है।

तालिका 16.12 : कुछ चुने हुए देशों में जन-शक्ति की प्रति व्यक्ति आय और वितरण

देश	वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय (अमरीकी डॉलरों में)	कृषि	उद्योग	नौकरी
अमरीका	1960	2,500	7	36	57
	1980	11,360	2	32	66
इंग्लैंड	1960	1,200	4	48	48
	1980	7,920	2	42	56
पश्चिम जर्मनी	1960	1,220	14	48	38
	1980	11,730	4	46	50
जापान	1960	420	33	30	37
	1980	9,890	12	39	49
भारत	1960	70	74	11	15
	1980	240	69	13	18

स्रोत : यूनाइटेड नेशन्स स्टैटिस्टिकल ईयर बुक, 1977 और वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट, 1982 और 1987।

दुर्भाग्यवश भारत अभी इतना औद्योगीकृत नहीं हुआ है कि वह अधिक संख्या में लगी जन-शक्ति को कृषि से हटाकर औद्योगिक संपत्ति उत्पन्न करने में लगा सके। सीमांतक कृषकों को कृषि-क्षेत्र छोड़ना पड़ेगा परंतु सामान्यतः उन्हें उपयुक्त रोजग़ार अन्यत्र नहीं मिलता।

उपयुक्त नौकरियों को ढूंढने की समस्या का सामना एक और वर्ग के श्रमिकों को करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, कारीगरों और शिल्पकारों को जब बाज़ार की स्थिति-प्रतिकूल (adverse market force) होने के कारण अपने व्यवसाय को न चाहते हुए भी छोड़ना पड़ता है, तो उन्हें कोई वैकल्पिक तथा उत्पादक रोज़गार नहीं मिल पाता है। हताश होकर वे किसी भी काम को करने लग जाते हैं और उनकी कारीगरी व्यर्थ हो जाती है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए बुनाई उद्योग का उदाहरण लीजिए। पहले ज़माने में कताई और बुनाई का काम छोटे पैमाने पर हमारे देश में सर्वत्र होता था। कारखाने लगाए जाने के समय दो समस्याएं हमारे सामने आईं। पहली समस्या तो यह थी कि जितने लोगों को इस काम को छोड़ना पड़ा, उनकी संख्या की तुलना में बहुत ही कम लोगों को कारखानों में काम मिल पाया। दूसरी यह कि परंपरागत बुनकरों को कारखानों में नहीं रखा गया, बल्कि अन्य लोगों को काम दिया गया। जीविका कमाने के लिए बुनकरों ने अन्य वैकल्पिक व्यवसायों को ढूंढना शुरू किया। उनमें से अधिकांश को अपने मुहल्ले अथवा क्षेत्र में सफलता नहीं मिली। इसलिए वे गांवों को छोड़कर कस्बों तथा शहरों में चले गए। इसी प्रकार, कोयले के क्षेत्रों में जब नई खानों में खुदाई शुरू की गई, बड़ी संख्या में लोगों को अपना व्यवसाय तथा अपना घर छोड़ना पड़ा और ये लोग शहरों में आ गए। प्रवासन की समस्या पर इसी इकाई के अंतिम भाग में चर्चा की गई है।

यद्यपि विकासात्मक परियोजनाओं ने रोज़गार पैदा किए हैं, फिर भी, दूसरी ओर उन्होंने परंपरागत श्रमिकों को बेरोज़गार कर दिया है और उन्हें शहरों में प्रवास के लिए बाध्य कर दिया है। इस प्रकार की विडंबनाओं का हल निकालने के लिए सरकार तथा अन्य संगठन इस बात के लिए प्रत्यनशील हैं कि ऐसे बेरोज़गार लोगों को नौकरियां उपलब्ध कराएं जो अपने ही क्षेत्र में बेरोज़गार बना दिए गए हैं। उपभाग 16.2.3 में हमने विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों की चर्चा की है। उदाहरण के लिए कोयले के क्षेत्र में ही, स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से, उन 18,000 से भी अधिक लोगों को नौकरी दे दी गई है, जिनके पास अपनी ज़मीन नहीं रही थी। इस प्रकार, अन्य क्षेत्रों में भी ऐसे प्रयत्न किए जा रहे हैं। बांध और सिंचाई परियोजनाओं के कारण बहुत सारे लोग अपनी भूमि से विस्थापित कर दिए जाते हैं, सरकारें अब उन सभी के पुनर्वास की ओर पर्याप्त ध्यान दे रही है। 1985-90 के दौरान 400 लाख स्टैण्डर्ड व्यक्ति वर्ष रोज़गार (standard person year employment) से भी अधिक रोज़गार उत्पन्न करने की योजना थी, जिसकी वार्षिक वृद्धि दर लगभग 4 प्रतिशत हो। ऐसा सोचा गया था कि इससे विकासात्मक परियोजनाओं के कारण बेरोज़गार हो गए लोगों के साथ अन्य लोगों को भी लाभ पहुंचेगा।

16.3.2 अर्थव्यवस्था में परिवर्तन

विकासात्मक परियोजनाएं सीधे ही अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती हैं। पहली बात तो यह है कि उत्पादों द्वारा अधिक आमदनी होने लगती है और अनेक व्यक्ति इस आर्थिक प्रक्रिया में शामिल हो जाते हैं। साथ ही साथ, परंपरागत गतिविधियों का स्थान नई उन्नत गतिविधियां ले लेती हैं और साधनों का बेहतर उपयोग होता है। उदाहरण के लिए, सिंचाई तथा विद्युत परियोजनाओं के पूरा हो जाने से अधिक बड़े क्षेत्रों को सिंचाई तथा अन्य कृषि संबंधी सुविधाएं प्राप्त हुई हैं। इन सुधारों के कारण ही हरित क्रांति आई। इसका समग्र परिणाम यह हुआ कि कृषि उत्पाद में वृद्धि हुई।

एक स्टैण्डर्ड व्यक्ति वर्ष के रोज़गार का आशय उस स्थिति से लिया जाता है जहां एक व्यक्ति प्रतिदिन 8 घंटे काम करके एक वर्ष में 273 दिन का रोज़गार पाता है।

नहीं थे, उनकी आमदनी अच्छी होने लगी। तालिका 16.13 में 1980 से 1987 तक की सात वर्ष की अवधि में सकल राष्ट्रीय उत्पाद, कृषि उत्पाद, औद्योगिक उत्पादन तथा निर्यात में हुए अंतर को वार्षिक प्रतिशतता में बताया गया है। आप देखेंगे कि कुछ वर्षों में कृषि के क्षेत्र के उत्पादन में गिरावट आई है, जिसका एक मुख्य कारण सूखा था। इसका कारण यह है कि अभी तक हमारे देश में कृषि बहुत कुछ वर्षा पर निर्भर है। यदि सिंचाई की सुविधाएं अपेक्षाकृत बड़े क्षेत्रों के लिए सुनिश्चित होती तो संभवतः इस प्रकार की गिरावट आती ही नहीं। कुल मिलाकर औद्योगिक उत्पादन, बिजली उत्पादन और निर्यात में वृद्धि दिखाई देती है। यह तभी संभव हुआ है, जबकि नई परियोजनाओं को हाथ में लिया गया और वे सफलतापूर्वक कार्य करने लगीं। परिणामतः इन वर्षों में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के साथ ही साथ मुद्रा साधन भी बढ़े हैं।

तालिका 16.13 : कुछेक चुने हुए संकेतक, जो पिछले वर्षों की तुलना में प्रतिशतता में अंतर को प्रदर्शित करते हैं

	1980-81	81-82	82-83	83-84	84-85	85-86	86-87
सकल राष्ट्रीय उत्पाद	7.4	5.9	2.6	8.0	3.9	5.1	3.8
कृषि उत्पादन	15.6	5.6	- 3.3	13.7	1.2	2.4	-3.7
औद्योगिक उत्पादन	4.0	9.3	3.2	6.7	8.6	8.7	9.1
निर्यात	4.6	16.3	12.8	11.0	20.0	- 7.2	14.3

तालिका 16.13 में पिछले वर्ष की तुलना में प्रति वर्ष की वृद्धि को दर्शाया गया है। यदि हम इन वर्षों में वास्तविक वृद्धि का परिकलन करें तो यह वृद्धि बहुत प्रभावशाली लगेगी। इसी प्रकार, कोयले और लिग्नाइट उत्पादन, बिजली उत्पादन, कच्चे तेल और पेट्रोलियम उत्पादों के लिए आधार-संरचना के निष्पादन के ग्राफों को चित्र 16.2 और 16.3 में दर्शाया गया है जिनसे वर्ष 1988 तक नियमित वृद्धि का पता चलता है, तथापि वर्ष 1988-89 में इन क्षेत्रों के उत्पादन में गिरावट दिखाई देती है। उत्पादन में वृद्धि इन वर्षों में विकास परियोजनाओं के कारण ही संभव हुई है।

जब सकल राष्ट्रीय उत्पाद, मुद्रा, साधन और वस्तुओं तथा पदार्थों की आधार-संरचना का उत्पादन बढ़ता है, तब संपूर्ण अर्थव्यवस्था में वृद्धि होती है।

16.3.3 जीवन-स्तर में परिवर्तन

जब विकास होता है और अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होती है, तब जीवन के सभी पहलुओं पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पड़ता है। विकास-परियोजनाओं के कार्यान्वित होने पर नियमित रूप से एक सकारात्मक परिवर्तन होता है और वह है जीवन-स्तर में परिवर्तन। आम तौर पर देखा जाता है कि जहां भी विकास-परियोजना शुरू होती है, परियोजना के कार्यान्वित होने से पहले ही नई बस्तियां बन जाती हैं। पहले तो जिन श्रमिकों को परियोजना की स्थापना करनी होती है, उनका आवास परियोजना-स्थल के नज़दीक ही होना चाहिए ताकि आने-जाने में अधिक समय खर्च न हो। चूंकि देश के हर भाग में आवास सुविधाएं अपर्याप्त हैं, इसलिए उस क्षेत्र में मौजूदा आवास की सुविधाओं को प्रयोग में लाना संभव नहीं होता है।

इस कारण श्रमिकों के लिए नए घर बनवाने पड़ते हैं। जब परियोजना कार्यान्वित हो जाती है तो जिन श्रमिकों को स्थापना के लिए काम पर लगाया जाता है दे जगह छोड़कर चले जाते हैं। अब उन श्रमिकों के आवास की व्यवस्था करनी होती है, जो परियोजना को चलाएंगे। सामान्यतः ऐसे श्रमिकों की संख्या अधिक होती है इसलिए और अधिक आवासीय सुविधाएं उपलब्ध करानी पड़ती हैं। आप जानते ही हैं कि काम करने के स्थान के नज़दीक श्रमिकों के लिए ग्रुप हाउसिंग की सुविधा प्रदान करना परियोजना के ही हित में होता है। अधिकांश बड़ी विकासात्मक परियोजनाएं इस क्षेत्र में काफी रूचि दिखाती हैं। अक्सर हम देखते हैं कि श्रमिकों की नई बस्तियां बनती जा रही हैं। इसके उदाहरण मिलते हैं स्टील संयंत्रों, पेट्रोलियम रिफाइनरियों, तापीय विद्युत-संयंत्रों, जल-विद्युत परियोजनाओं, रेलवे तथा एयर लाइन परियोजनाओं के स्थानों पर। इन बस्तियों को सामान्यतः व्यवस्थित योजना के अनुसार बनाया जाता है। जहां पीने के पानी और मल-व्ययन की व्यवस्था भी होती है। इसके अतिरिक्त वहां पार्क, हरे मैदान, खेल के मैदान, स्कूल, सड़कें, क्लब इत्यादि भी होते हैं। ऐसी बस्तियां अव्यवस्थित रूप से बड़ी तादाद में बने घरों के बीच मरूद्वीप के रूप में प्रतीत होती हैं। छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान, सार्वजनिक उद्यमों में ही लगभग 275 करोड़ रुपए आवास पर खर्च किए गए थे। उदाहरण के लिए, जब कोल इंडिया लिमिटेड का राष्ट्रीयकरण किया गया था तब उस समय उसके श्रमिकों के लिए केवल 1,18,000 के लगभग घर थे। अब 3 लाख घर उपलब्ध हैं और कम से कम 70 प्रतिशत श्रमिकों को आवास उपलब्ध कराने का लक्ष्य है। इसी प्रकार, अन्य सार्वजनिक तथा निजी उद्यम भी अपने कर्मचारियों को आवासीय सुविधाएं प्रदान कर रहे हैं।

जब आवासीय बस्तियों में शिक्षा, स्वास्थ्य और पाठ्यचर्या के अतिरिक्त अन्य गतिविधियों की पूरी सुविधाएं होती हैं तो उनके रहन-सहन के स्तर में काफी परिवर्तन हो जाता है। अतः इस संक्षिप्त विवरण से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि रहन-सहन स्तर में सुधार इन्हीं विकासात्मक परियोजनाओं का अप्रत्यक्ष परिणाम है।

16.3.4 समष्टि का विस्थापन और प्रवासन

किसी भी विकासात्मक परियोजना के लिए सबसे पहली आवश्यकता होती है जमीन की। चाहे वह परियोजना औद्योगिक, जल-विद्युत, तापीय विद्युत उत्पादन या रेलवे की हो अथवा कोई अन्य। भारत जैसे अत्यधिक आबादी वाले देश में

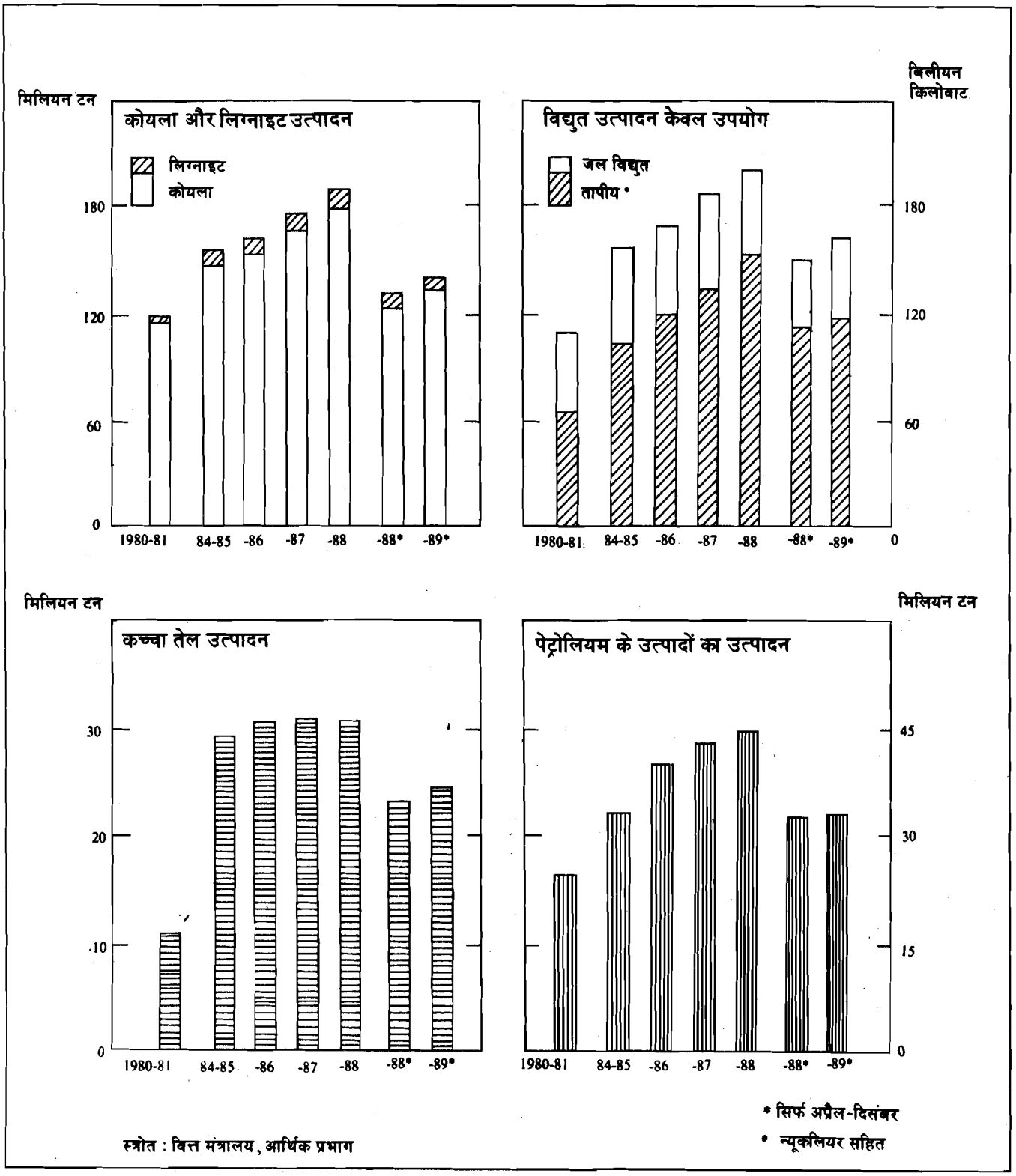

चित्र 16.2 : आधार-संरचना क्षेत्रों का निष्पादन पिछले दशक में

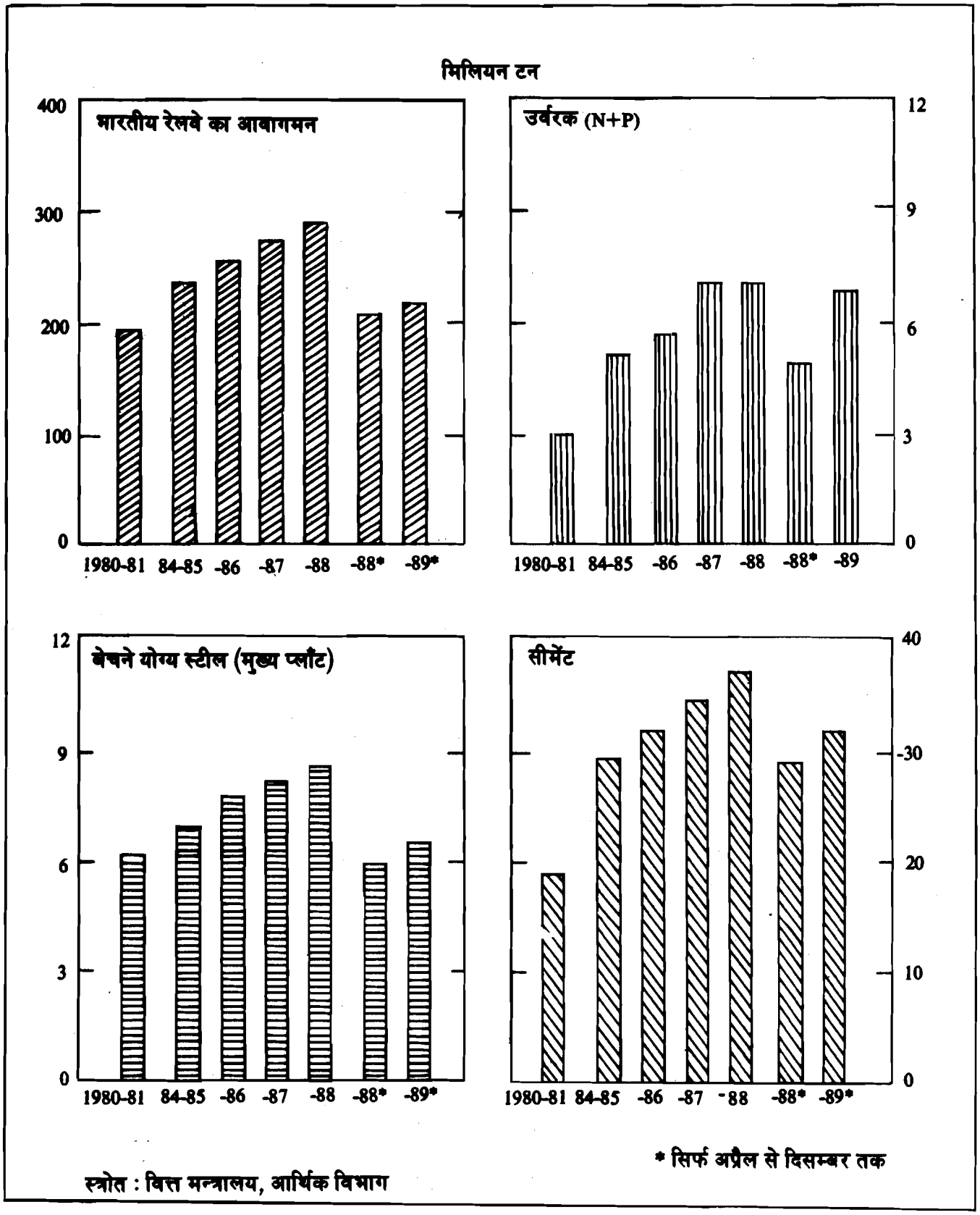

चित्र 16.3 : कुछ आधार-संरचना क्षेत्रों का निष्पादन पिछले दशक में

ऐसे स्थान का मिलना कठिन है जहां लोग न रहते हों या जहां खेती न होती हो। इसीलिए परियोजना के प्रथम चरण में यह जरूरी होता है कि परियोजना-स्थल से लोगों को हटाया जाए। परंतु दुर्भाग्य है कि इन विस्थापित लोगों के पुनर्वास का काम सामान्यतः परियोजना का हिस्सा नहीं होता। बेसहारा होने के कारण विस्थापित लोगों के लिए अपना जीवन नए सिरे से शुरू करना असंभव होता है।

प्रवासन

मानव समष्टि का प्रवसन एक सामान्य घटना है। सदैव ही लोग अच्छे जीवन-यापन के लिए स्थान ढूंढते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास करते रहे हैं। यहां हम विकासात्मक परियोजनाओं के कारण हुए प्रवासन की चर्चा करेंगे। जब भी कोई परियोजना कार्यान्वित होती है वह स्थान घेरती है और अन्य साधनों का उपयोग करती है। उस क्षेत्र के लोगों को अपना घर और व्यवसाय छोड़कर जाना ही पड़ता है और वे नए घरों की तलाश में अन्य स्थानों पर प्रवास कर लेते हैं। बड़े पैमाने पर प्रवसन तब होता है जब बांध और जलाशयों का निर्माण होता है।

बांधों के निर्माण में — जैसे सिरेसेलम बांध आँध्र प्रदेश में, काली जल-विद्युत परियोजना कर्नाटक में, पोंग बांध हिमाचल प्रदेश में और कुछ अन्य बांधों ने बड़ी संख्या में लोगों को वहां से दूर चले जाने के लिए मजबूर किया है और वे अपनी ही भूमि में शरणार्थी बना दिए गए हैं। प्रभावित लोगों में अधिकांशतः उपजातीय किसान, कृषि में काम करने वाले श्रमिक और अन्य ऐसे लोग आते हैं जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। यह संभव प्रतीत नहीं होता है कि उन्हें मुआवजे के रूप में पैसा या विकल्प के रूप में गैर-कृषि नौकरी मिल पाए।

इकाई 7 में आप टिहरी विद्युत संयंत्र के बारे में पढ़ चुके हैं। अनुमान है कि लगभग 4,600 हेक्टेयर भूमि जलमग्न हो जाएगी और 3,500 पुराने परिवार वहां से विस्थापित कर दिए जाएंगे। विशाल सिरेसेलम बांध, जिसको कृष्णा नदी के पार बनाने की योजना है, से 100,000 एकड़ भूमि जलमग्न हो जाएगी और लगभग 100,000 लोग विस्थापित हो जाएंगे।

इनमें से कुछ लोग कोशिश करके पास के क्षेत्र में किसी रोज़गार में लग सकते हैं, परंतु अन्य को वैकल्पिक रोज़गार की खोज में अन्यत्र जाना पड़ता है। अधिकांश लोग पहले से ही भीड़ वाले शहरों और बड़े कस्बों में प्रवास कर लेते हैं, जहां वे अपनी जीविका अर्जित कर सकते हैं। अब तक की विकासात्मक गतिविधियों की मुख्य कमी है प्रभावित समष्टि के पुनर्वास के लिए अपर्याप्त व्यवस्था। इधर यह सोचा गया है कि जिन लोगों की भूमि और जीविका छिन गई है उन्हें मुआवज़ा दिया जाए जिससे कि इस समस्या का समाधान हो सके। तथापि यह देखा गया है कि रोकड़ पैसा देने से अलग प्रकार की समस्याएं पैदा हो जाती हैं जैसे धोखाधड़ी और भ्रष्टाचार। यद्यपि यह पैसा प्रभावित लोगों को मिल भी जाता है तो उनके लिए यह संभव नहीं होता कि ये किसी ऐसे लाभकारी उद्यम को शुरू कर सकें जो उनके पहले के व्यवसाय की क्षतिपूर्ति कर सके। उदाहरण के लिए, किसान किसी अन्य स्थान पर ज़मीन नहीं खरीद सकता जिसमें वह खेती कर सके। वास्तव में रोज़गार की तलाश करते हुए, थोड़े ही समय में उसका पैसा उसकी दैनिक जरूरतों पर ही खर्च हो जाता है। अंततः पैसा और ज़मीन न होने के कारण वे ग़रीबी रेखा से नीचे के स्तर का जीवन बिताने लगते हैं। उदाहरण के लिए यह देखा गया है कि कोयना जलाशय के पास में स्थित लगभग सभी किसान अलग-अलग बस्तियों में गरीबी की रेखा से नीचे हैं क्योंकि उस क्षेत्र में रोज़गार की संभावनाएं नगण्य हैं। यही स्थिति उन लोगों की होती है जिन्हें औद्योगिक तथा अन्य परियोजनाओं के कारण अपना स्थान छोड़ना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि अधिकांशतः प्रभावित समष्टि शहरों की ओर जाती है, और यह भी शहरी क्षेत्रों में तेज़ी से बढ़ती हुई आबादी का एक मुख्य कारण है।

1971 से 1981 तक शहरी आबादी में वृद्धि कुल आबादी की वृद्धि की तुलना में अधिक तेज़ी से हुई है। शहरी क्षेत्रों में यह वृद्धि 46 प्रतिशत थी, जबकि राष्ट्रीय आबादी में कुल मिलाकर 26 प्रतिशत वृद्धि हुई थी। इसका कारण गांवों से लोगों का शहरों की ओर प्रवास करना था। तालिका 16.14 भारत के शहरों की आबादी में तेजी से हुई वृद्धि को दर्शाती है।

तालिका 16.14 : भारत के प्रमुख शहरों की आबादी में वृद्धि (हजारों में)

शहर	1901	1951	1961	1971	1981
कलकत्ता	1488	4589	5737	7031	9166
महा बंबई	813	2967	4152	5971	8203
दिल्ली	214	1437	2359	3647	5752
मद्रास	594	1542	1945	3170	4277
हैदराबाद	448	1128	1249	1796	2566
अहमदाबाद	186	877	1206	1742	2515
बंगलौर	159	779	1200	1654	2914
कानपुर	203	705	971	1275	1685
पुणे	164	606	791	1135	1685
नागपुर	128	449	644	930	1298

परंतु यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि आबादी में इतनी वृद्धि केवल जबरदस्ती प्रवासन के कारण हुई है क्योंकि बड़ी संख्या में लोग मजबूरी न होते हुए भी प्रवास करते हैं। यद्यपि वे निवास स्थान पर ही किसी न किसी प्रकार का रोज़गार प्राप्त कर सकते हैं परंतु अन्यत्र आवास करना पसंद करते हैं क्योंकि उन्हें शहरों में रहना और काम करने की सुविधाएं अच्छी लगती हैं।

16.3.5 गंदी बस्तियों का बनना

आप इकाई 9 में पढ़ ही चुके हैं कि संभी विकासशील देशों में गंदी बस्तियां शहरी जीवन का अनिवार्य अंग बन चुकी हैं। संसार में कोई भी ऐसा बड़ा शहर नहीं है जहां बड़ी गंदी बस्ती न हो। इसलिए यह समस्या केवल भारत में ही नहीं है। आप जानते हैं कि गंदी बस्तियां पर्यावरणीय अवकर्षण की सबसे खराब स्थिति को प्रदर्शित करती हैं, जो शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की सहवर्ती प्रक्रिया है। गंदी बस्तियां पास-पड़ोस के क्षेत्र में अवकर्षण का परिणाम हैं और मानव-स्वास्थ्य के लिए खतरनाक हैं।

हम ऊपर बता चुके हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों में लोगों का बड़े पैमाने पर आगमन हो रहा है। तथापि शहरों में इस वृद्धि को सहन करने की क्षमता नहीं है। शहरी क्षेत्र में आने वाले इन नए लोगों में से अधिकांश के आवास के लिए पर्याप्त स्थान नहीं होता, वे बस्तियां गंदी बस्तियां बन जाती हैं। अनुमान है कि वर्ष 2000 तक भारत में गंदी बस्तियों की आबादी लगभग सात करोड़ अस्सी लाख हो जाएगी। अब प्रश्न उठता है कि क्या विकासात्मक परियोजनाएं ही गंदी बस्तियों के निर्माण का कारण हैं। हम पढ़ चुके हैं कि अब ग्रामीण लोगों की ज़मीन और मकान विकासात्मक परियोजना को स्थापित करने के लिए परिग्रहण कर ली जाती हैं तो अनेक लोग बेघर और बेरोज़गार हो जाते हैं। परंतु यहां यह बात उल्लेखनीय है कि विकासात्मक परियोजनाओं द्वारा प्रभावित लोग गंदी बस्ती की आबादी का बहुत ही छोटा अंश होते हैं। ये सभी लोग शहरों में प्रवास नहीं करते। वस्तुतः शहरों में गंदी बस्तियों में, गांवों के अधिकांशतः वे लोग रहते हैं जो बेरोज़गार होने के कारण शहरों में प्रवास कर लेते हैं या उनको शहरी ज़िंदगी बेहतर लगती है।

चूंकि शहर तेजी से विकास कर रहे हैं, अतः वहां बड़ी संख्या में रोज़गार के अवसर मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए शहरों में भवन निर्माण का कार्य पिछले कुछ दशकों में बढ़ा है। इसी प्रकार, बड़ी संख्या में लघु तथा मध्यम दर्जे के उद्योग शुरू हुए हैं और व्यापारिक गतिविधियां बड़े पैमाने पर बढ़ी हैं। शहरों में तेजी से वृद्धि के कारण नव आगन्तुकों को कोई न कोई रोज़गार मिल ही जाता है जिससे कि वे काम चला लेते हैं। प्रवासियों को सामान्यतः मज़दूरों के रूप में नियोजित किया जाता है। वे किसी न किसी प्रकार इतना कमा लेते हैं कि अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें, परंतु उन्हें आवासीय सुविधाएं नहीं मिल पातीं। इसका कारण है कि ये सुविधाएं सीमित हैं और मंहगी भी। गंदी बस्तियों की वृद्धि में योग देने वाले कारकों में से कुछ ये हैं : नागरिक सुविधाओं का उपलब्ध न होना या अपर्याप्त होना, गृह निर्माण से संबंधित नियमों में सुधार न कर पाना और सार्वजनिक स्थानों पर ज़बरदस्ती कब्ज़ा करने से न रोक पाना।

आपने इकाई 9 में शहरों में अमीरों और गरीबों के आवास स्थलों के मौजूद होने के बारे में पढ़ा था। हम अक्सर देखते हैं कि उद्योगों, तापीय विद्युत-स्टेशनों, बांधों इत्यादि के निकट के स्थानों को सामान्यतः पैसे वाले लोग आवास के काम में नहीं लाते हैं। वे उन क्षेत्रों के हानिकारक प्रभावों को और उन स्थानों के खतरों के बारे में जानते हैं और साथ ही उनके पास विकल्प भी मौजूद होते हैं। इन क्षेत्रों को गंदी बस्तियों में रहने वाले घेर लेते हैं क्योंकि उन्हें वहां से हटाए जाने का खतरा कम से कम होता है। संभव है कि उन्हें इन क्षेत्रों के खतरों और कष्टों के बारे में ज्ञान हो परंतु क्या उनके पास कोई विकल्प होता है? यही कारण है कि भोपाल गैस रिसाव से उत्पन्न दुर्घटना में प्रभावित लोगों में से अधिकांश यूनियन कार्बाइड फैक्ट्री के इर्द-गिर्द गंदी बस्तियों में रहते थे।

अब सरकार गंदी बस्तियों वाले क्षेत्रों में सुविधाएं बढ़ाने की योजना बना रही है। जल-संभरण, बिज़ली, सीवर, बरसात के पानी की नालियाँ, सामुदायिक स्नानगृह तथा शौचालय जैसी मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराने और इन क्षेत्रों की गलियों को सुधारने का प्रस्ताव है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में लगभग 270 करोड़ रुपए इस कार्य के लिए आबंटित किए गए हैं। आशा की जाती है कि इसमें गंदी बस्तियों में रहने वाले 90 लाख लोगों को लाभ पहुँचेगा। 1985 से 1989 के बीच गंदी बस्तियों में रहने वाले लगभग 7.5 लाख लोगों को, गंदी बस्ती सुधार योजनाओं के अंतर्गत लाभ मिला है। इसके अतिरिक्त, सरकार लोगों के शहरों की ओर प्रवासन पर भी रोक लगाने के लिए प्रयत्न कर रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में नई विकास-परियोजनाएं, जिनमें रोज़गार की संभावनाएँ हों, आयोजित की जा रही हैं।

16.3.6 विस्थापित लोगों का पुनर्वास

विभिन्न परियोजनाएं समष्टि को अलग-अलग रूप में प्रभावित करती हैं। अपना क्षेत्र छोड़कर बाहर चले गए लोगों की संख्या — जिन्हें पुनर्वास की ज़रूरत है — परियोजना के आकार और इस क्षेत्र में आबादी की सघनता पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, सिंचाई की परियोजना में बाँध और जलाशय का निर्माण शामिल होता है और इसलिए बड़े क्षेत्र पर इसका प्रभाव पड़ता है। जबकि औसत दर्जे का तापीय विद्युत संयंत्र अपेक्षाकृत अधिक छोटे से क्षेत्र को प्रभावित करता है।

आइए पहले हम **नर्मदा सागर परियोजना** और **सरदार सरोवर परियोजना** के विशिष्ट उदाहरण को लें। अनुमान है कि नर्मदा सागर परियोजना में वनों की 40,000 हेक्टेयर से भी अधिक भूमि और इतनी ही खेती के काम में आने

वाली भूमि जलमग्न हो जाएगी। 250 से भी अधिक गाँवों पर इसका असर पड़ेगा, जिनमें 89 गाँव तो ऐसे होंगे जो पूरी तरह पानी में डूब जाएंगे। लगभग 1.3 लाख लोग विस्थापित हो जाएंगे और उन्हें फिर से बसाने की ज़रूरत पड़ेगी।

सरदार सरोवर परियोजना में 12,000 हेक्टेयर से भी अधिक बड़ी खेती की ज़मीन और लगभग 25,000 हेक्टेयर वन-भूमि तथा अन्य प्रकार की भूमि जलमग्न हो जाएगी। 230 से भी अधिक गाँव इससे प्रभावित होंगे। बंबई के चेम्बूर इलाके में स्थित ट्रॉम्बे तापीय विद्युत स्टेशन (Trombay Thermal Power Station) 10 किलोमीटर अर्ध-व्यास के भीतर लगभग 10 लाख लोगों से भी अधिक को प्रभावित कर सकता है। एक और बड़ी परियोजना एकीकृत खनन तंत्र है, जो इस समय आयोजना स्थिति में है। यह बिहार के झरिया, कटरस और किरकेंद्र क्षेत्रों में है। सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठान भारत कोकिंग कोल लिमिटेड द्वारा स्थापित की जाने वाली परियोजना को अगर स्वीकृति मिल जाती है तो यह लगभग 480 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की आबादी को प्रभावित करेगी।

स्पष्टतः किसी भी विकास परियोजना में पहला चरण है मानवीय दृष्टिकोण अर्थात् विस्थापित लोगों का कल्याण। इसलिए निम्नलिखित की आयोजना बनाना जरूरी होता है :

क) सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक सर्वेक्षण जिससे सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से प्रभावित लोगों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध कराई जा सकें।

ख) पुनर्वास स्थल का सर्वेक्षण, जिससे जल और भूमि की उपलब्धता स्थापित हो सके और ऐसे कदम उठाए जा सकें जिनसे भूमि कृषि के योग्य हो सके और उसके कार्यान्वयन के लिए योजना बनाई जा सके। साथ ही, पुनर्वास योजना से पहले विस्थापित लोगों की सहमति ले लेनी चाहिए।

ग) अनिवार्य सेवाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिएं जिससे कि पुनर्वासित लोग नए क्षेत्र में कृषि कार्य जारी रख सकें।

घ) व्यावसायिक प्रशिक्षण देना तथा रोज़गार के अवसर प्रदान करना।

ङ) मोड्यूल के अनुसार, घरों के डिज़ाइन बनाना जिसमें स्थानीय सामान का प्रयोग किया जा सके।

च) स्थान बदलते समय तथा फिर से गृह निर्माण के समय आवश्यक सहायता उपलब्ध कराना।

छ) आर्थिक सहायता देना।

ज) पुनर्वास के बाद भी सेवाएँ उपलब्ध कराना जिससे असंभावित समस्याओं का निराकरण हो सके।

पुनर्वास के लिए बनाए जाने वाले मास्टर प्लान में संपूर्ण पर्यावरण को भी ध्यान में रखना चाहिए। उद्देश्य न केवल विस्थापितों को फिर से बसाना है वरन् हरियाली और पेड़-पौधे भी उगाना है। यहाँ तक कि भूमिहीन किसान को भी भूलना नहीं चाहिए। प्रत्येक परियोजना के पर्यावरणीय प्रभाव का मूल्यांकन करना अनिवार्य है क्योंकि इससे विकासात्मक गतिविधियों के प्रभाव का मूल्यांकन करने में मदद मिलती है। उद्देश्य यह है कि लोगों और पर्यावरण को विकासात्मक परियोजनाओं के खराब प्रभाव से बचाया जाए।

बोध प्रश्न 4

क) उदाहरण देकर समझाइए कि किस प्रकार विकासात्मक परियोजनाएं हमारे पर्यावरण का सामाजिक दृष्टि से अवकर्षण कर सकती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

ख) ग्रामीण लोगों के शहरों की ओर प्रवास को रोकने के लिए हमारी सरकार द्वारा जो कदम उठाए गए हैं, उन्हें लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ग) हमारी कृषि-पद्धति पर जन-शक्ति अधिक लगी हुई है। क्या इसे कम किया जा सकता है?

.....

.....

.....

16.4 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि :

- देश की प्रगति के लिए विकासात्मक परियोजनाएं आवश्यक हैं क्योंकि ये ऊर्जा, सिंचाई सुविधाओं, उर्वरकों, मशीनों और औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन के लिए शुरू की जाती हैं।
- यद्यपि स्वतंत्र भारत में कोयले, बिजली और पेट्रोलियम से ऊर्जा उत्पादन में कुछ प्रगति हुई है, फिर भी वह हमारे देश की ज़रूरतों के मुकाबले में अब भी बहुत ही कम हैं।
- विकासात्मक परियोजनाओं के परिणामस्वरूप कृषि, औद्योगिक उत्पादन तथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद में काफी वृद्धि हुई है। इन परियोजनाओं से आय बढ़ी हैं, नए रोज़गार उत्पन्न हुए हैं, रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठा है और रोज़गार का स्वरूप बदला है।
- विकासात्मक परियोजनाओं के लाभ ग़रीबों और ज़रूरतमंदों तक नहीं पहुँच पाए हैं। सिंचाई परियोजनाओं के कुप्रबंधित आयोजन के कारण लाखों लोग विस्थापित हो गए हैं और वे अपनी ही मातृभूमि में शरणार्थी बनकर रह गए हैं।
- वैकल्पिक रोज़गार उपलब्ध न होने और योजनाबद्ध पुनर्वास कार्यक्रमों के न होने के कारण ग्रामीण लोग शहरों में चले जाते हैं और मजबूर होकर गंदी बस्तियों में रहते हैं। इससे पर्यावरण का सामाजिक अवकर्षण और जीवन की गुणवत्ता में अवनति हुई है।

16.5 अंत में कुछ प्रश्न

1) सरकार को यह आवश्यक क्यों महसूस हुआ कि ग़रीबी से मुक्ति दिलाने की विशिष्ट परियोजनाएँ शुरू करनी चाहिएं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) यदि आपको अपने क्षेत्र में कार्यान्वित की जाने वाली विकासात्मक परियोजना के प्लान की जाँच करने के लिए कहा जाए तो आप उसके पर्यावरणीय प्रभाव का मूल्यांकन कैसे करेंगे और प्लान में किन प्रमुख बातों की जाँच करेंगे?

.....

.....

.....

.....

.....

3) विकासात्मक परियोजनाएँ पिछले कुछ वर्षों से जनता में विवाद का विषय क्यों बनती जा रही हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4) आप अपने क्षेत्र के रोज़गार के स्वरूप में परिवर्तनों के बारे में जानते होंगे। आपको अपने बुजुर्गों से पूछना चाहिए कि 40 वर्ष पहले किस प्रकार के रोज़गार उपलब्ध थे और उस स्थिति की आज की स्थिति से तुलना कीजिए। पता लगाइए कि इस अवधि में कौन-कौन से परिवर्तन हुए हैं और क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

16.6 उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) i) संपत्ति के उत्पादन में वृद्धि
   ii) ग़रीबी उन्मूलन
   iii) आर्थिक असमानताओं में कमी
   iv) रोज़गार पैदा करना।

   ख) मोटे तौर पर विकासात्मक परियोजनाओं का उद्देश्य खाद्य-उत्पादन, औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन, ऊर्जा उत्पादन तथा अन्य सुविधाओं में वृद्धि लाना होता है जो जीवन यापन के लिए ज़रूरी होती हैं। चूंकि भारत की आबादी बहुत अधिक है, इसलिए विकासात्मक परियोजनाओं को शुरू किए बिना लोगों को मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करना संभव नहीं है।

   ग) सिंचाई सुविधाएं, उर्वरक, ऊर्जा, मशीनें और नाशकीट कृषि उत्पाद को बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं। इनकी पूर्ति विकासात्मक परियोजनाओं द्वारा संभव हो सकती है।

2) क) वर्तमान और स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हुए कोयला, बिजली और पेट्रोलियम से ऊर्जा उत्पादन की तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि इन क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। पाठ को पढ़कर आंकड़े भरिए :

	1947	वर्तमान स्थिति
बिजली	.....	.....
कोयला	.....	.....
पेट्रोलियम उत्पाद	.....	.....

   ख) i) अ ii) स iii) स iv) स

3) क) विकासात्मक परियोजमाओं की विशेषताओं को निम्नलिखित आधार पर व्यक्त कीजिए :

   रोज़गार में वृद्धि, लोगों को निश्चित आमदनी उपलब्ध कराना, कृषि निवेशों और औद्योगिक सामान में वृद्धि, वस्तुओं को बाज़ार में भेजना, और रोज़गार इत्यादि। ये सभी मिलकर ग़रीबी को दूर करते हैं और समृद्धि लाते हैं।

   ख) निम्नलिखित मुद्दों पर चर्चा कीजिए :
   कुल मिलाकर विकास के लाभ ग्रामीण लोगों तक नहीं पहुँचते हैं। ऐसी परियोजनाएँ स्थिति में सुधार ला सकती हैं और ग्रामवासियों को लाभ पहुँचा सकती हैं।

4) क) नर्मदा सागर परियोजना उनमें से एक है। यह बड़े क्षेत्र को जलमग्न कर देगी और बड़ी संख्या में लोग इससे प्रभावित होंगे। यदि इन लोगों के पुनर्वास के बारे में गंभीरता से विचार नहीं किया गया तो उन्हें प्रवास करना ही पड़ेगा और घटिया जीवन बिताना पड़ेगा।

   ख) सरकार द्वारा निम्नलिखित उपाय किए गए हैं :
   i) विकासात्मक परियोजनाओं के कारण विस्थापितों का पुनर्वास।
   ii) एन.आई.ई.पी., एम.एन.पी. और आर.एल.ई.जी.पी. इत्यादि।
   iii) ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित वृद्धि केंद्रों को बढ़ावा देना।
   iv) ग्रामीण क्षेत्रों का औद्योगिकीकरण।
   v) ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं के अवसर पैदा करना।

   ग) नहीं। इस समय हमारे पास वह आधार-संरचना उपलब्ध नहीं है जिससे लोगों को कृषि छोड़ने को कहा जा सके और उन्हें विकल्पी गैर-कृषि व्यवसाय उपलब्ध कराए जा सकें।

अंत में कुछ प्रश्न

1) हमारी आबादी का बड़ा हिस्सा ग़रीबी की रेखा से नीचे है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि समान वितरण की गारंटी नहीं दे सकती। इसलिए ग़रीबी हटाने वाली विशिष्ट प्रकार की परियोजनाएं मुख्यतः ग़रीब लोगों को रोज़गार उपलब्ध कराने के लिए शुरू करनी चाहिए ताकि लोगों को निर्धारित आमदनी मिलने लगे और वे मूलभूत सुविधाएँ प्राप्त कर सकें, जैसे भोजन, आवास तथा वस्त्र इत्यादि।

2) इन बातों पर मुख्य रूप से ध्यान देना चाहिएं :
   i) पर्यावरण पर प्रदूषण इत्यादि का प्रभाव
   ii) मनुष्यों के स्वास्थ्य पर प्रभाव
   iii) रोज़गार के अवसरों और उत्पाद के उपयोग के रूप में स्थानीय लोगों को लाभ
   iv) यदि इसमें लोगों का विस्थापन निहित है तो पुनर्वास योजना का बनाना आवश्यक है।

3) निम्नलिखित मुद्दों के आधार पर डेढ़ पृष्ठों में इस विवाद के कारणों को लिखिए :

   पर्यावरण का अवकर्षण, निर्वनीकरण, प्रदूषण, मृदा तथा जल की गुणवत्ता में कमी हो जाना, जलवायु संबंधी परिवर्तन (एकदम बाढ़ आ जाना), लोगों का विस्थापित हो जाना, शहरों में प्रवास और गंदी बस्तियों का निर्माण।

इकाई 17 परिवर्तित पर्यावरण के आर्थिक प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
17.2 अपशिष्ट उत्पत्ति तथा निपटान का खर्च
अपशिष्ट तथा पर्यावरण
औद्योगिक अपशिष्ट
कृषिजन्य अपशिष्ट
घरेलू अपशिष्ट
17.3 प्रदूषण नियंत्रण का आर्थिक महत्व
आर्थिक क्षति
प्रदूषण के आर्थिक पहलू
अपशिष्ट न्यूनतमीकरण
अपशिष्टों का उपयोग
17.4 सारांश
17.5 अंत में कुछ प्रश्न
17.6 उत्तर

17.1 प्रस्तावना

इकाई 13 में आप विभिन्न प्रकार के अपशिष्टों, उनके स्रोतों और उनके निपटान के लिए प्रयुक्त सामान्य तरीकों के बारे में पढ़ चुके हैं। इकाई 14 और 15 में स्वास्थ्य पर विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों के हानिकारक प्रभावों के बारे में भी आप जान चुके हैं। अब हम अपशिष्टों के स्रोत से लेकर उनके विसर्जित किए जाने (अंततः निपटान) तक के आर्थिक पहलू और संबंधित पर्यावरणीय मुद्दों पर समग्र रूप से विचार करेंगे।

मानव की हर गतिविधि, चाहे जीवन के लिए अनिवार्य हो अथवा सुख व विश्राम से संबंधित हो, किसी न किसी प्रकार का अपशिष्ट तो उत्पन्न करती ही है। चूंकि अपशिष्टों को आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता इसलिए उन्हें फेंक दिया जाता है या विसर्जित कर दिया जाता है। पहले तो इस प्रकार के अपशिष्ट पर्यावरण में ही आत्मसात हो जाते थे लेकिन जनसंख्या के बढ़ने और जीवन स्तर पहले से अच्छा हो जाने से इस समय मात्रा तथा जटिलता दोनों ही दृष्टियों से अपशिष्ट बढ़ गए हैं। स्पष्ट ही है कि अब स्थिति ऐसी आ गई है कि पर्यावरण उनको और अधिक आत्मसात नहीं कर सकता। वास्तव में यही पर्यावरण संबंधी अपच वाली स्थिति है जो आज मानव मात्र के सम्मुख अनगिनत पर्यावरणीय समस्याओं के रूप में प्रकट हो रही है।

इस इकाई में हम अवकर्षित पर्यावरण के आर्थिक प्रभावों - औद्योगिक, परिवहन, कृषि तथा घरेलू क्षेत्रों में उत्पन्न अपशिष्टों की लागत और उनसे प्राप्त लाभों अथवा संभावित उपयोगों की चर्चा करेंगे। साथ ही हम इस बात की भी विवेचना करेंगे कि पर्यावरण के लिए स्वीकृत अपशिष्ट प्रबंध पद्धतियां खर्चे की दृष्टि से कितनी उपयोगी हैं और अपशिष्ट प्रबंध के विकल्पों में से कौन सा विकल्प आर्थिक दृष्टि से चुना जा सकता है। यह कुछेक मुख्य क्षेत्र हैं जिनका विवरण हम इस इकाई में दे रहे हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अपशिष्टों और पर्यावरणीय समस्याओं के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे,
- विभिन्न क्षेत्रों द्वारा उत्पन्न विविध प्रकार के अपशिष्टों को बता सकेंगे,
- अपशिष्ट उत्पादन और अपशिष्ट विसर्जन के आर्थिक पहलुओं को जान सकेंगे,
- अपशिष्ट प्रबंध विकल्पों को क्रमोत्तर रूप में लिख सकेंगे,
- ठोस उदाहरण द्वारा बता सकेंगे कि "अपशिष्ट पदार्थ" वास्तव में अपनिहित साधन है,
- पर्यावरणीय प्रतिरक्षा-संबंधी प्रयत्नों में रुकावट पैदा करने वाली आर्थिक विवशताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

17.2 अपशिष्ट उत्पत्ति तथा निपटान का खर्च

इस खंड में पहले हम आपको बताएंगे कि अपशिष्ट और पर्यावरण में क्या संबंध हैं? इसके बाद हम भारत में औद्योगिक, कृषि तथा घरेलू अपशिष्ट की व्यापकता के बारे में चर्चा करेंगे।

17.2.1 अपशिष्ट तथा पर्यावरण

हर वस्तु चाहे वह कुछ भी हो जिसे काम में लेते हैं और जिसका उपयोग करते हैं, जो भोजन हम ग्रहण करते हैं, जो कपड़े हम पहनते हैं, घर जहां हम रहते हैं, पाठ्य पुस्तक अभी आप पढ़ रहे हैं, सभी अनिवार्यतः पर्यावरण अर्थात भूपर्पटी और पृथ्वी की सतह से प्राप्त पदार्थों और ऊर्जा से बने होते हैं। हम कभी भी किसी वस्तु के बिना दूसरी कोई वस्तु प्राप्त नहीं कर सकते।

चित्र 17.1 को देखिए। जिस समय पर्यावरण से निष्कासित पदार्थ वांछित उपयोग वाले रूप में नहीं होते तो उनका ज्ञान आधारित प्रक्रमण किया जाता है जिसे प्रौद्योगिकी कहते हैं। ऊर्जा का प्रयोग करके उन्हें उपयोगी उत्पादों और सेवाओं (services) में रूपांतरित कर दिया जाता है। ऐसा उपयोग शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में हर गतिविधि के लिए सत्य है, चाहे वह गतिविधि उद्योग, कृषि, परिवहन, सेवा अथवा घरेलू क्षेत्रों से संबंधित ही क्यों न हो।

यहां यह जान लेना चाहिए कि किसी भी प्रौद्योगिकीय प्रक्रिया में समस्त निवेशित पदार्थ अथवा निवेशित साधन कभी भी पूरी तरह वांछित उत्पादों और सेवाओं में नहीं बदले जा सकते। कुछ न कुछ अपशिष्ट सदैव ही पैदा होते हैं। प्रक्रमण से गुजरने के पश्चात् लगाए गए निवेश में से अंततः कितना उत्पादों और सेवाओं के रूप में उत्पन्न होगा या कितना अपशिष्टों के रूप में बाहर निकल जाएगा, यह इस तथ्य पर निर्भर होगा कि क्या उत्पन्न किया जा रहा है? किस तकनीकी प्रक्रिया का प्रयोग किया गया है और कितनी दक्षता के साथ इस प्रक्रिया का प्रबंध किया गया है? तथापि एक बात निश्चित है कि अपशिष्ट तो बनेंगे ही चाहे कुछ भी हो। यह अपरिहार्य है।

चित्र 17.1 में प्रस्तुत की गई रूप रेखा के अनुसार अपशिष्ट उस समय भी उत्पन्न होते हैं जब लोग भोजन, जल, वायु अथवा अन्य उपयोगी पदार्थ ग्रहण करते हैं, या औद्योगिक उत्पादों को बनाने के लिए किसी पदार्थ का उपयोग करते हैं। जब अपशिष्ट अधिकता में उत्पन्न होते हैं तो वह पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं तथापि कुछ अपशिष्टों को फिर से उपयोगी पदार्थों में बदला जा सकता है।

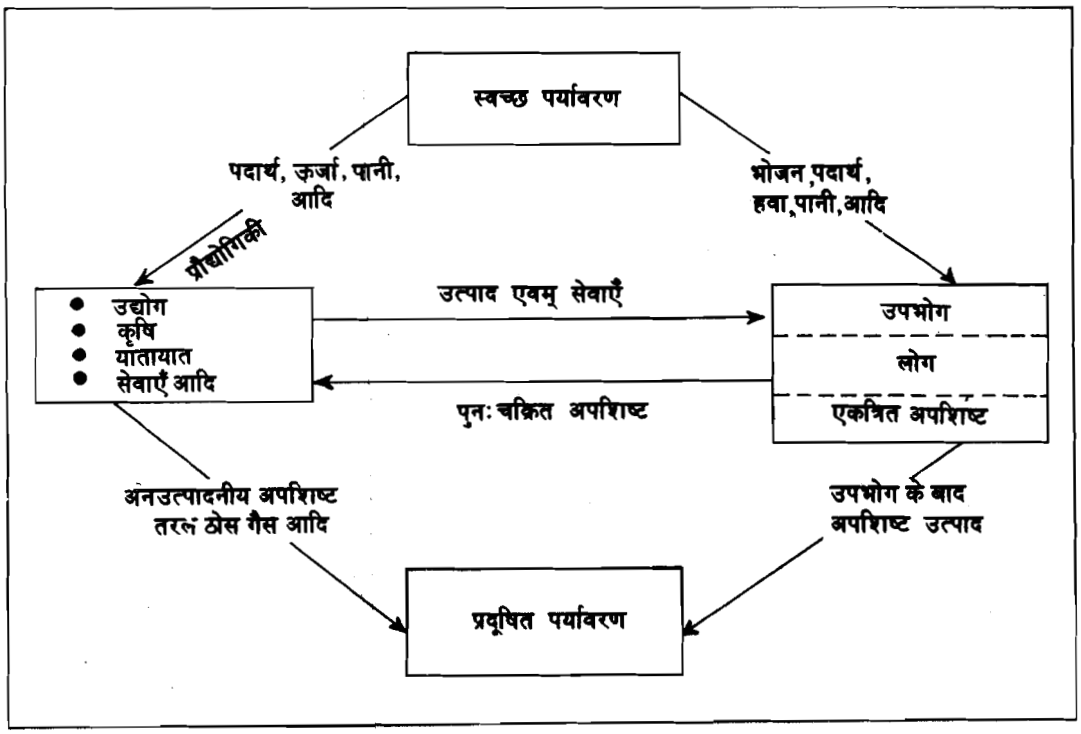

चित्र 17.1 : मानव की गतिविधियां और पर्यावरण

जैसे-जैसे लोगों की आवश्यकताएं और मांगें बढ़ती हैं वैसे-वैसे पर्यावरण से प्रति व्यक्ति पदार्थों के निष्कर्षण में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। उदाहरण के लिए 1980 के दशक के प्रारंभ में अमरीका में प्रति व्यक्ति पदार्थों का निष्कर्षण 60 किलोग्राम प्रतिदिन था। आबादी के बढ़ने के साथ-साथ विश्व में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में भी तेजी से वृद्धि होती जा रही है। सन् 1950 की तुलना में अब खनिजों का उत्पादन तीन गुना और औद्योगिक उत्पादन सात गुना से भी अधिक हो गया है।

स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों साधनों का निवर्तन बढ़ता जाता है त्यों-त्यों पर्यावरण में अपशिष्टों का विसर्जन बढ़ता जाता है। प्रत्येक निवर्तन और प्रत्येक विसर्जन पर्यावरण में परिवर्तन लाता है। इसलिए यह बात उभर कर सामने आती है कि हम लगातार पर्यावरणीय संतुलन बिगाड़ते चले जा रहे हैं। दुर्भाग्यवश इस उथल-पुथल की तीव्रता लगातार बढ़ते जा रहे निवर्तनों और विसर्जनों के साथ-साथ बढ़ती जा रही है।

तथापि विसर्जनों अथवा निवर्तनों की केवल मात्रा ही उन समस्त पर्यावरणीय समस्याओं की आधारभूत कारण नहीं है, जिनका आज हमें सामना करना पड़ रहा है, कुछ अन्य कारक भी इसमें योग देते हैं। विसर्जनों और निवर्तनों का स्वरूप, स्थान और समय भी हमारी पर्यावरणीय समस्याओं को बढ़ाने में काफी मदद देते हैं। आइए हम पर्यावरणीय अवकर्षण के संदर्भ में इन कारकों के महत्व को दिल्ली के कोयला वहन तापीय विद्युत केंद्र (coal fired station at Delhi) का उदाहरण लेकर समझ लें। इस केंद्र की विद्युत उत्पादन क्षमता कोयलों की आवश्यक मात्रा का निर्धारण करती है जिसे वास्तव में बंगाल अथवा बिहार की कोयला खानों से निष्कर्षित करना पड़ता है और इतना लंबा रास्ता तय करके दिल्ली लाना पड़ता है। यह कोयला जब विद्युत केंद्र में जलाया जाता है तो राख और अधजले कोयले के कण बच जाते हैं जिन्हें चिमनी के जरिए वायुमंडल में विसर्जित कर दिया जाता है। अतः कोयला बंगाल तथा बिहार के पर्यावरण से निवर्तित किया गया और राख और अधजले कोयले की थोड़ी सी मात्रा दिल्ली के पर्यावरण में विसर्जित कर दी गई। इसलिए निवर्तन से लेकर विसर्जन तक कोयले के रूप में परिवर्तन हुआ और साथ ही विसर्जन का स्थान भी बदला अर्थात् बंगाल या बिहार से दिल्ली आ गया।

यहां तक कि दोनों क्रियाओं के समय में भी परिवर्तन हुआ। किसी समय जो वस्तु कोयले के रूप में थी वह अब अधिकांशतः राख में बदल गई। इसके अलावा वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में विसर्जन अथवा निवर्तन का समय विशेष महत्व ग्रहण कर लेता है। उदाहरण के लिए मौसम की खास दशाओं में यदि विसर्जनों को नियंत्रित न किया जाए तो उससे धूम कुहरा अर्थात दम घुटने वाली पर्यावरणीय परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं, जिसके बारे में आप इकाई 10 में पढ़ चुके हैं।

जैवमंडल के स्तर पर भी निवर्तनों और विसर्जनों का स्वरूप, स्थान और समय बदल जाते हैं। कुल निवर्तनों में से बहुत बड़े भाग को भूपर्पटी अथवा सतह से निष्कर्षित किया जाता है। सापेक्षतः वायु अथवा जल से बहुत कम पदार्थ का निवर्तन होता है। परंतु जब हम विसर्जनों की ओर देखते हैं तो वायु और जल में विसर्जनों का अनुपात उनसे निष्कर्षित निवर्तनों से बहुत अधिक होता है। इससे वायु और जल के प्रदूषण का स्तर बढ़ जाता है। यही कारण है कि जल प्रदूषण की समस्याओं पर हमारा ध्यान पहले जाता है, फिर वायु, मृदा और अन्य प्रकार के प्रदूषणों पर। इसी वजह से आज यह देखा जाता है कि विश्व भर में जल प्रदूषण नियंत्रण के लिए अधिनियम सबसे पहले बनाए गए। वायु प्रदूषण तथा अन्य प्रदूषणों के नियामक अधिनियम बाद में बने।

आपने अब तक जो पढ़ा है उसे सार रूप में दोहरा लेते हैं : अपशिष्ट अपरिहार्य हैं और ये मात्रा तथा जटिलता दोनों ही दृष्टियों से बढ़ रहे हैं। चूंकि इनका विसर्जन पर्यावरण को कुप्रभावित करता है इसलिए पर्यावरण की सुरक्षा अथवा प्रदूषण नियंत्रण से संबंधित विभिन्न प्रकार के अधिनियम बनाए गए हैं और लागू किए जा रहे हैं। आइए हम अपशिष्टों के उत्पन्न होने की अवस्था से लेकर पर्यावरण में उनके निपटान अथवा विसर्जन तक के आर्थिक पहलुओं की जांच करें।

अपशिष्ट जब अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं वे अदक्षता प्रदर्शित करते हैं। ये आर्थिक हानि के परिचायक होते हैं और इसलिए अदृश्य रूप में इनका संबंध व्यय से होता है। पर्यावरणीय सुरक्षा अथवा प्रदूषण नियंत्रण संबंधी नियमों की बाध्यताओं और आदेशों के अनुसार अपशिष्टों के उत्पादन को रोकने, उनका उपचार करने, उनको संचित करके, उनको लाने ले जाने तथा पर्यावरण में स्वीकार्य रूप में विसर्जित करने में अतिरिक्त खर्च होता है।

अगले खंड में आप पढ़ेंगे कि अपशिष्ट कितनी मात्रा में और किस प्रकार उत्पन्न होते हैं और घरेलू, कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों में कितनी मात्रा में अपशिष्ट तैयार होते हैं। परन्तु इन बातों की जानकारी प्राप्त करने से पहले निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल कीजिए।

बोध प्रश्न 1

क) निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों को उपयुक्त शब्द लिखकर पूरा कीजिए :

i) हम पदार्थ, ऊर्जा और पानी ..... से लेते हैं और ..... का प्रयोग करके उन्हें उपयोगी रूप में बदल देते हैं।

ii) जैवमंडल में ..... का अधिक्य में ..... होने के कारण पर्यावरण में अपशिष्ट का विसर्जन बढ़ जाता है।

iii) प्रदूषण को निर्धारित करने वाले तीन कारक हैं : अपशिष्ट का ....., ... और .....

iv) जैवमंडल के स्तर पर ..... से साधनों का निवर्तन किया जाता है और अपशिष्टों को ..... में विसर्जित कर दिया जाता है।

v) पर्यावरणीय ..... विक्षोभ इसलिए पैदा होता है क्योंकि ..... के निवर्तन और ..... के ..... में वृद्धि हो जाती है।

ख) पर्यावरणीय संतुलन में बढ़ते हुए विक्षोभों के मूल कारकों को बताइए।

.....

.....

.....

.....

17.2.2 औद्योगिक अपशिष्ट

विश्व के अन्य देशों में स्थापित उद्योगों की तरह भारत में भी उद्योगों द्वारा बड़ी मात्रा में विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। ये अपशिष्ट ठोस, द्रव अथवा गैसीय हो सकते हैं। बहुत से मामलों में उद्योगों के अपशिष्टों की मात्रा की अलग-अलग सही रूप में जानकारी नहीं हो पाई है।

भारत में बड़े और मध्यम दर्जे के उद्योग, प्रदूषण नियंत्रण संबंधी नियमों, विशेषकर जल और वायु-संबंधी अधिनियमों द्वारा लगाई गई पर्यावरण अनिवार्यताओं का पालन करते हैं परन्तु छोटे दर्जे की यूनिट वस्तुतः अपने अपशिष्टों को जल अथवा वायु में उत्सर्जित करने से पहले इनका उपचार करने के लिए कोई कार्यवाही नहीं करती है। लघु, मध्यम या बड़े उद्योगों के विनिर्माण प्रक्रियाओं से उत्पन्न अपशिष्ट जहां भी कम खर्च आए अथवा अपनी सुविधानुसार बिना सोचे समझे कहीं भी फेंक दिए जाते हैं।

अनुमान है कि हमारे देश में लघु उद्योग इकाइयां भी मिलकर उतना ही अपशिष्ट उत्पन्न करती हैं जितना कि बड़े और मध्यम दर्जे के उद्योग। लघु उद्योग अपना सारा अपशिष्ट बिना किसी उपचार और विसर्जन की पर्यावरण सुरक्षा पद्धतियां अपनाए बिना विसर्जित कर देते हैं। परिणाम यह है कि पर्यावरण का प्रदूषण बढ़ गया है जो कई स्थानों पर तो गंभीर स्थिति पर पहुंच चुका है। अपशिष्ट विसर्जन से सर्वप्रथम हानि हमारे जल स्रोतों को होती है जिसमें भौमजल (ground water) भी शामिल है। इसका एक उदाहरण पंजाब का वह शहर है जो पूर्णतः भौमजल स्रोतों पर ही निर्भर है। तालिका 17.1 में इसी शहर के भौमजल स्रोतों में से कुछ के जल की गुणवत्ता को प्रदर्शित किया गया है और साथ ही यह भी बताया गया है कि डब्ल्यू.एच.ओ. द्वारा निर्धारित पेयजल मानकों के अनुसार कितनी गुणवत्ता होनी चाहिए।

तालिका 17.1 : पंजाब के एक शहर के भौमजल की गुणवत्ता

प्राचल	मान	पेयजल मानक (डब्ल्यू.एच.ओ.)
रंग	थोड़ा सा पीला-हरा	रंगहीन
पी एच (pH)	8.2	7.0
चालकता	3000 μ Mho/cm at 25°C	—
कुल विलयित ठोस	2000 mg/l	—
लोहा	1.5 mg/l	0.1
ऐल्युमिनियम	0.1 mg/l	—
कुल क्रोमियम	0.7 mg/l	0.05
सायनाइड	2.0 mg/l	0.01
तांबा	0.02 mg/l	0.05
कैडमियम	.005 mg/l	0.05
निकल	0.01 mg/l	—
सीसा	0.05 mg/l	0.1
मैंगनीज	0.15 mg/l	0.1

स्रोत : राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद, 1990.

अपशिष्टों का परिणाम

सभी उद्योगों द्वारा, चाहे वे लघु, मध्यम अथवा बड़े हों, निष्कासित पदार्थों की उपचारित करने के संयंत्र और वायु-प्रदूषण नियंत्रक युक्तियां अपनायी जाने पर भी अपशिष्ट तो उत्पन्न होंगे ही और उनको विसर्जित करना ही पड़ेगा। बस अंतर यह होगा कि लगभग संपूर्ण अपशिष्ट ठोस रूप में होंगे। प्रदूषण नियंत्रण कानूनों को सख्ती से लागू करने के कारण अब लगभग सभी बड़े उद्योग अपने अपशिष्ट जल और वायु में विसर्जित करने से पहले उपचारित करते हैं और सामान्यतः उन में विद्यमान प्रदूषकों को ठोस रूप में या आपंक (sludges) रूप में बदल देते हैं। इसलिए आइए अब हम भारत में उत्पन्न ठोस औद्योगिक अपशिष्टों की मात्रा की ओर भी ध्यान दें। तालिका 17.2 में कुछेक प्रमुख औद्योगिक अपशिष्टों और उनके वर्तमान वार्षिक उत्पादन के आंकड़ों को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 17.2 : कुछेक प्रमुख औद्योगिक अपशिष्टों के स्रोत और उनका वार्षिक उत्पादन

अपशिष्ट	मात्रा (मि. टन प्रति वर्ष)	स्रोत
वात्या भट्टी का स्लैग	35.00	समाकलित लोहा और इस्पात मिलें
फ्लाई ऐश	30.00	कोयले से चलने वाले विद्युत संयंत्र
फास्फोजिप्सम	4.50	फॉस्फोरिक अम्ल तथा अमोनियम फास्फेट संयंत्र
लाल पंक	3.00	ऐल्युमिनियम उद्योग
चूना आपंक	3.00	शक्कर, कागज़, उर्वरक, चर्म-परिष्कार शालाएं, सोडा ऐश और कैल्सियम कार्बाइड उद्योग
भट्टे की धूल	1.60	सीमेंट संयंत्र
लवण पंक	0.02	कॉस्टिक सोडा उद्योग
कॉपर स्लैग	0.0164	तांबा उद्योग
अभ्रक छीलन अपशिष्ट	0.005	अभ्रक की खानें

यहां भी बताना उचित होगा कि उपर्युक्त तालिका केवल बड़े उद्योगों में से कुछ के अपशिष्टों के बारे में ही सूचना देती है। यदि हम देश के अन्य उद्योगों और साथ ही 2.5 मिलियन लघु उद्योग इकाइयों को भी लें तो अपशिष्टों की कुल मात्रा काफी अधिक होगी।

उदाहरण के लिए केवल एक ही क्षेत्र को लें जैसे पत्थर तोड़ने के संयंत्र। हमारे देश में 10,000 से भी अधिक संयंत्र प्रतिदिन 100 टन पत्थरों को ही तोड़ते हैं जो कि न्यूनतम आंकड़े हैं तो समस्त पत्थर तोड़ने के संयंत्र प्रतिदिन मिलकर कम से कम 1,000 टन पत्थर की धूल वायुमंडल में छोड़ते हैं। यदि धूल के निष्कासन को नियंत्रित नहीं किया जाता तो धूल के कणों का बड़ा भाग वायु में निलंबित रहता है। आप पढ़ चुके हैं कि जब लोग इस प्रकार की वायु में लगातार सांस लेते हैं, तो कुछ वर्षों के बाद उन्हें श्वास और फेफड़ों से संबंधित अनेकों प्रकार की बीमारियां शुरू हो जाती हैं, यहां तक कि उन्हें सिलिकोसिस जैसी गंभीर बीमारी भी हो सकती है। केवल अपशिष्ट की मात्रा ही नहीं वरन वह कहां और किस रूप में विसर्जित किए जाते हैं। इन पर भी पर्यावरणीय प्रभावों की गंभीरता और परिमाण निर्भर करता है।

भूमि पर ठोस अपशिष्ट के विसर्जन के परिणामस्वरूप न केवल मृदा और भौमजल का प्रदूषण होता है बल्कि बड़ी मात्राओं में पैदा होने वाले अपशिष्टों जैसे फ्लाई ऐश, वात्या भट्टी स्लैग इत्यादि भी बिल्कुल ही भिन्न प्रकार की समस्या प्रस्तुत करते हैं — जैसे उनके विसर्जन के लिए स्थान की आवश्यकता। उदाहरण के लिए 1000 MW कोयला जलाकर चलाए जाने वाले तापीय स्टेशन जिसमें 40 से 45 प्रतिशत राख वाला कोयला जलता है और जिसका कैलोरी मान 3500 kcal/kg है, तीस वर्ष तक चलने रहने पर उसके अपशिष्ट अर्थात फ्लाई ऐश को विसर्जित करने के लिए 500 हेक्टेयर भूमि की जरूरत होगी। अब उस स्थिति का अनुमान लगाइए कि इस शताब्दी के पूरे होते-होते, जब हम अपनी कुल तापीय विद्युत उत्पादन क्षमता को 80,000 से 100,000 MW तक बढ़ा लेंगे तब कितना अपशिष्ट होगा। यदि हम भूमि की उपलब्धता पर पड़ने वाले दबाव पर ध्यान दें तो वास्तव में फ्लाई ऐश विसर्जन की समस्या दुगनी से भी ज्यादा हो जाएगी। यह स्थिति केवल इस बीच की अवधि में जनसंख्या में वृद्धि के कारण होगी।

अपशिष्टों के आधिक्य के कारण

सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि पिछड़ी हुई प्रौद्योगिकी और अकुशल रूप में उद्योगों को चलाने से बड़ी मात्रा में अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। हो सकता है कि तापीय विद्युत स्टेशन इसका कोई अच्छा उदाहरण न हो परंतु हमारे उद्योगों का एक बड़ा भाग, विशेषकर लघु उद्योगों, में आवश्यकता से अधिक अपशिष्ट पैदा होता है। उदाहरण के लिए एक छोटे रंजक मध्यवर्ती उद्योग में किसी वस्तु को एक टन उत्पाद से उत्पन्न अपशिष्ट उसी वस्तु को उसी मात्रा में बनाने वाली एक बड़ी इकाई द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट से लगभग दुगना होता है। अपशिष्टों के उत्पन्न होने में इतनी बड़ी विषमता इस पर निर्भर है कि लघु उद्योगों में बैच आपरेशन (batch operation) तथा उत्पाद क्रिया किस प्रकार की है। दूसरे शब्दों में उत्पन्न हुए अपशिष्टों की मात्रा और गुणवत्ता में निर्माण प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। तथापि यदि कोई उद्योग निर्माण प्रौद्योगिकी के अनुसार — उत्पन्न होने वाले अपशिष्ट की तुलना में प्रति इकाई उत्पादन पर अधिक अपशिष्ट उत्पन्न होता है तो इससे यह संकेत मिलता है कि संसाधनों का अकुशल रूप में उपयोग हुआ है, उत्पादन प्रबंध अकुशल ढंग से किया गया है और संक्रिया तथा विनिर्माण पद्धतियों अथवा उपकरणों का अनुरक्षण अनुचित रूप में हो रहा है। हमारे अनेकों उद्योगों में वास्तव में यही स्थिति है।

वित्तीय प्रभाव

कारण कुछ भी हो, अपशिष्ट जितना ज्यादा और जितना अधिक जटिल होगा उतनी ही अधिक विनिर्माण लागत आएगी। अपशिष्ट उत्पन्न होने में खर्च तो होता ही है, उनके उपचार, संग्रह, परिवहन तथा निपटान पर भी खर्च करना पड़ता है। पर्यावरण सुरक्षा अधिनियमों के अनुसार अपशिष्टों का निपटान निरापद रूप में होना चाहिए। परंतु हमारे देश में अभी तक ऐसा नहीं हो रहा है, खासतौर से उन अपशिष्टों का जो संकट पैदा कर सकते हैं या भारी धातु से युक्त हैं और

जिनका निपटान से पहल तापोय, जैविक अथवा रासायनिक उपचार करना जरूरी है। ऐसी स्थिति में उद्योग को न केवल उपचार सुविधाओं पर खर्च करना पड़ता है वरन ऐसी सुविधा के संचालन और अनुरक्षण पर भी आवर्ती आधार पर खर्च करना पड़ता है। अपशिष्ट जितना अधिक होगा, उसकी उपचार पद्धति पर उतना ही अधिक खर्च करना होगा और यही स्थिति उसके संचालन तथा अनुरक्षण लागत के संबंध में होगी। उपचार के बाद भी अवशेष रह जाएंगे जिनका निपटान भूमि भराव के लिए नियत स्थान पर करना जरूरी होता है। इसलिए अपशिष्टों को फिर से भराव स्थान तक ले जाने के खर्चे के अलावा भराव के संचालकों को भी कुछ पैसा देना पड़ता है जिससे वे अपशिष्टों को वहां डालने दें और पर्यावरण की दृष्टि से भूमि भराव की सुसंगत कार्यवाही कर सकें। अतः आप देख सकते हैं कि अपशिष्टों पर सदैव खर्चा होता है। उत्पादन से लेकर उनके अंतिम रूप में निपटान तक, हर अवस्था में उन पर खर्च होता है। अधिकांश उद्योगों के लिए अपशिष्टों के प्रबंध का खर्च कुल बिक्री का 2 से 5 प्रतिशत तक आता है। कुछ उद्योगों में तो यह बिक्री का 12 से 15 प्रतिशत तक हो सकता है।

बोध प्रश्न 2

क) उद्योग विनिर्माण प्रौद्योगिकी द्वारा की गई सिफारिश से अधिक मात्रा में अपशिष्ट क्यों उत्पन्न करते हैं?

.....

.....

.....

.....

ख) संक्षेप में व्याख्या कीजिए कि "अपशिष्टों पर उनके उत्पादन से लेकर निपटान तक खर्च ही होता है"।

.....

.....

.....

.....

17.2.3 कृषिजन्य अपशिष्ट

संसाधनों के तेजी से घटने और पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न समस्याओं को आज हम अपनी अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों में बहुत अधिक महसूस करते हैं जिनमें अनवीकरणीय संसाधनों (non-renewable resources) का उपयोग किया जाता है। उद्योग और परिवहन ऐसे ही क्षेत्र हैं। अनवीकरणीय सीमित संसाधन जैसे तेल, धातु अयस्क, कोयला इत्यादि के उपभोग में चरघातांकी वृद्धि और उनके द्वारा उत्पन्न पर्यावरणीय प्रभावों को देखें तो उपरोक्त दोनों क्षेत्रों का भविष्य, समस्त मानव जाति की प्रवीणता और प्रौद्योगिकीय क्षमताओं के लिए गंभीर चुनौती प्रस्तुत करता है। दूसरी ओर उद्योग नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग करते हैं वे कच्चे माल की उपलब्धता और अपशिष्ट निपटान दोनों ही दृष्टियों से अपेक्षाकृत कम समस्या उत्पन्न करते हैं। कृषि ऐसा ही एक क्षेत्र है।

परिसरण और परिमाण

भारत में 100 से भी अधिक प्रकार के पुनः उपयोग करने योग्य कृषि अपशिष्ट उपलब्ध हैं। उनमें से हरेक का विविध प्रकार से उपयोग किया जा सकता है और किया भी जा रहा है। अनुमान है कि हमारे देश में प्रतिवर्ष 600 मिलियन टन फसलों के अवशेष और कृषि उद्योगों के अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। सन् 1985-86 में सिर्फ कृषि अपशिष्टों या फसलों के अवशेषों की उपलब्धता को लगभग 324 मिलियन टन आंका गया था। इन अपशिष्टों में फसल के अवशेष जैसे धान, ज्वार, गेहूँ और चने के तृण, कपास की डंडियां अथवा तंतु, मक्का के डंठल और गुल्लियां (cobs), तौरिया (rape) और सरसों की टहनियां, ज्वार-बाजरा (millet) और जौ के तृण, गन्ने की सीठी (trash), खोपरे का कड़ा खील इत्यादि शामिल हैं। सन् 1985-86 में उत्पन्न इन पदार्थों की मात्राएं तालिका 17.3 में दी गई हैं।

कृषिजन्य अपशिष्ट का उपयोग

सामान्यतः कृषिजन्य अपशिष्टों का उपयोग विभिन्न प्रयोजनों के लिए किया जाता है। कुछ प्रमुख उपयोग हैं : ईंधन, पशु आहार, खेतों की खाद तथा निर्माण के काम में आने वाले पदार्थों इत्यादि। इनकी कुछ मात्रा कच्चे पदार्थ के रूप में उद्योगों में काम आती है।

हालांकि कुछ फसल अवशेषों का बहुत बड़ा हिस्सा परंपरागत उपयोगों में लिया जाता है परन्तु जिस तरीके से उनका प्रयोग किया जाता है उसमें सुधार की काफी गुंजाइश है। दूसरे शब्दों में परंपरागत उपयोगों की आवश्यकता की पूर्ति करने के बाद भी, कुछ फसल अवशेषों को अधिक अच्छे विकल्पी उपयोगों में लगाकर अपेक्षाकृत अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार के महत्वपूर्ण विकल्पों को आगे तालिका 17.4 में प्रस्तुत किया गया है।

चूंकि उद्योग द्वारा उत्पन्न वस्तुओं की मांग बढ़ रही है और नवीकरणीय तथा साथ ही अनवीकरणीय साधनों, जैसे वनों,की उपलब्धता पर दबाव बढ़ता जा रहा है। कृषिजन्य तथा कृषि उद्योग जन्य अपशिष्ट भी काफी बढ़ रहे हैं। उदाहरण के

तालिका 17.3 : भारत में फसलों के अवशेषों की उपलब्धता (1985-86)

फसलों के अवशेष	मात्रा (मि. टनों में)
धान तृण	147.35
ज्वार तृण	20.24
रागी तृण	3.20
बाजरा तृण	7.37
गेहूं तृण	68.92
चना तृण	5.68
कपास के तंतु	4.40
दालों के तृण	5.00
मूंगफली के तृण	11.37
मक्का के तृण	10.76
मक्का की गुल्लियां	2.07
तौरिया और सरसों की डंडियां	4.88
ज्वार-बाजरा तृण	1.56
जौ तृण	2.87
अरहर की डंडियां	3.21
जूट की डंडियां	4.24
ईख की सीठी	17.17
अरंडी की डंडियां	1.37
मेस्टा की डंडियां	0.73
खोपरे का कड़ा खोल	1.35
कुल (फसलों के अवशेष)	323.74 मिलियन टन
अन्य (कृषिजन्य अपशिष्ट)	275.25 मिलियन टन
कुल (कृषिजन्य अपशिष्ट)	600.00 मिलियन टन

लिए, पल्प और कागज़ उद्योग, जिनमें परंपरागत रूप में कच्चे पदार्थ के रूप में बांस और हार्डवुड का उपयोग हो रहा था, अब धीरे-धीरे गेहूं तृण, कपास के तंतु, धान के तृण और बगासी जैसे कृषिजन्य अवशेषों इत्यादि का उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग हो रहा है।

तालिका 17.4 : कृषिजन्य अपशिष्टों का वर्तमान में उपयोग और संभावित विकल्पी आर्थिक प्रयोग

फसलों के अवशेष	वर्तमान उपयोग	संभावित विकल्पी प्रयोग
धान तृण	अधिकांशतः जलाया जाता है, थोड़ी सी मात्रा पलवार तथा छत बनाने में प्रयोग की जाती है	कागज़, गत्ता, बायोगैस, बिजली उत्पादन
गेहूं तृण	ईंधन, पशु भोजन, निर्माण हेतु पदार्थ	गत्ता तथा बायोगैस
मक्का के डंठल	जानवरों का भोजन तथा ईंधन	कागज़ तथा कागज़ के बने बोर्ड, पर्टिकल बोर्ड
मक्का की गुल्लियां	जानवरों का भोजन और ईंधन	जाइलोस फरफयूरल, तेल तथा ऐसिड
सोरघम की डंडियां	जानवरों का भोजन तथा ईंधन	पल्प तथा कागज़, क्राफ्ट का कागज़, विस्कोस रेयन
ईख की सीठी और सूखी पत्तियां	चारा, ईंधन और खाद	पल्प और कागज़, प्लास्टिक तथा लिनोलियम फिलर
कपास की पत्तियां	कम्पोस्ट खाद	कार्बनिक अम्ल जैसे सिट्रिक तथा मैलीक अम्ल
नारियल का खोल	ईंधन तथा फैंसी चीजें	चारकोल सक्रियित कार्बन, फरफयूरल,
काजू फल (cashew apple)	अपशिष्ट	शीरा, मादक पेय, मिसरी, चटनी, अचार इत्यादि
मूंगफली के छिलके	अपशिष्ट	ईंधन

इस समय देश में बड़ी संख्या में छोटी-छोटी पल्प और कागज़ बनाने वाली मिलें हैं जो इन्हीं कृषिजन्य अवशेषों और रद्दी कागज़ों से कागज़ बना रही हैं। इसी प्रकार बगासी जिसे परंपरागत रूप में चीनी उद्योग में ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता था, अब पल्प और कागज़ बनाने के लिए अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है। वास्तव में, पल्प और कागज़ उद्योग के लिए वनों से कच्चे माल की सीमित उपलब्धता के कारण आजकल चीनी उद्योग को बगासी को ईंधन के रूप में प्रयोग न करके पेपर मिलों को बेचना आर्थिक दृष्टि से अधिक आकर्षक लगता है। अब देश में एक बड़ी समाकलित कागज मिल चालू हो चुकी है जो बगासी से बने अखबारी कागज़ बना रही है। भविष्य में ऐसी और भी कागज़ मिलों के स्थापित किए जाने की संभावना है। इसी प्रकार बहुत से उद्योगों में जहां पहले कभी कोयले का उपयोग हो रहा था अब धान की भूसी के संचय के लिए बड़ी जगह की आवश्यकता के बावजूद भी बचत की दृष्टि से ईंधन के रूप में धान की भूसी का प्रयोग हो रहा है। यदि निपुणता से बनाई गई भट्ठियों में धान की भूसी जलाई जाए तो यह बिजली उत्पादन में कोयले की अपेक्षा बहुत अधिक सस्ती पड़ती है (लगभग एक तिहाई खर्च आता है)। इसके बावजूद इसका ऊर्जा मान काफी होता है, लगभग 3200 से 3500 किलो कैलोरी प्रति किलोग्राम है। धान के तृण भी बड़ी मात्रा में उपलब्ध होते हैं। पंजाब में प्रति वर्ष लगभग 50 लाख टन धान का तृण उत्पन्न होता है। यह कृषि क्षेत्र की बिजली की अधिकांश आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है।

इसलिए यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषिजन्य अवशेष और कृषि उद्योग अपशिष्ट वास्तव में बेकार पदार्थ नहीं होते। इन सभी का किसी न किसी रूप में उपयोग है और इस रूप में ये संसाधन हैं जिन के परंपरागत उपयोग को बदलने की जरूरत है और इनकी संभाव्य उपयोगिता का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। इनके उत्पादन पर वस्तुतः कोई खर्च नहीं आता परंतु उत्पन्न हो जाने के बाद इनका उपयुक्त रूप में उपयोग न करना निश्चय ही खर्चीला होता है।

पर्यावरणीय आयाम

कृषि क्षेत्र का अपना पर्यावरणीय अनुषंगी प्रभाव भी होता है। आप पढ़ चुके हैं कि कृत्रिम उर्वरकों, पीड़कनाशियों, कवकनाशियों इत्यादि के बढ़ते हुए प्रयोग से पर्यावरण दूषित होता है। उदाहरण के लिए जिन उर्वरक और पीड़कनाशी का खेती में उपयोग नहीं हो पाता, वर्षा के दिनों में पानी के साथ बहकर ज्वारनदमुख, झीलों, नदी के पानी और यहां तक कि भूमिगत जल में भी पहुंच जाते हैं। नियत मात्रा से अधिक होने पर ये पानी, विशेषकर झीलों, ज्वारनदमुख, बांधों और तालाबों इत्यादि के पानी को प्रदूषित कर देते हैं।

इसी प्रकार कृषिजन्य अवशेष या कृषि उद्योग अपशिष्ट वायु और जल को प्रदूषित करते हैं। उदाहरण के लिए चीनी उद्योग से कृषि उद्योग संबंधी अपशिष्ट, जिसे शीरा (syrup) कहते हैं, जब शराब बनाने के कारखाने में प्रयोग किया जाता है तो इससे बहुत बड़े पैमाने पर जल का कार्बनिक प्रदूषण होता है। औद्योगिक बॉयलरों मे धान की भूसी को जलाने से पास-पड़ोस का वातावरण प्रदूषित हो जाता है क्योंकि इस के कण चिमनी से होकर वातावरण में फैल जाते हैं। यहां तक कि धान की भूसी की राख जिसमें बड़ी मात्रा में सिलिका मौजूद होता है — स्वयं पर्यावरण की एक समस्या है।

17.2.4 घरेलू अपशिष्ट

घरेलू क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले अपशिष्टों की मात्रा और गुणवत्ता अनेक कारणों पर निर्भर करती है, जैसे प्रति व्यक्ति उपलब्ध जल, खाने-पीने की आदतें, रहन-सहन का स्तर, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य, जीवन के तौर-तरीके और पास-पड़ोस में व्यवहारिक तथा औद्योगिक गतिविधियां। घरेलू क्षेत्र के अपशिष्ट अधिकतर ठोस और द्रव्य रूप में होते हैं। वायु में उत्सर्जन, ग्रामीण क्षेत्रों और शहरों में कमजोर वर्ग के लोगों की बस्तियों में ही होता है जहां खाना पकाने के लिए कोयले या लकड़ी का, ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं। परंपरागत रूप में माना जाता है कि घरेलू अपशिष्ट इस द्रव और ठोस अपशिष्टों के रूप में ही होते हैं तथापि भारतीय संदर्भ में इन्हें 4 भिन्न श्रेणियों में रखना चाहिए :

i) मानव द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट
ii) द्रव अपशिष्ट
iii) ठोस अपशिष्ट
iv) वायु-उत्सर्जन

मानव द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट

इस श्रेणी के अपशिष्ट हमारे तथा कई अन्य विकासशील देशों में ही हैं जहां खुले में मलमूत्र उत्सर्जित करना और हाथों से मैला उठाने का काम करना व्यापक रूप से होता है। इन देशों में इस प्रकार के अपशिष्टों का विसर्जन गंभीर और व्यापक रूप से पर्यावरण के अपकर्षण में सहायक है। जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं कुल आबादी के एक चौथाई भाग के मलमूत्र का भी सही प्रकार से विसर्जन नहीं होता है।

द्रव रूप में पाए जाने वाले अपशिष्ट

यह गंदा पानी आवासीय घरों, शौचालयों, रसोईघरों और औद्योगिक प्रतिष्ठानों के शौचालयों, कैंटीनों तथा स्नानगृहों से निकलता है। इस प्रकार के गंदे पानी को सीवेज अथवा मलजल कहते हैं। इसके निपटान का सबसे आम तरीका मलजल को बिना किसी उपचार के धरती पर, पड़ोस के नाले में, नदियों तथा पानी के अन्य स्थानों में विसर्जित कर देना है।

उदाहरण के लिए पहले दर्जे के शहरों (जनसंख्या एक लाख से अधिक) में मलजल एकत्रित करने और विसर्जित करने से पहले उपचारित करने के लिए अच्छे इंतजाम की आशा की जा सकती है। वहां की कुल जनसंख्या के 60 प्रतिशत लोगों को ही इस तंत्र की सुविधा प्राप्त है। महानगरों में भी उत्पन्न कुल मलजल का लगभग 50% ही सीवर तंत्र के जरिए एकत्रित किया जाता है। शेष मलजल सतह पर ही छोड़ दिया जाता है जिससे अस्वास्थ्यकर दशाएं उत्पन्न हो जाती हैं, बदबू आने लगती है और पर्यावरण का अपकर्षण हो जाता है।

प्रथम श्रेणी के शहरों में भी सीवर द्वारा एकत्रित औसतन केवल 20 प्रतिशत मलजल ही निपटान से पहले किसी प्रकार से उपचारित किया जाता है। यहां यह बता दें कि जो उपचार किया जाता है वह अक्सर अपर्याप्त होता है और सीवेज उपचार संयंत्रों से विसर्जित किए जाने वाले मैले पानी की गुणवत्ता शायद ही कभी निपटान मानकों को प्राप्त कर पाती है। तथ्य तो यह है कि अशोधित मलजल, जो हमारे शहरों और कस्बों से सीधे नदियों में पहुंचता है, हमारी नदियों को प्रदूषित करने वाले प्रमुख कारणों में से एक है। भारत में शायद ही कोई ऐसी नदी हो जो प्रदूषित न होती हो।

दूसरी श्रेणी के शहरों (आबादी 0.5 से 1.0 लाख के बीच) में, सीवेज और सफाई की स्थिति बहुत ही निकृष्ट है। इन शहरों और छोटे कस्बों में उत्पन्न कुल मैले पानी का 5 प्रतिशत तक ही या तो एकत्रित या उपचारित किया जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्यतः नल का पानी उपलब्ध नहीं होता है, इसलिए दूषित जल और उसका अनुवर्ती निपटान कम ही होता है। फिर भी जल निकास न होने के कारण गांवों में सड़ान और कीचड़वाली गलियां प्रायः देखने में आती हैं।

ठोस अपशिष्ट

इनमें घरों में उत्पन्न ठोस अपशिष्ट शामिल हैं, जैसे रसोईघर का कचरा, कागज, प्लास्टिक, जंग खाई धातुएं इत्यादि। इनके अतिरिक्त ऐसे ठोस अपशिष्ट पदार्थ व्यापारिक प्रतिष्ठानों और सड़क और गली में झाड़ू लगाने पर भी इकट्ठे होते हैं। इन अपशिष्टों को अकसर शहरी कचरा (city garbage) कहते हैं और इनको आम तौर पर इकट्ठा करके भराव के लिए नियत स्थलों पर डाला जाता है। इन भरावों में सफाई का ध्यान रखना चाहिए परंतु वैज्ञानिक विधियों के न अपनाने के कारण, असंगत अपशिष्टों को बिना सोचे समझे अव्यवस्थित तरीके से फेंक दिया जाता है जिससे न केवल सड़ान भरी बदबू फैल जाती है बल्कि निक्षालितक (leachates) के जमीन में प्रवेश कर जाने के कारण भौम-जल भी प्रदूषित हो जाता है।

उत्पन्न कचरे की मात्रा सामान्यतः समाज की संपन्नता के अनुपातिक होती है। उदाहरण के लिए, नई दिल्ली म्यूनिसिपल कमेटी के अधीन क्षेत्र में उत्पन्न प्रति व्यक्ति अपशिष्ट 800 से 1000 ग्राम प्रति दिन होता है जब कि दिल्ली नगर निगम क्षेत्र में यह 300 ग्राम प्रति दिन ही होता है। तथापि औसतन भारत के शहरों में उत्पन्न प्रति व्यक्ति ठोस अपशिष्ट 350 से 400 ग्राम प्रति दिन होता है। तालिका 17.5 में हमारे शहरों में से कुछ में उत्पन्न ठोस अपशिष्टों के परिमाण को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 17.5 : कुछेक चुने हुए शहरों में ठोस-अपशिष्टों के उत्पादन और इकट्ठा करके हटाने की स्थिति

शहर	समष्टि (1981)	ठोस अपशिष्ट (टन प्रतिदिन)		
		उत्पन्न	इकट्ठा किया गया	दक्षता प्रतिशत
बंबई	8,227,332	3200	3100	96.0
मद्रास	4,276,635	1819	1637	90.0
कानपुर	1,688,424	2142	1500	70.0
कोयम्बटूर	917,155	175	113	64.6
इंदौर	827,071	120	100	83.3
मेरठ	538,461	120	70	58.3
जामनगर	317,037	149	89	60.0
आनंद	83,815	34	17	50.0
खोपोली	32,108	6	3	50.0
देहगाम	24,817	9	4	44.4

वायु उत्सर्जन

आस-पास की वायु में घरेलू स्रोतों से विसर्जित होने वाले पदार्थों में निम्नलिखित शामिल हैं :

क) कोयले और लकड़ी की अंगीठियों से निकलने वाला धुआं और कालिख

ख) थोड़ी मात्रा में क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFCs) गैस जो निर्गंधीकारक रसायन छिड़कने वाले टिन के डिब्बों और प्रशीतन उपकरणों से निकलती है।

शहरों में धुएं और कालिख का विसर्जन केवल उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित होता है जहां गरीब और समाज के कमजोर वर्गों के लोग रहते हैं, क्योंकि उन्हें धुआं रहित ईंधन उपलब्ध नहीं होते, जैसे खाना पकाने की गैस अथवा मिट्टी का

तेल। ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू कामों के लिए प्रमुखतः लकड़ी और कोयले का ही प्रयोग होता है। एक अनुमान के अनुसार देश की कुल लकड़ी की खपत का 85 प्रतिशत भाग घरेलू क्षेत्र में खाना पकाने के काम में आता है। इसी प्रकार कोयला खानों के निकटवर्ती क्षेत्रों के लोग अक्सर खाना पकाने के लिए कोयले का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली में घरेलू क्षेत्र द्वारा 10 से 12 प्रतिशत वायु प्रदूषण होता है, शेष प्रदूषण परिवहन और औद्योगिक क्षेत्रों द्वारा होता है परंतु कलकत्ते में घरेलू स्रोतों द्वारा किया जाने वाला वायु प्रदूषण अपेक्षाकृत काफी अधिक होता है, जिसका मुख्य कारण खाना पकाने के लिए कोयले का व्यापक प्रयोग है।

क्लोरोफ्लोरोकार्बन के उत्सर्जन की समस्या सामान्यतः शहरों तक ही सीमित है और यह भी समाज के धनी वर्गों तक। किन्तु यह विचारणीय है कि यह पर्यावरण में थोड़ा ही जाता है परंतु इससे ओजोन परत को होने वाली क्षति बहुत अधिक होती है।

धुएं, कालिख और क्लोरोफ्लोरोकार्बन आदि उत्सर्जनों का मोचन व्यक्तिगत रूप में उपयोगकर्ता को और सामान्य रूप में समाज को, पर्यावरण के अपकर्षण द्वारा नुकसान पहुंचाता है। उदाहरण के लिए परंपरागत चूल्हों में, लकड़ी अथवा कोयले का ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है और इनकी कुल तापीय क्षमता केवल 15 से 20 प्रतिशत के बीच होती है। अतः इस प्रकार के चूल्हों को प्रयोग करने से व्यक्तिगत रूप में उपभोक्ता को अधिक खर्च करना पड़ता है क्योंकि इनमें ईंधन की खपत उन्नत किस्म के चूल्हों की तुलना में 35 प्रतिशत या उससे अधिक होती है। यदि देश के सभी घरों में उन्नत किस्म के चूल्हों का इस्तेमाल होने लगे तो लकड़ी या कोयले की खपत घट कर आधी रह जाएगी। कल्पना कीजिए कि यदि इस प्रकार के चूल्हों का इस्तेमाल होने लगे तो निर्वनीकरण की समस्या सुलझ जाएगी और परिणामतः अपनी मृदा के बह जाने को रोकने में मदद मिलेगी।

बोध प्रश्न 3

क) उन फसल अवशेषों के नाम लिखिए जिन्हें नीचे दिए गए संभाव्य विकल्पी उपयोग में लिया जा सकता है।

1) कागज .....

2) कागज का बना बोर्ड .....

3) गत्ता .....

4) कार्बनिक अम्ल .....

5) मादक द्रव, शर्बत, कैंडी इत्यादि .....

ख) तालिका 17.5 की सहायता से बंबई, कानपुर, खोपोली और देहगाम में प्रति व्यक्ति उत्पन्न किए गए ठोस अपशिष्ट का परिकलन कीजिए। इनमें से कौन सा शहर अधिक मात्रा में ठोस अपशिष्ट उत्पन्न करता है और इससे किस बात का संकेत मिलता है?

.....

.....

.....

.....

.....

17.3 प्रदूषण नियंत्रण का आर्थिक महत्व

प्रदूषण पर नियंत्रण करने में खर्च होता है परंतु यदि इसे नियंत्रित न किया जाए तो भी खर्चा बढ़ता है। यदि प्रदूषण बेरोकटोक होने दिया जाए तो यह लोगों के स्वास्थ्य, कृषि, पुरातात्विक स्मारकों तथा अन्य भवनों, पर्यटन, पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं पर बुरा प्रभाव डालता है। इन बुरे प्रभावों को प्रत्यक्ष निश्चित आर्थिक रूप में आंकलित किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रदूषण के नियंत्रण के लिए आवश्यक निदेशों का भी हिसाब लगाया जा सकता है। इसीलिए यदि बृहत रूप में अथवा राष्ट्रीय स्तर पर लागत-लाभ विश्लेषण किया जाए तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि प्रदूषण को नियंत्रित करने से इसके लिए जरूरी निदेशों की तुलना में लाभ कहीं अधिक होते हैं।

औसतन औद्योगिकृत राष्ट्र अपने सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी एन पी) का 0.5 प्रतिशत तक प्रदूषण नियंत्रक उपायों पर खर्च करते हैं। जापान और जर्मनी जैसे देश, प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए अपने जी एन पी का लगभग 5 प्रतिशत तक खर्च करते हैं।

17.3.1 आर्थिक क्षति

आइए पहले हम यह देखें कि कुछेक औद्योगिकृत राष्ट्रों को प्रदूषण से कितनी आर्थिक क्षति होती है जिसे तालिका 17.6 में दिखाया गया है।

तालिका 17.6 : कुछेक औद्योगिकृत देशों में प्रदूषण के कारण होने वाली आर्थिक क्षति

मद	प्रति व्यक्ति लागत (अमरीकी डालरों में)			
	अमरीका	कनाडा	इंग्लैंड	इटली
स्वास्थ्य	60.0	2.5	35.0	2.5
कृषि	0.5	0.5	10.0	0.5
सेवाएं/पर्यटन	20.0	10.0	10.0	5.0
पदार्थ	24.0	49.0	14.0	5.0
कुल	104.5	62.0	69.0	13.0
जी एन पी के प्रतिशत के रूप में	2%	1%	3%	1%

अमरीकी डालर करीबन 25 रुपए के बराबर है।

जर्मनी में आज प्राकृतिक पर्यावरण को पहुँचने वाली वार्षिक क्षति जी एन पी के 6% और OECD देशों में जी एन पी के 3% के लगभग है। आगे दी गई तालिका 17.7 में जर्मनी में, पर्यावरण के प्रदूषण से होने वाली क्षति का विस्तृत विवरण दिया गया है।

तालिका 17.7 : जर्मनी में पर्यावरण को क्षति

माध्यम	क्षति (बिलियन DM* प्रति वर्ष)
वायु-प्रदूषण (स्वास्थ्य संकट; पदार्थों को क्षति; जानवरों को हानि; वनस्पति, कृषि, वन इत्यादि का अपकर्षण)।	48.0
जल-प्रदूषण (समुद्र, नदियों, झीलों, भौमजल इत्यादि को क्षति और परिणामस्वरूप मत्स्य पालन और पर्यटन इत्यादि को हानि)।	17.6
मृदा-प्रदूषण (न्यूक्लिय अवपात, खतरनाक अपशिष्टों का डालना, बायोटोप और स्पीशीज़ की हानि)।	5.2
शोर-प्रदूषण (उत्पादकता में कमी, संपत्ति के मूल्य में कमी, आवासीय सुविधाओं की हानि इत्यादि)।	32.7
कुल	103.5 बिलियन DM

1DM (Deutche Mark) — 12 रु.

उपर्युक्त तालिका देने का उद्देश्य यह है कि आपको बताया जा सके कि प्रदूषित पर्यावरण से किस प्रकार की क्षतियाँ हो सकती हैं। विकासशील देशों से ऐसे आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

17.3.2 प्रदूषण के आर्थिक पहलू

विकासशील देशों की स्थितियों पर आधारित प्रदूषण संबंधित लागत-लाभ विश्लेषण प्रस्तुत करना संभव नहीं है चूंकि विकासशील देशों से संबंधित आंकड़े वस्तुतः उपलब्ध नहीं है। तथापि प्रदूषण को नियंत्रित करने के आर्थिक लाभों को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से आगे दी गई तालिका 17.8 में अमरीका के लागत-लाभ आंकड़ों को प्रदर्शित किया गया है। आप देखेंगे कि तालिका में दिए गए आँकड़े वर्ष 1972 के हैं और इन्हें विशेष रूप से इस अनुमान के साथ चुना गया है कि उस समय अमरीका के औद्योगिकीकरण का स्तर संभवतः कुछेक विकासशील देशों की वर्तमान स्थिति के समान था।

तालिका 17.8 : अमरीका (1972) में प्रदूषण-नियंत्रण का आर्थिक महत्व (सभी आंकड़े बिलियन अमरीकी डॉलरों में)

	जल	वायु	कुल
प्रदूषण से होने वाली क्षति	12.8	16.1	28.9
सफाई से सकल बचत	11.5	10.7	22.2
सफाई पर लागत	6.3	3.9	10.2
निवल बचत	5.2	6.8	12.0

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रदूषण नियंत्रण खर्च की तुलना में अर्थव्यवस्था को उससे दुगना लाभ होता है। विशुद्धतः आर्थिक दृष्टि से भी यह स्पष्ट होता है कि सापेक्षतः वायु प्रदूषण का नियंत्रण जल-प्रदूषण नियंत्रण से अधिक लागत-प्रभावी होता है। हो सकता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से वायु-प्रदूषण नियंत्रण के लिए किए गए प्रयत्न विश्व भर में जल-प्रदूषण नियंत्रण संबंधी गतिविधियों के काफी बाद में शुरू किए गए हों और इसी विलंब के परिणामस्वरूप वायु-प्रदूषण से अधिक क्षति हुई है।

कारण कोई भी हों बुद्धिमानी सदैव इसी में है कि प्रदूषण को नियंत्रित किया जाए क्योंकि यह आर्थिक रूप से समझदारीपूर्ण है। सन् 1985 में, अमरीका में प्रदूषण नियंत्रण पर राष्ट्रीय व्यय 70 बिलियन अमरीकी डॉलर था और जर्मनी में 1984 में पर्यावरणीय संरक्षण पर किया गया कुल व्यय लगभग 23 बिलियन DM (deutche mark) था।

अधिकांश देशों में पर्यावरण को क्षति जी एन पी का लगभग 2 से 3 प्रतिशत होती है, इसलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि प्रदूषण नियंत्रण पर जी एन पी का 1 से लेकर 1.5 प्रतिशत के बीच खर्च किया जाए। भारत के संदर्भ में जी एन पी के 1 प्रतिशत के मायने हैं 3000 करोड़ से भी अधिक रुपए। अनुमानतः इस समय भारत सालाना 600 करोड़ रुपयों से अधिक प्रदूषण नियंत्रण प्रयत्नों पर खर्च नहीं कर रहा है।

अकसर यह दलील दी जाती है कि भारत जैसे गरीब व साधनों की कमी वाले देश, प्रदूषण नियंत्रण पर अधिक खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते खास तौर से जब हमारे सामने अन्य विचारणीय अनिवार्य प्राथमिकताएँ हों। ऊपर दी गई तालिका में प्रदर्शित लागत-लाभ विश्लेषण से, यह तथ्य स्थापित होता है कि आर्थिक दृष्टि से भारत जैसे देश के लिए भी प्रदूषण नियंत्रण लाभकर साबित होगा। विकासशील देशों में यदि प्रदूषण नियंत्रण के लिए साधनों की उपलब्धता ही महत्वपूर्ण मुद्दा है तो आइए हम उन पद्धतियों की ओर ध्यान दें जिनके द्वारा हमारे संसाधनों की आवश्यकता को कम किया जा सकता है। राष्ट्रीय प्रदूषण नियंत्रण प्रयत्नों के लिए निम्न दो बहुत ही महत्वपूर्ण संपूरक पद्धतियाँ हो सकती हैं।

क) अपशिष्टों का न्यूनतमीकरण और
ख) अपशिष्टों का उपयोग

आइए हम प्रत्येक पर विस्तार से चर्चा करें।

17.3.3 अपशिष्ट-न्यूनतमीकरण

आप जानते हैं कि परिवहन, घरेलू, कृषि, औद्योगिक अथवा अन्य किसी क्षेत्र से उत्पन्न होने वाले अपशिष्ट चाहे वे खतरनाक हों या नहीं सभी शक्तिशाली प्रदूषक होते हैं। यदि अपशिष्टों की उत्पत्ति को न्यूनतम किया जा सके तो बचे अपशिष्टों के प्रभावों को नियंत्रित करने के लिए जो निवेश हमें प्रदूषण नियंत्रण पर करने पड़ते हैं वह बहुत हद तक कम किए जा सकते हैं। प्रदूषण नियंत्रण पद्धति पर खर्च कम करने के लिए अपशिष्टों को कम करना ही प्रदूषण रोकने का एक व्यावहारिक और बुद्धिमतापूर्ण रास्ता है।

यहां हमें अपशिष्टों की मात्रा घटा कर प्रदूषण का निवारण और परम्परागत प्रदूषण नियंत्रण के बीच का अंतर समझाना जरूरी है। यद्यपि निवारण और नियंत्रण दोनों, प्रयत्नों का ही उद्देश्य पर्यावरण की सुरक्षा है फिर भी दोनों के तरीके बिल्कुल भिन्न हैं। नियंत्रण या तो पर्यावरण को हुई क्षति को आगे बढ़ने से रोकने या उस क्षति को पूरा करने के लिए किया जाता है जो पहले हो चुकी होती है। यानि जो कुछ हो चुका है उससे संबंधित यह अभिक्रिया है। दूसरी ओर निवारण उस घटना के प्रति अनुक्रिया है जो घट सकती है और इस प्रकार इसका लक्ष्य संभावित क्षति का रोकना है।

क्षेत्र चाहे कोई भी हो, अपशिष्ट अयोग्यता, लापरवाही, घटिया किस्म और बुरी आदतों के कारण होते हैं। अपशिष्टों की मात्रा को घटाना सदैव संभव होता है चाहे वह जल हो, या ऊर्जा या पदार्थ। अपशिष्ट में कटौती करने के प्रयत्नों में प्रदूषण नियंत्रण योजना के साथ-साथ इस प्रणाली के बाद में संचालन और रख-रखाव पर किए जाने वाले मूल खर्च को कम करने में कितनी मदद मिलती है, इसे समझने के लिए आइए औद्योगिक क्षेत्र के दो केस अध्ययनों की जांच करें जो अपशिष्टों के न्यूनतमीकरण द्वारा प्रदूषण के निवारण को प्रदर्शित करते हैं।

केस-I

मिल्कशेक का केस

यह केस लघु खाद्य प्रक्रमण यूनिट से संबंधित है जो
क) आइसक्रीम बनाने
ख) पनीर बनाने
ग) सब्जी और मांस प्रक्रमण का कार्य करती है।

ये वस्तुएं वर्ष भर, एक पाली आधार पर, प्रतिदिन उत्पन्न की जाती हैं।

उत्पन्न प्रदूषक — चूंकि यूनिट खाद्य वस्तुओं का प्रक्रमण करती है इसलिए उत्पन्न प्रदूषकों को प्राथमिक तौर पर दो प्रदूषण प्राचलों के जरिए प्रस्तुत किया जा सकता है, जैविक ऑक्सीजन आवश्यकता (BOD) और कुल निलंबित ठोस (TSS — Total Suspended Matter)। कुल BOD भार 92 कि.ग्रा. प्रतिदिन और कुल TSS भार 890 मि.ग्रा. प्रति यूनिट था।

प्रदूषकों के उत्पन्न होने के स्रोत — उपकरणों का खगारन और धोने तथा फर्श धोने वाला जल प्रदूषित हो जाता है जो कि जल प्रदूषण का मुख्य अथवा बड़ा स्रोत पाया गया।

आइसक्रीम अनुभाग में आइसक्रीम उत्पादन के हर बैच (batch) के बाद पांच बड़े बर्तनों को साफ करना पड़ता है। पद्धति यह थी कि बर्तन को 400 से 500 लीटर पानी से भर दिया जाता था और उसे हिलाया जाता था ताकि बर्तन की दीवारों से चिपकी हुई आइसक्रीम अथवा उसके बनाने वाले पदार्थ, पानी से साफ हो जाएं। और इस प्रकार धोने के लिए प्रयोग में लिए गए पानी को नाली में विसर्जित कर दिया जाता था।

पनीर बनाने वाले अनुभाग से निकलने वाले अपशिष्ट पानी, मुख्यतः छेने का पानी और उपकरणों को धोने के काम में लिया गया पानी होता है। इसी प्रकार खाद्य प्रक्रमण अनुभाग में अपशिष्ट जल का उत्पादन, मुख्यतः बर्तनों के धोने और फर्श धोने, अधपकी सब्जियों और फलों के छिलकों, अधपके भोजन इत्यादि से होता है।

प्रदूषण निवारण उपाय — अपशिष्ट जल और प्रदूषित अपशिष्टों की मात्रा को कम करने के लिए निम्नलिखित उपायों की खोज की गई है :

- आइसक्रीम अनुभाग में पहली बार में बर्तनों को यथासंभव कम पानी से धोया गया और इस जल को किसी अन्य काम के लिए इक्टठा कर लिया गया। अगली धुलाई केवल 100 से 120 लीटर पानी से की गई और इस धोवन को गंदे पानी की नाली में विसर्जित कर दिया गया।
- सब्जी और फल अनुभाग से निकले अपशिष्ट पानी में TSS की मात्रा को कम करने के लिए जालियां लगाई गई।
- पनीर अनुभाग से निकले छेने के पानी को विसर्जित करने की बजाय अलग एकत्रित कर लिया गया और इसे पशु आहार में प्रयोग में लेने के लिए उपोत्पाद के रूप में बेचा गया।

परिणाम

- अपशिष्ट जल में BOD के रूप में कुल प्रदूषण भार 92 कि.ग्रा. प्रतिदिन से घट कर 34 कि.ग्रा. प्रतिदिन हो गया अर्थात 63 प्रतिशत की कमी हुई और TSS 890 मि.ग्रा. प्रति लीटर से घटकर 400 मि.ग्रा. प्रति लीटर हो गया अर्थात 54 प्रतिशत कम हो गया।
- अंततः अपशिष्ट जल उपचार संयंत्र पर पूंजी निवेश लागत 6.5 लाख रुपए से घट कर 3.7 लाख रुपए अर्थात् 43 प्रतिशत कम हो गई।

तालिका 17.9 : किसी खाद्य प्रक्रमण उद्योग में प्रदूषण-निवारण

प्राचल	संयंत्र में कोई उपाय किए बिना	संयंत्र में उपाय करके	% कमी
आइसक्रीम अनुभाग			
बहाव क्यूबिक मीटर प्रति घंटा	1.81	1.80 **	00.60
COD मि.ग्रा. प्रति लीटर	5861	2474	57.78
BOD मि.ग्रा. प्रति लीटर	3170	1220	61.51
TSS मि.ग्रा. प्रति लीटर	1590	612	61.50
BOD भार, कि.ग्रा. प्रति दिन	40.20	15.40	61.70
फल और सब्जी अनुभाग			
बहाव क्यूबिक मीटर प्रति घंटा	3.30	3.30	शून्य
COD मि.ग्रा. प्रति लीटर	1829	1645	10.00
BOD मि.ग्रा. प्रति लीटर	869	800	7.90
TSS मि.ग्रा. प्रति लीटर	506	294	41.93
BOD भार, कि.ग्रा. प्रति दिन	20	18.50	7.50
छेना अनुभाग			
BOD भार, कि.ग्रा. प्रति दिन	27.2	शून्य	100
मिलाजुला बहिःस्राव			
BOD भार, कि.ग्रा. प्रति दिन	92	34	63
TSS मि.ग्रा. प्रति लीटर	890	406	54

स्रोत : राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद, 1990

- चूंकि यूनिट के पास जगह की कमी थी इसलिए प्रदूषण को बढ़ने से रोकने के लिए जिस नियंत्रण तंत्र को लगाने का इरादा था और जिसके लिए 45 वर्ग मीटर की आवश्यकता थी, नहीं लगाया जा सका परन्तु निवारक उपायों को कार्यान्वित करने के बाद नियंत्रण तंत्र को सिर्फ 25 वर्ग मीटर की आवश्यकता थी। इस प्रकार जमीन की आवश्यकता में 45 प्रतिशत कमी हो गई।
- आइसक्रीम के बर्तनों की पहली बार धुलाई करने के काम में लिए गए पानी को अलग करलें तो यह पानी और आइसक्रीम का मिश्रण बन जाता है जिसका स्वाद मिल्क शेक की तरह का होता है। अब इसका प्रयोग फैक्ट्री में काम करने वाले और आस-पास के स्कूल के बच्चे करते हैं। फलस्वरूप प्राप्त प्रदूषण परिमापों (pollution parameters) को आगे तालिका में सारबद्ध किया गया है :

टिप्पणियां

- यह केस केवल इस तथ्य की पुष्टि करता है कि अपशिष्ट को कम करना न केवल संभव है बल्कि इसका अत्यधिक आर्थिक महत्व भी है।
- इससे यह भी पता चलता है कि अपशिष्ट को खत्म करना और अपशिष्ट को कम करना दोनों ही संभव है।
- हर अपशिष्ट गलत स्थान पर रखा गया संसाधन है, यह बात तब सामने आती है जब अपशिष्टों का विकल्पी प्रयोग किया जाता है।
- इससे यह भी प्रदर्शित होता है कि स्थान की कमी जो कि अधिकांश लघु उद्योगों के लिए एक सामान्य समस्या है, के बावजूद भी प्रदूषण का नियंत्रण संभव है।
- यह केस अपशिष्टों को कम करने की कम से कम दो विधियों को बताता है। पहली विधि में संयंत्र चालन पद्धतियों में सुधार करना है और दूसरी विधि में अपशिष्टों का संयंत्र के भीतर और साथ ही अन्यत्र भी फिर से प्रयोग किया जाना शामिल है।

केस-II

ऊर्जा की बचत का केस

यह घरेलू काम में प्रयोग किए जाने वाले चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने वाली लघु यूनिट का केस है। इस यूनिट में एक अधोवात वाही भट्टी (down draft kiln) होती है जिसमें चीनी मिट्टी के बर्तन बैचबार (batchwise) पकाये जाते हैं। एक बैच के चक्र को पूरा होने में 42 घंटे का समय लगता है जिसमें ईंधन के रूप में कोयले का प्रयोग किया जाता है। चित्र 17.2 को देखिए भट्टी में दहन कक्ष से निकलने वाली गरम गैसें ऊपर की ओर जाकर छत से टकराती हैं और फिर नीचे की ओर हरे रंग के कच्चे चीनी के बर्तनों से होकर भट्टी के फर्श में बने ईंधन द्वार (Port hole) से होते हुए एक भूमिगत नली में चली जाती है। नली से यह गैसें चिमनी द्वारा बाहर निकलती हैं। प्रेरित वातवाही पंखे (induced draft fans) को लगा देने से आवश्यक हवा का बहाव बना रहता है।

चिंताजनक प्रदूषक

जैसा कि सामान्यतः अधोवात वाही भट्टी में होता है, कोयले के दहन से गहरा धुआं निकलता है। जब भट्टी के दहन-कक्षों में कोयला झोंका जाता है तो धुएं के निष्कासन की समस्या और भी तीव्र हो जाती है, खासतौर से ज्वालन चक्र (firing cycle) के परवर्ती भाग में। चूंकि निवेशित पदार्थ कोयला होता है इसलिए प्रदूषक चिमनी से बाहर निकलने वाली राख या कालिख होती है जिसको मापने से ज्ञात हुआ है कि बाहर निकलने वाली गैस में इन निलंबित कणिकीय (suspended particle) पदार्थों की मात्रा 3000 से 5000 मि.ग्रा./Nm^3 तक बढ़ जाती है, जब निष्कासन अधिकतम होता है।

प्रदूषकों का स्रोत

स्पष्ट ही है कि प्रदूषण का स्रोत कोयला है जिसे चित्र में दिखाए गए भट्टी के आठ दहन कक्षों में जलाया जाता है।

विश्लेषण और प्रेक्षण

भट्टी के संचालन की प्रक्रिया का विस्तार से और गहन रूप में अध्ययन करने से निम्नलिखित बातों का पता चला है :

क) कोयले को आग लगाते ही उत्सर्जन बहुत अधिक मात्रा में होता है और यह लगभग 10-15 मिनट तक चलता रहता है।

ख) इसके बाद काले धुएं की तीव्रता कम होने लगती है और स्टैक साफ हो जाता है और यह स्थिति तब तक रहती है जब तक और कोयला न झोंका जाए।

ग) दहन चक्र के पूर्ववर्ती भाग की तुलना में परवर्ती भाग में उत्सर्जन अधिक होते हैं। इन परिस्थितियों में भट्टी पूरे जोर से चलती है जो कि दहन कक्ष से उठती हुई लपटों से दिखाई पड़ती है।

दृष्य प्रेक्षणों की पुष्टि के लिए विभिन्न प्राचल (parameter) जैसे वात प्रवाह, धूम गैसों के बहाव की दर, धूम गैसों में CO_2 इत्यादि की मात्रा को नापा गया। दहन चक्र के विभिन्न समयों पर धूम गैस के बहाव की दरों को चित्र 17.3 के वक्र (क) द्वारा दर्शाया गया है। दहन कक्ष के निर्गम द्वार पर अधिकतम वात-प्रवाह केवल 7 mm W.G. था।

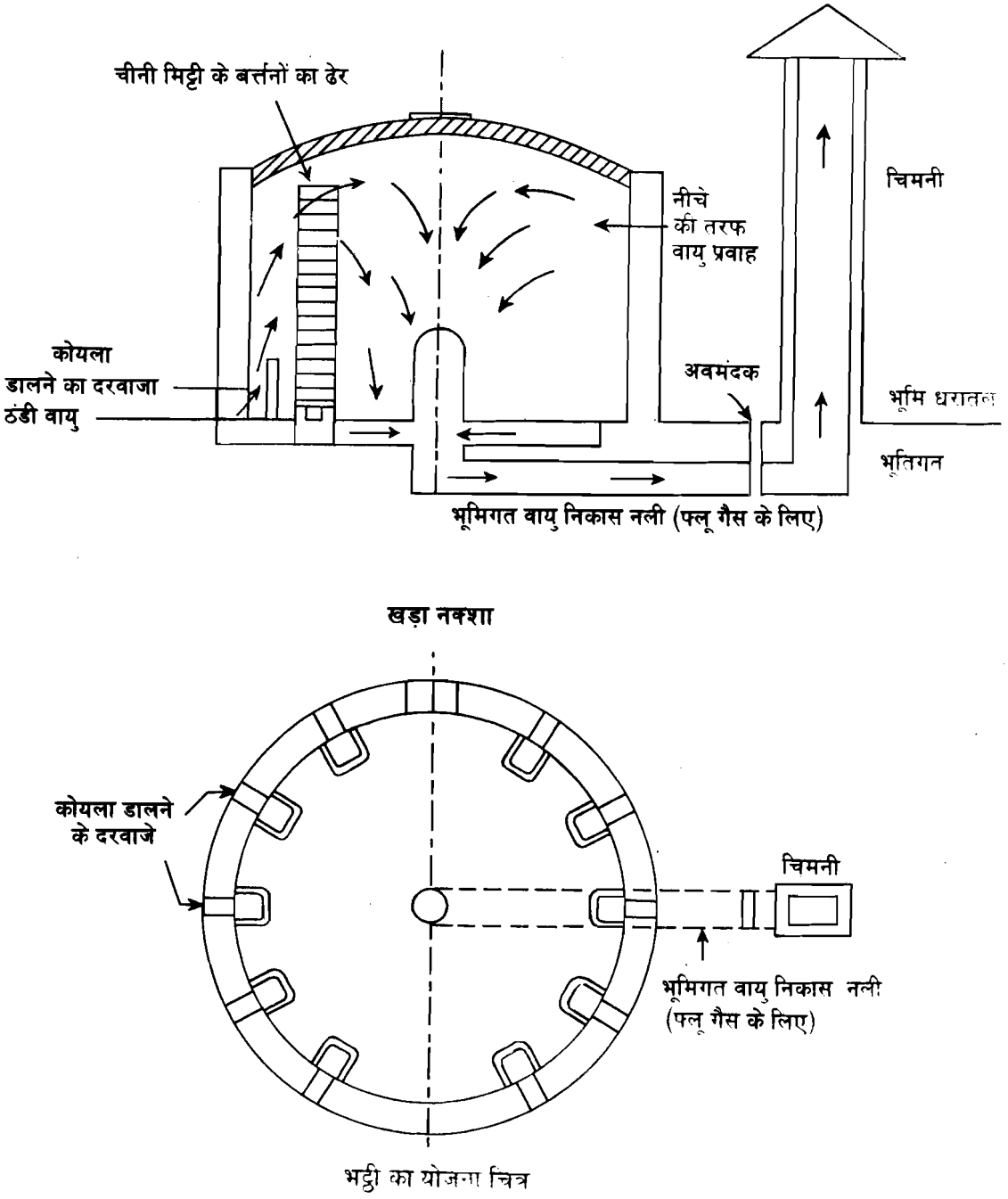

चित्र 17.2 : अधोवातवाही भट्टी

यह पता चला है कि वायु की सप्लाई दो बार कोयला झोंकने के बीच की स्थिति में या संपूर्ण उत्पादन चक्र के दौरान जरूरत के अनुरूप नहीं थी। दहन के आधारभूत सिद्धांत से भी यह पता चला है कि :

क) शुरू में जब कोयला जलाया जाता है, वाष्पशील पदार्थ निष्कासित होते हैं जिनको जलाने के लिए काफी वायु की जरूरत होती है। कार्बन मॉनेक्साइड की प्रतिशतता अधिक होने से यह सिद्ध होता है कि इस अवधि में भट्टी में वायु की कमी रही है। अतः पहले दस मिनट में वाष्पशील पदार्थों की उपस्थिति के कारण वायु की आवश्यकता अधिक थी परंतु वह उपलब्ध नहीं थी।

ख) चक्र के परवर्ती भाग में भट्टी में उच्च ताप बना रहता है और कोयला झोंका जाता है तो उसके लिए और अधिक वायु की आवश्यकता पड़ती है। इस अवधि में भट्टी से निकलने वाले धूम में पाई जाने वाली गैसों का ताप भी बढ़ जाता है इसलिए धूम-गैसों का आयतन भी बढ़ जाता है। परंतु प्रेरक वातवाही पंखा, संहति-बहाव के रूप में धूम-गैसों के नियत आयतन को बाहर निकल सकता है। इसलिए प्रेरक वातवाही पंखे द्वारा धूम गैसों का

वास्तविक विस्थापन तापक्रम बढ़ जाने से कम हो जाता है। इस प्रकार दहन के लिए उपलब्ध वायु की मात्रा, चक्र के पहले आधे भाग के दौरान दहन के लिए उपलब्ध वायु की मात्रा से भी कम हो जाती है।

ग) इन परिस्थितियों में भट्टी भी जोर से जल रही थी, ज्वलन बक्सों में से लपटें बाहर निकल रही थीं।

चित्र 17.3 के वक्र (ख) और (ग) क्रमशः दहन की आरंभिक अवस्थाओं में और सामान्य दहन काल के दौरान अर्थात दो क्रमागत ज्वालनों के बीच वायु की आवश्यकता को बताते हैं।

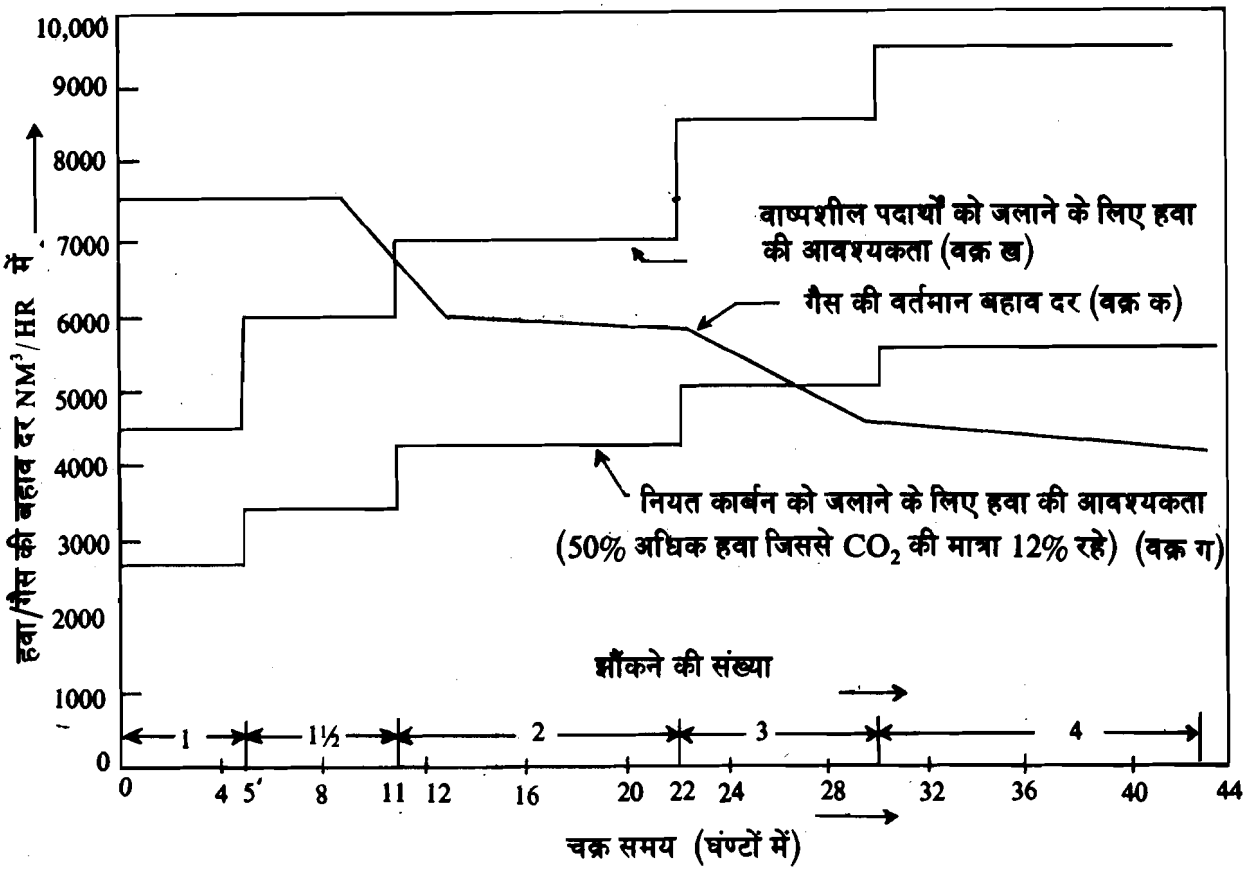

चित्र 17.3 : दहन-वायु की अर्हताएं और संपूर्ण चक्र में धूम गैस की बहाव दर

अतः इस विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि घने काले धुएं के उत्सर्जन और धूम-गैस में निलंबित कणिकीय पदार्थों की उच्च सांद्रता का कारण अनुपयुक्त वातप्रवाह और दहन वायु की अपर्याप्त सप्लाई है।

प्रदूषण निवारक उपाय (Pollution prevention measures)

- दो क्रमिक कोयला ज्वालनों के बीच का अंतराल 17 मिनट से घटाकर 11 मिनट कर दिया गया और साथ ही प्रत्येक ज्वालन के लिए कोयले की मात्रा आधी कर दी गई।
- डैम्पर का समायोजन करके वातप्रवाह तथा वायु की सप्लाई को दहन के अनुसार नियमित कर दिया गया।
- यूनिट को सलाह दी गई कि वह धूम गैसों में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 12 प्रतिशत के लगभग बनाए रखे।

परिणाम

- धूम गैसों में निलंबित कणिकीय पदार्थ की सांद्रता पहले के 3000 से 5000 मि.ग्रा. प्रति Nm^3 से घटकर 1100 मि.ग्रा. रह गई। यह बात चित्र 17.4 से स्पष्ट होती है जिसमें सुधार के पहले और बाद में धूमन के स्वरूप (smoking pattern) में परिवर्तन को दिखाया गया है।
- प्रति टन ज्वालित चीनी मिट्टी के बर्तनों के लिए कोयले की विशिष्ट खपत 28 प्रतिशत कम हो गई।
- परिणामस्वरूप प्रति बैच में कोयले की खपत और खराब ज्वालित बर्तनों के दर में कमी होने से 40,000 रुपए की बचत हुई।
- बनाए गए चीनी मिट्टी के बर्तनों की गुणवत्ता में सुधार हुआ।

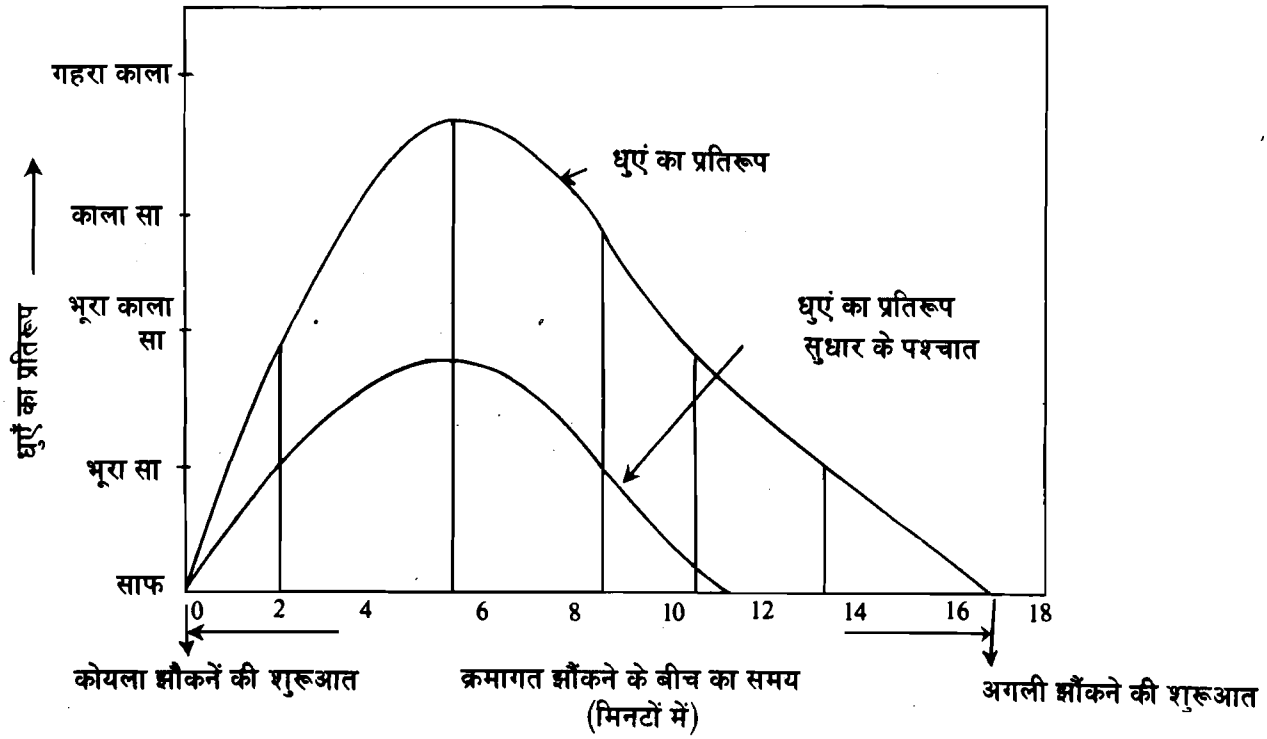

चित्र 17.4 : दो क्रमिक कोयला ज्वालनों के बीच धुएं का पैटर्न

टिप्पणियां

- इस केस से यह प्रदर्शित होता है कि वायु प्रदूषण को रोका जा सकता है।
- इससे यह भी सिद्ध होता है कि अपशिष्ट को कम करने के प्रयत्नों को सफल बनाने के लिए कुछ आधारभूत उपकरणों की व्यवस्था करना जरूरी है।

ऊपर दिए गए दो कैसों की व्याख्या से स्पष्ट रूप में प्रदर्शित होता है कि अपशिष्ट न्यूनीकरण प्रयत्नों से प्रदूषण नियंत्रण उपकरणों की व्यवस्था करने के लिए जितने निवेश की आवश्यकता होती है उसमें लगभग 40 प्रतिशत की कमी लाई जा सकती है साथ ही इनसे उत्पादकता और लाभ भी बढ़ता है। जिन उद्योगों में आम तौर पर बड़ी मात्रा में प्रदूषण नियंत्रण संबंधी निवेश किए जाते हैं वे अपनी यूनिट के अपशिष्टों को कम करने के लिए निम्नलिखित छह पद्धतियों में से किसी एक अथवा अधिक को अपना सकते हैं :

i) कच्चे माल और अन्य निवेशों में आवश्यक परिवर्तन,

ii) उत्पादन प्रक्रियाओं, उपकरणों, चलाने के परिमापों और स्वयं प्रौद्योगिकी में परिवर्तन,

iii) उत्पादन दक्षता और प्रविधियों में सुधार,

iv) संयंत्र के भीतर ही अपशिष्टों को प्राप्त करके उनका पुनः चक्रण और पुनः प्रयोग,

v) उत्पाद को बनाने के फार्मूले में परिवर्तन,

vi) खरीददार ढूंढना और अपशिष्टों को बेचना।

17.3.4 अपशिष्टों का उपयोग

यह स्पष्ट रूप में जान लेना चाहिए कि अपशिष्टों को कम करने के प्रयत्न चाहे वे कितने ही बड़े पैमाने पर किए जाए, सारे अपशिष्टों को खत्म नहीं कर सकते। बचे हुए शेष अपशिष्टों, जिनसे पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं को फेंकने के बजाए विकल्पी प्रयोग का पता लगाने का प्रयत्न करना श्रेयस्कर है।

अपशिष्ट उपयोग प्रयत्नों में निम्नलिखित शामिल हैं :

क) अनुसंधान और विकास
ख) अपशिष्ट-विनिमय सूचना पद्धति
ग) बाज़ार-सहयोग
घ) कानूनी, वित्तीय और संस्थागत हस्तक्षेप

भारत सरकार ने अपशिष्ट उपयोग को बढ़ाने से संबंधित मुद्दों की जटिलता को देखते हुए राष्ट्रीय अपशिष्ट प्रबंध परिषद का गठन किया है जो सरकार को इस समस्या के विभिन्न तथ्यों और उनके निराकरण के बारे में सलाह देती है।

हमें यह जान लेना चाहिए कि बहुत सारे अपशिष्टों को विकल्पी प्रयोग में लिया जा सकता है बशर्ते कि ऐसा करना प्रौद्योगिकीय दृष्टि से संभव और आर्थिक दृष्टि से उपयोगी हो। उदाहरण के लिए विद्युत केंद्रों से निकलने वाली फ्लाई ऐश ईंट बनाने के काम में ली जा सकती है और वात्या भट्टी का स्लैग सीमेंट बनाने में, फास्फोजिप्सम नामक अपशिष्ट — जो फास्फोरिक अम्ल, अमोनियम फास्फेट और हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल बनाने वाले संयंत्रों से उत्पन्न होता है, को जिप्सम बोर्ड, फाइबर बोर्ड, छत की टाइलें इत्यादि बनाने के काम में प्रयोग किया जा सकता है। यद्यपि अपशिष्टों के ये सभी प्रयोग प्रौद्योगिकी दृष्टि से संभव हैं फिर भी आर्थिक आधारों पर इन्हें व्यापक रूप से अपनाया नहीं गया है। यह वह स्थिति है जहाँ सरकार का आवश्यक हस्तक्षेप जरूरी है।

बोध प्रश्न 4

प्रदूषण निवारण और प्रदूषण नियंत्रण में क्या अंतर है? इनमें से कौन-सा अधिक उपयोगी है?

.....

.....

.....

.....

.....

17.4 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि :

- पर्यावरण से प्राप्त पदार्थों अथवा ऊर्जा का सीधे उपयोग या प्रौद्योगिकी द्वारा संशोधित करने के बाद सदैव अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं।
- अपशिष्टों के विसर्जन के तरीके और जटिलता में वृद्धि के कारण पर्यावरणीय विक्षोभ बढ़ रहे हैं। साधनों के अधिक मात्रा में निवर्तन से अधिक अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं।
- अपशिष्टों पर सदैव खर्च करना पड़ता है। विनिर्माण प्रक्रिया में ये अपशिष्ट उत्पादों की कीमत पर ही उत्पन्न होते हैं। अपशिष्टों के बढ़ने से उनके निपटान पर अधिक खर्च करना पड़ता है।
- भारत में प्रति वर्ष बड़े और मध्यम दर्जे के उद्योगों द्वारा स्लैग, फ्लाई ऐश, फास्फोजिप्सम इत्यादि के रूप में लाखों टन अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। लघु उद्योगों द्वारा उत्पन्न अपशिष्टों का अभी तक हिसाब नहीं लगाया गया है परंतु ऐसा अनुमान है कि कुल मिलाकर इन उद्योगों द्वारा उत्पन्न अपशिष्टों की मात्रा भी प्रमुख उद्योगों द्वारा उत्पन्न अपशिष्टों के बराबर होगी। भारत में अधिकांश अपशिष्टों को बिना सोचे समझे फेंक दिया जाता है।
- कृषि द्वारा उत्पन्न बेकार पदार्थ वास्तव में अपशिष्ट नहीं होते। क्योंकि उनके उत्पादन पर कोई खर्च नहीं आता और साथ ही हम इनको उपयोगी कार्यों के लिए में प्रयोग में ले सकते हैं। फसल अवशेष और कृषि संबंधित उद्योगों से 6000 लाख टन से भी अधिक अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। इन्हें ईंधन, पशुओं के खाद्य पदार्थ, फार्म उर्वरक निर्माण कार्य अथवा कुछ औद्योगिक कार्यों में प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ तो पल्प बनाने, कागज बनाने, गत्ता बनाने, बायोगैस, विस्कोस और मादक द्रव्य आदि बनाने के काम में लिया जा सकता है और आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।
- परंपरागत चूल्हों की तापीय क्षमता केवल 12 से 18 प्रतिशत है और ये प्रदूषण भी फैलाते हैं। उन्नत किस्म के चूल्हों को काम में लेकर इनकी क्षमता को 35 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। इससे कुल मिलाकर कोयले और लकड़ी की खपत 50 प्रतिशत तक कम की जा सकती है। इससे देश को ऊर्जा की बड़ी मात्रा में बचत होगी और निर्वनीकरण तथा वायु प्रदूषण को कम करके पर्यावरण की सुरक्षा की जा सकती है।
- प्रदूषण के कारण कुछेक प्रमुख औद्योगिक देशों में हुई आर्थिक वृद्धि उनकी जी एन पी का एक से तीन प्रतिशत तक होती है। इस प्रकार के आंकड़े विकासशील देशों, जिनमें भारत भी शामिल है, से प्राप्त नहीं हैं। प्रदूषण नियंत्रण उपायों के लागत-लाभ विश्लेषण से पता चलता है कि विशुद्धतः मौद्रिक दृष्टि से हमारे लाभ, लगाई गई रकम की तुलना में दुगने हो जाते हैं। तथापि हमारे देश के सीमित साधनों को देखते हुए यह प्रस्ताव रखा जा सकता है कि प्रदूषण नियंत्रण पर खर्च करने की बजाए कम से कम अपशिष्ट उत्पादन करना अधिक श्रेयस्कर होता है। इसकी पुष्टि औद्योगिक क्षेत्र के केसों के अध्ययन में होती है जिनसे यह स्पष्ट होता है। अपशिष्ट को कम करने से बहुत अधिक आर्थिक लाभ होता है और प्रदूषण भी कम हो जाता है।
- बहुत सारे अपशिष्ट ऐसे हैं जिन्हें फिर से प्रयोग में लेना प्रौद्योगिकीय दृष्टि से संभव है। तथापि आर्थिक दृष्टि से ये सकता है कि यह प्रक्रिया उपयोगी न हो इसलिए यह आवश्यक है कि सरकार इस संबंध में उपयुक्त उपाय करे।

17.5 अंत में कुछ प्रश्न

1) उदाहरण देकर समझाइए कि संसाधनों का निकास करने के पश्चात उनके स्वरूप, स्थान, और समय में परिवर्तनों का अपशिष्ट विसर्जन के साथ मेल न बिठाने से जैवमंडल में कैसे असंतुलन पैदा हो जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में औद्योगिक अपशिष्टों का परिमाण क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) औद्योगिक अपशिष्टों की आर्थिक दृष्टि से क्या उपयोगिता है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) निम्नलिखित फसल अवशेषों, अवशिष्टों में कौन-सा हमारे देश में सबसे अधिक है?

क) ज्वार तृण ख) गेहूं तृण ग) धान तृण घ) बगासी

5) भारत में कृषि अवशिष्टों का परिमाण क्या है? उनके परंपरागत उपयोग क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

17.6 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) i) पर्यावरण, प्रौद्योगिकी
   ii) संसाधन, निवर्तन
   iii) स्वरूप, स्थान और विसर्जन
   iv) भूपर्पटी, वायुमंडल
   v) संतुलन, संसाधन, विसर्जन

   ख) i) आबादी में वृद्धि
   ii) और अधिक संसाधनों के निवर्तन की आवश्यकता
   iii) लोगों की बढ़ती हुई जरूरतों और मांगों के कारण औद्योगिक विधि में बढ़ोत्तरी (सन् 1950 से औद्योगिक संवृद्धि 7 गुना बढ़ी है और खनिज निष्कर्षण तीन गुना बढ़ा है)।

iv) अपशिष्टों की मात्रा और उनके विसर्जन की जटिलता में और अधिक वृद्धि हुई है।

2) क) अधिक अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं क्योंकि :
   i) अनुचित ढंग से उद्योग को चलाया जाता है और उसकी देखरेख पूरी तरह नहीं रखी जाती।
   ii) पुरानी प्रौद्योगिकी के कारण संसाधनों का अकुशल ढंग से प्रयोग किया जाता है।

   ख) अपशिष्टों पर सदैव खर्च करना होता है। उदाहरण के लिए औद्योगिक विनिर्माण प्रक्रिया के अकुशल ढंग से चलने के कारण अपशिष्ट बढ़ते हैं। इसका सीधा अर्थ यह है कि अपशिष्ट उत्पादों की कीमत पर ही उत्पन्न होते हैं तथापि इस प्रकार उत्पन्न बड़ी मात्रा में अपशिष्ट को पर्यावरण में सही रूप में विसर्जित करने में और अधिक खर्च करना पड़ता है यानि इनका उपचार करना होता है, इन्हें इक्ट्ठा करना और भराव की जमीन तक ले जाना पड़ता है। इन सभी कार्यों में खर्च होता है।

3) क) i) धान तृण, मक्का के डंठल, सोर्घम
   ii) टहनियां, गन्ने की सीठी, बगासी
   iii) धान और गेहूं के तृण
   iv) धान और गेहूं के तृण
   v) मक्का की गुल्लियां, कपास की पत्तियां
   vi) काजू का फल (cashew apple)

   ख) बंबई $\frac{3200 \times 1000}{8,227,332}$ = .389 कि.ग्रा. = 389 ग्रा. प्रति व्यक्ति, प्रति दिन

   कानपुर $\frac{2142 \times 1000}{1,688,424}$ = 1.269 कि.ग्रा. = 1269 ग्राम प्रति व्यक्ति, प्रति दिन

   खोपोली $\frac{6 \times 1000}{32,108}$ = 0.187 कि.ग्रा. = 187 ग्राम प्रति व्यक्ति, प्रति दिन

   देहगाम $\frac{9 \times 1000}{24,817}$ = 0.363 कि.ग्रा. = 363 ग्राम प्रति व्यक्ति, प्रति दिन

   इनमें से कानपुर में प्रतिव्यक्ति ठोस अपशिष्ट सबसे अधिक उत्पन्न होते हैं।

4) **प्रदूषण निवारण :** उन उपायों को कहते हैं जो मानव की कुछ गतिविधियों द्वारा संभावित क्षतियों से पर्यावरण की सुरक्षा के लिए किए जाते हैं।

   प्रदूषण नियंत्रण : वह तरीका है जो पर्यावरण को हुई क्षति को और बढ़ने न देने और उसको सुधारने के लिए किया जाता है।

   प्रदूषण निवारण अपशिष्टों को कम करके और अपशिष्टों को फिर से काम में लेकर किया जाता है। यह प्रदूषण नियंत्रण से अधिक लाभप्रद होता है, क्योंकि प्रदूषण नियंत्रण के लिए अपशिष्ट उपचार संयंत्र लगाने होते हैं जिनके चलाने और रख-रखाव पर काफी खर्च होता है साथ ही इससे वातावरण को कोई हानि नहीं होती।

अंतिम प्रश्नों के उत्तर

1) पर्यावरण का संतुलन इसलिए बिगड़ जाता है कि संसाधनों के स्वरूप, उपलब्ध होने के स्थान और निवर्तन काल ये तीनों कारक अपशिष्टों के निपटान के कारण बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए कच्चा पेट्रोलियम बंबई हाई में भूपर्पटी के नीचे निष्कर्षित किया जाता है। उसको शुद्ध करने पर पेट्रोल और पेट्रोलियम उत्पाद प्राप्त होते हैं जिन्हें सारे भारत में भेजा जाता है। पेट्रोल का इस्तेमाल परिवहन गाड़ियों में होता है और जलने पर यह कार्बन डाइऑक्साइड और जल में बदल जाता है। इसके अलावा बड़ी मात्रा में कार्बनमोनोक्साइड का धुआं निकलता है जो पर्यावरण में फैल जाता है। कार्बन डाइऑक्साइड की अधिकता से भूमंडल का तापक्रम बढ़ता है इस प्रकार पृथ्वी की पर्पटी से भिन्न स्वरूप, स्थान और समय पर निष्कर्षित पदार्थ, वायुमंडल में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न समय और भिन्न स्वरूपों में फेंक दिया जाता है। ऐसे परिवर्तनों से पर्यावरणीय विक्षोभ पैदा हो जाते हैं।

2) भारत के प्रमुख उद्योगों द्वारा प्रति वर्ष लगभग 750 लाख टन अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं जो स्लैग, फ्लाई ऐश और फ़ॉस्फ़ोजिप्सम इत्यादि के रूप में होते हैं। कई उद्योगों और 25 लाख लघु उद्योग इकाइयों के अपशिष्टों को अभी तक इन आंकड़ों में शामिल नहीं किया गया है। आशा की जाती है कि यह भी कई लाख टन होगा। इसका अधिकांश भाग बिना सोचे समझे पर्यावरण में फेंक दिया जाता है।

3) अपशिष्ट पैदा होने का कारण यह है कि कोई भी विनिर्माण यूनिट 100 प्रतिशत दक्षता के साथ उत्पाद तैयार नहीं करती। संयंत्र के संचालन, रख-रखाव अथवा कुल मिलाकर प्रबंध में अकुशलता के कारण और अपशिष्ट उत्पन्न

होते हैं इसलिए उद्योगों में होने वाली हानियां, कम उत्पादन और उसके साथ ही अपशिष्ट के निपटान पर अधिक खर्च के कारण होती है। खतरनाक अथवा भारी धातुओं वाले अपशिष्टों का निपटान से पहले उनके तापीय, जैविकीय तथा रासायनिक उपचार के लिए संयंत्रों की आवश्यकता होती है। अंत में अवशेष अपशिष्ट को भूमि भराव स्थल तक ले जाने के लिए वाहन की आवश्यकता भी पड़ती है। इस प्रकार उत्पादन के समय से लेकर निपटान तक उन पर खर्च ही होता है। अधिकांश उद्योगों में उनकी टर्न ओवर (sales turnover) का लगभग 2 से 5 प्रतिशत उनके अपशिष्टों की व्यवस्था और निपटान पर खर्च होता है। कुछ मामलों में तो यह खर्च कुल आय का 12 से 15 प्रतिशत तक पहुंच जाता है।

4) धान तृण।

5) भारत में प्रतिवर्ष लगभग 6000 लाख टन अपशिष्ट फसल अवशेष व कृषि संबंधी उद्योगों द्वारा उत्पन्न होते हैं। मुख्य फसल अवशेष धान, ज्वार, गेहूं और चना के तृण, कपास की डंडियां व मक्का के तिनके हैं। मुख्यतः इनका उपयोग ईंधन, जानवरों के खाद्य, खाद निर्माण तथा उद्योगों में किया जाता है।

पारिभाषिक शब्दावली

अर्बुद : अनियमित रूप में उत्पन्न असाधारण कोशिकाओं की संहति।

अतितनाव : उच्च रक्तदाब।

आघात : धमनियों अथवा मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाला अवरोध, जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क क्षतिग्रस्त हो जाता है अथवा मृत्यु हो जाती है।

आटोइम्यून रोग : वह रोग जिसमें प्रतिपिंड (ऐंटीबॉडी) व्यक्ति के स्वयं के रासायनिक पदार्थों और कोशिकाओं के साथ अभिक्रिया करने लगते हैं।

आपंक : पानी की उपचार प्रक्रियाओं द्वारा निकाला गया निलंबित पदार्थ जो गाढ़े पेस्ट के रूप में इक्ट्ठा किया जाता है।

आवेशी विकार : निराशा की अनुभूति, क्रोध, भय, चिंता अथवा उदासी जो उस समय उत्पन्न होती है जब आवेशी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती।

आसक्ति अथवा व्यसन : ड्रग अथवा शराब पर शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक निर्भरता।

आंत्रशोथ अथवा एन्टेराइटिस : आंत की सूजन।

एलर्जिन :कोशिका की परिवर्तित अनुक्रिया उत्पन्न करने योग्य पदार्थ (आमतौर पर प्रोटीन) जिनसे एलर्जी का आविर्भाव होता है।

एन्सेफ़ैलाइटिस : मस्तिष्क का बहुत अधिक सूज जाना।

ऐंकाइलोजिंग स्पॉडिलाइटिस : मेरूदंड का आर्थ्राइटिस ज़ैसा एक अपहासी रोग।

ऐप्लास्टिक ऐनीमिया : क्लोरोऐम्फेनिकल उपचार का अनुषंगी प्रभाव, जिसमें लाल रूधिर कोशिकाएं बहुत ही कम अथवा बिना हीमोग्लोबिन के उत्पन्न होती हैं।

एपिडेमिक : रोग जो सामान्यतः समष्टि में नहीं होता, व्यक्ति से व्यक्ति में तेज़ी से फैलकर बड़ी संख्या में लोगों को संक्रमित करता है क्योंकि संक्रमण से किसी प्रकार की प्राकृतिक प्रतिरक्षी क्षमता उपलब्ध नहीं होती।

ऐफ्लेटॉक्सिन : *एस्पर्जिलस फ्लेवस* द्वारा उत्पन्न आविष जो संदूषित अनाज के जरिए अनाजों, दूध अथवा मांस के उत्पादों द्वारा मनुष्यों में पहुंच सकते हैं और अर्बुद (tumor) प्रेरित कर सकते हैं।

ऐसिडोसिस : शरीर में अधिक मात्रा में अम्ल एकत्रित हो जाने से उत्पन्न स्थिति।

ओ.इ.सी.डी. देश (OECD) : आर्थिक निगम तथा विकास संगठन। अधिकांश यूरोपीय देश इसके सदस्य हैं।

कलायखंज : अशक्त बना देने वाला रोग, जिसकी विशेषता है टांगों की पेशियों का पक्षाघात।

कार्डियोवैस्कुलर रोग : हृदय और रूधिर वाहिकाओं का रोग।

कॉलीफार्म जीवाणु : ग्राम वर्ण अग्राही स्पोर न बनाने वाले बेसिलस, जो आम तौर पर मनुष्यों और जंतुओं की आंतों में पाए जाते हैं। कॉलिफॉर्म जीवाणु-किण्वन द्वारा लैक्टोज़ को अम्ल और गैस में बदल देते हैं।

कूपिकाएं : फेफड़ों में पाए जाने वाले वात-कोष, जो ऑक्सीज़न और कार्बन डाइऑक्साइड का विनिमय करते हैं।

कैलोरी मान : दिए गए पदार्थ के पूर्ण दहन द्वारा उत्पन्न प्रति यूनिट संहति उष्मा।

गिआर्डियता : आंतों में होने वाला प्रोटोज़ोआ द्वारा रोग, जिसका सामान्यतः संचरण जल द्वारा होता है।

जलशोफ़ अथवा ड्रापसी : वह रोग जिसमें जलीय तरल गुहाओं अथवा उत्तक में इक्ट्ठा हो जाता है।

जन्मजात : खास प्रकार के शारीरिक अथवा मानसिक लक्षण जो जन्म के समय अथवा जन्म से पूर्व विद्यमान होते हैं।

जीनोम : आनुवंशिक पदार्थ का पूरा सैट अर्थात् जीनों का पूरा सैट।

जैव रासायनिक ऑक्सीजन मांग : सूक्ष्मजीवियों द्वारा वांछित ऑक्सीज़न की वह मात्रा जो दिए हुए जल के आयतन में कार्बनिक अपशिष्टों को अपघटित करने के लिए जरूरी होती है।

डाउन सिन्ड्रोम : गुणसूत्री असामान्यतया से उत्पन्न रोग जिसमें मानसिक अवमंदता आ जाती है, मंगोलिज्म भी कहते हैं।

डिस्पेप्सिया : अपच अथवा पेट खराब होना।

तंतुमयता : सुधार प्रक्रियाओं में तंतुमय ऊतक का निर्माण।

तंत्रिका आविष : आविष जो परपोषी के तंत्रिका तंत्र में सक्रिय होता है।

तनाव : मस्तिष्क और शरीर के संतुलन में चरम अथवा लंबी अवधि तक विघटन, जिसके कारण विभिन्न प्रकार की शारीरिक बीमारियां शुरू हो सकती हैं।

तनावजन्य (Stressor) : वह दशा जो तनाव की विशेषता के रूप में विशिष्ट मनोवैज्ञानिक तथा शरीर क्रियात्मक अनुक्रियाएँ उत्पन्न करती है।

दुर्दम अर्बुद : अर्बुद जिसमें कोशिकाएँ तेज़ी से वृद्धि करती हैं और संपूर्ण शरीर में फैल सकती हैं।

नाइट्रोसैमीन : कैंसर उत्पन्न करने वाला पदार्थ, जो कुछ खाद्य पदार्थों में मिलता है और उसका संश्लेषण शरीर में ही हो सकता है।

निकोटीन : तंबाकू में मिलने वाला एक रासायनिक तत्व जो स्पंदन को तेज करता है, स्फूर्ति बढ़ाता है और अन्य कई प्रकार के मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न करता है।

निवर्तन : कष्टकर और कभी-कभी मृत्यु का खतरा उत्पन्न करने वाली अभिक्रियाएँ जो उस समय होती हैं, जब कोई मनुष्य शारीरिक रूप में व्यसनधारी औषधि लेना बंद कर देता है।

पराश्रव्य तरंगे (Ultrasonic Waves) : उच्च तीव्रता वाली ध्वनि तरंगें, जो श्रवण परिसर से परे होती हैं और उनका उपयोग सूक्ष्मजीवी को नष्ट करने या पदार्थ को साफ करने के लिए किया जाता है।

पायसीकारक : ऐसा पदार्थ, जो पायस बना सकता है।

पीलिया : रूधिर में बिलिरूबिन की मात्रा बढ़ जाने की दशा और पित्त के वर्णकों का त्वचा और म्यूकस झिल्लियों में जमा हो जाना। इसके लक्षण हैं पीली त्वचा और आँखों में सफेदी आना।

प्रतिऑक्सीकारक : ऑक्सीकरण को अवरूद्ध करके पदार्थ की दशा को बिगाड़ने से रोकने वाला यौगिक।

प्रतिरक्षी अनुक्रियाएँ : प्रतिजनों (antigen) के प्रति अनुक्रिया में एक प्रकार के लिम्फाणुओं द्वारा प्रतिरक्षियों का उत्पादन।

प्रेरित वात प्रवाह : तंत्र से उत्पन्न गैसों को बाहर निकालना जिससे कि वायु तेजी से भीतर प्रवेश कर सके।

पेप्टिक व्रण : अमाशय का व्रण।

फीटल ऐल्कोहॅल जन्मजात दोष : गर्भ के दौरान ऐल्कोहॅल के अंतर्ग्रहण के कारण बच्चे में उत्पन्न जन्मजात ऐल्कोहॅल पर निर्भरता का दोष।

फील पाँव : ऊतकों का, विशेषतः टांगों और स्क्रोटम का सूज जाना और विरूपण जो आम तौर पर विशेष प्रकार के जीवाणुओं के संक्रमण द्वारा होता है।

फेनिलकीटोनमेह : वंशानुगत उपापचय में गड़बड़, जो उपयुक्त पोषण द्वारा सुधारी जा सकती है।

बंध : निम्न-स्तरीय क्षेत्र में एकत्रित जल।

बिलिरूबिन : मनुष्यों और मांसाहारियों के पित्त में पाया जाने वाला प्रमुख वर्णक।

बुंदिकाएं : श्वास नली से निकले म्यूकस और थूक के वायुवाहित कण जिनमें रोगोत्पादक जीव होते हैं।

ब्रोंकाइटिस : शोथ के परिणामस्वरूप फेफड़ों की श्वासनिकाओं में सूजन; अक्सर इसके साथ लगातार खांसी हो जाती है।

बाटुलिज्म : अपर्याप्त रूप विसंक्रमित डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों में *क्लोस्ट्रीडियम बोट्रलिनम* नामक जीवाणु द्वारा उत्पन्न आविष के कारण बहुधा घातक विषाक्तता।

बैच प्रचालन : विनिर्माण यूनिट के प्रचालन का तरीका, जिसमें यूनिट को अंतरालों पर रोककर उत्पाद को निकालना पड़ता है और फिर से प्रचालन शुरू करना पड़ता है।

भस्मीकरण : वस्तु को सीधे आग की लपेटों में रखने की प्रक्रिया।

मधुमेह : रोग जिसमें रूधिर में शर्करा की मात्रा में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। आमतौर पर इन्सुलिन की कमी के कारण यह रोग होता है।

मनःकायिक रोग : बीमारी जो मुख्य रूप से मानसिक अवस्थाओं और वृत्तियों द्वारा उत्पन्न होती है, कार्यकी को बदल देती है और रोग उत्पन्न करती है।

मनस्तांप : वह दशा जिसमें गंभीर रूप में असामान्य विचार, मनोदशा अथवा व्यवहार और वस्तुस्थिति से संपर्क का

मनो विदलता अथवा स्किजोफ्रीनिया : एस खास किस्म की मनोविक्षिप्ति, जिसमें अत्यधिक असाधारण किस्म के विचार और व्यवहार देखे जाते हैं।

मनोसक्रिय औषधियाँ : वह पदार्थ जो प्राथमिकतः भावदशा, अवगम तथा अन्य मस्तिष्कीय कार्यों को बदल देता है।

मस्तिष्कावरण ज्वर : सामान्य शब्द जो मस्तिष्क और मेरूरज्जु के आवरण परत में संक्रमण के लिए प्रयुक्त होता है।

रासायनिक ऑक्सीजन की मांग : नदियों, झीलों और तालाबों के इकाई आयतन के पानी में उपस्थित रसायनों का ऑक्सीकरण करने के लिए आवश्यक ऑक्सीज़न की मात्रा।

रूमेटी ज्वर : स्ट्रैप्टीकोकसी रोग में एक उपद्रवी रूप जिसमें प्रतिजन और प्रतिपिंड के बीच प्रतिक्रिया के कारण बुखार के अलावा हृदय कपाटों को क्षति पहुंचती है।

रूमेटॉइड संधिशोथ अथवा आर्थ्रइटिस : ऑटोइम्यून, रोग जिसकी विशेषता है जोड़ों में रोगक्षय सम्मिश्र निर्माण।

रोग : अच्छे स्वास्थ्य की सामान्य दशा में परिवर्तन।

ट्रैकोमा अथवा रोहे : जीवाणु द्वारा उत्पन्न आँख का रोग जिसमें कोर्निया पर बारीक पीले रंग के नोड्यूल (nodules) पैदा हो जाते हैं और जिससे वह खुरदरी हो जाती है।

लिम्फोमा : लिम्फोसाइटों का अनियमित (कैंसर) प्चुरोद्भवन।

ल्यूकीमिया : श्वेत रूधिर कोशिकाओं का असाधारण रूप में उत्पादन तथा लिम्फ ग्रंथियों में परिवर्तन। इसे रूधिर का कैंसर भी कहते हैं।

विक्षिप्ति : व्यवहार तथा भावना-संबंधी दशा जो असामान्य मानी जाती है, परंतु इतनी गंभीर नहीं होती कि सामान्य रूप से कार्य करने की अधिकांश प्रक्रियाओं को रोक सके।

सजर्मता : सड़न के उत्पाद द्वारा आविषीकरण, एक प्रकार के संक्रमण के परिणामस्वरूप उत्पन्न गंभीर आविषी दशा।

समग्रतात्मक स्वास्थ्य : स्वास्थ्य संबंधी दृष्टिकोण, जिसमें शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा पर्यावरणी कारकों के परस्पर संबंध को स्वास्थ्य प्राप्ति में महत्वपूर्ण माना जाता है।

संलक्षण (Syndrome) : लक्षणों का एक वर्ग।

सिकल सैल एनीमिया अथवा दात्र कोशिका अरक्तता : रूधिर का एक आनुवंशिक रोग जिसमें हीमोग्लोबिन का रूप बदल जाता है और जिसकी वजह से लाल रूधिर कोशिकाएं दात्री का रूप ले लेती हैं।

सिरोसिस : यकृत का खतरनाक किस्म का रोग, जो ऐल्कोहॉल के दुरूपयोग द्वारा उत्पन्न होता है।

सुदम्य अर्बुद : अर्बुद जिसमें वृद्धिशील कोशिकाएँ उद्भव स्थिति पर ही स्थानीकृत रहती हैं।

स्टेप्टोकोकल संक्रमण : इस प्रकार के जीवाणु संक्रमण से गला खराब हो जाता है, स्कार्लेट ज्वर हो जाता है जिसमें गला खराब होने के साथ-साथ त्वचा पर पित्तिकाएँ निकल जाती हैं तथा अन्य रोग हो जाते हैं।

स्टेफिलोकोकल संक्रमण : *स्टैफिलोकोकल ओरियस* नामक जीवाणु द्वारा भोजन ज़हरीला होना।

शिंगैलोसिस (Shingellosis) : शिगैला जीवाणुओं का संक्रमण जिससे पेचिश हो जाती है और जिसके साथ तीव्र उदरीय मरोड़ों की तरंगें और बार-बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खून से लैस म्यूकस विष्ठा निकलती है।

शोथ : चोट के प्रति अविशिष्ट सुरक्षात्मक प्रतिक्रिया, जो आमतौर से रूधिर के इकट्ठा हो जाने के फलस्वरूप लाल वर्ण के रूप में रूधिर की ऊष्मा के कारण शरीर के गर्म हो जाने, द्रव्य के इकट्ठा हो जाने के फलस्वरूप सूजन आ जाने और स्थानीय तंत्रिकाओं को आघात पहुँचने के कारण दर्द होने के रूप में प्रदर्शित होती है।

शोफ : तरल के इकट्ठा हो जाने से उत्पन्न ऊतकों की सूजन।

हृदय गति का रुकना : हृदय धमनियों का अवरूद्ध हो जाना, जिससे हृदय को रूधिर और ऑक्सीजन नहीं मिल पाती।

हृदय धमनियाँ : रूधिर वाहिकाएँ, जो ऑक्सीकृत रूधिर को स्वयं हृदय को सप्लाई करती हैं।

हिपैटाइटिस : खतरनाक यकृत शोथ रोग, जो अनेक वाइरसों द्वारा होता है।

हीमोफीलिया : आनुवंशिक रोग; नितांत रूप में पुरुषों में ही होता है, जिसमें रूधिर का धक्का नहीं बन पाता है और परिणामस्वरूप चोट लग जाने पर व्यक्ति का रक्त अधिक मात्रा में निकल जाता है।

इकाई 18 पर्यावरण के प्रबंधन की चुनौतियाँ

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
18.2 अपर्याप्त डाटा बेस एवं पर्यावरण अनुसंधान
समुदायों से संबंधित आँकड़े
भू-संरचना एवं जलवायु संबंधी आँकड़े
अनुसंधानकर्ताओं से संबंधित आँकड़े
18.3 जन चेतना का अभाव और इसके कारण
18.4 कार्यक्रम कार्यान्वयन
सरकार की भूमिका और उसकी कठिनाइयाँ
गैर-सरकारी एजेंसियों की भूमिका और उनकी समस्याएँ
18.5 सारांश
18.6 अंत में कुछ प्रश्न
18.7 उत्तर

18.1 प्रस्तावना

पिछले कुछ दशकों से इस विषय में जागरुकता के साथ ही चिंता भी बढ़ रही है कि जिस पर्यावरण में हम रहते हैं, वह बड़ी तेजी से दूषित हो रहा है। जिस हवा में हम साँस लेते हैं और जिस पानी को हम पीते हैं, वे दूषित हो रहें हैं। वर्षा अनियमित होने लगी है और वन नष्ट होते जा रहे हैं। कई पौधे और जंतु लुप्त हो गए हैं। भूमि की उपजाऊ ऊपरी मृदा (topsoil) कट रही है और पृथ्वी की ओज़ोन परत भी धीरे-धीरे नष्ट हो रही है। इससे भू-मंडल के गर्माने का भी ख़तरा दिखाई दे रहा है पर्यावरण की ऐसी दुर्दशा पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व के लिए खतरा बन रही है। सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि ये समस्याएँ स्वयं मानव ने पैदा की हैं।

आप जानते हैं कि जीवन को आधार देने वाले सभी तत्व हमें अपने पर्यावरण से ही मिलते हैं। किंतु इसके बदले में हम पर्यावरण को अक्षुण्ण रखने के लिए कुछ नहीं करते। मूलतः आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने पर्यावरण की देख-रेख या उसका प्रबंधन सही तरह से करें। पर्यावरण में हमारी दखलअंदाजी बहुत कम हो। हमें यह बात सुनिश्चित कर लेनी चाहिए कि इस दखल से पर्यावरण न बिगड़े, जिससे हमारे अस्तित्व को ही ख़तरा हो जाए। इसके लिए हमें अपने पर्यावरण और उसके सम्मुख ख़तरों के बारे में जानकारी प्राप्त करनी होगी। हमारी गतिविधियों से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का हमें अनुमान और विश्लेषण कर लेना चाहिए जिससे हम पहले से ही सावधानी के उपाय ढूँढ़ लें। इसलिए वातारण के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करने के लिए लोगों को शिक्षित करने की ज़रूरत है।

इस इकाई में हम पर्यावरण प्रबंधन की चुनौतियों पर प्रकाश डालेंगे। पर्यावरण पर पड़ने वाले विभिन्न विकास गतिविधियों के प्रभावों के बारे में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- विकास संबंधी परियोजनाओं के डाटा बेस की योजना के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे,
- पर्यावरण पर एक विश्वसनीय डाटा बेस रिपोर्ट तैयार करने में आने वाली समस्याओं को रेखांकित कर सकेंगे,
- पर्यावरण के प्रति हमारे देश के लोगों द्वारा उदासीन रुख अपनाने के कारणों को सूचीबद्ध कर सकेंगे,

- पर्यावरण के प्रबंधन में सरकार की भूमिका तथा उसके सामने आने वाली कठिनाइयों को सूचीबद्ध कर सकेंगे, तथा
- पर्यावरण से जुड़ी ग़ैर-सरकारी स्वयंसेवी संगठनों के योगदान का वर्णन कर सकेंगे।

18.2 अपर्याप्त डाटा बेस एवं पर्यावरण अनुसंधान

पर्यावरण एक ऐसा नया क्षेत्र है जो चिंता का विषय बना हुआ है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि साठ के दशक से पहले अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी पर्यावरण की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। सन् 1972 में हुए स्टॉकहोम सम्मेलन को बहुत कम लोगों ने महत्व दिया। परंतु जब सम्मेलन में विश्व नेताओं का ध्यान बिगड़ते पर्यावरण की उन समस्याओं की ओर दिलाया गया, जिनका प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ना था, तो पर्यावरण विज्ञान के क्षेत्र में सार्वभौमिक स्तर पर कुछ गतिविधियाँ आरंभ हुई। इससे पूर्व पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं को प्रायः स्थानीय समस्या ही समझा जाता था।

अनियोजित औद्योगीकरण और विकास संबंधी गतिविधियों में तेज़ वृद्धि के कारण विकसित एवं औद्योगिक देशों को पर्यावरण की बहुत बड़ी समस्या का सामना करना पड़ रहा था फलस्वरूप इन देशों ने काफी पहले पर्यावरण प्रबंधन की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया। क्योंकि उनके पास इन गतिविधियों के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध थे। परंतु दूसरी ओर, विकासशील देशों ने अभी औद्योगीकरण और विकास कार्य शुरू ही किए थे। इसलिए उन्हें आरंभ में ऐसी कठिन समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ा। विकासशील देशों में पर्यावरण संबंधी समस्याएँ प्रायः अपूर्ण या अर्धविकसित ग़रीबी और संसाधनों की कमी से जुड़ी होती थीं। उनके लिए पीने का पानी, भोजन, आवास, कपड़ा और स्वास्थ्य आदि आवश्यकताओं की पूर्ति इससे कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण थी। इस कारण ये देश पर्यावरण प्रबंधन की ओर समुचित ध्यान नहीं दे पाए। इसके अलावा पर्यावरण एक नया विषय होने के कारण मौसम विज्ञान (Climatology) सामाजिक विज्ञान (Sociology), भूगोल (Geography), अर्थशास्त्र (Economics), स्वास्थ्य एवं साफ-सफाई (Health and hygiene) विज्ञानों से इसके गहरे संबंधों के बारे में कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं थी। केवल कुछ ही वर्षों से लोग इस बात को मानने लगे हैं कि जब तक पर्यावरण से जुड़े अन्य क्षेत्रों के बारे में जानकारी हासिल नहीं कर ली जाती तब तक पर्यावरण का प्रबंधन संभव नहीं।

परस्पर जुड़े आँकड़ों (डाटा) का संग्रह ही डाटा बेस है। आवश्यकता पड़ने पर हम समूचे आँकड़ों या उसके एक भाग को फिर से डाटा बेस से प्राप्त (retrieve) कर सकते हैं। डाटा बेस प्रायः कंप्यूटरीकृत सूचनाओं पर आधारित होता है। बहरहाल किसी दूसरे रूप में संचित सूचना या डाटा भी डाटा बेस कहलाया जाएगा। उदाहरण के लिए, पुस्तकालय में प्रयोग किए जाने वाले कार्डों को लें। इन कार्डों में पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, इत्यादि की जानकारी दी हुई होती है, जिसके आधार पर आप वांछित पुस्तक, पुस्तिका प्राप्त कर सकते हैं। इसी तरह किसी नगर, राज्य या देश के व्यक्तियों के बारे में सूचना भी डाटा बेस है। परंतु कार्डों, रिपोर्टाजों, पुस्तकों, फाइलों इत्यादि में संचित सूचना अगर बड़ी हो तो उसका प्रयोग कर पाना बहुत कठिन कार्य होता है। इसी सूचना को अगर कंप्यूटर में सही तरीके से भरा जाए तो उसका संचालन आसानी से किया जा सकता है और हम उससे इच्छित जानकारी फिर से प्राप्त कर सकते हैं। यही कारण है कि डाटा बेस शब्द का प्रयोग प्रायः कंप्यूटरीकृत सूचना के संदर्भ में ही किया जाता है।

आगे हम उन क्षेत्रों के विषय पर चर्चा करेंगे, जिनमें पर्यावरण से संबंधित डाटा बेस तैयार करने की आवश्यकता है।

18.2.1 समुदायों से संबंधित आँकड़े

भारत एक बहुत बड़ा देश है। यहाँ की जलवायु में काफी विभिन्नता है। यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र में मृदा (मिट्टी), पानी की उपलब्धता, अक्षांश, देशांतर तथा ऊँचाई भिन्न-भिन्न है। इस भिन्नता के कारण ही विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न जैविक समुदायों (Biological communities) की रचना होती है। जैविक (सजीव) समुदाय के अंतर्गत किसी क्षेत्र में

विद्यमान संपूर्ण जीव समष्टियाँ (संपूर्ण प्राणी जगत) आती हैं। यहाँ पर जीव समष्टि का तात्पर्य एक ही प्रजाति (species) के जीवों (individuals) के समूहों से है जहाँ एक क्षेत्र में पौधों और जंतुओं की विभिन्न जातियों की विभिन्न समष्टियाँ हो सकती हैं। ये सभी जीव समष्टियाँ उस क्षेत्र विशेष के "जैविक समुदाय" का निर्माण करती हैं। अतः एक बड़े क्षेत्र के जैविक या जैवीय समुदाय में भिन्न-भिन्न जातियों के कई पौधे और जंतु होते हैं। समष्टियों की संख्या और उनकी जातियों के प्रकार उस क्षेत्र की पारिस्थितिकी (ecological conditions) पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, अगर कहीं वृद्धि-विकास के लिए स्थितियाँ अनुकूल हों तो वहाँ न केवल जीव अधिक संख्या में पाए जाएँगे वरन् उनकी तरह-तरह की जातियाँ भी देखने को मिलेंगी। पर्यावरण प्रबंधन का सीधा प्रभाव क्षेत्र के जैविक समुदायों (Biotic Communities) की संरचना पर पड़ता है। किसी क्षेत्र विशेष में किस प्रकार के समुदाय हैं यह उस क्षेत्र के पर्यावरण पर निर्भर करता है। साथ ही पर्यावरण विशेष में मौजूद सजीव जंतु (living organism) या जैविक समुदाय उस वातावरण को प्रभावित करेंगे। यदि इन समुदायों की संरचना में एकाएक भारी परिवर्तन हो जाए तो इससे वहाँ का पर्यावरण बदलेगा ही, समूचा पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) भी बदल जाएगा। आपने पढ़ा होगा कि किस तरह उपजाऊ क्षेत्र रेगिस्तान (मरुस्थल) में बदल जाते हैं, या झीलें तथा पोखर दलदल में बदल जाते हैं और अंततः भरकर सूख जाते हैं। यहाँ पर उन कई जलाशयों का उल्लेख तर्क संगत होगा जो जल कुम्भी (Hyacinth) के बेहिसाब वृद्धि के कारण लुप्त हो गए हैं। इसीलिए पर्यावरण के समुचित प्रबंधन के लिए यह ज़रूरी है कि पर्यावरण में विद्यमान समुदायों के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की जाए।

पादप (plant) तथा जंतु (animal) समुदायों का गहराई से अध्ययन किया जाना चाहिए। इनके बारे में प्राप्त सभी सूचनाओं को सुलभ बनाया जाए। किंतु इस समय हमारे पास जिन विभिन्न जैविक समुदायों के बारे में सूचना और डाटा उपलब्ध हैं उसे पर्याप्त नहीं समझा जा सकता। जैविक समुदायों से संबद्ध जानकारी केवल भारत में ही नहीं, वरन् पूरे विश्व में बहुत ही कम उपलब्ध है। इस ग्रह (पृथ्वी) पर रहने वाले लगभग 50 से 300 लाख जीवों या जीवन रूपों में से मात्र 17 लाख जीवों को ही पहचाना और वर्गीकृत किया जा सका है। शेष जीवों के बारे में हम कुछ भी नहीं जानते हैं। इसी तरह भारत में 45 हज़ार पौधों और 65 हजार जंतुओं की जातियाँ हैं। इनमें से कुछ स्थानिक हैं, अर्थात् वे एक स्थान विशेष में ही पाए जाते हैं। बहरहाल, हमारे पास उनमें से अधिकांश के बारे में विस्तृत जानकारी नहीं है। पर्यावरण संतुलन बनाए रखने और नई जातियों के विकास में विशेष रूप से सूक्ष्म जीवों की भूमिका के बारे में हमें कुछ भी पता नहीं है। पर्यावरण प्रबंध की दृष्टि से यह जानकारी बहुत ही महत्वपूर्ण है। अभी तक हमारे पास जो भी जानकारी उपलब्ध है वह मात्र जीव जगत के वर्गीकरण (taxonomy) तक ही सीमित है। प्रमुख रूप से पर्यावरण प्रबंधन के लिए हमें देश में विद्यमान पादप एवं जंतु जातियों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करनी होगी, तभी हम इन्हें और अपने पर्यावरण को नष्ट होने से बचा सकते हैं। अगर पर्यावरण एकदम बदल जाएगा तो इनमें से कई जातियाँ नष्ट हो सकती हैं। इसी तरह, अगर हम इन जातियों को लुप्त होने के लिए विवश कर देंगे तो इसका हमारे पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के बाद जीव जातियाँ लुप्त होने लगती हैं। हम उनके आवास स्थान पर इतना परिवर्तन ले आते हैं कि उनके लिए जीना कठिन हो जाता है। हम यहाँ भारत में जीव-जंतुओं के कुछ ऐसे आवास-स्थानों का नाम दे रहे हैं जो विनाश के किनारे पर खड़े हैं :–

1) अगस्त्यामलै पहाड़ियाँ (पश्चिमी घाट)
2) शांत घाट (silent valley) तथा नया अंब्राबलम रिज़र्व
3) पेरियार राष्ट्रीय पार्क (पश्चिमी घाट)
4) पूर्वी हिमालय
5) पश्चिमी हिमालय

इन क्षेत्रों पर इनकी जीवीय विविधता के लुप्त या नष्ट होने का खतरा दिखाई दे रहा है, इसका तात्पर्य यह है कि इन क्षेत्रों में रहने वाली जातियों की संख्या कम होती जाएगी। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इन संकटग्रस्त क्षेत्रों में उपलब्ध जातियों के बारे में हमारे पास पर्याप्त जानकारी या सूचना नहीं है, जिसके कारण हम इस "अज्ञात" संपदा को स्वयं खो रहे हैं। इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है। सारस (क्रेन) की स्थिति पर किए गए एक नवीनतम सर्वेक्षण से पता चला है कि जलीय भूमि के लुप्त होने से सारस पक्षियों की संख्या में भी कमी आने लगी है। इसी तरह हुए एक अध्ययन से यह पता चला है कि

बाघ (tiger) की जाति भी लुप्त होने वाली है। इस प्रजाति को पूरी तरह से लुप्त होने से बचाने के लिए सन् 1973 में एक "बाघ परियोजना" (Tiger Project) आरंभ की गई थी। इस परियोजना के फलस्वरूप बाघों की संख्या में तेज़ी से आ रही कमी को काफी हद तक रोका जा सका है। जब तक हम इन संकटग्रस्त जातियों की आदतों और उनकी आवास प्रकृतियों को नहीं जानेंगे तब तक हम उन्हें बचाने के लिए समुचित उपाय नहीं कर सकते। इस उदाहरण से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि जैविक समुदायों के बारे में जानकारी एवं आँकड़ों को रखना कितना महत्वपूर्ण है। यदि हमारे पास पर्याप्त जानकारी है और हम यह भी जानते हैं कि कोई विशेष जाति या जीव समुदाय किन परिस्थितियों में अच्छी तरह से जी सकता है, तो हम उस समुदाय या जाति विशेष को बचाने के लिए प्रयास कर सकते हैं। केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने अब विभिन्न जैविक समुदायों पर डाटा बेस संग्रह करने का कार्य आरंभ कर दिया है। इस संग्रह को "विस्तृत संरक्षण डाटा बेस" (Comprehensive Conservation Data Base) कहा जाएगा। 1990 के अंत तक इस कार्य के पूरा होने की आशा थी। वैसे, वन्य जंतु संबंधी डाटा बेस और संरक्षण डाटा बेस पहले से उपलब्ध हैं, मगर ये पर्याप्त नहीं हैं। इसीलिए एक विस्तृत डाटा बेस संग्रहित करने की योजना सरकार ने बनाई है।

18.2.2 भू-संरचना एवं जलवायु संबंधी आँकड़े

पर्यावरण से जुड़े विषयों जैसे—भू-संरचना (Geomorphology) जलवायु (Climatology), सरोवर-विज्ञान (Limnology), भू-जल संबंधी डाटा भी पर्याप्त नहीं है। इस अभाव का एक बड़ा कारण यह है कि भारत के पास इन विषयों पर आँकड़े/डाटा इकट्ठा करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं। जहाँ तक मानव शक्ति (man power) का प्रश्न है, उसकी हमारे देश में कोई कमी नहीं है। यद्यपि बाहरी देशों में कार्यरत हमारे देश के प्रशिक्षित व्यक्ति वहाँ भी ऐसे ही कार्यों में लगे हैं, किंतु भारत में इस कार्य के लिए आवश्यक तामझाम के लिए हमारे पास पर्याप्त धन नहीं है। इन क्षेत्रों में अभी तक जितना भी अध्ययन हुआ है और उससे जो डाटा उपलब्ध हैं, उसे मुख्यतः कृषि संबंधी ज़रूरतों को ध्यान में रखकर या फिर कभी-कभी उद्योगों को ध्यान में रखकर एकत्र किया गया है। सामान्य पर्यावरण पर अभी तक समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। उदाहरण के लिए, देश के विभिन्न भू-भागों के लिए स्थलाकृतिक मानचित्र (topographical maps), भू-विज्ञान संबंधी मानचित्र (geological maps), तैयार किए गए हैं। इसी तरह वर्षा, चक्रवात, तूफान, हिमपात इत्यादि की भविष्यवाणी करने के लिए मौसम और जलवायु संबंधी आँकड़े भी तैयार किए जाते हैं। लेकिन अभी तक ऐसे अन्य क्षेत्रों में अध्ययन करने के प्रयास कम ही किए गए हैं जो पर्यावरण प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो सकें जैसे—वन क्षेत्र (forest cover), जाति विविधता (species diversity), वायुमंडल में ऊर्ध्व स्तर विन्यास (vertical stratification), वायुमंडल के रसायन शास्त्र, मृदा अपरदन (Soil erosion) वन की कटाई, नदियों, झीलों में मिट्टी का जमाव (siltation) सूर्य की किरणों में उद्भासन (exposure to sunrays) पर कोई अध्ययन नहीं किया गया। जानकारी के अभाव में इन पहलुओं पर पर्यावरण के सफल प्रबंधन में उपलब्ध जानकारी का उपयोग करना भी कठिन था। आप इकाई 10 में यह पढ़ चुके हैं कि अगर किसी लंबी चिमनी से प्रदूषक तत्व निकल रहे हों तो हवा की दिशा, उसकी गति, वायुमंडल में ऊष्मा स्तरविन्यास या स्तरीकरण, इत्यादि स्थानीय कारक इस बात का निर्धारण करते हैं कि प्रदूषक तत्व किसी स्थान विशेष तक कितनी मात्रा में पहुँचेंगे। प्रदूषक तत्वों से बचाव के लिए पहले लंबी चिमनियाँ ही काफी समझी जाती थी, किंतु अब किसी भी उद्योग को लगाने से पहले जलवायु संबंधी आँकड़ों को ध्यान में रखा जाता है। आपने मथुरा तेल-शोधक कारखाने के कारण आगरा के ताजमहल पर आए खतरे को अवश्य पढ़ा होगा स्थानीय मौसम संबंधी स्थितियों, हवा के वेग, हवा की दिशा, इत्यादि पक्षों पर तैयार किए गए आँकड़ों से इस समस्या को हल करने में काफी सहायता मिली है। अब ताजमहल को बचाने के लिए पर्याप्त उपाय जैसे इसके चारों तरफ वृहद् पैमाने पर वृक्षारोपण किया जा रहा है। इसी तरह जब किसी बाँध का निर्माण किया जाता है तो पानी के लिए एक कृत्रिम जलाशय (reservoir) बनाया जाता है। बाँध का जीवन काल पूरी तरह इस जलाशय के जीवन और इसकी क्षमता पर निर्भर करता है। दूसरी ओर जलाशय की धारक क्षमता नदी में जमा होने वाली मिट्टी की मात्रा पर निर्भर करती है। इससे पूर्व बाँधों का निर्माण मिट्टी के जमाव का मोटा अनुमान लगाकर किया जाता था। लेकिन बाद में यह देखने में आया कि बाँधों का जीवन अनुमान से अधिक तेज दर से मिटटी के जमाव के कारण कम हो जाता है। जलाशयों में मिट्टी का जमाव (siltation) नदी के किनारों या आवाह क्षेत्र

(catchment area) से मृदा अपरदन पर निर्भर करता है और मृदा अपरदन या मिट्टी का कटाव वनस्पति (पेड़-पौधों) के आवरण पर निर्भर करता है। अतः ऐसी परियोजनाएँ आरंभ करने से पूर्व नदी के किनारों या आवाह क्षेत्र (catchment area) पर मृदा अपरदन की दर का भली-भाँति अध्ययन कर लिया जाना चाहिए। इसी तरह उस क्षेत्र के भू-विज्ञान संबंधी आँकड़ें भी ध्यान में रखे जाने चाहिए।

परंतु, हमारे पास देश के विभिन्न हिस्सों के लिए इन पहलुओं पर आवश्यक जानकारी नहीं है। इसी कारण हमें दूसरी जगहों से जानकारी लेनी पड़ती है, जिसके परिणामस्वरूप हम त्रुटिपूर्ण निर्णय लेते हैं। अब देश में नए-नए क्षेत्रों में अनुसंधान और अध्ययन कार्य चल रहे हैं, जिससे हमें अधिक से अधिक उपयोगी जानकारी या सूचनाएँ मिलने लगी हैं। अगर हम विश्व संसाधन संस्थान (World Resource Institute) द्वारा प्रकाशित "वर्ल्ड रिसोर्सेज़" का अवलोकन करें तो हमें उसमें भारत के बारे में काफी ठोस जानकारी मिलेगी। इसके अंकों में निहित ऐसी अधिकांश जानकारी देश में ही एकत्र की जा रही है।

18.2.3 अनुसंधानकर्ताओं से संबंधित आँकड़े

अनुसंधान, विज्ञान का एक अविछिन्न अंग है। अधिक और नवीनतम जानकारी प्राप्त करने के लिए अनुसंधान कार्य सतत् होना जरूरी है। भारत में काफी बड़ी संख्या में प्रशिक्षित

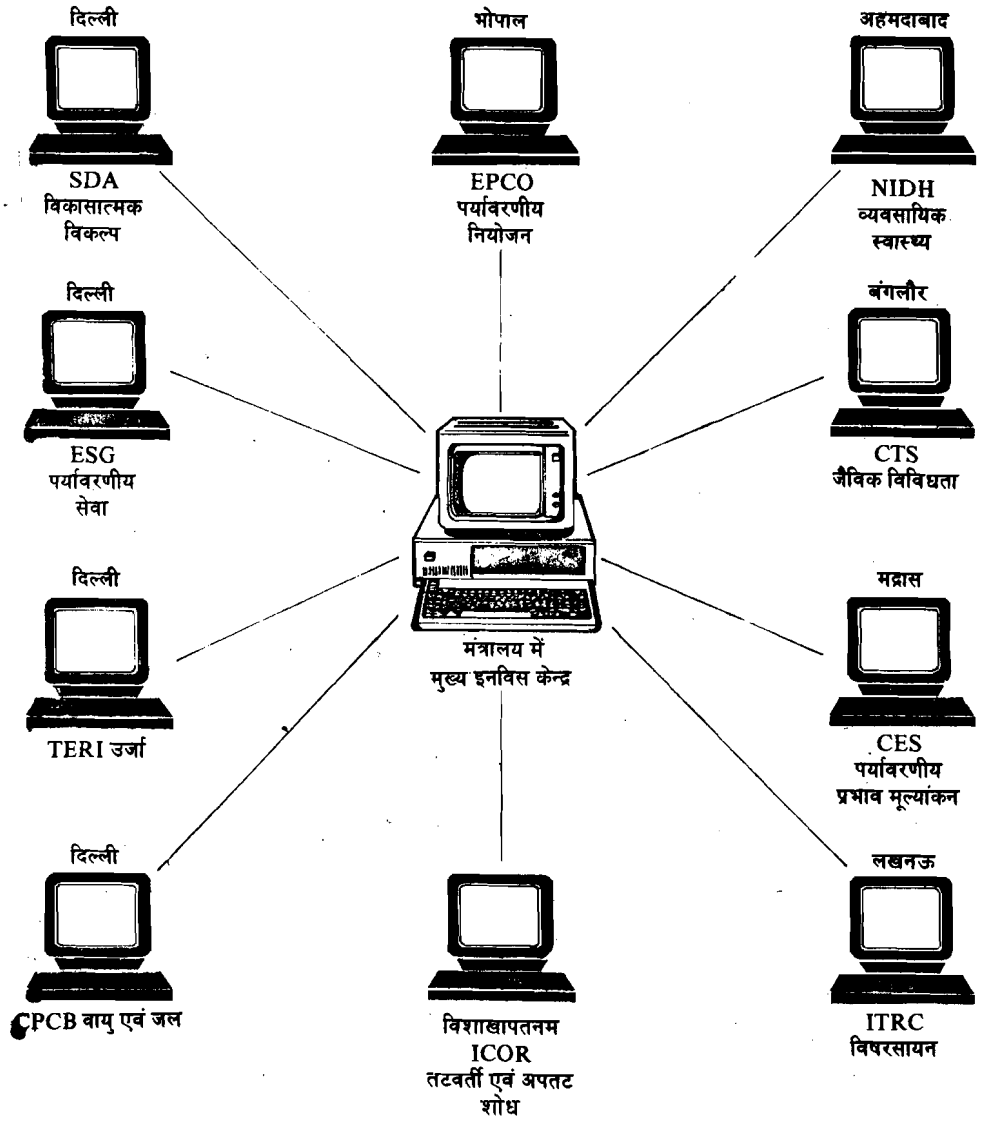

चित्र 18.1 : दस ENVIS केंद्र एवं उनकी स्थिति

तकनीकी व्यक्ति हैं। सभी देशों की तरह भारत में भी नए-नए शोध कार्य चल रहे हैं। यहाँ तक कि भारत में हुए शोधों का विकसित देश भी लाभ उठा रहे हैं। पर्यावरण और उससे संबंधित विषयों पर देश में काफी अनुसंधान कार्य चल रहा है। मगर इन अध्ययन कार्यों में लगे अनुसंधानकर्ताओं से संबंधित डाटा बेस उपलब्ध नहीं हैं। केंद्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग की राष्ट्रीय प्रबंधक सूचना प्रणाली (National Management Information System) द्वारा निकट भविष्य में ऐसे अनुसंधानकर्ताओं पर डाटा बेस बनाने की योजना तैयार की जा रही है। बहरहाल, रा.प्र.सू.प्र. ने अनुसंधान तथा विकास परियोजनाओं पर एक डाटा बेस तैयार कर लिया है, जिससे इनमें कार्यरत वैज्ञानिकों के बारे में भी जानकारी दी गयी है।

उल्लेखनीय है कि केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने एक सूचना प्रणाली विकसित की है। इसे ENVIS कहा जाता है। इसका मुख्य केंद्र नई दिल्ली स्थित पर्यावरण एवं वन मंत्रालय में है तथा शेष दस केंद्र देश के विभिन्न भागों में फैले हैं (चित्र 18.1)। इन केंद्रों का दायित्व पर्यावरण के विभिन्न पक्षों पर जानकारी इकट्ठा करना, उसे क्रमबद्ध तरीके से संग्रहित करना और लोगों को उपलब्ध कराना है।

ENVIS पर्यावरण से संबंधित कई अन्य तरह के विषयों पर भी जानकारी देता है। इसका विवरण सारणी-1 में दिया गया है। यह एक बहुत बड़ी सफलता है। ENVIS की कार्यप्रणाली में तेज़ी से सुधार लाया जा रहा है।

ENVIS के प्रकाशनों में एक पत्रिका "पर्यावरण एबस्ट्रेक्टस" है, जिसमें भारतीय वैज्ञानिकों के प्रकाशित कार्यों के बारे में जानकारी दी जाती है। जब तक पर्यावरण के विषय पर संपूर्ण डाटा बेस उपलब्ध नहीं हो जाता है यह त्रैमासिक पत्रिका इस क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों की जानकारी का एक अच्छा माध्यम रहेगी।

सारणी-1 ENVIS केंद्र और उनके कार्य क्षेत्र

संस्थान (केंद्र) (1)	क्षेत्र (2)
केंद्रीय जल प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण बोर्ड, नई दिल्ली-(CPCB)	प्रदूषण नियंत्रण (जल एवं वायु)
औद्योगिक विषविज्ञान केंद्र, लखनऊ-(ITRC)	विषैले रसायन
विकास विकल्प सोसायटी, 22, पालम मार्ग, वसंत विहार, नई दिल्ली (ESG)	पर्यावरण की दृष्टि से स्वास्थ्य विकल्प एवं उपयुक्त प्रौद्योगिकी
पर्यावरण सेवा ग्रुप बी/1,एल.एस.सी. जे ब्लॉक, साकेत, नयी दिल्ली	संचार एवं संसद पर्यावरण से संबंधित
तटीय एवं अपतटीय अनुसंधान संस्थान, आंध्र विश्वविद्यालय विशाखापटनम (ICOR)	तटीय एवं अपतटीय (तट से दूर) पारिस्थितिकी, पर्यावरणीय मानचित्रण के लिए Remote sensing एवं पूर्वी घाट की पारिस्थितिकी।
टाटा ऊर्जा अनुसंधान संस्थान, 90, जोर बाग, नयी दिल्ली।	नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत एवं पर्यावरण
पर्यावरण अध्ययन केंद्र, इंजीनियरिंग कालेज, मद्रास (CES)	इको–विषविज्ञान, त्याज्य पदार्थों का जैवीय-अवक्रमण (Bio-degradation) पर्यावरणीय प्रभावों का निर्धारण एवं प्रणाली विश्लेषण (System analysis) पश्चिमी घाट की पारिस्थितिकी
सैद्धांतिक अध्ययन केंद्र भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर (CTS)	पर्यावरण प्रबंधन
पर्यावरण योजना एवं समन्वयन संगठन, पर्यावरण विभाग, भोपाल (EPCO)	विभिन्न पेशों/व्यवसायों में कार्य करने वाले लोगों के स्वास्थ्य पर अनुसंधान
राष्ट्रीय व्यवसायगत स्वास्थ्य संस्थान, मेघानी नगर, अहमदाबाद (NIOH)	

बोध प्रश्न 1

क) निम्न का उत्तर दीजिए :

अ) पर्यावरण के संदर्भ में सन् 1972 का क्या महत्व है?

.....

.....

ब) भारत के कुछ संकटग्रस्त आवास स्थलों के नाम बताइए?

.....

.....

स) नदी के किनारे के क्षेत्रों में मृदा अपरदन किस तरह से बाँध की आयु को प्रभावित करता है?

.....

.....

द) ENVIS क्या है? कम से कम तीन केंद्रों की गतिविधियाँ बताइए?

.....

.....

.....

.....

ध) जैविक समुदायों पर डाटा बेस होना क्यों आवश्यक है?

.....

.....

.....

.....

18.3 जनचेतना का अभाव और इसके कारण

पर्यावरण प्रबंधन में जनचेतना काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। ऐसे लोगों की गतिविधियाँ पर्यावरण को नुकसान पहुँचाती हैं, जिनमें न तो चेतना है और न ही उन्हें पर्यावरण की पर्याप्त जानकारी है। उदाहरण के लिए, जब हम इमारती लकड़ी तथा ईंधन प्राप्त करने के लिए जंगल काटते हैं अथवा खेती के लिए जमीन की सफाई करते हैं तो इससे हम पर्यावरण को नुकसान पहुँचाते हैं। इसी तरह जब हम पोखरों, नदियों, झीलों या समुद्रों में तरल या ठोस त्याज्य पदार्थ फेंकते हैं, तो इससे जल-परिवेश को क्षति पहुँचती है। वायुमंडल में जब बहुत अधिक संख्या में प्रदूषक तत्व छोड़े जाते हैं तो इससे वायु प्रदूषण होता है। आप जानते हैं कि चारागाह में जानवर चराने, खेती के अवैज्ञानिक तौर-तरीकों तथा अनियोजित औद्योगिक गतिविधियों से पर्यावरण को नुकसान पहुँचता है। इसमें दो राय नहीं हैं कि खेती आवश्यक है तथा पशुओं को चराना अनिवार्य है, और वनों से आवश्यक वस्तुएँ लेने के लिए उन्हें काटना भी जरूरी है। इसी तरह ताप विद्युत संयंत्रों की स्थापना, बाँधों का निर्माण होना आवश्यक है और मनुष्य एवं सामान ढोने के लिए वाहनों को चलाना भी हमारी अनिवार्य आवश्यकता है। लेकिन निश्चय ही हम ये कार्य एक वैज्ञानिक और व्यवस्थित तथा नियोजित तरीके से कर सकते हैं, जिससे हमारा पारिस्थितिकी तंत्र गड़बड़ न हो प्रत्येक प्राकृतिक तंत्र में धक्कों या झटकों को सहने की एक सीमा तक क्षमता होती है। अगर ये झटके उस सीमा से बाहर हो जाएँ तो फिर मरम्मत या सुधार कार्य दुष्कर हो जाता है। उदाहरण के लिए, अगर हम वनों से केवल चुने हुए कुछ

पेड़ों को ही काटें और छोटे वृक्षों को बढ़ने के लिए छोड़ दें तो जंगलों का फलना-फूलना जारी रहेगा और उनसे हमें अपनी आवश्यकता के लिए इमारती लकड़ी और ईंधन बराबर मिलता रहेगा। इसी तरह से अगर हम विषैले रसायनों के अलावा अन्य त्याज्य पदार्थों को पानी में नियंत्रित तरीके से छोड़ें तो पानी में ये पदार्थ साफ हो जाएंगे और उसमें कोई खराबी नहीं आएगी। परंतु अगर हम उसी पानी में असीमित मात्रा में हर तरह के त्याज्य पदार्थ फेंके तो वह पानी दूषित हो जाएगा तथा उसमें रहने वाले जीव नष्ट हो जाएँगे। अगर चारागाहों पर पशु वैज्ञानिक-तरीके से चराए जाएँ तो वे लंबे समय तक उपयोगी हो सकते हैं। लेकिन यदि चारागाह में पशुओं को बेहिसाब तरीके से चराया जाएगा तो उसकी हरियाली लुप्त हो जाएगी। हवा और पानी से होने वाले मृदा अपरदन से उस क्षेत्र की उपजाऊ मिट्टी नष्ट हो जाएगी और जमीन बंजर हो जाएगी।

इस तरह आप देखते हैं कि हम अपने प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण का उपयोग दो संभाव्य तरीकों से कर सकते हैं। एक रास्ता तो ऐसा है जिसमें हम पर्यावरण को खतरा नहीं पहुँचाते और उससे हमेशा ही लाभ उठाते रहते हैं। दूसरा विकल्प यह है कि हम संसाधनों एवं पर्यावरण का दोहन बेहिसाब और अनैतिक रूप से करें। इस स्थिति में हमें थोड़े समय तक तो बहुत अधिक लाभ मिलेगा, किंतु बाद में इसके प्रतिफल स्वरूप नुकसान भी हमें ही उठाना पड़ेगा। प्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति पहले विकल्प को ही अपनाना चाहेगा। मगर लोग कई बार अपनी अज्ञानता और जानकारी के अभाव के कारण दूसरा रास्ता भी अपना लेते हैं। अगर किसी पशुपालक या चरवाहे को अत्यधिक और अवैज्ञानिक चराई के दुष्परिणाम बता दिए जाएँ तो वह ऐसा कदापि नहीं करना चाहेगा। इसी तरह से यदि किसी जंगल में रहने वाले व्यक्ति को जंगलों के अत्यधिक दोहन के दुष्प्रभावों के बारे में जानकारी दे दी जाए तो वह भी ऐसा नहीं करेगा। अतः सबसे पहले संबंधित लोगों को इन सारी बातों के बारे में अवगत कराना आवश्यक है। इस प्रकार हमारे लिए पर्यावरण चेतना एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है। सरकारें तरह-तरह से लोगों में पर्यावरण के विषय में चेतना पैदा करने के प्रयास कर रही हैं। उदाहरण के लिए, केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने इसके लिए अलग से शिक्षण एवं सूचना प्रभाग की स्थापना की है। इसका मुख्य कार्य सभी वर्ग के लोगों में चेतना पैदा करना तथा पर्यावरण संबंधी अनौपचारिक शिक्षा में सहायता देना है। इसके साथ ही यह प्रभाग पर्यावरण संबंधी जानकारी भी देता है। जन चेतना पैदा करने के लिए यह प्रभाग तरह-तरह के क्रियाकलाप करता है। ऐसा ही एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना अभियान है। इस कार्यक्रम को 1986 से हर वर्ष आयोजित किया जा रहा है। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण चेतना जगाना है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सबसे अधिक क्रियाकलाप "पर्यावरण मास" के दौरान किए जाते हैं। पर्यावरण चेतना जागृत करने के लिए स्वयंसेवी संगठनों, विश्वविद्यालयों, स्कूलों, कालेजों तथा सरकारी एजेंसियों को धनराशि प्रदान की जाती है। सन् 1986 में 115 संगठनों को इस कार्य के लिए धनराशि उपलब्ध करायी गई थी, जबकि 1987 में 207, 1988 में 204 तथा 1989 में 305 संगठनों को इस कार्य के लिए सहायता राशि दी गयी। ये संगठन रैलियों, प्रदर्शनियों, पद-यात्राओं, नाटकों, नृत्य तथा फिल्म निबंध लेखन प्रतियोगिताओं, चित्रकारी प्रतियोगिताओं, विचार-गोष्ठियों, कार्यशालाओं, इत्यादि के माध्यम से लोगों में पर्यावरण के प्रति चेतना का विकास करते हैं। (चित्र 18.2, 18.3 तथा 18.4 देखें।

पर्यावरण चेतना अभियान के अतिरिक्त, केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा जनचेतना विकसित करने में सहायक तरह-तरह की गतिविधियों के लिए धनराशि प्रदान किया है। शिक्षण संस्थानों में पर्यावरण क्लब गठित करने विचार गोष्ठियाँ और कार्यशालाओं का आयोजन करने, पर्यावरण के विषयों पर फिल्म बनाने इत्यादि गतिविधियों के लिए मंत्रालय आर्थिक सहायता देता है। राज्य सरकारें भी इस उद्देश्य के लिए निश्चित धनराशि निर्धारित करती हैं। दूरदर्शन, आकाशवाणी इत्यादि जनसंचार माध्यम भी पर्यावरण के महत्व को प्रकाश में ला रहे हैं। इन प्रयासों के फलस्वरूप पिछले कुछ वर्षों में पर्यावरण के संबंध में आम चेतना बढ़ी है। अब हम साधारण लोगों को भी पर्यावरण के मुद्दों पर बहस करते देख सकते हैं। केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने इसके ENVIS कार्यक्रम के अंतर्गत पर्यावरण के क्षेत्र में काम कर रही स्वयंसेवी संस्थाओं पर एक निर्देशिका भी प्रकाशित की है।

इस सबके बावजूद भी चेतना का मौजूदा स्तर पर्याप्त नहीं समझा जा सकता है। हमारा देश बड़ा विशाल है। इसलिए हमारे सामने कई पर्यावरण संबंधी समस्याएँ और चुनौतियाँ हैं। इनका सफलतापूर्वक सामना करने के लिए देश के हर नागरिक में और अधिक व

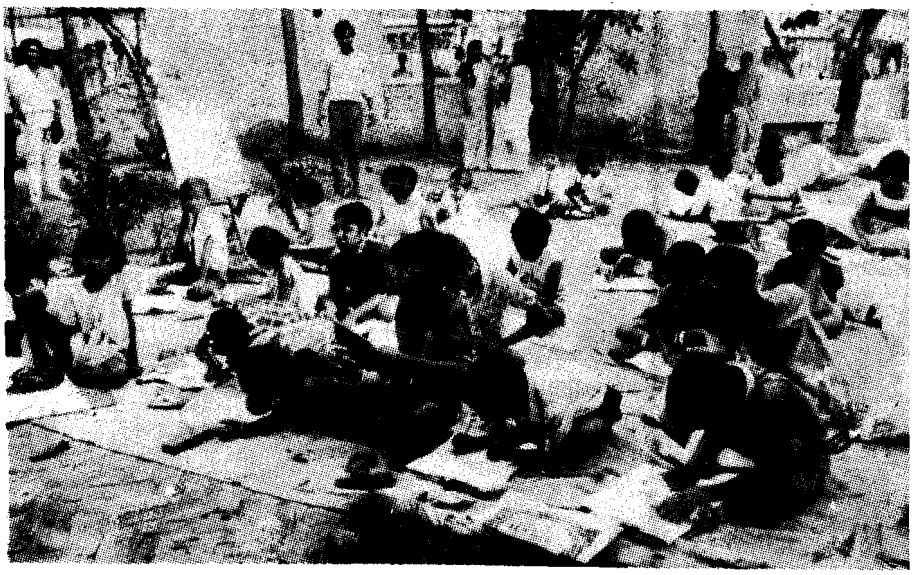

चित्र 18.2 : पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के तत्वाधान में आयोजित राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना कार्यक्रम के तहत वाद-विवाद प्रतियोगिता।

चित्र 18.3 : राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना अभियान के अंतर्गत पद यात्रा-अभियान।

चित्र 18.4 : केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा गठित भारतीय पर्यावरण-वैधानिक एक्शन परिषद् के तत्वाधान में आयोजित एक "ग्रीन मार्च" में भाग लेते हुए जज, वकील, प्रोफेसर इत्यादि।

बेहतर जागृति की आवश्यकता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में एक बड़ी बाधा निरक्षरता है। निरक्षर व्यक्ति की अपेक्षा साक्षर या पढ़े-लिखे व्यक्ति को किसी समस्या के प्रति जागरूक बनाना काफी आसान है। एक दूसरा कारण यह भी है कि पर्यावरण हमारे यहाँ एक नया विचार है। इसलिए जन-जन तक पर्यावरण की चेतना पहुँचाने में कुछ समय अवश्य लगेगा, यद्यपि संपर्क या संचार साधनों तथा धन की कमी इस उद्दश्य में बाधक हैं।

बोध प्रश्न 2

क) प्राकृतिक संसाधनों के संदोहन के दो विकल्प क्या हैं? आपके के विचार में कौन सा विकल्प अच्छा होगा?

.....

.....

.....

.....

ख) लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता विकसित करने के लिए केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने क्या-क्या उपाय अपनाएँ हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

18.4 कार्यक्रम कार्यान्वयन

पर्यावरण का प्रबंध संगठित प्रयासों के द्वारा ही संभव है। इसके लिए सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों, उद्योगपतियों, किसानों, स्वयंसेवी समाज कल्याण संगठनों के साथ-साथ जन साधारण का सहयोग आवश्यक है। पर्यावरण प्रबंधन से जुड़े अधिकांश मुद्दों पर मुख्य नियंत्रण सरकार का ही होता है। उदाहरण के लिए, अधिकांश वन या जंगल सरकार के स्वामित्व में हैं। बाँध, सड़कें, रेलवे लाइनों इत्यादि का निर्माण केवल सरकार ही कर सकती है। औद्योगिक या ऐसी कोई भी गतिविधि सरकार के अनुमोदन के बिना आरंभ नहीं हो सकती। इसी तरह बाढ़, सूखा, महामारी तथा अन्य पर्यावरणीय संकटों से होने वाले नुकसान को पूरा करने का दायित्व परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से सरकार पर ही जाता है। इसीलिए सरकार को विभिन्न रोकथाम एवं नियंत्रण संबंधी उपाय करने होंगे जिससे पर्यावरण का प्रबंध या व्यवस्थापन सुचारू एवं समुचित ढंग से किया जा सके। किंतु जब तक इसमें प्रत्येक व्यक्ति सहयोग नहीं देगा, तब तक पर्यावरण का प्रबंधन सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है। सरकार के लिए प्रत्यक्ष रूप से इन कार्यों में संलग्न होना कठिन है। यहीं पर गैर-सरकारी एजेंसियों की भूमिका का महत्व बढ़ जाता है। उन्हें सरकारी विभागों की तरह तमाम औपचारिकताओं से नहीं गुज़रना पड़ता। इसके साथ ही वे जनसाधारण से सीधे संपर्क बनाए रखते हैं। आइए, अब हम इन पहलुओं पर कुछ और विस्तार से विचार करें।

18.4.1 सरकार की भूमिका और उसकी कठिनाइयाँ

देश के वनों, बाँधों, प्रमुख सिंचाई नहरों, विद्युत घरों, रेलवे, बंदरगाहों, सड़कों, खानों तथा कुछ उद्योगों का स्वामित्व व नियंत्रण केंद्रीय और राज्य सरकारों के अधीन होता है और इनका विकास भी इन्हीं के द्वारा किया जाता है। पर्यावरण के संरक्षण में अपने दायित्व को देखते हुए भारत सरकार ने पर्यावरण विभाग बनाया। इसके बाद 1985 में इसे पर्यावरण एवं वन मंत्रालय में बदल दिया गया। यह मंत्रालय वनस्पति, जीवाणुओं तथा जंतुओं

(Flora and Fauna), वनों तथा अन्य जंतुओं के संरक्षण एवं सर्वेक्षण के कार्य में लगा हुआ है। इसके साथ ही प्रदूषण की रोकथाम और उसका नियंत्रण, वन रोपण (afforestation), पर्यावरण की दृष्टि से अवनत क्षेत्रों (degraded areas) का पुनरुत्थान तथा समूचे पर्यावरण की सुरक्षा निश्चित करना भी मंत्रालय के कार्य क्षेत्र में है। इन कार्यों को पूरा करने के लिए मंत्रालय द्वारा तरह-तरह के उपाय अपनाए जाते हैं। इनमें से एक महत्वपूर्ण उपाय ऐसी परियोजनाओं के कार्यान्वयन से पूर्व उनसे पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन या निर्धारण करना है, जो हमारे पर्यावरण को नुकसान पहुँचा सकते हैं। पर्यावरण पर पड़ने वाले संभाव्य प्रभावों का मूल्यांकन करने के लिए अध्ययन किया जाता है और उनको दूर करने के लिए उपाय सुझाए जाते हैं, जिससे परियोजना के चालू होने पर उसका पर्यावरण पर कम से कम प्रभाव पड़े। उदाहरण के लिए, अगर किसी नदी पर बाँध बनाया जाना है तो इस बात का पूरा-पूरा अनुमान या निर्धारण कर लिया जाता है कि बाँध के निर्माण से किस प्रकार की पर्यावरण संबंधी समस्याएँ पैदा होंगी। जलाशय में मिट्टी का जमाव (siltation), क्षेत्र में पानी का जमाव (water logging), जंगलों का पानी में डूबना, निकटवर्ती जनसमष्टि की बेदखली इत्यादि पर्यावरण समस्याएँ बाँध बनाने से पैदा होती हैं। इसीलिए इन समस्याओं से निपटने के लिए पहले से उपाय कर लिए जाते हैं, जिससे बाँध से होने वाले संभाव्य नुकसानों से बचा जा सके। मंत्रालय द्वारा प्रदूषण नियंत्रण के लिए प्रत्यक्ष रूप से कई कानून लागू किए जाते हैं। इन कानूनों को वह केंद्रीय तथा राजकीय प्रदूषण बोर्डों के जरिए भी लागू करता है। इन एजेंसियों की ज़िम्मेदारी पर्यावरण में छोड़े जाने वाले त्याज्य पदार्थों तथा प्रदूषकों के विसर्जन पर नियंत्रण रखना है। त्याज्य पदार्थों और प्रदूषकों के विसर्जन के लिए मानक निर्धारित किए जाते हैं। विभिन्न उद्योगों, कल-कारखानों द्वारा हवा, पानी और मिट्टी में इन पदार्थों के विसर्जन के लिए मंत्रालय ने अधिसूचित मानक जारी किए हैं। ऐसा ही एक मानक सारणी-2 में दिया गया है। शोरगुल भी अब एक प्रदूषक समझा जाता है और शोर की मान्य या स्वीकृत सीमा के लिए भी मानक तय किए गए हैं। इसके अतिरिक्त मंत्रालय पर्यावरण-पुनरुत्थान (eco-regeneration) कार्यक्रम चलाता है तथा पर्यावरण एवं वानिकी कार्यक्रमों को चला रहे संगठनों को सहायता प्रदान करता है। पर्यावरण तथा वानिकी से संबंधित अनुसंधान कार्यों को बढ़ावा देने और विस्तार, शिक्षण एवं प्रशिक्षण के कार्यक्रम लागू करने का कार्य भी मंत्रालय कर रहा है।

तालिका 2 : चीनी उद्योग से निस्सरित जल-प्रदूषकों के न्यूनतम मानक

मानक प्राचल	सांद्रण
पीएच-pH	6.5 से 8.0
जैव-रासायनिक ऑक्सीजन माँग (BOD) (Bio-Chemical Oxygen Demand)	100 मिग्रा/लीटर
आलंबित ठोस पदार्थ (Suspended solids)	100 मिग्रा/लीटर

स्रोत : केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, नई दिल्ली।

राज्य सरकारों ने भी पर्यावरण की निगरानी के लिए अपने-अपने विभाग खोले हैं। अपने अधिकार क्षेत्र में ये राज्य स्तरीय विभाग पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण चेतना, प्रदूषण नियंत्रण, परिवेश-पुनरुत्थान, इत्यादि से जुड़े कार्यक्रमों को लागू करते हैं। चूँकि वन पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इसलिए केंद्रीय और राज्य स्तर पर वन संरक्षण तथा वनीकरण पर अधिक बल दिया जाता है। इसके लिए आरक्षित वनों का निर्माण, वन-खन उत्पादों के दोहन के नियमन और नए वन लगाने की दिशा में कदम उठाने की ज़रूरत पड़ती है। अगर किसी विकास परियोजना के लिए कुछ जंगल काटना पड़ जाता है, तो उस परियोजना के अनुमोदन के समय एक शर्त जोड़ दी जाती है। इस शर्त या धारा (clause) को क्षतिपूरक वनरोपण (compensating afforestation) कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि परियोजना के लिए जितने क्षेत्र का जंगल काटा गया है उतने ही क्षेत्र में दूसरी जगह वन लगाना होगा। पर्यावरण संरक्षण का एक अभिन्न अंग वन्य जंतु प्रबंधन (wild life management) है। वन्य जीवों को बचाने या उनकी जातियों को संरक्षण देने के लिए वन्य जन्तु अभ्यारण्य (sanctuaries), पार्क तथा चिड़ियाघर बनाए जाते हैं।

सरकार इन परियोजनाओं को अलग-अलग स्तरों पर लेती है। लेकिन इसमें उसे कई कठिनाइयों, समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सबसे पहली और कठिन समस्या सहयोग की कमी है। पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाली हर तरह की गतिविधि के लिए सरकार ने सुधार उपाए सुझाए हैं। उदाहरण के लिए, वायु प्रदूषण के नियंत्रण के लिए उपकरण उपलब्ध हैं, औद्योगिक प्रदूषण रोकने के लिए निस्सारी शोधक संयंत्र (effluent treatment plant) हैं, शोरगुल को कम करने के लिए भी उपकरण बनाए गए हैं। ये युक्तियाँ या उपकरण उन लोगों के उपयोग के लिए हैं जो ऐसी गतिविधियों में लगे हुए हैं, जिनसे पर्यावरण दूषित होता हो, लेकिन वे इन युक्तियों को सहज स्वीकार नहीं करते। वे इन्हें अनुत्पादक मानते हैं और इसलिए इनसे दूर ही रहने की कोशिश करते हैं। अगर उन्हें इन संयंत्रों को लगाने के लिए बाध्य भी कर दिया जाए तो वे धन बचाने के लालच से न तो उन्हें बराबर चलाते हैं और न ही उनकी मरम्मत व देखभाल करते हैं। सरकार को ऐसे दोषी लोगों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने का पूरा अधिकार है। लेकिन इससे भी समस्या हल नहीं हो पाती। न्यायालयों में केस वर्षों तक चलते रहते हैं और उन पर कोई निर्णय नहीं दिया जाता। तब तक पर्यावरण इसका शिकार बन चुका होता है। इसी तरह तुच्छ लाभों के लिए जंगल से पेड़ों का अवैध कटान किया जाता है। बड़े पैमाने पर जंगल उजाड़े जाते हैं और वन्य जन्तु मारे जाते हैं। लोग ये सभी कार्य निजी स्वार्थ या लाभ के लिए करते हैं और सरकार के लिए हमेशा उन्हें सजा दिला पाना संभव नहीं हो पाता है। इकाई 7 में आपने यह पढ़ा है कि इस सदी के आरम्भ में जिन क्षेत्रों में वन थे वे अब घटकर लगभग एक तिहाई ही रह गए हैं इसी तरह जन्तु और पौधों की कई जातियाँ या तो लुप्त हो गई हैं या लुप्त होने वाली हैं। इस समस्या को महज़ कानूनी तथा प्रशासनिक उपायों से दूर नहीं किया जा सकता है। लोगों को भी यह समझना होगा कि अपने पर्यावरण, परिवेश के प्रति उनकी भी कुछ जिम्मेदारियाँ हैं, जिनका निर्वाह करना उनका नैतिक कर्तव्य है।

18.4.2 गैर-सरकारी एजेंसियों की भूमिका और उनकी समस्याएँ

गैर-सरकारी एजेंसियाँ या स्वयंसेवी संगठन पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। ये संगठन सरकार के नियंत्रण से मुक्त होते हैं। किसी भी मुद्दे पर स्वयं निर्णय ले सकते हैं तथा अपनी स्वेच्छा या सुविधा के अनुसार कार्य कर सकते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कि इन संगठनों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि ये सीधे जन साधारण से जुड़े रहते हैं। गैर-सरकारी या स्वैच्छिक संगठन पूरे देश में यहाँ तक कि गाँवों में भी फैले हुए हैं। अतः इन्हें लोगों तक पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं होती। जन साधारण के बीच रहने के कारण इनके सामने भाषा की समस्या भी नहीं आती। ये लोगों से उन्हीं की भाषा और बोली में बातचीत कर सकते हैं। साथ ही स्थानीय रीति रिवाजों, परंपराओं, लोक कलाओं इत्यादि से परिचित होने के कारण ये संगठन इन माध्यमों से लोगों तक आसानी से पहुँच सकते हैं।

स्वयंसेवी संगठनों की हमारे देश में पर्यावरण के प्रति लोगों में चेतना जागृत करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने लोगों को उन पर्यावरण संबंधी समस्याओं के बारे में जानकारी दी है जो हमारी लापरवाही तथा प्राकृतिक संसाधनों के बेहिसाब दोहन से पैदा होती हैं। ये संगठन ऐसी समस्याओं पर काबू पाने में बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं। आपने "चिपको" आंदोलन के बारे में अवश्य सुना होगा। इस आंदोलन का नाम "चिपको" इसलिए पड़ा, क्योंकि वृक्षों को कटने से बचाने के लिए महिलाएँ उनसे लिपट जाया करती थीं। आगे आप इस पाठ्यक्रम में "चिपको" आंदोलन के विषय में और अधिक पढ़ेंगे। ऐसा ही एक और आंदोलन केरल की शांत घाटी (Silent Valley) में हुआ था जिसका नाम अप्पिको आंदोलन पड़ा। इस आंदोलन ने समूचे देश का ही नहीं वरन् विश्व का ध्यान आकर्षित किया था। वहाँ एक बाँध का निर्माण किया जाना था। इस बाँध से उत्पन्न होने वाली बिजली का लाभ उस इलाके के लोगों को मिलता, लेकिन उससे कहीं अधिक बाँध में उस क्षेत्र का घना और पुराना जंगल डूब जाता। इससे शांत घाटी के विलक्षण पारिस्थितिकी तंत्र को बहुत बड़ा नुकसान पहुँचता। लोगों ने शांत घाटी परियोजना का कड़ा विरोध किया। फलतः सरकार को इस परियोजना को रद्द करने के लिए विवश होना पड़ा। देश के कई अन्य हिस्सों में भी इस तरह के कई स्थानीय आंदोलन चलाए जा रहे हैं। कुछ ही समय पहले आयोजित पश्चिम घाट तक की पदयात्रा (march to western ghats) ऐसा ही एक उदाहरण है। 1987 में स्वयंसेवी संगठनों ने "भारत जन-विज्ञान जत्था" आयोजित किया था, जिसमें जन साधारण को पर्यावरण सहित कई वैज्ञानिक विषयों पर जानकारी देने और शिक्षित करने का प्रयास किया गया था।

इस समय हमारे देश में कई गैर-सरकारी संगठन अलग-अलग क्षेत्रों में सक्रिय हैं। इनमें से कई संगठन पर्यावरण संरक्षण की ओर आकर्षित हुए हैं। केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने भी पर्यावरण के क्षेत्र में सक्रिय गैर-सरकारी संगठनों की एक निर्देशिका संकलित की है। इस निर्देशिका में राज्य के अनुसार इन संगठनों के बारे में विस्तार से जानकारी दी गई है।

स्वयंसेवी संगठन इस दिशा में काफी महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। परंतु उन्हें भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सबसे पहली समस्या तो यह है कि विभिन्न कार्यक्रमों को चलाने के लिए उनके पास प्रशिक्षित लोग पर्याप्त संख्या में नहीं होते। दूसरी बड़ी कठिनाई उन्हें विश्वसनीय सूचना तथा आँकड़ा न मिल पाने के कारण होती है। इसके बाद भी इन संगठनों को सदैव आर्थिक तंगी में काम करना पड़ता है।उनके पास आमदनी के साधन नहीं होते, जिसके लिए उन्हें स्वयं ही धन जुटाने का कार्य करना पड़ता है। कुछ स्वैच्छिक संगठन वैज्ञानिक अध्ययन सूचना संकलन और कार्यक्रम कार्यान्वय का कार्य लेते हैं। ऐसे कार्य वे सरकारी विभागों सहित दूसरी एजेंसियों के लिए करते हैं। इन कार्यों से वे कुछ आमदनी अर्जित कर लेते हैं। मगर यह आमदनी का सुनिश्चित साधन नहीं है। अतः उन्हें समय-समय पर आर्थिक समस्याओं से गुजरना पड़ता है। इसके साथ ही स्वयंसेवी संगठनों को स्थानीय प्रशासन से कोई समर्थन या सहयोग नहीं मिलता। इसका मुख्य कारण यह है कि इन संगठनों की गतिविधियाँ बहुधा जंगल के ठेकेदारों, उद्योगपतियों, ठेकेदारों, आवास निर्माताओं, इत्यादि प्रभावशाली लोगों के हितों के विरुद्ध होती हैं। पर्यावरण के क्षेत्र में काम कर रहे कुछ प्रमुख गैर-सरकारी संगठनों के नाम इस प्रकार हैं :–

1) **केरल शास्त्र साहित्य परिषद्–** त्रिचुर (केरल)

इस एजेंसी ने केरल और उसके निकटवर्ती इलाकों में पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

2) **दसौली ग्राम स्वराज्य मंडल–** गोपेश्वर (उ.प्र.)

इस संगठन ने "चिपको" आंदोलन का सूत्रपात किया था। अभी यह वन संरक्षण, भूमि संरक्षण आदि के कार्यों में लगा हुआ है।

3) **दिल्ली विज्ञान फोरम–** नई दिल्ली

यह संगठन बहुत भारी योगदान कर रहा है। सन् 1987 में इसने भारत जन विज्ञान जत्थे का आयोजन किया था जिसमें पर्यावरण शिक्षण को विशेष महत्व दिया गया था। इस स्वयंसेवी संगठन में वैज्ञानिक एवं तकनीकी विशेषज्ञ सक्रिय हैं।

4) **संजीव सेवा समिति–** उदयपुर (राजस्थान)

यह संगठन वृक्षारोपण, बंजर भूमि के विकास, भूमि संरक्षण, नर्सरी लगाने, पर्यावरण चेतना फैलाने आदि महत्वपूर्ण गतिविधियों में लगा हुआ है।

5) **दि कुब्डा मिल्क प्रोड्यूसर्स कोपरेटिव लि.–** कुब्डा (गुजरात)

यह संगठन तरह-तरह की गतिविधियों में लगा हुआ है, जिसमें पर्यावरण संरक्षण भी मुख्य है। यह पर्यावरण के प्रति लोगों में जागृति पैदा करने, वनीकरण के कार्यक्रम चलाने तथा भूमि एवं जल संरक्षण आदि कार्यों में लगा हुआ है।

बोध प्रश्न 3

निम्न प्रश्नों का उत्तर दें :

क) वे परिस्थितियाँ क्या हैं जो पर्यावरण के प्रति चेतना विकसित करने में स्वयंसेवी संगठनों के लिए सहायक हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

ख) बताइए कि स्वयंसेवी संस्थाओं को किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है?

.....

.....

.....

.....

.....

18.5 सारांश

इस इकाई में हमने निम्नलिखित पर चर्चा की है :

- आज हमारे पर्यावरण का प्रबंधन किस तरह होता है, हमारा भविष्य इस पर निर्भर है। अगर हम पर्यावरण को नष्ट करते हैं तो इससे हम अपने ही अस्तित्व को खतरे में डालते हैं।
- पर्यावरण के सफल प्रबंधन के लिए पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं पर जानकारी आवश्यक है। हमारे पास जैविक समुदायों, भू-आकृति विज्ञान, जलवायु तथा पर्यावरण से संबंद्ध विभिन्न कार्यों पर आँकड़ा उपलब्ध होने चाहिए।
- पर्यावरण को बचाने और इसका प्रबंध समुचित तरीके से करने के लिए सरकार कई उपाय कर रही है।
- पर्यावरण के प्रबंधन एवं संरक्षण के लिए जनसाधारण में चेतना बेहद आवश्यक है। पिछले कुछ दशकों में जनचेतना अवश्य बढ़ी है। ऐसा सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों की सक्रिय भागेदारी से हुआ है। गैर-सरकारी संगठनों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। परन्तु इसके बावजूद भी वे पर्यावरण संरक्षण में ठोस योगदान दे रहे हैं।

18.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) पर्यावरण क्यों हमारी चिंता का विषय बन गया है, इसके दो मुख्य कारण बताइए?

.....

.....

.....

.....

2) पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले कुछ उदाहरण दीजिए जो आपने अपने रहने वाले क्षेत्र में देखें हैं। इसके लिए उचित समाधान भी बताइए।

.....

.....

.....

.....

3) पर्यावरण मंत्रालय ने राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना अभियान कब आरंभ किया? इस अभियान के क्या उद्देश्य हैं?

.....

.....

.....

4) परियोजना शुरू करने से पहले पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का निर्धारण करना क्यों आवश्यक है?

.....

.....

.....

5) जनसाधारण में जागृति कैसे पैदा की जा सकती है? जिससे वे हमारे पर्यावरण को सुरक्षित रखने में सहायता कर सकें।

.....

.....

.....

.....

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) 1972 में स्टॉकहोम में पर्यावरण पर एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था जिसमें कई राष्ट्राध्यक्षों, प्रतिनिधियों ने भाग लिया था।

ख) अनुभाग 18.2 देखें। इसमें पाँच के नाम दिए गए हैं।

ग) मृदा-अपरदन (erosion) या मिट्टी के कटाव से नदी के तल में मिट्टी का जमाव बड़ी तेजी से होता है। मिट्टी का यह तेज जमाव बाँध के जलाशय की आयु या जीवनकाल कम कर देता है।

घ) ENVIS एक सूचना प्रणाली है, जिसे केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने बनाया है। इसके दस केंद्र सक्रिय हैं। इन केंद्रों की गतिविधियों का विवरण आप सारणी-1 से प्राप्त कर सकते हैं।

ध) पर्यावरण प्रबंधन का सीधा प्रभाव क्षेत्र विशेष के जैविक समुदाय पर पड़ता है। क्षेत्र विशेष में किस प्रकार के जैविक समुदाय होंगे यह इस पर निर्भर है कि इस क्षेत्र का पर्यावरण कैसा है। इसलिए जैविक समुदायों के बारे में जानकारी के अभाव में पर्यावरण का प्रबंधन, देखभाल संभव नहीं है।

बोध प्रश्न 2

क) i) जहाँ पर पर्यावरण को कोई खतरा नहीं होता है, वहाँ से हम हमेशा लाभ उठाते हैं।

ii) प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण का उपयोग अवैज्ञानिक तरीके से करना पहला विकल्प सबसे बेहतर है, क्योंकि इस तरह के दोहन से हम भविष्य के पर्यावरणीय खतरों से मुक्त रहेंगे। अगर दूसरा तरीका अपनाते हैं तो हमें कुछ समय के लिए अधिक लाभ मिल सकता है। लेकिन जहाँ तक भविष्य का प्रश्न है उसमें हमें हानि ही उठानी होगी।

ख) i) केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने एक अलग प्रभाग बनाया है, जिसे सूचना एवं पर्यावरण प्रभाग के नाम से जाना जाता है। यह प्रभाग पर्यावरण पर अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करता है तथा दूसरे अन्य तरह के क्रियाकलापों में भी लगा हुआ है।

ii) मंत्रालय के राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना अभियान का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर लोगों में पर्यावरण के प्रति चेतना या जागरुकता पैदा करना है।

iii) मंत्रालय शिक्षण संस्थानों में पर्यावरण क्लब बनाने, विचार गोष्ठियाँ तथा सम्मेलन इत्यादि आयोजित करने के लिए कोष प्रदान करता है।

बोध प्रश्न 3

क) सरकार के लिए पर्यावरण के प्रबंधन में जनसाधारण को सीधे शामिल कर पाना बड़ा कठिन है। यहीं पर स्वयंसेवी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, क्योंकि उन्हें एक सरकारी विभाग की तरह बोझिल औपचारिकताओं से नहीं गुजरना पड़ता। साथ ही गैर-सरकारी संगठनों को एक और लाभ यह भी है कि वे लोगों के सीधे संपर्क में रहते हैं।

ख) पर्यावरण संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों को लागू करने में स्वयंसेवी संगठनों को तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जैसे : उनके पास प्रशिक्षित व्यक्ति नहीं होते, वे विश्वसनीय सूचना तथा आँकड़ा प्राप्त नहीं कर पाते, तथा उन्हें वित्तीय समस्याएँ उठानी पड़ती हैं।

अंत में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1) i) पिछले कुछ दशकों से हमारा पर्यावरण बड़ी तेजी से बिगड़ा है।

   ii) पर्यावरण को नुकसान पहुचाने से मानव के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा होने का डर है।

2) पानी एवं हवा दोनों दूषित हो रहे हैं। वर्षा भी अनियमित होने लगी है और वनों का अनुपात सिकुड़ता जा रहा है। इससे पौधों और जंतुओं की जातियाँ लुप्त होने लगी हैं। भूमि की उपजाऊ सतह कट रही है। भोजन पदार्थ भी दूषित होने लगे हैं और वायुमंडल की ओजोन परतें नष्ट हो रही हैं। साथ ही पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है।

3) अनुभाग 18.3 देखें।

4) इस अभ्यास के माध्यम से इस बात का पता लगा लिया जाता है कि अगर कोई परियोजना लागू की जाती है तो उससे पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा। एक बार भविष्य में सामने आने वाली समस्या की प्रकृति जान ली जाय तो हम उसके निवारण के लिए पहले ही उपाय कर सकते हैं।

5) पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने का एक महत्वपूर्ण कारण जनसाधारण में अज्ञानता है। अगर हम अपने कार्यकलापों के परिणामों को समझ लें तो शायद हम ऐसे कार्य करें ही नहीं जो हमारे पर्यावरण के लिए नुकसानदेह हों। चेतना या जागरुकता से तात्पर्य यह है कि हमें पर्यावरण के ज्ञान से अपने को लैस करना है। इस तरह अगर हम जागरूक बन जाते हैं, तो हम हर कदम पर सावधानी बरतेंगे जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण को कम क्षति पहुँचेगी।

इकाई 19 विकास और पर्यावरण

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
19.2 चुनौती भरा भविष्य
लक्षण तथा कारण
गरीबी, विकास और पर्यावरण
19.3 सतत विकास की ओर
सतत विकास की अवधारणा
समता और समान हित
नीतिगत आवश्यकताएँ
19.4 अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की भूमिका
अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, पर्यावरण और विकास
विश्व अर्थव्यवस्था के स्थायित्व का प्रयास
नई विश्व अर्थव्यवस्था
19.5 सारांश
19.6 अंत में कुछ प्रश्न
19.7 उत्तर

19.1 प्रस्तावना

आप समझ चुके हैं कि पर्यावरण में हमारा हस्तक्षेप उसी सीमा तक रहना चाहिए जिससे पर्यावरण की शुद्धता प्रभावित न हो। पिछली इकाई में आपने पढ़ा कि सफल पर्यावरण प्रबंध के लिए समुदायों, भूगर्भ, जलवायु और अनुसंधान कार्यों जैसे पर्यावरण के विविध पक्षों के बारे में जानकारी होना कितना आवश्यक है। पर्यावरण की वर्तमान समस्याओं को दूर करने के लिए जन-चेतना और सरकारी एजेंसियाँ, दोनों पर्यावरण प्रबंध में प्रमुख भूमिकाएँ निभाते हैं।

इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि कैसे आखेटी मानव समाजों से आज के उन्नत प्रौद्योगिकी वाले मानव समाज तक की प्रगति से पर्यावरण की भौतिक और जैविक प्रक्रियाओं के संतुलन में बाधा पड़ी है, जिससे इस पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व को ही खतरा हो गया है। विश्व के अनेक हिस्सों में मानव जनसंख्या जिस तेज़ रफ्तार से बढ़ रही है, उसका पर्यावरण के वर्तमान संसाधनों से गुज़ारा नहीं हो सकता। पर्यावरण की वर्तमान समस्याओं को विभिन्न अवधारणात्मक मॉडलों से समझा जा सकता है। इस इकाई में इन मॉडलों के बारे में बताया गया है। यह स्पष्ट है कि इस स्थिति में अपने जैव-मंडल को बचाए रखने के लिए हम सतत विकास की धारणा को अपनाएँ। इसके लिए हमें ऐसी उपयुक्त और अपेक्षाकृत सरल प्रौद्योगिकी इस्तेमाल करनी होगी जिसमें नवीकरणीय संसाधनों का इस्तेमाल हो सके और जो स्थानीय ज़रूरतों के अनुरूप हों। इस इकाई में अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के पर्यावरण पर प्रभाव की भी चर्चा की गई है और ऐसी स्थायी विश्व अर्थव्यवस्था बनाने की आवश्यकता समझायी गई है, जिससे स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण बनाने में मदद मिले। सतत विकास की प्रक्रिया से भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरी करने की क्षमता को खतरे में डाले बिना हमारी अपनी वर्तमान आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- मानव समाजों की विकास गतिविधियों का पर्यावरण के ह्रास के साथ संबंध समझ सकेंगे,
- पर्यावरण की वर्तमान समस्याओं को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न अवधारणात्मक मॉडलों को समझा सकेंगे,
- स्थानीय पर्यावरण के ह्रास में गरीबी की भूमिका पर चर्चा कर सकेंगे,

- सतत विकास की धारणा की परिभाषा दे सकेंगे और इसे समझा सकेंगे,
- यह समझा सकेंगे कि किस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से विकास गतिविधियों और हमारे पर्यावरण की स्थिति निर्धारित होती है,
- विश्व स्तर पर नई स्थायी अर्थव्यवस्था की धारणा की परिभाषा दे सकेंगे और इसे समझा सकेंगे।

19.2 चुनौती भरा भविष्य

पिछली इकाइयों में मानव पर्यावरण और मानव की पर्यावरण से परस्पर क्रिया से उत्पन्न समस्याओं के बारे में विस्तार से बताया गया है। पर्यावरण की समस्याएँ, लंबे समय से पर्यावरण पर ध्यान न देने और मनमाने तौर पर इसके संसाधनों के उपयोग से पैदा हुई हैं। इसके साथ ही, पिछली दो शताब्दियों में विश्व की जनसंख्या में तेज़ वृद्धि से भी समस्याएँ बढ़ी हैं और निरंतर बढ़ती जा रही हैं।

आप जानते हैं कि पर्यावरण के विभिन्न जैविक और अजैविक घटक एक दूसरे पर निर्भर हैं। पर्यावरण की समस्याएँ आमतौर से भौतिक और जैविक प्रक्रियाओं के बीच प्राकृतिक अंतरक्रियाओं में गड़बड़ी आने से पैदा होती हैं।

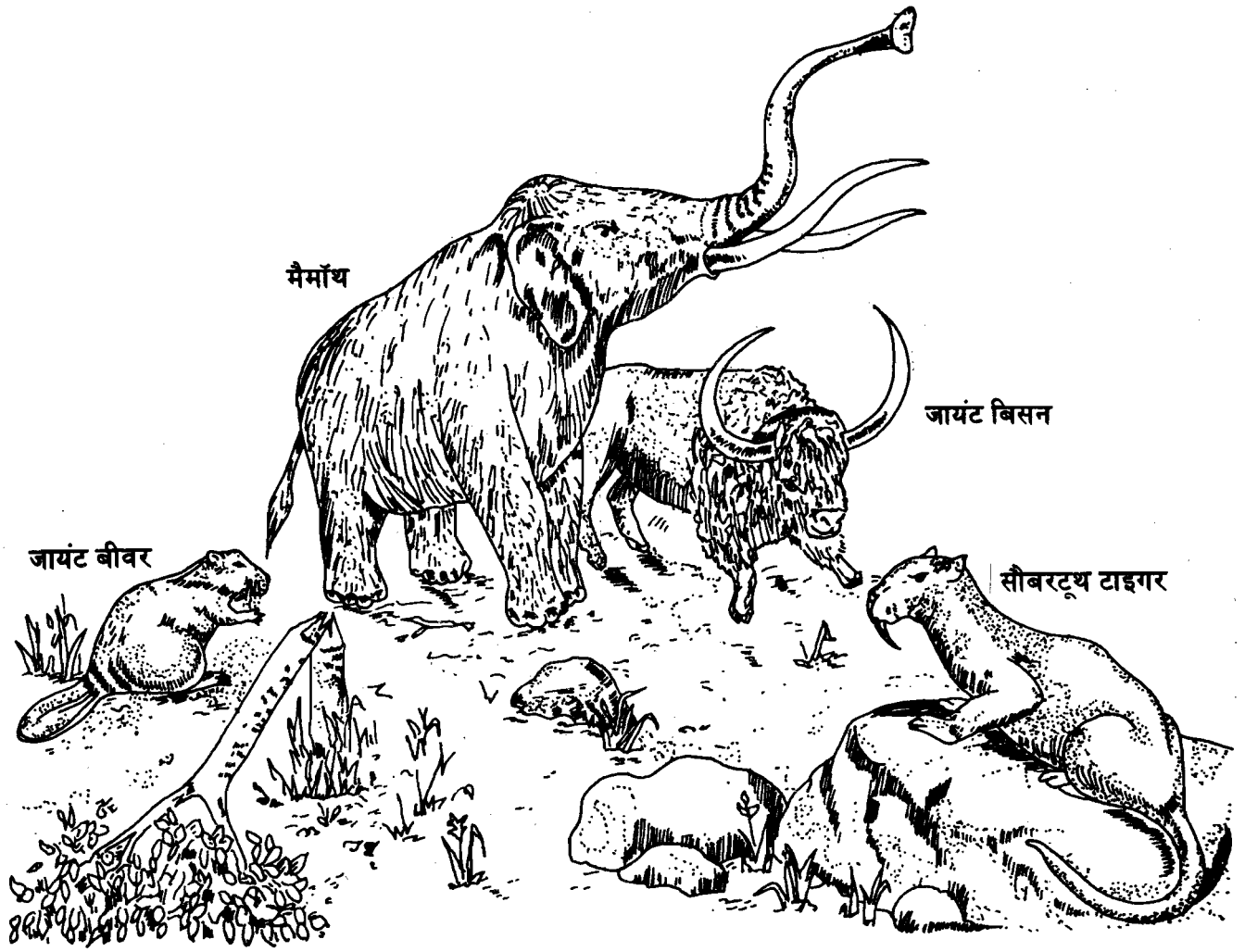

चित्र 19.1 : प्रागैतिहासिक काल में मुख्य रूप से मानवीय गतिविधियों के कारण विलुप्त हो गईं कुछ पशु प्रजातियों के रेखा-चित्र। इनके विलुप्त होने के अन्य कारण जलवायु में आए परिवर्तन भी हो सकते हैं।

मानव समाजों के विकास के लंबे दौर में मानव जाति और पर्यावरण के बीच परस्पर क्रियाओं में काफी बदलाव आए हैं। खंड 2 में आपने पढ़ा कि कैसे आदिम मानव समाज यानी आखेटी मानव की गतिविधियों ने पर्यावरण पर बुरा असर नहीं डाला बल्कि उन्होंने केवल अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी करने के लिए इसके संसाधनों का उपयोग किया। हालांकि ऐसा माना जाता है कि अनेक प्रागैतिहासिक जानवरों की प्रजातियाँ, मनुष्य की गतिविधियों से नष्ट हो गई, जैसे केव बियर (Cave Bear), जायंट बिसन (Giant Bison), मैमॉथ (Mammoth) और सेबरटूथ टाइगर (Sabertoothed Tiger) (चित्र 19.1)।

बाद में कृषि आधारित समाजों के विकास से उत्पादन में वृद्धि हुई। हल का इस्तेमाल शुरू होने के बाद किसानों ने खेती के लिए घास के बड़े-बड़े मैदानों को जोतना शुरू किया (चित्र 19.2 क) जनसंख्या बढ़ी, परंतु खेती के कामकाज के लिए कम लोगों की ही ज़रूरत थी। परिणाम यह हुआ कि लोग गांवों से शहरों में आ गए और छोटे-मोटे शिल्प कार्यों तथा विभिन्न वस्तुओं के छोटे स्तर के उत्पादन कार्यों में लग गए (चित्र 19.2 ख)। इससे लोगों की भोजन तथा अन्य आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं तथा पर्यावरण पर और बोझ बढ़ा। शहर व्यापार, वाणिज्य तथा सरकारी और धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र बन गये। भूमि के इस्तेमाल का प्रबंध तो उचित नहीं था और संसाधनों का इस्तेमाल भी बढ़ गया। इसी से स्वाभाविक प्राकृतिक पर्यावरण के नष्ट होने की शुरुआत हुई। मवेशियों की अंधाधुंध चराई से चरागाहों के कम होने, सही तरीके से खेती न करने और जंगलों से बड़े पैमाने पर लकड़ियाँ काटे जाने से पर्यावरण की समस्याएँ और बढ़ीं।

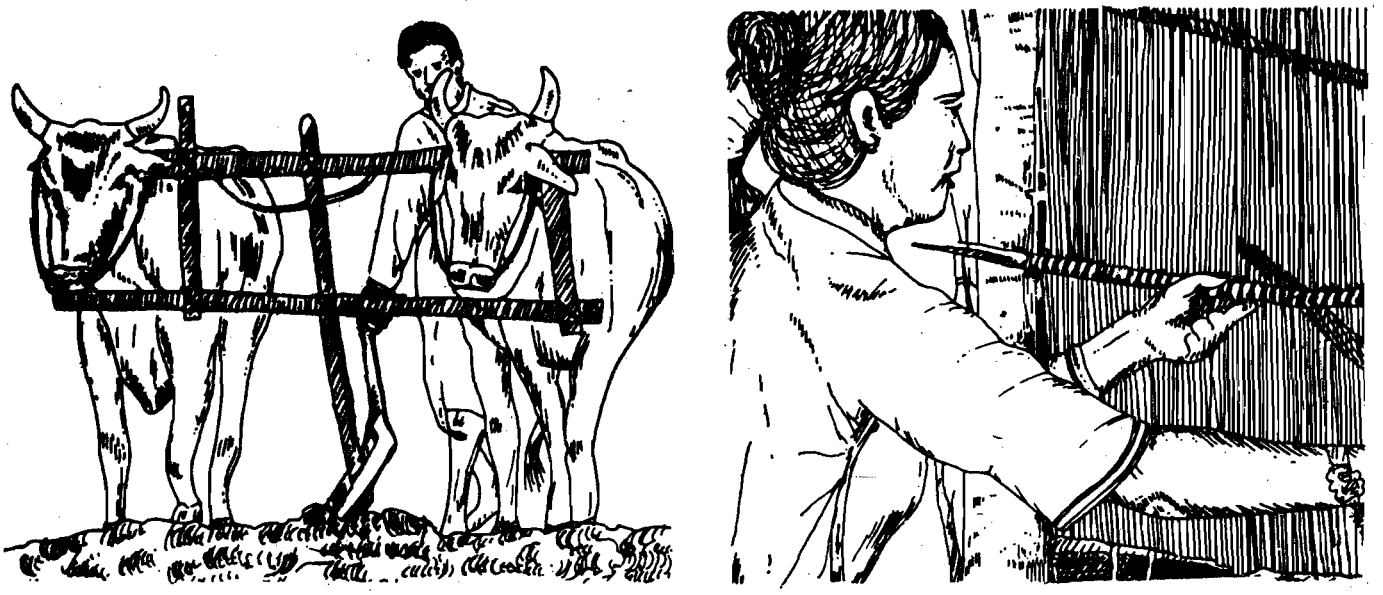

(क) (ख)

चित्र 19.2 : (क) हल के आविष्कार से घास के मैदानों का खेती के लिए इस्तेमाल शुरू हुआ; (ख) एक बुनकर, खेती से काफी मात्रा में खाद्य सामग्री उपलब्ध होने से लोगों को शिल्प विकसित करने के लिए पर्याप्त समय और सुविधा मिली। शिल्पियों ने अपनी बनाई वस्तुओं का भोजन तथा अन्य वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए व्यापार किया।

औद्योगिक क्रांति के बाद औद्योगिक समाज विकसित हुए। हाथ से काम करके छोटे पैमाने पर वस्तुओं के उत्पादन के तरीके की समाप्ति और मशीनों के जरिए बड़े पैमाने पर उत्पादन की शुरुआत ही औद्योगिक क्रांति है। अब विभिन्न वस्तुओं के मशीनी उत्पादन में पूँजी और ऊर्जा की लागत अधिक होने लगी तथा श्रम लागत कम। अर्थात् अब मशीनी उत्पादन के लिए पूँजी तथा ऊर्जा के स्रोत मज़दूरों से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गए। खेती में भी मशीनों का इस्तेमाल होने से इस काम में लगे अनेक लोग बेकार हो गए, जिससे इनका शहरों की तरफ आना बढ़ गया। कृषि आधारित समाज से औद्योगिक समाज में परिवर्तन से मनुष्य का अपने पर्यावरण से परस्पर क्रिया का स्वरूप एकदम बदल गया, जिससे पर्यावरण को और नुकसान हुआ। औद्योगिक समाजों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पर्यावरण से लगातार बढ़ती हुई माँगों का ही नतीजा वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा

अपरदन, वन्य जीवन का विनाश जैसे कुप्रभावों के रूप में सामने आया (चित्र 19.3)। आप पहले भी इनके बारे में पढ़ चुके हैं।

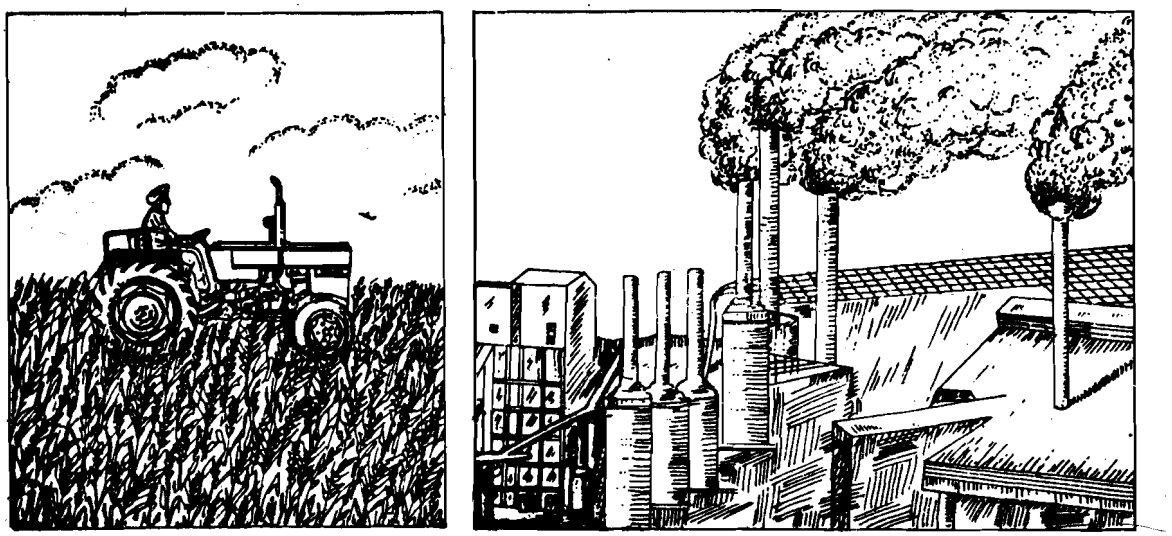

(क) (ख)

चित्र 19.3 : (क) मशीनों से की जाने वाली आधुनिक खेती काफी हद तक ऊर्जा तथा संसाधनों पर निर्भर है, (ख) औद्योगिक क्रांति के पर्यावरण पर पड़े प्रमुख कुप्रभावों में वायु प्रदूषण भी एक है।

आज हम सभी उन्नत प्रौद्योगिकी वाले औद्योगिक समाज के अंग हैं। इस समाज में उत्पादन और उपभोग में भारी वृद्धि हुई है। अवक्रमिक न होने वाले प्लास्टिक जैसे सांश्लेषित पदार्थों और पेट्रोलियम-उत्पादों जैसे ग़ैर-नवीकरणीय संसाधनों का इस्तेमाल बेहद बढ़ा है। ऊर्जा की मांग बढ़ती जा रही है। साथ ही प्रदूषण, संसाधनों का लगातार कम होना, पृथ्वी का ताप बढ़ना (Global warming), परमाण्विक खतरे, स्वास्थ्य संबंधी परेशानियाँ, जैसी पर्यावरण से जुड़ी समस्याएँ और अति-जनसंख्या और अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण जैसी समस्याएँ भी बढ़ती चली जा रही हैं।

जैविक तथा भौतिक प्रणालियों में गड़बड़ी का मुद्दा केवल पर्यावरणविदों के लिए ही चिंता की बात नहीं है। इसके सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दुष्प्रभाव भी हैं, जिनका असर विश्व-व्यापी है। पृथ्वी के संसाधनों के व्यापक दोहन से ग़ैर-नवीकरणीय संसाधनों की कमी और प्रदूषण के साथ-साथ, सभी प्रकार के संसाधनों की पूरी समाप्ति का भी खतरा पैदा हो गया है। मानव जाति का कल्याण मनुष्य और पर्यावरण के बीच उचित ताल-मेल पर निर्भर है। दुर्भाग्य से, प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ हमारे पास पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र को बुरी तरह से प्रभावित करने की क्षमता तो आ गई, परंतु इस तंत्र की कार्य-प्रणाली की समझ हमें अभी भी नहीं है। पर्यावरण की क्षति की पूर्ति कर लेने की प्रकृति के पास बड़ी क्षमता है। लेकिन पर्यावरण में लगातार हो रहे नुकसान की पूर्ति करने की क्षमता की भी सीमाएँ हैं। जनसंख्याओं के अस्तित्व और संसाधन के समुचित उपयोग के मूलभूत नियमों के हमारे अज्ञान से हमारे जैव-मंडल का पारिस्थितिक संतुलन निरंतर बिगड़ रहा है।

अब तक आप समझ गये होंगे कि पृथ्वी पर अपने अस्तित्व के लिए हम सब एक ही जैव-मंडल पर निर्भर हैं। इसके बावजूद हर समुदाय अथवा हर देश दूसरों पर पड़ने वाले असर की बिल्कुल परवाह न करते हुए महज अपने ही अस्तित्व और समृद्धि के प्रयासों में लगा है। कुछ लोग इस रफ्तार से पृथ्वी के संसाधनों का उपभोग कर रहे हैं कि भावी पीढ़ियों के लिए कुछ बचने की गुंजाइश ही नहीं है। जबकि अनेक लोगों के पास उपभोग के लिए इतना कम है कि उनका जीवन सदा भूख, गंदगी, बीमारी और अकाल मृत्यु की आशंकाओं से घिरा रहता है। हमारी असफलता का कारण गरीबी के साथ-साथ समृद्धि के लिए अंधी दौड़ भी है। विश्व के कुछ हिस्सों में हुई समृद्धि अनिश्चित है क्योंकि यह विकसित तरीकों से खेती, वानिकी और उद्योगों से पनपी और इससे कुछ समय तक ही लाभ तथा प्रगति का सुख मिल सकता है। आज, प्रकृति की सहज प्रक्रियाओं में हमारा दखल बढ़ता जा रहा है और हम अक्सर ऐसे फैसले ले लेते हैं, जिनका असर केवल एक देश की सीमा तक ही सीमित नहीं रहता।

फिर भी, उम्मीद अभी बाकी है। परस्पर सहयोग से लोग ज्यादा समृद्ध, न्यायपूर्ण और सुरक्षित भविष्य ला सकते हैं जिससे आर्थिक प्रगति के नए युग में क़दम रखे जा सकते हैं। लेकिन इसके लिए हमें पर्यावरण पर पड़ रहे दबाव के लक्षणों को समझना होगा, उनके कारणों का पता लगाना होगा ताकि पर्यावरणीय संसाधनों का बेहतर प्रबंध हो सके। पर्यावरण के प्रति नया दृष्टिकोण अपना कर मानवीय विकास को सतत गति प्रदान की जा सकती है। आगे के भागों में हम पर्यावरण की समस्याओं के लक्षणों तथा उन्हें दूर करने के नए दृष्टिकोण के विषय में चर्चा करेंगे। परंतु इससे पहले निम्न प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास कीजिए।

बोध प्रश्न 1

पाठ्य सामग्री से उचित शब्द लेकर खाली स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) ..... के विकास से कृषि उत्पादन बढ़ा।

ii) मशीनों के विकास से उत्पादन में ..... अधिक हो गई।

iii) औद्योगीकरण से ..... पदार्थों के उत्पादन और इस्तेमाल की प्रवृत्ति बढ़ी।

iv) पर्यावरण के निरंतर दोहन किए जा रहे संसाधनों की क्षतिपूर्ति की पृथ्वी की क्षमता ..... है।

19.2.1 लक्षण तथा कारण

पिछली इकाइयों में आपने पढ़ा कि पृथ्वी के तापमान में वृद्धि, हवा, पानी, मिट्टी और खाद्य सामग्री की शुद्धता और गुणवत्ता में निरंतर गिरावट, गरीबी, कार्यक्षेत्रों में बढ़ता असंतोष, संसाधनों का हद से ज्यादा दोहन और परमाणु खतरे जैसी समस्याएँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण की समस्याओं से जुड़ी हैं। पर्यावरण के मुद्दों को लेकर लोगों की राय अलग-अलग हो सकती है। कुछ लोग इन मुद्दों को जटिल और भ्रम पैदा करने वाले मानते हैं। अन्य लोग राजनीति, प्रौद्योगिकी के विकास, ऊर्जा के दुरुपयोग और लोगों के प्रकृति के प्रति उपेक्षित रवैये को पर्यावरण की वर्तमान समस्याओं का कारण मानते हैं। इस भाग में हम पर्यावरण की समस्याओं को समझने के लिए तीन अवधारणात्मक मॉडलों पर चर्चा करेंगे।

पिछले खाड़ी युद्ध के दौरान समुद्र में हुए तेल के फैलाव से अनेक पक्षियों तथा अन्य समुद्री जीवों की प्रजातियों के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा हो गया है।

जनसंख्या, संसाधन और प्रदूषण मॉडल

जनसंख्या, संसाधन और प्रदूषण मॉडल प्रदर्शित करता है कि आखेट-आधारित, कृषि-आधारित और आधुनिक, सभी समाजों के सभी लोग अपने अस्तित्व तथा विकास के लिए पर्यावरण से संसाधन ग्रहण करते हैं और इनका इस्तेमाल करते हैं।

संसाधनों के दोहन और उपयोग से वायु, जल या मिट्टी अक्सर प्रदूषित होते हैं, जिससे पर्यावरण के विभिन्न संघटकों पर असर पड़ता है तथा जीवन के अस्तित्व को ही खतरा हो जाता है। उदाहरण के तौर पर, जल प्रदूषण से मछलियाँ मर सकती हैं। खनन या बांध बनाने से भूमि का बड़ा हिस्सा बरबाद होता है और इसमें रहने वाले जीव-जंतुओं का पर्यावरण नष्ट हो जाता है। प्रदूषण को कम से कम करने तथा इस पृथ्वी के अन्य प्राणियों के जीवन को बचाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के ग्रहण और उपयोग के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है।

जैसा कि चित्र 19.4 में दिखाया गया है, मानव जाति पर्यावरण के संसाधनों का दोहन करती है और उनका इस्तेमाल करती है। इन संसाधनों का सावधानी से इस्तेमाल करने से जीवन का स्तर सुधरा और जनसंख्या में वृद्धि हुई। यह निष्कर्ष सकारात्मक प्रतिक्रिया लूप का उदाहरण है, जिसमें एक कारक दूसरे कारक की वृद्धि में सहायक होता है। चित्र में इसे धन (+) के चिह्न वाले तीर से दिखाया गया है। कुछ मामलों में संसाधनों के दोहन और उपयोग से प्राकृतिक संसाधन समाप्त होने लगते हैं अथवा पर्यावरण प्रदूषित होता है जिससे जनसंख्या के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। यह निष्कर्ष नकारात्मक प्रतिक्रिया लूप में दिखाया गया है, जिसमें एक कारक दूसरे कारक को नुकसान पहुँचाता है और उसमें कमी लाता है। मॉडल में इसे ऋण (–) के चिह्न वाले तीर से दिखाया गया है। जनसंख्या, संसाधन, प्रदूषण मॉडल मनुष्य और पर्यावरण के बीच उचित तालमेल न होने से पैदा हुई समस्याओं की अवधारणा स्पष्ट करने का एक तरीका है। जनसंख्या, संसाधन और प्रदूषण के अंतर्संबंधों का संक्षिप्त रूप तालिका 19.1 में दिया गया है।

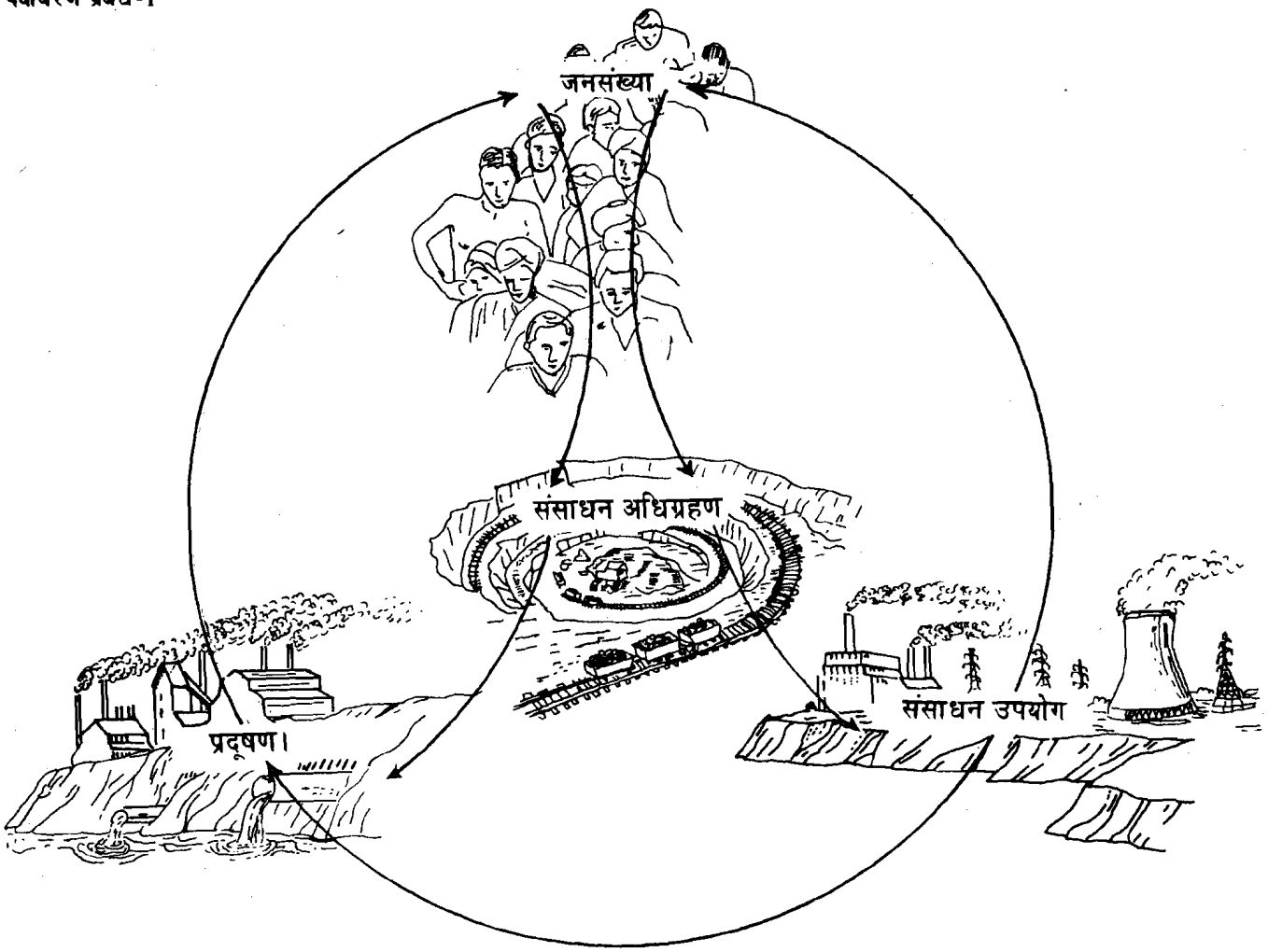

चित्र 19.4 : जनसंख्या, संसाधन और प्रदूषण मॉडल। सकारात्मक प्रतिक्रिया लूप "+" चिह्न वाले तीर से और नकारात्मक प्रतिक्रिया लूप "–" चिह्न वाले तीर से दिखाई गई है।

तालिका 19.1 : जनसंख्या, संसाधन और प्रदूषण के अंतर्संबंधों का सारांश

1) **जनसंख्या का संसाधनों पर प्रभाव**
जनसंख्या के कम-ज्यादा होने तथा किसी देश के सामाजिक, आर्थिक तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास से संसाधनों का दोहन और उपयोग निर्धारित होता है। जनसंख्या तेजी से बढ़ने की स्थिति में ऐसी आशंका रहती है कि संसाधनों के दोहन और उपयोग के परिणामों की कम चिंता की जाए। जनसंख्या में धीमी वृद्धि से ऐसी आशंका कम रहती है। जनसंख्या के वितरण का संसाधनों की आपूर्ति और उपयोग पर असर पड़ता है।

2) **जनसंख्या का प्रदूषण पर प्रभाव**
जनसंख्या बढ़ने से संसाधनों का दोहन और उपयोग होता है, उससे प्रदूषण बढ़ता है। संसाधनों के इस्तेमाल की मात्रा और तरीके से प्रदूषण का स्तर निर्धारित होता है। इससे पर्यावरण बिगड़ता है।

3) **संसाधनों का जनसंख्या पर प्रभाव**
सकारात्मक प्रभाव : नए संसाधनों की खोज और इस्तेमाल से जनसंख्या बढ़ती है, प्रौद्योगिकी का स्तर उन्नत होता है और अपेक्षाकृत प्रतिकूल वातावरण में भी जन-जीवन पनपता है।

नकारात्मक प्रभाव : संसाधनों की समाप्ति और कमी से जनसंख्या वृद्धि रुकती है और प्रौद्योगिकी के विकास पर बुरा असर पड़ता है।

4) **संसाधनों का प्रदूषण पर प्रभाव**
संसाधनों के दोहन बढ़ जाने और नए-नए दोहन के तरीकों से प्रदूषण बढ़ता है। संसाधनों के समाप्त होने से प्रदूषण रुक जाता है।

5) **प्रदूषण का जनसंख्या पर प्रभाव**
प्रदूषण से मृत्यु-दर तथा रोगग्रस्तता बढ़ सकती है, जिससे जनसंख्या वृद्धि और प्रौद्योगिकी का विकास सीमित हो सकता है। दूसरी ओर, प्रदूषण की समस्या बढ़ने से लोगों का दृष्टिकोण बदल सकता है, जिसके परिणामस्वरूप संसाधनों के दोहन और उपभोग के नियम बदले जा सकते है।

6) **प्रदूषण का संसाधनों पर प्रभाव**
एक अजैविक कारक, जैसे हवा के प्रदूषण से दूसरा अजैविक कारक, जैसे मिट्टी नष्ट हो सकती है। प्रदूषण रोकने के लिए बनाए गए नए नियमों से संसाधनों की मांग, आपूर्ति, दोहन तथा उपयोग में परिवर्तन आ सकते हैं।

बहुलित कारक और प्रभाव मॉडल

इस मॉडल का उद्देश्य पर्यावरण की मौजूदा समस्याओं को विभिन्न मुद्दों के स्तर पर देखना है। इसमें दिखाया गया है कि इन समस्याओं के अनेक कारण हैं। जैसे जनसंख्या, प्रति व्यक्ति उपभोग, अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी, जन-नीतियां, राजनीति, जीवविज्ञान, मनोविज्ञान और संस्कृति (देखिए चित्र 19.5)। हम यहां इन कारकों की बड़े संक्षेप में चर्चा करेंगे।

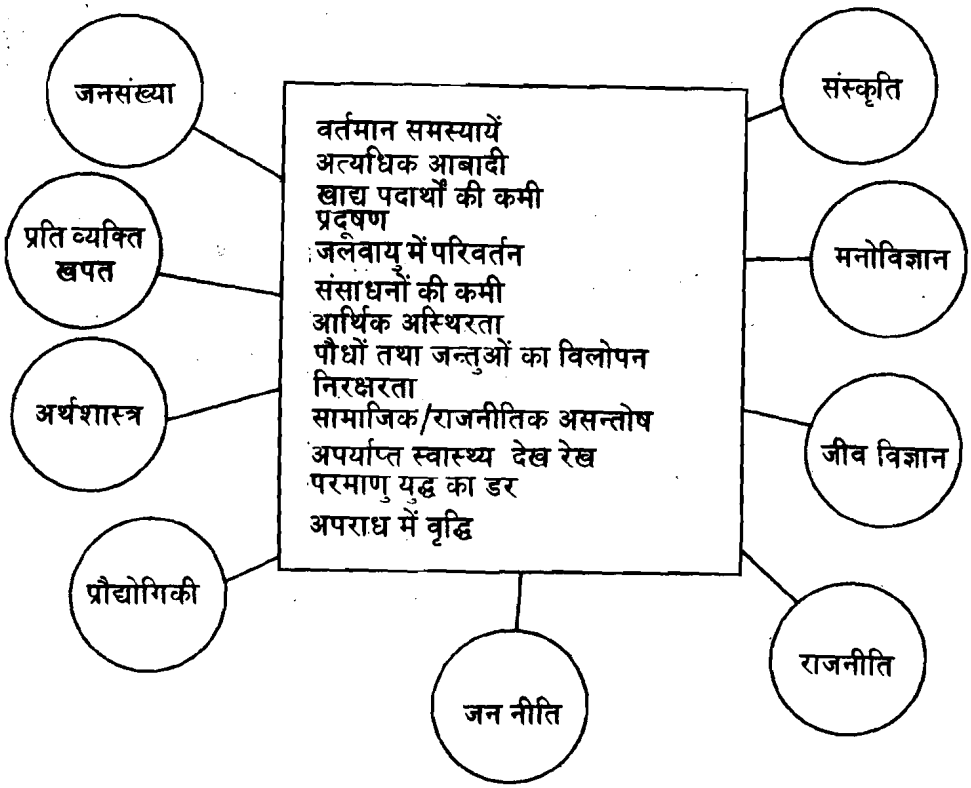

चित्र 19.5 : पर्यावरण संबंधी समस्याएं पैदा करने वाले विभिन्न मुद्दों का अलग-अलग अध्ययन करने के

मानव जनसंख्या भोजन, वस्त्र और आवास की बढ़ती हुई ज़रूरतें पूरी करने के लिए वन्य जीवन को नष्ट करती है और पर्यावरण को प्रदूषित करती है। विकास प्रक्रिया से जुड़े कार्यों से वृक्ष काटकर सड़कें और घर बनाना तथा फैक्ट्रियों के कचरे से वायु और जल प्रदूषण फैलाने, जैसी समस्याएं और बढ़ती हैं। जनसंख्या जितनी ज्यादा होगी, पर्यावरण को उतना ही अधिक नुकसान होगा।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा संसाधनों के उपभोग में तेज वृद्धि अर्थात् **प्रति व्यक्ति उपभोग** में वृद्धि से भी पृथ्वी के नवीकरणीय तथा ग़ैर-नवीकरणीय दोनों तरह के संसाधनों पर दबाव बढ़ा है।

आर्थिक कारक भी वन्य जीवन की समाप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, ज़मीन के नीचे गहराई से कोयला निकालने की तुलना में सतह से कोयला निकालना सस्ता है, लेकिन प्राकृतिक पर्यावास (Natural habitat) के लिए यह ज्यादा विनाशकारी है। व्यापार में, अर्थशास्त्र में अक्सर बाहरी लागत अर्थात् प्रदूषण रोकने, वन्य जीवों और वनस्पतियों के रहन-सहन यानि पर्यावास को सुरक्षित रखने और पर्यावरण संबंधी अन्य कार्यों पर आए खर्च को उत्पादन की लागत में शामिल नहीं किया जाता। इन बाहरी या ऊपरी व्ययों को उत्पादन लागत में अवश्य शामिल किया जाना चाहिए ताकि जो लोग किसी वस्तु-विशेष या ऊर्जा का उपभोग करते हैं, केवल उन्हें ही इसकी ज्यादा कीमत देनी पड़े। अन्यथा ऐसी वस्तुओं का उपभोग न करने वाली जनता को, जो पर्यावरण के निम्नीकृत होने से अन्य जीव-जंतुओं के साथ ही तकलीफें उठाती हैं, पर्यावरण के नष्ट होने से बचाव के लिए बाहरी व्ययों का खर्च वहन करना पड़ता है। यह खर्च जनता वर्धित कर के रूप में वहन करती है।

दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ बिजलीघर से रोज़ाना करीब 8 टन राख निकलती थी। बिजलीघर की चिमनियों में कॉटरेल प्रेसिपिटेटर (Cottrel Precipitator) लगाने से यह राख निकलना कम हुआ है हालांकि इलेक्ट्रॉस्टेटिक प्रेसिपिटेशन पर आधारित यह प्रक्रिया खर्चीली है।

प्रौद्योगिकी ने हमें इस पृथ्वी पर जीवित रहने और आगे बढ़ने में मदद दी है। हमें ऐसे पर्यावरण में भी फलने-फूलने के साधन दिए हैं, जहां जीवन असंभव था। लेकिन इसके साथ ही, प्रौद्योगिकी के गलत उपयोग से वन्य जीवन नष्ट हुआ है और पृथ्वी के संसाधनों का अंधाधुंध दोहन हुआ है।

कानूनी प्रणालियों की मदद से **जन-नीतियां** वन्य-जीवन को नष्ट होने से बचाने और वनों का नष्ट होना रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अवैध शिकार, वन्य-जीवन को नष्ट करने, वनों में पेड़ काटने, जनसंख्या वृद्धि, संसाधनों के इस्तेमाल आदि पर रोक लगाने वाले कानून हैं। उदाहरण के लिए 1970 के दशक से पहले सतह से कोयला खनन से संबंधित बहुत कम कानूनी नियंत्रण थे। परिणामस्वरूप इस तरह कोयला निकालकर बड़े पैमाने पर ज़मीन बंजर बना दी गई। अब ऐसे कानून हैं कि कोयला निकालने वाले ठेकेदार को कोयला निकालने के बाद ऐसी ज़मीन को फिर हरा-भरा और कृषि के लिए उपयुक्त बनाकर ही इसे छोड़कर जाना होगा। इस पाठ्यक्रम में बाद में आप मानव पर्यावरण प्रबंध और संरक्षण के कानूनी पक्षों के बारे में और पढ़ेंगे। हालांकि यह भी सही है कि वन्य जीवन और वनों के संरक्षण से जुड़े कानूनी प्रावधानों को अक्सर **राजनैतिक** हस्तक्षेप के कारण अनदेखा कर दिया जाता है।

पर्यावरण के साथ अनुकूलन (Adaptability), पैदा होने वाले बच्चों की संख्या, पर्यावरण प्रदूषण के प्रति जीवों की संवेदनशीलता के भिन्न-भिन्न स्तर आदि **जीव वैज्ञानिक** कारणों से भी विभिन्न वन्य प्रजातियों को खतरा हो जाता है। उदाहरण के लिए, किसी विशिष्ट माहौल में ही रह पाने वाली कुछ प्रजातियां मानवीय गतिविधियों से पर्यावरण में आए परिवर्तनों के खुद को अनुकूल नहीं बना पातीं और नष्ट हो जाती हैं।

पर्यावरण के प्रति हमारा **मनोविज्ञान** यह होता है कि हम पृथ्वी के भविष्य से कहीं ज्यादा चिंता अपनी तुरंत पूरी होने वाली ज़रूरतों और आराम की करते हैं। हमारी जनसंख्या बहुत अधिक है और हमारे पास प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की उन्नत प्रौद्योगिकी उपलब्ध है। इसीलिए अक्सर पृथ्वी का भविष्य न देखकर अपना ही लाभ देखने की हमारी विवेक-हीनता से पर्यावरण की अनेक समस्याएं पैदा होती हैं।

संस्कृति से यह निर्धारित होता है कि आपका दृष्टिकोण स्वार्थी है या दूसरे का ध्यान रखने का है। दूसरों का ध्यान रखने में उनके हितों की ओर पर्यावरण की चिंता भी जुड़ जाती है। स्वार्थी दृष्टिकोण में पर्यावरण या दूसरों की चिंता किए बिना केवल अपना ही लाभ देखा जाता है।

प्रभाव विश्लेषण मॉडल

इस मॉडल में पृथ्वी के वायु, जल, भूमि जैसे अजैविक तथा जंतुओं, वनस्पतियों और अन्य छोटे-छोटे प्राणियों आदि जैविक घटकों पर मानवीय गतिविधियों का प्रभाव देखा जाता है।

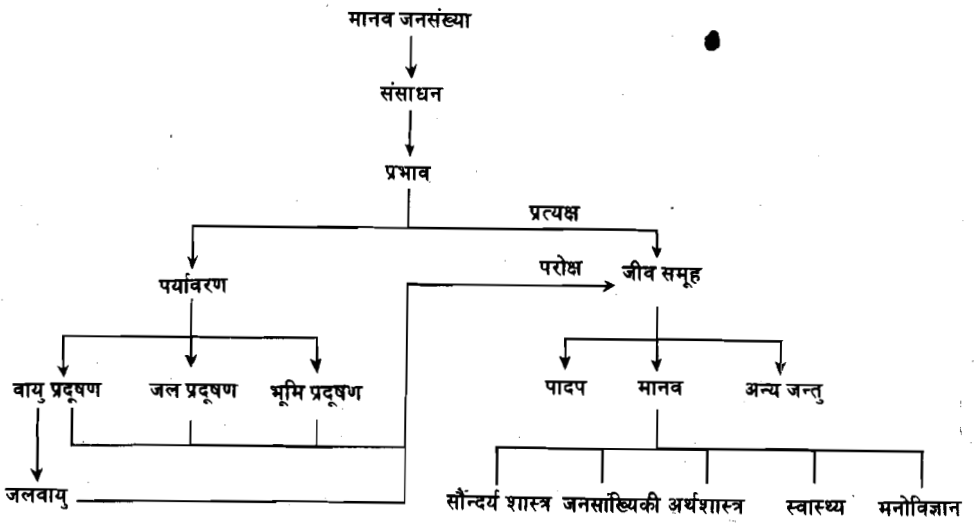

चित्र 19.6 : प्रभाव विश्लेषण मॉडल, जिसमें मानवीय गतिविधियों का पर्यावरण और अन्य जीवों पर प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव दिखाया गया है।

चित्र 19.6 में मानवीय गतिविधियों के पर्यावरण और अन्य जीवों पर पड़ने वाले असर का सार दिया गया है। जीव समूह पर मानवीय गतिविधियों का सीधे असर पड़ सकता है और साथ ही पर्यावरण के नष्ट होने से अप्रत्यक्ष असर भी पड़ सकता है। हम कोयले की खुदाई और ईंधन के रूप में उसके इस्तेमाल का उदाहरण लेकर प्रभाव विश्लेषण मॉडल की चर्चा करेंगे।

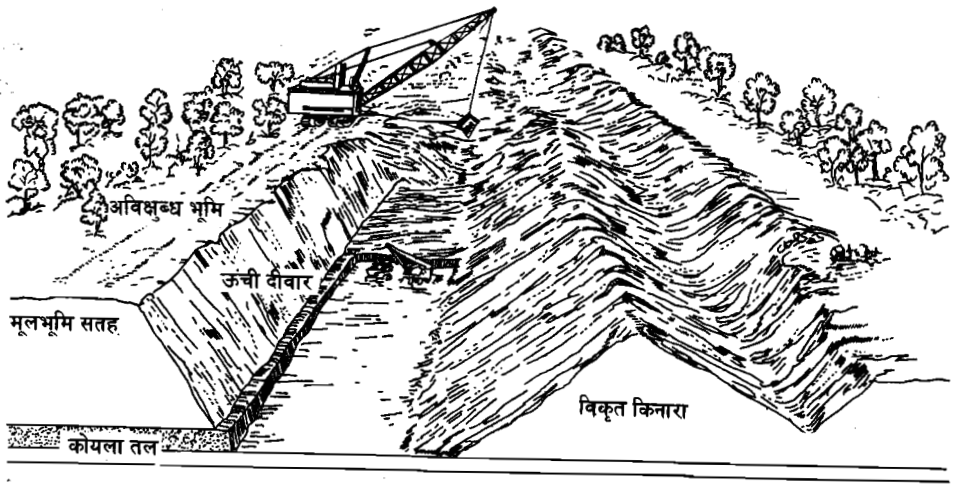

चित्र 19.7 : कोयला खानों से कोयला निकालने से भूमि की सामान्य संरचना नष्ट हो जाती है। अगर भूमि को फिर से उपजाऊ बनाने के पूरी सावधानी से प्रयास न किए जाएं तो वह पूरी तरह बरबाद हो जाती है।

पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों में वायु, जल और भूमि प्रदूषण शामिल हैं। खान से कोयला निकालने और खानों के पास भारी वाहनों के आने-जाने जैसे संबद्ध कार्यों से वायु प्रदूषण हो सकता है। ताप बिजलीघरों में कोयला जलाने से कहीं ज्यादा तीव्र वायु प्रदूषण होता है। करीब दस लाख लोगों को बिजली पहुंचाने वाला 1000 मेगावाट का कोयले से चलने वाला ताप बिजली संयंत्र हर साल औसतन 1,500 से 30,000 मीट्रिक टन धुंआ और राख फेंकता है और 11,000 से 1,10,000 टन सल्फर डाइऑक्साइड गैस फेंकता है। खानों से कोयला निकालने से जल प्रदूषण भी होता है। उदाहरण के लिए, कोयला निकालने के बाद बेकार छोड़ी गई भूमिगत खानों में गंधक युक्त लवण जैसे आयरन पाइराइट्स, ऑक्सीजन और पानी से प्रतिक्रिया करके बेहद जलनशील गंधक का अम्ल (सल्फ्यूरिक अम्ल) बनाता है, जो खानों से रिसकर पास की नदियों, झीलों आदि में जाता है।

खानों से कोयला निकालने से ज़मीन भी बरबाद होती है। कोयला खोदने से ज़मीन की सतह फट जाती है और इससे मिट्टी की सामान्य संरचना, वनस्पति आवरण और जीवों के लिए अनुकूल ऊपरी सतह नष्ट हो जाती है चित्र (19.7)।

मानवीय कार्यों से हुए पर्यावरण प्रदूषण से पृथ्वी के जीवों पर परोक्ष प्रभाव भी होते हैं। उदाहरण के लिए, ईंधन के तौर पर कोयले का इस्तेमाल करने वाले बिजलीघरों से पैदा हुई सल्फर डाइऑक्साइड वर्षा अथवा हिमपात के साथ ज़मीन पर आ जाती है। इस प्रक्रिया से अनेक झीलें अम्लीय हो गई हैं और इससे उनमें रहने वाले सभी जीव नष्ट हो गए हैं। इस तरह ये झीलें जीवों के लिए बेकार हो गई हैं। कोयला खानों से अम्लों के रिसने से जल प्रदूषण होता है जिससे पानी के जीव मर जाते हैं। इससे धातु के बने पुलों, पंपों और अन्य वस्तुओं का भी क्षय होता है और इस प्रकार मरम्मत का और उन्हें बदले जाने का खर्च बढ़ता है। कोयला खोदने के बाद ज़मीन को फिर उर्वर बनाए बिना वैसे ही छोड़ देने से तथा प्राकृतिक वनस्पतियों के नष्ट होने से मृदा अपरदन होता है जिससे आस-पास की नदियों-झीलों में तलछट जमने लगती है। इससे तली में रहने वाले जीवों के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कैसे मानवीय कार्यों से हुए पर्यावरण प्रदूषण से जीव समूहों पर असर पड़ता है।

मानवीय कार्यों का जीव समूहों पर प्रत्यक्ष प्रभाव भी पड़ता है। खनन कार्य से भूमिगत जल के प्रवाह में बाधा आती है और वह प्रदूषित हो जाता है। ज्यादातर खनन कार्य वनों वाले इलाके में होता है जिससे वन नष्ट होते हैं और मिट्टी का अपरदन होता है। भूमिगत खनन में खानों की गैलरियों की छतें टिकाने के लिए इस्तेमाल होने वाली लकड़ी वनों से ही काटी जाती है। केवल गोआ में ही 43 प्रतिशत वन क्षेत्र में खनन कार्य के ठेके दिए गए हैं। भूमिगत खानें खनन कार्य के दौरान या बाद में धंस भी सकती हैं। इससे लोगों की जाने तक जा सकती हैं। काम करने की स्थितियों में सुधार के बावजूद, अब भी कोयला खानों में अन्य सभी पेशों से ज्यादा खतरा है। भूमिगत कोयला खानों में सांस लेने से कोयले की धूल तथा अन्य पदार्थों के फेफड़ों में चले जाने से ब्लैकलंग डिसीज़ या न्यूमोकोनियोसिस (Blacklung Disease or Pneumoconiosis) नाम की बीमारी हो जाती है। इसके मरीज के फेफड़ों के छोटे-छोटे खानों (Alveolus) के घायल हो जाने से वह पर्याप्त ऑक्सीज़न नहीं ले पाता (चित्र 19.8)।

(क) (ख)

चित्र 19.8 : (क) सामान्य फेफड़े की अनुप्रस्थ काट,
(ख) कोयला खान में काम कर चुके मज़दूर के फेफड़े की अनुप्रस्थ काट

कोयला खोदने का काम बढ़ने से आसपास के शहरों की जनसंख्या का स्वरूप बदल जाता है। हल्की जनसंख्या वाले इलाकों पर कोयला खानों के मज़दूर बेतरतीब तरीके से रहने लगते हैं जिसके अनेक बुरे परिणाम होते हैं। जैसे आवासीय संरचना पर भारी बोझ, जल आपूर्ति तथा जल-मल व्यवस्था की बुरी स्थिति, अस्पतालों, स्कूलों और मनोरंजन के साधनों का अभाव और स्वास्थ्य संबंधी, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं में वृद्धि।

कोयला निकालने से जुड़े मानवीय कार्यों के पर्यावरण पर पड़ने वाले इन प्रभावों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संसाधनों के अंधाधुंध दोहन की समाज को कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। इसलिए समाज को इन समस्याओं के प्रति जागरूक होकर इन्हें कम करने का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार, कोयला, तेल या परमाणु ऊर्जा जैसे संसाधनों के विकास में किसी विशिष्ट प्रौद्योगिकी के प्रभाव के अध्ययन के लिए प्रभाव विश्लेषण मॉडल उपयुक्त है।

बोध प्रश्न 2

क) पर्यावरण की जटिल समस्याओं को समझाने वाले तीन अवधारणात्मक मॉडलों का नाम बताइए और उनमें से एक के बारे में नीचे दिए गए खाली स्थान में संक्षेप में बताइए।

.....

.....

.....

.....

ख) खाली स्थानों पर उपयुक्त शब्द भरिए:

i) संसाधनों के ग्रहण और उपयोग से पर्यावरण के विभिन्न घटक ..... होते हैं।
ii) अर्थशास्त्र में उत्पादन प्रक्रिया में होने वाले प्रदूषण को रोकने की लागत को ..... कहते हैं।
iii) विभिन्न जंतुओं और वनस्पतियों का प्रदूषण फैलाने वाली वस्तुओं के प्रति संवेदनशीलता का स्तर ..... होता है।
iv) मानवीय कार्यों का हमारे जैवमंडल के ..... पर ..... और परोक्ष प्रभाव होते हैं।

19.2.2 गरीबी, विकास और पर्यावरण

अपेक्षाकृत अमीर लोगों के जीवन-स्तर के उन्नत होते चले जाने से प्राकृतिक संसाधनों की बढ़ती मांग और बढते हुए प्रदूषण से अक्सर पर्यावरण-संबंधी परेशानियां तो पैदा ही होती हैं लेकिन, गरीबी भी वातावरण को प्रदूषित करती है। गरीब-भूखे लोग अक्सर अपनी तात्कालिक ज़रूरतों को पूरा करने और जिंदा रहने के लिए आसपास के पर्यावरण को नष्ट कर देते हैं। वे वनों को काटते हैं, उनके मवेशी चरागाहों को चट कर जाते हैं और वे अपनी जरा-सी कष्टकृष्य भूमि (Marginal Land) पर भी क्षमता से अधिक फसल उपजाने की कोशिश करते हैं। जनसंख्या बढ़ने पर वे पहले ही घने बसे शहरों की ओर भागते हैं और वहां भीड़ बढ़ाते हैं। इन परिवर्तनों के असर इतने व्यापक हैं कि गरीबी अपने आप में एक बड़ी विश्वव्यापी समस्या बन गयी है।

विकसित देश वे देश माने जाते हैं, जहां प्रौद्योगिकी काफी उन्नत है और जीवन-स्तर आम तौर पर ऊँचा है। अल्पविकसित देश वे गरीब देश हैं, जिन्होंने अभी तक भी बीसवीं शताब्दी की प्रौद्योगिकी की प्रगति का लाभ नहीं उठाया है। विकासशील देश ऐसे देश हैं जिन्होंने आधुनिकीकरण के लिए काफी प्रयास किए हैं, परंतु पूरी तरह सफल नहीं हुए हैं। विकासशील और अल्पविकसित देशों को तीसरी दुनिया के देश भी कहते हैं।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में चिकित्सा, कृषि और औद्योगिक प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति से ऐसा लगता था कि हर व्यक्ति को लंबी ज़िंदगी, बढ़िया भोजन, अच्छा आवास और संतोषप्रद रोज़गार मिल सकेगा। लेकिन 1987 में यह स्थिति थी कि दुनिया की 5 अरब आबादी का एक-चौथाई हिस्सा तो धनी, विकसित देशों में ऐशो-आराम से जी रहा है, पर बाकी तीन चौथाई लोग दुनिया के गरीब हिस्सों में गुजर-बसर कर रहे हैं। इनमें से सबसे गरीब देश अल्प-विकसित और इन दो छोरों के बीच आने वाले देश विकासशील देश कहे जाते हैं। अल्प-विकसित और विकासशील देशों में अनेक लोगों के पास मात्र जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरी करने और स्वस्थ रहने भर के साधन हैं, जबकि लाखों लोग गरीबी की रेखा के भी नीचे जीते हैं। विश्व बैंक के एक अध्ययन के अनुसार, दुनिया की आबादी के छठे हिस्से अर्थात् 80 करोड़ लोगों को इतना भी भोजन नहीं मिल पाता कि उन्हें अपने सामान्य क्रियाकलाप के लिए पूरी ऊर्जा मिल सके। विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation) के अनुसार अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और एशिया के

कुछ गरीब देशों में 70 से 80 प्रतिशत बच्चों को कुपोषण से इतना ज्यादा नुकसान पहुँचा है कि वे अपने जीवन में कभी भी पूर्ण ऊर्जावान और स्वस्थ नहीं हो सकेंगे (चित्र 19.9)।

चित्र 19.9 : भूख से पीड़ित बच्चा

विकसित देशों में रह रहे दुनिया के एक-चौथाई लोग हर वर्ष मानव जाति द्वारा उपभोग किए जाने वाले संसाधनों में से 80 प्रतिशत का उपभोग करते हैं। बाकी तीन-चौथाई लोग केवल 20 प्रतिशत संसाधनों से अपना काम चलाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या, विश्व की जनसंख्या का केवल 5 प्रतिशत है, लेकिन वहां के लोग विश्व के 35 प्रतिशत कच्चे माल का उपभोग करते हैं। गरीब तथा अमीर देशों के बीच अंतर बढ़ता जा रहा है। तालिका 19.2 में विभिन्न देशों के लोगों के जीवन-स्तर की असमानताएँ प्रदर्शित की गई हैं।

तालिका 19.2 : विकसित, विकासशील और अल्पविकसित देशों के लोगों के जीवन-स्तर की विषमताएं।

देश	औसत प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद (रु. में)	बाल मृत्यु दर	संभावित आयु (वर्षों में)	जनसंख्या के जिस हिस्से को स्वच्छ पानी मिलता है (प्रतिशत में)	वयस्कों की साक्षरता दर (प्रतिशत में)	स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति व्यय (रु. में)
अल्पविकसित देश	3480	110	45	31	28	34
विकासशील देश	10500	94	68	41	55	130
विकसित देश	124600	17	72	100	98	4880

इन असमानताओं से गरीब देशों के जीवन-स्तर में भारी कमी के साथ-साथ यह भी स्पष्ट होता है कि भविष्य में भी अपना स्तर सुधारने में ये देश कितने असहाय हैं। ज्यादातर गरीब देश अपने प्राकृतिक संसाधनों के निर्यात से होने वाली आय पर निर्भर हैं। ऐसी आय

पर व्यापारिक स्थितियों में परिवर्तन का काफी असर होता है। जब तक व्यापारिक संबंध ज्यादा समतापूर्ण नहीं होंगे, इन देशों के संसाधनों के निरंतर कम होने की आशंका बनी रहेगी और निर्यात के लिए संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से इन देशों के पर्यावरण को अपूर्णीय क्षति पहुँचेगी।

खुद इन देशों में भी भूमि तथा अन्य साधनों के असमान वितरण की स्थिति है। जिससे गरीबी निरंतर बढ़ती जा रही है। जनसंख्या में तेज वृद्धि से भी जीवन-स्तर सुधर पाने की गुंजाइश नहीं रही है। कृषि भूमि पर निर्यात की जा सकने वाली व्यापारिक फसलों को ज्यादा से ज्यादा उगाने की मांग बढ़ते जाने से बहुत छोटे किसानों के पास उपजाऊ ज़मीन और कम होती जा रही हैं।

बड़े पैमाने पर वनों के कटने, जमीन पर उसकी क्षमता से ज्यादा फसलें उगाने, मकान बनाने और व्यापारिक कार्यों में भूमि के इस्तेमाल से बाढ़ और सूखे जैसे प्राकृतिक प्रकोप हुए हैं। इन विभीषिकाओं के शिकार मुख्य रूप से गरीब देशों के बेहद गरीब लोग हुए हैं और पर्यावरण के बिगड़ने से उनका जीवन और भी कठिन तथा अनिश्चित हो गया है। इन देशों की सरकारों की आर्थिक स्थिति खराब है। और ऐसी प्राकृतिक विभीषिकाओं से निपटने के लिए न तो उनके पास धन है, न ही ज़रूरी साधन। दूसरी तरफ, जनसंख्या बढ़ने और प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होने से विभिन्न वस्तुओं और ऊर्जा का उपभोग बढ़ा है। इस तरह हम देखते हैं कि पर्यावरण की समस्याएं विकास न होने और विकास की प्रक्रियाओं—दोनों ही कारणों से पनपती हैं। ज्यादा जीवन-क्षम तथा अच्छे भविष्य के लिए किए गए प्रयास तभी सार्थक होंगे जब विनाश के साधनों को पनपाने वाली विकास प्रक्रिया को छोड़ दिया जाए।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए स्थान में बहुत संक्षेप में बताइए कि ग़रीबी पर्यावरण संबंधी समस्याओं को कैसे बढ़ाती है ?

.....

.....

.....

.....

अब तक आपने विकास प्रक्रियाओं से जुड़ी पर्यावरण की समस्याओं के बारे में पढ़ा। आपको हमारे भविष्य के खतरों के लक्षण और कारण समझाने वाले कुछ मॉडलों की भी जानकारी दी गई। अगले भाग में हम सतत विकास (sustainsle development) की धारणा को समझाएंगे। इसका अर्थ ऐसे विकास से है जिससे हमारी आज की ज़रूरतें तो पूरी हों, परंतु भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरी करने की क्षमता में कमी न आए।

19.3 सतत विकास की ओर

पर्यावरण और विकास के बीच अटूट संबंध है। पर्यावरण के निम्नीकरण से तथा संसाधनो के लगातार कम होने की स्थिति में विकास जारी नहीं रह सकता और यदि विकास के दौरान पर्यावरण की समस्याओं को अनदेखा किया तो पर्यावरण का संरक्षण नहीं हो सकता। पर्यावरण के उचित प्रबंध और विकास को स्थायी बनाए रखने की विफलता से हमारे अस्तित्व को खतरा हो गया है। इस प्रकार पर्यावरण बनाम विकास के मुद्दे से हम सतत विकास की धारणा तक पहुंचे हैं। अब हम इस धारणा की चर्चा करेंगे।

19.3.1 सतत विकास की अवधारणा

सतत विकास प्रौद्योगिकी और समाज द्वारा वर्तमान तथा भावी जरूरतों को पूरा करने की पर्यावरण की क्षमता पर लगाई गई सीमाओं की अवधारणा है। विश्व पर्यावरण और विकास आयोग ने सतत विकास की इन शब्दों में परिभाषा दी है—"यह परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, प्रौद्योगिकी के विकास और संस्थागत परिवर्तनों की दिशा के बीच तालमेल हो और जिससे मानवीय आवश्यकताओं

सतत विकास की अवधारणा से पर्यावरण नीतियों और विकास कार्यक्रमों की ऐसी समाकलित रूपरेखा स्पष्ट होती है जिनमें अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर की परिस्थितियों को ध्यान में रखा गया हो। विकास की प्रक्रिया में उन प्राकृतिक प्रणालियों को खतरे में नहीं डाला जाना चाहिए, जिनसे इस पृथ्वी का जीवन बना हुआ है। आज की औद्योगिक दुनिया में अनेक लोग अस्थायी विकास की मानसिकता यानि फ्रंटियर मेन्टैलिटी (Frontier Mentality) में जीते हैं। उनका दृष्टिकोण मनुष्य-केन्द्रित है और उनके बुनियादी विचारों में निम्न कमियां हैं :

- मानव जाति के इस्तेमाल के लिए विश्व में संसाधनों की असीमित आपूर्ति है और यह हमेशा रहेगी।
- मनुष्य प्रकृति से अलग है।
- प्रकृति को जीता जा सकता है।

प्रकृति के प्रति इस दृष्टिकोण पर चलते हुए, प्रौद्योगिकी के विकास से पृथ्वी के संसाधनों के इस्तेमाल की हमारी क्षमता तो बढ़ी है, परंतु साथ ही पर्यावरण को होने वाला नुकसान भी बढ़ा है। लेकिन अब यह बात महसूस की जा रही है कि हम सीमित संसाधनों वाले विश्व में रहते हैं और लगातार बढ़ते भौतिक उपभोग से पर्यावरण के जीवनदायी घटकों को नुकसान पहुँचेगा।

इस तरह, सतत विकास की धारणा हमें संसाधनों के उपभोग की नई नीति का रास्ता दिखाते हैं। इस नीति की मुख्य बातें निम्न हैं :

- संरक्षण या संसाधन उपयोग में कमी करना।
- संसाधनों का पुनश्चक्रण तथा दोबारा इस्तेमाल।
- तेल और कोयला जैसे गैर-नवीकरणीय संसाधनों की अपेक्षा सौर ऊर्जा जैसे नवीकरणीय संसाधनों का अधिक उपयोग।

सतत विकास का मतलब यह भी है कि विश्व के सभी वंचित लोगों की बुनियादी जरूरतें पूरी हों और सभी लोगों को बेहतर जीवन बिताने का मौका मिल सके। अन्यथा ऐसे विश्व में, जहां गरीबी और असमानता व्याप्त रहेगी, हमेशा पारिस्थितिकीय तथा अन्य प्रकार के खतरों का डर बना रहेगा। गांधी जी के शब्दों में, "पृथ्वी पर हर व्यक्ति की जरूरत को पूरा करने के लिए तो काफी है, परंतु किसी व्यक्ति के लालच को पूर्ण करने के लिए नहीं है।" अस्थायी विकास की मानसिकता वाले समाज और सतत विकास की अवधारणा वाले समाज के दृष्टिकोण की तालिका 19.3 में तुलना की गई है।

तालिका 19.3 : अस्थायी विकास वाले तथा सतत विकास वाले समाजों की धारणाओं की तुलना

अस्थायी विकास वाला समाज	सतत विकास वाला समाज
1) पृथ्वी पर संसाधनों का असीमित भंडार है।	पृथ्वी पर संसाधनों की सीमित आपूर्ति है।
2) किसी स्थान पर संसाधनों की आपूर्ति समाप्त हो जाने पर उसे छोड़ कर दूसरे स्थान पर चले जाना चाहिए।	नवीकरणीय संसाधनों के पुनश्चक्रण तथा दोबारा उपयोग से उनका समाप्त होना रोका जा सकता है।
3) भौतिक संपत्ति में निरंतर वृद्धि से जीवन बेहतर होगा।	जीवन की गरिमा भौतिक संपत्ति पर निर्भर नहीं है।
4) किसी परियोजना की लागत वस्तुओं, ऊर्जा और श्रम की लागत से निर्धारित होती है।	परियोजना की लागत में वस्तुओं, ऊर्जा और श्रम के अलावा बाहरी लागत, जैसे स्वास्थ्य और पर्यावरण को होने वाले नुकसान की लागत का भी जोड़ा जाना चाहिए।
5) प्रकृति पर विजय पाई जानी चाहिए।	हमें प्रकृति को समझ कर उसके साथ सहजीवी संबंध बनाना चाहिए।
6) नई प्रौद्योगिकी और नए नियमों से पर्यावरण की समस्याएँ हल की जा सकती हैं।	हमें निजी स्तर पर जागरूक होकर इन समस्याओं को हल करने का प्रयास करना होगा।
7) हम प्रकृति से अलग और उससे श्रेष्ठ हैं।	हम प्रकृति के अंग हैं और हमें उसके नियमों को मानना चाहिए।
8) हर मानवीय कार्य में कुछ बरबादी होना स्वाभाविक है।	बेकार चीजों को फिर इस्तेमाल योग्य बनाकर बरबादी कम से कम की जानी चाहिए।

19.3.2 समता और समान हित

पारिस्थितिक क्रियाएं किसी एक व्यक्ति के इलाके या किसी देश के राजनैतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहती। उदाहरण के लिए, किसी एक खेत में, खासतौर से छोटे खेतों में, इस्तेमाल किए गए सिंचाई के तरीके, कीटनाशकों और उर्वरकों का असर दूसरे खेतों पर भी पड़ता है।

पृथ्वी के विभिन्न घटकों की परस्पर निर्भरता को पारंपरिक सामाजिक प्रणालियों में भी स्वीकार किया गया। उन समाजों में भी कृषि पर सामुदायिक नियंत्रण अथवा पानी, वनों तथा ज़मीन पर पारंपरिक अधिकारों जैसी बातें लागू थीं। लेकिन प्रौद्योगिकी की तेज प्रगति के साथ-साथ परंपरागत समुदायों का निर्णय लेने का दायित्व उनसे छिन गया।

परस्पर निर्भरता केवल स्थानीय तथ्य नहीं है। उत्पादन में तेज वृद्धि ने इसके भौतिक और आर्थिक, दोनों रूपों का अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक विस्तार कर दिया है। पर्यावरण की दृष्टि से क्षेत्रीय और विश्व स्तर पर अनेक खतरे बढ़ रहे हैं, जैसे खनिज तेलों के अति-उपभोग से विश्वभर का तापमान बढ़ रहा है और क्लोरोफ्लोरो कार्बनों के ज्यादा इस्तेमाल से ओज़ोन पर्त के समाप्त होने का खतरा बढ़ा है।

किसी प्रणाली के पारिस्थितिकी की दृष्टि से खतरे की सीमा तक पहुंच जाने पर असमानताएं और बढ़ जाती हैं। उदाहरण के लिए, वायु का प्रदूषण स्तर बढ़ने से बिना किसी सुरक्षा के जी रहे, गंदे और प्रदूषित माहौल में रहने वाले गरीबों के स्वास्थ्य को ज्यादा खतरा रहता है। जबकि अपेक्षाकृत साफ-सुथरे माहौल में रह रहे अमीरों को यह खतरा कम होता है, जिनके पास प्रदूषण से बचने के और स्वास्थ्य को ठीक रखने के उपाय भी हैं। इसी तरह, खनिज संसाधनों के कम होने से उन देशों को सस्ते कच्चे माल का लाभ नहीं मिल पाता, जहां औद्योगीकरण देर से हुआ है। विश्व के अमीर देश आर्थिक और प्रौद्योगिकी की दृष्टि से, संसाधनों के कम होने और पर्यावरण के बिगड़ने का मुकाबला करने की बेहतर स्थिति में हैं।

हम कह सकते हैं कि सतत विकास में समान हित की भावना जगा पाने की हमारी अक्षमता के पीछे देशों की आंतरिक व्यवस्था में तथा विभिन्न देशों के बीच आर्थिक और सामाजिक न्याय की उपेक्षा है। लेकिन समान हित को लेकर एकजुट हो पाना तब कम मुश्किल होगा, जब विकास और पर्यावरण से जुड़ी सभी समस्याओं को समग्र रूप में लेकर समूची मानव जाति के हित में उन्हें सुलझाया जाए। इसके साथ ही, विश्व स्तर पर अंतः संबंद्ध के प्रति हमारी बढ़ती जागरुकता से भी विकास के प्रति ज्यादा विवेकपूर्ण दृष्टिकोण पनपेगा।

बोध प्रश्न 4

1) कॉलम-I में दिए गए कथनों का और कॉलम-II के कथनों से मिलान कीजिए। दिए गए खानों में उत्तर लिखिए।

कॉलम-I		कॉलम-II
i) अस्थायी विकास की मानसिकता	☐	क) पृथ्वी के संसाधनों का संरक्षण, पुनश्चक्रण तथा दुबारा इस्तेमाल।
ii) सतत विकास वाला समाज	☐	ख) देशों की आंतरिक व्यवस्था में और विभिन्न देशों की बीच आर्थिक और सामाजिक न्याय की आवश्यकता है।
iii) समान हितों को बढ़ावा देना।	☐	ग) मनुष्य सबसे ऊपर और प्रकृति से अलग है।
iv) पारंपरिक सामाजिक प्रणाली	☐	घ) कृषि कार्यों पर समुदाय का नियंत्रण।

19.3.3 नीतिगत आवश्यकताएँ

जैसा कि आपने अब तक पढ़ा है, सतत समाज बनाने के लिए विश्व स्तर पर कुछ नीतिगत परिवर्तन तथा पर्यावरण के प्रति लोगों के व्यवहार में कुछ बुनियादी परिवर्तन आवश्यक हैं। अब हम ऐसे कुछ मुद्दों की चर्चा करेंगे।

प्रौद्योगिकी

हम जानते हैं कि उन्नत प्रौद्योगिकी ने विश्व भर में पर्यावरण को बिगाड़ने और नष्ट करने में बड़ी भूमिका निभाई है। हालांकि प्रौद्योगिकी समाज के लिए वरदान भी है, परंतु इसके गलत इस्तेमाल से आदमी का भरपूर नुकसान भी हुआ है। अब मानव जाति के सामने प्रौद्योगिकी को एक नई दिशा देने की चुनौती है ताकि यह ऊर्जा दक्ष, कम जोखिम वाली और मानवीय हो। आप पढ़ भी चुके हैं कि सतत विकास में नई संसाधन-उपभोग नीतियों में संसाधनों का संरक्षण, बेकार पदार्थों का पुनश्चक्रण करके फिर से इस्तेमाल योग्य बनाना तथा यथासंभव नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग शामिल है।

ऐसी नई उपयुक्त प्रौद्योगिकी (Appropriate Technology) विकसित हो, जिसमें मूलतः अपेक्षाकृत छोटी, मामूली मरम्मत से ठीक हो जाने वाली मशीनों का इस्तेमाल हो और उत्पादन के ऐसे तरीके इस्तेमाल किए जाएं जिनमें सही मात्रा में ऊर्जा और अन्य सामग्री का इस्तेमाल हो तथा प्रदूषण कम फैले। ऐसी प्रौद्योगिकी में स्थानीय सामग्री का कच्चे माल के तौर पर इस्तेमाल होता है ताकि लोग, समाज तथा राष्ट्र आत्मनिर्भर हों और उन्हें उत्पादन प्रक्रिया का पूरा लाभ हो। तालिका 19.4 में उपयुक्त प्रौद्योगिकी की विशेषताओं का संक्षेप में लेखा-जोखा दिया गया है।

तालिका 19.4 : उपयुक्त प्रौद्योगिकी की प्रमुख विशेषताएँ

1) छोटी और मध्यम आकार की मशीनें इस्तेमाल की जाती हैं, जिनमें मानवीय प्रयासों तथा श्रम का ज्यादा से ज्यादा लाभ मिले।

2) प्रौद्योगिकी सरल और आसानी से समझ में आने वाली होती है।

3) कर्मचारी तथा श्रमिक अनेक तरीके के काम करते हैं, जिससे उत्पादन बढ़ता है।

4) पूंजी कम लगती है और रख-रखाव आसान होता है।

5) स्थानीय संसाधनों का इस्तेमाल होता है। उत्पादित वस्तुएं भी मुख्यतः स्थानीय इस्तेमाल के लिए होती हैं, जिससे आत्मनिर्भरता बढ़ती है।

6) उत्पादन और प्रक्रिया पर नियंत्रण विकेंद्रीकृत होता है और छोटे स्तर पर कार्य कुशलता कायम रखी जाती है।

7) प्राकृतिक तथा अवक्रमित होने वाले पदार्थों के इस्तेमाल पर ज्यादा ज़ोर दिया जाता है।

8) ऊर्जा और अन्य सामग्री का कम मात्रा में निवेश होता है, जिससे प्रदूषण भी कम होता है।

9) नवीकरणीय ऊर्जा-स्रोतों के इस्तेमाल पर ज़ोर दिया जाता है।

10) यह प्रौद्योगिकी स्थानीय संस्कृति और पर्यावरण के अनुरूप होती है।

11) स्थानीय शिल्पों और शिल्पियों को प्रोत्साहन दिया जाता है और उत्पाद टिकाऊ होते हैं।

उपयुक्त प्रौद्योगिकी लाभप्रद है क्योंकि इसमें रोज़गार के अवसर बढ़ते हैं और लागत कम आती है। छोटे स्तर पर इसमें कार्य कुशलता भी होती है और ऊर्जा की कम ज़रूरत और न्यूनतम प्रदूषण की वजह से यह पर्यावरण के भी अनुरूप होती है। विकासशील देशों के पास चूंकि उन्नत प्रौद्योगिकी के लिए पूंजी और ऊर्जा स्रोतों की कमी होती है इसलिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी और भी ज्यादा उपयोगी है। भारत जैसे देशों को, जहां श्रम शक्ति की कमी नहीं है, श्रम केन्द्रित प्रौद्योगिकी अपनानी चाहिए। उन्नत प्रौद्योगिकी से उत्पादन भले ही बढ़ता हो, परंतु श्रमिक अक्सर बेरोज़गार हो जाते हैं। इसके अलावा, ऐसी प्रौद्योगिकी में रख-रखाव की भारी लागत आती है और बड़ी मात्रा में ऊर्जा की जरूरत होती है। इसलिए यह विकासशील देशों के लिए उचित नहीं है।

अर्थशास्त्र

गरीब-अमीर सभी देशों में सतत समाज बनाने के लिए आर्थिक विकास को मापते समय इन तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि उनके पास कितने नवीकरणीय और गैर-नवीकरणीय संसाधान हैं। अक्सर इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता। उदाहरण के लिए, खानों से खनिज निकालने में होने वाली आय का लेखा-जोखा करते समय आम तौर पर काटी गई लकड़ी या निकाले गए खनिज पदार्थ की कीमत में से लकड़ी काटने या खनिज को निकालने की लागत का लेखा-जोखा नहीं किया जाता है। वन को फिर से हरा-भरा बनाने और खान के आसपास की भूमि को फिर से उर्वर बनाने की कीमत को लागत में शामिल नहीं किया जाता। अन्य प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में भी ऐसा ही अधूरा लेखा-जोखा किया जाता है।

जनसंख्या

सतत विकास की प्रक्रिया जनसंख्या वृद्धि से बहुत घनिष्ठता से जुड़ी है। विकसित देशों की जनसंख्या वृद्धि की कुल दर एक प्रतिशत से कम है। लेकिन वहां भौतिक वस्तुओं और ऊर्जा का इस्तेमाल बहुत अधिक है। विश्व की जनसंख्या बढ़ाने में काफी बड़ा हाथ विकासशील देशों में होने वाली जनसंख्या वृद्धि का है। कुछ विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि दर उनकी संभाल सकने की क्षमता से कहीं अधिक है। इसलिए सतत विकास को तभी प्रतिपादित किया जा सकता है जब जनसंख्या परिमाण और पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादक क्षमता में सामंजस्य हो।

संरक्षण

आप पढ़ चुके हैं कि स्थायी रूप से हमारी ज़रूरतें पूरी करने के लिए संसाधनों का संरक्षण किया जाना चाहिए और उन्हें बढ़ाने के प्रयास किए जाने चाहिए। उपयुक्त प्रौद्योगिकी अपनाने और सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा जैसे नवीकरणीय संसाधनों के ज्यादा इस्तेमाल से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण हो सकता है। कचरे, अपशिष्टों और बेकार चीजों का पुनश्चक्रण करके और दोबारा इस्तेमाल करने से भी प्राकृतिक संसाधनों की काफी किफायत की जा सकती है; जैसे कि जैविक अपशिष्ट से बायोगैस बनाई जा सकती है। विकास के लक्ष्य प्राप्त करने के साथ अन्य प्राणियों तथा भावी पीढ़ियों के लिए प्रकृति के संरक्षण को भी हमें अपना नैतिक दायित्व मानना चाहिए।

अब दुनिया के सभी देशों में पर्यावरण के प्रभावों के बारे में आम तौर पर चेतना फैलने लगी है। विश्व भर में, अनेक संगठन, ऊर्जा, जनसंख्या, संसाधन और पर्यावरण जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर अध्ययन में लगे हैं। विकसित देशों में भी अनेक लोग अपना रहन-सहन अब सादा बना रहे हैं। 1972 से 1984 के बीच गरीब देशों में पर्यावरण संरक्षण के काम में लगी सरकारी एजेंसियों की संख्या दस गुनी हो गई है। इन बातों से नए समाज के निर्माण के संकेत मिलते हैं। फिर भी, सही अर्थों में सतत समाज बनाने की मंजिल अभी काफी दूर हैं। ऐसे समाज के लिए विश्व-स्तर पर परिवर्तन करने होंगे ताकि पारिस्थितिक संतुलन कायम रखा जाए और सभी लोगों की ज़रूरतों और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए लाभ का समान वितरण हो।

बोध प्रश्न 5

दिए गए स्थान पर सही तथ्य के लिए (✓) तथा गलत तथ्य के लिए (✗) चिह्न लगाइए:

i) गरीबी से संसाधनों के सतत इस्तेमाल की लोगों की क्षमता बढ़ जाती है। ( )

ii) उपयुक्त प्रौद्योगिकी में अपेक्षाकृत छोटी, सरल और आसानी से मरम्मत की जा सकने वाली मशीनों का इस्तेमाल होता है। ( )

iii) सतत विकास के लिए विश्व-स्तर पर नीतिगत परिवर्तन ज़रूरी हैं। ( )

iv) सतत विकास के लिए आर्थिक तथा पारिस्थितिक तथ्यों पर एक साथ ध्यान देना ज़रूरी नहीं है। ( )

19.4 अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की भूमिका

अर्थशास्त्र का संबंध संसाधनों, वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण और उपभोग से है। आर्थिक विकास, प्रति व्यक्ति अधिक उपभोग तथा ज्यादा जनसंख्या के कारण उपभोग बढ़ने पर टिका है। इसलिए कई लोगों के लिए चुनौती जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण की नहीं, बल्कि बढ़ती हुई मांग को पूरी करने के लिए उत्पादन बढ़ाने की रही है। लेकिन पर्यावरण की वर्तमान स्थिति ने हमें इस नीति पर दुबारा सोचने पर मजबूर किया है। इस भाग में हम अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, पर्यावरण और विकास के आपसी संबंधों की चर्चा करेंगे।

19.4.1 अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, पर्यावरण और विकास

सतत आर्थिक प्रणाली कायम करने के लिए यह ज़रूरी है कि आर्थिक लेन-देन का लाभ सभी सम्बद्ध पक्षों को हो। इसके लिए दो शर्तें पूरी होना ज़रूरी हैं। पहली बात है कि पारिस्थितिक तंत्र का सतत बने रहना सुनिश्चित किया जाए। दूसरा, आर्थिक लेन-देन

समतापूर्ण हो। दुर्भाग्य से विकसित और विकासशील देशों के बीच आर्थिक आदान-प्रदान में इन शर्तों का आमतौर पर पालन नहीं हुआ है।

विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाएं ज्यादातर अपने प्राकृतिक संसाधनों के निर्यात पर निर्भर रहती हैं। जैसे भारत से लोहा और ब्राज़ील से लकड़ी का निर्यात होता है। इसलिए इन देशों को अपने पर्यावरण को बनाए रखने में परेशानियां आती हैं। इन निर्यात-वस्तुओं की अच्छी कीमत न मिलने और आयात-वस्तुओं के मूल्यों में भारी घट-बढ़ से इनमें से ज्यादातर देशों के लिए यह असंभव हो जाता है कि वे उत्पादन को लगातार टिकाऊ बनाए रखने के लिए अपने संसाधनों का उचित प्रबंध कर सकें। अपनी अर्थव्यवस्थाओं को बनाए रखने के लिए इन देशों को अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों से ऋण लेने पड़ते हैं। ऋणों के बढ़ते बोझ और पूंजी अंतर्वाह (capital inflow) के कम होते जाने से इन देशों के संसाधन समाप्त होने लगते हैं और पर्यावरण बिगड़ने लगता है। उदाहरण के लिए, उष्ण कटिबंधीय इलाके में वनों के विनाश का एक कारण इन क्षेत्रों का लकड़ी का व्यापार है। विदेशी मुद्रा की ज़रूरत ने अनेक देशों को मजबूर किया है कि जिस रफ्तार से नए वृक्ष पनपते हैं, उससे कहीं तेज रफ्तार से लकड़ी काटकर उसका व्यापार करें। इससे वन-संसाधन तो नष्ट होते ही हैं, वनों के सहारे जी रहे लोगों की रोजी-रोटी भी छिन जाती है। साथ ही, मृदा अपरदन, बाढ़ तथा विभिन्न जैव प्रजातियों का विनाश भी होता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के तरीकों से विकास की गैर-टिकाऊ नीतियों के नुकसान और बढ़ जाते हैं। पिछले वर्षों में भारत में कृषि भूमि पर नकदी फसलों और गेहूं तथा धान का उत्पादन बढ़ा है, जिससे दलहनों और तिलहनों के उत्पादन पर बुरा असर पड़ा है। इससे देश में खाद्य तेलों और दालों की भारी कमी हो गई है और इनके आयात पर बहुमूल्य विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ रही है। इससे स्पष्ट होता है कि बाहरी पूंजी प्राप्त करने के लिए खाद्य फसलों की बजाय नकदी फसलों पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। लेकिन विकासशील देशों में थोड़ी ज्यादा पूंजी आ जाने भर से विकास कार्यक्रमों को पूरा नहीं किया जा सकता। पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित विकास के लिए देश में संसाधनों के समुचित उपयोग की उचित योजना तथा कार्यान्वयन, जनसंख्या नियंत्रण और गरीबी दूर करने के प्रयास किए जाने चाहिए। विदेशी स्रोतों से बड़ी मात्रा में पूंजी उनकी अपनी शर्तों पर मिलती है। इसलिए पूंजी लेने वाले देश का योजनाओं और नीतियों पर कोई नियंत्रण नहीं रहता। इसलिए हर देश को, खास तौर से विकासशील देशों को अपनी ज़रूरतों और संसाधनों के अनुरूप पर्यावरण के मानक स्वयं चुनने चाहिए। इन देशों को सतत अर्थव्यवस्था अपनाकर सतत विकास के रास्ते पर चलना चाहिए। हम आगे इसकी चर्चा करेंगे लेकिन इससे पहले आप निम्न प्रश्न पर उत्तर देने का प्रयास कीजिए।

बोध प्रश्न 6

रिक्त स्थानों में उचित शब्द भरिए:

i) सतत आर्थिक विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक .... होना चाहिए।

ii) अनेक विकासशील देशों के आर्थिक विकास के लिए विदेशों से ..... ज़रूरी है।

iii) विदेशी पूंजी प्राप्त करने के लिए खाद्य फसलों की बजाए ..... उपजाना ज्यादा महत्वपूर्ण है।

iv) विकासशील देशों के पर्यावरण के मानक उनकी अपनी ..... और ..... के अनुरूप होने चाहिए।

19.4.2 विश्व अर्थव्यवस्था के स्थायित्व का प्रयास

अनेक वर्षों से विकासशील देश अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्थाओं में परिवर्तनों की मांग करते रहे हैं ताकि उनके साथ, खास तौर से धन के प्रवाह, व्यापार, अंतर्देशीय पूंजी-निवेश और प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण में समतापूर्ण व्यवहार हो। ऐसे परिवर्तनों के दीर्घकालीन परिणामों से उत्पादन और उपभोग के तरीके ज्यादा टिकाऊ होंगे और पूरे विश्व की आर्थिक प्रगति होगी।

विकासशील देशों को सहायता में वृद्धि

विकासशील देश अपने सीमित संसाधनों से ही प्रगति कर सकेंगे, यह विश्वास एक छलावा मात्र है। गरीब देशों की सरकारें अपने बूते पर विश्व-व्यापी गरीबी को समाप्त नहीं कर सकतीं। इसके साथ ही, अनुदान या वित्तीय सहायता के और तरीके ज़रूरी तो हैं, परंतु पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए, विकासशील देशों को सहायता देने के बेहतर कार्यक्रम और

परियोजनाएं चलाई जानी चाहिए ताकि विश्व-स्तर पर सतत विकास हो सके अर्थात् सभी देश एक-दूसरे की कीमत पर नहीं, बल्कि साथ-साथ विकसित हों।

मदद प्राप्त करने वाले देशों में विकास के लिए मिली सहायता का प्रमुख हिस्सा संसाधनों के विकास तथा उत्पादकता बढ़ाने में खर्च होना चाहिए। ऐसे कार्यों में उजड़े वनों को फिर पनपाना, भूमि संरक्षण, सिंचाई परियोजनाएं, कम लागत के सफाई के उपाय, कृषि तथा बेकार पदार्थों का पुनश्चक्रण करके उन्हें फिर से उपयोगी बनाना शामिल हैं।

व्यापार, पर्यावरण और विकास को एक साथ जोड़ना

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, विकासशील देशों की दुविधा यह है कि उन्हें विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों और कॉमोडिटि यानि सामग्री का निर्यात भी करना होता है और साथ ही अपने पर्यावरणीय संसाधनों को पहुंचने वाले नुकसान को भी कम से कम करना है।

कॉमोडिटि ऐसी चीजें हैं, जिनकी मुद्रा में बिक्री होती है। जैसे—मछली, खाद्य सामग्री, वस्त्र, वनोत्पाद, तथा कॉफी, केला जैसी नकदी फसलें।

प्रौद्योगिकी के विकास के साथ प्राकृतिक कच्चे माल के स्थान पर कृत्रिम सामग्री (Synthetics) के इस्तेमाल से इन कच्चे मालों की अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में मांग गिर जाती है। उदाहरण के लिए, कृत्रिम नील और इंग्लैंड के लंकाशायर के वस्त्र उद्योग ने भारत के नील उत्पादकों के धंधे और मलमल जैसे बढ़िया वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध भारतीय वस्त्र-उद्योग को चौपट कर दिया। इसी तरह, कृत्रिम रबर के इस्तेमाल से प्राकृतिक रबर का व्यापार खतरे में पड़ गया।

आप जानते हैं कि पेट्रोलियम इस समय हमारे प्रमुख ऊर्जा स्रोतों में है। खनिज तेल के मूल्यों में वृद्धि से अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, खासतौर से विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था पर असर पड़ता है क्योंकि तेल पर किसी न किसी रूप में आधारित अनेक वस्तुओं की कीमतों में भी तेल की कीमत बढ़ने से वृद्धि होती है।

ऐसी समस्याओं को सुलझाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रमुख प्रयास के तौर पर अंतर्राष्ट्रीय कॉमोडिटि समझौते (International Commodity Agreement) किए गए हैं ताकि विकासशील देशों की निर्यात से होने वाली आय स्थिर बनी रहे या बढ़ सके। लेकिन इन प्रयासों से वास्तव में बहुत कम सफलता मिली है।

जनवरी, 199। में हुए खाड़ी युद्ध से पेट्रोलियम पदार्थों और कच्चे तेल की आयात लागत पर असर पड़ा। भारत में तेल के आयात मूल्य में वृद्धि के कारण इसके उपभोग में कटौती करनी पड़ी। हवाई उड़ानों, रेल सेवाओं और पेट्रोल और डीजल का इस्तेमाल करने वाली अन्य परिवहन सेवाएं कम की गईं। ऊर्जा के संकट से निपटने के लिए हमें ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत तलाशने होंगे। वाहनों में तरल पेट्रोलियम ईंधन की बजाए प्राकृतिक गैस इस्तेमाल करना एक तरीका हो सकता है। कोल इंडिया लिमिटेड ने ईंधन बचाने की एक और तकनीक निकाली है। उसने स्लैक कोयले (Slack Coal), कोयले का चूरा (Coal Dust), धान की भूसी और शीरे (Mollases) से किफायती, बिना धुंए का और प्रदूषण रहित ईंधन तैयार किया है, जिसका लकड़ी, मिट्टी के तेल या खाना पकाने की गैस के स्थान पर घरेलू ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

कॉफी, कोको, कपास, वन उत्पाद, तंबाकू, पटसन, तांबा, लौह अयस्क तथा बॉक्साइट में से प्रत्येक वस्तु का 80 से 90 प्रतिशत तक व्यापार तीन से छह तक सबसे बड़ी बहुराष्ट्रीय निगमों (Transnational Corporations) के हाथ में है।

सरकारें अपने स्तर पर वन-संसाधनों तथा मात्स्यिकी जैसे नवीकरणीय संसाधनों को इस्तेमाल कर सकती हैं। उन्हें यह सुनिश्चित करना होगा कि इन संसाधनों को फिर तैयार करने के लिए धन उपलब्ध रहे। साथ ही, सरकारें सम्बद्ध पर्यावरणीय प्रभावों पर निगरानी रख सकती हैं। इससे वे टिकाऊ उत्पादन की सीमाओं में बनी रहेंगी। जहां तक खनिजों जैसे ग़ैर-नवीकरणीय संसाधनों का प्रश्न है, सरकारों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इन संसाधनों के दोहन और संसाधनों के भंडार का अनुपात पूर्व निर्धारित सीमाओं से बढ़े नहीं।

बंबई हाई तेल क्षेत्र से क्षमता से ज्यादा तेल निकाले जाने से करीब 90 कुंओं से तेल मिलना बंद हो गया है।

व्यापार और सतत विकास से जुड़ी एक धारणा संरक्षणवाद (Protectionism) की है जिसके अंतर्गत कोई भी देश केवल अपने उद्योगों को आगे बढ़ाने की नीति पर चलता है। औद्योगिक देशों की संरक्षणवादी नीतियों के तहत विकासशील देशों के निर्यात की वृद्धि पर अंकुश लगाया जाता है और उन्हें सूती वस्त्र और चाय जैसे परंपरागत निर्यातों के अलावा निर्यात-वस्तुओं में और विविधता लाने से रोका जाता है। पिछले दिनों अमेरिका द्वारा लगाए गए व्यापार प्रतिबंधों से भारत के सिले-सिलाए वस्त्रों के निर्यात के धंधे पर बुरा असर पड़ा है।

संरक्षणवाद ऐसी नीति है, जिसके अंतर्गत कोई देश आयातित वस्तुओं पर कर लगाकर अपने उद्योगों की मदद करता है।

इस नीति में, औद्योगिक देश अपने निर्यातों के मामले में बाहरी या ऊपरी लागतों को उत्पादन लागत में शामिल कर लेते हैं और इसका भार विकासशील देशों सहित आयात करने वाले देशों के उपभोक्ताओं को उठाना पड़ता है। लेकिन विकासशील देशों से निर्यात के मामलों में, उन्हीं को यह लागत उठानी पड़ती है। तब भी विकासशील देशों के करदाता और नागरिक ही औद्योगिक प्रदूषण की भरमाई का बोझ झेलते हैं।

नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (New International Economic Order) विकसित और विकासशील देशों के बीच संसाधनों और जानकारी के समतापूर्ण वितरण पर आधारित है। इसका उद्देश्य व्यापार की असंतोषजनक शर्तों में लगातार सुधार लाना और विश्व की अर्थव्यवस्था का विस्तार करना है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में एक देश से दूसरे देश में प्रौद्योगिकी का आदान-प्रदान और हस्तांतरण भी होता है। सतत विकास के लिए यह जरूरी है कि नई प्रौद्योगिकी के पूरी दुनिया में प्रसार और विकास के लिए विश्व-स्तर पर संगठित प्रयास हों ताकि कृषि उत्पादन, नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों और प्रदूषण नियंत्रण में ऐसी प्रौद्योगिकी इस्तेमाल हो सके। संयुक्त राष्ट्र ने इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए "नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था" (New International Economic Order) का एक प्रस्ताव भी पारित किया गया।

19.4.3 नई विश्व अर्थव्यवस्था

कुछ अर्थशास्त्रियों का सुझाव है कि मानव जाति के अस्तित्व को लंबे समय तक बनाए रखने के लिए विश्व-स्तर पर नई आर्थिक प्रणाली को अपनाया जाना अनिवार्य है। वर्तमान आर्थिक प्रणाली की विशेषताओं में धन का अधिकतम प्रवाह, अधिकतम उत्पादन, अधिकतम उपभोग, संसाधनों का अधिकतम इस्तेमाल और अधिकतम लाभ शामिल है। इस असंयमित अर्थव्यवस्था, जिसे फ्रंटियर इकॉनमी (Frontier Economy) कहा जाता है, के स्थान पर संयमित अर्थव्यवस्था, जिसे स्पेसशिप इकॉनमी (Spaceship Economy) कहते हैं, अपनायी जानी चाहिए। इसमें माना गया है कि किसी अंतरिक्षयान (Space ship) की तरह पृथ्वी की भी जीवन प्रणाली परस्पर सम्बद्ध हैं। स्पेसशिप अर्थव्यवस्था यानि सतत तथा संयमित अर्थव्यवस्था में पुनश्चक्रण, संरक्षण, नवीकरणीय संसाधनों के उपभोग, टिकाऊ वस्तुओं के उत्पादन तथा स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण बनाए रखने पर ध्यान दिया जाता है। लोग पृथ्वी द्वारा निर्धारित की गई संसाधनों की सीमा में रहते हैं। भविष्य की विकास योजनाओं में भौतिक पदार्थों को कम महत्त्व दिया जाना चाहिए। टूटी-फूटी चीज़ों को बदलने की बजाय उनकी मरम्मत करके उन्हें काम में लाना चाहिए। नुकसान देह और अवक्रमित न होने वाले कचरे को समाप्त करने के हर संभव प्रयास किए जाने चाहिये।

सतत तथा संयमित अर्थव्यवस्था पर आधारित सतत समाज बनाने के लिए विकसित और विकासशील देशों को जिन प्रमुख लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहिए, उन्हें तालिका 19.5 में सूचीबद्ध किया गया है :

तालिका 19.5 : विश्व स्तर पर सतत अर्थव्यवस्था बनाने के लिए कुछ प्रमुख लक्ष्य

विकसित देश :
1) जनसंख्या में कमी।
2) संसाधनों के उपभोग में कमी।
3) आत्मनिर्भरता में वृद्धि।
4) पुनश्चक्रण तथा संरक्षण कार्यों में वृद्धि।
5) विकासशील देशों को नई जानकारी बांटना।
6) शांति और स्थायित्व कायम करना।
7) हथियारों की बिक्री में कमी।
8) विश्व-स्तर पर सहयोग।
9) हमेशा कायम रहने वाले नैतिक मूल्यों को यथार्थ में बदलना।
विकासशील देश:
1) जनसंख्या वृद्धि दर स्थिर बनाना और जनसंख्या में कमी लाना।
2) टिकाऊ कृषि प्रणाली।
3) संसाधनों से देश की बुनियादी जरूरतें पूरी हों।
4) पाश्चात्य कृषि प्रणाली और प्रौद्योगिकी अपनाने में संयम रखा जाए।
5) शत-प्रतिशत साक्षरता लाने का प्रयास।
6) अधिकतम आत्म-निर्भरता की प्राप्ति।

सतत अर्थव्यवस्था नई नीतियों, नई राजनीतिक दिशा, शिक्षा और जागरुकता से ही प्राप्त हो सकती है या सफल हो सकती है। अभिभावकों, अध्यापकों और सरकारी एजेंसियों द्वारा

नई नैतिकता जगाना इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम हो सकता है। सरकार सतत समाज बनाने के अनुरूप नए कानून बनाकर मदद कर सकती है। इस प्रकार, संयमित अर्थव्यवस्था वाला सतत समाज बनाने के लिए निजी और सरकारी प्रयासों के बीच पूरा तालमेल ज़रूरी है (तालिका 19.6 देखिए)।

तालिका 19.6 : सतत अर्थव्यवस्था बनाने के तरीके

शिक्षा
बच्चों में घर तथा स्कूल में नई सामाजिक नैतिकता जगाने के प्रयास किए जाएं जिसमें पर्यावरण, निजी प्रगति और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व पर बल दिया जाए। यह समझाना चाहिए कि आर्थिक प्रगति का अर्थ समतापूर्ण और टिकाऊ प्रगति होना चाहिए।
जनसंख्या नियंत्रण
शिक्षा और जागरुकता बढ़ाकर जनसंख्या वृद्धि दर में कमी लायी जाए।
संसाधन
विवेकपूर्ण उपयोग तथा पुनश्चक्रण करके संसाधनों का संरक्षण किया जाए। गैर-नवीकरणीय के स्थान पर नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग किया जाए।

बोध प्रश्न 7

क) व्यापार और विकास को जोड़ने वाले ऐसे तीन तथ्यों का नाम लिखिए, जिनका पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है।

.....

.....

.....

ख) निम्न वाक्यों में सही शब्दों पर (✓) का निशान लगाइए:

i) औद्योगिक देशों में संरक्षणवाद बढ़ने से विकासशील देशों का निर्यात बढ़ता है/कम होता है।

ii) औद्योगिक देश अपनी निर्यात-सामग्री के मूल्य में बाहरी लागत को शामिल करते हैं/नहीं करते।

iii) प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को जोड़ने की एक कड़ी है/नहीं है।

iv) हमारे संसाधनों और पर्यावरण का संरक्षण असंयमित/संयमित अर्थव्यवस्था में हो सकता है।

19.5 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि:

- आखेटी समाजों से लेकर आज के उन्नत औद्योगिक समाजों तक पृथ्वी के संसाधनों का बेहद इस्तेमाल हुआ है। इससे हमारे पर्यावरण की भौतिक और जैविक प्रक्रियाओं के बीच तालमेल बिगड़ गया है।
- पर्यावरण की समस्याओं को समझने के लिए विभिन्न अवधारणात्मक मॉडल बनाए गए हैं। ये हैं: जनसंख्या, संसाधन और प्रदूषण मॉडल, बहुलित कारक और प्रभाव, मॉडल और प्रभाव विश्लेषण मॉडल। इनसे समस्याओं को समझने तथा समाधान तलाशने में आसानी होती है।
- विकासशील और अल्पविकसित देशों में गरीबी और भुखमरी प्रमुख समस्याएं हैं। बढ़ती जनसंख्या दर और व्यापार का समानता पर आधारित न होना, समृद्ध और अभावग्रस्त देशों के बीच बढ़ते अंतर के प्रमुख कारणों में हैं।
- अपनी पृथ्वी को आगे पर्यावरण से जुड़ी विभीषिकाओं से बचाने के लिए हमें अस्थायी विकास की फ्रंटियर मानसिकता की बजाय स्थायी और सतत विकास की मानसिकता

अपनानी होगी। इसके लिए हमें अपनी स्थानीय ज़रूरतों के अनुकूल, कम ऊर्जा, नवीकरणीय संसाधनों वाली तथा प्रदूषणहीन अथवा बहुत कम प्रदूषण फैलाने वाली प्रौद्योगिकी अपनानी होगी।

- सतत विश्व अर्थव्यवस्था वाला सतत समाज बनाने का लक्ष्य प्राप्त करने में अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह लक्ष्य तभी प्राप्त हो सकता है, जब अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक लेन-देन समतामूलक और सबके लिए लाभप्रद हो। संयमित अथवा स्पेसशिप अर्थव्यवस्था के लिए पुनश्चक्रण, नवीकरणीय संसाधनों के इस्तेमाल, टिकाऊ चीजें बनाने के लिए व्यक्तिगत, शैक्षिक और सरकारी स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिए ताकि स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण बनाया जा सके।

19.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) मानवीय गतिविधियों के जंतुओं और वनस्पतियों के जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को संक्षेप में समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) उपयुक्त प्रौद्योगिकी की प्रमुख विशेषताएं बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) "विकसित देशों द्वारा संरक्षणवाद की नीति अपनाए जाने से अक्सर विकासशील देशों की पारिस्थितिक और आर्थिक स्थितियों को नुकसान पहुंचता है।" इस कथन का औचित्य समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) नई विश्व अर्थव्यवस्था की धारणा को संक्षेप में समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

19.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1) (i) हल (ii) पूंजी और ऊर्जा की लागत (iii) सांश्लेषित (iv) सीमित

2) क) i) जनसंख्या, संसाधन और प्रदूषण मॉडल
   ii) बहुलित कारक और प्रभाव मॉडल
   iii) प्रभाव विश्लेषण मॉडल

   जनसंख्या, संसाधन और प्रदूषण मॉडल में यह दिखाया जाता है। कि सभी प्राणी पर्यावरण से संसाधन प्राप्त करते और इस्तेमाल करते हैं, जिससे प्रदूषण होता है। संसाधनों के दोहन और उपयोग से जनसंख्या और प्रदूषण पर असर पड़ता है।

   बहुलित कारक और प्रभाव मॉडल में बताया जाता है कि जनसंख्या, प्रति व्यक्ति उपभोग, राजनीति, सार्वजनिक नीति, मनोविज्ञान, संस्कृति, जीवविज्ञान, अर्थशास्त्र और प्रौद्योगिकी जैसे अनेक कारणों की पर्यावरणीय समस्याओं में दीर्घकालीन भूमिका है।

   प्रभाव विश्लेषण मॉडल में मानवीय कार्यों का पर्यावरण और प्राणियों पर प्रभाव दिखाया जाता है।

   (इनमें से किसी एक मॉडल की चर्चा की जा सकती है)

   ख) (i) प्रदूषित (ii) बाहरी लागत (iii) भिन्न-भिन्न (iv) जीवों, प्रत्यक्ष

3) गरीबी से पर्यावरण बिगड़ता है। गरीब, भूखे लोग जीवित रहने के लिए अनेक तरीकों से अपने आसपास के पर्यावरण को नष्ट करते हैं। इन तरीकों में ईंधन के लिए वनों की कटाई, मवेशियों द्वारा चरागाहों की सारी घास चट कर जाना, थोड़ी सी ज़मीन पर ज्यादा से ज्यादा उगाने की कोशिश में उसकी उर्वरता समाप्त कर देना और गंदी बस्तियों का निर्माण शामिल है।

4) i) ग, ii) क, iii) ख, iv) घ,

5) i) ✗ ii) ✓ (iii) ✓ (iv) ✗

6) i) लेन-देन, समतापूर्ण
   ii) पूंजी का अंतर्वाह
   iii) नगदी फसलें
   iv) आवश्यकताओं, संसाधनों

7) क) व्यापार और विकास को जोड़ने वाले तीन संपर्क-सूत्र है:
   i) ग़ैर-नवीकरणीय संसाधनों का इस्तेमाल
   ii) संरक्षणवाद, और
   iii) प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण

   ख) i) कम होता है
   ii) शामिल करते हैं
   iii) है
   iv) संयमित

अंत में कुछ प्रश्न

1) मानवीय गतिविधियों का जीव समूहों पर प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव पड़ता है। मनुष्य के पर्यावरण के साथ परस्पर क्रिया से होने वाले सभी प्रकार के प्रदूषण से प्राणियों पर असर पड़ता है। जैसे अम्लीय जल के रिसने से झील का पारिस्थितिक तंत्र बिगड़ जाता है। मानवीय कार्यों से क्षेत्र विशेष की जनसंख्या का स्वरूप बदल जाता है। और पर्यावास नष्ट हो जाता है। ये मानवीय कार्यों के जैव-जगत पर प्रत्यक्ष प्रभाव हैं।

2) उपयुक्त प्रौद्योगिकी: इसमें छोटी, आसानी से ठीक की जाने वाली मशीनों, उचित ऊर्जा तथा सामग्री का इस्तेमाल होता है। प्रदूषण कम होता है और स्थानीय तौर पर उपलब्ध सामग्री का स्थानीय ज़रूरतों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल होता है।

3) विकसित देशों की संरक्षणवादी नीतियां विकासशील देशों के पारिस्थितिक तंत्र के लिए और आर्थिक रूप से नुकसानदेह होती हैं। विकसित देशों के संरक्षणवाद के तहत विकासशील देशों के निर्यात की वृद्धि तथा उनके द्वारा चाय, सिले-सिलाए वस्त्र जैसे अपने पारंपरिक निर्यातों, के अलावा अन्य विविधतापूर्ण वस्तुओं के निर्यात के प्रयासों को दबाया जाता है।

   (विद्यार्थी अन्य स्रोतों से भी उदाहरण दे सकते हैं।)

4) नई विश्व आर्थिक प्रणाली की धारणा में ऐसी सतत अर्थव्यवस्था की बात कही गई है, जिसके अनुसार पृथ्वी एक अंतरिक्ष यान (spaceship) जैसा सीमित और परस्पर सम्बद्ध तंत्र है। विश्व का पर्यावरण स्वस्थ और स्वच्छ बनाने के लिए पुनश्चक्रण संरक्षण, नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग, टिकाऊ उत्पाद तैयार करना और विकास कार्यों के लिए कम साज-सामान लगने वाले तरीके अपनाए जाने चाहिए।

इकाई 20 पर्यावरण संरक्षण-I

20.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
20.2 पर्यावरणीय संरक्षण
संरक्षण की संकल्पना
संरक्षण के लक्ष्य और सिद्धांत
20.3 वन्य-जीवन संरक्षण
वन्य जीवन के विलुप्त होने के कारण
वन्य जीवन संरक्षण की आवश्यकता
संकटग्रस्त जातियों को कैसे बचाया जाए?
20.4 हमारे देश में संरक्षण
रक्षित क्षेत्र : परिभाषा और कानून
भारतवर्ष में वन्य जीवन विहार और राष्ट्रीय उद्यान
बाघ परियोजना
20.5 सारांश
20.6 अंत में कुछ प्रश्न
20.7 उत्तर

20.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम में अभी तक आपने जनसंख्या में वृद्धि, गरीबी और प्रदूषण के बारे में पढ़ा जो हमारे संसाधनों के ह्रास का मुख्य कारण हैं। राष्ट्र के आर्थिक विकास को कायम रखने के लिए जैव और भौतिक, दोनों संसाधनों के संरक्षण की बहुत आवश्यकता है। इस इकाई में आप जैव संसाधनों (वन्य जीवन) के संरक्षण का अध्ययन करेंगे और अगली इकाई में भौतिक संसाधनों के संरक्षण के बारे में पढ़ेंगे।

इस इकाई के आरंभ में हम पर्यावरणीय संरक्षण की परिभाषा देंगे। संरक्षण मनुष्य के परिवेश का योजनाबद्ध प्रबंध है ताकि इसे अति दोहन, विनाश या उपेक्षा से बचाया जा सके। जब आदमी शिकार करने की कला में निपुण हो गया तभी से प्रकृति पर उसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा। खेती और पशुपालन के विकास के साथ मनुष्य ने अपने पर्यावरण को नियंत्रित करना आरम्भ किया। अपनी बढ़ती हुई भौतिक और कृषि सम्बंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह प्राकृतिक संसाधनों का शोषण करने लगा। विश्व की जनसंख्या में वृद्धि के साथ प्राकृतिक संसाधनों का और भी ह्रास होने लगा। लेकिन लोगों को यह समझने में समय लगा कि प्रकृति से हस्तक्षेप करने से शायद मनुष्य की भलाई कम और उसका नुकसान अधिक हुआ है और उन्हें यह भी पता चला कि मनुष्य भविष्य के बारे में बिल्कुल ही असावधान है। धीरे-धीरे लोगों में प्रकृति और वन्य जीवन के प्रति उत्साह उमड़ा जिसके कारण उस आन्दोलन की नींव रखी गई जिसे हम संरक्षण आन्दोलन कहते हैं।

इस इकाई में संरक्षण की संकल्पना, उसके सिद्धांतों और लक्ष्यों के बारे में विस्तार से बताया गया है। इसमें संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग, पुनः स्थापना, समाकलन और नियतन की आवश्यकता पर बल दिया गया है। संरक्षण के महत्व और उसके लाभ के बारे में भी चर्चा की गई है। भारतवर्ष के संदर्भ में वन्य जीवन संरक्षण के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। वन्य जीवन के विलुप्त होने के मुख्य कारण शिकार करना, आवास को नष्ट करना, परभक्षी नियंत्रण और दूसरे कारक हैं। वन्य जीवन का आर्थिक, औषधीय और मनोरंजनात्मक मूल्य है। वे पारितंत्र में स्थायित्व बनाए रखते हैं। वन्य जीवन संरक्षण के लिए कई अधिनियम बनाए गए हैं और वन्य जीवन के लिए रक्षित क्षेत्र बनाए गए हैं। वन्य जीवन संरक्षण के लिए भारतवर्ष में लगभग 412 वन्य जीवन विहार, 80 राष्ट्रीय उद्यान और आरक्षित स्थल क्षेत्र हैं। भारतीय बाघ को संरक्षित रखने के लिए बाघ परियोजना की भी चर्चा इस इकाई में की गई है।

आरक्षित स्थल क्षेत्र हैं। भारतीय बाघ को संरक्षित रखने के लिए बाघ परियोजना की भी चर्चा इस इकाई में की गई है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- संकटग्रस्त जातियाँ, संरक्षण, राष्ट्रीय उद्यान और विहार जैसे शब्दों को सही संदर्भ में परिभाषित, कर सकें,
- सरंक्षण के लक्ष्यों और सिद्धांतों की व्याख्या कर सकें,
- वन्य जीवन संरक्षण के कारणों को बता सकें और उसकी आवश्यकता का वर्णन कर सकें,
- कुछ क्षेत्रों को वन्य जीवन उद्यान और विहार के रूप में घोषित करने के लाभ बता सकें, और
- भारतवर्ष में वन्य जीवन संरक्षण की स्थिति का वर्णन कर सकें।

20.2 पर्यावरणीय संरक्षण

प्राकृतिक संसाधनों की तेजी से गिरती हुई मात्रा और गुणता से, उनके प्रबंध और संरक्षण चिंता का विषय बन गये हैं। प्राकृतिक संसाधन वे कच्चे पदार्थ हैं जो प्रकृति से प्राप्त किए जाते हैं। इन्हें नवीकरणीय (renewable) और अनवीकरणीय (non-renewable) संसाधनों में वर्गीकृत किया जाता है। नवीकरणीय संसाधनों का प्राकृतिक प्रक्रम (process) से समय-समय पर पुनःस्थापन होता रहता है। गुणन (multiplication) और पुनः चक्रण (recycling) आदि ऐसे ही प्रक्रम हैं। इस रूप में ये संसाधन कभी न समाप्त होने वाले हैं। वन, चारागाह, वन्य जीवन और जलीय जीवन इस श्रेणी में आते हैं। लेकिन संसाधनों की समुचित रूप से योजना बनाना और उनका प्रबंध करना आवश्यक है। अनवीकरणीय संसाधन सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं और इसमें किसी भी प्रकार से वृद्धि नहीं की जा सकती। खनिज, धातु, मृदा (मिट्टी), कोयला, तेल निक्षेप (deposits) आदि इसके उदाहरण हैं।

यदि मनुष्य पृथ्वी पर अपने भविष्य को लेकर आशा बांधता है तो यह जरूरी है कि वह संसाधनों को समझदारी से काम में लाए। संरक्षण का अर्थ संचय नहीं है। इसका अर्थ यह है कि संसाधनों का बुद्धिमता से प्रबंध किया जाए ताकि उनकी आपूर्ति (supply) लंबे समय तक होती रहे। इसका अर्थ हुआ किसी संसाधन का निरंतर नवीकरण और उत्पादों की पुनः प्राप्ति (recovery), पुनः चक्रण या पुनः उपयोग। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का एक अर्थ पारिस्थितिकीय नियमों (laws) की जटिलताओं को समझने और उनका महत्व जानने की दृष्टि से क्षेत्र का उपयोग करने या अध्ययन करने के लिए उसको स्वाभाविक या प्राकृतिक स्थिति में बनाए रखना भी है।

20.2.1 संरक्षण की संकल्पना

संरक्षण एक व्यापक संकल्पना है जिसमें न केवल वैज्ञानिक बल्कि नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक पहलू भी शामिल हैं। संरक्षण को कई तरह से परिभाषित किया गया है। एक पेट्रोलियम इंजीनियर के लिए संरक्षण का अर्थ मोटे तौर पर पेट्रोल के अधूरे निष्कर्षण (extraction) से होने वाली अपशिष्ट या रद्दी को कम करना है जबकि एक वन अधिकारी के लिए संरक्षण का अर्थ उत्पादों के लंबे समय तक उत्पादन से है। सभी संदर्भों में संरक्षण का अर्थ हर प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण विकास और उनके उपयोग से है।

संरक्षण की एक सामान्यीकृत परिभाषा इस प्रकार से दी जा सकती है–"संसाधनों द्वारा माल और कार्य में सामाजिक लाभ में समय के साथ वृद्धि"। यद्यपि यह टेक्नोलॉजी पर आधारित है फिर भी संरक्षण सामाजिक रूप से ज्ञात मूल्यों से बच नहीं सकता।

संरक्षण की परिभाषा पर्यावरण को बुद्धिमत्तापूर्वक काम में लाते हुए मानवजाति के लिए लंबे समय तक बने रह सकने वाली उच्चतम गुणता की उपलब्धि के रूप में दी जा सकती

है। इसके अतिरिक्त संरक्षण को मनुष्य के जीवन को समृद्ध बनाने के लिए प्रकृति का रक्षण करने और अनेक प्रकार के पर्यावरणीय प्रदूषण के नियंत्रण या उस प्रदूषण को हटाने के उपायों के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। संरक्षण ऐसे आचरणों का समर्थन करता है जो पृथ्वी के संसाधनों को बनाए रखते हैं या जिन संसाधनों के अस्तित्व को बनाए रखने में मनुष्य की रुचि है उन्हें कायम रखते हैं। संरक्षण के सिद्धांत पारिस्थितिकी के ज्ञान पर आधारित है। पारिस्थितिकी वह विज्ञान है जो जीवित वस्तुओं और उनके भौतिक परिवेष के बीच आपसी संबंधों के बारे में बताता है।

लेकिन प्रश्न यह उठता है कि "संरक्षण की आवश्यकता क्यों है?" इसके निम्न कारण हैं।

क) विश्व की जनसंख्या भयानक रूप से बढ़ रही है।

ख) जनसंख्या वृद्धि के कारण विश्व संसाधनों के उपयोग करने की दर भी बढ़ रही है।

ग) समय गुजरने के साथ-साथ प्रदूषण भी बढ़ रहा है।

घ) कभी-कभी मानव गतिविधियों से होने वाली हानि की पूर्ति नहीं हो पाती।

संरक्षण में मनुष्य के प्राकृतिक पर्यावरण को बनाए रखना शामिल है। इस पर्यावरण में हवा पानी, मिट्टी और जीवन रूपों के असीमित संसाधन हैं। संरक्षण सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों, और उद्योगपतियों के अलावा हम सब का सामूहिक उत्तरदायित्व है। पारिस्थितिकीय अनुसंधान और संरक्षण परियोजनाओं को पूरा करने के लिए निधि और वित्तीय साधनों की व्यवस्था होनी चाहिए।

20.2.2 संरक्षण के लक्ष्य और सिद्धांत

संरक्षण के दो लक्ष्य होते हैं:

i) गुणता पर्यावरण का परिरक्षण सुनिश्चित करना जो सौंदर्यात्मक और मनोरंजनात्मक आवश्यकताओं के साथ-साथ उपादेयता आवश्यकताओं का भी विचार करें।

ii) पैदावार और नवीकरण के संतुलित चक्र बनाकर पौधों, प्राणियों और पदार्थों का निरंतर उत्पादन सुनिश्चित करना।

संरक्षण के सिद्धांत

किसी प्राकृतिक संसाधन के पक्ष में किए गए उपायों द्वारा ही संरक्षण संभव होता है। ऐसा उस प्राकृतिक साधन को दीर्घायु और इसके उपयोग प्रारूप में सुधार लाने के लिए किया जाता है। कुछ इस प्रकार के उपाय निम्नलिखित हैं:

क) **संसाधन का विवेकपूर्ण उपयोग** संरक्षण की संकल्पनाओं में से एक है। क्योंकि संसाधनों के वैज्ञानिक महत्व के अलावा इनका सौंदर्यात्मक और मनोरंजनात्मक मूल्य भी होता है। परिरक्षण (preservation) कुल पर्यावरण के प्रकार्य (function) को ठीक रखकर भी पारिस्थितिकीय उद्देश्य की पूर्ति करता है। उदाहरण के लिए, वनों की रक्षा से शहरी जलाशयों या कुंडों के लिए लगातार पानी मिलता रहता है और ज्वारनदमुखों (estuaries) की रक्षा से समुद्र मत्स्यन (fishery) अर्थात् मछली पकड़ने का धंधा चलता रहता है।

लेकिन विवेकसम्मत उपयोग परिरक्षण मात्र ही नहीं है। इसका अर्थ संसाधनों को उनके माल या मनोरंजनात्मक मूल्यों के लिए सीधे रूप में काम में लाना है। इस प्रकार बन फसलों की कटाई, घास स्थलों की पशुधन द्वारा चराई और वन्य जंतुओं के शिकार करने को प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग का एक वैध (legitimate) भाग माना जा सकता है, बशर्ते यह सब इस ढंग से किया जाए कि संसाधन दीर्घ अवधि तक लगातार बना रहे और खतरे में न पड़े।

ख) इन गतिविधियों में निरंतर उत्पादन की संकल्पना शामिल है। इसका अर्थ व्यष्टियों के वार्षिक अधिशेष (surplus) का शस्यन (cropping) है ताकि शिकार योग्य पशुओं या मछलियों का प्रजनन भंडार (breeding stock) खतरे में न पड़े। इसी तरह, पेड़ों का काटना या घास की चराई ऐसी हो कि उससे केवल वार्षिक वृद्धि ही कम हो, उससे ज्यादा नष्ट न हो।

ग) संरक्षण का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष पुनः स्थापन (restoration) अर्थात् फिर से उपादेय बनाने की संकल्पना है। यह व्यापक रूप से जाना-पहचाना संरक्षण उपाय है जो कि वास्तव में पिछली लापरवाह गतिविधियों के फलस्वरूप उत्पन्न त्रुटियों को ठीक करना है। जिन्होंने आधारी संसाधन की उपादेयता को कम कर दिया है, वनोन्मूलित क्षेत्र अर्थात् वे क्षेत्र जहां वन काट दिए गए हैं और वे जमीनें जहाँ खानें थीं और खनन कार्य हो चुका है तथा जो बंजर हैं उन्हें कुछ प्रयास से फिर से वनस्पति वाला बनाया जा सकता है। पौधों जीवाणुओं और प्राणियों की जिस आबादी का क्षय हो चुका है, अगर उसे मानव संरक्षण दी जाए तो वे पुनः स्थापित हो सकते हैं। खेती की जाने वाली जमीनों पर यह उपाय आधुनिक मृदा और जल संरक्षण प्रक्रियाओं में जाना पहचाना है।

लेकिन पुनः स्थापना तभी तक संभव है जब तक जातियाँ (स्पीशीज़) रक्षित रखी जाती हैं और जीवन की आनुवंशिक विविधता (genetic diversity) को कायम रखा जाता है। जातियों के विलुप्त (extinct) हो जाने पर पिछली परिस्थितियों का पुनः स्थापन असम्भव हो जाता है।

घ) प्राकृतिक संसाधनों की व्यापारिक शोषक से रक्षा करना ताकि मनोरंजन, जल संभर रक्षण (watershed protection) और वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उनका दीर्घ काल तक उपयोग होता रहे। अनेक प्रकार के उद्यानों और आरक्षित स्थलों की स्थापना और रक्षण के पीछे यह संकल्पना है।

ङ) अपशिष्ट या रद्दी पदार्थों को फिर से काम में लाना ही पुनः उपयोग कहलाता है जैसे कि स्वच्छ और ठंडा करने के बाद औद्योगिक जल को काम में लाना। अगर अपवर्ज्य रद्दी सामग्री को फिर से काम में लाने से पहले साधारण उपचारण (treatment) की ही आवश्यकता पड़े तो यही प्रक्रिया पुनः चक्रण (recycling) बन जाती है जैसा कि इस्पात निर्माण में रद्दी लोहे को काम में लाना।

च) **प्रतिस्थापन (substitution)** यह एक महत्वपूर्ण संरक्षण उपाय है जिसके दो पक्ष हैं: (i) जब एक ही उद्देश्य के लिए काम में लाया जाना हो तो बिरल संसाधन की अपेक्षा प्रचुर संसाधन को काम में लाना, (ii) यदि परिस्थितियाँ अनुमति दें तो अनवीकरणीय (non-renewable) की अपेक्षा नवीकरणीय संसाधन का उपयोग।

छ) **नियतन (allocation)**: नियतन का संबंध उपयोग की नीति से है– किसी संसाधन का सर्वोत्तम उपयोग। अनेक संसाधनों और उनके उत्पादनों के लिए बाजार कीमत यह निर्धारित करती है कि वह संसाधन किस काम में लाया जाना है लेकिन कुछ उदाहरणों में जन कल्याण-विचार यह निर्धारित करता है। सरकार कोटा, राशनिंग और परमिटों द्वारा संसाधनों के नियतन को नियंत्रित कर सकती है।

ज) **समाकलन (integration)**: संसाधन प्रबंध में समाकलन एक संरक्षण उपाय है क्योंकि यह किसी संसाधन या किसी संसाधन समूह, जैसे कि नदी घाटी, से मिल सकने वाली सामग्री और सेवाओं की समष्टि को एक समयावधि में अधिकतम (maximise) उपलब्ध बना देता है। दूसरे लाभों या दूसरे संसाधनों की कीमत पर किसी एक संसाधन से कुछ विशेष लाभों को अधिकतम बनाने के लिए यह अधिक उपयुक्त है। समाकलन योजना का केन्द्रीय उद्देश्य है।

यह जाँचने के लिए कि आपने संरक्षण की संकल्पना और सिद्धांतों को कितना समझ लिया है, निम्नलिखित बोध प्रश्न का उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 1

क) पर्यावरणीय संरक्षण की आवश्यकता क्यों है? दो कारण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ख) पर्यावरणीय संरक्षण के तीन महत्वपूर्ण सिद्धांत बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

20.3 वन्य जीवन संरक्षण

इस पाठ्यक्रम की इकाई 7 में आप "वन्य जीवन" शब्द से परिचित हो चुके हैं। प्रायः वन्य जीवन शब्द का प्रयोग उन प्राणियों के लिए किया जाता है जो पालतू नहीं हैं और जो प्राकृतिक आवास में रहते हैं। हमारे देश को विशेष रूप से समृद्ध जैव विरासत मिली। लेकिन कई जातियों के विलुप्त (extinction) हो जाने के कारण, वन्य जीवन की (जीवाणु वनस्पतिजात और प्राणिजात– microorganisms, flora and fauna) संख्या कम हो गई है। कई जातियाँ विलुप्त हो जाने के अतिरिक्त कुछ संकटग्रस्त (endangered) हैं अर्थात् खतरे में पड़ी हुई हैं और कुछ विलोपशील (threatened) है। विलुप्त हो जाने के कारणों और वन्य जीवन संरक्षण की आवश्यकता पर चर्चा करने से पहले, आइए हम संकटग्रस्त, आशंकाग्रस्त और विलुप्त जैसे शब्दों की परिभाषा दें।

संकटग्रस्त जातियां वे हैं जिनका विलुप्त हो जाने का खतरा है। विलुप्त जातियों का अब अस्तित्व नहीं है।

तालिका 20.1

खतरे में पड़े प्राणियों की श्रेणियाँ (Categories of Animals at risk)

वर्गीकरण	अर्थ
गंभीर रूप से संकटग्रस्त	जो बिना मानव सहायता के नहीं बचेंगी। (उदाहरण: कैलिफोर्निया कंडोर (गिद्ध), फ्लोरिडा तेंदुआ), महान भारतीय सारंग।
संकटग्रस्त	जो शीघ्र विलुप्त हो जाने के खतरे में हैं। (उदाहरण: वुहपिंग सारस, लाल भेड़िया, मुख्य हरिण या मृग (Key deer), नीली ह्वेल), घड़ियाल।
विलोपशील	अपनी परास के भाग में प्रचुर लेकिन दूसरे भागों में गंभीर रूप से ह्रासित उदाहरण: ग्रिजली भालू, बालुटिब्बा सारस एक श्रृंगी गैंडा
दुर्लभ	इस समय संकटग्रस्त नहीं लेकिन संख्या में कम होने के कारण जोखिम में (इसमें अनेक अंतःस्थलीय जातियाँ शामिल हैं)

संकटग्रस्त जातियाँ वे हैं जो कभी भरपूर थीं लेकिन मानव गतिविधियों के कारण जिनकी संख्या बहुत तेजी से कम हो गई है और जिनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

विलोपशील जातियाँ वे हैं जिनकी अनुमान लगाए जा सकने वाले भविष्य के अंदर ही संकटग्रस्त जातियाँ बन जाने की संभावना है। इन जातियों का पूरे परास (range) या उस परास के महत्वपूर्ण भाग में संकटापन्न हो सकता है। जिन संकटग्रस्त या आशंकाग्रस्त जातियों के लिए किसी भी तरह के संरक्षण उपाय नहीं किए जाते वे विलुप्त हो जाती हैं। अधिक स्पष्टीकरण के लिए आप तालिका 20.1 पर एक निगाह डाल सकते हैं।

संकटग्रस्त और विलोपशील जातियों को संरक्षित रखना और उन्हें विलुप्त होने से बचाना वन्य जीवन संरक्षण का एक प्रमुख लक्ष्य है। जातियों के विलुप्त होने के कारणों, जातियों के संरक्षण की आवश्यकता और संरक्षण के कार्य के बारे में आप नीचे के भागों में पढ़ेंगे।

20.3.1 वन्य जीवन के विलुप्त होने के कारण

वन्य जीवन विलोपन समाज में क्रियारत अनेक बलों का परिणाम है। उदाहरण के लिए, आर्थिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक प्रबलताएँ। चित्र 20.1 में जातियों के विलोपन का कारण बनने वाली गतिविधियाँ और प्रत्येक का तुलनात्मक महत्व दिखाया गया है। कुछ कारक वन्य जीवन को प्रत्यक्ष रूप से और कुछ अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। आइए इनमें से हर कारक का कुछ विस्तार से अध्ययन करें।

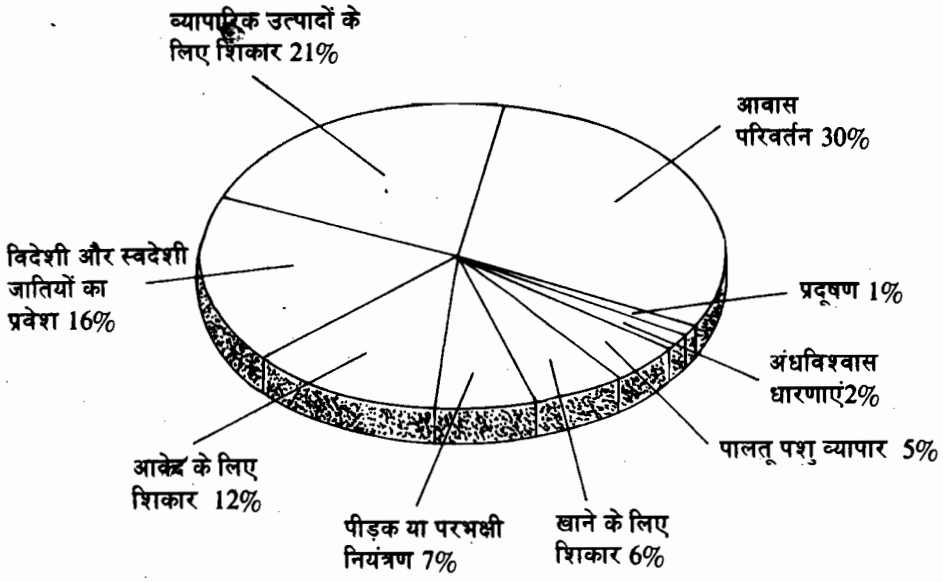

चित्र 20.1 : उन मानव गतिविधियों का विभाजन जो जातियों के विलोपन का कारण हैं। लेकिन अक्सर एक से अधिक गतिविधि सम्मिलित होती है।

क) **आवास का परिवर्तन**: विशेष वन्य जीवन जाति के आवास को जानबूझकर या अनजाने में नष्ट करने से जाति विलुप्त हो जाती हैं। वनोन्मूलन, जलनिकास (drainage), अतिचराई, खेती के विस्तार, शहरी और कस्बाई विकास, राजमार्ग निर्माण, बाँध बनाने आदि से वन्य जंतुओं के आवास नष्ट हो सकते हैं। अपने आवास के नष्ट हो जाने के फलस्वरूप जाति या तो परिवर्तनों के अनुसार अनुकूलित बन जाए, कहीं और चली जाए या परभक्षण (predation), भुखमरी या रोग के सामने हार कर दम तोड़ दे।

विश्व में एक जाति प्रतिदिन कम हो रही है। और अगले 20 वर्षों में सभी प्रकार के वन्य जीवन का लगभग 25% विलुप्त हो सकता है।

ख) **व्यापारिक आखेट और निर्वाह के लिए शिकार**: प्रकृति में बहुत विविधता है। विविधता के कारण कई लाख सालों में पौधों और प्राणियों की बड़ी संख्या में जातियाँ पैदा हुई। लेकिन यह मनुष्य ही है जो प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से पौधों और प्राणियों की जातियों के विलोपन के लिए उत्तरदायी है।

प्राणियों को मारने के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं जैसे कि भोजन, वसा (चर्बी), फर और पंख, आमोद-प्रमोद, आर्थिक लाभ और भय। आदि काल से मनुष्य खाने के लिए शिकार करता रहा है। यह अपेक्षाकृत हाल ही के समय में हुआ है कि मनुष्य आर्थिक लाभों या आखेट के लिए भी प्राणियों को बड़े पैमाने पर मारने लगा है।

व्यापारिक दृष्टि से प्राणियों का उनके फर, खालों, दातों जैसे कि हाथी और जंगली सूअर के दांत, मृग श्रृंग यानी हरिण के सींग और शरीर के दूसरे अनेक अंगों के लिए शिकार किया जाता है। घड़ियाल और मगर का शिकार उनकी चमड़ी के लिए किया जाता है जो अनेक चीजों के काम में लाई जाती है। सबसे ज्यादा प्रचलन शिकार ह्वेल के का है। "तिमि-अस्थि" या "ह्वेल बोन" कंघे बनाने और दूसरे उत्पादों में काम में लाई जाती थी।

मनोरंजन के लिए शिकार करना भी वन्य जीवन के विलुप्त होने का एक कारण है। मनोरंजन और लाभ के लिए वन्य जीवन की व्यापक चोरी होती है।

ग) **विदेशी जातियों का प्रवेश**

विदेशी या बाहरी जाति का नए क्षेत्रों में प्रवेश कराना भी कभी-कभी घोर परिस्थितिकीय संकट का कारण बन सकता है। प्रवेश कराई गई जाति का निकेत (niche) देशीय या देशज (native) जाति के निकेत पर कुछ अंश तक छा सकते हैं जिसे अतिव्याप्त (overlap) करना कहते हैं। प्रतियोगिता में नवागत जाति देशीय जाति को पछाड़ सकती है और इन सबके फलस्वरूप देशीय जाति विलुप्त हो सकती है। हालांकि मछली पकड़ने और शिकार करने में सुधार लाने की दृष्टि से जातियाँ प्रायः जानबूझकर प्रवेश की जाती हैं लेकिन इससे समस्याएं भी पैदा हो सकती हैं।

घ) **पीड़कों और परभक्षियों का नियंत्रण**

प्राकृतिक परभक्षी जिसका शिकार करते हैं उस आबादी के अधिक उम्र वाले, बीमार और चोट खाए हुए सदस्यों को हटा देते हैं। इसके विपरीत मानव प्रायः सबसे ताकतवर प्राणियों को आबादी से हटा देते हैं। ऐसा परभक्षण आबादी के आनुवंशिक सक्रियता (genetic vigour) को कम कर देगा। इस प्रकार मानव और प्राकृतिक परभक्षी शिकार की आबादी पर एक दूसरे से विपरीत प्रभाव डालते हैं। प्राकृतिक परभक्षी शिकार आबादी को मजबूत बनाते हैं जबकि मानव समाज इसे कमजोर बनाता है। परभक्षी और पीड़क भी परितंत्र के महत्वपूर्ण जैव घटक (biotic components) हैं। और इसलिए इन घटकों के बारे में विचार करते समय अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। मानव जाति भालुओं, भेड़ियों, शेरों जैसे अनेक परभक्षियों और पीड़कों का शिकार करते हैं, उन्हें पिंजरे में कैद कर लेते हैं और जहर दे डालते हैं। सामान्यतया, परभक्षी और पीड़क नियंत्रण उपायों के दो प्रमुख प्रभाव हैं: (i) इन उपायों से प्राकृतिक परभक्षी मर जाते हैं जो संतुलित परितंत्र का हिस्सा हैं, (ii) इन उपायों से अलक्षित जातियों को अंधाधुंध जहर मिल सकता है जिससे खाद्य-श्रृंखला में उच्चतर जीवों (organisms) पर प्रतिकूल (ripple) प्रभाव पड़ता है।

आस्ट्रेलिया में परभक्षियों के नियंत्रण न होने से खरगोश पीड़क बन गए।

ङ) **चिड़ियाघरों, निजी संग्रहों और अनुसंधान के लिए संग्रह**

चिड़ियाघरों के लिए, निजी संग्रह करने वालों और जीवविज्ञान तथा आयुर्विज्ञान में अनुसंधान करने वालों के लिए पूरे विश्व में जीवाणु, प्राणि और पौधे इकट्ठे किए जाते हैं। वैध रूप से निर्यात किए जाने वाले प्राणियों में अनेक संकटग्रस्त विलोपशील और विरल जातियाँ हैं। सारे संसार के अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन के लिए प्राणियों की अनेक किस्में काम में लाते हैं जिनमें से बहुत सी वन्य किस्में हैं। विशेष रूप से प्राइमेट्स, जैसे कि बन्दरों और चिम्पान्जियों को अनुसंधान के नाम पर बलि चढ़ा दिया जाता है। मानव के शरीररचनात्मक (anatomical) आनुवंशकीय (genetic) और शरीरक्रियात्मक (physiological) समानता होने के कारण प्राइमेट्स की मांग है। उदाहरण के लिए, चिम्पान्जी को मानव जनन (reproduction) के स्वरूप और कैंसर के निरोधकारी औषधों का पता लगाने के अनुसंधान में काम में लाया जाता है। अनुसंधान प्राणी प्रायः कैद में प्रजनन (breed) नहीं करते। उनमें मृत्युदर भी अधिक होती है जिसके फलस्वरूप वन्य जीवन में लगातार कमी होती रहती है।

इसके अतिरिक्त, प्राणियों की पूर्ति के लिए बनाए गए विनियमों (regulations) का ढीले ढाले तरीके से पालन होता है। शिकारियों को भी प्रभावी जीवित बन्दीकरण या प्रग्रहण (capture) के बार में बहुत ही कम ज्ञान है इसलिए बन्दीकरण के दौरान मृत्यु और चोटें असामान्य नहीं हैं। वह केवल प्राणियों की ही बात नहीं है बल्कि कैक्टस और आर्किड जैसे पौधें भी किसी दूसरी जगह बेचे जाने के लिए उखाड़ लिए जाते हैं। पीड़क निवारण के प्रयास में अनजान ही लाखों मृदीय-जीवाणुओं का हनन कर दिया जाता है।

च) **प्रदूषण**

प्रदूषण पौधों और प्राणियों के आवास की गुणवत्ता को बदल देता है और विलोपन का एक महत्वपूर्ण कारण बनता है। ज्वारनदमुखों और तटीय मंडलों (zones) में रहने वाले जीवों के लिए जल प्रदूषण विशेष रूप से हानिकारक हैं। खाद्य श्रृंखला में घुसने वाले टॉक्सीय (toxic) यानी विषैले अवशिष्ट यानी रद्दी पदार्थों का ऐसे जीवों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। कीटनाशक (insecticides) और पीड़कनाशी (pesticides) भी जीवाणुओं पौधों और प्राणियों पर प्रभाव डाल सकते हैं।

छ) **अन्य परिस्थितिकीय कारक** : दूसरे परिस्थितिकीय कारक भी हैं जो जातियों के विलुप्त होने में योगदान देते हैं। इनमें से कुछ नीचे दिए गए हैं:

i) विशिष्टीकरण (specialisation) की कोटि एक महत्वपूर्ण कारक है। पौधा, जीवाणु या प्राणी जितना अधिक विशिष्टीकृत होता है विलोपन के लिए वह उतना ही असुरक्षित होता है।

ii) खाद्य श्रृंखला में जीव की स्थिति भी महत्वपूर्ण है। श्रृंखला में प्राणी का जितना उच्च (higher) स्थान होता है, वह उतना ही सुग्राही (susceptible) बन जाता है। बड़े प्राणी शिकार के लिए अधिक लाभदायक हैं और उन्हें आसानी से निशाना बनाया जा सकता है क्योंकि वे मानव से कम डरते हैं।

है। बड़े प्राणी शिकार के लिए अधिक लाभदायक हैं और उन्हें आसानी से निशाना बनाया जा सकता है क्योंकि वे मानव से कम डरते हैं।

iii) वितरण परास (range) भी विलोपन को प्रभावित करता है। परास जितनी ही छोटी होगी विलोपन का खतरा भी उतना ही अधिक होगा। द्वीपों की आबादी विशेष रूप से सुग्राही है।

iv) जनन दर भी एक महत्वपूर्ण कारक है। बड़े जीवों की प्रवृत्ति लम्बे अंतराल से कम बच्चे पैदा करने की है। उनकी संतति भी जनन आयु में देर से पहुंचती है।

v) मानव की उपस्थिति के प्रति सहनशीलता या विशिष्ट व्यवहारात्मक (behavioural) रवैया भी एक महत्वपूर्ण प्रतिकूल भूमिका निभाता है।

बोध प्रश्न 2

क) नीचे दी गई तालिका में बायीं ओर दिए गए जातियों के वर्णन के लिए उपयुक्त शब्द भरिए।

वर्णन	शब्द
विलुप्त हो जाने के खतरे में पड़ी हुई जाति।	
जाति जो अस्तित्व में नहीं हैं।	
जाति जिसके संकटग्रस्त जाति बनने की संभावना है।	

ख) वन्य जीवन विलोपन के कई कारण हैं। चार महत्वपूर्ण कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

20.3.2 वन्य जीवन संरक्षण की आवश्यकता

आप यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि हम संकटग्रस्त जातियों को क्यों बचाएं। वे जातियाँ हमारा ऐसा क्या भला करती हैं कि सभी नीति निर्माता, वैज्ञानिक और दिलचस्पी रखने वाले नागरिक तर्क देते हैं कि जातियों का विलोपन सबसे गम्भीर पर्यावरणीय समस्याओं में से एक समस्या है? इस भाग में संकटग्रस्त जातियों की रक्षा के लिए आवश्यकता के महत्व की विस्तार से चर्चा की गई है।

i) **आनुवंशिक भंडार के रूप में मूल्य**: पौधों और प्राणियों में ऐसे विशेषक (traits) होते हैं जो खोजे नहीं गए हैं या अविकसित हैं। ये विशेषक जाति के जीवित रहने के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। जब किसी आबादी के सभी सदस्यों के जीन को साथ-साथ जोड़ा जाता है तो एक **जीन कोश (gene pool)** बन जाता है जो उस जाति का प्रतिनिधि है। सभी प्रकार के जीन कोशों का परिरक्षण महत्वपूर्ण है क्योंकि वे भविष्य में हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। कुछ भी कहिए हम अनुवांशिक भंडार के सदस्यों के बीच अंतराजाति (interspecies) संबंध के बारे में और पारितंत्र संतुलन तथा इसके स्थायित्व के बारे में पर्याप्त रूप से नहीं जानते। इसलिए हम यह सहन नहीं कर सकते कि कोई भी जीन कोश क्षय हो जाए या नष्ट हो जाए।

कृषि वैज्ञानिकों के लिए बड़े जीव कोश भी महत्वपूर्ण हैं। सभी घरेलू फसलें और पशुधन देशीय पौधों और प्राणियों से विकसित हैं। इन सभी देशीय जातियों की नई आनुवंशिक विशेषतायें अभी भी जरूरी हैं। हमारी वर्तमान और भविष्य की खाद्य उत्पादन समस्याओं को हल करने में इन विशेषताओं की सहायता जरूरी है। यदि संकटग्रस्त जातियों को परिरक्षित करने के लिए कदम नहीं उठाए गए तो जीन कोश समाप्त हो जायेंगे।

ii) **पारितंत्र स्थायित्व बनाए रखने में महत्व :** जैसा कि आप जानते हैं पारितंत्र में अजीवीय कारक जैसे ताप, आर्द्रता यानी नमी आदि और जीवीय कारक जीवाणु पौधे और प्राणी सम्मिलित हैं। पारितंत्र प्रकृति का नाजुक संतुलन बनाए रखते हैं। प्रत्येक जाति दूसरी जाति से पारस्परिक क्रिया करती है और पारितंत्रों में तथा उनके बीच ऊर्जा और पदार्थों के स्थानांतर में एक भूमिका निभाती है। इसलिए हर जाति अपने ही तरीके से पारितंत्र स्थायित्व के स्थायित्व में योगदान देती है। जाति भले ही पौधे की हो या प्राणी की हो पारितंत्र स्थायित्व के लिए उसके प्रकार्य महत्वपूर्ण है। जैसा कि आप जानते हैं पौधों का स्थान खाद्य जाल के आधार पर है। इसलिए केवल एक जाति के पौधे के विलोप से उस विशेष पादप जाति (plant species) पर निर्भर रहने वाली प्राणी जाति का विलोपन हो सकता है। यहाँ-वहाँ किसी जाति के कम हो जाने से पारितंत्र के स्थायित्व पर कुल मिलाकर खास अंतर नहीं पड़ता लेकिन सुदूर भविष्य में इस प्रकार की हानियों का संचयी प्रभाव किसी दिन हमारे अपने अस्तित्व के लिए खतरा बन सकता है। अगर हम यह सोचते हैं कि प्रत्येक जाति अपने आप में अनावश्यक या गौण है तो धीरे-धीरे हम उस जैव सृष्टि को नष्ट कर देंगे जिसमें हम रहते हैं।

iii) **आर्थिक मूल्य:** जाति का आर्थिक मूल्य इसकी सहायता करता है। अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में हम कई ऐसी चीज़ें काम में लाते हैं जो वन्य जीवन का उत्पाद हैं। कई जीवाणुओं एवं पौधों का औषधीय मूल्य है। इनमें हमें दवाइयाँ मिलती हैं जैसे कि *पेनिसिलियम* से पेनिसिलिन, *सिन्कोना* से कुनैन, पोस्ता (opium poppy) से मॉर्फीन चिंगट (shrimp), केकड़ों और महाचिंगट (लॉब्स्टर) के कंकालों से निकाला गया एक रसायन कवकीय संक्रमण के लिए एक निरोधी औषधि के रूप में काम आ सकता है।

घरेलू फसल और पशुधन सुधारने के लिए महत्वपूर्ण पादप और प्राणी जीवों की आवश्यकता पड़ती है। उष्णकटिबंध (tropics) और उपोष्णकटिबंध (subtropics) में स्थित कई आनुवंशिक भंडार लगभग सभी सामान्य मूल्यवान जीवाणुओं, पौधों और प्राणियों के स्रोत हैं। पादप और प्राणी प्रतिरोध को सुधारने की सतत लड़ाई में जरूरत पड़ने वाला आनुवंशिक पदार्थ इन्हीं भंडारों से मिलता है। इन कोशों के विलुप्त होने से खाद्य पूर्ति पर विश्वव्यापी हानिकारक प्रभाव पड़ेगा।

मछली पकड़ने वाले लाज (lodges) और आखट का सामान रखने वाले भंडारों के लिए मछली आय का एक स्रोत है। मनोरंजन और पर्यटन उद्योग के लिए वन्य जीवन आय का स्रोत है। राष्ट्रीय और राज्य उद्यान तथा वन पर्यटन के सबसे लोकप्रिय आकर्षण है।

यद्यपि किसी जाति का आर्थिक मूल्य ऊपरी तौर पर दिखाई नहीं देता, तथापि हम दावे से नहीं कह सकते कि किसी जाति विशेष का कोई आर्थिक मूल्य नहीं है।

iv) **सौंदर्यात्मक-मूल्य :** जातियों का सौंदर्यात्मक मूल्य भी उनके परिरक्षण को बढ़ावा देता है। उदाहरण के लिए, वन्य सरसफलों (berry) का स्वाद, वन्य पुष्पों अर्थात् जंगली फूलों की ताजा महक और मॉस-बेड (moss-beds) की कोमलता का कोई आर्थिक मूल्य नहीं है पर फिर भी उनका सौन्दर्य मूल्य हमें विवश कर देता है कि हम उनको परिरक्षित रखें।

v) **जन्मजात मूल्य :** हर जाति को अपना अस्तित्व बनाए रखने का अधिकार है। इसलिए अगर कोई जाति है तो इसे बने रहने का मौलिक अधिकार है और मानव गतिविधियों को यह अधिकार नहीं है कि उसे विलुप्त कर दें। मानव किसी जाति के साथ किस सीमा तक निभा सकते हैं, इससे उस जाति के जन्मजात मूल्य को उचित रूप से नहीं आँका जा सकता।

संकटग्रस्त जातियों को बचाने के उपाय के विषय में जानने से पहले निम्नलिखित बोध प्रश्न को हल कीजिए।

बोध प्रश्न 3

क) दूसरे प्राणियों की तुलना में स्तनधारी जातियाँ (विशेष रूप से प्राइमेट्स) क्यों अधिक विलुप्त हो रही है?

.....

.....

ख) संकटग्रस्त जातियों को बचाने के चार महत्वपूर्ण कारण बताइए।

.....

.....

20.3.3 संकटग्रस्त जातियों को कैसे बचाया जाए?

जातियों को परिरक्षित रखना साधारण बात नहीं है। वन्य जीवन प्रबंध की समस्याएं बहुत जटिल हैं और तीन अतिव्याप्त स्तरों पर बहुत काम होना बाकी है। ये स्तर हैं तकनीकी, वैध (कानूनी) और व्यक्तिगत।

वन्य जीवन की किसी जाति की अपेक्षित संख्या पाने के लिए उनके आवास को बचाना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि वन्य जीवन आबादी अपने आवासों के प्रति बहुत संवेदनशील है। यह आबादी आवासों के संदर्भ में संवेदनशीलता के अनुक्रिया करती है। इस प्रकार आवास प्रबंध एक दक्ष तकनीक है। इसलिए हम कह सकते हैं कि वन्य जीवन प्रबंध में आवास प्रबंध शामिल है।

समाकलित जाति प्रबंध कार्यक्रम वन्य जीवन की रक्षा करने के लिए सबसे उत्तम तरीका है। विलोपन के कारण पर बहुविधि हमला करने का यह एक ढंग है। समाकलित जाति प्रबंध के कुछ कार्य नीचे की तालिका में दिए गए है। (तालिका 20.2)

तालिका 20.2 : समाकलित जाति प्रबंध–कुछ उपाय

1)	शहरी और दूसरे विकास कार्य सावधानीपूर्वक चुनकर आवास के विनाश को कम करना।
2)	नीड़न स्थानों और अन्य नाजुक आवासों को बचाने के लिए परिरक्षण स्थलों को स्थापित करना।
3)	जब प्रमाण यह बताता है कि जिस जाति का शिकार किया गया है वह विरल, संकटग्रस्त या आशंकाग्रस्त है और इन प्राणियों और पौधों से प्राप्त किए जाने वाले सामान की जगह संश्लेषित उत्पादों से काम चल सकता है तब व्यापारिक और ट्राफी आखेट कम करना।
4)	वन्य जीवन प्रबंध में सुधार जिसमें उन जातियों की रक्षा और प्रबंध करने का कार्यक्रम शामिल है जो शिकार की नहीं हैं।
5)	अन्य देशीय जातियों के प्रवेश किए जाने पर नियंत्रण विशेष रूप से द्वीपों पर प्रवेश का नियंत्रण।
6)	परभक्षी और पीड़क (pest) नियंत्रण प्रबंध कार्यक्रमों का सावधानी से डिजाइन ताकि जिन जातियों को समाप्त करने का लक्ष्य नहीं है वे भी अंधाधुंध खत्म न हो जाएं।
7)	प्रदूषण कम करना।
8)	वन्य जीवन के मूल्य के प्रति और कौन से कारकों से विलोचन होता है इसके प्रति जनता में जागरुकता पैदा करना।
9)	संकटग्रस्त जातियों की मुक्ति के लिए बन्दी प्रजनन (captive breeding) कार्यक्रमों में धन लगाना।
10)	अनुसंधान प्राणियों के जनन को बढ़ावा देने के लिए प्रजनन कार्यक्रम बनाना।
11)	दंडों को कठोर बनाना, और प्राणियों तथा पौधों के व्यापार और चोरी की चौकसी बढ़ाना।
12)	संकटग्रस्त जातियों के व्यापार पर रोक लगाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना।
13)	सम्भवतया नए करों द्वारा सभी संरक्षी उपायों के लिए खर्च बढ़ाना।
14)	पारितंत्र स्थायित्व के बारे में अधिक जानकारी पाने के लिए और पौधों तथा प्राणियों के नाजुक आवासों को पहचानने के लिए अनुसंधान प्रयासों को और तेज करना।

प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक लक्ष्य जाति (target species) को लाभ पहुंचाने के लिए और विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशिष्ट रूप से डिजाइन की गई तकनीकों का समूह तंत्र अभिगम (systems approach) कहलाता है। तंत्र अभिगम में निम्नलिखित शामिल है:

क) समस्याओं को अलग करने के लिए विशेषज्ञों द्वारा गहन अध्ययन और अनुसंधान

ख) लक्ष्यों की परिभाषा

ग) सभी प्रचार माध्यमों द्वारा जनता को शिक्षा

घ) आवास को रखने और सुधारने के लिए कार्यक्रम

ङ) लक्ष्योन्मुखी शिकार फसल विनियम अथवा आबादी नियंत्रण कार्यक्रम

च) अपेक्षित जनसंख्या परिवर्तन प्राप्त करने के लिए लिंग और आयु अनुपात तथा प्राणियों की सघनता का भी हेरफेर

छ) शिकार चोरों अथवा आखेट कानून उल्लंघन को डर दिखाकर रोकने या पकड़ने के लिए ऐजेंटों द्वारा कार्यवाही

ज) रोग और परजीवियों का नियंत्रण और व्यक्ति परभक्षियों का चुनाव

झ) जहाँ वन्य जीवन ने सफलतापूर्वक प्रजनन किया है उन क्षेत्रों से उनको ऐसे क्षेत्रों में बढ़िया अनुसंधान के बाद प्रतिरोपण जहाँ आबादी बढ़ने की बहुत सम्भावना है।

काज़ीरंगा जहाँ पर एक श्रृंगी गैंडा का जनन सफलतापूर्वक होता है, से हाल ही में इनका प्रवास तराही में कराया गया है जहाँ इनकी जनसंख्या में वृद्धि होने की काफी संभावना है।

20.4 हमारे देश में संरक्षण :

भारतीय वन्य जीवन समृद्ध और विविध हैं अतः इसकी रक्षा करनी चाहिए। इस देश में पौधों की 45,000 जातियाँ हैं जिनमें से 7000 जातियाँ भारतवर्ष के लिए विशेषक्षेत्री या स्थानिक (endemic) हैं। प्राणी जातियों की संख्या लगभग 75,000 हैं जिनमें से 850 स्तनधारी हैं। इन 850 में बलशाली हाथी, विशालकाय हिमालयी भेड़, भारतीय बिशन या गौर, चीतल, कृष्णसार या ब्लैकबक, चार सींगों वाला बारहसिंगा (ऐन्टिलोप), एक सींग वाला गैंडा (राइनोसिरॉस) और गौरव पूर्ण शेर और बाघ शामिल हैं। लेकिन जैसे-जैसे समय गुजरता गया प्रकृति के साथ मनुष्य के हस्तक्षेप के कारण वन्य जीवन की संख्या कम होती गई। कुछ जातियाँ विलुप्त हो गई और कुछ संकटग्रस्त या आशंकाग्रस्त हैं। यद्यपि भारतवर्ष में संकटग्रस्त जातियों की संख्या ठीक-ठीक निर्धारित नहीं की जा सकती लेकिन ऐसा अनुमान है कि 150 स्तनियों और 150 पक्षियों की जातियाँ आशंकाग्रस्त हैं। कीटों, जीवाणुओं और वनस्पतिजात की एक अज्ञात संख्या का भी विलुप्त हो जाने का खतरा है। उभयचरों (एम्फीबियन) सरीसृपों (रेपटाइल्स), पक्षियों और स्तनियों की संकटग्रस्त जातियों की सूची नीचे दी गई है (तालिका 20.3)

तालिका 20.3 : सरीसृपों, स्तनियों और पक्षियों की संकटग्रस्त कुछ जातियाँ।

सरीसृप	पक्षी	स्तनधारी
घड़ियाल	बृहद् भारतीय सारंग (हुकना)	कृष्णसार (Black buck)
हरा समुद्री कूर्म (turtle)	(Great Indian bustard)	सिंहपुच्छी मैकक (Lion-tailed macaquel)
अजगर	(चित्र के लिए देखिए इकाई 7)	जंगली गधा (Wild ass)
कछुआ	बृहद भारतीय धनश	लकड़बग्घा (Hyaena)
	(Great Indian hornbill)	रीछ (Sloth bear)
	भूरा सिर घामरा/बभुशीर्ष गोमरा	बाघ (Tiger)
	(Brown-headed gull)	चीतल
	धनेश (hornbill)	साँभर
	पर्वत बटेर (Mountain Quail)	
	मोर	
	पीफ़ाउल (Peafowl)	
	पेलिकन	
	साइबेरीआई सफेद सारस	
	(Siberian white crane)	

समय के साथ वन्य जीवन की संकल्पना भी बदल गई है। पहले वन्य जीवन को शिकार करने के लिए एक "अहेर" (game) माना जाता था लेकिन अब इसे "सौंदर्य की वस्तु" और "प्रकृति का उपहार" समझा जाता है। एक ऐसी वस्तु और उपहार जिसको परिरक्षित रखने की आवश्यकता है। इस नई संकल्पना के फलस्वरूप वन्य जीवन की रक्षित क्षेत्रों में रक्षा की जाती है। ये रक्षित क्षेत्र हैं– राष्ट्रीय उद्यान, विहार और आरक्षित स्थल (reserves)। आप इनके बारे में आने वाले भागों में पढ़ेंगे।

चित्र 20.2 : पेलिकन

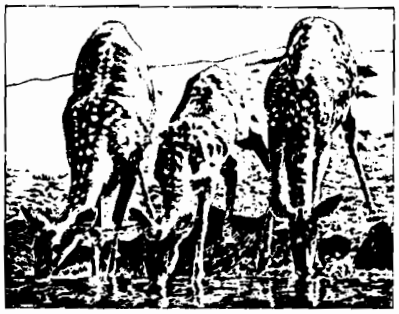

चित्र 20.3 : चीतल

चित्र 20.4 : बाघ

चित्र 20.5 : सांभर

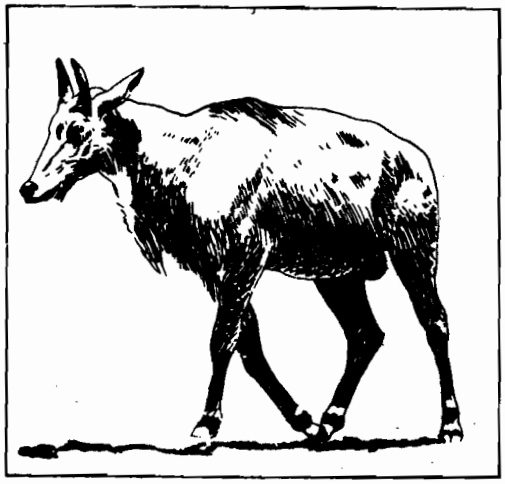

चित्र 20.6 : कृष्णसार

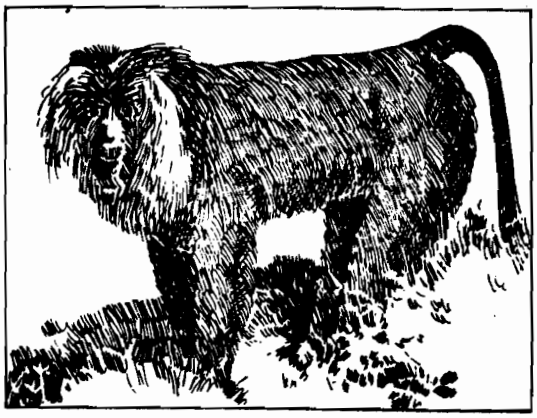

चित्र 20.7 : सिंह पुच्छी मैकक

20.4.1 रक्षित क्षेत्र: परिभाषा और कानून

मनुष्य की गतिविधियों द्वारा प्रतिकूल रूप से प्रभावित प्राकृतिक समुदायों को परिरक्षण के लायक समझा जाता है। कुछ क्षेत्रों को राष्ट्रीय उद्यान या वन्य जीवन विहार घोषित करके प्राकृतिक समुदाय को उसके परितंत्र सहित परिरक्षित किया जाता है। आइए पहले हम राष्ट्रीय उद्यानों, विहारों और आरक्षित स्थलों की परिभाषा दें। **राष्ट्रीय उद्यान** एक ऐसा क्षेत्र है जो पर्यावरण, प्राकृतिक और ऐतिहासिक वस्तुओं को संरक्षित करने तथा उस पर्यावरण में रहने वाले वन्य ज़ीवन को संरक्षित करने के लिए समर्पित है। इसके साथ ही ऐसे ढंग से और ऐसे साधनों से राष्ट्रीय उद्यान से आनन्द उठाने की व्यवस्था की जाती है कि ये उद्यान आने वाली पीढ़ियों के उपभोग के लिए अक्षुण्ण यानी बिना क्षति वाले बने रहें। राष्ट्रीय उद्यानों में सारे निजी अधिकार अस्तित्व हीन हो जाते हैं अर्थात वहाँ निजी अधिकार नाम की कोई चीज नहीं है। वहाँ सारे वन सम्बंधी कार्य और दूसरी तरह के उपयोग जैसे कि घरेलू पशुओं की चराई मना है।

वन्य जीवन विहारों में पक्षियों और स्तनियों की किसी भी जाति को मारना, उसका शिकार करना, गोली मारना या पकड़कर कैद करना मना है। विहार के प्रबंध के लिए उत्तरदायी विभाग में उच्चतम अधिकारी ऐसा कर सकता है या उसके नियंत्रण में ऐसा किया जा सकता है। विहार और वनस्थल में निजी स्थायित्व अधिकारों को जारी रखने की आज्ञा और अन्य उपयोगों की स्वीकृति दी जा सकती है लेकिन यह सब उस सीमा तक ही दी जा सकती है जहाँ तक कि इससे वन्य जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

कोई भी क्षेत्र जहाँ वन्य जीवन को विशेष रक्षा दी जाती है **रक्षित क्षेत्र** घोषित कर दिया जाता है उदाहरणत:

क) नदी घाटी परियोजना और अन्य सिंचाई के कार्य जो जल पक्षियों और दूसरे वन्य जीवन को आकर्षित करते हैं।

ख) बड़े शहरों या वन्य जीवन की दृष्टि से अति विशिष्ट स्थानों के भीतर या उसके आसपास ऐसा क्षेत्र जहाँ वन्य जीवन को रक्षा प्रदान की जाती है।

आरक्षित स्थल वे क्षेत्र हैं जो वन्य जीवन की रक्षा के लिए विशेषरूप से सीमांकित किए गए हैं।

रक्षित क्षेत्रों के लाभ

रक्षित क्षेत्रों के परितंत्रों का अध्ययन करने से विशेषतया जैवमंडल (biosphere) के प्रकार्य से सम्बंधित गतिविधियों में काफी वैज्ञानिक लाभ मिलता है। शांत परितंत्रों के अध्ययन से इन तंत्रों के व्यवहार के बारे में बहुत कुछ सीखा जा सकता है। इस तरह के नियंत्रण से ही मनुष्य को यह ज्ञात होता है कि उसने अपने पर्यावरण को कितनी हानि पहुंचायी है। इसके अतिरिक्त ज्यादा या कम शांत समुदाय, मनुष्य द्वारा बनाए गए तंत्रों की सतत क्रिया (operation) के लिए महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार, सरित प्रवाह बनाए रखने के लिए और जलाशयों का गादन (siltation) रोकने के लिए जल-संभर वनों (water-shed forests) की रक्षा की जाती है। इसी प्रकार रक्षित ज्वारनदमुखों से समुद्री जीवन का लगातार उत्पादन होता रहता है। यह उत्पादन मनुष्य के खाद्यान्न भंडारण और दूसरे कामों के लिए महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक वातावरण में घर से बाहर गतिविधियों या व.. परिस्थिति में पौधों

और प्राणियों से सम्पर्क, मनुष्य के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। इसलिए रक्षित क्षेत्रों का सौंदर्यात्मक और मनोरंजक मूल्य भी है।

किसी क्षेत्र को रक्षित घोषित करने से उस के रक्षण को नियमन करने के कानून स्वत: ही लागू हो जाते हैं। रक्षित क्षेत्र में रहने वाली वन्य जाति की आबादी को प्रोत्साहित करना, शिकार, चोरी रोकना इत्यादि आसान हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में अत्यधिक पेड़ कटाई या अतिचराई से होने वाले दोहन से बचा जा सकता है।

वन्य जीवन की रक्षा के लिए कुछ अधिनियम : वन्य जीवन संसाधनों के महत्व को समझते हुए और जीन अपरदन (gene erosion) को रोकने के लिए हमारे देश ने अनेक वन्य जीवन अधिनियमों के अधिनियमन (enactment) द्वारा समय-समय पर कदम उठाए हैं। विश्वव्यापी रुचि के फलस्वरूप राष्ट्रीय संसाधन संरक्षण अंतर्राष्ट्रीय संघ (International Union for Conservation of National Resources—IUCN) का गठन हुआ। इसकी एक शाखा भी है जिसका नाम उत्तरजीविता सेवा आयोग

WWF विश्वव्यापी स्तर पर क्रियाशील है और 25 देशों में इसका प्रतिनिधित्व है। WWF विश्व के सभी भागों में संरक्षण योजना के लिए धन संग्रह करता है जिसमें संकटग्रस्त जातियों और आवासों पर विशेष बल दिया जाता है। WWF, IUCN से परामर्श लेती है जो लगभग 100 देशों में सरकारी के विशेषज्ञों और निष्पादन (execution) एजेन्सियों का एक प्रतिनिधि समूह है।

(Survival Service Commission) है। यह हर उस जाति के बारे में अद्यतन सूचना देने का प्रयास करती है जो विलुप्त होने वाली हो। आई.यू.सी.एन. से सम्बद्ध (affiliated) प्रकृति के लिए विश्व व्यापी निधि (World Wide Fund for Nature) जैसे संगठन भी संरक्षण समस्याओं से गहरे रूप से जुड़ी हुई है।

पर्यावरणीय विधान (legislation) के बारे में आप खंड 6 की इकाई 23 में विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे। यहाँ हम आपको वन्य जीवन से सम्बन्धित कुछ अधिनियमों के नाम बतायेंगे।

वन्य जीवन के भारतीय बोर्ड का गठन 1952 में हुआ। 1972 में अखिल भारतीय वन्य जीवन रक्षण अधिनियम (All India Wildlife Protection Act) का अधिनियमन हुआ। यह प्राणिजात एवं वनस्पतिजात की संकटग्रस्त जाति में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सम्मेल (International Trade in Endangered Species of Fauna and Flora-CITES, 1976) की एक पक्षकार (पार्टी) बना। यूनेस्को (UNESCO's) के मनुष्य तथा जीवमंडल कार्यक्रम (Man and the Biosphere Programme MAB, 1971) के

राष्ट्रीय घटक का प्रारम्भ किया। हंगुल (1970), बाघ (1973), शेर (1972), मगर (1974) और भूरा श्रृंगामी मृग (brown-antlered deer) (1981) जैसी प्रत्येक संकटग्रस्त जाति के लिए संरक्षण परियोजनाएं शुरू कीं।

केन्द्र और राज्य सरकारों के प्रयासों तथा स्वैच्छिक संगठनों (agencies) के सहयोग से रक्षित क्षेत्रों में वन्य जीवन का सावधानीपूर्वक रक्षण किये जाने के लिए योजना बनाई जाता है। यद्यपि उद्यानों और आरक्षित स्थलों की स्थापना और समुचित प्रबंध के कुछ क्षेत्रों में कुछ जातियाँ जीवित बची रहती हैं फिर भी विश्व भर में वन्य जीवन के जीवित बने रहने के लिए सभी जमीनों और सभी जातियों को काम में लाते हुए विवेकपूर्ण प्रबंध की आम योजना बनाना अत्यावश्यक है।

बोध प्रश्न 4

क) नीचे दिए गए वाक्यों के लिए एक शब्द दीजिए:

i) ऐसा क्षेत्र जहाँ वन्य जीवन को विशेष रक्षण दिया जाता है। .....

ii) ऐसा क्षेत्र जहाँ प्राणियों को मारना शिकार करना, गोलीबारी करना मना है लेकिन निजी स्वामित्व अधिकारों की अनुमति दी जा सकती है। .....

iii) ऐसा क्षेत्र जो पर्यावरण, प्राकृतिक और ऐतिहासिक वस्तुओं को संरक्षित रखने के लिए समर्पित है और जहाँ सारे निजी अधिकार अस्तित्वहीन हैं। .....

ख) निम्नलिखित संकेताक्षरों (abbreviations) का विस्तार कीजिए।

डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. (W.W.F.) .....

आई.यू.सी.एन. (IUCN) .....

20.4.2 भारतवर्ष में वन्य जीवन विहार और राष्ट्रीय उद्यान

यह सुखद बात है कि देश में राष्ट्रीय उद्यानों और विहारों की संख्या जो 1952 में मात्र 33 थी दिसम्बर 1980 तक बढ़कर 221 तक पहुंच गई। यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.3% और कुल वन क्षेत्रफल का 10% है।

आज भारतवर्ष में 80 राष्ट्रीय उद्यान और 412 वन्य जीवन विहार है जो कि क्रमशः 99,682 वर्ग कि.मी. और 27,761 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले हुए हैं। इसके अतिरिक्त 17 बाघ आरक्षित स्थल हैं। इस प्रकार देश के भौगोलिक क्षेत्र का रक्षित क्षेत्र कुल मिलाकर लगभग 4% हैं।

हाल के वर्षों में, यह एहसास पनप रहा है कि वन्य जीवन संरक्षण एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। एक ऐसी संकल्पना जिसमें प्राणी, पौधे, सूक्ष्म जीव और मृदा के साथ पर्यावरण के अन्य भौतिक तत्त्व भी शामिल हैं जिनके अंदर वे रहते हैं और जिन पर वे निर्भर करते हैं।

लेकिन फिर भी संरक्षण मुख्य रूप से प्राणियों पर और वह भी स्तनधारियों पर केन्द्रित है, जीवाणुओं और पौधों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता और वन्य जीवन संरक्षण के किसी भी अर्थपूर्ण कार्यक्रम में इन्हें अलग रखा जाता है। सिट्रस (निम्बुवंश जिसमें नीबू, संतरा, चकोतरा आदि आते हैं) और घटपर्णी (pitcher plant) प्रत्येक के लिए एक जीव विहार है। दोनों ही उत्तर-पूर्व भारतवर्ष में स्थित हैं। प्राणियों के संरक्षण पर बल दिए जाने के स्पष्ट कारण हैं। ऐसा माना जाता है कि "अगर चोटी पर सब ठीक-ठाक है तो परितंत्र की जड़ ठीक-ठाक है।" दूसरे शब्दों में, अगर बाघ की संख्या बढ़ रही है तो यह मानना तर्क संगत है कि चीतल और अन्य शाकाहारी (जो बाघ का शिकार बनते हैं) भी फलफूल रहे हैं तथा तमाम पादप जीवन और जीवन के सूक्ष्म रूप भी फलफूल रहे हैं। पृथ्वी की सतह पर सभी जीव मानव के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण हैं।

कुछ महत्वपूर्ण वन्य जीवन विहार और राष्ट्रीय उद्यानों की सूची नीचे की तालिका में दी गई है। (तालिका 20.4)।

तालिका 20.4 : भारतवर्ष में महत्वपूर्ण वन्य जीवन विहार और राष्ट्रीय उद्यान। अधिक महत्वपूर्ण प्राणियों को सूची में अंकित किया गया है।

राज्य	राष्ट्रीय उद्यानों/ विहारों के नाम	प्राणिजात
1	2	3
आंध्र प्रदेश	पाखल वन्य जीवन विहार	बाघ, चीता, लकड़बग्घा, लोमड़ी, जंगली बिल्ली, चार्वासिंघा (chawsingha) आदि, श्रृंगी आखेट पक्षी, जलीय चिड़िया, चिन्ती चंच, श्रृंगी आखेट और मांसभक्षी।
	कोलेरू हवासिल-आश्रय	हवासिल (पेलिकन)
असम	काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान	**महान भारतीय एक-श्रृंगी गैंड़ा**, जंगली भैंसा (अरना), गौर, भनूप मृग, शूकर मृग (हाग मृग), सांबर, हाथी, बाघ, चीता मार्जार, जंगली सूअर, लंगूर, हवासिल (पेलिकन), फूलोरिकल, तीतर, अजगर आदि।
	मानस वन्य जीवन विहार	काजीरंगा जैसे। इसके अतिरिक्त सुनहरा लंगूर, क्षुद्र शूकर (पिग्मी हॉग), जल मॉनिटर, पक्षी जीवन समृद्ध और दिलचस्प है।
बिहार	हज़ारीबाग राष्ट्रीय विहार	बाघ, चीता, रीछ, जंगली कुत्ता, लकड़बग्घा, साम्बर, भौंकने वाला चीतल, चार्वासिंघा, नीलगाय, गंधा मार्जार (सिवेट कैट), जंगली सुअर आदि।
गुजरात	गिर राष्ट्रीय उद्यान	**भारतीय शेर**, तेंदुआ, लकड़बग्घा, साम्बर, चीतल, नीलगाय, चार्वासिंघा, सिंकारा, जंगली सूअर, लंगूर, मगरमच्छ।
	नल सरोवर पक्षी विहार	जल पक्षी।
हरियाणा	सुल्तानपुर झील पक्षी विहार	अधिकांश पक्षी प्रवासी (migratory) हैं।
जम्मू और कश्मीर	डाचीगाम वन्य जीवन विहार	**हंगल**, सेरो, कस्तूरी, मृग, हिमालय काला भालू, भूरा भालू, चीड़ (पाइन) मार्टिन, अन्य पक्षी प्राणिजात।

कर्नाटक	बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान	**हाथी,** गौर, साम्बर, चीतल, भौंकने वाला मृग, चार्वासंघा, जंगली सूअर, बाघ, चीता, रीछ, जंगल बिल्ली, लंगूर, जंगली कुत्ता, पक्षी जीवन पर्याप्त समृद्ध।
	रंगथिट्टु पक्षी विहार	रिवृत चंचु (open bill) यानी खुली चोंच, बलाक (स्टोर्क), सफेद आईबिस, छोटा बगुला, डार्टर, पनकौआ या जलकाक (cormorants), नदी कुररी (river tern), चम्मच चंचु (Spoon bill), मगरमच्छ।
केरल	पेरियार वन्य जीवन विहार	**हाथी, बाघ,** चीता, रीछ, जंगली, कुत्ता, गौर, नीलगाय, साम्बर, भौंकने वाला मृग, जंगली सूअर।
मध्य प्रदेश	कान्हा राष्ट्रीय उद्यान	बाघ, चीता, गौर, कठोर भूमि का अनूप मृग, साम्बर, चीतल, काली बत्तख आदि।
महाराष्ट्र	ढाकना-कोल्कंज वन्य जीवन विहार (अब परियोजना बाघ के अंतर्गत)	**बाघ,** तेंदुआ गौर, साम्बर, भौंकने वाला मृग, चार्वासंघा, रीछ, जंगली सूअर और सपाट मैदानों तक सीमित चीतल; पक्षी जीवन समृद्ध।
उड़ीसा	सिम्लिपाल राष्ट्रीय उद्यान (प्रस्तावित)	हाथी, साम्बर, भौंकने वाला चीतल, चीता, **बाघ** आदि।
पंजाब	अबोहर वन्य जीवन विहार	कृष्णसार (ब्लैक बग) और पक्षियों की अनेक जातियां (स्पीशीज)
राजस्थान	रणथम्बौर (बाघ परियोजना)	**बाघ,** चीता, जंगली बिल्ली (वन मार्जार), रीछ, नीलगायं, साम्बर, चीतल, जंगली, सूअर आदि।
	सरिस्का	बाघ, चीता, लकड़बग्घा, जंगली बिल्ली (वन मार्जार), साम्बर, नीलगाय, चार्वासंघा, आदि।
	घाना पक्षी विहार	प्रवासी और आवासी पक्षियों की लगभग 300 जातियां। कृष्णसार, जंगली सूअर, साम्बर, चीतल आदि भी।
तमिलनाडु	मधुमलाई वन्य जीवन विहार	बाघ, चीता, **हाथी,** गौर, साम्बर, चीतल, रीछ, जंगली कुत्ता।
	वेदान्थन्गल जलपक्षी विहार	जल पक्षियों की अनेक जातियाँ।
उत्तर प्रदेश	कोर्बेट राष्ट्रीय उद्यान	**बाघ,** चीता, रीछ, हाथी, साम्बर, चीतल, शूकल मृग (हाग डीयर), भौंकने वाला चीतल, चार्वासंघा, जंगली सूअर, मगरमच्छ, पक्षी जीवन समृद्ध।
	हुडवा राष्ट्रीय उद्यान	**बाघ,** चीता, रीछ, अनूप मृग, साम्बर, चीतल, शूकर, मृग, भौंकने वाला मृग, नीलगाय।
पश्चिम बंगाल	सुन्दरवन बाघ आरक्षितस्थल	**बाघ,** साम्बर, चीतल, जंगली सूअर, पक्षियों और मगरमच्छों की अनेक जातियां।
	जलदापुरा वन्य जीवन विहार	**गैंडा,** हाथी, बाघ, चीता, जंगली सूअर, गौर, साम्बर, भौंकने वाला मृग, शूकर मृग।

* मोटे काले अक्षर वाली जातियाँ वन्य जीवन विहार/राष्ट्रीय उद्यान की आरक्षित जातियाँ हैं।
भारत में वन्य जीवन विहारों की स्थिति चित्र 20.8 में दी गई है।

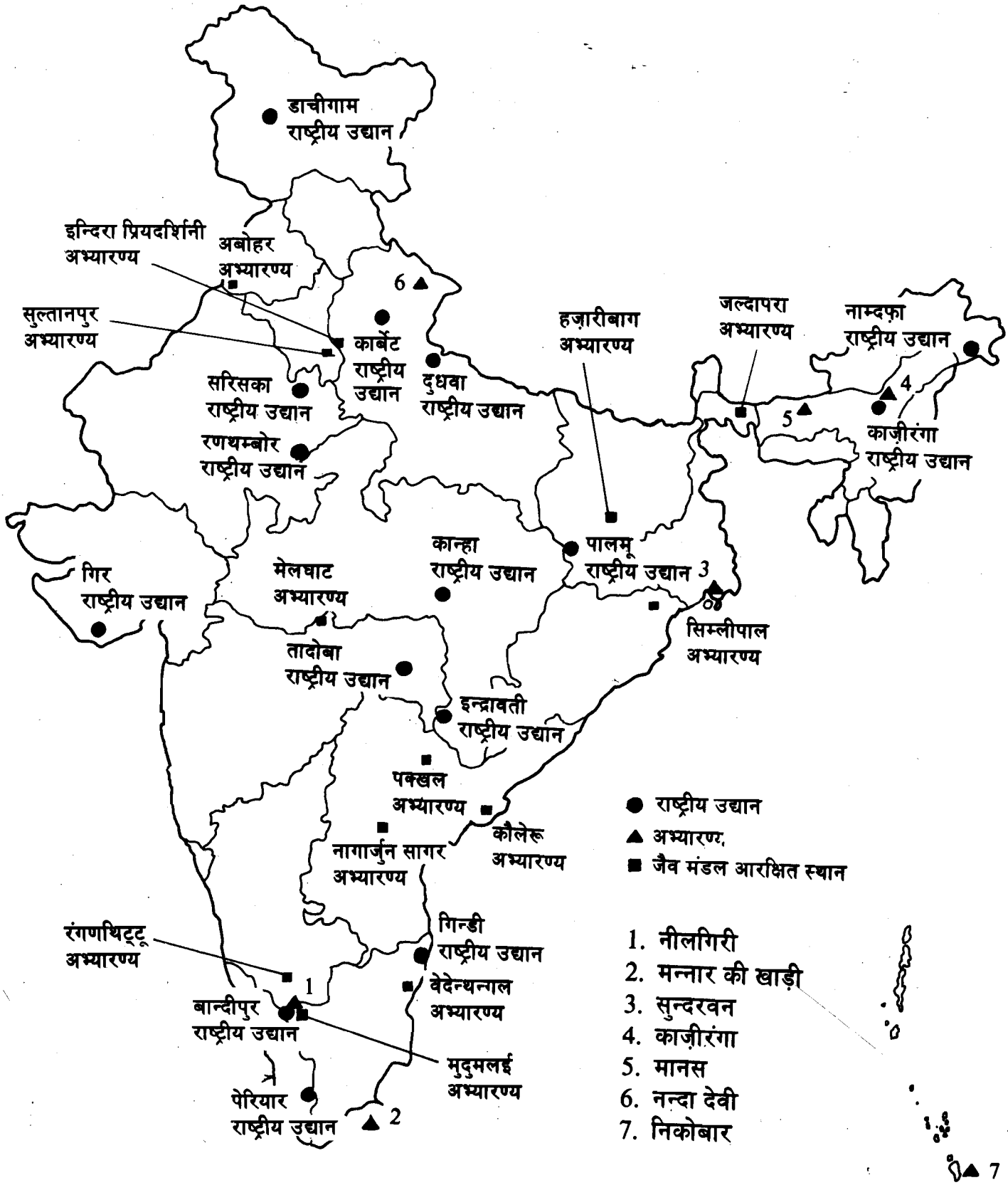

चित्र 20.8 : भारत के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण्य तथा जैव मंडल आरक्षित स्थान

तालिका 20.4 और चित्र 20/8 को ध्यान से अध्ययन करने के पश्चात् निम्नलिखित बोध प्रश्न का उत्तर दीजिए:

बोध प्रश्न 5

क) नीचे दिए गए संकटग्रस्त जातियों में से प्रत्येक के दो उदाहरण दीजिए (वैज्ञानिक नाम आवश्यक नहीं हैं)

i) स्तनधारी		
ii) पक्षी		
iii) सरीसृप		

ख) निम्नलिखित तालिका को पूरा कीजिए:

विहार स्थल/राष्ट्रीय उद्यान	स्थान	संरक्षित प्राणी
डाची गाम		
गिर		
डुडवा		
सिम्लिपाल		
मुधुमलाई		
काज़ीरंगा		

ग) नीचे दिए गए रिक्त स्थान भरिए:

i) भारतवर्ष में वन्य जीवन विहारों की कुल संख्या ..... है।

ii) भारतवर्ष में राष्ट्रीय उद्यानों की कुल संख्या ..... है।

iii) भारतीय वन्य जीवन रक्षण अधिनियम वर्ष ..... में बनाया गया।

20.4.3 बाघ परियोजना

"बाघ परियोजना" सफल सक्रियाओं (operations) में से एक है जो यह दर्शाती है कि एक बार सभी संसाधनों को समन्वित ढंग से एक साथ जुटा दिए जाने पर क्या कुछ प्राप्त किया जा सकता है। यह एक ज्ञात तथ्य है कि प्रकृति निर्दयी और अवसरवादी दोनों ही तरह की है। इस कारण से यह गारंटी नहीं दी जा सकती कि कोई भी जाति अंनत काल तक बनी रहेगी।

सदी के आखिर में विश्व के बाघों की आबादी 40,000 से घटकर 1972 में 1827 तक आ गई। बाघ के विलोपन के मुख्य कारण शिकार, वनोन्मूलन से आवास का विनाश और मानव की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नदियों को वश में करना है। इसलिए बाघों का निरन्तर अपने साथ रखने की सख्त आवश्यकता महसूस की गई। इसलिए आनुवंशिकी और विकास के सिद्धांतों पर आधारित एक दीर्घकालीन नीति का प्रस्ताव किया गया जिसका नाम "बाघ परियोजना" रखा गया। इस परियोजना का लक्ष्य न केवल बाघों की संख्या बढ़ाना है, बल्कि बाघ में अपेक्षित अंतर्निहित आनुवंशिक विकासीय प्रतिरोध (genetic evolutionary resistance) भी पैदा करना है ताकि वे भविष्य में होने वाले रोगाणुओं के हमलों का सफलतापूर्वक सामना कर सकें।

केन्द्र द्वारा प्रायोजित यह लाखों करोड़ों रुपयों की परियोजना । अप्रैल 1973 को शुरू की गई। इसके लिए धन वित्त व्यवस्था **प्रकृति के लिए विश्व व्यापी निधि** (World Wide Fund for Nature-WWF) और भारत सरकार द्वारा मिल जुल कर की गयी। इस परियोजना का उद्देश्य इस प्रकार है:

क) वैज्ञानिक, आर्थिक, सौंदर्यात्मक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिकीय मूल्यों के लिए भारतवर्ष में बाघों की एक जीवनक्षम (viable) संख्या को बरकरार रखना।

ख) लोगों के लाभ, शिक्षा और मनोरंजन के लिए राष्ट्रीय विरासत के रूप में ऐसे जीव विज्ञानीय महत्व के क्षेत्रों को सदा के लिए परिरक्षित रखना।

इस परियोजना के अंतर्गत विहार बनाकर और वर्तमान शरण स्थलों का विस्तार करके बाघ के अच्छे आवासों की रक्षा करने पर ध्यान केन्द्रित किया।

इस परियोजना के अंतर्गत, भारतवर्ष में 17 बाघ आरक्षित स्थल स्थापित किए गए हैं। (तालिका 20.5) इन आरक्षित स्थलों में रह रहे 4,000 बाघ इस परियोजना की सफलता के प्रमाण हैं।

तालिका 20.5 : भारतवर्ष में बाघ आरक्षित स्थल

आरक्षित स्थल का नाम	राज्य	बाघ संख्या		
		1973	1979	1984
सिमिलिपाल	उड़ीसा	17	65	71
पालामू	बिहार	22	37	62
बांदीपुर	कर्नाटक	10	39	53
कान्हा	मध्य प्रदेश	43	71	109
मेलघाट	महाराष्ट्र	27	63	80
रणथम्बौर	राजस्थान	14	25	38
कोर्बेट	उत्तर प्रदेश	44	84	90
सुन्दरवन	पश्चिम बंगाल	60	205	264
मानस	असम	31	69	123
पेरियार	केरल	–	34	44
सरिस्का	राजस्थान	–	19	26
बक्सा	पश्चिम बंगाल	–	–	15
इन्द्रावती	मध्य प्रदेश	–	–	38
नागार्जुन सागर	आंध्र प्रदेश	–	–	65
नाम्दाफा	अरुणाचल प्रदेश	–	–	43
	कुल (संख्या बढ़ रही है।) :	268 ⟶	711 ⟶	1121

बोध प्रश्न 6

क) स्तम्भ I में बाघ आरक्षित स्थल दिए गए हैं और स्तम्भ II में वे राज्य दिए गए हैं जिनमें ये आरक्षित स्थल स्थित हैं। स्तम्भ I को स्तम्भ II से मिलाइए।

स्तम्भ I	स्तम्भ II
अ) पेरियार	i) असम
ब) मानस	ii) बिहार
स) बाँदीपुर	iii) उत्तर प्रदेश
द) पालामू	iv) केरल
य) कोर्बेट	v) पश्चिम बंगाल
ट) सुन्दरवन	vi) कर्नाटक

ख) रिक्त स्थान भरिए :

i) ..... हमारे देश का मुख्य संकटग्रस्त स्तनधारी है।

ii) परियोजना बाघ वर्ष ..... में शुरू हुई और ..... द्वारा वित्त-व्यवस्था की गई।

iii) भारतवर्ष में ..... बाघ आरक्षित स्थल है।

20.5 सारांश

हमने इस इकाई में जो सीखा है उसे निम्न प्रकार से संक्षिप्त किया जा सकता है :

पर्यावरणीय संरक्षण मनुष्य के परिवेश का योजनाबद्ध प्रबंध है ताकि परिवेश के दोहन, विनाश या उपेक्षा को रोका जा सके।

- संरक्षण में पर्यावरण का योजनाबद्ध, विवेकपूर्ण उपयोग शामिल है ताकि प्रकृति से ऐसे ढंग से लगातार पैदावार मिलती रहे कि उसका पारिस्थितिकीय संतुलन बना रहे। इसमें किसी प्राकृतिक संसाधन के विविध मूल्यों को मान्यता देना और उपयोग करना शामिल हैं। ह्रासित भूमियों (depleted lands) या जीवित जातियों (मूल्यों) का पुनः स्थापन भी इसमें सम्मिलित है।
- संरक्षण का लक्ष्य पर्यावरण को सौंदर्यात्मक और मनोरंजनात्मक मूल्यों के लिए पर्यावरण को परिरक्षित करना और इससे उपयोगी पदार्थों की लगातार उपज सुनिश्चित करना है।
- पारितंत्र और इसके जीवित समुदाय के बीच एक नाजुक पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखा जाता है। इस संतुलन से किसी तरह की छेड़छाड़ या विघटन से दूरगामी प्रभाव पड़ सकते हैं।
- आशंकाग्रस्त जातियों की संकटग्रस्त जातियां बन जाने की सम्भावना है। संकटग्रस्त जातियां वे हैं जो कभी प्रचुर थीं लेकिन जिनकी संख्या अब काफी कम हो गई है। उनका विलुप्त हो जाने का खतरा है।
- आवास का विनाश, शिकार करना, परभक्षी, और पीड़क नियंत्रण विदेशी जातियों का प्रवेश और दूसरे पारिस्थितिकीय कारक वन्य जीवन के विलोपन के मुख्य कारण हैं। लेकिन वन्य जीवन का आर्थिक, औषधीय, सौन्दर्यात्मक और जन्मजात मूल्य है। इनसे जीन कोश (gene pool) बनता है। भविष्य में मनुष्य के कल्याण या उसके जीवित रहने के लिए वन्य जीवन का बहुत मूल्य है इसलिए वन्य जीवन संरक्षण की तुरंत आवश्यकता है।
- भारतवर्ष में वन्य जीवन संरक्षण के लिए 80 राष्ट्रीय उद्यान, 412 वन्य जीवन विहार है जो देश के कुल भू क्षेत्र के 4% भाग को घेरे हुए है बाघ को बचाने के लिए 1973 में "परियोजना बाघ" आरम्भ की गई। इस परियोजना के अंतर्गत बाघों की संख्या बढ़ाने की दृष्टि से उनको सुरक्षित और अनुकूल आवास उपलब्ध कराने के लिए 17 बाघ आरक्षित स्थल बनाये गए हैं।

20.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) "संरक्षण" की परिभाषा दीजिए।

.....

.....

.....

2) संरक्षण के दो महत्त्वपूर्ण लक्ष्य क्या हैं ?

.....

.....

.....

3) आवास का विनाश करना किस तरह वन्य जीवन के विलोपन का कारण बन जाता है ?

.....

.....

.....

4) वन्य जीवन में पौधे और प्राणी दोनों शामिल हैं। लेकिन वन्य प्राणियों के संरक्षण पर बल दिया जाता है वन्य पादप के संरक्षण पर क्यों नहीं ?

.....

.....

.....

20.7 उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) संरक्षण की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि
   i) जनसंख्या भयंकर रूप से बढ़ रही है
   ii) जनसंख्या बढ़ने के कारण विश्व संसाधन काम में लाये जा रहे हैं।

ख) i) संसाधन का विवेकपूर्ण उपयोग
   ii) पुनः स्थापन (restoration)
   iii) समाकलन (integration)

बोध प्रश्न 2

क)

वर्णन	शब्द
विलुप्त हो जाने के खतरे में पड़ी हुई जातियां	सकटग्रस्त जातियां
जिस जाति का अब अस्तित्व नहीं है	विलुप्त
वे जातियां जिनकी संकटग्रस्त जाति बन जाने की संभावना है	आशंकाग्रस्त जातियां

ख) i) आवास का परिवर्तन
   ii) शिकार करना
   iii) विदेशी जातियों का प्रवेश
   iv) पीड़कों (pests) और परभक्षियों (predators) का नियंत्रण

बोध प्रश्न 3

क) स्तनधारियों, विशेष रूप से प्राइमेट्स की मानव से शरीर रचनात्मक आनुवंशिक और शरीर क्रियात्मक समानता होने के कारण अनुसंधानकर्ताओं को उनकी आवश्यकता पड़ती है।

ख) संकटग्रस्त जातियों के निम्नलिखित मूल्यों के कारण उन्हें बचाना चाहिए।
   i) आनुवंशिक भंडार
   ii) पारितंत्र स्थायित्व बनाए रखने में
   iii) आर्थिक मूल्य के लिए
   iv) सौंदर्य बोध जगाने के लिए

बोध प्रश्न 4

क) i) रक्षित क्षेत्र
   ii) वन्य जीवन विहार
   iii) राष्ट्रीय उद्यान (National Park)

ख) i) प्रकृति के लिए विश्व व्यापी निधि (world wide fund for nature)
   ii) अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संघ (international union for conservation of nature resources)

बोध प्रश्न 5

क) i) बाघ, कृष्ण सार (ब्लैक बक)
   ii) बृहद् भारतीय सारंग (हुकना), साइबेरिआई सारस
   iii) घड़ियाल, कछुआ

(ख)

विहार/राष्ट्रीय उद्यान	स्थान	संरक्षित प्राणी
डाचीगाम	जम्मू और काश्मीर	हंगल, कस्तूरी मृग, भूरा भालू
गिर	गुजरात	भारतीय शेर, चीतल, जंगली सूअर
दुधवा	उत्तर प्रदेश	बाघ, चीता
सिलिपाल	उड़ीसा	हाथी, बाघ
मुडुमलाई	तमिलनाडु	बाघ, चीता, हाथी
काजीरंगा	असम	एक श्रृंगी (सींगवाला) गैंडा, हाथी

बोध प्रश्न 6

(क) अ) iv
ब) i
स) vi
द) ii
य) iii
फ) v

ख) i) बाघ
ii) 1972, WWF
iii) 17

अंत में कुछ प्रश्न

1) संरक्षण को पर्यावरण के विवेकपूर्ण उपयोग, मनुष्य के जीवन को समृद्ध बनाने के लिए प्रकृति की रक्षा से और पर्यावरणीय प्रदूषण के अनेक रूपों के नियंत्रण या निष्कासन से मनुष्य जाति के लिए उच्चतम गुणता की उपलब्धि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। ऐसी गुणता जो कायम रह सकने वाली हो। संरक्षण सामान्यीकृत परिभाषा इस प्रकार है "संसाधनों से पदार्थों और सेवाओं के रूप में उपलब्ध कुल सामाजिक लाभों का समय पटल पर अधिकतमीकरण (maximisation)"।

2) संरक्षण के दो महत्त्वपूर्ण लक्ष्य हैं :
   i) एक गुणता पर्यावरण का संरक्षण सुनिश्चित करना। ऐसा पर्यावरण जो सौंदर्यात्मक और मनोरंजनात्मक आवश्यकताओं के साथ-साथ उत्पाद आवश्यकताओं का भी ध्यान रखता है।
   ii) उपज और नवीकरण का संतुलित चक्र सुव्यवस्थित करके उपयोगी पौधों, प्राणियों और पदार्थों का लगातार उत्पादन सुनिश्चित करना।

3) जानबूझकर या अनजाने में आवास नष्ट करने से जाति का विलोपन होता है। जब किसी जाति के आवास का नाश कर दिया जाता है तो उस क्षेत्र में जीवित बचे रहने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि जाति उस परिवर्तन के प्रति अनुकूल बने अर्थात् उस बदलाव के अनुसार अपने आप को ढाले। इसके विपरीत यदि वह अनुकूलित नहीं बन सकती तो इसे कहीं दूसरी जगह चले जाना चाहिए अन्यथा वह परभक्षण भुखमरी या रोग का शिकार बनकर समाप्त हो जाएगी। इस प्रकार इससे जाति विलोपन होता है।

4) पौधों की तुलना में प्राणियों के संरक्षण पर बल दिया जाता है क्योंकि खाद्य शृंखला में क्रम इस प्रकार है पौधे–शाकाहारी, मांसाहारी। दूसरे शब्दों में पौधे खाद्य शृंखला के आधार हैं। ऐसा माना जाता है कि अगर चोटी पर सब कुछ ठीक है तो पारितंत्र का मूल भी ठीक है। उदाहरण के लिए, अगर बाघ फल-फूल रहा है तो ऐसा माना जा सकता है कि शाकाहारी और पौधे भी फल-फूल रहे हैं।

इकाई 21 पर्यावरण संरक्षण-II

इकाई की रूपरेखा

21.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
21.2 कृषि और संसाधनों का संरक्षण
अभिनव कृषि तकनीकें
ऊर्जा संरक्षण और सौर कृषि
जल संरक्षण और कृषि
सरकार की कृषि-नीति
21.3 शहरीकरण और संरक्षण
आवास की चुनौतियां
पर्यावरण से मेल खाती मानव-बस्तियों के लिए योजना
चिरस्थाई औद्योगिक विकास की नीति
21.4 ऊर्जा की भावी आवश्यकताएं
संरक्षण और ऊर्जा
पारंपरिक और गैर पारंपरिक ऊर्जा-स्रोत
गैर प्रदूषणकारी ऊर्जा तंत्रों का विकास
ठोस उत्सर्गों का प्रबंधन
21.5 सारांश
21.6 अंत में कुछ प्रश्न
21.7 उत्तर

21.1 प्रस्तावना

इकाई 20 में आप पर्यावरण के संरक्षण संबंधी कुछ पहलुओं के विषय में पढ़ चुके हैं। वहाँ पर हमने पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्यों और सिद्धान्तों, जानवर और पौधों की खतरे में पड़ी जातियों के संरक्षण, वनरोपण, संरक्षण की नीतियों तथा जैव संरक्षण की योजना के विषय में चर्चा की थी। अब हम इस खण्ड की अंतिम इकाई पर आ रहे हैं जहाँ पर पर्यावरण-संरक्षण के इन विचारों का विस्तार करते हुए पर्यावरण के भौतिक घटकों अर्थात् भूमि, जल, वायु और ऊर्जा के संरक्षण उपायों पर चर्चा करेंगे।

पर्यावरण-संरक्षण एक ऐसा मुद्दा है जो उपजा है मानव के कार्यकलापों, जैवमंडल में उसकी कार्यात्मक भूमिका, तथा प्रकृति के साथ उसके संबंधों से। अतएव भौतिक संसाधनों के संरक्षण का लेखा-जोखा मानव के कृषि, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्रों में कार्यकलापों को ध्यान में रखते हुए करना होता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए ही हमने भौतिक संसाधनों के संरक्षण संबंधी उसके प्रयासों के नजरिये से ही मानवी कार्यकलापों की चर्चा की है।

सामान्यतः संरक्षण का अर्थ है संसाधनों की वास्तविक मांग को संकुचित करना, कार्यकुशलता बढ़ाकर उनकी खपत को कम करना तथा प्रकृति में संसाधनों को वापिस लौटा देना। आगामी पृष्ठों में हम कुछ मानवी कार्यकलापों जैसे कृषि, आवास, उद्योग, ऊर्जा उत्पादन और भूमि-उपयोग से सम्बद्ध भौतिक संसाधनों के संरक्षण के उपायों पर भी चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कृषि की प्रणालियों में ऐसे परिवर्तन लाने के सम्बन्ध में विचार कर सकेंगे जो कि उपलब्ध संसाधनों के प्रभावी उपयोग और उनके संरक्षण में सहायक होंगे।
- शहरीकरण से उत्पन्न समस्याओं को बतला सकेंगे और पर्यावरण से मेल खाती मानव बस्तियों की योजना बनाने के नये तरीके सुझा सकेंगे।

- नगर केन्द्रों में उद्योगों की स्थापना से उत्पन्न समस्याओं का निकटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के विस्थापन के बीच सहसम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।
- पारंपरिक और गैर-पारंपरिक ऊर्जा के स्रोतों के बीच के भेद को जान सकेंगे और ऊर्जा संरक्षण के विभिन्न उपायों को सुझा सकेंगे।
- नगरों और उद्योगों से उत्पन्न ठोस अपशेषों के पुनश्चक्रण और पुनः उपयोग के उपाय सुझा सकेंगे।

21.2 कृषि और संसाधनों का संरक्षण

भारत की कुल जनसंख्या के 60 प्रतिशत लोगों अर्थात् करोड़ों भारतवासियों की आजीविका का मुख्य आधार कृषि है। निवल राष्ट्रीय उत्पाद का 40 प्रतिशत कृषि से ही होता है जिसमें देश की कुशल जनशक्ति का लगभग 30 प्रतिशत लगा हुआ है। भारत एक कृषि-प्रधान देश है, इसके बावजूद हाल के वर्षों तक खाद्यान्न की कमी, व्यापक भूख और कुपोषण की समस्याएं भयंकर रूप ले चुकी थीं। भारतीय कृषि की इस निराशापूर्ण स्थिति का कारण था भौतिक संसाधनों का विवेकहीन उपयोग। उदाहरण के लिए, पशुओं के अत्यधिक चरने तथा ईंधन-लकड़ी के लिए वनों की कटाई द्वारा भूमि का अपव्यय। अत्यधिक सिंचाई के कारण कृषि-भूमि के विशाल क्षेत्र या तो लवण प्रभावित हो गये या जल-आक्रान्त। इकाई 8 में आपने पढ़ा कि उर्वरक और कीटनाशिकों के अत्यधिक प्रयोग से कहीं तो सूक्ष्म पोषक कम हो गये हैं और कहीं जलाशय उनसे विषाक्त हो गये हैं। इस दयनीय स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए जा सकते हैं, भूमि उपयोग की सुविचारित नीति, जल संरक्षण के उपायों, कृषि में सौर तकनीकों के अनुप्रयोगों और कई अन्य उपायों से, जिन्हें कृषि प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नव प्रयोग कहा जा सकता है, के द्वारा इस स्थिति को उल्टा जा सकता है।

21.2.1 अभिनव कृषि तकनीकें

भूमि-कटाव रोकथाम और उपचार के उपायों द्वारा मिट्टी के कटाव या मृदा अपक्षरण (जिसके विषय में आपने इकाई 12 में पढ़ा) के नियंत्रण से खेती योग्य भूमि का संरक्षण किया जाता है और इसके साथ-साथ यह प्रौद्योगिकी के नूतन कृषि अनुप्रयोगों से भी सिद्ध होता है। इन नूतन उपायों में से कुछ इस प्रकार हैं–

- हरी खाद (जैव कृषि)
- जैव उर्वरक
- जैव पीड़क कीट नियंत्रण
- नाइट्रीकरण निरोधक
- सिंचाई के लिए पवन चक्कियां
- भौम जल को खींचने के लिए सौर ऊर्जा
- खाना पकाने के लिए बायो गैस तथा चुके गारे (मुक्त शेष कर्दम slurry) का उर्वरक के रूप में प्रयोग

अंतिम तीन तकनीकों के विषय में गैर-पारंपरिक ऊर्जा तंत्रों के खंड में चर्चा करेंगे। यहाँ पर हम पहली चार तकनीकों से परिचय प्राप्त कर लें।

i) **जैव कृषि** : कोई भी आधुनिक कृषि-तंत्र अपने आप में पूर्ण नहीं है, यदि फसलों को लगातार लेना हो तो किसी न किसी रूप में पोषक पदार्थों को जमीन में डालना ही होता है। फलीदार पौधों की मूल ग्रन्थियों में होने वाले नाइट्रोजन यौगिकरण की क्रिया (देखिए ब्लाक 2 के उप खंड 8.4.1 हरी खाद) से प्राप्त होने वाली नाइट्रोजन निवेश की व्यवस्था नाइट्रोजन उर्वरक का एक आकर्षक वैकल्पिक प्राकृतिक स्रोत है जो कि अकार्बनिक नाइट्रोजनी उर्वरकों की तुलना में अधिक टिकाऊ होता है। जैव कृषि उर्वरकों के लिए केवल जैव स्रोतों जैसे गोबर व अन्य कृषि अपशेषों इत्यादि पर ही निर्भर करती है।

ii) **जैव उर्वरक :** जीवाणु उपजाऊ मिट्टियों के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। ये मृदा संरचना के विकास में योगदान देते हैं, उपलब्ध पोषक तत्त्वों की मात्रा में वृद्धि करते हैं तथा मृदा की भौतिक अवस्थाओं में सुधार लाते हैं। यदि कोई महत्त्वपूर्ण जीवाणु मिट्टी में अनुपस्थित हो तो यह आवश्यक हो जाता है कि मिट्टी में उसका किसी तरह प्रवेश कराया जाय। कभी-कभी निवेशन इसलिए भी किया जाता है कि मिट्टी में सहज रूप से उपस्थिति किसी घटिया किस्म के जीवाणु को हटा कर वहाँ की अच्छी किस्म के जीवाणु को स्थापित किया जाए। ऐसा कर पाना अधिक कठिन होता है। मूल ग्रंथि जीवाणुओं (राइजोबियम की जाति तथा *ब्रैडीराइजोबियम जैपोनिकम*) का मिट्टी में प्रवेश फलीदार पौधों के बीजों में उनको वाहक पदार्थ द्वारा चिपकाकर (रोपण) कराया जा रहा है। यह जैव उर्वरकों के प्रयोग के आरंभिक प्रयासों का एक उदाहरण है। आज, बहुत अधिक जाति के जीवाणुओं को उपयुक्त बीजों में वाहक पदार्थों द्वारा रोपित कर जैव उर्वरक के रूप में काम में लाया जा रहा है ताकि फसलों के खेतों के पोषक स्तर में सुधार हो। रासायनिक उर्वरकों की तुलना में जैव उर्वरकों से अधिक लाभ यह होता है कि ये उर्वरक का उत्पादन ठीक उसी स्थल पर करा सकते हैं जहाँ पर उसकी आवश्यकता होती है। इसके विपरीत रासार्यानिक उर्वरकों का उत्पादन फैक्ट्री में होता है जहाँ से उन्हें खेतों तक ढोना पड़ता है। साथ ही जैव उर्वरक केवल आवश्यक मात्रा का ही उत्पादन करते हैं और उस मात्रा को खेत में ही पौधों के लिए उपलब्ध करा देते हैं। दूसरी तरफ रासार्यानिक उर्वरकों वाले खेतों में काम में न आया हुआ उर्वरक बाहर निक्षालित हो जाता है और जलाशयों में अतिपोषण की स्थिति उत्पन्न कर देता है।

खेत में एक बार सुस्थापित हो जाने पर जैव उर्वरकों को बार-बार नहीं डालना पड़ता जब कि रासार्यानिक उर्वरकों को प्रत्येक फसल के लिए फिर से डालना पड़ता है और कदाचित् प्रतिवर्ष बढ़ती हुई मात्रा में। जैव उर्वरकों के प्रयोग से पौधों की जड़ों के रोगजनों का भी नियंत्रण हो जाता है जब कि रासार्यानिक उर्वरक निर्जीव होने के कारण फसल के पौधों की रोगजनों से रक्षा नहीं कर पाते। आधुनिक कृषि-पारितंत्रों में रासार्यानिक उर्वरकों की अपेक्षा जैव उर्वरक के प्रयोग का विकल्प पर्यावरण के लिहाज से अधिक निरापद है।

iii) **जैव पीड़क कीट नियंत्रण :** जीव विज्ञान का दूसरा अनुप्रयोग है पौधों की नाशक कीटों से रक्षा के क्षेत्र में। प्रकृति में पीड़कों के शत्रु भी पाये जाते हैं किन्तु वे इसलिए कारगर नहीं हो पाते क्योंकि अत्यधिक कृषि-उत्पादन पीड़कों की वृद्धि को अप्रत्याशित रूप से प्रोत्साहित करता है। जैव कीटनाशक नियंत्रण का उद्देश्य है एक ऐसे पारिस्थितिक औजार तैयार करना जो कि पीड़कों के समुदाय के जीवित बचे रह पाने के अवसरों को जैव अभिकर्ताओं के माध्यम से कम कर दें। इस सारी क्रिया में ख्याल इस बात का रखा जाता है कि अभिकर्ता केवल पीड़क-विशेष का ही नाश करें और आस-पास के अन्य जीवों को कोई नुकसान न पहुंचाए।

आपने खंड 8.4.2 में पढ़ा कि किस प्रकार रासार्यानिक नाशक कीट नियंत्रक कभी-कभी ऐसे जीव का नाश कर देते हैं कि जिसकी हत्या का हमारा उद्देश्य नहीं होता। जैव पीड़क कीट नियंत्रक के इस्तेमाल में ऐसा कोई खतरा नहीं होता। जैव नियंत्रण की एक अच्छी बात यह भी है कि जैव अभिकर्ता थोड़े समय के बाद स्वयं भी मर जाते हैं। इसकी तुलना में खंड 8.4.2 में आपने यह भी पढ़ा कि कीटनाशी रासायनों का आसानी से ह्रास नहीं होता और वे अपने लक्ष्य पीड़क का विनाश कर देने के बाद भी काफी अवधि तक सक्रिय रहते हैं। और मानव मात्र के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं। दूसरे शब्दों में रासार्यानिक अभिकर्ता आने वाले कई वर्षों तक पर्यावरण को हानि पहुंचाते ही रहते हैं। साथ ही, इस बात की भी संभावना रहती है कि खाद्य शृंखला में पहुंच कर वे मानव को ही विष से प्रभावित कर दें जब कि जैव अभिकर्ताओं द्वारा मानव को इस प्रकार की क्षति होने की संभावना नहीं रहती। अतः पीड़क कीटों का जैव नियंत्रण रासार्यानिक नियंत्रण की अपेक्षा पारिस्थितिकी के लिहाज से एक निर्दोष विकल्प है। जापानी भृंग-कीटों के दूधिया रोग की खोज, वास्तव में, नाशक कीटों के जैव नियंत्रण का प्रथम अनुप्रयोग थी। इस नियंत्रण में *बैसिलस* नामक एक जीवाणु के बीजाणुओं का सहारा लिया गया जिनमें एक ऐसा टॉक्सिन (toxin) पाया जाता है जो इस नाशक कीट (भृंग) के लिए मृत्युकारक सिद्ध होता है। अति आधुनिक शोधों का परिणाम यह हुआ है कि जीवाणु *बैसिलस यूरिनजिएन्सिस* के बीजाणु बाजार में बिकने लगे हैं। इन बीजाणुओं में एक क्रिस्टलाकार आंतर-विष (endotoxin) होता है जो *लेपिडॉप्टेरा* (भृंग) के लारवा के नियंत्रण में सक्रिय संघटक रूप में कार्य करता है।

बैसिलस यूरिनजिएन्सिस की उप प्रजाति *इजराइलिएन्सिस* द्वारा निर्मित टॉक्सिनों का एक दूसरा वर्ग मच्छरों और काली मक्खियों को भी मार डालता है। प्रकृति में सहज रूप से उत्पन्न होने वाले इस जीवाणु के लगभग 1500 गौण उत्पादों की पहचान कर ली गयी है जो कि सशक्त कीटनाशी गुणों वाले हैं। अतएव पीड़क कीटों का जैव नियंत्रण तो पुराने समय से चली आ रही वह प्रथा है जिसे अब देसी किसानों के उपयोग के लिए अनुकूलित करना है।

नाशक कीटों से फसल के पौधों की रक्षा करने की दौड़ में उच्चतर जीव इन जीवाणुओं से पीछे नहीं है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—जैव नियंत्रण का बड़े पैमाने पर सर्वप्रथम प्रयोग तब किया गया जब कि साइट्रस (नींबू वंश) के फलों के अकस्मात् लग गये एक नाशक कीट रोग से जूझना पड़ा। इस नाशक कीट "**कपासी तल्प शल्क**" *(Iceria purchasi)* ने साइट्रस फल उद्योग के लिए खतरा पैदा कर दिया था। इसके नियंत्रण में 1888 में एक भृंग को कीटभक्षी रूप में प्रवेश कराया गया। इस कीट भक्षी ने दो ही वर्षों के भीतर नाशककीट का सफाया कर डाला। इस जैव नियंत्रण अभिकर्ता का नाम है लेडीब्रर्ड भृंग और यह आज तक इस नाशक रोग का सफलता से नियंत्रण करता चला आ रहा है।

दूसरा उदाहरण है आस्ट्रेलिया की 2 करोड़ हैक्टेअर की चरागाह भूमि का उद्धार जो कि नागफनी (ओर्पीशिया जातियां) नामक कैक्टस से ग्रस्त हो गयी थी। इसके नियंत्रण के लिए एक कीट शलभ का प्रवेश कराया गया। इस शलभ के लारवा कैक्टस की गूदेदार पत्तियों को खा जाते हैं। और कुछ ही वर्षों के भीतर शलभ के विशाल समुदाय सुस्थापित हो गये। कालान्तर में कैक्टस रूपी खरपतवार के अधिकांश का विनाश हो गया और भूमि को खेती के काम में फिर से लाया जा रहा है।

जैव अभिकर्ताओं द्वारा पीड़क नियंत्रण विधियों का अधिकाधिक प्रयोग आजकल अनिवार्य हो गया है। इकाई 8.4.2 में आपने रासायनिक नियंत्रण के दुष्प्रभावों के बारे में पढ़ ही लिया है। अब समय आ गया है कि जैव नियंत्रण अभिकर्त्ताओं के प्रयोग से नाशक कीट समष्टियों के नियंत्रण की युक्तियों को सफलता मिले प्रयोजन यह है कि यथासंभव इनके उपयोग को प्रोत्साहन देना चाहिए।

iv) **नाइट्रीकरण निरोधक** : पिछले 30 वर्षों में नाइट्रोजनी उर्वरकों का उपयोग जिस द्रुतगति से बढ़ा है वह एक चिन्ता का विषय है। नाइट्रोजनी उर्वरकों का गहन उपयोग कदाचित दो अवांछनीय नाइट्रोजन रूपान्तरणों के कारण हो सकता है—

क) नाइट्रीकरण नामक प्रक्रिया के विषय में खंड I में नाइट्रोजन चक्र के अंतर्गत आप पढ़ चुके हैं कि इस अभिक्रिया में उर्वरक का रूपान्तरण **नाइट्रेट** NO_3^- के रूप में हो जाता है जिसके बाद यह भूमि की सतह पर से निक्षालित हो कर भूमिगत जल के आशयों में पहुंचकर मिल जाता है।

यूरिया (कार्बनिक/ N—उर्वरक) —नाइट्रीकरण→ नाइट्रेट — भौम जल में निक्षलित होने वाला नाइट्रेट घोल

ख) इसके अतिरिक्त, अनप्रयुक्त नाइट्रोजन की हानि कार्बनिक नाइट्रोजनी उर्वरकों के अमोनिया रूप में यूरिया जलापघटन द्वारा भी हो सकता है। इस अमोनिया का वाष्पन हो जाता है और वायुमण्डल में जा मिलती है।

यूरिया —यूरिएस→ अमोनिया — गैस के रूप में वायुमण्डल में मोचन

ये दोनों प्रक्रियाएं जीवाणुओं के माध्यम से प्रकृति में जीवाणुओं के लिए उपयुक्त अवस्थाओं में होती हैं। परन्तु देखा गया है कि खेतों में कृत्रिम रूप से अकार्बनिक उर्वरकों के डाले जाने पर जब नाइट्रोजनधारी यौगिकों का सान्द्रण मिट्टी में बढ़ जाता है तो वाष्पी भवन (यूरिया जलाप घटट) और नाइट्रीकरण की दरें तेजी से बढ़ जाती हैं। मृदा में यूरिया जलाप

घटन और नाइट्रीकरण की दरों पर नियंत्रण पाकर, रासायनिक नाइट्रोजनी उर्वरकों द्वारा भूमिगत जलाशयों और वायुमण्डल इन दोनों में सम्प्रक्त हो जाने से होने वाली नाइट्रोजन की हानि को कम किया जा सकता है। नाइट्रोजन रूपान्तरणों के रासायनिक निरोधकों तथा जैव निरोधकों के प्रयोग से इस प्रकार का नियंत्रण संभव है। इसमें से सबसे रुचिकर है यूरिएस निरोधक पीपीडी (फिनाइल फोरोडाइएमाइडेट), यह यूरिया के जलापघटन से अमोनियां बनने की क्रिया अर्थात् ऊपर लिखी (ख) अभिक्रिया को मन्द कर देता है। पीपीडी मिश्रित उर्वरक मिट्टी में पौधों के लिए लम्बी अवधि तक उपलब्ध रहता है और ग्राही जलाशयों को उर्वरक का बहुत कम अंश ही प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रयोग की गयी मात्रा की कुशलता और उपादेयता बढ़ जाती है। दूसरी विधि है नाइट्रीकरण अर्थात् ऊपर लिखी अभिक्रिया (क) की रोकथाम। यह नाइट्रापाइरिन, डाईडिन या टेराज़ोल में से एक के प्रयोग से संभव होती है। एक ही परिणाम प्राप्त करने के निमित्त ये तीन विभिन्न प्रकार के यौगिक हैं। रासायनिक दृष्टि से नाइट्रोपाइरिन है 2–क्लोरो–6 (ट्राइक्लोरो मेथाइल) पाइरीडीन, डाईडिन है डाइसाएन डिएमाइड, और टेराज़ोल है 5–इथॉक्सी–3 (ट्राइक्लोरो मेथाइल)–1,2,4,–थाया डाइएजोल। नाइट्रीकरण के निरोध द्वारा कार्बनिक उर्वरकों से होने वाली नाइट्रोजन की हानि को कम करने में ये यौगिक उपयोगी सिद्ध होते हैं।

रसायनिक दृष्टि से नाइट्रोयाइरिन, 2-क्लोरो-6-(ट्राइक्लोरों मैथाइल) पाइरीडीन; डाइडिन, डायसायनडायमाइड और टेराज़ोल, 5-इथॉक्सी-3 (ट्राइक्लोरो मेथाइल)-1, 2, 4/थायाडाइएज़ोल हैं।

आइये, अब निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल करें।

बोध प्रश्न 1

1) बतलाइये कि निम्नलिखित कथन ठीक हैं या गलत अपने उत्तर के सामने दिये कोष्ठकों में भरें :

   क) जैव उर्वरक पर्यावरण के लिहाज से अकार्बनिक उर्वरकों के निरापद विकल्प हैं। ( )

   ख) नाशक कीटों के प्राकृतिक शत्रु होते हैं। परन्तु नाशक कीटों के गुणन के रोकथाम की इस प्राकृतिक युक्ति को अत्यधिक कृषि उत्पादन नाकाम कर देता है। ( )

   ग) जापानी भृंग फसलों का एक भयंकर कीट रोग है। जीव वैज्ञानिकों ने इस रोग को दूधिया रोग के जीवाणुओं को भृंग में प्रवेश कराकर नियंत्रित करने का प्रयास किया है। ( )

   घ) नाइट्रापाइरिन पी पी डी से भिन्न है क्योंकि पी पी डी यूरिएस निरोधी है और नाइट्रापाइरिन नाइट्रीकरण निरोधी। बहरहाल, ये दोनों ही फसलों के नाइट्रोजनी उर्वरकों की हानि को रोकते हैं। ( )

21.2.2 ऊर्जा संरक्षण और सौर कृषि

प्रचुर धूप हमारे देश की एक प्राकृतिक देन है। भारत में प्रतिवर्ष आपतित सौर विकिरण की मात्रा 60×10^{13} mwh है और देश के अधिकांश भागों में प्रति वर्ष 250-300 दिन लाभदायक धूप रहती है। देश के मध्यवर्ती भागों के स्थानों में दैनिक प्रत्यक्ष विकिरण 5-7 kwh/m^2 है। दूसरे शब्दों में इस संसाधन के दोहन की संभावना विशाल है।

यह एक जानी मानी बात है कि प्रकाश संश्लेषण द्वारा जैव पदार्थ के उत्पादन (3×10^{24} J/वर्ष) में पृथ्वी की सतह पर पड़ने वाले सौर विकिरण (3×10^{21} J/वर्ष) का केवल 0.1 प्रतिशत ही काम में आता है। विश्व में 1970 में ऊर्जा की कुल खपत (3×10^{20} J/वर्ष) थी जो कि प्रकाश संश्लेषण द्वारा उत्पादित कुल जैव पदार्थ (3×10^{21} J/वर्ष) का केवल 10 प्रतिशत है। विश्व जनसंख्या की खाद्य उत्पादों की मांग को पूरा करने के लिए जैव पदार्थ का केवल 0.5 प्रतिशत ही काम में आता है। प्रकाश संश्लेषण द्वारा कार्बन यौगिकीकरण के लिहाज से विश्व के जीवाश्म ईंधन के भंडार (4.3×10^{22} J/वर्ष) केवल 5.2 दिनों की धूप के प्रतिफल हैं। इस आकलन के हिसाब से विश्वभर में पूरे वर्ष भर (1970) में इस ऊर्जा का उपयोग केवल 53 मिनटों के बराबर का हुआ। ये आँकड़े बतलाते हैं कि इन बातों की विशाल गुंजाइश है कि प्रकाश संश्लेषण की कुशलता को बढ़ाकर इस प्रकार संश्लेषित जैव पदार्थ की मात्रा और उपयोगिता में वृद्धि की जाए। सौर ऊर्जा का जैविक उपयोग केवल प्रकाश संश्लेषण के ही माध्यम से हो सकता है। पौधों द्वारा रासायनिक सौर ऊर्जा रूपान्तरण की 0.1-0.2 प्रतिशत की कुशलता बहुत ही मंद होती है, वे सूर्य से आये हुए प्रति 1000 से 500 प्रकाश क्वांटमों में से वनस्पति जीव केवल एक क्वांटम का उपयोग करते हैं। अर्थात् सूर्य के प्रकाश को पकड़ पाने की पौधों की

कुशलता बहुत कम है। हरित शैवाल क्लोरेला पर किये गये शोध दर्शाते हैं कि इस कुशलता को 0.6 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। विस्तृत प्रयोगों के आधार पर यह आंका गया है कि क्लोरेला के खेतों की व्यावहारिक उपलब्ध उपज 78 मीटरी टन शुष्क शैवाल प्रति हैक्टेअर की हो सकती है। आकृष्य भूमि पर विशाल शैवाल फार्म बना कर कृषि कर्म के द्वारा प्राप्त हो सकने वाली 4.5-5.6 मीठरी टन प्रति हैक्टेअर की तुलना में यह उपज काफी अच्छी है। नंगी मिट्टी से आज सौर ऊर्जा का जो अवशोषण संभव है उससे कहीं अधिक अंश का उपयोग जैव पदार्थ और खाद्य के उत्पादन में किया जा सकता है। साथ ही उसे संश्लेषित द्रव ईंधनों में रूपान्तरित भी किया जा सकता है। अतः अकृष्य भूमि पर **सौर कृषि,** ऊर्जा संरक्षण का इष्टतम साधन सिद्ध होता है।

21.2.3 जल संरक्षण और कृषि

भारत को खाद्य उत्पादन में पर्याप्त आत्मनिर्भरता प्राप्त कराने में सहायक सबसे महत्त्वपूर्ण इकलौता कारक है सिंचाई। 1947 में कुल सिंचित क्षेत्र 2 करोड़ हैक्टेअर से कुछ अधिक था जो कि पिछले दशक में 4.7 करोड़ हैक्टेअर हो गया है। कृषि भूमि के लगभग 25 प्रतिशत में सिंचाई होती है जो कि विश्वभर के कुल सिंचित क्षेत्र का 1/5 है। आपको मालूम है कि बड़े-बड़े बांध बनाकर जल संग्रहण करने को सिंचाई इंजीनियर जल व्यवस्था तंत्र को महत्वपूर्ण घटक मानते हैं। भातर में भी सिंचाई की शक्यता का इतना ऊँचा स्तर बड़े-बड़े बाँध बनाकर ही प्राप्त किया गया। इन बड़ी-बड़ी नदी घाटी योजनाओं के लाभ तीन प्रकार के थे– (क) जल विद्युत का उत्पादन (ख) सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण और (ग) औद्योगिक और नगरपालिका की जल संपूर्ति। लाभ तो तीन ही हैं पर इससे होने वाले प्रतिकूल पारिस्थितिक दुष्प्रभाव कई गुना अधिक हैं जिनमें से कुछ हैं–वनोन्मूलन, भू-स्खलन, अवसादन, मृदा अपक्षयन, भूकंप-सक्रियता, निर्वासियों का विस्थापन और जलवाहित महामारियों का विकराल रूप धारण कर लेना इत्यादि। इन प्रमुख नदी घाटी परियोजनाओं की स्थापना के फलस्वरूप भारत का कुल बाढ़ से प्रभावित होने वाला क्षेत्र पिछले दशक में 2 करोड़ हैक्टेयर से बढ़कर 4 करोड़ हैक्टेयर अर्थात् लगभग दुगुना हो गया है।

स्वतन्त्रता के बाद 700 से अधिक बांधों का निर्माण हुआ। यदि कार्यक्रम के अनुसार सरकारी योजनाएं चलती रहीं तो जब तक कि इन योजनाओं का कार्यान्वयन होगा तब तक देश में शायद कोई भी मुक्त रूप से बहने वाली नदी न रह पाये। यदि पारिस्थितिक संतुलन की विशाल गड़बड़ी की रोकथाम करनी है तो बड़ी नदी घाटी परियोजनाओं का एक ही विकल्प रह जाता है : सिंचाई, विद्युत शक्ति और नागरिक संपूर्ति के लिए छोटे जलाशयों और लघु जल विद्युत इकाइयों का निर्माण। इन छोटी इकाइयों का निर्माण, रखरखाव और संचालन स्थानीय समुदाय कर सकते हैं। इन छोटी इकाइयों के प्रतिकूल गौण प्रभाव भी अवश्य ही कम होंगे। दुर्घटना होने की संभावना कम होंगी जो कि बड़ी बड़ी नदी घाटी योजनाओं में अधिक होती है। इन लघु परियोजनाओं के आकार भी छोटे होने चाहिए ताकि नदियों का मूल प्रवाह अविराम चलता रहे।

21.2.4 सरकार की कृषि-नीति

भारत में द्रुत गति से कृषि में परिवर्तन आ रहे हैं और सारी कृषि-प्रक्रिया को जड़ें पकड़नी हैं और नवीन विधियों को आत्मसात करना है। पंजाब, हरियाणा और तमिलनाडु आदि कुछेक राज्यों से सिंचित, इमदादी और अर्धवाणिज्यिक क्षेत्रों के सुस्थापित तंत्रों के अलावा अधिकांश भारतीय कृषि को उन कृषि परिवर्तनों के प्रति अनुक्रिया दिखलानी है जो कि भारत की अवस्थाओं के अनुकूल उपयुक्त प्रौद्योगिकी और ग्रामीण प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रहे हैं।

सरकारी नीति में अन्य बातों के अतिरिक्त ये बातें भी शामिल हैं–विशाल क्षेत्रों में अधिक उपज देने वाली किस्मों की कृषि, सिंचाई-सुविधाओं का विकास, उर्वरकों तथा आवश्यकता अनुरूप पादप संरक्षणी उपायों का संतुलित प्रयोग।

पर्यावरण को संरक्षित और यथापूर्व बनाये रखने के महत्व को भली-भांति जानते हुए भी कई कारणों से शासक वर्ग पर्यावरण के लिहाज से वांछनीय नवीन प्रयोगों को कभी-कभी समर्थन प्रदान करने में आनाकानी कर देता है। सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-86) में वार्षिक कृषि उत्पादन में 4 प्रतिशत वृद्धि लाने के निर्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मुख्य साधन इस प्रकार के विकास उपाय बतलाये गये थे जैसे–पशुधन, बीज, सिंचाई, खाद,

उर्वरक, रोगनाशी, कीटनाशी तथा कृषि के उपकरण और मशीनें। किन्तु अनुभव ने दिखा दिया है कि घटिया और बेकार घोषित की जा रही भूमि का सुधार, जल संरक्षी उपायों को बरतना तथा ग्रामीण प्रौद्योगिकी में सूझबूझ भरे नवीन परिवर्तनों को लाये बगैर कृषि-उत्पादन या उपजों में विशेष वृद्धि लाना संभव नहीं है। योजनाकारों ने हाल में, ग्राम-विकास के कार्यकलापों में पारिस्थितिक संदर्श का समावेश आरंभ कर दिया है जैसे गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों का प्रयोग, रोगों और कीटों का जैव नियंत्रण, जैव उर्वरकों का प्रयोग, भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल उर्वरता पुनरुत्पादन की नवीन विधियों का प्रयोग, मृदा और जल संरक्षण के द्वारा अतिरिक्त भूमि का उद्धार आदि।

साथ ही गांवों की गरीबी और पर्यावरण की अवनति की दुहरी समस्याओं से जूझने के लिए आवश्यक है कि अच्छी शस्य-भूमि को सस्य पुनरुत्पादन के लिए सुरक्षित रख दिया जाए। यह पर्यावरण की दृष्टि से नाजुक उन सीमावर्ती भूमियों पर पड़ रहे दबाव को भी कम करेगा जो कि अपनी क्षमता के परे दोहन किये जाने के कारण घटिया हो रही हैं।

ग्रामवासियों को प्रेरित किया जाना चाहिए कि वे नये वृक्षों को लगायें और पर्यावरण से संबंधित वनरोपण कार्यक्रम के द्रुत कार्यान्वयन में सहायता प्रदान करें। उनको यह अच्छी तरह समझाया जाना चाहिए कि पर्यावरण का सुधार उनके जीवन यापन की शैली के लिए एक वरदान सिद्ध होगा और इसकी अवनति उनके लिए दुश्चक्र का आरंभ होगी।

रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशियों के अत्यधिक प्रयोग पर रोक लगानी होगी। इनके स्थान पर रोगाणुजनित रोगों, कृंतकों और कीटों की समस्याओं के समाधान के लिए जैव-नियंत्रण की विधियों को खोजकर उनका सहारा लेना चाहिए। अत्यधिक सिंचाई के दुष्प्रभावों को कम से कम रखने के लिए आवश्यक सभी कदम उठाने चाहिए। जलाशयों की कुशल व्यवस्था के लिए भी ठीक युक्तियां सोचनी चाहिए। ऊर्जा संरक्षण के कृषि में निवेश के तरीकों को पढ़ने के बाद आईये निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

बोध प्रश्न 2

क) बताइये नीचे लिखे कथन सही हैं या गलत अपने उत्तर के सामने दिये कोष्ठकों में भरें :

i) प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा जैव पदार्थ के उत्पादन में भू-पृष्ठ पर आपतित सौर विकिरण का केवल 0.1 प्रतिशत ही काम में आता है। ☐

ii) विश्व की कुल सिंचित भूमि का 1/5 भारत में है और विश्व का विशालतम सिंचित क्षेत्र भी यहीं है। ☐

iii) स्वस्थ भूमि सुधार नीति को लागू करने से, जल संरक्षण के उपायों से तथा कृषि में ऊर्जा बचत वाली प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग से भारतीय कृषि की निराशापूर्ण स्थिति में परिवर्तन लाया जा सकता है। ☐

vi) संरक्षण की दृष्टि से रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशियों के प्रयोग की अपेक्षा रोगजनक कीटों, कृंतकों और कीटों का जैव अभिकर्ताओं द्वारा नियंत्रण एक बेहतर विधि है। ☐

ख) उचित शब्दों के प्रयोग से रिक्तियों को भरिये :

i) विशाल नदी घाटी योजनाओं से तीन प्रकार के लाभ हैं किन्तु इससे होने वाले प्रतिकूल पारिस्थितिक दुष्प्रभाव अनेक हैं जैसे

वनोन्मूलन, ... अवसादन, ... भूकंप-सक्रियता ..... और ..... विकराल रूप धारण कर लेना।

ii) बड़ी-बड़ी नदी घाटी योजनाओं की स्थापना के बाद ..... दशक में कुल बाढ़ की लपेट में आ सकने वाला क्षेत्र 2 करोड़ हैक्टेयर से ..... 4 करोड़ हैक्टेयर हो गया है।

21.3 शहरीकरण और संरक्षण

शहरीकरण एक विश्वव्यापी घटना है जो कि संसार के विकसित समुदायों में अपनी जड़ें जमा चुकी है। एक सतत् स्थानिक प्रक्रिया के रूप में विकसित देशों में भी अब यह धीरे-धीरे विकराल रूप धारण कर रही है। इन समुदायों के विस्तीर्ण आर्थिक तंत्रों के अन्तर्गत शहरीकरण को विकास का पर्यायवाची माना जाने लगा है। अतएव नगरीकरण की मात्रा बहुत अधिक बढ़ चुकी है, जिसका अर्थ है :

i) नगरी जनसंख्या का अनुपात बढ़ गया है।
ii) नगर की जनसंख्या की सघनता बढ़ गयी है।
iii) इस दशक (1971-81) में भारत में जनसंख्या वृद्धि का प्रतिशत बढ़ा है।

इन तीन आयामों को क्रमशः आयतन, दिक्स्थानिक विस्तार और दशक-वृद्धि कहते हैं। नगरीकरण की मात्रा के ये ही तीन लक्षण हैं।

भारत में शहरीकरण में वृद्धि का मुख्य कारण ग्रामीण जनता का अप्रत्याशित दर से शहरों में बसना है। और फिर नगर योजना में बड़ी-बड़ी त्रुटियां हैं जिससे यह बढ़ती हुई मांगों को पूरा करने में पिछड़ गयी है जिसका परिणाम हुआ है नगर में बस्तियों की अव्यवस्थित वृद्धि।

विकास से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि योजनाकार तय नहीं कर पाते कि विकास पहले किसी स्थान (आवास) का हो या जनता (के पर्यावास) का। अनेकों परिवारों के जमघट और नगर के इर्द-गिर्द उनका बस जाने से दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों का निर्माण होता है जिन्हें "दस लाखिए" नगर कहा जाता है। "दस लाखिए" नगरों में भी बड़ी तेजी से वृद्धि हुई है। 1971 की जनगणना के अनुसार भारत में 9 ऐसे नगर थे जबकि 1981 में ऐसे नगरों की संख्या 12 हो गयी और इन दस वर्षों के भीतर इन नगरों की कुल जनसंख्या लगभग तीन करोड़ से बढ़कर चार करोड़ से अधिक हो गयी। तालिका 21.1 में भारत के प्रमुख 12 नगरों की जनसंख्या और उसकी वृद्धि दिखलायी गयी है।

तालिका 21.1 भारत के कुछ प्रमुख नगरों की जनसंख्या (लाखों में)

नगर	जनसंख्या 1971	लाखों में 1981	पिछले दस वर्षों में वृद्धि का प्रतिशत
कलकत्ता	70.3	91.6	30.3
बम्बई	59.7	82.3	37.8
दिल्ली	36.5	57.1	56.6
मद्रास	31.7	42.8	34.9
बंगलौर	16.5	29.1	76.2
हैदराबाद	18.0	25.3	40.7
अहमदाबाद	17.4	25.1	44.1
कानपुर	12.7	16.9	33.0
पुणे	11.3	16.8	48.6
नागपुर	9.3	13.0	39.8
लखनऊ	8.2	10.1	23.2
जयपुर	6.2	10.1	58.7

इन विशाल महानगरों में नगरीय जनसंख्या के भारी संकेन्द्रण का कारण यह है कि ये नगर प्रशासन के केन्द्र होने के अतिरिक्त प्रमुख औद्योगिक और वाणिज्यिक कार्यकलापों के भी केन्द्र हैं। यहाँ आने के लिए लोग आकर्षित होते हैं और यही कारण है कि यहाँ की जनसंख्या तेजी से बढ़ी है और नगरों का फैलाव भी हुआ है। योजना विहीन नगरीकरण के प्रभावों के विषय में आपने इकाई 12 में पढ़ा। शहरीकरण की द्रुत गति के कारण भारत के 80 प्रतिशत औद्योगिक कार्यकलाप इन बड़े नगरों में ही संकेंद्रित हो गये हैं। उदाहरण के लिए, आपने देखा कि अकेले बम्बई में, 3,000 उद्योग इकाइयाँ स्थित हैं। नौकरी की तलाश में गाँवों के लोग नगरों को आ रहे हैं शहरी इलाकों में घरों की कमी है। जिसका यह परिणाम है कि शहरों के बाहर घिचपिच और योजना विहीन झुग्गी झोपड़ियां और गन्दी बस्तियां बस गईं हैं। जहाँ सफाई की व्यवस्था ठीक नहीं हो पाती है और पानी बिजली की भारी कमी रहती है और ऐसे वातावरण में जलवाहित तथा वायु-प्रदूषण जनित रोग अक्सर फैल जाते हैं।

21.3.1 आवास की चुनौतियाँ

जैसे-जैसे नगरों का आकार बढ़ता है योजनाकारों को वहाँ के निवासियों के लिए नागरी सुविधाएं उपलब्ध कराने के विषय में चिन्ता होने लगती है। भारत में यह स्थिति अधिक भयावह लग रही है क्योंकि नगरों का स्वरूप जमघट वाला है तथा "दस लखिए" नगरों में ग्रामीण जनता का आगमन होता जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप नगरों के पारितन्त्र की धारिता पर अधिक बोझ पड़ा गया है। इसी कारण जनता को घरों की बहुत अधिक कमी महसूस हो रही है। 1981 में नगरों में 48 लाख घरों की कमी थी जिसकी 1991 के अंत तक हो 72 हो जाने की आशंका है। समाज के इन अंगों को पीने के पानी, बिजली और स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान कर पाना आवास की चुनौतियों में शामिल हैं। आपने खंड 8.3.1 में पढ़ा कि किस प्रकार पारंपरिक धंधों पर रोक लगा देने से वन उन्मूलन की दर द्रुत गति से बढ़ जाती है। यह तथ्य इस बात से भी जुड़ा हुआ है कि कृषिवृत्ति अब ग्रामीणों के बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में असमर्थ है। इसलिए जरूरी हो जाता है कि रोजगार के वैकल्पिक परियोजनाओं जैसे हस्तशिल्पों दस्तकारी के बर्तन बनाना, कपड़े छापना हथकरघे का काम एवं ऐसे ही अन्य लघु उद्योगों को बढ़ावा दिया जाए। गांवों के गरीब लोगों को पर्याप्त प्रोत्साहन इस बात के लिए देना होगा कि वे ग्राम-आधारित लघु उद्योगों के पेशों को अपना सकें और नगरों की घिचपिच और योजनाविहीन व्यवस्था का शिकार न बनें। शहद इकट्ठा करना, टोकरी बनाना, मधुमक्खी पालन, औषधीय पौधों का संग्रहण, लाख, ऐम्बर आदि वन-उत्पादों का संग्रहण आदि ऐसे पेशों के उदाहरण हैं जो शहरी धंधों के मुकाबले में स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक लाभकर हैं।

21.3.2 पर्यावरण से मेल खाती मानव-बस्तियों के लिए योजना

पर्यावरण से मेल खाती मानव-बस्तियां बसाने के लिए नगरी पर्यावरण के संरक्षण की दिशा में एक बहुमुखी मार्ग अपनाना होगा। कुछ बातें जो ध्यान में रखनी होंगी वे इस प्रकार हैं :

1) कंक्रीट के भवनों के तापन प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से नगरी क्षेत्रों में निर्माण स्थलों के इर्द-गिर्द पर्याप्त हरित क्षेत्र लगाए जाने आवश्यक हैं। यदि कुछ पेड़ काट लिये गये हों तो संतुलन बनाये रखने के लिए नये पेड़ लगा दिये जाने चाहिए। जहाँ भी भूमि उपलब्ध हो, वहाँ वृक्षों का रोपण और संवर्धन करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

2) अवैध अतिक्रमणों को कभी भी नियमित नहीं करना चाहिए और यदि ये अतिक्रमण पेड़ों को काटकर किये गये हों तो ऐसा करने वालों के खिलाफ सख्त कार्यवाही करनी चाहिए। अच्छी, उपजाऊ भूमि पर अतिक्रमण रोकने के लिए जिन कानूनी उपायों की व्यवस्था है उनके विषय में आप इकाई 23 में पढ़ेंगे।

3) सफाई के संबंध में, नगर की जल संपूर्ति योजना से अनुमोदन मिलने के पूर्व, भवन और इमारतों के निर्माण से जुड़ी हुई नालियों की व्यवस्था पूर्व अनुमोदित होनी चाहिए।

4) अधिकतर नगर अपने बहुत समीप के स्थानों में स्थित औद्योगिक संस्थानों से निकलने वाले प्रदूषित निकासों (exhausts) और बहिष्प्रवाहों से ग्रस्त हैं, इसीलिए वाणिज्य और घरों की जल संपूर्ति के शोधन की सुविधाएं अलग-अलग होनी चाहिए। औद्योगिक बहिष्प्रवाहों के ग्राही जल में जा मिलने से पूर्व उनका विशेष शोधन होना चाहिए।

5) विद्युत लेपन, धातुपरिष्करण, प्लास्टिक और पाली विनायल उत्पाद, पेन्ट और रोशनाई की फैक्टरियों को आवासी क्षेत्रों से दूर स्थापित करना चाहिए क्योंकि इनसे खतरनाक द्रव उत्सर्ग पैदा होते हैं।

6) भारत के सभी बड़े नगरों में मलजल के पुनःश्चक्रण की योजनाएं शुरू होनी चाहिए। इससे मलजल का द्रुत गति से सुरक्षित निपटान होगा और साथ ही घरेलू कामकाजों से उत्पन्न कार्बनिक अवशेषों में निहित ऊर्जा के अंश की पुनः प्राप्ति हो सकेगी। इस विषय में आप अन्य उपखंड में पढ़ेंगे।

21.3.3 चिरस्थाई औद्योगिक विकास की नीति

नगर के भीतर और उसके परिधिस्थ स्थानों में द्रुत औद्योगिकीकरण से पर्यावरण में गंभीर खराबी आ गयी है। भारत में नगरों के किनारे-किनारे उद्योगों के अधिकाधिक जमघट की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। कुल औद्योगिक उत्पाद का लगभग 80 प्रतिशत तो 12 बड़े नगरों से ही हो रहा है इसका दुष्प्रभाव केवल 16.2 करोड़ नगरवासियों पर ही नहीं बल्कि नगरों और महानगरों से दूर बसे वनों और वृक्षों पर भी पड़ रहा है।

पर्यावरण पर औद्योगिकीकरण के बुरे प्रभावों को नियंत्रित करने के लिए भूमि उपयोग के उपायों के नियमन के कदम उठाने होंगे ताकि औद्योगिकीकरण के हानिकारक प्रभावों से बचा जा सके। वर्तमान "दस लखिए" नगरों के अतिरिक्त इनके इर्द-गिर्द कुछ अनुषंगी नगरों की स्थापना करना आवश्यक है, ताकि प्रत्येक क्षेत्र बड़े नगरों की परिवहन, मनोरंजन और संचार जैसी आधारभूत सुविधाओं का लाभ उठा सके।

उद्योगों की विभिन्न कोटियों का वर्गीकरण किया जाना चाहिए और इस बात का निश्चय करना चाहिए कि जलापेक्षी उद्योग जैसे कपड़ा कागज उद्योग आदि उन्हीं स्थानों में हों जहाँ जल की बहुलता है। दूसरी तरफ जल की कमी वाले स्थानों में ऐसे उद्योगों के स्वीकृति मिलनी चाहिए जिनको जल की अपेक्षा कम हो जैसे इलेक्ट्रॉनिक्स (इलेकट्रॉनिकी)। पर्यावरण प्रदूषण के खिलाफ सुरक्षा के लिए प्रत्येक उद्योग में एक अलग अनुभाग होना चाहिए। ऐसे अनुभागों को पर्यावरण प्रदूषण के स्तरों का सतत अध्ययन करके समुचित उपाय सुझाने चाहिए और सम्बद्ध औद्योगिक इकाइयों को चिरस्थाई विकास के उद्देश्य से समुचित उपाय बरतने के लिए बाध्य करना चाहिए। इसका अर्थ होगा कि वे अपने उपस्करों में ऐसे परिवर्तन लायें जिनमें निवेश की दिशा, प्रौद्योगिक विकास के विन्यास और संस्थागत कार्यकलापों का पारिस्थितिक संतुलन के साथ तारतम्य स्थापित हों। प्रौद्योगिक क्रांति टिकाऊ विकास की नीति का पूरक बने जिससे मानव की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति संभव हो सके। आवास की चुनौतियों के संदर्भ में भारत की औद्योगिक विकास की नीति क्या होनी चाहिए यह समझने के बाद आइये अब कुछ बोध प्रश्नों को हल करें।

बोध प्रश्न 3

(क) कालम "क" में दिये गये शब्दों का कालम "ख" में दी गयी परिभाषाओं के साथ मिलान करें।

कॉलम "क"	**कालम "ख"**
1) "दस लखिए" नगर	1) नगर के इकाई क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या
2) प्रवास	2) दशक (दस वर्ष) के दौरान जनसंख्या में प्रतिशत वृद्धि
3) दशकीय वृद्धि	3) एक बस्ती से दूसरी को विशाल जनसंख्या का आवागमन
4) दिक्स्थानिक विस्तार	4) दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगर

ख) उपयुक्त शब्दों के प्रयोग से रिक्त स्थानों को भरिए :

i) बड़ी संख्या में परिवारों के जमघट और नगर के इर्द-गिर्द के क्षेत्रों में उनके बस जाने से ..... बन जाता है।

ii) शहरीकरण की कोटि में वृद्धि होने के तीन कारण हैं ..... में वृद्धि, स्थानिक फैलाव और .....

iii) 1971 की जनगणना के अनुसार "दस लाख अधिक" नगरों की संख्या 9 से 12 हो गयी है। इस अवधि में वे तीन नगर जो "दास लाख अधिक" हो गये हैं उनके नाम हैं नागपुर, ... और जयपुर।

vi) कंक्रीट भवनों के, ... को कम करने के लिए सभी नगरी क्षेत्रों में ईमारतों के इर्द-गिर्द हरित क्षेत्र सीमांकित और अनुरक्षित किये जाने चाहिए।

21.4 ऊर्जा की भावी आवश्यकताएं

औद्योगिक विकास के लिए ऊर्जा एक परमावश्यक निवेश है। ऊर्जा का उत्पादन कोयला, पैट्रोलियम, जल विद्युत योजनाओं जैसे **वाणिज्यिक स्रोतों** से तथा गोबर, ईंधन और कृषि के उत्सर्गों जैसे **गैर वाणिज्यिक स्रोतों** से होता है। हमारे देश वाणिज्यिक ऊर्जा की प्रति व्यक्ति खपत बहुत ही कम है। यह विश्व औसत का आठवां हिस्सा भर है। देश में उपयोग होने वाले कुल ऊर्जा का आधे से कुछ अधिक भाग वाणिज्यिक ऊर्जा का है, शेष सारी ऊर्जा गैर-वाणिज्यिक स्रोतों से ही प्राप्त होती है। वाणिज्यिक ऊर्जा के जिस अंश की कृषि में खपत हुई है उसमें पिछले ढाई दशकों में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है। 1985-86 में देश में उद्योग में कोयले की ऊर्जा से 78 प्रतिशत और विद्युत ऊर्जा के 62 प्रतिशत की खपत हुई, परिवहन ने 1989 में कुल तेल खपत का 56 प्रतिशत ले लिया। इन क्षेत्रों तथा घरेलू क्षेत्र में ऊर्जा की खपत द्रुत गति से वृद्धि कर रही है। अतएव ऊर्जा नीति की केवल स्वदेशज उपलब्धता में वृद्धि की दिशा में योजना ही नहीं बनानी है बल्कि उसकी कुशल उपादेयता को भी ध्यान में रखना है।

21.4.1 संरक्षण और ऊर्जा

मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से दो मुद्दे उठ खड़े होते हैं, जो हैं: ऊर्जा उत्पादन और पर्यावरण संरक्षण। अन्तर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेन्सी की 1987 की रिपोर्ट में एक सीधा साधा किन्तु मार्के का कथन है: "ऊर्जा की पूर्ति में पूंजी लगने की तुलना में उपान्त में ऊर्जा के संरक्षण में पूंजी लगाने से अधिक लाभ संभव है।" इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि एक अतिरिक्त यूनिट ऊर्जा के उत्पादन की तुलना में एक ऊर्जा यूनिट का संरक्षण सस्ता पड़ता है और पर्यावरण की दृष्टि से यह वांछनीय भी है। इसका कारण यह है कि प्रति अतिरिक्त किलोवाट घंटा ऊर्जा उत्पादन में नये ऊर्जा उत्पादक उपस्करों में 7000 से 12000 रुपये तक की लागत आयेगी।

ऊर्जा उत्पादन के लिए कोयले और तेल के भण्डारों के अत्यधिक दोहन से अम्ल वर्षा और वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड के स्तरों के बढ़ने की दुहरी समस्या खड़ी हो जाती है। राजनैतिक और आर्थिक उलझनें भी उठ खड़ी होती हैं जैसे प्रमुख पैट्रोलियम निर्यात के क्षेत्र, फारस की खाड़ी में बढ़ता हुआ तनाव तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में गिरावट। ये सारी बातें विश्व अर्थव्यवस्था को दलदल में फँसाने या और फिर अधिक हानि करने में सक्षम हैं। आइये देखें इन जटिल समस्याओं के समाधान के अदूरदर्शी उपाय किस तरह समस्याओं को अधिक उलझा रहे हैं।

कोयला और तेल जलाकर विद्युत उत्पादन में तेल पर एक प्रकार से निर्भरता हो जाती है जिसे कम करने के लिए जल विद्युत बिजली घरों और परमाणु ऊर्जा केन्द्रों की वकालत की गयी। भारत जैसे बिजली की कमी वाले विकासशील देशों में बड़े-बड़े बांध आर्थिक विकास में पर्याप्त योगदान दे सकते हैं किन्तु बड़े पैमाने पर विद्युत उत्पादन के अन्य विकल्पों की तरह इस कार्य में भी विघ्न आ खड़े होते हैं। जलाशय घाटी परियोजनाएं वनों, खेतों और वन्य पशुओं के आवासों को जलाप्लवित कर देते हैं तथा स्थानीय लोगों के समूचे समुदाय को ही उखाड़ फेंकते हैं। यदि नर्मदा घाटी की 3000 बांध बनाने की योजना को कार्यान्वित किया गया तो मध्य भारत के दसों लाख व्यक्ति घर से बाहर कर दिये जायेंगे। जल विद्युत बिजली घरों (हाइडेल संयंत्रों) की स्थापना क्षेत्र के समस्थितिक संतुलन को बिगाड़ देती है, परिवेश की जन्तु तथा पादप समष्टियों को जलमग्न कर देती है, स्थानीय निवासियों की रोजी छीन कर उन्हें बेघर कर देती है और महामारियों के फैलने से आकस्मिक मृत्यु का कारण बन जाती है। अब आप समझ गये होंगे किस तरह एक समस्या के अनुचित समाधान में अन्य कई समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। हाल के कुछ पिछले वर्षों में कई देश अपने ऊर्जा बजट को बढ़ा रहे हैं शायद यह सोचते हुए कि ऊर्जा में अधिक व्यय ही विकास का एकमात्र जरिया है किन्तु आज के दिन परिप्रेक्ष्य बदल चुका है। निर्धन देशों के सामने सबसे बड़ी चुनौती है कि ऊर्जा की मांगों की पूर्ति के लिए धनी देशों द्वारा की गई गलतियों को न दुहरायें।

राष्ट्रीय ऊर्जा व्यय को कम करने के लक्ष्य का यदि सही अर्थों में क्रियान्वित किया जाए तो ऊर्जा के कुशलतापूर्वक इस्तेमाल पर अधिक बल दिया जाएगा। आर्थिक प्रतिस्पर्धा सुधरेगी और तेल पर निर्भरता भी कम होगी। वर्तमान ऊर्जा नीति के अनुसार "प्रदूषक से जुर्माना लो" की नीति अपनायी जानी चाहिए जिसका अर्थ है कि जीवन के आधारक तंत्रों के लिए खतरा उत्पन्न करने वाले जीवाश्म ईंधनों पर उद्योग बहुत अधिक निर्भर न हो

जाए ऐसी अवस्था को सुनिश्चित करने के लिए विशिष्ट हतोत्साही प्राविधान आवश्यक है। उनके अनुसार आज के दिन की अपेक्षा यह है कि "आग्रह करें कि जहाँ कहीं भी संभव हो, पर्यावरण की दृष्टि से साफ-सुथरी तकनीकों को ही उद्योग अपनायें।"

देश की ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन केवल गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोत ही हो सकेंगे। भारत सरकार ने इस दिशा में कदम उठा लिए हैं। पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के विकास के लिए आज तक जिस प्रकार के संसाधन और प्रोत्साहन दिये जा रहे थे वैसे ही अब ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों के विकास के लिए भी दिये जायेंगे। अनुभव ने दिखा दिया है कि कोयला और पैट्रोलियम जैसे परंपरागत ऊर्जा के स्रोतों के अत्यधिक इस्तेमाल से पर्यावरण को अधिक खतरा है। जबकि ऊर्जा के कई विकल्प ऐसे निकाल लिए गये हैं जो पर्यावरण की दृष्टि से तो सुरक्षित हैं परंतु अनुदान अथवा प्रोत्साहन की अनुपस्थिति में अभी तक काम में नहीं लाए जा रहे थे।

21.4.2 पारंपरिक और गैर पारंपरिक ऊर्जा-स्रोत

ऊर्जा का उत्पादन मुख्यतः ऐसे स्रोतों से होता है जिनको फिर से निर्मित नहीं किया जा सकता जैसे पैट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, कोयला और लिग्नाइट। इनको सामान्यतः **अनवीकरणीय संसाधन** कहते हैं क्योंकि भंडार से बाहर निकाल लिये जाने पर भंडार की राशि तो कम हो ही जाती है और यदि थोड़ा बहुत नया बनता भी है तो बनने वाली राशि उपयोग में आने वाली राशि की तुलना में बहुत ही अल्प मात्रा में होती है। इन अनवीकरणीय स्रोतों को निधि या स्टॉक संसाधन भी कहते हैं। इन्हें **पारंपरिक स्रोत** भी कहा जाता है क्योंकि ये ऊर्जा उत्पादन की सदियों पुरानी प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हैं। साथ ही स्रोत पर्यावरण को भी भयंकर क्षति पहुँचाते हैं। अन्य प्राकृतिक संसाधनों से भी ऊर्जा का उत्पादन किया जा सकता है जैसे जीवधारियों और जीवों के उत्पादों से सौर विकिरण को पाशबद्ध करके और परमाणु रिएक्टरों से। इन संसाधनों को **नवीकरणीय** प्राकृतिक संसाधन या प्रावाह-संसाधन कहते हैं क्योंकि इनमें जैव वृद्धि और जनन समाविष्ट हैं या कि ये अपेक्षतया द्रुत गति से प्रकृति में पुनः चक्रित हो जाते हैं। जैसा कि जलीय चक्र में पानी की बात है। ऊर्जा के इन नवीकरणीय स्रोतों को गैर पारंपरिक (अभिनव) ऊर्जा स्रोत भी कहा जाता है क्योंकि इनके दोहन की तकनीकें अपेक्षतया हाल ही में विकसित की गई है। इनको ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत भी कहते हैं क्योंकि ये पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के विकल्प प्रस्तुत करते हैं। ऊर्जा के स्रोत और उनके उपयोग के ढंग पारंपरिक हों या गैर पारंपरिक अथवा वाणिज्यिक हों या गैर वाणिज्यिक अथवा नवीकरणीय हों या गैर नवीकरणीय पर एक बात तो तय है कि इन ऊर्जा स्रोतों के पर्यावरणीय प्रभाव को अलग-थलग नहीं समझा जा सकता है। बहरहाल, एक बात निश्चित है—वह यह कि अभिनव ऊर्जा कुशल तंत्रों को विकसित करना ही होगा ताकि आत्म-निर्भरता का लक्ष्य साकार हो जाए।

ऊर्जा संरक्षण के विभिन्न जरिये भले ही स्वभावतः विकेन्द्रित और कांतिहीन होते हैं। अर्थात् बायो गैस संयंत्र, पवन शक्ति, बैल गाड़ियाँ, तापरोधित गृह, घरों की छतों में वर्षा जल संग्रहण, पोलीएथीलीन की थैलियों का संरक्षण, ठोस अवशेषों या अपवर्जो का पुनश्चक्रण (खंड 21.4.4 पृ. 88) इत्यादि अपने आप में उतने ध्यानाकर्षक जरिये नहीं है जितने कि परमाणविक ऊर्जा केन्द्र या परिक्रमणी सौर संग्राहक। फिर भी हमें भूलना नहीं चाहिए कि ऊर्जा पूर्ति के भव्य मगर विपत्तिजनक विकल्पों पर ही हमारी आसक्ति ने ही वर्तमान उलझनें पैदा कर दी हैं। अतएव शायद सही चारा यही है कि हम धरातल पर उतर आएं। और ऊर्जा संरक्षण के उन सीधे सादे मगर उपयोगी विकल्पों पर ध्यान केन्द्रित करें जो पर्यावरण की दृष्टि से निरापद और निर्धन व्यक्ति की पहुँच के अन्दर हो। आगामी खंडों में हम पारंपरिक ग्रामीण कृषि प्रौद्योगिकी के नवीन और सूझबूझ भरे विकल्पों के समावेश के माध्यम से ऊर्जा संरक्षण के कुछेक महत्वपूर्ण जरियों का अध्ययन करेंगे।

21.4.3 गैर प्रदूषणकारी ऊर्जा तंत्रों का विकास

भारत जैसे विकासशील देशों में गांवों की गरीब जनता अपनी ऊर्जा-आवश्यकताएँ अधिकांशतः लकड़ी जला कर ही पूरी करती है। परंतु खाने-पकाने की पारंपरिक विधियाँ पकाने वाले के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं क्योंकि इनसे काफी धुवां निकलता है। साथ ही जलने से जो ताप मोचित होता है उसका भी कुशलता से सदुपयोग नहीं होता। भारत के ऊर्जा वैज्ञानिकों ने भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल विशेष प्रकार के बिना धुवें के चूल्हे बना लिए हैं। इन चूल्हों से धुवाँ नहीं निकलता, पकाने में समय भी कम लगता है और ईंधन की बचत भी होती है। इन्हें निर्धूम चूल्हे कहा गया है।

i) **निर्धूम चूल्हे :** निर्धूम अर्थात् बिना धुवें वाले चूल्हों में प्रयुक्त होने वाला ईंधन नवीकरणीय होता है। लकड़ी और पुआल वास्तव में सौर ऊर्जा की पिटारियाँ हैं—इनमें वह सौर ऊर्जा संगृहीत रहती है जिसका पादप ने अपनी वृद्धि के दौरान उपयोग किया। इस प्रक्रिया में वे वायु से कार्बन डाईऑक्साइड का अवशोषण करते हैं और इस प्रकार पौध-घर प्रभाव (green-house effect) को कम करने में सहायक होते हैं। जब पादप अंगों को ईंधन के रूप में जलाया जाता है तो कार्बन डाईऑक्साइड का पुनः मोचन होता है, किन्तु इसे फिर हरे पौधों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। यह अंतहीन चक्र चलता ही रहेगा तब तक जब कि वृक्ष उगते रहेंगे और फसलों को बोया जायेगा।

इन उन्नत चूल्हों के प्रति प्रायः सभी ने अत्यधिक रुचि और सहयोगात्मक अनुक्रिया दर्शायी। लगभग 3000 गांवों को धूमहीन कर दिया गया क्योंकि इन गांवों के प्रत्येक घर में या तो एक उन्नत चूल्हा है या भोजन पकाने के लिए बायो गैस संयंत्र का प्रयोग होता है। 50,000 व्यक्तियों का प्रशिक्षित कार्यदल का गठन किया गया है जिसमें अधिकांश महिलाएँ हैं। इस दल के सृजन का उद्देश्य था उन्नत चूल्हों के निर्माण के लिए दक्ष शिल्पियों को उपलब्ध कराना।

ii) **गोबर गैस :** ऊर्जा संरक्षण का दूसरा विकल्प है बायो गैस जिसे गोबर गैस भी कहते हैं। गोबर गैस अधिकांशतः मीथेन होती है जिसे विशेष रूप से निर्मित संपाचित्रों (डाइजेस्टरों) में गोबर के अलावा लकड़ी या पुआल का उपयोग करके भी बनाया जा सकता है। कोई भी किसान जिसके पास दो-तीन मवेशी हों इसे लगवा सकता है। इस विधि में गोबर को इकट्ठा किया जाता है, उसमें पानी मिलाकर पतला किया जाता है फिर उसमें पुआल, लकड़ी की कतरनें या अन्य खेती या बूचड़खाने का अवशेष डाल दिया जाता है।

गोबर गैस के संपाचित्र में विविध प्रकार के कार्बनिक उत्सर्गों को कच्चेमाल के रूप में सम्पृक्त कर सकते हैं जैसे रसोई के बचे-खुचे वर्ज्य पदार्थ, आदमी का मल, सुअर के बाड़े का कूड़ा, अखबारों की रद्दी, नगर की गन्दी नालियों का अवपंक या किसी प्रकार का प्राकृतिक कार्बनिक पदार्थ डालकर उनसे मीथेन बनायी जा सकती है। संपाचित्र के ऊपर एक गुम्बद होता है। जिसमें मीथेन का संग्रह किया जाता है। वहाँ से यह पाइपों द्वारा रसोईघर में ले जायी जाती है और इसे बर्नरों में जलाकर ऊर्जा पैदा की जाती है।

इसके अन्य लाभों में शामिल हैं ईंधन जुटाने के लिए निर्धन ग्रामीणों द्वारा पेड़ों की विवेकहीन कटाई में कमी, सफाई व्यवस्था में सुधार, ग्रामीण महिलाओं में नेत्र रोगों की कमी तथा आसान और कुशल पाक क्रिया। गोबर गैस का सबसे बड़ा लाभ है इसका बहुमुखी प्रयोग। भोजन पकाने, रोशनी करने, बिजली बनाने, रेफ्रीजिरेटर चलाने, यहाँ तक कि ट्यूबवेल पम्प चलाने में इस गैस का प्रयोग किया जा सकता है। बायो गैस संपाचित्र का एक अन्य लाभ यह है कि गैस निकालने के बाद बचा हुआ पदार्थ, जिसे अथवामुक्त शेष कर्दम (spent slurry) कहते हैं, पौधों के लिए पोषक रूप में काम में लाया जा सकता है। यह अच्छा उर्वरक होता है और इसमें एन.पी.के. नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम (NPK) बहुतायात में पाये जाते हैं। इस बचे कीचड़ को खेतों में डालने से उपज बढ़ती है क्योंकि एन.पी.के. के अतिरिक्त इसमें फसलों के लिए लाभकारी जीवाणु भी पाये जाते हैं।

बायो गैस संयंत्रों में केवल एक बुराई है—वह यह कि जाड़ों में इसकी कार्यकुशलता घट जाती है जबकि वातावरण का तापमान कम होता है और ऊर्जा की आवश्यकता अधिक। फिर भी, भारत जैसे उष्णकटिबंधी देश में यह समस्या गंभीर नहीं होती। इसके अलावा पाचित्र में से निकलने वाली प्रारंभिक मात्रा को पाचित्र के गर्म करने में ही काम में ला कर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। भारत सरकार इसके लिए इमदाद देती है तथा इसके लगाने और चलाने में तकनीकी जानकारी उपलब्ध कराती है। बायो गैस-ऊर्जा के विशाल सामाजिक लाभों को देखते हुए, देश में बायो गैस उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय बायो गैस विकास परियोजना आरंभ की गई। इस परियोजना के अंतर्गत 9,29,981 बायो गैस संयंत्र 1989 के अंत तक लगाये जा चुके थे। तभी तक के आँकड़े उपलब्ध हैं। इसमें सबसे अधिक (2,46,216) परिवार उपयोगी आमाप के बायो गैस संयंत्र महाराष्ट्र में हैं।

iii) **नगर की गंदी नालियों से ऊर्जा :** नगर की गंदी नालियों में मानव मल अवपंक (sludge) के रूप में होता है। इससे मीथेन प्राप्त करने के लिए नगर की गंदी नालियों के उपचार संयंत्रों में अवायुजीवी संपाचित्र इकाइयाँ लगाई जाती हैं। अवपंक से निकाली जाने वाली गैस को अवपंक गैस कहते हैं। इसमें भी बायो गैस की भाँति अधिकांशतः मीथेन का अंश होता है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और दिल्ली में गैर पारंपरिक ऊर्जा विभाग ने गंदी नालियों के बचे-खुचे कीचड़ में से गैस निकालने के संयंत्रों की स्थापना में सहायता प्रदान की है।

एक बड़े आकार का नगरी उत्सर्गों के पुनश्चक्रण का संयंत्र दिल्ली के निकट ओखला में काम कर रहा है। इस संयंत्र में 15 गैस संग्राहकों से जुड़े 15 संपाचित्र हैं। इस संयंत्र से होने वाला दैनिक गैस उत्पादन लगभग 6 लाख घन फुट है जिसका ताप मूल्य प्रति घन फुट 700-800 बी.टी.यू. है। चार किलोमीटर के क्षेत्र में स्थित 800 घरों को यह गैस सप्लाई की जा रही है। एल.पी.जी. गैस की अपेक्षा यह गैस 50 प्रतिशत सस्ती है। हाल ही में ऐसा दूसरा संयंत्र उत्तर प्रदेश में पैन्ड्रोने में स्थापित किया गया है। उत्तर प्रदेश में अयोध्या, दिल्ली में इशाओपुर और मध्य प्रदेश में भूपाल में ऐसे संयंत्र निर्माणाधीन हैं। जबलपुर में नगर निगम अवपंकट पर आधारित एक ऊर्जा संयंत्र की स्थापना कर रहा है जो प्रतिदिन 7 मेगावाट बिजली पैदा करेगा।

मद्य निर्माणशालाओं के प्रक्रमों से कई प्रकार के जैव कार्बनिक उत्सर्ग बचे-खुचे अवशेषों के रूप में निकलते हैं। गुजरात की एक मद्य निर्माणशाला ने देश में सबसे पहले जैव कार्बनिक उत्सर्गों के पुनश्चक्रण और निपटान की एक नयी तकनीक का विकास कर लिया है। 45000 लिटर उत्सर्गों के उपचार के साथ-साथ इस तकनीक से प्रतिदिन 10 टन कोयले के बराबर की ऊर्जा उत्पन्न होगी। उचित संवर्धन माध्यम में यीस्ट के साथ अपशिष्ट पदार्थों का किण्वन कराकर जैव उत्सर्ग से ईंधन गैस का उत्पादन किया जाता है। एक करोड़ लिटर की धारिता वाली इस मद्यशाला में अपने उत्सर्गों के पुनश्चक्रण द्वारा अपनी आवश्यकता का 50 प्रतिशत ईंधन प्राप्त किया जाता है। यदि देशभर की 150 मद्यशालाएँ इस तकनीक को अपना लें तो वर्ष भर में 30 करोड़ रुपये के 5 लाख टन कोयले की बचत हो जाए और विकार उत्पन्न करने वाले इन अपशेषों का पर्यावरणीय दृष्टि से निरापद रूप से विसर्जन भी हो जाए।

इसी प्रकार राष्ट्रीय पर्यावरणीय इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान ने नागपुर में एक पाचित्र इकाई स्थापित की है। अतिरिक्त ऊर्जा, संसाधन आयोग ने अपनी अलग-अलग इकाइयाँ चंडीगढ़, हैदराबाद, भूपाल, अहमदाबाद, लखनऊ और गुवाहाटी में स्थापित की हैं।

योजनाएँ बनायी जा रही हैं कि नदी तटीय नगरों जैसे वाराणसी, इलाहाबाद, आगरा, कानपुर और बंगलौर में गंदी नालियों के गैस संयंत्र लगाये जाएं। गंगा के प्रदूषण के निराकरण की योजनाएँ बनाने में गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों का विभाग कार्यरत हैं (देखिए इकाई 22)।

iv) **सौर ऊर्जा :** बायो गैस एक सस्ता और कुशल ईंधन है जिसके भंडार का नवीकरण संभव है। हाल के ही दिनों में, ऊर्जा उत्पादन के लिए नवीकरणीय स्रोतों की खोज जारी कर दी गयी है। उदाहरण के लिए, गाँवों की गरीब जनता की माँगों की पूर्ति के लिए सौर ऊर्जा को उपादेय बनाने के लिए क्रमबद्ध प्रयास आरंभ कर दिये गये हैं। यह एक विकेन्द्रीकृत ऊर्जा तंत्र है जो भारतीय जनसमुदाय की विविध माँगों की पूर्ति के लिए काम में लाया जा रहा है।

सौर ऊर्जा से भोजन पकाना, पानी गरम करना, वायु तापन, फसलों को सुखाना आदि ऐसे कार्य हैं जिनमें तापीय रूपान्तरण विधि को प्रयोग में लाया जाता है।

उच्च तापीय अनुप्रयोग के लिए सस्ते सौर-संग्राहक विकसित किये जाने के प्रयास जारी हैं। देश भर में 380 से अधिक सौर जल तापन तंत्र चालू हैं। 1,000 से अधिक विशाल धारिता वाले जल तापन तंत्रों की स्थापना का क्रम जारी है। सौर ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में रूपान्तरित भी किया जा सकता है। सूर्य से आपतित प्रकाश ऊर्जा की विशाल मात्रा को सौर पैनेलों द्वारा फोटोवोल्टैक सैलों में संकेन्द्रित किया जाता है जिनसे बैटरियाँ चार्ज होती हैं। ये बैटरियाँ बिजली के स्रोत हैं। पम्प चलान, सड़कों में रोशनी करने और यहाँ तक कि रेफ्रिजरेटरों को चलाने में इसका प्रयोग किया जा रहा है।

ग्रामीण क्षेत्रों में पीने तथा सिंचाई के पानी की व्यवस्था के लिए 160 से अधिक फोटो वोल्टैक सेल लगाये जा चुके हैं। प्रयोग के तौर पर 150 गाँवों में सरकार द्वारा सौर फोटो वोल्टैक प्रकार के सड़क की रोशनी के तंत्र लगाए गये हैं। सरकार द्वारा प्रायोगिक तौर पर चुने गए कुछ सुदूर ग्रामों (जिन्हें ऊर्जा ग्राम कहते हैं) में सौर ऊर्जा ने उन लोगों को बिजली उपलब्ध करा दी है जो वरना कभी तापीय या हाइडेल बिजली का लाभ ही न उठा पाते।

v) **पवन ऊर्जा :** ऊर्जा प्राप्त करने का दूसरा नवीकरणीय विकल्प है पवन ऊर्जा जिसके सुचारु एवं योजनाबद्ध उपयोग की काफी संभावना है। अधिकतम उपयोजनीय संभाव्यता का आंकलन किया गया है लगभग 3.2×10^8 J/वर्ष। इसे यांत्रिक और वैद्युत ऊर्जा में रूपार्तरित किया जा सकता है और दूरवर्ती क्षेत्रों में इसका विशेष लाभ हो सकता है। पवन ऊर्जा से चलाये गये टर्बाइन बिजली पैदा करते हैं। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार प्रायः द्वीपीय और केन्द्रीय भारत के कई स्थानों में वार्षिक पवन घनत्व 3kwh/m^2/ दिन है। कुछ क्षेत्रों में घनत्व जाड़ों में जब कि ऊर्जा-आवश्यकताएँ तीव्र होती हैं 10kwh/m^2/ दिन से भी अधिक हो जाता है। यह घनत्व वर्ष के 5-7 महीनों में 4kwh/m^2/ दिन रहता है। फिलहाल इस ऊर्जा को राजस्थान के अज़मेर नगर के चार स्थलों में भौमजल को ऊपर खींचने में काम में लाया जा रहा है। इसे "पुष्कर झील घाटी पुनर्जनन और पारिविकास परियोजना" के अंश के रूप में लिया गया है। सरकारी विभाग डी.एन.ई.एस. ने देशभर में 924 पवन पंप लगा दिये हैं। समुचित स्थलों (जैसे लद्दाख) में पवन विद्युत जनित्रों की कुल क्षमता बैटरी चार्ज करने के अतिरिक्त रोशनी और पानी पम्प करने के लिए 2mw मानी गयी है। (देखिए तालिका 21.2) आठवीं योजना में प्रस्ताव है कि भारत के विभिन्न स्थानों में 85 नई पवनचालित चक्कियाँ ऐसे स्थानों में लगायी जाएँगी जहाँ की परिस्थितियाँ इस कार्य के अनुरूप हों।

आज, विभिन्न नवीकरणीय ऊर्जा तंत्रों और युक्तियों के विकास में देश में 100 निर्माता कार्यरत हैं। अनुमान है कि इस सदी के अंत तक ऊर्जा की कुल माँग के 20 प्रतिशत की पूर्ति तालिका 21.2 में सूचीबद्ध निम्नलिखित गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों से हो सकेगी।

तालिका 21.2 :
देशभर में स्थापित अभिनव और नवीकरणीय ऊर्जा-स्रोत (NRSE) के तंत्र और युक्तियाँ।

तंत्र	फरवरी 87 तक स्थापित
परिवार-उपयोगी आमाप के बायो-गैस संयंत्र*	7,37,000
उन्नत चूल्हे (निर्धूम चूल्हे)	24,18,000
समुदाय/संस्थागत बायो-गैस परियोजनाएँ* *	226
घरेलू सौर ऊष्ण जल तंत्र	1,170
सौर भट्टियाँ	34
गैर घरेलू सौर ऊष्ण जल तंत्र	1,001
सौर फसल शुष्कक संयंत्र	28
सौर जल आसवन इकाइयाँ	5,940
पानी पंप करने वाली पवन चक्कियाँ	1,603
सड़क में रोशनी करने के फोटोवोल्टैक तंत्र	6,193
सौर फोटो वोल्टैक पम्प	659
सौर फोटो वोल्टैक टी.वी. और सामुदायिक फोटोवोल्टेक प्रकाशन तंत्र	337
फोटोवोल्टैक बैटरी चार्जक इकाइयाँ	611
फोटोवोल्टैक चिकित्सोपयोगी रेफ्रिजरेटर	1
एइरोजनेरेटर	18
ऊर्जा ग्राम	24
पवन फार्म (कुल क्षमता),	3.65 MW
घरेलू प्रकाशन तंत्र	100

* संयंत्र की औसत क्षमता 4 घन मीटर प्रतिदिन
* * परियोजना की औसत क्षमता 100 घन मीटर प्रतिदिन
फोटो वोल्टैक = प्रकाश ऊर्जा चालित

स्रोत : गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोत विभाग की वार्षिक रिपोर्ट, 1986-87

निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल करके आप जाँच सकते हैं कि आपने गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के बारे में कितना समझा है।

बोध प्रश्न 4

क) वाणिज्यिक और गैर वाणिज्यिक ऊर्जा के स्रोतों में क्या अन्तर है?

ख) बताइये कि निम्नलिखित कथन ठीक हैं/गलत हैं अपना उत्तर दिये गये कोष्ठकों में (✓) या (✗) निशान लगाकर दर्शायें :

i) नगर की गंदी नालियों से निकले अवपंक को बायो गैस उत्पादन के लिए काम में नहीं लाया जा सकता। ☐

ii) निर्धूम चूल्हों से भोजन पकाने में कम समय लगता है और ईंधन की बचत होती है। ☐

iii) गोबर गैस का बायो गैस का उपयोग खाना पकाने, रोशनी करने तथा रेफ्रिजरेटर और ट्यूबवेल पंप सेटों के चलाने के लिए बिजली-उत्पादन में भी किया जा सकता है। ☐

iv) ऊर्जाग्राम ऐसे चुनिन्दा गाँव हैं जहाँ सरकार ने प्रायोगिक स्तर पर गैर पारंपरिक वैकल्पिक ऊर्जा उत्पादक तंत्र स्थापित किये हैं। ☐

ग) ऊर्जा उत्पादन के पारंपरिक और गैर पारंपरिक (अभिनव) तंत्रों की समानता और भेद बतलाइये।

.....

.....

.....

.....

21.4.4 ठोस उत्सर्गों का प्रबंधन

हमने खंड 13.2.3 में उल्लेख किया कि ठोस रद्दी का पुनरुपयोग और पुनश्चक्रण भी ऊर्जा संरक्षण का साधन हो सकता है। यह मानते हुए कि जिस दर से प्रदूषणकारी तत्व पर्यावरण के भौतिक घटकों में संचित होते चले जा रहे हैं निकट भविष्य में उनका व्यवसाधन कठिन से कठिनतर होता चला जाएगा, यह आवश्यक हो जाता है कि कम से कम ठोस उत्सर्गों का प्रबंधन तो वर्तमान में ही कर लिया जाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए औद्योगिक एवं घरेलू प्रक्रमों से बचे ठोस अपशेषों के प्रबंधन का खास महत्व हो चला है। इस पृष्ठभूमि में अब देखा जाए कि ठोस रद्दी के प्रबंधन के मार्गदर्शक सिद्धांत क्या हैं। निपटान से पूर्व रद्दी की निम्नलिखित संभावनाएँ विचारणीय हैं :

कच्चे माल और ठोस रद्दी की मात्रा में कमी लाना
पदार्थों का पुनरुपयोजन
पदार्थों की पुनः प्राप्ति
ऊर्जा की पुनः प्राप्ति

इनके विषय में आप इकाई 13 में विस्तारपूर्वक पढ़ आए हैं।

भौतिक संसाधनों का परिरक्षण

मानव मात्र जैवमंडल का एक अभिन्न अंग है और इसीलिए किसी भी अन्य जीवधारी की तरह उसके संसाधनों पर पूरी तरह निर्भर भी है। उसका भविष्य, यहाँ तक कि जीवित रह पाना भी, उसके लिए उपलब्ध संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग और संरक्षण पर निर्भर रहता है।

यदि पर्यावरण को जीवन का आधार बनाये रखना है तो इसे हमारे ही कर्मों के दुष्परिणामों से बचाए रखना होगा। सांस लेने योग्य हवा, स्वच्छ जल, उपजाऊ मिट्टी और जीवों की असंख्य प्रजातियाँ एवं विविध रूप से सभी महत्वपूर्ण संसाधन हमारे जीवित रह पाने के लिए परमावश्यक हैं। इस बात का महत्व इस कारण भी अधिक हो जाता है कि भौतिक संसाधन सीमित होते हैं।

21.5 सारांश

इस इकाई में हमने भौतिक संसाधनों के परिरक्षण के सिद्धांतों पर नजर डाली है और सीखा कि :

- भूमि, जल, वायु, मिट्टी आदि भौतिक संसाधनों के ह्रास का मुख्य कारण है कृषि, उद्योग, शहरीकरण तथा ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मानव द्वारा भौतिक संसाधनों का दोहन।
- कृषि के क्षेत्र में संरक्षण के उपाय हैं—भूमि उपयोग के प्रारूप को बदलते रहना, सिंचाई के पानी और ऊर्जा का संरक्षण, कीटनाशी और रसायनिक उर्वरकों का न्यूनतम अनु-प्रयोग और कृषि में पर्यावरण की दृष्टि से निर्दोष नयी-नयी तकनीकों, जैसे सौर-फार्म आदि, का कार्यान्वयन।
- बढ़ती हुई आबादी के संदर्भ में पर्यावरण से मेल खाती मानव बस्तियों को बसाना निर्विकल्प हो गया है।
- ऊर्जा के स्रोतों के संरक्षण की अविलम्ब आवश्यकता है क्योंकि इसकी अत्यधिक खपत महंगी भी पड़ती है और बहुत सी अनुषंगी समस्याओं को जन्म देती है।
- नगर के कूड़े करकट व उद्योगों के उप उत्पादों का समुचित प्रबंध, जिसमें वर्ज्य अपशेषों को न्यूनतम रखने, उसके पुनरुपयोग और पुनश्चक्रण पर जोर दिया जाना शामिल हैं, संसाधनों के संरक्षण का एक सबसे अच्छा उपाय है।

21.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) रासायनिक उर्वरकों और जैव उर्वरकों के प्रयोग के हानि लाभ की तुलना कीजिए।

.....

.....

.....

2) नाशक कीटों के जैव नियंत्रण और रासायनिक नियंत्रण की तुलना करते हुए इन पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

3) उपलब्ध संसाधनों के प्रभावी उपयोग और संसाधनों के संरक्षण में सहायक कृषि प्रथाओं के दो परिवर्तनों के उदाहरण कीजिए।

.....

.....

.....

4) नगरों के निकट उद्योगों की स्थापना से नगरवासियों के लिए किस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

.....

.....

.....

5) पारंपरिक और गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के बीच क्या अंतर है।

.....

.....

.....

6) ऊर्जा उत्पादन के दो गैर पारंपरिक (अभिनव) उपायों का सुझाव दीजिए।

.....

.....

.....

21.7 उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) ठीक, ख) ठीक, ग) ठीक, घ) ठीक

बोध प्रश्न 2

क) i) ठीक, ii) ठीक, iii) ठीक, iv) ठीक

ख) i) भूस्खलन, मृदा अपक्षय,
• निवासियों का विस्थापन, जलवाहित रोगों का
ii) अंतिम, दुगना

बोध प्रश्न 3

क)

कालम क	कालम ख
i)	4
ii)	3
iii)	2
iv)	1

ख) i) दस लखिए नगर
ii) आयतन, दशकीय वृद्धि
iii) लखनऊ
iv) तापन प्रभाव

बोध प्रश्न 4

क) ऊर्जा के स्रोत जिनका उत्पादन विशाल मात्रा में बिक्री के उद्देश्य से होता है वाणिज्यिक स्रोत कहे जाते हैं जैसे कोयला, पैट्रोलियम, बिजली। वे स्रोत जो केवल स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और जिनका उत्पादन विशाल मात्रा में नहीं होता गैर वाणिज्यिक कहे जाते हैं जैसे जुलाने की लकड़ी, गोबर और कृषि अवशेष।

ख) i) गलत, ii) गलत, iii) सही, iv) सही

ग) ऊर्जा उत्पादन की पारंपरिक पद्धतियाँ कम कुशल, अधिक प्रदूषणकारी और अनवीकरणीय होती हैं। जबकि ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत नवीकरणीय संसाधनों का प्रयोग करने वाले एवं ऊर्जा उत्पादन के स्वच्छ और कुशल उपाय उपलब्ध कराते हैं।

अंत में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1) रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैव उर्वरकों का प्रयोग किया जा सकता है। रासायनिक उर्वरकों का उत्पादन किसी अन्य स्थान में होकर उन्हें उच्च ऊर्जा की कीमत पर खेतों तक ढोया जाता है। इनको प्रतिवर्ष बढ़ती हुई मात्रा में खेतों में डालना पड़ता है और बार-बार प्रयोग होने से हानि बढ़ती जाती है और लाभ कम होते जाते हैं। दूसरी ओर जैव उर्वरकों को जिस स्थल पर उपयोग करना होता है वहीं ये उचित मात्रा में उत्पादित किये जाते हैं। साथ ही ये सौर ऊर्जा का उपयोग करते हैं जिससे प्रदूषण की समस्याएँ उत्पन्न नहीं होती।

2) रासायनिक कीटनाशियों की तुलना में नाशक कीटों का जैविक नियंत्रण निम्नलिखित कारणों से बेहतर है :

जैव अभिकर्मक	रासायनिक अभिकर्मक
1) विशेष लक्ष्य को निशाना बनाते हैं, इनकी परास संकीर्ण होती है।	विशेष लक्ष्य को निशाना नहीं बनाते, इनकी परास विस्तृत होती है।
2) नाशक कीट का नाश कर स्वयं स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त होते हैं।	पीड़क कीट का नाश करने के बाद काफी समय तक जीवित रहते हैं।
3) पर्यावरण को क्षति नहीं पहुंचाते	मानव के भोजन में प्रवेश कर उसे विषाक्त कर देते हैं।

3) सौर फार्मों का उपयोग और छोटे बांधों की स्थापना, कृषि प्रयासों के ये दो महत्वपूर्ण परिवर्तन ऊर्जा और जल संसाधनों की बचत कर सकते हैं।

4) उद्योगों को नगरों के निकट लगाने से पानी और बिजली की कमी हो जाती है, क्योंकि इन संसाधनों के लिए उद्योगों और नगरवासियों के बीच होड़ लग जाती है। इसके दुष्परिणाम होते हैं नगर में सफाई व्यवस्था में खराबी तथा जलवाहित और वायु प्रदूषण जनित रोगों का फैलना आदि।

5) ऊर्जा में पारंपरिक स्रोत जैसे कोयला और पैट्रोलियम अनवीकरणीय होते हैं, ये ऊर्जा उत्पादन की पुरानी तकनीकों का प्रयोग करते हैं और पर्यावरण को क्षति पहुँचाते हैं। ऊर्जा के गैर पारंपारिक स्रोत जैसे सौर-ऊर्जा, जीवभार-ऊर्जा के आधार नवीकरणीय संसाधन हैं। ये अपेक्षाकृत आधुनिक तकनीकों का उपयोग करते हैं और पर्यावरण को न्यूनतम क्षति पहुँचाते हैं। दूरस्थ क्षेत्रों के ग्रामीण गरीबों को ऊर्जा उपलब्ध कराने के विकेन्द्रीकृत उपाय ये ही गैर पारंपरिक ऊर्जा के साधन हैं।

6) ऊर्जा उत्पादन की दो गैर पारंपरिक विधियाँ हैं :

   क) सौर स्रोतों के माध्यम से बिजली पैदा करना,

   ख) पवन शक्ति से बिजली पैदा करना। पहली विधि में सौर पैनल, सौर विकिरण का संग्रह करते हैं और उन्हें फोटोवोल्टैक सेलों में परावर्तित कर देते हैं जो चार्ज होकर सेलों की बैटरियों के रूप में इस्तेमाल किये जा सकते हैं। दूसरी विधि में पवन-शक्ति का उपयोग एक मोटर को घुमाने में किया जाता है जो बिजली पैदा कर देती है।

शब्दावली

अर्थशास्त्र : किसी सामाजिक इकाई में संपत्ति के उत्पादन और माल और सेवाओं की खपत तथा उसके धन, उद्योग और व्यापार की व्यवस्था का अध्ययन।

आंतरविष (एंडोटॉक्सिन) : जीवाणु कोशिका के अपघटन से उत्पन्न विष।

आवाह क्षेत्र : वह क्षेत्र जहाँ से पानी का निकास एक विशेष स्थान—जैसे मुख्य नदी प्रणाली या झील को होता है।

उपग्रह नगर : एक छोटा शहर जो किसी ऐसे बड़े शहर के प्रभाव क्षेत्र के भीतर है जिस पर वह सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से निर्भर है। उपग्रह नगर प्रायः उपनगरों के घेरे के बाहर स्थित होता है और केंद्रीय नगर से आसन्न लगा होता है।

ऊर्जागाम : ऊर्जा के गैर पारंपरिक स्रोतों के उपयोग को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त प्रायोगिक गाँव।

जलवायु विज्ञान : जलवायु संबंधी स्थितियों, परिवर्तनों प्रभावों आदि का अध्ययन जो किसी स्थान की आम मौसम स्थितियों से संबंधित होता है।

धुआँ रहित चूल्हा : ईंधन की लकड़ी जलाने से ऊष्मा उपयोग में अधिकतम दक्षता प्राप्त करने के लिए डिजाइन किया गया चूल्हा।

प्रकाश क्वांटम : समझा जाता है कि प्रकाश ऊर्जा के छोटे-छोटे पैकेटों से बना है, जिन्हें "क्वांटम" कहते हैं।

प्रकाश वोल्टीय यंत्र : एक यंत्र जिसमें ऊर्जा के स्रोत के लिए प्रकाश वोल्टीय सेल प्रयोग किया जाता है। जब विकिरण ऊर्जा किसी प्रकाश वोल्टीय सेल की प्रकाश सुग्राही सतह पर आपतित होती है, प्रकाश वोल्टीय सेल विद्युत धारा पैदा करता है। उदाहरण के लिए, प्रकाश फोटॉन नामक ऊर्जा के पैकेटों से बना होता है। जब यह फोटॉन बैटरी के प्रकाश सुग्राही पदार्थ के पृष्ठ से टकराते हैं, इनमें से कुछ फोटॉन पदार्थ में इलेक्ट्रानों को प्रवाहित कर देते हैं। चूँकि परिभाषा के अनुसार इलेक्ट्रानों का प्रवाह विद्युत धारा है, सेल उस यंत्र के लिए बिजली के स्रोत के रूप में काम करते हैं।

बी.टी.यू. (ब्रिटिश थर्मल यूनिट) : ऊष्मा की मात्राओं की तुलना के लिए यूनिट। यह एक पौंड पानी का तापमान 1° F बढ़ाने के लिए अपेक्षित ऊष्मा की मात्रा है।
1 बी.टी.यू. = 252 कैलोरी।

भू-विज्ञान : चट्टानों और मृदा जैसे पदार्थों का उद्भव, संरचना पता करने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन और पृथ्वी के इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन।

भू-आकृति विज्ञान : पृथ्वी के रूप और संरचना का अध्ययन करने वाली विज्ञान की शाखा।

भूकंपी सक्रियता (हलचल) : पृथ्वी के किसी क्षणिक विक्षेम से उत्पन्न प्रधाती तरंगे।

नाइट्रीकरण : जैव नाइट्रोजन यौगिकों के वायुजीवी जीवाणुओं का नाइट्रेटों में रूपांतरण।

रासायनिक उर्वरक : नाइट्रोजन फासफ़ोरस और पोटाशियम के यौगिक जब मिट्टी में डाले जाते हैं तो उपज बढ़ जाती है। इनमें से अधिकतर पानी में घुलनशील होते हैं और यदि पौधे उन्हें ग्रहण नहीं करते तो ये आसानी से घुलकर बह जाते हैं। नाइट्रेटों के घुलकर बह जाने से स्वास्थ्य को खतरा हो सकता है। खासकर, यदि यह बहाव खाद्यान्न, पत्तेदार सब्जियों और पेय जल में हो।

राष्ट्रीय पार्क : राष्ट्रीय पार्क भूमि का एक ऐसा बड़ा क्षेत्र होता है जो उसके प्राकृतिक सौंदर्य, पौधों अथवा पशुओं के कारण सरकार द्वारा संरक्षित होता है और आम जनता सामान्य तौर पर इसे देखने जा सकती है।

वन्य जीवन विहार : जहाँ वन्य जंतुओं पक्षी और पशु, की रक्षा की जाती है और उन्हें स्वच्छंदता से जीने दिया जाता है।

वर्गीकरण विज्ञान : पशुओं और पौधों का उनकी समानताओं और असमानताओं के अनुसार बड़े तंत्र के भीतर समूहों में वर्गीकरण और नामावली।

वायुमंडल का स्तरण : वायुमंडल की तापमान पर निर्भरता से जनित विभिन्न स्तरों में विभाजन।

विलुप्त : पशुओं या पौधों की ऐसी प्रजाति जिसका अब कोई सदस्य जीवित नहीं है।

स्थलाकृति विज्ञान : पहाड़ियों, घाटियों या नदियों सहित, भौतिक आकार का अध्ययन और वर्णन।

समाजशास्त्र "समाज विज्ञान" : मानव समाजों का और इन समाजों में उपस्थित समूहों के बीच आपसी संबंध का अध्ययन।

सरोवर विज्ञान : मत्स्य जीव विज्ञान संबंधी विज्ञान की शाखा।

इकाई 22 पर्यावरण गुणता प्रबंध

इकाई की रूपरेखा

22.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
22.2 वायु गुणता प्रबंध
वायु गुणता मानक
वायु गुणता मापन
वायु गुणता नियंत्रण
वायु गुणता नियंत्रण की आर्थिकी
22.3 जल गुणता प्रबंध
जल गुणता मानक
जल गुणता मापन
गंगा कार्य योजना
22.4 भूमि-प्रबंध
भूमि गुणता सुधारने के तरीके
भूमि प्रदूषण रोकने के उपाय
वन प्रबंध
22.5 सारांश
22.6 अंत में कुछ प्रश्न
22.7 उत्तर

22.1 प्रस्तावना

आप इकाई सं. 10, 11 और 12 में क्रमशः वायु, जल और भूमि प्रदूषण के प्रकारों, स्रोतों और प्रभावों का अध्ययन पहले ही कर चुके हैं और इकाई सं. 21 में भौतिक संसाधनों की विकृति की स्थिति के संबंध में भी अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में हम पर्यावरण गुणता नियंत्रण के विभिन्न पहलुओं की विवेचना करेंगे। हालांकि यह सही है कि अधिकतर स्थितियों में, तकनीकी दृष्टि से प्रदूषकों के उत्पन्न होने को पूरी तरह समाप्त करना शायद संभव नहीं है। पर इनकी मात्रा को कम से कम तो किया ही जा सकता है। तब प्रश्न उठता है कि पर्यावरण किस सीमा तक प्रदूषकों को सहन कर सकता है। भारत सहित विभिन्न देशों ने ऐसे मानक निर्धारित किए हैं जिनमें निर्दिष्ट माध्यमों (जैसे वायु और जल) में अनुमत विभिन्न प्रदूषकों के निस्सरण की दर अथवा प्रदूषकों के अधिकतम सांद्रण की सीमा निर्दिष्ट की गई है। ये मानक उन अधिकतम मात्राओं के प्राथमिक अनुमानों पर आधारित हैं जो, सुरक्षा के लिए छूट सहित, सार्वजनिक हित के लिए खतरा उत्पन्न नहीं करतीं। वे निस्सरण मानकों का रूप ले सकते हैं अथवा उत्पादों की अंतर्वस्तु से संबंधित हो सकते हैं, उदाहरण के लिए खाद्यान्न में मिलावट (योजकों) अथवा पीड़क-नाशी रसायनों के अवशेष, कृषि अवशेषों में फ़ास्फ़ेट की मात्रा। समय-समय पर बनाए गए प्रदूषण नियंत्रण अधिनियमों के अनुसार सभी विनिर्माताओं को इन मानकों का पालन करना जरूरी है। मानक निर्धारित करने के बाद, हमें अपने आप से निम्नलिखित प्रश्न पूछने हैं :

- निर्धारित मानकों तक निस्सरण स्तर नीचे लाने के लिए किन नियंत्रण उपायों की जरूरत है?
- वांछित पर्यावरण गुणता प्राप्त करने में कौन सी विभिन्न समस्याएँ हैं और किस लागत पर यह प्राप्त की जा सकती है?

इस इकाई में हम इन प्रश्नों पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- वायु, जल और भूमि प्रदूषण की समस्याओं को स्पष्ट कर पाएँगे,
- वायु और जल प्रदूषण के मानकों की सूची बना सकेंगे,
- वायु और जल प्रदूषित नियंत्रण उपस्कर और तकनीकों के विभिन्न प्रकार सुझा सकेंगे,
- औद्योगिक प्रदूषण के रोकथाम की लागत का निर्धारण कर पाएँगे,
- भूमि उद्धार के साधन के रूप में सामाजिक वानिकी की तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत कर सकेंगे, तथा
- निम्नकोटिकृत भूमि के उद्धार के अन्य तरीके सुझा सकेंगे।

22.2 वायु गुणता प्रबंध

वायु गुणता प्रबंध के निम्नलिखित पहलू हैं :

क) निस्सरण मानक और परिवेशी वायु गुणता मानक स्थापित करना,

ख) विभिन्न स्रोतों से निकलने वाली वायु प्रदूषकों की मात्रा का नियंत्रण और मापन,

ग) प्रदूषकों का स्तर सदा सुरक्षित सीमाओं के भीतर ही बनाए रखने के लिए परिवेशी वायु गुणता का लगातार अनुमापन करना,

घ) ऐसी औद्योगिक गतिविधियों की योजना तैयार करना जिनसे उत्तरोत्तर बढ़ते हुए वार्षिक प्रदूषण का वायु गुणता पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और यह अनुमेय सीमाओं के भीतर ही रहे।

22.2.1 वायु गुणता मानक

वायु गुणता मानक केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा निर्धारित किए गए हैं। ये मानक तीन प्रकार के हैं :

i) **स्टैक निस्सरण मानक** जो किसी स्रोत से प्रदूषकों के निस्सरण की मात्रा को सीमित करते हैं। स्टैक निस्सरण मानक प्रदूषक के स्तर की उपरिसीमा है जिसका किसी उद्योग संयत्र की चिमनी या किसी थर्मल विद्युत संयंत्र के स्टैक में से निकलना अनुमेय है।

ii) **परिवेशी वायु मानक** परिवेशी वायु गुणता को निर्दिष्ट करते हैं अर्थात् विभिन्न प्रदूषकों की वे मात्राएँ निर्दिष्ट करते हैं जो उत्पादन के स्रोत के आसपास सह्य हैं। परिवेशी वायु मानक किसी प्रदूषक की वह अधिकतम मात्रा है जो किसी औद्योगिक संयंत्र या फैक्टरी या थर्मल विद्युत संयंत्र के आसपास के क्षेत्र की वायु राशि में सहन किए जा सकते हैं। इन्हें परिवेशी वायु मानक भी कहा जाता है।

iii) सुविधा के लिए मानकों की तीसरी श्रेणी को अलग किया जाता है — **वाहन निस्सरण मानक।** ये मानक केवल हाल ही में लागू किए गए हैं। वाहन निस्सरण मानक उन विभिन्न प्रदूषकों की अधिकतम सह्य सीमाएँ हैं जो किसी स्वचालित वाहन (मोटरगाड़ी) की निकास नली से निकल सकते हैं। यूँ कहें कि किसी वाहन की निकास नली से प्रदूषक मानक मात्रा से अधिक मात्रा में निकलना पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक है इसलिए निर्दिष्ट मानक से अधिक मात्रा में प्रदूषक का निकलना अनुमेय नहीं है।

स्टैक निस्सरण मानक

विभिन्न उद्योगों के लिए भिन्न-भिन्न निस्सरण मानक निर्धारित किए गए है। निलंबित कणिकीय द्रव्य के रूप में धूल का अधिकतम अनुमेय स्तर 150 मि.ग्रा./घन मीटर (mg/Nm^3) है। धूल थर्मल विद्युत संयंत्रों के स्टैकों से, लोहा और इस्पात के सिंटरन संयंत्रों, उर्वरक विनिर्माण यूनिटों, लघु उद्योग बॉयलरों और पत्थर खादानों से आती है। अन्य औद्योगिक यूनिटों जैसे धातु शोधन शालाएं, ईंटों के भट्टे और संश्लिष्ट फाइबर संयंत्रों से अम्ल, कुहासे के रूप में, जिसमें वायु में निलंबित विलीन गैसों की बूँदों अथवा गैसों के अलावा अन्य प्रदूषक की बूँदों के रूप में निकलते हैं। इन बूँदों में मुख्यतः सल्फर डाइआक्साइड (SO_2) जैसी गैसों के जलीय घोल, नाइट्रोजन के आक्साइड कार्बन डाइसल्फाइड (CS_2), CO और H_2S होते हैं। चिमनी निष्कासों में अम्ल कुहासे का अनुमेय स्तर 50 मि.ग्रा./घन मीटर (अर्थात् milligram per normal cubic meter) से अधिक नहीं होना चाहिए। कुछ स्टैक निस्सरण मानक तालिका 22.1 में दिए गए हैं। विभिन्न प्रदूषकों की वे मात्राएँ जिनका उद्योगों एवं कारखानों की चिमनी में से निकलने वाले पदार्थों में निलम्बित या कभी-कभी घुलित अवस्था में पाया जाना अनुमेय है, अर्थात् विभिन्न प्रदूषकों की वह निर्धारित उपरिसीमा जिससे अधिक मात्रा में उत्पन्न करना मानव पर्यावरण की दृष्टि से अपराध है, तालिका 22.1 में दिखाए गये हैं।

तालिका 22.1: विभिन्न उद्योगों के लिए निर्धारित साधारण प्रदूषकों के स्टैक निस्सरण मानक

उद्योग (धारिता)	प्रदूषक	संरक्षित क्षेत्र	निर्धारित मानक मात्राएं (mg/Nm^3) में अन्य क्षेत्र
सीमेंट संयंत्र < 200 टन प्रतिदिन	नि.क.द्र.*	250	400
> 200 टन प्रतिदिन	नि.क.द्र.	150	250
थर्मल विद्युत संयंत्र > 200 में वा	नि.क.द्र.	150	150
< 200 में. वा	नि.क.द्र.	150	350
< 50 में. वा	नि.क.द्र.	1000	2000
	(अंतिम दो श्रेणियों में संशोधन किया जा रहा है।)		
लोहा और इस्पात संयंत्र			
सिंटरन संयंत्र	नि.क.द्र.	150	150
सामान्य इस्पात संयंत्र	नि.क.द्र.	150	150
आक्सीजनित इस्पात संयंत्र	नि.क.द्र.	400	400
उर्वरक यूरिया निर्माण	नि.क.द्र.	50	50
नाइट्रिक अम्ल	NO_x	3 कि.ग्रा. NO_x प्र. टन अम्ल उत्पाद	
सल्फ्यूरिक अम्ल	SO_2	10 कि.ग्रा. SO_2 प्र. टन सांद्रित अम्ल उत्पाद	

सल्फ़्यूरिक अम्ल	अम्ल कुहासा	50	50
सल्फ़्यूरिक अम्ल	SO_2	4 कि.ग्रा. SO_2 प्र. टन संद्रित अम्ल उत्पाद	
सल्फ़्यूरिक अम्ल	अम्ल कुहासा	50	50
भट्टी	नि.क.द्र.	150	150
संश्लिष्ट फाइबर संयंत्र	H_2S	60 कि.ग्रा. H_2S प्र. टन फाइबर	
संश्लिष्ट फाइबर संयंत्र	CS_2	30 कि.ग्रा. CS_2 प्र. टन फाइबर	
लघु उद्योग बायलर			
कोयला चालित			
> 15 टन/घंटा वाष्प जनित	नि.क.द्र.	150	150
2-15 टन/घंटा वाष्प जनित	नि.क.द्र.	1200	1200
< 2 टन/घंटा वाष्प जनित	नि.क.द्र.	1500	1500

* नि.क.द्र. = निलम्बित कणिकीय द्रव्य

तेल चालित संयंत्र से निकलने वाली SO_2 स्टैक ऊँचाई के सूत्र के अनुसार

$h = 14\ Q$

यहाँ h = स्टैक ऊँचाई और Q = निस्सरित मात्रा कि.ग्रा./घंटों में

NOx = नाइट्रोजन के आक्साइड, SO_2 = सल्फ़र डाइआक्साइड, H_2S = हाइड्रोजन सल्फ़ाइड, और CS_2 = कार्बन डाइसल्फ़ाइड

परिवेशी वायुमानक

विभिन्न उद्योगों की चिमनियों से निकले गैसीय प्रदूषक अंततः इन इकाइयों के आसपास की वायु राशि में जमा हो जाते हैं। स्पष्टतः इस बात पर विचार किए बिना कि स्टैक से निकले प्रदूषक की निस्सरण दर क्या है अलग-अलग प्रदूषकों की वायुमण्डल में पायी जाने वाली कुल मात्रा पर प्रतिबंध है। परिवेशी वायु मानक प्रदूषक विशेष की वह ऊपरी सीमा है जिसे किसी अधिकतम स्तर से नीचे-नीचे फैक्टरी भट्टे या यूनिट के चारों ओर के क्षेत्र में जमा होने की अनुमति दी जा सकती है। परिवेशी वायु गुणता मानकों में अलग-अलग प्रदूषकों की उस अधिकतम अनुमेय सांद्रता को निर्धारित किया जाता है जिसकी (परिवेशी) वायु में पाये जाने की अनुमति दी जा सकती है। कुछ परिवेशी वायु मानक तालिका 22.2 में दिए गए हैं।

तालिका 22.2 : परिवेशी वायु गुणता मानक

	नि.क.द्र.	SO_2	CO	NO_x
औद्योगिक क्षेत्र	500	120	5000	120
आवासीय क्षेत्र	200	80	2000	30
संवेदनशील क्षेत्र	20	30	1000	30

वाहन निस्सरण मानक

हाल ही में स्वचालित वाहनों के लिए भी मानक प्रस्तावित किए गए हैं। ऐसा माना जाता है कि पश्चिमी देशों में स्वचालित वाहनों से निकले प्रदूषक अन्य सभी प्रकार के स्रोतों से निकले प्रदूषकों की कुल मात्रा का 60 प्रतिशत होते हैं। स्वचालित वाहनों के निकास पाइपों से निकलने वाली गैसें और ठोस कणों में मुख्यतः कार्बन मोनोऑक्साइड, सीसे के यौगिक और नाइट्रोजन के आक्साइड (NO_x) तथा अधजले हाइड्रोकार्बन कण होते हैं। विभिन्न प्रकार के इंजनों के लिए निर्धारित इन प्रदूषकों के अधिकतम अनुमेय स्तर भी विभिन्न होते हैं जो तालिका 22.3 में विस्तृत रूप से दिए गए हैं।

तालिका 22.3 : वाहन निस्सरण मानक

प्रस्तावित मानक इस प्रकार हैं:				
डीज़ल इंजन	निलम्बित कणिकीय द्रव्य (mg/Nm^3)			
फैक्टरी में	60			
सड़क पर	70			
पेट्रोल इंजन				
	कार्बन मोनोऑक्साइड (भाग प्रतिशत में)			
	दुपहिए वाहन		चार पहियों वाले वाहन	
	< 50 सी सी	> 50 सी सी		
फैक्टरी में	5.0	4.5	3.5	
सड़क पर	5.0	4.5	4.0	
	पेट्रोल में सीसा (भाग प्रति लाख में):			
औसत	20			
अधिकतम	45			
लक्ष्य (1992)	15			

22.2.2 वायु गुणता मापन

वायु गुणता माप या तो स्रोत पर (चिमनी में) लिए जा सकते हैं अथवा चारों ओर की (परिवेशी) वायु में। हाल ही में हुई तकनीकी प्रगति की सहायता से पृथ्वी के ऊपर बहुत ऊँचाई पर स्थित रह कर, दूरी से प्रदूषकों की मात्रा का सुदूर मापन किया जा सकता है। स्रोत पर मापन अपेक्षाकृत सरल है, उसमें बेहतर पुनरावर्तनीय होती है और समय भी कम लगता है। परन्तु स्रोत मापन के लिए अपेक्षाकृत अधिक जटिल यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है। दूसरी ओर परिवेशी वायु गुणता के सुदूर मापनों में आसान यंत्रों की जरूरत पड़ती है पर इनमें समय अधिक लगता है और यह अधिक थकाऊ होते हैं।

i) स्टैक निस्सरण मापन

धूल कणिकाओं की मात्रा के मापन के लिए नमूने स्टैक से लिए जाते हैं और कणिकीय नमूने थिम्बल नामक एक उपकरण, की अन्वेषी शलाका द्वारा लिए जाते हैं इसके लिए जरूरी है कि स्टैक में बह रही गैसों के नमूने समगतिक स्थितियों में, एक समान दर पर लिए जाएं। इसके लिए संग्राहक उपकरण द्वारा ली गई वायु की कुल मात्रा को मापा जाता है और थिम्बल में इकट्ठा हुई धूल को भी वजन अन्तर से मापा जाता है। धूल सांद्रण मि.ग्रा./घन मीटर, (mg/Nm^3) (25° से. और 760 मि.मी. जल धारिता वाले दाब पर सामान्य आयतन) में व्यक्त किया जाता है।

स्टैक नमूने लेते समय तीन पूर्वोपाय अवश्य किए जाएँ :

- नमूनों की संख्या पर्याप्त होनी चाहिए।
- प्रतिचयन अन्वेषीशलाका के लम्बवत अक्ष का मुख वायु प्रवाह दिशा के सामने नहीं होना चाहिए बल्कि उसके समानान्तर होना चाहिए।
- नमूने **समगतिक स्थितियों** में ही लिए जाएं।

समगतिक प्रतिचयन युक्ति वायु वाहित निलंबित कणिकीय द्रव्य के नमूने एकत्र करने की ऐसी तकनीक है जिसमें अन्वेषीशलाका में प्रवेश करने वाली वायु धारा का वेग संग्राहक उपकरण के चारों ओर बहती गैसों के वेग के बराबर होता है।

मान लीजिए शलाका में खींची गई वायु का वेग Vp (वी.पी.) और संग्राहक उपकरण के चारों ओर बहती हुई वायु का सामान्य वेग Vg (वी.जी.) हो तो जैसा कि चित्र 22.1 में दिखाया गया है, कि तुलनात्मक दृष्टि से तीन वेग परिस्थितियाँ सम्भव हैं।

(क) वेग Vp वेग Vg के बराबर हो सकता है;
(ख) Vp वेग Vg से कम हो सकता है;
(ग) अथवा Vp वेग Vg से अधिक हो सकता है।

यदि वेग वी.पी. वेग वी.जी. (चित्र 22.1 ख) से कम है तो संग्रहीत अंश में स्थूल कणों का अत्यधिक

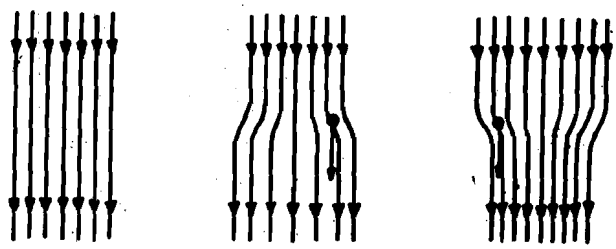

चित्र 22.1 : (क, ख और ग) कणिकीय द्रव्य के समगतिक प्रतिचयन का सिद्धान्त

अनुपात होगा क्योंकि प्रवाह रेखा के साथ चलने वाले सूक्ष्म कण अन्वेषी उपकरण से बाहर रह जाएंगे। इस प्रकार, यदि धूल में सूक्ष्म कण अधिक हैं तो संग्रहीत नमूने में वास्तव से कम धूल सांद्रण दिखाई देगा और यदि वेग वी.पी. वेग वी.जी. (चित्र 22.1 ग) से अधिक है तो इसके विपरीत संग्रहीत अंश में सूक्ष्म कणों का अनुपात अधिक होगा अर्थात् मापन एक बार फिर त्रुटि युक्त हो जाएंगे। साधारण शब्दों में, **समगतिक प्रतिचयन युक्ति** में प्रतिचलित वायु में सभी आकारों के कणों के लिए तत्समक (1 इकाई) संग्रह दक्षता होती है। फलस्वरूप वायु में निलम्बित सभी आकार के धूल कणों का त्रुटि रहित मापन होता है क्योंकि उपकरण द्वारा प्रतिचयित नमूने में सभी आकार के कण अपने स्वभाविक अनुपात में संचित किये जाते हैं।

गैसीय प्रदूषकों के मापन की सामान्य विधि यह है कि स्टैक गैस को प्रदूषक के अवशोषण के लिए किसी उपयुक्त अवशोषण माध्यम में से गुजारा जाता है और फिर विश्लेषण विधि से इसकी पहचान की जाती है। विश्लेषण और मापन की मानक विधियाँ भारत के केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा और अमरीका की पर्यावरण रक्षा एजेंसी द्वारा निर्धारित की गई है।

ii) परिवेशी वायु गुणता का मापन

सिद्धान्त रूप में परिवेशी वायु गुणता का मापन भी स्टैक निस्सरण के मापन के समान ही है, अन्तर केवल यह है कि परिवेशी वायु में स्टैक की तुलना में प्रदूषकों के बहुत निम्न सांद्रण पाये जाते हैं इस कारण स्टैक नमूने का आयतन सामान्यतः बहुत अधिक रखना पड़ता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए उच्च मात्रा प्रतिदर्शित्रों का इस्तेमाल किया जाता है। चूँकि परिवेशी वायु गुणता बहुत हद तक जलवायु की स्थिति पर निर्भर है, अतः यह महत्वपूर्ण है कि नमूने एकत्रित करते समय पवन वेग, पवन की दिशा, तापक्रम आदि जैसे विभिन्न मौसमी प्राचलों के मान को भी साथ-साथ उसी समय दर्ज कर लिया जाए। परिवेशी वायु गुणता मापन 8 से 24 घंटे तक की अवधियों तक लगातार किए जा सकते हैं। स्टैक निस्सरण मापन के लिए प्रतिचयन की अवधि प्रदूषकों के सांद्रण पर निर्भर होती है और प्रायः एक घंटे से कम होती है। जबकि परिवेशी वायु में चूँकि प्रदूषकों की मात्रा का अत्याधिक अवसांद्रण हो जाता है इसलिए नियत प्रतिचयन की अवधि भी अधिक रखनी पड़ती है।

22.2.3 वायु गुणता नियंत्रण

क) औद्योगिक

वायु गुणता नियंत्रण का आशय है प्रदूषकों के निस्सरण को सीमित करना। पारम्परिक दृष्टिकोण सामान्यतः "पाइप सिरा दृष्टिकोण" कहलाता है जिसमें यह मान लिया जाता है कि निस्सरण स्रोत से हो रहा है और तब एक प्रदूषक निस्सरण मानकों के अनुरूप एक उपयुक्त उपस्कर डिजाइन किया जाता है और लगाया जाता है तथापि, अधिक युक्तियुक्त दृष्टिकोण यह होगा कि पहले प्रदूषकों का जनन रोका जाए और फिर तकनीकी दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से जो भी रोकथाम संभव हो, उसे किया जाए। उद्योगों से निस्सरित प्रदूषकों के लिए नियंत्रण प्रणाली उनमें उपस्थित प्रदूषकों के प्रकारों पर निर्भर है। निलंबित कणिकीय द्रव्य के नियंत्रण के लिए सबसे अधिक मान्य उपस्कर निम्नलिखित हैं :

- साइक्लोन (चक्रवात)
- स्थिर वैद्युत अवक्षेपित्र
- थैली फिल्टर
- स्क्रबर अथवा मार्जक

i) साइक्लोन (चक्रवात)

प्रदूषण नियंत्रण की यह प्रणाली सबसे अधिक प्रचलित विधि है। यह अपकेंद्री बल से धूल पृथक्करण के सिद्धान्त पर काम करता है। धूल युक्त गैस साइक्लोन में स्पर्श रेखीय (tangentially) रूप में प्रवेश करती है और उसमें चक्कर खाते हुए घूमती है। धूल के कण परिधि पर एकत्रित हो जाते हैं और धूल रहित स्वच्छ वायु राशि साइक्लोन के केंद्रीय अक्ष में से निकल जाती है। साइक्लोन की धूल पृथक्करण की दक्षता सामान्यतः 70-75 प्रतिशत होती है। यदि कणों का आकार 10 माइक्रोन से कम हो तो यह दक्षता कम हो जाती है। आर्द्र (नम) गैस के लिए भी साइक्लोन का उपयोग नहीं किया जा सकता।

ii) स्थिर वैद्युत अवक्षेपित्र

स्थिर वैद्युत अवक्षेपित्रों का थर्मल पावर स्टेशन, सीमेंट उद्योग आदि जैसे बड़े उद्योगों के धूल के पृथक्करण के लिए व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। वे कणों को नीचे बैठाने के लिए उच्च वोल्टीय विद्युत के अनुप्रयोग से धूल को आवेशित करने के सिद्धान्त पर काम करते हैं। स्थिर वैद्युत अवक्षेपित्रों का प्रचालन आसान है और बड़े आकारों में यह बहुत सस्ता पड़ता है। ये 99 प्रतिशत या इससे अधिक की दक्षता से काम करते हैं अर्थात् संयंत्र से निकलने वाली लगभग सभी धूल कणों को अवक्षेपित कर देते हैं।

iii) थैली फिल्टर

थैली फिल्टर के क्षेत्र में आज काफी विकास हो चुका है। ये फिल्टर थैलों से बने होते हैं जिनमें से धूल युक्त गैस गुजारी जाती है। धूल निस्पंदित हो (छन) जाती है और धूल रहित स्वच्छ वायु निकल

जाती है। ये थैले निरन्तर हिलाए जाते रहते है ताकि संग्रहीत धूल कण हटाए जा सकें। विभिन्न प्रकार की धूल के अनुरूप भिन्न-भिन्न टाइप के थैली, फिल्टर उपलब्ध है। थैले द्वारा छन सकने वाली आम सामग्री आजकल सूती कपड़े के कण, पालिएस्टर ग्लास वूल कणिकाएं, टेफलौन, पॉलिएमाइड और सिरेमिक फाइबर आदि के कण होते हैं। अतः इन फिल्टरों का इस्तेमाल सिरेमिक उद्योग, कपास उद्योग, ताप विद्युत उद्योग और वस्त्र उद्योगों में किया जाता है।

iv) स्क्रबर अथवा मार्जक

धूल पृथक्करण की कई अन्य विधियाँ उपलब्ध हैं परन्तु स्क्रबर (मार्जक) का इस्तेमाल गैसीय प्रदूषकों को वायु से पृथक करने के लिए होता है जो इस कार्य को करने के लिए एकमात्र उपस्कर है। दूसरे शब्दों में गैसीय प्रदूषक अधिकतर मार्जन द्वारा ही हटाए जाते है। मार्जकों का इस्तेमाल कणिकीय द्रव्य हटाने के लिए भी किया जा सकता है। मार्जक में यदि अन्वेषीशलाका और जोड़ दी जाए तो इसका इस्तेमाल परिवेशी वायु प्रतिचयन में भी हो सकता है। मूल रूप से मार्जक (scrubber) एक ऐसा उपस्कर है जिसमें वायु एक ऐसे स्थान से गुजारी जाती है जहाँ गीली पैकिंग सामग्री भरी होती है अथवा जल बूँदों की स्प्रे (फुहार) होती है। मार्जन प्रक्रिया में गैसीय प्रदूषक उपयुक्त द्रवों में घुल जाते हैं अथवा गीली पैकिंग में अवशोषित हो जाते हैं जिससे प्रदूषक गैसीय अवस्था से द्रव/ठोस अवस्था में आ जाते हैं। वे द्रव जो धूल कणों और विलेय गैसों को वायु धारा से हटाने के लिए इस्तेमाल किये जाते हैं **मार्जक द्रव** कहलाते हैं। आज विभिन्न प्रकार के मार्जक उपलब्ध हैं, यथा फुहारे टाइप के मार्जक, वेन्चुरी मार्जक, संघट्टन मार्जक आदि। मार्जकों की धूल साफ करने की दक्षता 80 से 98 प्रतिशत के बीच होती है। इसकी मुख्य असुविधा यह है कि गैसीय प्रदूषकों को द्रव/ठोस अवस्था में परिवर्तित करने के दौरान काफी सारे मर्जित द्रव बच जाते हैं और निपटान से पहले उन्हें और संसाधित करना पड़ता है। मार्जन एक महंगी क्रिया है जिसमें पानी और बिजली की बहुत बड़ी मात्रा में खपत होती है।

ख) मोटर वाहन

मोटर वाहनों से निस्सरित होने वाले मुख्य प्रदूषक इस प्रकार हैः

क) कार्बन मोनोऑक्साइड,
ख) अधजले हाइड्रोकार्बन, और
ग) नाइट्रोजन ऑक्साइड।

इनके अलावा, यदि पेट्रोल में सीसे पर आधारित अपस्फोटन-रोधी कारक (TEL) होते हैं, तो सीसे का भी निस्सरण होता है। वाहन निस्सरण का नियंत्रण सामान्य तौर पर निम्नलिखित तरीकों से किया जाता है :

क) अच्छे किस्म का पेट्रोल इस्तेमाल करना, ताकि प्रदूषकों का निस्सरण कम से कम हो।

ख) खासतौर पर ईंधन के पूर्णदाहन के लिए कारबुरेटर की बेहतर ट्यूनिंग करना और इंजन का बेहतर अनुरक्षण करना जिससे कार्बन मोनोआक्साइड, हाइड्रोकार्बन और धुएं का निस्सरण न्यूनतम मात्राओं तक घट जाता है।

ग) विषैली नाइट्रोजन ऑक्साइड का पूर्णदाहन करके उसे निरापद नाइट्रोजन में परिवर्तित करने के लिए वाहनों में उत्प्रेरकी परिवर्तक लगाना। हमारे देश में मानकों के अभाव में नियंत्रण उपाय अभी हाल ही में लागू हुए हैं। जापान, पश्चिमी जर्मनी और अमरीका में यह कानून बहुत समय पहले से लागू हो चुके हैं और इनका पालन करना लाज़िमी है।

22.2.4 वायु गुणता नियंत्रण की आर्थिकी

सारे संसार का एक ही सतत वायुमंडल है। अतः स्पष्ट है कि वायु प्रदूषक किसी एक स्थानीय क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहे, अपितु राष्ट्रीय और यहां तक कि महाद्वीपीय सीमाओं को भी पार कर जाते हैं। प्रसिद्ध उदाहरण है सहारा के रेगिस्तान की धूल का पश्चिमी जर्मनी में पहुंचना और इंग्लैंड में स्थित फैक्टरियों से निकली सल्फर डाइऑक्साइड के निस्सरणों से स्कैंडीनेविया में अम्ल की वर्षा होना। अतः वायु प्रदूषक केवल स्थानीय प्रवासियों को ही क्षति नहीं पहुंचाते बल्कि दूर-दराज के क्षेत्रों में रहने वालों को भी क्षति पहुंचाते हैं।

वायु प्रदूषकों से होने वाला आसन्न खतरा, स्थानीय जनता के स्वास्थ्य के निहित खतरे के रूप में बढ़ जाता है—धूल से श्वास संबंधी बीमारियां हो जाती हैं और गैसीय प्रदूषकों से अन्य कई बीमारियां हो जाती हैं। इनका दीर्घावधिक दुष्प्रभाव तो और भी हानिकारक है। क्लोरोफ्लोरोकार्बनों द्वारा ओज़ोन परत टूटने से सूर्य से आने वाले पराबैंगनी विकिरण की घटनाएं बढ़ जाएंगी। यह विकिरण कैंसर का प्रसिद्ध कारक है। कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य गैसीय प्रदूषकों से हुआ ग्रीन हाउस प्रभाव जैसा आप खंड 10.5.2 में पढ़ चुके हैं. पृथ्वी से विकिरित ऊष्मा की मात्रा कम कर देता है और पृथ्वी का तापमान बढ़ा देता है। सल्फर डाइऑक्साइड अम्ल वर्षा के रूप में (देखें खंड 10.6.7) पृथ्वी पर वापस आ जाता है जिससे उपजाऊ भूमि के विशाल भू-भागों को क्षति पहुंचती है, मृदा अम्लीय और बंजर हो जाती है। अतः स्पष्ट है, कि वायु

को प्रदूषकों से प्रभावित होने देने और फिर इसके दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए उपायों की खोज करने की तुलना में वायु प्रदूषण पर पूर्व नियंत्रण रखना अधिक किफ्रायती है।

चक्रवात (cyclone) के माध्यम से धूल प्रदूषण नियंत्रण पर प्रदूषक गैसों के आयतन के अनुसार यूनिट अधिष्ठापन पर कुछ हजार रुपये से लेकर कुछ लाख रुपयों तक की लागत आती है। निवेश की दृष्टि से **मार्जक** (scrubber) सस्ते तो पड़ते हैं पर पानी और बिजली की अधिक खपत के कारण इनकी प्रचालन लागत अधिक है। देश में ही उपलब्ध थैलों वाले **थैली फिल्टर** बहुत महँगे नहीं है इनकी निवेशी लागत कुछ लाख रुपये तक होती है, लेकिन जिन उद्योगों में विदेशों से आयातित थैलों की जरूरत पड़ती है, इनकी लागत काफी अधिक हो सकती है। इसके अलावा, चूँकि फिल्टर थैली की कार्य अवधि 3 से 4 वर्ष से अधिक नहीं होती, थैली बदलने के रूप में आवर्ती लागत काफी हो सकती है। बड़े थैली फिल्टर लगाने पर कई लाख रुपयों से कई करोड़ रुपयों तक खर्च आ सकता है। **स्थिर वैद्युत अवक्षेपित्र** अधिकतर बड़े प्रतिष्ठानों में इस्तेमाल किए जाते हैं और स्पष्टतः अधिक महँगे हैं। खर्चा करोड़ों रुपयों में होता है। तथापि इनकी प्रचालन और अनुरक्षण लागत अधिक नहीं है।

जापान और पश्चिमी जर्मनी जैसे विकसित देशों के अनुभव से पता चला है कि राष्ट्रीय आधार पर वायु प्रदूषण नियंत्रण की दिशा में जो धन निवेशित किया जाता है उसका कई गुना वापस मिल जाता है। हमारे लिए आवश्यक है कि हम विकसित देशों के अनुभव से सीख लें और अपने देश में भी यह उपाय करें।

बोध प्रश्न 1

i) कॉलम I में दिए गए शब्दों का कॉलम II में दी गई व्याख्याओं से मिलान करें।

कॉलम I	कॉलम II
क) मार्जक	क) प्रदूषक का वह अधिकतम स्तर जो किसी उद्योग/फैक्टरी या थर्मल विद्युत संयंत्र के आसपास के क्षेत्र की वायु संहिति में सहन किया जा सकता है।
ख) मानक	ख) वायु को किसी गीली पैकिंग सामग्री में से गुजार कर साफ करने की युक्ति।
ग) स्टैक निस्सरण मानक	ग) स्वचालित वाहन की निष्कास नली से निकलने के लिए अनुमेय प्रदूषकों के स्तर की अधिकतम उपरिसीमाएं।
घ) वाहन निस्सरण मानक	घ) किसी प्रदूषक का वह अधिकतम सहन स्तर जो किसी उद्योग की चिमनी अथवा किसी थर्मल विद्युत संयंत्र के स्टैक से निकलने के लिए अनुमेय है।
ङ) परिवेशी वायु मानक	ङ) जन साधारण द्वारा सहयता के आधार पर विशिष्ट माध्यमों में अनुभव निर्दिष्ट प्रदूषकों के सांद्रण की अधिकतम सीमाएं अथवा उपरिस्तर जो सार्वजनिक कल्याण को खतरा पैदा नहीं करते हैं।
च) स्थिर वैद्युत अवक्षेपित्र	च) फिल्टर थैलों से बनी युक्ति जिसमें से धूल युक्त वायु गुजारी जाती है। धूल छन जाती (निस्पंदित हो जाती) है और स्वच्छ वायु राशि बाहर निकल जाती है।
छ) थैली फिल्टर	छ) उच्च वोल्टीय विद्युत गुजार कर वायु में से धूल हटाने की युक्ति जिससे धूल कण आवेशित हो जाते हैं और नीचे बैठ जाते हैं।

ii) निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत :

i) सूक्ष्म कणों के अवरुद्धन के लिए साइक्लोन एक उत्कृष्ट युक्ति है। ☐
ii) स्थिर वैद्युत अवक्षेपित्र के प्रचालन में बिजली की खपत बहुत होती है। ☐
iii) थैली फिल्टर सबसे सस्ती धूल संग्राहक युक्ति है। ☐
iv) मार्जकों का इस्तेमाल कणिकीय और गैसीय दोनों प्रकार के प्रदूषकों को हटाने के लिए किया जा सकता है। ☐
v) प्राकृतिक गैस चालित बॉयलरों के मुकाबले भट्टी-तेल चालित बॉयलरों से प्रदूषण अधिक होता है। ☐

22.3 जल गुणता प्रबंध

जल गुणता प्रबंध में बहु विषयक दृष्टिकोण जरूरी है जिसमें जल की गुणता, नगर पालिका, औद्योगिक, कृषि और मनोरंजन संबंधी जरूरतों से संबंधित होती है। अनेक मामलों में पानी की किसी खास गुणता स्तर से होने वाले लाभ और गुणता के इस स्तर को प्राप्त करने की लागत के बीच लागत लाभ अनुपात अवश्य स्थापित किया जाए। चित्र 22.2 में वे विभिन्न घटक दिखाए गए हैं जिन पर जल गुणता का कारगर प्रबंध कार्यक्रम विकसित करते समय विचार किया जाना चाहिए। वांछित जल गुणता प्राप्त करने के लिए सर्वाधिक

किफायती दीर्घावधिक (चिरस्थाई) समाधान निकालने के लिए ही ऐसा कार्यक्रम बनाया जाता है। आइये, हम ऐसे कार्यक्रमों के मुख्य घटकों पर विचार करें जैसे :

i) जल गुणता मानक
ii) जल गुणता मापन
iii) जल गुणता नियंत्रण

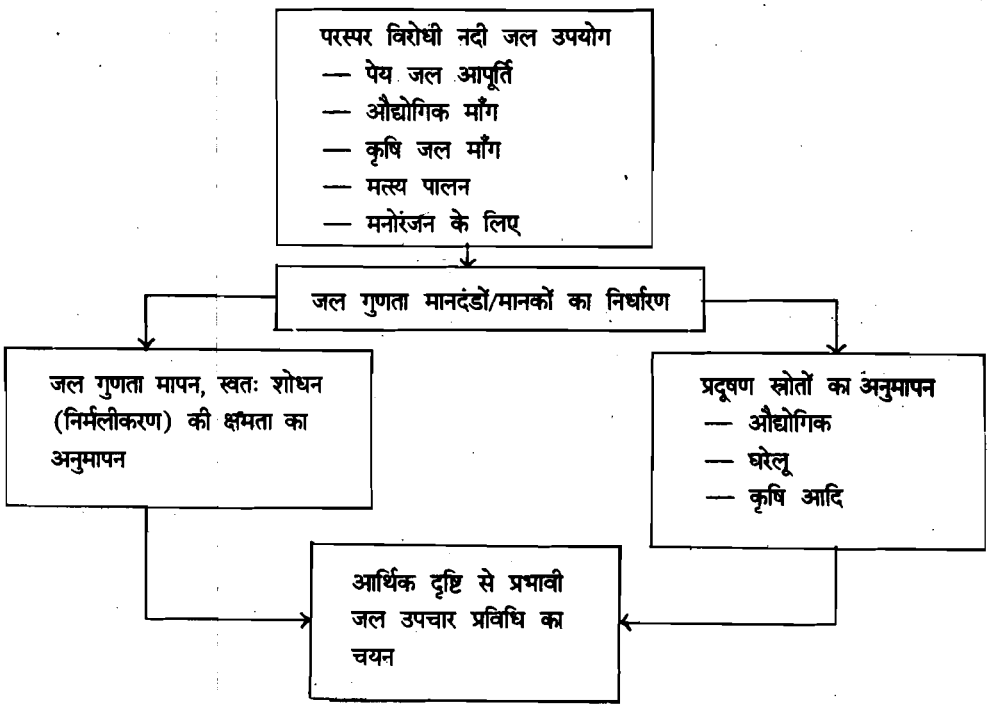

चित्र 22.2 : जल गुणता प्रबंध कार्यक्रम का विकास

बोध प्रश्न 2

इनमें से जल के किस नमूने को **शुद्ध जल** कह सकते हैं?

1) वर्षा का पानी
2) जिस जल का पी एच (pH) मान 7 हो
3) निलंबित कणिकीय द्रव्यों से मुक्त जल
4) मृदु जल
5) उपरोक्त में से कोई नहीं।

22.3.1 जल गुणता मानक

अधिकतर जल गुणता मानक या तो राशि मानकों पर आधारित होते हैं अथवा बहिस्राव मानकों पर। **जल राशिमानक** : राशि मानक सामान्यतः जल के लाभप्रद उपयोगों पर आधारित होते हैं इसीलिए इन्हे **धारा मानक** भी कहते हैं। इन मानकों द्वारा ग्राही जल धारा में अनुमेय विशिष्ट प्रदूषकों का **देहली मान** (threshold value) नियत किया गया है। हमारे देश में प्रवाही जल गुणता के विभिन्न लाभप्रद उपयोगों के लिए अपेक्षित सामान्य मापदंड, केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण परिषद ने 1979 में निर्धारित किए थे। इस प्रयोजन के लिए केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण परिषद ने अलवण जल को निम्नलिखित मुख्य वर्गों में वर्गीकृत किया है :

क) विसंक्रमण के बाद, बिना पारम्परिक उपचार के पीने योग्य जल राशि
ख) तैराकी एवं बाहर स्नान योग्य स्थिर जल राशि
ग) पारम्परिक उपचार और विसंक्रमण के बाद पीने योग्य बनाए जा सकने वाली जल राशि
घ) वन्य जन्तुओं का प्रवर्धन मत्स्य उद्योग
ङ) सिंचाई, औद्योगिक शीतलन और नियंत्रित अपशिष्ट निपटान के योग्य जल राशि

वर्ग "क" के जल निम्नलिखित मानकों की कसौटी पर खरे उतरने चाहिए। ऐसे जल में कम से कम 6 मि.ग्रा./ली. घुली हुई आक्सीजन और अधिकतम 2 मि.ग्रा./ली. जैव ऑक्सीजन मांग होनी चाहिए। उनमें 50 ई. कोलाइ (*E. coli*) प्रति 100 मि.ली. से अधिक नहीं होनी चाहिए और pH (पी एच) मान 6.5 - 8.5 के बीच होनी चाहिए अर्थात् जल न तो खारा होना चाहिए और न खट्टा।

वर्ग "ख" का जल, घर के बाहर स्नान और तैराकी के लिए उपयोगी है और गुणता के वर्ग "क" से कुछ कम कठोर मानदंडों के अनुरूप होना चाहिए। वर्ग "ग" के जल कपड़े धोने के लिए इस्तेमाल किए जा सकते हैं। इन जलों को पारम्परिक अभिक्रिया द्वारा और फिर विसंक्रमित करके पीने योग्य बनाया जा

सकता है। वर्ग "घ" के जलों को वन्य जंतुओं के प्रवर्धन और फिर विसंक्रमित करके पीने योग्य बनाया जा सकता है। वर्ग "घ" के जलों को वन्य जंतुओं के प्रवर्धन और मत्स्य क्षेत्रों के अनुरक्षण में इस्तेमाल किए जाने के लिए अनुमति दी जाती है। अन्तिम वर्ग "ङ" में ऐसे जल आते हैं जो उपर्युक्त प्रयोजनों में से किसी भी प्रयोजन के लिए उपयुक्त नहीं हैं। इन जल राशियों की जैव रासायनिक ऑक्सीजन माँग बहुत अधिक होती है और इनमें बड़ी संख्या में कोलाई रूपी जीवाणु होते हैं तथापि इनका इस्तेमाल सिंचाई और औद्योगिक कार्यकलापों के लिए किया जा सकता है बशर्ते कि ऐसे जल की वैद्युत चालकता 2.250 माइक्रो मो प्रति मि.ली. से अधिक न हो।

केंद्रीय बोर्ड (परिषद) ने इनमें से प्रत्येक वर्ग के लिए पांच **बुनियादी प्राचलों** (parameters) के प्राथमिक गुणता मानदंड निर्धारित किए हैं जैसा तालिका 22.4 में दिखाया गया है।

तालिका 22.4: अलवण जल के विभिन्न उपयोगों के लिए केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण परिषद द्वारा निर्धारित प्राथमिक जल गुणता मानदंड

	प्रयोजन	पीने के लिए	नहाने के लिए	कपड़े धोने के लिए	मत्स्य पालन के लिए	सिंचाई/ उद्योग
क्र.सं.	विशेषता/पैरामीटर	क	ख	ग	घ	ङ
1	विलीन आक्सीजन की न्यूनतम सीमा मि.ग्रा./लि.	6	5	4	4	—
2	जैव रासायनिक आक्सीजन मात्रा की अधिकतम सीमा मि.ग्रा./लि.	2	3	3	—	—
3	कुल अधिकतम कोलाई रूपी जीव XX एम.पी.एन गणनांक/100 मि.ली.	50	500	5000	—	—
4	पी.एच. मान	6.5 - 8.5	6.5 - 8.5	6.9	6.5 - 8.5	6.5 - 8.5
5	अधिकतम वैद्युत चालकता माइक्रो मो./सें.मी.	—	—	—	—	2.250

XX कोलाई गणनांक का अर्थ है जल के इकाई आयतन में विद्यमान **ई. कोलाई** रूपी जीवाणुओं की संख्या। यह जल में विद्यमान अन्य रोगाणुओं की संख्या का सूचकांक माना जाता है क्योंकि **ई. कोलाई** निरपवाद रूप से मानव मल उत्सर्जन के साथ विसर्जित होते हैं। यद्यपि यह स्वयं रोग जनक नहीं है तथापि यह देखा गया है कि जिन जलों में रोगाणुओं की संख्या अधिक है उनमें **कोलाई** रूपी जीवों की संख्या भी सामान्यतः अधिक ही होती है। इस प्रकार निम्न **कोलाई** गणनांक जल के नमूने में रोगाणुओं की निम्न संख्या का सूचक है। यह जल के नमूने के प्रति सौ मिलीलीटर आयतन में उपस्थित **कोलाई** संख्या के अनुसार मापा जाता है।

श्रेणी "क" के जल में घरेलू और औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों का कोई दिखाई देने वाला विसर्जन नहीं होना चाहिए। श्रेणी "ख" और "ग" के दृष्टांत में इस प्रकार उपचारित जल का विसर्जन किया जाना चाहिए कि जल गुणता का स्तर बना रहे। यद्यपि **धारा मानक** प्रत्यक्षतः सर्वाधिक यथार्थ और लाभप्रद उपयोगों पर आधारित होते हैं, तथापि विकसित औद्योगिक और शहरी क्षेत्रों में उन्हें लागू कर पाना कठिन हो जाता है।

बहिस्राव मानक ग्राही जल में विसर्जित अधिकतम प्रदूषण भार (कि.ग्रा./दिन) के प्रदूषक की अधिकतम सांद्रता पर आधारित होते हैं। ये मानक धारा वर्गीकरण पर आधारित हो सकते हैं। जैसे कि पहले चर्चा की जा चुकी है हमारे देश में 1974 में बने जल प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम के अंतर्गत किसी प्रदूषक की अधिकतम सांद्रता (मि.ग्रा./ली.) पर आधारित **बहिस्राव मानक** निर्धारित किए गए हैं। ग्राही माध्यम जैसे खुलीधारा या सीवर या भूमि के अनुसार उपयुक्त निपटान मानक तैयार किए गए हैं। जल प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम प्राथमिक तौर पर राज्य का विषय है। संबंधित राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों (परिषदों) को अपने-अपने मानक जारी करने का अधिकार है लेकिन यह केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण परिषद द्वारा निर्धारित उपरिसीमाओं के भीतर ही होना चाहिए।

22.3.2 जल गुणता मापन

अलवण भूपृष्ठीय जल प्रदूषण संबंध प्रक्रियाओं को समझने के लिए और उन पर नियंत्रण के लिए मात्रात्मक और गुणात्मक मापन अनिवार्य है। उद्देश्यों के अनुसार जल गुणता मापन कार्यक्रम निम्नलिखित में विभाजित किए जाते हैं :

1) **मानीटरिंग** (अनुमापन monitoring): सतत मानकीकृत मापन — जल संसाधनों की विशेषताएं, उपस्थित प्रदूषकों का स्वरूप और उनके संभावी प्रदूषकों को निर्धारित करना।

2) **सर्वेक्षण:** किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए आवश्यक विस्तृत प्रमापन और सर्वेक्षण की स्थितियों के अनुरूप ग्राही माध्यमों की स्वतः शोधन क्षमता पता करने के लिए परिमित अवधि के कार्यक्रमों की श्रृंखला।

3) **चौकसी:** व्यावहारिक कारणों से आर्थिक और मानव, दोनों संसाधनों से संबंधित प्रदूषण नियंत्रण अथवा विशिष्ट प्रबंध प्रयोजनों के लिए सतत प्रेक्षण और मापन करना।

उपर्युक्त तीनों कार्यक्रम प्रदूषकों के परिक्षेपण के विश्लेषण के लिए और नदियों झीलों और जलाशयों में होने वाली स्वतः प्रक्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण हैं। इनके निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :

क) जलगुणता मॉडलिंग के लिए आवश्यक ज्ञान विकसित करने के उद्देश्य से आधारी आंकड़े प्रदान करना,

ख) किसी जल राशि को प्रदूषण से बचाना और भिन्न-भिन्न उपयोगों (पेय जल आपूर्ति, पशुधन को पानी पिलाना, स्नान, मछली पालन और सिंचाई आदि) के लिए जल की गुणता पुनर्स्थापित करना।

मापन के प्राचल

जल गुणता मापन प्रायः जटिल और महंगे होते हैं। अतः आवश्यक है कि उद्देश्यों और संग्रहीत आंकड़ों के उपयोग के विषय में स्पष्ट विचार होना चाहिए। जिन प्राचलों (parameters) को मापा जाना है उन पर विस्तृत विवेचना इस यूनिट के कार्य क्षेत्र से बाहर है तथापि जल स्रोतों के उपयोगों और प्रदूषण के स्रोतों से संबंधित आम पैरामीटरों की सूची एवं गुणता का पुनर्स्थापित कार्यक्रम की योजना बनाते समय इनका इस्तेमाल किया जा सकता है।

प्रतिचयन की अवस्थिति तथा प्रतिचयन की आवृत्ति के विषय में निर्णय करते समय विश्लेषण के रासायनिक तथा अन्य रूपों के अलावा जल राशि के भौतिक स्वभाव पर विचार करना जरूरी है। जल गुणता मापन कार्यक्रम शुरू होने से बहुत पहले हमारे देश की अनेक नदियों में अनेक जल विज्ञान संबंधी आंकड़ा मापन स्टेशन (gauging stations) स्थापित किए जा चुके थे। प्रमापन प्रयोजनों के लिए मापन स्टेशन संगम के पास अथवा नदी की बड़ी अनुप्रस्थ काट के बीच में अवस्थित किया जा सकता है। तथापि हम आपको यह बता दें कि ऐसी संभावना कम होती है कि जलगुणता मापन के लिए वही स्थल सबसे अच्छे स्थान सिद्ध हों जहां पूर्वनिर्धारित स्टेशन स्थित हैं। इसका कारण यह है कि जल के अभिलक्षण ज्ञात करने के लिए इस्तेमाल होने वाले ग्राही जल में प्रदूषकों के जलधारा के अपूर्ण मिश्रण के फलस्वरूप अप्रत्याशित असमांगी विभाजन होता है, इसलिए पूर्वनिर्धारित स्थलों से नमूने इकट्ठे करने पर परिणामों में त्रुटियाँ आ जाती हैं।

22.3.3 गंगा कार्य योजना

अब तक हमने सामान्य रूप में जल गुणता प्रबंध कार्यक्रम के मुख्य घटकों का विवेचन किया है। आइए अब विशिष्ट रूप से यह चर्चा करें कि हमारे देश में सबसे पहली मुख्य नदी की सफाई की योजना बनाते समय कैसे विभिन्न मुद्दों पर विचार किया गया था। गंगा भारत में सबसे पवित्र नदी है। आप इकाई 25 में पढ़ेंगे कि यह नदी भारतीय सभ्यता का पालना है। शताब्दियों से इसके तट पर अनेक मुख्य तीर्थ स्थान स्थापित हुए हैं और विभिन्न धार्मिक उत्सवों के समय लाखों लोग इसमें स्नान करने के लिए आते हैं। गंगा अपने 3,025 कि.मी. लम्बे मार्ग में 27 बड़े नगरों में से गुजरती है। जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या एक लाख से अधिक है, और 73 छोटे नगरों जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या एक लाख से कम है, इनमें से अधिकतर शहरों और नगरों में या तो आंशिक सीवर व्यवस्था है अथवा सीवर व्यवस्था बिल्कुल है ही नहीं। अतः प्रतिदिन लगभग 10 लाख घन मीटर अवशिष्ट जल खुली नालियों में होकर सीधा इस नदी में गिरता है और इस जल को उपचारित नहीं किया जाता। इसके अलावा गंगा के बेसिन में व्यापक रूप से खेती होती है और देश के कुल सिंचित क्षेत्र का 47 प्रतिशत क्षेत्र गंगा के बेसिन में स्थित है। गंगा के बेसिन में कुल वार्षिक वर्षण की तीन चौथाई वर्षा मानसून की जून से सितंबर तक के चार महीनों की अवधि में होती है। अतः जिस साल में वर्षा नहीं होती सिंचाई के लिए नदी का 80-90 प्रतिशत प्रवाह का विपथन दो मुख्य नहरों में कर दिया जाता है। काफी समय से ऐसा चलते रहने के कारण नदी के जल में तीव्र प्रदूषण हुआ है। खासतौर पर नदी के उन भागों में जहां जैव रासायनिक आक्सीजन मांग का स्तर (बी.ओ.डी. स्तर) प्रायः 10-15 मि.ग्रा./लि. रहता है जो कि एक बहुत अधिक मात्रांक है।

1984 में केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने सभी मुख्य प्रदूषकों एवं उनके स्रोतों का पता लगाने के लिए और उनका परिमाण निर्धारित करने के लिए एक व्यापक प्रदूषण सूची का अध्ययन किया। इस अध्ययन के परिणामों के आधार पर गंगा नदी के जल के परिरक्षण के महत्व और जरूरत को मानते हुए भारत सरकार ने 1985 में गंगा कार्य योजना शुरू की। कार्य योजना के प्रथम चरण के दो मुख्य उद्देश्य हैं। प्रदूषण भार को तुरंत कम करना और स्वपोषी अपशिष्ट जल उपचारण संयंत्र स्थापित करना। तदनुसार निम्नलिखित घटकों की पहचान की गई है :

- विद्यमान ट्रंक सीवरों का नवीकरण
- सीवेज प्रवाह के निपटान के लिए अंतरोधनों का निर्माण

- विद्यमान सीवेज पम्पिंग स्टेशनों का नवीकरण और नए अपजल पम्पिंग स्टेशन और मलजल (sewage) उपचार संयंत्र बनाना जिससे अपशेषों की पुनः प्राप्ति पर बल दिया जाए, उदाहरण के लिए, ऊर्जा की पुनः प्राप्ति जिससे उपचार संयंत्रों को प्रचालित किया जा सके और उपचारित अपशिष्ट जल का सिंचाई के लिए इस्तेमाल
- कम लागत के सफाई कार्यक्रमों का कार्यान्वन
- विद्युत शवदाहकों का निर्माण
- नदी के घाटों की सुविधाएं और संबंधित सुधार।

प्रथम चरण में, ऊपर बताए गए संबंधित सुधार और समग्र ढांचे के भीतर 27 बड़े शहरों के लिए 262 विभिन्न परियोजनाएं शुरू की गई हैं, क्योंकि केवल यही शहर 70 प्रतिशत से अधिक प्रदूषण भार के लिए जिम्मेदार हैं। इन 262 योजनाओं की अनुमानित लागत 260 करोड़ रु. है।

साथ ही, उन औद्योगिक इकाइयों की सूची बनाई गई जो अपना अपशिष्ट जल नदी में विसर्जित करते हैं। परिणामस्वरूप 68 यूनिटों को अत्यधिक प्रदूषणकारी माना गया क्योंकि ये प्रतिदिन 1000 कि. लीटर से अधिक अपशिष्ट जल पानी में छोड़ती हैं। इन सभी यूनिटों को निर्देश दिए गए कि वे अपशिष्ट जल उपचारण संयंत्र बनाएं और जल प्रदूषण नियंत्रण अधिनियमों का पालन करें।

गंगा कार्य योजना का समग्र उद्देश्य है न्यूनतम 5 मि.ग्रा./लि. घुलित आक्सीजन और अधिकतम 3 मि.ग्रा./लि. जैव रासायनिक आक्सीजन मांग का जल गुणता मानक प्राप्त करना। अर्थात् जल की यह राशि कम से कम स्नान योग्य तो होनी चाहिए। गंगा कार्य योजना के प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए इन भिन्न-भिन्न स्थानों पर नियमित रूप से जल गुणता अनुमापित की जाती है। ऐसा ऋषिकेश से शुरू करके उलबेरिया तक किया जाता है। इन स्थानों में महीने में एक बार 42 भिन्न-भिन्न भौतिक रासायनिक प्राचलों का अनुमापन किया जा रहा है।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

i) जल गुणता मापन कार्यक्रम में जलराशि के भौतिक अभिलक्षणों पर विचार करना जरूरी है।

ii) जल विज्ञान संबंधी आंकड़ा मापन स्टेशन अथवा पूर्वनिर्धारित प्रमापन स्टेशनों की सभी अवस्थितियां जल गुणता मापन के लिए भी सबसे अच्छी अवस्थितियां सिद्ध होती हैं।

iii) अच्छी तरह बनाए गए जल गुणता मापन कार्यक्रम से प्राप्त परिणामों में विश्लेषण संबंधी त्रुटियों, प्रतिचयन अवस्थिति, प्रतिचयन आवृति आदि से जनित कोई अनिश्चितता नहीं होती।

22.4 भूमि प्रबंध

इकाई 6 से आप को याद होगा कि मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही वह अपनी खाद्यान्न चारा और ईंधन की जरूरतों को भूमि का इस्तेमाल करके ही पूरी करता आ रहा है। जैसे-जैसे वर्ष गुजरते जा रहे हैं, मानव समाज और चरने वाले पशुओं पर दबाव बढ़ता जा रहा है और साथ ही प्राकृतिक संसाधनों की माँग भी बढ़ती जा रही है। इन दबावों और मांगों से भूमि का वनस्पतिक आवरण नष्ट होता चला जाता है। इससे मृदा का तेजी से कटाव होता है और मृदा से पोषक तत्व लुप्त हो जाते हैं और बड़े-बड़े भू-भाग अकृष्य बन जाते हैं। यह अविश्वसनीय भले ही लगता हो पर सच्चाई यह है कि भारत की 40 प्रतिशत भूमि निम्नकोटिकृत है और किसी भी कृषि प्रयोजन के लिए अनुपयोगी है। भारत मूलतः कृषि प्रधान देश है। लेकिन हमारे देश में कृषि भूमि का आधा क्षेत्र निम्नकोटिकृत है; उसकी उपादेयता जितनी होनी चाहिए उससे कम है।

अतः ऐसी भूमि, जो कृषि अथवा नकदी फसलें उगाने के लिए अलाभकर हो, पड़ती छोड़ दी जाती है। इससे मूल्यवान नवीकरणीय संसाधन मृदा की बर्बादी होती है। हमारे देश में उपलब्ध कुल कृषि भूमि क्षेत्र 1430 लाख हैक्टेयर है। जिसमें से लगभग 800 लाख हैक्टेयर निम्नकोटिकृत कृषि क्षेत्र है। अधिकतम निम्नकोटिकृत क्षेत्र मध्य प्रदेश में है—लगभग 2 लाख हैक्टेयर।

निम्नकोटिकृत भूमि कई प्रकार की हो सकती है। यह गली अपरदन या खड्ड भूमि के रूप में निम्नकोटिकृत हो सकती है, यह लवण प्रभावित हो सकती है, यह खनन अथवा औद्योगिक कार्यकलापों के कारण निम्नकोटिकृत हो सकती है अथवा यह खड़ी ढाल पर होने वाली कृषि के फलस्वरूप भूक्षरण के कारण निम्नकोटिकृत हो सकती है। हमारे देश में अनेक प्रकार की निम्नकोटिकृत भूमि है जिनके बारे में आप इकाई 8 में पहले ही पढ़ चुके हैं। मिट्टी के कटाव की प्रक्रिया में यदि एक बार उर्वर मृदा आवरण नष्ट हो जाए तो उर्वरता पुनः प्राप्त करने के लिए मृदा बनने की प्राकृतिक प्रक्रिया में बहुत लम्बा समय लगता है। इसमें कुछ वर्ष, दशक या कभी-कभी शताब्दियां भी लग सकती है। उदाहरण के लिए, एक 2.5 से.मी.

गहरी मृदा की परत 100 से 2500 तक वर्षों में बन पाती है।

उर्वरक भूमि खाद्यान्न, चारा, इमारती लकड़ी, प्राकृतिक फाइबर उत्पादन आदि की मांग पूरी करती है। चूंकि इन अनिवार्य मदों की मांग बढ़ती रहती है, उर्वरक भूमि की मांग भी बढ़ती रहती है। लेकिन त्रासदी यह है कि भूमि का बहुत बड़ा क्षेत्र अनुपयोगी हो गया है जिसका एक मात्र कारण है अनुपयुक्त उपयोग। अतः भूमि उपयोग के लिए उपयुक्त योजना अनिवार्य है। साथ ही मृदा और भूमि के प्रदूषण को भी रोका जाना चाहिए। यही नहीं हमें भूमि उद्धार द्वारा वर्तमान उपलब्ध भूमि की गुणता में भी सुधार करना है। जब प्रदूषक भूमि पर विसर्जित किए जाते हैं उनमें से कुछ भूमि में विद्यमान जीवों की गतिविधियों के द्वारा हानि रहित उत्पादों में अपघटित हो जाते हैं क्योंकि ये स्थिर नहीं होते। उदाहरण के लिए, जैव अपशिष्ट अधिक चिन्ताकारक नहीं हैं क्योंकि ये बहुत समय तक मृदा में नहीं रहते। मृदा में विद्यमान सूक्ष्म जीवों की मदद से ये सरल हानिरहित यौगिकों में बहुत समय तक ऐसे ही बने रह सकते हैं। पर यदि प्रदूषित मृदा का उपयोग फसल उगाने के लिए किया जाए तो इन प्रदूषकों से पौधों की बढ़त पर दुष्प्रभाव पड़ सकता है और यह प्रदूषण पौधों में प्रवेश कर के खाद्यान शृंखला का अंश भी बन सकते हैं।

22.4.1 भूमि गुणता सुधारने के तरीके

निर्वनीकरण के परिणामस्वरूप भूमि का कटाव होता है पानी की उपलब्धता कम हो जाती है और वर्षा अनियमित हो जाती है। बाढ़ आना एक सामान्य घटना हो जाती है और मृदा के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। इन सबके कारण कृषि उत्पादन कम हो जाता है। इसी प्रकार जब शहरों का आमाप बढ़ता है तो कृषि भूमि अथवा वन भूमि की ही बलि चढ़ती है साथ ही उद्योग, राजमार्ग, बांध आदि भी विशाल कृषि भूमि अथवा वन भूमि पर ही बनाए जाते हैं। वन क्षेत्रों की कटाई से वन्य जंतुओं को भी खतरा पैदा हो गया है।

अधिक अन्न उगाने के लिए और खाद्यान्न तथा अन्य अनिवार्य कृषि मदों की बढ़ती हुई मांग पूरी करने के लिए भूमि की गुणता सुधारना अनिवार्य है। बड़े पैमाने पर रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। रासायनिक उर्वरक मृदा और भूमि की गुणता तो सुधार सकते हैं पर ये महंगे पड़ते हैं। साथ ही रासायनिक उर्वरकों के अधिक इस्तेमाल से प्रवाह के परिणामस्वरूप जलराशि का अतिपोषण होता है। अन्य विकल्प खोजना होगा। भूमि सुधार के लिए सबसे अच्छा विकल्प प्राकृतिक सम्पदा का उपयोग है।

जैव कृषि

जैव उत्पाद की मात्रा और अपशिष्ट उत्पादों के रूप में जैव उर्वरक मृदा को न केवल पोषक पदार्थ प्रदान कर सकते हैं, अपितु ह्यूमस की मात्रा भी बढ़ा सकते हैं। इनसे पौधों की बेहतर वृद्धि होगी। जैव मात्रा का उपलों के रूप में ईंधन के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यदि इनका इस्तेमाल मृदा की गुणता सुधारने के लिए किया जाए तो लाभ अधिक नहीं होंगे। खालिस गोबर का खाद के रूप में उपभोग उचित नहीं है क्योंकि गोबर अगर खालिस होगा तो इसमें दीमक लग जाएगी जो इस क्षेत्र में उगने वाली वनस्पतियों की जड़ों को खा जाएगी। काम्पोस्टीकृत गोबर में दीमक नहीं लगती और इसमें पोषक पदार्थ उपस्थित होते हैं। गोबर को कम्पोस्ट करने के लिए पहले इसे जैव गैस जैसे गोबर गैस बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है और फिर अपघटित उत्पाद का खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस प्रकार केवल स्वच्छ तरीके से ऊर्जा की मांग ही पूरी नहीं होगी बल्कि गोबर के उर्वरक मान का भी उपयुक्त तरीके से इस्तेमाल किया जा सकेगा।

भूमि संरक्षी फसलें

भूमि की गुणता सुधारने का एक अन्य तरीका है पौधों की ऐसी जातियां उगाना जिनसे मृदा में पोषक पदार्थ बढ़ते हैं। सामान्यतः पौधे मृदा से पोषक पदार्थ चूसते हैं। पर पौधों की कुछ खास जातियां ऐसी भी हैं जो वातावरण से नाइट्रोजन ग्रहण कर यौगिकृत करते हैं और मृदा में मिला देते हैं। ये पौधे मुख्यतः फलीदार ग्रुप के होते हैं। ये जातियां बहुत घटिया मृदा पर भी उग सकती हैं और फिर से मृदा में सुधार करती है। अतः यदि हमारे पास ऐसा भूक्षेत्र है जिसमें नाइट्रोजन बहुत कम है तो हमें वहां कुछ एकवर्षीय फलीदार पौधे जैसे मटर, मटरी, ढैन्चा, चांदनी आदि लगाने चाहिए। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि इन पौधों के पादप अंशों की अधिकतम मात्रा मृदा में मिलने दी जाए। थोड़े समय में ही मृदा में इस सीमा तक सुधार हो जाएगा कि वहां अन्य फसलें सफलतापूर्वक उगाई जा सकेंगी। भाग 8.4.1 में हरी खाद के विषय में आप अवश्य पढ़ चुके होंगे।

मिश्रित फसलें

इस तकनीक में एक और परिवर्तन किया जा सकता है। फलीदार फसलें भूमि पर अन्य फसलों के साथ एकांतर क्रम से वर्ष के अलग-अलग भागों मे उगाई जा सकती है। इसे फसल चक्रण कहा जाता है। इस प्रकार एक फसल से पोषक पदार्थ अवशोषित किए जाते हैं और दूसरी फसल यह हानि पूरी कर देती है। धीरे-धीरे भूमि की गुणता में सुधार होता है। अन्य परिवर्तन हैं "मिश्रित फसलें"। इस विधि में यही गैर-फलीदार और फलीदार फसलें मिश्रित रूप में उसी क्षेत्र में साथ-साथ उगाई जाती है। इस प्रकार एक फसल मृदा से पोषक पदार्थ सोखती है और दूसरी उसे प्रदान करती है।

लवण मृदारागियों का इस्तेमाल

अत्यधिक सिंचाई से भी भूमि की गुणता का निम्नकोटिकरण हो सकता है। अत्यधिक सिंचाई (जैसा आपने खंड 8.4.3 में पढ़ा है) से प्रायः मृदा का लवणीकरण अथवा क्षारी भवन हो जाता है। सिंचाई का जल वाष्प बनकर उड़ जाता है और अवक्षिप्त लवण पीछे रह जाते हैं। हमारे देश में बहुत बड़े क्षेत्र लवणता अथवा क्षारीयता से प्रभावित हैं। दोनों से प्रभावित मृदाओं को लवण प्रभावित मृदा कहते हैं। यदि मृदा एक बार लवण प्रभावित हो जाए तो वह कृषि के लिए लगभग अनुपयोगी हो जाती है। अर्थात् वहां फसलें सफलतापूर्वक नहीं उगती। ये क्षेत्र आमतौर पर पड़ती छोड़ दिए जाते हैं। लेकिन इन मृदाओं का मुख्य रूप से विशेष प्रकार के पौधे (लवण मृदारागी प्रजातियों) उगाकर उद्धार किया जा सकता है। ये पौधे लवणता अथवा क्षारीयता को सहन कर सकते हैं। जब ये प्रजातियाँ अथवा पौधे यहां उगते हैं मृदा की स्थिति बेहतर हो जाती है और अन्ततः अन्य जातियां भी उगाई जा सकती हैं। वे अन्यथा अनुर्वर मृदाओं पर आवरण प्रदान करते हैं क्योंकि वै बेहतर रूप से जीवित रहते हैं और मृदा का तेजी से सुधार करते हैं और पशुधन के लिए चारा घास भी प्रदान करते हैं।

हवाई रोपण

निम्नकोटिकृत भूमि का बड़े पैमाने पर सुधार करने के लिए सरकार ने पर्यावरण और वन मंत्रालय के अधीन एक अलग कार्यक्रम बनाया है। इसका नाम "राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास मिशन" है। यह मिशन लोगों को प्रशिक्षण देने, रोपण करने, निम्नकोटिकृत भूमि को उपयोग में लाने के लिए बाग लगाने और वनरोपण के लिए तथा यदि वे अन्न उपजाने के लिए इस्तेमाल नहीं की जा सकी तो वहां ईंधन की लक़ड़ी चारा आदि उगाने के लिए धन प्रदान करता है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक वनों, घास स्थल और चरागाहों पर चराई का दबाव कम किया जा सकता है। इससे भूमि का कटाव तथा आगे और निम्नकोटिकरण भी रुक सकता है। विभिन्न स्थलों के लिए हवाई जहाज से बीज बोने की पद्धति अपनाई जाती है। बीज और थोड़ी मात्रा में उर्वरक को छोटे-छोटे पैकेटों के रूप में बाँध कर वर्षा से ठीक पहले वायुयानों से छिड़क दिए जाते हैं और फिर उन्हें उगने दिया जाता है। धीरे-धीरे निम्नकोटिकृत भूमि उपादेय क्षेत्र में बदल जाती है। ऐसा ही एक प्रयत्न इस्लामाबाद की पहाड़ियों पर प्रयोगात्मक रूप से भूमि उपयोग योजना में किया गया है और कुछ हद तक सफलता प्राप्त हुई है।

भूमि का उपयोग किस प्रकार किया जाना है इस संबंध में पहले से ही योजना बनाना जरूरी है। उदाहरण के लिए, शहर, राजमार्ग, सड़क, बांध, निम्नकोटिकृत (कृषि के लिए अनुपयोगी) भूक्षेत्रों पर ही बनाए जाने चाहिए। ये अपेक्षाएं कृषि को और वानिकी को यथासंभव कम से कम बाधा पहुंचाए बिना पूरी की जानी चाहिए। शहरों को इष्टतम सीमा से अधिक विस्तार की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। उद्योग उस भूमि पर लगाए जाएं जो अन्यथा अनुपयोगी है। कृषि उत्पादन बेहतर फसल प्रबंध उपाय और नई प्रौद्योगिकियां अपनाकर बढ़ाया जाए न कि इसके लिए वनों की कटाई करके और अधिक क्षेत्र कृषि के अधीन लाया जाए। शहरों और कस्बों के आसपास की पड़ती भूमि इनसे महंगी हो सकती है। इस प्रकार प्रवृति यह है कि लोग इन जमीनों का कृषि के अलावा अन्य उपभोग करते हैं। यह प्रवृति रोकी जानी चाहिए।

भूमि उपयोग में भूमि की क्षमता भूमि की गुणता और इसके लाभकर उपयोग पर भी विचार किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि हम घटिया किस्म की जमीन का उपयोग खेती के लिए करेंगे, तो उस पर खर्चा अधिक आएगा और उत्पादन कम होगा। लेकिन वही जमीन वृक्षों की घासों की या झाड़ियों की ऐसी जातियां उगाने के लिए इस्तेमाल की जा सकती है जो ईंधन चारा या फाइबर के रूप में उपयोग में लाई जा सकती हैं। ऐसी पद्धति अपनानी चाहिए क्योंकि इससे अधिक लाभ होगा और अन्य भूक्षेत्रों पर दबाव कम होगा। कृषि की भी उपयुक्त योजना बनाना अनिवार्य है। मिश्रित या फसल चक्रण पद्धतियां अपनाई जानी चाहिए। सिंचाई की वैज्ञानिक दृष्टि से योजना बनाई जाए। अत्यधिक सिंचाई से बचा जाए और जल निकासी की उपयुक्त व्यवस्था की जाए अन्यथा भूमि लवण प्रभावित हो जाएगी। जिन भू-क्षेत्रों में कुछ भी नहीं उग सकता वे भवन, सड़कों, फैक्टरियों आदि के लिए निर्दिष्ट कर दिए जाएं।

22.4.2 भूमि प्रदूषण रोकने के उपाय

भूमि प्रदूषण रोकना जरूरी है। आपने इकाई 13 में पढ़ा है कि यदि भूमि अनुपयुक्त अपशिष्ट निपटान इत्यादि के कारण प्रदूषित हो जाए तो इससे केवल पौधों और फसलों की वृद्धि पर ही दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि और समस्याएं भी पैदा होंगी। अपवाही जल के साथ जब प्रदूषक रिसकर जमीन की परतों के नीचे पहुँचेंगे तो भूमिगत जल प्रदूषित हो सकता है। साथ ही जैसा पहले बताया जा चुका है प्रदूषक फसलों में प्रवेश कर सकते हैं और फिर खाद्य शृंखला में पहुँच सकते हैं। यदि कोई रसायन आसानी से अपघटित नहीं हो सकता तो इससे तीव्र समस्याएं पैदा हो सकती हैं। आपने इकाई 11 में डी.डी.टी. द्वारा उत्पन्न समस्याओं के बारे में जरूर पढ़ा होगा। यह बहुत अधिक इस्तेमाल होने वाला पीड़कनाशी है। अधिस्थानी धातुएं भी सामान्यतः विषैली होती है और अपघटित नहीं होती। इसलिए वे खाद्य शृंखला में प्रवेश कर जाती है और उच्च पोषण स्तर पर स्थित जीवों के लिए जिनमें मनुष्य भी शामिल हैं समस्याएं पैदा करती हैं। इसी प्रकार

वायु प्रदूषण भी नियंत्रित किया जाना चाहिए क्योंकि वायु में निस्सरित प्रदूषक अन्ततः नीचे बैठ जाते हैं और इनमें से अधिकतर जमीन पर गिरते हैं और मृदा को प्रदूषित करते हैं। उदाहरण के लिए आपने देखा होगा कि थर्मल विद्युत संयत्र या किसी बड़ी फैक्टरी के पास की भूमि चिमनियों से वायु में विसर्जित प्रदूषकों से प्रदूषित हो जाती है, यदि वहां पर्याप्त प्रदूषण नियंत्रण उपस्कर उपलब्ध न हों। वायु से वह प्रदूषक वर्षा के साथ नीचे बैठ जाते हैं। खासतौर पर सीसा वर्ग के प्रदूषक अत्यधिक खतरनाक वायु प्रदूषण साधन हैं। इनमें से अधिकतर मृदा में पहुंच जाते हैं। आप टैल (TEL) सीसे से उत्पन्न समस्याओं के विषय में पढ़ ही चुके हैं। इससे दिमाग को क्षति पहुंच सकती है, कैंसर हो सकता है और मृत शिशु पैदा हो सकते हैं आदि। जैसा आप इकाई 18 में पढ़ चुके हैं। सीसा पेट्रोल में संयोजी के रूप में भी इस्तेमाल होता है। जब हम अपनी कारों-स्कूटरों में पेट्रोल का इस्तेमाल करते हैं सीसा वायु में विसर्जित हो जाता है (देखें भाग 10.2.2)। वहां से यह मृदा पर बैठ जाता है और खाद्य शृंखला में प्रवेश कर जाता है।

आपने इकाई 12 में पढ़ा है कि मृदा प्रदूषण निम्नलिखित विभिन्न कारकों से हो सकता है :

क) पीड़क जीव नाशी रसायन
ख) अधिस्थानी धातुएं
ग) धातुओं के अकार्बनिक लवण और अन्य तत्व
घ) रेडियो सक्रिय पदार्थ

इनमें से रेडियो सक्रिय पदार्थ सीमित महत्व के हैं क्योंकि इनका बड़े परिमाण पर उपयोग नहीं होता और रेडियो सक्रिय सामग्री के विनिर्माण बिक्री और उपयोग पर कड़ा नियंत्रण है। तथापि दुर्घटनावश ये पदार्थ पर्यावरण में जा सकते हैं।

ऐसे रसायन प्रभाव में विषैले भी होते हैं। जब ये रसायन मृदा में मिल जाते हैं तो समस्याएं पैदा कर देते हैं। अतः भूमि प्रदूषण रोकना अनिवार्य है। यदि सभी स्तरों पर पर्याप्त प्रदूषण नियंत्रण उपाय अपनाएं जाएं तो यह संभव है। उदाहरण के लिए, ठोस अपशिष्ट पदार्थ और तरल अपशिष्ट पदार्थ निपटान से पहले उपयुक्त तरीके से अभिक्रियित कर लिए जाएं (देखें भाग 13.4.2, 22 3.4 और 22.2.3) तो इन अपशिष्ट पदार्थों में विद्यमान प्रदूषकों को अवमलजल (sewage) उपचार से समाप्त किया जा सकता है।

अतः भूमि प्रदूषण रोकने के लिए, प्रदूषण पर वर्तोमुखी नियंत्रण अनिवार्य है। इसके लिए सरकार ने अनेक कानून पास किए हैं जैसे जल प्रदूषण निवारण और नियंत्रण अधिनियम 1974, वायु प्रदूषण निवारण और नियंत्रण अधिनियम 1981। बाद में इन अधिनियमों को और कारगर बनाने के लिए इनमें संशोधन किए गए। भारत सरकार के पर्यावरण और वन मंत्रालय, केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को भूमि प्रदूषण सहित सभी तरह के प्रदूषणों के नियंत्रण को अधिशासनिक शक्तियां दी गई हैं। लेकिन यह जरूरी है कि अपने देश को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए हम सब मिलकर प्रयास करें।

बोध प्रश्न 4

i) निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :
   क) मानव जनसंख्या में वृद्धि से भूमि पर दबाव बढ़ जाता है।
   ख) हमारे देश में इस समय भूमि कटाव कोई मुख्य समस्या नहीं है।
   ग) मृदा में विद्यमान प्रदूषकों का पौधों की वृद्धि में कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।
   घ) भूमि के उपयुक्त उपयोग से उर्वर भूमि अनुपयोगी भूमि बन जाती है।
   ङ) निम्नकोटिकृत भूमि का सबसे बड़ा क्षेत्र मध्य प्रदेश में है।

ii) निम्नकोटिकृत भूमि की पांच भिन्न-भिन्न श्रेणियां बताएं।

.....

.....

.....

.....

.....

22.4.3 वन प्रबंध

वनों से विभिन्न प्रकार के वन्य जन्तुओं, पक्षियों, कीड़े मकोड़ों और सूक्ष्म जीवों को केवल खुराक और बसेरा ही नहीं मिलता बल्कि वन जलवायु की स्थिरता बनाए रखने और वर्षा लाने आदि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। साथ ही, वृक्षों, पशुओं और सूक्ष्म जीवों की जो विभिन्न जातियां वन्य जीवन के अंतर्गत आती हैं, उनमें असंख्य जीन होते हैं जिनकी उपयोगिता पहले ही सिद्ध हो चुकी है अथवा सिद्ध होने की संभावना है।

हमारे देश को इन संसाधनों के अनुपयुक्त प्रबंध के कारण पहले ही काफी हानि उठानी पड़ी है। वन्य जन्तुओं की कई प्रजातियां वन आवरण नष्ट हो जाने के कारण लुप्त हो गई होती। अतः सातवीं पंचवर्षीय योजना

में यह सोचा गया कि वन अवरण पुनः प्राप्त करने को उच्चतम प्राथमिकता दी जाए। जिसका उद्देश्य यह होना चाहिए कि देश का 33 प्रतिशत क्षेत्र स्वच्छ वन आवरण के अधीन लाया जाए।

i) वन कटाई और प्रबंध

अभी हाल ही तक प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में हस्तक्षेप करने की हमारी क्षमता काफी सीमित थी। प्राकृतिक पुनर्जनन इन हस्तक्षेपों पर काबू पा जाते थे। आधुनिक वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय विकास से मनुष्य को यह क्षमता प्राप्त हो गई है कि वह बहुत बड़े पैमाने पर परिवर्तन कर सकता है। उदाहरण के लिए, 19वीं शताब्दी में किसी बड़े पेड़ को काटने में कई श्रमदिवस लगते थे। आज अकेला आदमी आधुनिक मशीनों का इस्तेमाल करके एक ही दिन में अनेक वृक्ष काट सकता है। यही कारण है कि हमें यह जानना और आवश्यक हो गया है कि वनों का वैज्ञानिक दृष्टि से प्रबंध किस प्रकार करें। प्रयास किए जाने चाहिए कि वन मिश्रित आयु और आकार के पौधों के साथ बने रहें। जटिल वनस्पतिक संरचना बनाए रखना जरूरी है। यदि वनों के ऐसे खंड हैं जो एक दूसरे से अलग हैं तो विभिन्न खंडों के बीच गलियारे बनाए रखे जाए ताकि इन खंडों की निरन्तरता बनी रहे। जब कटाई की जा रही हो तो हमें निवृक्षीकरण (क्लियर कट) तकनीक से बचना चाहिए। इस तकनीक में सारे वृक्ष काट दिए जाते हैं ताकि भूमि साफ हो जाए। तब नए वृक्ष लगाए जाते हैं, उनमें उर्वरक दिए जाते हैं और उनका अनुरक्षण किया जाता है जब वृक्ष परिपक्व हो जाते हैं उन्हें पुनः काटा जाता है और यह प्रक्रिया दोहराई जाती है। यह तकनीक अधिक किफायती तो है पर इसमें भूमि के कटाव की समस्याएं पैदा होती हैं। यही कारण है कि निवृक्षीकृत वनों को सदा भूमि के कटाव की आशंका रहती है। इसका विकल्प यह है कि केवल चुने हुए परिपक्व वृक्ष ही निश्चित अन्तरालों पर काटे जाएं। अन्य वृक्षों को वहां न उगने दिया जाए। अतः भूमि और मृदा को नग्न कभी नहीं छोड़ा जाए। निस्संदेह, इस प्रक्रिया की लागत अधिक है, पर तकनीकी दृष्टि से यह अधिक दुरूस्त है।

एक मुद्दा यह भी है कि वनों में सदा मिश्रित प्रकार के पेड़-पौधे होने चाहिए। केवल एक प्रजाति का आधार उचित नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि उस एकमात्र प्रजाति के लिए कोई समस्या उठ खड़ा हुई तो पूरा वन ही नष्ट हो सकता है। साथ ही मिश्रित प्रकार के वनों से पशुओं को खाना, आश्रय आदि कहीं बेहतर तरीके से मिलता है। यही नहीं, सदा आवरण सारे साल बना रहेगा। कुछ प्रजातियों के पत्ते गिर रहे होंगे और कुछ के हरे होंगे। वन प्रबंध में जंगल की आग पर नियंत्रण भी शामिल होता है।

ii) सामाजिक वानिकी

एक प्रबंध पद्धति यह है कि वन रोपण होने दिया जाए और सामाजिक वानिकी ऐसा ही एक दृष्टिकोण है। सामाजिक वानिकी के पीछे भावना यह है कि समाज की मांगों को पूरा करने के लिए समाज की सहायता से वनों का निर्माण। सामाजिक वानिकी ग्रामीण जनसंख्या को जलाने की लकड़ी चारा, लघु इमारती लकड़ी और लघु वन उत्पाद की पूर्ति के लिए वृक्ष लगाने के कार्यक्रमों के लिए प्रयुक्त होती है। सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के मुख्यतः तीन घटक हैं (क) फार्म वानिकी; किसानों को निःशुल्क अथवा इमदादी दरों पर पौद बांटकर उन्हें अपने खेतों में पेड़ लगाने के लिए प्रोत्साहित करना, (ख) समाज की जरूरतों के लिए वन विभागों द्वारा खासतौर पर सड़कों, नहरों के किनारे और अन्य सार्वजनिक जमीनों पर लगाए गए वृक्षक्षेत्र, और ग) सामुदायिक वृक्षक्षेत्र; समुदायों द्वारा स्वयं अनुप्योगी जमीनों पर लगाए गए वृक्षक्षेत्र जो वह आपस में बाँट लेते हैं सामाजिक वानिकी का उद्देश्य ऐसी किसी भी उपलब्ध भूमि पर वन उगाना है जिस भूमि का उपयोग अन्य किन्हीं प्रयोजनों के लिए नहीं लिया जा रहा है। अतः जो जरूरतें प्राकृतिक वनों द्वारा पूरी होती हैं वे इन वनों द्वारा भी पूरी की जा सकें जिससे प्राकृतिक वनों पर दबाव कम हो। इससे प्राकृतिक वनों को निम्नकोटीकरण से बचाया जा सकेगा और बंजर जमीनों का सोद्देश्य उपयोग किया जा सकेगा।

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम राज्यों द्वारा शुरू किए गए हैं। 1976 से मध्य प्रदेश में बस्तर में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। गांवों के पास वनों के परित्यक्त खंडों पर फलों के वृक्ष और अन्य आर्थिक रूप से उपयोगी प्रजातियों के वृक्ष लगाए जा रहे हैं। 1983 में बस्तर में और मध्य प्रदेश के अन्य भागों में सामाजिक वानिकी के क्षेत्र में एक नया दृष्टिकोण अपनाया गया। हितग्रही योजना के अंतर्गत एक गांव के सबसे गरीब 60 परिवारों का चयन किया गया और फलों के वृक्ष उगाने के लिए प्रत्येक परिवार को एक हेक्टेयर परित्यक्त जमीन दी गई। वन विभाग ने पौद बाड़ाबंदी और अन्य आपेक्षित सामग्री उपलब्ध कराने की व्यवस्था की। इस प्रकार वन विभाग द्वारा भूमिहीन किसानों को दिए गए प्रोत्साहन से सामाजिक वानिकी में अत्यधिक वृद्धि हुई है। खासतौर पर यह सोचा जाता है कि लकड़ी तो बीते दिन का ईंधन है। जैव मात्रा अर्थात् जीवधारियों, चाहे वे पौधे हों या पशु हों, से प्राप्त सामग्री के उपयोग से कोयला, गैस, मिट्टी का तेल जैसे जीवाश्मी ईंधनों और अन्य पेट्रोलियम उत्पादों की पूर्ति पाकर उपलब्धता पर दबाव कम होगा। अतः हमारे देश के लिए जरूरी है कि हम ईंधन के लिए अधिक से अधिक जैव मात्रा का इस्तेमाल करें। ग्रामीण क्षेत्र में पहले से ही 94.5 प्रतिशत पकाने की क्रिया में जैव मात्रा पर आधार ईंधन का इस्तेमाल किया जाता है। शहरी क्षेत्र में भी 58 प्रतिशत से अधिक पाक क्रिया जैव उत्पादों को जलाकर की जाती है। अनुमान है कि हमारे देश के लिए ईंधन की लकड़ी की प्रति वर्ष मांग निकट भविष्य में लगभग 30 करोड़ टन होगी क्योंकि हम इतनी विशाल जनसंख्या के लिए कोयले, मिट्टी के तेल या पेट्रोलियम गैस की

व्यवस्था नहीं कर सकते। इकाई 21 में आप पढ चुके हैं कि जैव मात्रा से यथासंभव सबसे अच्छे तरीके से ऊष्मा का उपयोग करने के लिए धुंआ रहित चूल्हों का इस्तेमाल किया जा रहा है।

यदि सारा काम ऐसे ही चलने दिया जाए, तो ईंधन के लिए लकड़ी पैदा करने के लिए प्राकृतिक वन काटे जाएंगे। इनसे वन क्षेत्र में और कमी होगी। यहां सामाजिक वानिकी काफी सहायता कर सकती है। प्रत्येक गांव, कस्बे और शहर में ऐसे विशाल निम्नकोटिकृत क्षेत्र हैं जहां कृषि फसलें उगाना लाभप्रद नहीं है। इन क्षेत्रों पर वृक्षों और झाड़ियों की खास प्रजातियां लगाई जा सकती हैं जिनसे ईंधन प्राप्त होता है। सामाजिक वानिकी कार्यक्रम में वृक्षों, झाड़ियों और जड़ी-बूटियों की तेजी से उगने वाली प्रजातियों निम्नकोटिकृत भू-क्षेत्रों में लगाई जाती हैं। इसके लिए समुदायिक श्रम और संसाधनों का इस्तेमाल किया जाता है। जब वृक्ष तथा अन्य पौधे बड़े हो जाते हैं इन्हें ईंधन-चारे आदि के लिए काटा जाता है। इस तरह जैव मात्रा उस स्थान के बहुत पास उपलब्ध हो जाती है जहां लोगों को उसकी जरूरत होती है। यह सब उस जमीन से प्राप्त होती है जो अन्यथा अनुपयोगी थी। अतः लोग न केवल प्राकृतिक वनों की ही रक्षा करते हैं बल्कि उन्हें बहुत कम खर्च पर ही लाभ प्राप्त हो जाते हैं। जब गांवों अथवा कस्बों के पास वन लगते हैं एक अतिरिक्त लाभ यह होता है कि लोगों को उत्पाद संग्रह करने में भी अधिक समय नहीं गंवाना पड़ता। इसी प्रकार पशुओं को भी चराने के लिए दूर के वनों में नहीं ले जाना पड़ता। वे गांवों अथवा कस्बों के पास लगाए गए सामुदायिक वनों में चर सकते हैं।

सामाजिक वानिकी से वे अन्य लाभ भी प्राप्त होंगे जो प्राकृतिक वनों से प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, भूमि का कटाव और रेगिस्तान का विकास रुकेगा। मृदा में अन्तः स्रवण के द्वारा भूमिगत पानी जमा हो सकेगा। वायु में विद्यमान कार्बन डाइआक्साइड और अन्य गैसें तथा कणिकीय प्रदूषक वृक्षों और पौधों द्वारा उसी प्रकार अवशोषित और कम किए जाएंगे जिस तरह प्राकृतिक वनों द्वारा किए जाते हैं। इन वनों का उपयोग ऐसी प्रजातियां उगाकर जिनकी अन्यथा आशंका होती है विविधता के संरक्षण के लिए भी किया जा सकता है। सामाजिक वानिकी से उन लोगों को नौकरी के अवसर भी मिलेंगे जो वनों में काम करना चाहते हैं। परोक्ष रूप से रोजगार की खोज में गांवों से शहरों की ओर भागने की वर्तमान प्रवृति पर भी रोक लगेगी।

बोध प्रश्न 5

खाली स्थानों को भरें :

क) सामाजिक वानिकी का उद्देश्य ..... की मांगे पूरी करना है।

ख) सामाजिक वानिकी के द्वारा ..... वनों पर से मांग का दबाव कम होता है।

ग) ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 75% पाकक्रिया ..... पर आधारित ईंधन जलाकर की जाती है।

घ) आजकल ..... का विनाश प्रजातियों के लुप्त होने का मुख्य कारण है।

ङ) प्रजातियों के कम होने से ..... जीवों का नाश भी होगा।

22.5 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा है कि :

- वायुमंडलीय प्रदूषण हमारे देश में बहुत बड़े अनुपात में होता है। सरकार ने विभिन्न उद्योगों से निकलने वाले निस्सरणों के लिए अनेक कानून बनाए हैं और मानक बनाए हैं।
- वायु गुणता के मापन के लिए परिष्कृत यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और अमरीका की पर्यावरण रक्षा एजेंसी ने मानक विश्लेषक विधियां निर्धारित की है।
- वायुमंडलीय प्रदूषण मुख्यतः कणिकीय द्रव्यों, गैसों और कुहासा धूम के कारण फैलता है। निर्धारित सीमाओं के भीतर इन निस्सरणों को सीमित करने के लिए अनेक प्रकार की नियंत्रण युक्तियां उपलब्ध हैं। महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध नियंत्रण उपस्कर हैं— साइक्लोन, थैली फिल्टर, स्थिर वैद्युत अवक्षेपित्र और मार्जक।
- वायु प्रदूषण नियंत्रण महंगा तो है पर जरूरी है—सबसे अच्छा तरीका है कि पहले इसे यथा संभव सीमा तक रोका जाए और तब शेष प्रदूषण पर नियंत्रण किया जाए।
- जल गुणता प्रबंध के लिए बहुविषयक दृष्टिकोण आवश्यक है, जिसमें i) जल गुणता मापन, ii) जल गुणता मानक, और iii) जल गुणता नियंत्रण शामिल हैं।
- जल गुणता मापन आमतौर पर जटिल है और महंगा है। अतः हमें संग्रहीत आंकड़ों के उद्देश्य और वास्तविक उपयोग के विषय में बहुत स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। विश्लेषण संबंधी त्रुटियों, प्रतिचयन विधि, प्रतिचयन आवृति आदि के कारण पैदा हुई अनिश्चितताओं के अस्तित्व को पहचानना भी जरूरी है।
- जल गुणता मानक या तो धारा मानकों पर आधारित हैं अथवा बहिःस्राव मानकों पर आधारित है। यद्यपि धारा मानक सबसे अधिक यथार्थ और लाभप्रद उपयोगों पर प्रत्यक्षतः आधारित होते हैं इन्हें लागू करना इनका नियंत्रण करना कठिन है।
- जैसे-जैसे हमारा औद्योगिक विकास होता जा रहा है भूमि प्रदूषण मुख्य समस्या बनता जा रहा है। एक

बार यदि मृदा प्रदूषित हो जाएगी तो इससे उस पर उगने वाले पौधों को हानि पहुंचेगी और बाद में संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र पर दुष्प्रभाव पड़ सकता है। अतः भूमि प्रदूषण रोका जाना जरूरी है।

- वन बहुत महत्वपूर्ण संसाधन है। प्राकृतिक वनों पर दबाव कम करने के लिए हमें उन जमीनों पर सामाजिक वानिकी अपनानी चाहिए जो जमीन अन्यथा अनुपयोगी है।
- वन्य जीवन को भी संसाधन माना जाना चाहिए। पर्यावरण संबंधी नीतियां आसन्न लाभ को ही ध्यान में रखकर नहीं बनाई जानी चाहिए।

22.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) स्टैक निस्सरण मानकों और परिवेशी वायु मानकों की समानताएं और असमानताएं बताएं।

.....

.....

.....

2) समगतिक प्रतिचयन क्या है?

.....

.....

.....

3) धारा मानक और बहिःस्राव मानक में क्या अंतर है?

.....

.....

.....

4) आपको ऐसे विशाल भू-क्षेत्र मिलेंगे जिनका कोई उपयोग नहीं हो रहा है। आप उनका उपयोगी प्रयोजनों के लिए कैसे इस्तेमाल कर सकते हैं?

.....

.....

.....

5) यह क्यों उचित है कि शहरों का विस्तार निम्नकोटि की भूमि पर ही होने दिया जाए?

.....

.....

.....

6) वन प्रबंध हमारे पारिस्थितिक तंत्र प्रबंध का अभिन्न अंग है— विवेचना करें।

.....

.....

.....

22.7 उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर

1) i) क — ख
ख — ङ
ग — च
घ — ग
ङ — क
च — छ
छ — च

ii) i) गलत
ii) गलत
iii) गलत
iv) सही
v) सही

2) उत्तर 5 सही है क्योंकि इनमें से कोई भी शुद्ध जल का उदाहरण नहीं है। वर्षा के जल में विलीन और निलंबित अपवर्ज्य पदार्थों की काफी मात्रा होती है। इनमें से कई वायु प्रदूषण के कारण होते हैं। उदासीन पी एच (pH) मान केवल इस बात का सूचक है कि हाइड्रोजन और हाइड्रोआक्साइड के प्रभावी सांद्रण (pH) बराबर है जो कि जल की शुद्धता का एकमात्र लक्षण नहीं है। मृदु जल का अर्थ शुद्ध जल नहीं है क्योंकि इसमें ऐसे विलीन अथवा निलंबित अपद्रव्य हो सकते है जिनसे कठोरता की विशेषताएं दिखाई न देती हों।

3) i) सही ii) गलत iii) गलत

4) उपरोक्त में से कोई नहीं। केवल जब पवन इतना प्रबल होगा कि प्रक्षोभ उत्पन्न हो सके जिससे पानी के पार आक्सीजन के अंतरण की दर बढ़ सके अन्यथा यह अन्तरण की गति को पर्याप्त रूप से प्रभावित नहीं करेगा।

5) i) क) सही, ख) गलत, ग) गलत, घ) सही, ङ) सही।
ii) इकाई 12 में से किन्हीं 5 की सूची बनाई जाए।
iii) क) रासायनिक उर्वरक महंगे हैं और उनका बड़ी मात्रा में आघात भी करना पड़ता है। उनके इस्तेमाल में बहुत अधिक खर्च होगा जिसका बहुत सा अंश विदेशी मुद्रा के रूप में होगा।

ख) यदि गोबर का इस्तेमाल गोबर गैस-बनाने के लिए किया जाएगा तो मुक्त शेष कर्दम (slurry) स्लरी का इस्तेमाल उर्वरक के रूप में किया जाएगा। गोबर के उपयोग की यह बेहतर विधि है कि हमें एक ही गोबर से दो लाभ प्राप्त होते हैं।

ग) फलीदार फसलें वायुमंडल से नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करती हैं। इस प्रकार वे मृदा की उर्वरता बढ़ाती है। मृदा निम्न उर्वरता के कारण घटिया होती है। यदि ये फसलें उगाई जाती हैं तो मृदा की न उर्वरता बढेंगी।

iv) क) अत्यधिक सिंचाई के कारण मृदा लवण प्रभावित हो सकती है और अन्ततः अनुपयोगी हो सकती है।

ख) वनों को अपनी भूमिका अदा करनी है। यदि वन काटे जाएंगे और उस भूमिका का इस्तेमाल कृषि के लिए किया जाएगा तो अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी। कृषि उत्पादन भी कम हो जाएगा।

ग) डी डी टी का इस्तेमाल कृषि में पीड़क जीव नाशी दवाई के रूप में किया जाता है और यह आसानी से अपघटित नहीं होती। अपने सक्रिय रूप में यह मृदा में प्रवेश करती है और वहां से खाद्य श्रृंखला के माध्यम से पारिस्थितिक तंत्र में प्रवेश करती है। बाद में यह मानव शरीर में पहुंचती है और वहां से दूध में।

घ) हमने अपनी मर्जी के अनुसार वनों और प्राकृतिक आवासों को नष्ट किया है। यह पेड़ पौधों और स्तनपायी जीवों की अनेक प्रजातियों के प्रवास थे, जिनके नष्ट होने पर वन्य प्रजातियों को भी खतरा हो गया।

ङ) आधुनिक मानव के पास आधुनिक उपस्कर उपलब्ध हैं। आज वह एक ही मशीन की सहायता से एक ही दिन में सैंकड़ों विशाल वृक्ष काट सकता है। वायुयानों की सहायता से वह बहुत बड़े क्षेत्र पर रसायनों का छिड़काव कर सकता है।

6 i) क) समाज, ख) प्रकृति, ग) जैव मात्रा, घ) प्राकृतिक आवास, ङ) उपयोगी।

अंत में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1) स्टैक निस्सरण मानक किसी स्रोत से प्रदूषकों के निस्सरण को सीमित करते हैं जबकि परिवेशी वायु मानक प्रदूषकों का वह अधिकतम स्तर निर्धारित करते हैं जो परिवेशी वायु में सहन किया जा सकता है। प्रदूषकों का मापन स्रोत पर तो आसान है, प्राप्त परिणाम पुनरावर्तनीय होते हैं, और समय कम लगता है। जबकि परिवेशी वायु में प्राप्त प्रदूषक बहुत कम सांद्रता में पाये जाते हैं और उनका स्तर अनेक मौसम संबंधी पैरामीटरों (प्राचलों) के समकालिक प्रभाव के आधीन होता है।

2) वायुवहित कणिकीय द्रव्य के संग्रहण की तकनीक जिसमें प्रतिच्चयन संग्रहक शलाका इस तरह तैयार की जाती है कि शलाका में प्रवेश करने वाली वायुधारा का वेग चारों ओर शलाका के बाहर गुजरने वाली

वायु के वेग के बराबर होता है। इस युक्ति से समान दक्षता से सभी प्रकार के कणों का प्रतिचयन किया जा सकता है।

3) **धारा मानक** जल के लाभप्रद उपयोगों पर आधारित होते हैं जो ग्राही जल में विशिष्ट प्रदूषकों के लिए प्रणादमान नियत करता है। **बहि:स्रावी मानक** प्रदूषण की अधिकतम सांद्रता (मि. ग्रा./लि.) या ग्राही जल में उत्सर्जित अधिकतम प्रदूषण मात्रा (कि. ग्रा./दिन) पर अधारित होते हैं। इन मानकों को ग्राही जल के लाभप्रद उपयोगों से संबंधित किया जा सकता है।

4) भूमि अनुपयुक्त उपयोग के कारण अनुपयोगी हो जाते हैं। इन जमीनों पर फसलें उगाना लाभप्रद नहीं है और इसलिए इन्हें ऐसे ही छोड़ दिया जाता है। इन क्षेत्रों में हम वृक्षों, झाड़ियों, शाक, जड़ी-बूटियों आदि की कुछ प्रजातियां सफलतापूर्वक उगा सकते हैं। इससे भूमि को आवरण ही नहीं मिलेगा, बल्कि ऐसे उत्पाद भी प्राप्त होंगे जो सामान्यतः वनों से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक वनों पर दबाब कम होगा।

5) निम्न कोटि की जमीन का सामान्यतः उपयोग नहीं किया जाता। यदि इनका इस्तेमाल नगरों के विस्तार के लिए किया जाता है तो हमें अधिक हानि नहीं होगी। यदि हम नगरों के विस्तार के लिए कृषि भूमि अथवा वन भूमि का इस्तेमाल करते हैं तो हम एक तरह से उत्पादक भूमि को अनुत्पादक भूमि में परिवर्तित करते हैं। कृषि के लिए अनउपजाऊ भूमि बच जाती है जिस पर खेती करना महंगा पड़ता है।

6) वन उपयुक्त पारिस्थितिक सन्तुलन के लिए अनिवार्य हैं। वे जलवायु, वर्षा, वायुमंडल के आक्सीजन के संतुलन पर नियंत्रण रखते हैं और भूमि के कटाव आदि को रोकते हैं। यदि वनों का उचित प्रबंध नहीं किया जाता तो वे नष्ट हो जाएंगे और इसका संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

इकाई 23 पर्यावरण संबंधी विधान

इकाई की रूपरेखा

23.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

23.2 कानूनों की आवश्यकता

23.3 वर्तमान कानून

कीटनाशक अधिनियम

वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम

जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम

वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम

23.4 पर्यावरण संबंधी कानूनों की कमियाँ और इसके कार्यान्वयन में आने वाली कठिनाइयाँ

पर्यावरण संबंधी कानूनों की कमियाँ

पर्यावरण संबंधी कानूनों के कार्यान्वयन में आने वाली परेशानियाँ

23.5 भोपाल गैस दुर्घटना

23.6 सारांश

23.7 अंत में कुछ प्रश्न

23.8 उत्तर

23.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम की पिछली इकाइयों में आपने यह पढ़ा है कि किस तरह अपनी पसंद का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण बनाने के लिए मानव-समाज आखेट अवस्था से अब तक प्राकृतिक पर्यावरण को निरंतर बदलता रहा है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधन धीरे-धीरे समाप्त हो रहे हैं, जमीन की उर्वरता घटी है और हवा तथा पानी प्रदूषित हो गए हैं। नगरीकरण से शोर प्रदूषण भी बढ़ा है। रासायनिक तथा परमाणु ऊर्जा संयंत्रों में खतरनाक टैक्नोलॉजी के इस्तेमाल और जहरीले रेडियोधर्मी पदार्थों और परमाणुविक कचरे के भंडारण को लाने-ले जाने से विश्व के अनेक भागों में भारी दुर्घटनाएँ और बड़े पैमाने पर जन-धन की हानि हुई है। इस पृथ्वी पर जीव जंतुओं और वनस्पतियों को विनाश से बचाने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कानून बनाए गए हैं। इस इकाई में पर्यावरण से संबंधित कानूनों के बारे में बताया जाएगा। इन कानूनों में पर्यावरण संबंधी मुद्दों से जुड़े हुए कुछ सामान्य कानून, जल और वायु प्रदूषण से संबद्ध विधान और 1986 का व्यापक पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम शामिल है। इस इकाई के कुछ भागों में पर्यावरण संबंधी संस्थागत ढाँचा और संबद्ध कानूनों को लागू करने में आने वाली परेशानियों की चर्चा की गयी है तथा भोपाल गैस दुर्घटना के कानूनी पक्षों के बारे में भी बताया गया है।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- पर्यावरण संबंधी कानूनों की आवश्यकता को समझा सकेंगे,
- पर्यावरण संरक्षण के लिए बनाए गये विभिन्न अधिनियमों की चर्चा कर सकेंगे,
- पर्यावरण संबंधी विधान के कार्यान्वयन में आने वाली परेशानियों को समझा सकेंगे, तथा
- भोपाल गैस दुर्घटना के कानूनी पक्षों को विस्तृत रूप से समझ सकेंगे।

23.2 कानूनों की आवश्यकता

पिछली इकाइयों में आपने यह पढ़ा है कि वायुमंडल की ओज़ोन पर्त का नष्ट होना, विभिन्न जीव प्रजातियों का तेजी से विलुप्त होना, पृथ्वी के नाजुक क्षेत्रों में जहरीले और परमाणुविक कचरे का जमा हो जाना, वनों और कृषि-योग्य भूमि का चिंताजनक तरीके से तेजी से कम होते चले जाना—ये सब विश्व के पर्यावरण में आ रहे ऐसे परिवर्तन हैं, जिनका वर्तमान और भावी पीढ़ियों के जीवन पर बहुत अधिक असर पड़ेगा।

जैसा कि कहा गया है कि **पर्यावरण पूर्वजों से मिली हमारी बपौती नहीं है, यह तो भावी पीढ़ियों के लिए हम पर ऋण है।** आज के समाज में एक व्यक्ति का जीवन अनेक व्यक्तियों के काम पर निर्भर है। उदाहरण के लिए, किसी परमाणु ऊर्जा रिएक्टर या रासायनिक संयंत्र की वैल्डिंग या रख-रखाव में लापरवाही से कारखानों और आसपास के न केवल हजारों लोगों की जानें जा सकती हैं, बल्कि काफी दूर रहने वाले लोगों की जान को भी खतरा हो सकता है। इसी तरह रासायनिक संयंत्र और परमाणु रिएक्टर के खतरनाक कचरे को लाने-ले-जाने में ट्रक ड्राइवरों और रेलवे इंजीनियरों की लापरवाही से बड़ी संख्या में लोग मारे जा सकते हैं और पर्यावरण को भारी नुकसान पहुँच सकता है। मानव, पशु पक्षियों और वनस्पतियों के जीवन को समाप्त करने वाली और समूचे पर्यावरण को नष्ट कर देने वाली भयानक दुर्घटनाओं की आशंका निरंतर बढ़ती जा रही हैं। विश्व-स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के लिए मिल-जुल कर तुरंत कार्य करने की आवश्यकता काफी समय से महसूस की जाती रही है।

1972 में स्टॉकहोम में मानव पर्यावरण के बारे में संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन हुआ। इसमें 113 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। सम्मेलन में यह घोषणा की गयी—

> "मानवीय पर्यावरण का संरक्षण और सुधार एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जिससे लोगों की खुशहाली और पूरे विश्व का आर्थिक विकास जुड़ा है। सभी सरकारों और संपूर्ण मानव जाति का यह दायित्व है कि वह मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए मिल-जुल कर काम करे, ताकि संपूर्ण मानव जाति और उसकी भावी पीढ़ियों का हित हो सके।"

इन बातों को देखते हुए, अनेक देशों ने पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले उद्योगों पर अंकुश लगाने और उन्हें दंड देने के लिए कुछ नियम बनाए। इन देशों ने पर्यावरण को प्रदूषित करने के गंभीर मामलों के अपराधियों को दंडित करने की व्यवस्था की। इसके लिए विशेष आपराधिक कानून बनाए गए और नये आपराधिक कानून बना कर दंड संहिताओं में सुधार किए गए। पर्यावरण प्रदूषण संबंधी अपराधों पर दंड देने के लिए जापानी कानून ऐसा पहला प्रयास था। इसके बाद पश्चिमी जर्मनी, पूर्वी जर्मनी (दोनों जर्मन राष्ट्रों का अब विलय हो गया है), हंगरी, पुर्तगाल, स्पेन तथा ब्राज़ील ने पर्यावरण प्रदूषण रोकने के लिए कानून बनाए। कनाडा और अमेरीका जैसे देशों में, जहाँ विभिन्न नियंत्रणों को तोड़ने के मामलों और अन्य अपराधों में कानूनी विभेद नहीं माना जाता, वहाँ पर्यावरण प्रदूषण संबंधी नियमों के उलंघन के लिए नए विधान बनाए गए ताकि ऐसे अपराधियों को जुर्माने और कैद का कड़ा दंड दिया जा सके।

भारत एक ऐसा पहला देश था, जहाँ पर्यावरण के संरक्षण और सुधार को मूलभूत कर्तव्यों में शामिल किया गया है और इस प्रकार इसे सरकार और नागरिकों का संवैधानिक दायित्व बनाया गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 48-क में कहा गया है कि :

> "राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा सुधार और वनों तथा वन्य जीवन की रक्षा का प्रयास करेगा।"

संविधान के अनुच्छेद 51-क में कहा गया है—

> "भारत के हर नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह वनों, झीलों, नदियों तथा वन्य जीवन सहित प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण और सुधार करे और सभी सजीव प्राणियों के प्रति करुणा रखे।"

इस तरह भारत के संविधान में पर्यावरण संबंधी कानूनों के लिए व्यवस्था है। केन्द्र, राज्य और समवर्ती सूचियों में ऐसे विषय निम्न हैं, जिन पर संसद या राज्यों की विधायिकाओं ने कानून बनाए हैं—शोर नियंत्रण, भूमि की उर्वरता में सुधार, सिंचाई, नगर योजना, तंग बस्तियों की सफाई, आवास योजनाएँ, नुकसान पहुँचाने वाले जीवों का नियंत्रण, धुएँ पर नियंत्रण, जल प्रदूषण, वन, वन्यजीवन, मनोरंजन आदि। इन विषयों से संबंधित विभिन्न कानून इस प्रकार हैं—

- फैक्टरी अधिनियम, 1948
- कीटनाशक अधिनियम, 1968
- जल (संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण) अधिनियम, 1974
- वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981
- वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980
- वन्यजीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972 और
- पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

अगले भागों में इनमें से कुछ पर्यावरण संबंधी कानूनों और पर्यावरण संरक्षण के सिलसिले में विभिन्न उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालयों के अनेक फैसलों की चर्चा की जाएगी।

बोध प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) स्टॉकहोम सम्मेलन वर्ष ..... में हुआ था। इसमें ..... के संरक्षण और सुधार के उपायों पर विचार किया गया।

ख) ..... ऐसा पहला देश जहाँ पर्यावरण संरक्षण और सुधार को संविधान के अंतर्गत नागरिकों के मूलभूत कर्तव्यों में शामिल किया गया और इस प्रकार इस काम को सरकार और नागरिकों का संवैधानिक दायित्व बनाया गया।

ग) पर्यावरण से संबंधित ऐसे दस विषयों की सूची बनाएँ जिनके बारे में संसद और राज्य विधायिकाओं ने कानून बनाए हैं।

(i) ..... (ii) .....

(iii) ..... (iv) .....

(v) ..... (vi) .....

(vii) ..... (viii) .....

(ix) ..... (x) .....

23.3 वर्तमान कानून

पर्यावरण प्रदूषण के फलस्वरूप लोगों की तकलीफें और मृत्यु होने की घटनाएँ सबसे पहले जापान के औद्योगिक क्षेत्रों में प्रकाश में आयीं। जब 50 के दशक के बाद के वर्षों में हजारों लोगों को बड़े कष्टप्रद **मिना माटा** और **इटाइ**—रोग हो गए तब इससे पहले जापान में जल और वायु प्रदूषण पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। इन बीमारियों के फैलने के बाद जापान और पश्चिमी देश तुरंत विधायी कार्रवाई के प्रति सजग हुए और वहाँ पर्यावरण संरक्षण कानून बनाए गए तथा सरकारी प्रशासन में पर्यावरण मंत्रालय गठित किए गए। पर्यावरण संबंधी कानून निजी तथा सार्वजनिक नुकसान पहुँचाने के मामलों के कानूनों— के तहत आते हैं और इसमें पर्यावरण प्रदूषण के मामलों को "असुविधा पहुँचाने वाले, लापरवाही और दायित्व" संबंधी नियमों के तहत रखा गया है।

अगर आस-पास की औद्योगिक इकाइयों के जहरीले धुएँ का आप पर असर पड़ता है, या पड़ोस में लगातार हो रहे असहय शोर से आप परेशान हैं, या आपका पड़ोसी आपके आराम में खलल डालता है, या आपका रहन-सहन कष्टप्रद बना देता है (उदाहरण के लिए, अपने आँगन में बदबू फैलाने वाली वस्तुएँ या जानवर रख कर); तो आप अदालत में जा सकते हैं और ऐसे अपराध करने वाले पड़ोसी को असुविधा पहुँचाने के जुर्म में टॉर्ट कानूनों के अंतर्गत जुर्माना देना पड़ सकता है। हालाँकि अदालत ऐसे मामलों में दोनों पक्षों के हितों के संतुलन पर ध्यान देगी और काम को कानूनी वैधता तथा असुविधा से प्रभावित व्यक्ति की शिकायत के उचित अथवा अनुचित होने पर विचार करेगी। इसके बाद ही ऐसी कार्रवाई रोकने का आदेश दिया जाएगा और प्रभावित व्यक्ति को हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति की जाएगी।

जमीन के इस्तेमाल के बारे में पड़ोसियों के प्रति कर्तव्य का निर्वाह न करने का मामला दायित्व संबंधी कानूनों के तहत आता है। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड में 1968 के प्रसिद्ध रेलैंड बनाम फ्लैचर के मामले को लें। यह एक व्यक्ति द्वारा अपनी संपत्ति को इस तरीके से इस्तेमाल करने का मामला था, जिससे उसके पड़ोसी को अपनी संपत्ति का समुचित इस्तेमाल करने में बाधा पड़ती है। न्यायालय ने इस मामले में यह निर्णय दिया कि किसी व्यक्ति द्वारा अपने संपत्ति संबंधी अधिकारों का यदि इस प्रकार इस्तेमाल किया जाता है, जिससे दूसरे व्यक्ति के ऐसे ही अधिकारों में रुकावट आती हो तो दायित्व संबंधी कानूनों के तहत यह दंडनीय है। इन मामलों में जिस तरह से कानून की व्याख्या की गयी है उसका पर्यावरण संबंधी मामलों में बड़ा उपयोग हो सकता है।

भारतीय दंड संहिता (आई.पी.सी.) में लापरवाही संबंधी सामान्य कानून संहिताबद्ध है। अगर कोई व्यक्ति जान-बूझकर या गलती से ऐसा काम करता है, जिससे दूसरे को नुकसान हो, तो उस व्यक्ति को गैरकानूनी काम या लापरवाह होने का दोषी माना जाएगा। पानी के सार्वजनिक स्रोत या तालाब के पानी को गंदा करके उसे पीने योग्य न रहने देना भारतीय दंड संहिता की धारा 277 के अंतर्गत अपराध है। मानव जीवन को खतरा पहुँचाने या उसे नुकसान पहुँचाने की आशंका वाले विपत्तिजनक अपशेषों से वस्तुओं को प्रदूषित करने की लापरवाही धारा 284 के अंतर्गत अपराध है। भोपाल गैस दुर्घटना के लिए यूनियन कार्बाइड ऑफ इंडिया को इस धारा के अंतर्गत अपराधी माना जा सकता था। भारतीय दंड संहिता और अपराधिक प्रक्रिया संहिता (क्रिमिनल प्रोसीक्यूसन कीड) में अनेक ऐसे प्रावधान हैं, जिनके अंतर्गत भूमि, जल और वायु प्रदूषण के अपराधों के मामलों में कार्रवाई की जा सकती है।

भारत के संविधान में पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेक प्रावधान हैं। लेकिन उनकी चर्चा करने से पहले यहाँ यह बताना जरूरी है कि पर्यावरण संबंधी समस्याओं से निपटने की शक्ति भारत की संघीय व्यवस्था के कारण काफी कम हो जाती है। केंद्र और राज्य सरकारों के बीच विधायी और प्रशासनिक कार्यों का बँटवारा तीन सूचियों के अंतर्गत होता है—संघीय सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। पहली सूची के विषयों पर संघ सरकार को कानून बनाने का पूर्ण अधिकार है। दूसरी सूची के विषयों पर राज्यों को कानून बनाने का पूरा अधिकार है। तीसरी सूची के विषयों पर केंद्र और राज्य—दोनों ही सरकारें कानून बना सकती हैं। संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत, संघ को राज्यों के ऊपर वरीयता प्राप्त है और किसी विवाद की स्थिति में संघीय और समवर्ती सूची के विषयों में संघीय कानूनों को ही प्रभावी माना जाएगा, राज्यों के कानूनों को नहीं। संविधान के अनुच्छेद 248 के अंतर्गत संसद को इन सूचियों में शामिल न किये गये बाकी सभी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है। पर्यावरण के अधिकांश संघटक—जैसे भूमि, जल, वन आदि राज्यों के कार्यक्षेत्र में आते हैं। अनेक कारणों से, जिनमें धन की कमी मुख्य है, राज्य सरकारें इस स्थिति में नहीं होतीं कि वे प्रदूषण को रोकने के लिए कारगर कर्रवाई कर सकें, अथवा पर्यावरण के संसाधनों के संरक्षण और विकास के लिए पर्यावरण की दृष्टि से उचित प्रबंध नीतियाँ अपना सकें। इसलिए केंद्र सरकार के लिए यह जरूरी हो गया है कि जब पर्यावरण के संसाधनों के समाप्त होने की गंभीर स्थिति हो, तब वह इन मामलों में हस्तक्षेप करे। पिछली इकाइयों में आपने यह पढ़ा है कि भारत में जल प्रदूषण तथा वन संसाधनों के कम होने से वायु प्रदूषण की स्थिति इतनी गंभीर है कि सरकार को इन संसाधनों से हो रहे नुकसान को रोकने के लिए अनेक उपाय करने पड़ रहे हैं। संविधान के दो प्रावधानों से संघ सरकार को इस मामले में कार्रवाई करने में मदद मिली। पहला प्रावधान यह है कि संविधान के अनुच्छेद 242 के अंतर्गत अगर दो या दो से अधिक राज्य संघ सरकार से आग्रह करें तो वह राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है। संघ सरकार ने इसी प्रावधान के अंतर्गत वर्तमान और भावी पीढ़ियों तथा पर्यावरण को आत्म-विनाश के निर्मम रास्ते से बचाने के लिए अनेक अधिनियम लागू किए। आगे के भागों में भारत सरकार द्वारा पारित किए गये ऐसे विभिन्न अधिनियमों की चर्चा की जाएगी।

23.3.1 कीटनाशक अधिनियम

कीटनाशक मूलतः विषैले रसायन हैं। इनके इस्तेमाल से नुकसानदेह और बुरे पारिस्थितिक परिणाम हो सकते हैं। लोगों के स्वास्थ्य और पर्यावरण की रक्षा की अपनी प्रमुख जिम्मेदारी समझते हुए, भारत सरकार ने 1968 में कीटनाशक अधिनियम पारित किया। इसे 1971 से लागू किया गया है। इसमें मनुष्यों और पशुओं को होने वाले संभावित खतरों को रोकने के लिए कीटनाशकों के आयात, उत्पादन, बिक्री, लाने-ले-जाने, वितरण और उपयोग को नियंत्रित करने की व्याख्या है। इस अधिनियम को कारगर तरीके से लागू करने के लिए अनेक एजेंसियाँ बनाई गयी हैं। इनमें केंद्रीय कीटनाशक बोर्ड, हानिकारक विनाशक पंजीकरण समिति, हानिकारक जीवनाशक पर्यावरण प्रदूषण सलाहकार समिति, केंद्रीय कीटनाशक प्रयोगशाला और हानिकारक जीवनाशकों के प्रयोग पर रोक और नियंत्रण लगाने संबंधी समिति शामिल है।

23.3.2 वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम

इकाई 7 और 20 में यह बताया गया था कि वन्य जीवों को सबसे ज्यादा खतरा उनके रहन-सहन अर्थात् पर्यावास (habitat) के नष्ट होने से है। कृषि, उद्योगों और शहरी क्षेत्रों के निरंतर विस्तार से विनाश का यह खतरा पैदा हुआ है। वन्य जीवों के महत्व को देखते हुए और विभिन्न प्रजातियों को विलुप्त होने से रोकने के लिए हमारे देश में अनेक कदम उठाए गए हैं। 1952 में भारतीय वन्य जीवन बोर्ड गठित किया गया, जिसके अंतर्गत वन्य जीवन पार्क और अभयारण्य बनाए गए। 1972 में अखिल भारतीय वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम पारित किया गया; भारत, जीव जंतुओं और वनस्पतियों को समाप्त होने के खतरे में पड़ी प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी समझौते (1976) का सदस्य बना; संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन—युनेस्को का "मानव और जैव मंडल" कार्यक्रम भी भारत में चलाया गया और विलुप्त होने की आशंका वाली विभिन्न प्रजातियों के संरक्षण के लिए परियोजनाएँ चलायी गयीं। इनमें हंगल के संरक्षण के लिए 1970 में, सिंह के लिए 1972 में, बाघ के लिए 1973, मगर के लिए 1984 में और भूरे रंग के शृंगाभ (Antler) वाले हिरन के लिए ऐसी परियोजनाएँ चलायी गयीं।

वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम में नष्ट होने वाली प्रजातियों के संरक्षण की व्यवस्था है। अधिनियम में दुर्लभ तथा विलुप्त होती जा रही प्रजातियों के व्यापार की मनाही है। जम्मू-कश्मीर में इस बारे में एक अलग अधिनियम है। केंद्र सरकार राज्यों को निम्न कार्यों के लिए वित्तीय सहायता देती है—(i) राष्ट्रीय चिड़ियाघरों और अभयारण्यों में मूलभूत सुविधाओं को बनाये रखने तथा प्रबंध व्यवस्था बेहतर बनाने के लिए (ii) वन्य जीवन संरक्षण, जानवरों का शिकार रोकने और वन्य जीवों से प्राप्त होने वाले पदार्थों का अवैध व्यापार रोकने के लिए (iii) विलुप्त हो रही प्रजातियों को चिड़ियाघरों और अभयारण्यों में उपयुक्त परिस्थितियों में वंशवृद्धि कराने के लिए (iv) वन्य जीवन के बारे में शिक्षा तथा जानकारी के प्रसार के लिए तथा (v) चुने हुए चिड़ियाघरों के विकास के लिए।

23.3.3 जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम

जल प्रदूषण निवारण और नियंत्रण अधिनियम में जल प्रदूषण को परिभाषित किया गया है। पानी के प्रदूषण को नियंत्रित करने तथा इसे रोकने के लिए केंद्र और राज्य स्तर पर प्रशासनिक एजेंसियों के रूप में जल प्रदूषण बोर्ड बनाने की व्यवस्था और जल प्रदूषित करने पर दंड का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम का क्षेत्र बड़ा व्यापक है और इसमें झरने, सोते, नदियाँ, तालाब, सरोवर, भूमिगत जल, समुद्र और ज्वार-भाटों का पानी भी शामिल किया गया है। केंद्र और राज्य सरकार के बोर्डों में प्रतिनिधित्व का दायरा काफी व्यापक है और इन बोर्डों का जल प्रदूषण कम करने, नियंत्रित करने या रोकने के मामलों में सलाह देने, कार्यक्रमों में तालमेल बैठाने और तकनीकी सुझाव देने के व्यापक अधिकार हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इन बोर्डों को देश में जल-प्रदूषण की स्थिति की निगरानी करने और प्रदूषण के अनुमेय और अननुमेय मानक तय करने का भी काम सौंपा गया है।

जल अधिनियम में विषैले, नुकसानदेह और प्रदूषण फैलाने वाले कचरों को नदियों और कुओं में फेंकने पर रोक लगाने की व्याख्या की गयी है। ऐसे किसी भी काम पर रोक लगाई गई है जिससे पानी के प्रवाह में रुकावट आए और प्रदूषण बढ़े। अधिनियम के अनुसार प्रदूषण बोर्डों को मल-जल तथा व्यापारिक अवशेषों को नदी-नालों में बहाने के मामलों पर मुख्य रूप से ध्यान देना चाहिए। बोर्डों को यह अधिकार है कि वे प्रदूषण पर रोक लगाने की शर्तें लागू करके प्रदूषण फैलाने वालों के खिलाफ कार्रवाई करें। बोर्ड ऐसे लोगों पर मुकदमा भी चला सकता है। लेकिन व्यवहार में बोर्डों को अपने कामों में आशा के अनुरूप सफलता नहीं मिली है। इसके पीछे धन की कमी, विशेषज्ञता का अभाव और प्रदूषण फैलाने वाली बड़ी औद्योगिक इकाइयों पर दंडात्मक कार्रवाई करने में अक्षमता जैसे कारण हैं। न्यायालयों के पास पहले से ही क्षमता से ज्यादा मामले होते हैं और वे प्रदूषण फैलाने वालों पर कार्रवाई करने तथा प्रदूषण पर रोक लगाने में बोर्डों की ज्यादा मदद नहीं कर पाते। प्राक्कलन समिति की इकसठवीं रिपोर्ट (अप्रैल, 1988) के अनुसार, 21 राज्यों में जल प्रदूषण अधिनियम के अंतर्गत 1602 मामले दर्ज किए गए। न्यायालयों ने इनमें से केवल 208 पर अंतिम फैसले सुनाए जबकि 1314 मामले अभी भी लंबित हैं। वायु प्रदूषण के मामलों में भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। प्रदूषण फैलाने के कुल 202 मामले दर्ज हुए, 97 मामलों पर फैसला सुनाया गया और शेष अभी भी लंबित पड़े हैं। आँकड़ों का यह फ़र्क दोनों अधिनियमों के लागू होने के समय की वजह से है। (जल अधिनियम 1974, वायु अधिनियम 1981) नौकरशाही दोनों ही अधिनियमों को लागू करने में समान रूप से अनुत्साही रही है।

23.3.4 वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम

वायु अधिनियम 1981 में लागू किया गया। इसमें मुख्यतः मोटर-गाड़ियों और अन्य कारखानों से निकलने वाले धुएँ और गंदगी का स्तर निर्धारित करने और उसे नियंत्रित करने का प्रावधान है। केंद्रीय जल प्रदूषण निवारण और नियंत्रण बोर्ड को ही वायु प्रदूषण अधिनियम को लागू करवाने का भी अधिकार दिया गया है। यही बोर्ड वायु संघटन के मानक भी तय करता है। अनुच्छेद 19 के तहत, केंद्रीय बोर्ड को मुख्यतः राज्य के बोर्डों के काम में तालमेल बैठाने के अधिकार दिए गए हैं। राज्य के बोर्डों से परामर्श करके संबंधित राज्य सरकारें किसी भी क्षेत्र को "वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र" घोषित कर सकती हैं और वहाँ स्वीकृत ईंधन के अलावा, अन्य किसी भी प्रकार के प्रदूषण फैलाने वाले ईंधन के इस्तेमाल की मनाही कर सकती हैं। इसमें यह भी प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति राज्य बोर्ड की पूर्व-अनुमति के बिना वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र में ऐसी कोई भी औद्योगिक इकाई नहीं खोल सकता, जिसका वायु, प्रदूषण संबंधी अनुसूची में उल्लेख है।

23.3.5 पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम

संसद ने 23 मई 1986 को पर्यावरण संरक्षण अधिनियम पारित किया, जिसमें 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन का संदर्भ है और जिसे संविधान के अनुच्छेद 253 का आधार माना जाना चाहिए। इस अधिनियम से संघ सरकार को पर्यावरण प्रदूषण को कम करने, रोकने और नियंत्रित करने के काफी अधिकार मिले हैं। इनमें राज्यों के काम-काज में समन्वय लाना, राष्ट्रव्यापी योजनाएँ बनाना और उन्हें लागू करना शामिल है। पर्यावरण संबंधी मानक तय करने के साथ ही औद्योगिक इकाइयों के घुएँ और प्रदूषक पदार्थों के बारे में मानदंड तय करने का अधिकार भी इस अधिनियम के अंतर्गत हैं। इस अधिनियम के अंतर्गत संघ सरकार को औद्योगिक इकाइयों के स्थान पर पाबंदियाँ लगाने तथा और भी अनेक अधिकार प्राप्त हैं। इस तरह इसके अधिकार बड़े व्यापक हैं। इस अधिनियम के कार्यक्षेत्र में खतरनाक पदार्थों के उपयोग के लिए नियम निर्धारित करना, पर्यावरण संबंधी दुर्घटनाएँ रोकना, अनुसंधान, प्रदूषणकारी इकाइयों का निरीक्षण, प्रयोगशालाएँ बनाना और प्रदूषण के बारे में लोगों को जानकारी देना शामिल है। अधिनियम में प्रशासनिक कार्यप्रणाली और संरचना का पूरा स्वरूप दिया गया है। अगर इस अधिनियम को पूरी सच्चाई से लागू किया जाए तो वन और पर्यावरण मंत्रालय बहुत शक्तिशाली मंत्रालय बनेगा जो सभी औद्योगिक तथा विकासात्मक गतिविधियों पर पूरा नियंत्रण रखेगा। लेकिन इन कानूनों को हिचक के साथ आधे-अधूरे तरीके से लागू करने से पर्यावरण संबंधी कार्रवाई दिखावा मात्र होकर रह जाएगी।

बोध प्रश्न 2

नीचे दिए गये स्थानों में वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम (1974) के कार्यों का संक्षेप में विवरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

23.4 पर्यावरण संबंधी कानूनों की कमियाँ और इसके कार्यान्वयन में आने वाली कठिनाइयाँ

आपने इस इकाई के पिछले भागों में विभिन्न पर्यावरण संबंधी अधिनियमों के बारे में पढ़ा है। इस भाग में हम पर्यावरण संबंधी कानूनों की कमियाँ और इसके कार्यान्वयन में आने वाली कठिनाइयों का अध्ययन करेंगे।

23.4.1 पर्यावरण संबंधी कानूनों की कमियाँ

प्रायः कानून पर्याप्त नहीं होते। पर्यावरण संबंधी अधिनियमों में अनेक कमियाँ हैं। यहाँ इन कानूनों की विस्तृत व्याख्या नहीं की गयी है, लेकिन कुछ उदाहरण देकर इनके विभिन्न मुद्दों को समझाया गया है।

वन देश का प्रमुख संसाधन है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि स्वस्थ पर्यावरण में कुल भू-क्षेत्र के एक तिहाई हिस्से में वन होने चाहिए। पेड़-पौधे ऑक्सीजन तैयार करते हैं तथा मिट्टी को क्षरण से रोके रहते हैं। भारत के वनांचलों में रहने वाले लाखों जनजातीय लोगों और ग्रामीणों की रोज़ी-रोटी वनोत्पादों पर टिकी है। विशेषज्ञों, समाचार पत्रों तथा पुस्तकों आदि विभिन्न संचार माध्यमों ने निर्णय लेने वाले सत्ताधारी वर्ग का ध्यान इस बात की ओर दिलाया है कि देश में वन-क्षेत्र तेजी से कम हो रहा है। कुछ आकलनों के अनुसार अब 12% भू-क्षेत्र भी वन रहित हैं। ईंधन की कमी के कारण वनों से लकड़ी काटने वाले गाँवों के लोग, वनों के लालची ठेकेदार और भ्रष्ट सरकारी कर्मचारी इस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं।

कुछ समय पूर्व भारत सरकार ने एक वन विधेयक पेश किया था, जिसके पीछे इरादा तो नेक था पर इसका स्वरूप बड़ा निर्मम था। इस विधेयक के विरोध में भारी हंगामा हुआ। इसके मुख्यतः दो कारण थे। पहला कारण यह था कि विधेयक वनों में और आसपास रहने वाले सभी जनजातीय लोगों को अपराधी घोषित कर देता, क्योंकि इसमें वनों की पत्तियों और फलों सहित सभी उत्पादों को लेने की मनाही थी। दूसरे प्रस्तावित विधेयक में वन अधिकारियों को न्यायाधीश और दंड देने के सभी अधिकार एक साथ दे दिए गये थे। इन्हीं कारणों से विधेयक को जनता का समर्थन नहीं मिला, क्योंकि इसका चरित्र दमनकारी औपनिवेशिक कानून जैसा था।

इस विधेयक को लागू नहीं किया जा सका। वर्तमान और भविष्य के लिए प्रस्तावित संरक्षण क्षेत्रों की धारणा को लेकर भी भारी विवाद उठता रहा, क्योंकि इसमें ग्रामीणों को अपने मवेशी चराने का अधिकार भी छीन लिया गया था। इस विरोध और असफलता से यह स्पष्ट हो गया कि सभी कानूनों में मुख्य ध्यान वनों से जुड़े जन-सामान्य और मानवीय पक्ष पर दिया जाना चाहिए। पेड़ों और पशु-पक्षियों को बचाने वाले कानूनों में लोगों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। 7 दिसंबर, 1988 को संसद में पारित नई वन नीति संबंधी संकल्प में पिछली गलतियों से सबक लेकर जन-केंद्रित दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास किया गया है पर इसके प्रभाविता और परिणामों का अभी इतनी जल्दी आकलन नहीं किया जा सकता।

यह उल्लेखनीय है कि राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में सरकार का यह दायित्व माना गया है कि वह जनता को कुछ बुनियादी सामाजिक और आर्थिक अधिकार दे। न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने इन नीति-निर्देशों के बारे में कहा है—

"हमारे संविधान के विकास-संबंधी नीति-निर्देश सामाजिक और आर्थिक न्याय की ओर ले जाते हैं।"

व्यक्तियों या समूहों के पहल पर पर्यावरण संबंधी अनियमितताओं को अदालतों में ले जाने की अलग समस्याएँ हैं। जल और वायु प्रदूषण अधिनियमों में व्यक्तियों या समूहों को सीधे अदालतों में मामले दायर करने की इजाजत नहीं है। दूसरे शब्दों में व्यक्तियों को इन मामलों से सीधे संबद्ध नहीं माना गया है और उन्हें इनमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। इन अधिनियमों की यह बड़ी गंभीर त्रुटि है। नए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम में इस कमी को कुछ हद तक दूर कर लिया गया है। बड़ी अदालतों में जनहित के मुकदमों की प्रक्रिया के तहत ऐसे मामले बहुत बड़ी संख्या में सुनवाई के लिए मंजूर किए गए हैं, जिससे इन अधिनियमों के अंतर्गत असंबद्ध व्यक्ति के हस्तक्षेप न कर सकने की कड़ी शर्त टूटी है।

लेकिन ऐसी मुकदमेबाजी किस हद तक सफल रही है? मूक घाटी (साइलेंट वैली) दून घाटी और दिल्ली जैसे रिसाव कांड के मामलों ने समाचार-पत्रों तथा अन्य सूचना माध्यमों और जनता का ध्यान काफी हद तक आकर्षित किया है। लेकिन इन मुकदमों के साथ ही अनेक समस्याएँ भी जुड़ गयीं, जैसे—मामलों पर अड़ियल रुख, प्रमाण जुटाने से संबंधित नियमों ने खासतौर से बड़ी अनैतिक स्थिति पैदा कर दी है। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति, यहाँ तक कि पूरी तरह प्रतिबद्ध समूह या संस्था से भी यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वह विकिरण के हानिकारक स्तर के बारे में पूरे आधिकारिक और विशेषज्ञता वाले प्रमाण जुटा सकेगा। व्यक्ति तथा प्रदूषण-नियंत्रण करने वाली एजेंसियों के संसाधन सीमित होने के कारण पर्यावरण संबंधी विवादों में प्रमाण के नियमों का मजाक बन गया है।

23.4.2 पर्यावरण संबंधी कानूनों के कार्यान्वयन में आने वाली परेशानियाँ

आपको अब यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो चुकी होगी कि पर्यावरण संबंधी तमाम विधायी कार्रवाई के बावजूद भारत में पर्यावरण की स्थिति गंभीर बनी हुई है। नदियाँ और झीलें अभी भी मल और औद्योगिक कचरे से भरी हुई हैं। कुछ प्रमुख नगरों की हवा अमेरिका के शिकागो और न्यूयार्क नगरों से भी ज्यादा प्रदूषित हो गयी है। वन-क्षेत्र में लगातार कमी होने से जमीन का जो कटाव हो रहा है, उसका परिणाम हर वर्ष आने वाली बाढ़ों के रूप में सामने आ रहा है। इन स्थितियों को बदलने और पर्यावरण को संतुलित करने के लिए देश को क्या करना चाहिए?

सरकार ने जो विधायी उपाय और प्रशासनिक ढाँचा बनाया है, उससे उसकी चिंता का पूरा अहसास होता है, लेकिन जिस तरीके से ये कार्यक्रम लागू किए जा रहे है, उससे ऐसा नहीं लगता कि पारिस्थितिक प्रबंध और विकास से जुड़े मुद्दों को सही तरीके से समझा गया है। पर्यावरण पृथ्वी का सबसे बहुमूल्य संसाधन है, जिस पर अत्यधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। सरकार ने अब तक जो उपाय किए हैं, उससे ऐसा नहीं लगता है कि इस महत्वपूर्ण संसाधन के प्रबंध और विकास-दोनों पक्षों पर बराबर ध्यान दिया गया है।

इन उपायों में नुकसान होने के बाद जरूरी कदम उठाने जैसी बात ठीक वैसे ही होती है, जैसे आग लगने के बाद फायर ब्रिगेड घटना-स्थल पर पहुँचता है। सही रूप में पहले से ही आग लगने के कारणों को जानने पर जोर दिया जाना चाहिए। पर्यावरण की बर्बादी और प्रदूषण को रोकने के लिए शुरू में की गयी जरा सी सावधानी बाद के लिए गए कई गुना प्रयासों से बेहतर है।

उदाहरण के लिए, भारत में नदियों के प्रदूषण के मामले को लें। यह सभी जानते हैं कि नदियों के प्रदूषण का मुख्य स्रोत नगरपालिकाओं द्वारा निरंतर सबसे नज़दीकी नदियों में डाला जा रहा घरेलू मल तथा कचरा है। गंगा के प्रदूषण का 90 प्रतिशत करीब एक सौ नगरपालिकाओं के कचरे का है। अगर नगरपालिकाओं को नदी में अपवर्ज्य फेंकने से रोकने का विशाल कार्यक्रम नहीं चलाया जाएगा तो गंगा की सफाई की विशाल परियोजना निरर्थक रहेगी। सभी जानते हैं कि नगरपालिकाओं के कूड़े में पायी जाने वाली उपयोगी चीजों को फिर से काम में लाने और अपशेष के निपटान की टैक्नोलॉजी उपलब्ध है, परंतु यह महँगी है और नगरपालिकाएँ इतना व्यय नहीं कर सकतीं।

यदि नए पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम को पूरी गंभीरता से लागू किया जाए तो गंगा में कचरा फेंकने वाली सारी नगरपालिकाओं पर मुकदमा चलाना होगा। अधिनियम में, प्रदूषण फैलाने वालों के बीच कोई फर्क नहीं होना चाहिए—चाहे वे व्यक्ति हों, निजी क्षेत्र के उद्योग हों या सरकारी निकाय और एजेंसियाँ हों। लेकिन यह कानून को लागू करने का बड़ा संकीर्ण तरीका होगा। इससे कहीं ज्यादा आधुनिक दृष्टिकोण यह है कि लोगों को पर्यावरण संबंधी नियमों के बारे में जानकारी देनी चाहिए, उनकी मदद करनी चाहिए और उनमें इन नियमों को मन से स्वीकार कर लेने की प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिए। जब तक पर्यावरण संबंधी कानूनों के साथ उसे बढ़ावा देने के अन्य उपाय नहीं जोड़े जाएँगे तब तक इसके कारगर होने की संभावना बहुत कम है। ये उपाय इस प्रकार है :

- पर्यावरण की सुरक्षा के लिए वित्तीय सहायता देना
- अवशेषों को उपयोगी बनाने के प्रयासों को प्रोत्साहित करना
- अवशेषों के व्ययन संयंत्र लगाने में मदद करना
- प्रदूषण नियंत्रण संयंत्रों की लागत में हिस्सेदारी बनाना

मुकदमेबाजी में काफी पैसा लगता है। अन्य विवादों की तुलना में पर्यावरण संबंधी मुकदमेबाजी और भी महँगी है, क्योंकि इसमें विशेषज्ञों तथा तकनीकी प्रमाणों आदि की जरूरत होती है। राज्य के बोर्डों में ऐसी विशेषज्ञता प्राप्त करने की क्षमता और प्रशासनिक शक्तियाँ होनी चाहिए। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के शोध छात्र द्वारा किए गए प्रारंभिक सर्वेक्षण के अनुसार, ज्यादातर राज्य बोर्डों के पास पर्यावरण संबंधी मुकदमा लड़ने के लिए पर्याप्त विशेषज्ञता और धन नहीं है। इसलिए आम प्रवृत्ति यह है कि प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों को समझा-बुझाकर तथा उन पर मामूली दबाव डालकर अदालत के बाहर मामले को निपटा लिया जाए

पर्यावरण संबंधी विवादों को अदालत से बाहर निपटा लेने में बुनियादी तौर से कोई बुराई नहीं है।

वास्तव में, अमेरिका जैसे कुछ विकसित देशों में भी अदालत से बाहर मामले सुलझाने को प्राथमिकता दी जाती है, लेकिन भारत में सरकारी अधिकारियों की पहल पर अदालत के बाहर किए गये समझौतों से देश में भ्रष्टाचार की पुरानी बीमारी और बढ़ सकती है। सरकार की ओर से महँगी और सालों चलने वाली कानूनी कार्रवाई के बजाय बेहतर यह है कि प्रदूषण रोकने के उपायों की लागत सरकार और उद्योग दोनों मिल कर उठाएँ।

भारत में पर्यावरण की स्थिति निश्चित रूप से अच्छी नहीं है, लेकिन कभी-कभी विकास के मुद्दों का पर्यावरण के मुद्दों से तीखा टकराव हो जाता है। पर्यावरण संबंधी समस्याओं को सुलझाने के लिए बनाई गयी प्रशासनिक मशीनरी अपने काम में सफल नहीं रही है। इस बारे में बनाए गए कानून आमतौर पर अपर्याप्त हैं। यों भी देश को अनेक क्षेत्रों में हजारों समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। पर्यावरण की स्थिति ने वर्तमान और भावी पीढ़ियों के सामने तो अस्तित्व की चुनौती खड़ी की है, उसका सामना करने के लिए सबसे जरूरी है कि जीवन के प्रति प्रबल इच्छा शक्ति विकसित की जाए। सरकार और उससे भी ज्यादा भारत के लोगों ने ऐसी प्रबल इच्छा शक्ति दिखायी है। ऐसी इच्छा शक्ति या संकल्प ही समस्या से निपटने का प्रमुख साधन है। इसके होने से कौशल और अनुभव के द्वारा धीरे-धीरे समस्याएँ सुलझ सकती हैं। ऐसा लगता है कि धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से हम कुशलता हासिल कर रहे हैं और हमारे अनुभव भी मजबूत हो रहे हैं।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए खाली स्थान में पर्यावरण संबंधी कानूनों की कमियाँ संक्षेप में बताइए। एक उदाहरण भी दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

23.5 भोपाल गैस दुर्घटना

आपने पर्यावरण संबंधी कानूनों के बारे में पढ़ा है। अब हम औद्योगिक दुर्घटनाओं के इतिहास की भयानकतम दुर्घटनाओं में से एक "भोपाल गैस दुर्घटना" के बारे में पढ़ेंगे। यह दुर्घटना 2 दिसंबर, 1984 को भोपाल के यूनियन कार्बाइड कीटनाशक कारखाने में मिथाइल आइसोसाइनाइड (मिक—MIC) और फॉस्जीन गैस के वाष्पीकरण और रिसाव के कारण हुई। इस दुर्घटना में 5000 लोगों की जानें गईं और करीब 2 लाख लोगों यानि शहर की करीब एक चौथाई जनसंख्या पर इन जहरीली गैसों का असर पड़ा। जिन लोगों पर गैस का असर पड़ा, उन्हें बाद में भी काफी गंभीर बीमारियों और तकलीफों से गुजरना पड़ा।

इस बात के पक्के प्रमाण हैं कि यह भयानक दुर्घटना "मिक" गैस की दोषपूर्ण भंडारण व्यवस्था और यूनियन कार्बाइड निगम द्वारा सुरक्षा के प्रभावी उपाय न अपनाने के कारण हुई।

यूनियन कार्बाइड अमरीका का बहुराष्ट्रीय निगम है। 127 देशों में इसकी 138 सहायक कंपनियाँ हैं। अमरीका में पर्यावरण संरक्षण के लिए कार्य करने वाले लोग रासायनिक उत्पादों के लिए यूनियन कार्बाइड की आलोचना करते रहे हैं। अमरीका में उन्हें ऐसी फैक्टरी बनाने की इजाजत नहीं दी गयी।

बताया जाता है कि कनाडा सरकार ने 1972 में प्रदूषण और लोगों के स्वास्थ्य तथा जीवन के प्रति खतरे को देखते हुए यूनियन कार्बाइड को अपने देश में "मिक" गैस वाला ऐसा ही कारखाना बंद करने का आदेश दिया था। इसी कारखाने को हटाकर 1980 में भोपाल में बनाया गया। यह बड़ी विचित्र बात है कि आस्ट्रेलिया में जिस घातक कारखाने को अवैध मान कर हटा दिया गया, उसे भारत में लगाने के लिए केंद्र और राज्य सरकार ने क्यों स्वागत किया?

मई, 1982 में अमरीका के वर्जीनिया प्रांत के डैनबरी नामक स्थान में स्थित यूनियन कार्बाइड मुख्यालय ने अपने तीन वरिष्ठ अधिकारियों को भोपाल कारखाने में सुरक्षा उपायों की जाँच करने के लिए भेजा। इन विशेषज्ञों ने कारखाने के सुरक्षा उपायों के विभिन्न पक्षों की जाँच करने के बाद अपनी रिपोर्ट में बताया कि—

i) "मिक" गैस श्रमिकों द्वारा टैंक में भरी जाती है, स्वचालित मशीनों से नहीं। इसे भरने में कोई गलती होने की स्थिति में बचाव की कोई वैज्ञानिक व्यवस्था नहीं है।

ii) फॉस्जीन टैंक का दाब मापी यंत्र (प्रेसर गेज) खराब है और इस टैंक में दबाव बताने का कोई यंत्र नहीं लगा है।

"मिक" गैस को 8 डिग्री सेल्सियस से कम ताप पर रखा जाता है। इसका मतलब है कि इसे प्रशीतित स्थिति (रेफ्रीजरेशन) में रखा जाता है। लेकिन कारखाने का प्रशीतन संयंत्र (refrigeration plant) लंबे समय से खराब पड़ा था। गैस-रिसाव की स्थिति में उसे जला देने की प्रणाली भी खराब पड़ी थी।

यूनियन कार्बाइड ने अपने विशेषज्ञों की रिपोर्ट पर कोई ध्यान नहीं दिया और भोपाल कारखाने में सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की। इसी से 2 दिसंबर, 1984 को भयानक दुर्घटना हुई। न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने इस भयंकर दुर्घटना को "भोपोशिमा" यानि लघु-हिरोशिमा कहा।

जरूरी सुरक्षा उपाय करने में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की ऐसी आपराधिक लापरवाही से यह पता चलता है कि ये कंपनियाँ समझती हैं कि विकासशील देशों में वे मनमाने तरीके से प्रदूषण फैलाकर लोगों की जिंदगी और सुरक्षा की परवाह न करते हुए कम से कम लागत पर ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमा सकती हैं।

भोपाल दुर्घटना के लिए, इस कारखाने को चलाने की इजाजत देने वाले सरकारी और भोपाल नगरपालिका के कर्मचारियों और कारखाने के छोटे-बड़े सभी कर्मचारियों सहित सभी अपराधियों पर दंड संहिता के प्रावधानों के अंतर्गत मुकदमें चलाए जा सकते हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 284 का दायरा और अर्थ इतना व्यापक है कि जो लोग लापरवाही में बिना सोचे समझे मानवीय जीवन के लिए घातक, यहाँ तक कि चोट अथवा नुकसान पहुँचाने वाले जहरीले पदार्थों का उत्पादन करते हैं या इसकी इजाजत देते हैं उनको अपराधी माना जा सकता है। कार्बाइड कारखाने को बिना सोचे-समझे लाइसेंस देने वाले या इसका नवीकरण करने वाले अधिकारियों को भी सजा दिलाने के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है। भारत सरकार ने एक अध्यादेश जारी करके भोपाल गैस दुर्घटना के शिकार लोगों की ओर से अमरीका में मुकदमा दायर करने का अधिकार प्राप्त कर लिया है। अमरीका की अदालतों में इस दुर्घटना के पीड़ितों को मुआवजा दिलाने के लिए मुकदमा दायर करने के प्रयास भी किए गए। यह मुकदमा इस आधार पर स्वीकृत नहीं किया गया कि यूनियन कार्बाइड, (इंडिया) यूनियन कार्बाइड निगम की सहायक कंपनी मात्र है, जिसका पंजीकरण भारत में हुआ है, इसलिए इसके सभी दायित्व भारत में ही हैं। इस तरह, भारतीय कंपनी में 50% शेयर होने के बावजूद यूनियन कार्बाइड निगम इस बहाने सारे दायित्व से बच गया कि भारतीय कंपनी—यूनियन कार्बाइड (इंडिया) अमरीका की मूल कंपनी की शाखा नहीं है।

यूनियन कार्बाइड ने एक और धोखाधड़ी की। उसने अपनी अधिकांश संपत्ति एक अन्य कंपनी को हस्तांतरित कर दी ताकि अगर अमरीका में मुकदमा स्वीकार भी कर लिया जाए और यूनियन कार्बाइड को इस मामले में दायित्व सिद्ध भी हो जाए तो भी उसके अपने खाते में भुगतान करने की रकम होगी ही नहीं।

इसी बीच भारत में उच्चतम न्यायालय में मामला दायर किया गया। उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में यूनियन कार्बाइड से गैस दुर्घटना के पीड़ितों के परिवारों को 47 करोड़ डालर का मुआवज़ा देने को कहा, जिसे यूनियन कार्बाइड ने तुरंत स्वीकार कर लिया। यूनियन कार्बाइड ने यह फैसला इसलिए तुरंत मान लिया, क्योंकि अगर यही दुर्घटना किसी विकसित देश में हुई होती तो उसे इसकी तुलना में बहुत बड़ी राशि मुआवज़े में देनी पड़ती। जल्दी ही दुर्घटना से पीड़ित लोगों ने व्यक्तिगत रूप से अनेक मुकदमे दायर कर दिए, जिससे 47 करोड़ डॉलर की स्वीकृत राशि के वितरण में भी विलंब होने लगा। "न्याय दिलाने में देरी करने का मतलब न्याय देने से ही इंकार करना है"—यह कहावत इस मामले में पूरी तरह लागू होती है।

बोध प्रश्न 4

भोपाल गैस दुर्घटना के तीन कारण बताइए।

i) .....

ii) .....

iii) .....

23.6 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि :

- पर्यावरण की बर्बादी रोकने के लिए कानूनों के रूप में नियंत्रक उपायों की जरूरत है।
- प्रदूषण रोकने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कानून बनाए गए हैं।
- भारत के संविधान में पर्यावरण संबंधी कानून बनाए जाने के प्रावधान हैं। राज्य और नागरिकों के प्राथमिक कर्तव्यों में पर्यावरण के संरक्षण और सुधार का दायित्व भी शामिल है। संघ सरकार ने इन्हीं प्रावधानों के आधार पर पर्यावरण को विनाश से बचाने के लिए विभिन्न अधिनियम पारित किए हैं।
- पर्यावरण कानून पूरी तरह कारगर नहीं हैं। इसमें कुछ कमियाँ भी हैं, जिससे इनको प्रभावी तरीके से कार्यान्वयन में बाधाएँ आती हैं।

- यद्यपि इसके लिए विधायी उपाय किए गए हैं और प्रशासनिक ढाँचा भी संतोषजनक है, फिर भी धन की कमी, विशेषज्ञता का अभाव और आम जनता का पूरा सहयोग न मिल पाने से कानूनों को लागू करने में कठिनाइयाँ आती हैं।
- भोपाल गैस दुर्घटना यूनियन कार्बाइड के प्रबंधकों की लापरवाही से हुई। इस दुर्घटना में करीब 5,000 लोग मारे गए और दो लाख से ज्यादा लोगों पर गैस का नुकसानदेह असर पड़ा। भारत के उच्चतम न्यायालय ने गैस पीड़ितों को 47 करोड़ डॉलर मुआवज़ा दिए जाने का निर्णय लिया, जो ऐसी भयानक दुर्घटना और पीड़ितों की तकलीफों को देखते हुए बहुत कम है।

23.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) कालम अ में दिए गए अधिनियमों का कॉलम ब में दिए गए सही वर्षों के साथ मेल कीजिए।

कॉलम अ	कॉलम ब
i) फैक्टरी अधिनियम	क) 1968
ii) कीटनाशक अधिनियम	ख) 1980
iii) जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम	ग) 1948
iv) वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम	घ) 1974
v) वन (संरक्षण) अधिनियम	ङ) 1981
vi) वन्यजीवन (संरक्षण) अधिनियम	च) 1986
vii) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम	छ) 1977

2) नीचे दिए गए खाली स्थानों में निम्न अधिनियमों के कार्य बताइए—

i) जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम

.....

.....

.....

.....

.....

ii) वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम

.....

.....

.....

.....

.....

iii) पर्यावरण संबंधी कानूनों को लागू करने में क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

iv) न्यायालय में इस समय भोपाल गैस दुर्घटना के मामले की क्या स्थिति है? समाचार-पत्रों में प्रकाशित नवीनतम जानकारी के आधार पर उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

23.8 उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर

1 क) 1972, पर्यावरण

ख) भारत

ग) (i) शोर प्रदूषण (ii) सिंचाई (iii) नगर योजना (iv) नुकसान पहुँचाने वाले जीवों का नियंत्रण (v) धुएँ पर नियंत्रण (vi) जल प्रदूषण (vii) वन (viii) वन्यजीवन (ix) तंग बस्तियों की सफाई (x) मनोरंजन

2 कृपया भाग 23.3.2 का दूसरा पैराग्राफ देखें।

3 कृपया भाग 23.4.1 देखें।

4 i) "मिक" टैंक को श्रमिकों द्वारा ही भरा जाता है, स्वचालित मशीनों से नहीं। इस काम में गलती होने पर सुरक्षा के लिए कोई उपकरण नहीं था।

ii) फॉस्जीन टैंक का दाबमापी (प्रेशर गेज) खराब था और टैंक में गैस का दबाव मापने का कोई उपकरण नहीं था।

iii) "मिक" गैस के भंडारण के लिए प्रशीतन संयंत्र (रेफ्रीजरेशन यूनिट) का होना जरूरी था, जो लंबे समय से खराब पड़ा था।

अंत में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1) i—ग

ii—क

iii—घ

iv—ङ

v—ख

vi—छ

vii—च

2) i) जल अधिनियम के अंतर्गत विषैले और नुकसानदेह अथवा प्रदूषक पदार्थों को नदियों और कुंओं में डालने की मनाही है। इसके अंतर्गत ऐसे किसी भी काम को करने की मनाही है, जिससे नदी के सहज प्रवाह में रुकावट आए और प्रदूषण बढ़े। प्रदूषण फैलाने वालों के खिलाफ जल प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड कार्रवाई कर सकते हैं।

ii) वायु अधिनियम मुख्य रूप से वाहनों और उद्योगों से निकलने वाले धुएँ पर नियंत्रण रखता है। केंद्रीय जल संरक्षण और नियंत्रण बोर्ड वायु में प्रदूषक पदार्थों की अनुमेय मात्रा तथा इस बारे में निर्धारित करके वायु अधिनियम को लागू करवाता है।

iii) भारत में पर्यावरण संबंधी कानूनों को लागू करने में धन की कमी और बचाव के उपायों में विशेषज्ञता की कमी से कठिनाइयाँ होती हैं, जनता भी इन कानूनों को लागू करने में सहयोग नहीं करती।

iv) भारत सरकार ने एक अध्यादेश जारी कर भोपाल गैस दुर्घटना के पीड़ितों की ओर से अमरीकी अदालत में क्षतिपूर्ति का मुकदमा दायर किया है। लेकिन अमरीकी अदालत ने इस आधार पर इस मुकदमे को मंजूर नहीं किया कि यूनियन कार्बाइड (इंडिया) स्वायत्त संगठन है और अमरीका की यूनियन कार्बाइड कंपनी की सहायक कंपनी मात्र है। बाद में भारत में उच्चतम न्यायालय में मामला दायर किया गया। उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में यूनियन कार्बाइड से दुर्घटना पीड़ितों के परिवारों के लिए 47 करोड़ डॉलर का मुआवज़ा देने को कहा। अधिकारी अभी तक दुर्घटना के पीड़ित लोगों की पहचान का काम पूरा नहीं कर पाए हैं, जिससे उन्हें अब तक मुआवज़ा नहीं मिल पाया है। उच्चतम न्यायालय के फैसले के खिलाफ भी जल्दी ही कई मुकदमे दायर कर दिए गए, जिससे मुआवज़े की राशि के वितरण में और देरी हो रही है।

इकाई 24 पर्यावरण संबंधित सामाजिक चेतना

इकाई की रूपरेखा

24.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
24.2 सामाजिक चेतना की वर्तमान स्थिति
अनभिज्ञता और सुविज्ञ राय के अभाव के कारण
आम गलत धारणाएं और उनके कारण
24.3 पर्यावरण प्रबंध के लिए सामाजिक चेतना में सुधार की आवश्यकता
कृषि उत्पादकता के संबंध में
उद्योग के संबंध में
स्वास्थ्य के संबंध में
चिन्ता के अन्य क्षेत्र
योजना हस्तक्षेप
24.4 पर्यावरण संबंधी सूचना के प्रसार के तरीके
विद्यार्थियों के बीच शिक्षा के माध्यम से
आम जनता के बीच विभिन्न प्रचार माध्यमों के द्वारा
पर्यावरण प्रबंध से जुड़े कार्यकर्ताओं और अभिमत नेताओं के बीच
24.5 गैर-सरकारी संगठन
पर्यावरण संबंधी शिक्षा प्रदान करने में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका
कुछ महत्वपूर्ण गैर-सरकारी संगठन
24.6 सारांश
24.7 अंत में कुछ प्रश्न
24.8 उत्तर

24.1 प्रस्तावना

पर्यावरण से संबंधित अनेक समस्याओं से सरकार तथा जनता दोनों धीरे-धीरे जागरूक होते जा रहे हैं। यह तेजी से होने वाले औद्योगीकरण और विकास परियोजना का फल है। इस देश में और संसार भर में पर्यावरण ह्रास इतना अधिक है कि इस समस्या के विभिन्न पहलुओं के विषय में चेतना और सुविज्ञता विकसित करने के लिए और अधिक सुव्यवस्थित प्रयासों की आवश्यकता है।

इस इकाई में सबसे पहले हम पर्यावरण के विषय में अनभिज्ञता और गलत धारणाओं के कारणों का विवेचन करेंग। यह कारण पता चल जाने के बाद अनभिज्ञता के क्षेत्रों का पता लगाया जा सकता है। हम कृषि, उद्योग और स्वास्थ्य संबंधी विषयों पर भी विचार करेंगे। पर्यावरण संबंधी मामलों और समस्याओं के प्रति चेतना बढ़ाने के लिए अनेक उपाय करने होंगे। इन उपायों में स्कूलों और कालेजों में विद्यार्थियों की औपचारिक शिक्षा, आम जनता के लिए रेडियो, दूरदर्शन, समाचार-पत्र आदि जैसे प्रचार साधनों का उपयोग और पर्यावरण प्रबंध के क्षेत्र में काम कर रहे कार्यकर्ताओं और अभिमत नेताओं के लिए विशिष्ट अभिविन्यास और प्रशिक्षण कार्यक्रम सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ के विषय में यहां आपको जानकारी मिलेगी। अगली इकाई में आप पर्यावरण प्रबंध के विषय में चेतना स्तर के संबंध में और उसे बढ़ाने के लिए सुझावों के संबंध में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- आम जनता के बीच पर्यावरण के विषय में अनभिज्ञता और उदासीनता के मुख्य कारण बता सकेंगे,
- पर्यावरण संरक्षण और प्रबंध के विषय में गलत धारणाओं के कुछ उदाहरण दे सकेंगे,
- कृषि, उद्योग और स्वास्थ्य के कुछ उदाहरण देते हुए, तर्क कर सकेंगे कि पर्यावरण प्रबंध के लिए सामाजिक चेतना आवश्यक है, तथा
- जनता के विभिन्न वर्गों में पर्यावरण संबंधी सूचना के प्रचार-प्रसार के लिए उपाय सुझा सकेंगे।

24.2 सामाजिक चेतना की वर्तमान स्थिति

पर्यावरण के विषय में सामाजिक चेतना एक अभिनव घटना है। प्रारंभ में पर्यावरण का आशय केवल भौतिक, रासायनिक तथा जैविक पहलुओं से था। आजकल इसमें मनुष्यकृत सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और प्रौद्योगिक पहलू भी शामिल हैं। ये सभी पहलू जटिल तरीके से अंतःसम्बद्ध हैं और इन्हें अलग-अलग मानकर विचार नहीं किया जा सकता। 1950 से पर्यावरण के विषय में चेतना उत्पन्न करने के सीमित प्रयास किए गए हैं। ये प्रयास मुख्यतः पर्यावरण के संरक्षण और परिरक्षण की दिशा में किए गए। इतिहास बताता है कि जहां तक "संभ्रांत वर्ग" में चेतना उत्पन्न करने का संबंध है, इस दृष्टिकोण का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा। लेकिन यह आन्दोलन आज भी जन आन्दोलन नहीं बन पाया है।

पर्यावरण संबंधी संसाधनों के संरक्षण और पुनरूज्जीवन को सुग्राह्य बनाने के लिए पर्यावरण के विषय में चेतना आवश्यक है। पर्यावरण संरक्षण आज की महती आवश्यकता है। निम्नीकृत पर्यावरण की पुनः प्रतिष्ठा, यद्यपि तुलनात्मक दृष्टि से कठिन है, पर उतना ही आवश्यक उपाय भी है। इसी संदर्भ में पर्यावरण के विषय में सामाजिक चेतना उत्पन्न करने के विचार उठे हैं। ऐसा समझा जाता है कि मानव समाज की खुशहाली के लिए पर्यावरण के लगातार सुधार और युक्ति मूलक उपयोग के लिए इस समस्या के अनेक पहलुओं के संबंध में व्यापक और गतिशील दृष्टिकोण आवश्यक है।

24.2.1 अनभिज्ञता और सुविज्ञ राय के अभाव के कारण

पर्यावरण संबंधी शिक्षा और सामाजिक चेतना के विषय में कुछ लेख उपलब्ध हैं। इससे यह पता चलता है कि पर्यावरण संबंधी चेतना में वृद्धि हो रही है और इसे विकसित करने के लिए कार्यनीतियां आजमाई जा रही हैं। तथापि, चेतना के वर्तमान स्तर के संबंध में सही स्थिति पता नहीं है। आम जनता को पर्यावरण संबंधी अनेक समस्याओं की अधिक जानकारी नहीं है, क्योंकि पर्यावरण संबंधी शिक्षा के विषय में निर्णय करने के कार्य का और निर्णयों का तथाकथित "योजनाकारों" और समाज के संभ्रांत वर्ग के सीमित दायरे से बाहर प्रसार बहुत कम हुआ है।

यह समस्या उन विकासशील देशों में और विकट है जो गरीबी और निरक्षरता के दुष्प्रभावों से पहले ही पीड़ित हैं। ये दोनों ही अनभिज्ञता के कारण हैं। अधिकांश आम जनता के लिए पर्यावरण संबंधी विषय अमूर्त हैं क्योंकि उन्हें तो अपनी रोजमर्रा की जरूरते पूरी करने पर ही अपना ध्यान केंद्रित करना जरूरी होता है। ये लोग अपनी बुनियादी जरूरतों से वंचित होने की स्थिति में किसी भी सामाजिक समस्या पर विचार करने में समर्थ नहीं है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : जब भी हम विकासशील देशों में पर्यावरण की चर्चा करते हैं, हमारा आशय शोषण और संघर्षों तथा संसाधनों के अति दोहन की ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिणाम से होता है। सामान्यतः प्राकृतिक संसाधनों का औपनिवेशिक दोहन सांभ्रांत समाज के अंग के रूप में प्रचलित हो गया। बाद में, उत्तर-औपनिवेशिक काल में देशी जनता के विकासात्मक प्रयासों के परिणामस्वरूप संसाधनों का दोहन जारी रहा। औद्योगीकरण से सुदूरतम ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों सहित चारों ओर पर्यावरण संसाधनों पर शहरी पूंजी का अधिक्रमण हुआ।

विकास की संकल्पना से उत्पन्न अंतर्विरोध : विकासशील समाजों में जो नई प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है, वह है संसाधनों तक सीमित पहुंच वाले लोगों और गरीबों के लिए विकास का अंतर्विरोध। विकास प्रक्रिया से वे बाजार के नजदीक आते हैं और उन्हें उत्पादन और अपने श्रम की नकद बिक्री करने में प्रोत्साहन मिलता है। दूसरी ओर, रहन-सहन का देशी तरीका नई मांगों के साथ असंगत हो जाता है। खाद्य अथवा ऊर्जा में आत्मनिर्भरता नहीं रहती। श्रम-विभाजन के सिद्धान्त से लोग दूसरों पर और सार्वजनिक सेवाओं पर अधिक निर्भर हो जाते हैं। गांवों से शहरों की ओर पुनर्वास से समस्या और जटिल हो जाती है। शहरी तंग बस्तियां इस विरोधाभास का ही परिणाम है। मनुष्य की जरूरतों और पर्यावरण संसाधनों के बीच जो संतुलन विद्यमान था, वह समाप्त हो जाता है। यह घटनाक्रम संसार भर में कहीं भी किसी भी बड़े शहर के चारों ओर देखा जा सकता है। विकास और अपकर्ष सामान्यतः साथ-साथ चलते हैं।

आवश्यकताओं और पूर्तियों के बीच संतुलन बनाए रखना : पर्यावरण प्रबंधन मानव अनुकूलन की प्राकृतिक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। किसी जाति की उत्तरजीविता उसकी मांगों और पर्यावरण संसाधनों के बीच संतुलन बनाए रखने में उसकी योग्यता पर निर्भर करती है। आदिम समाजों ने ऐसे उपाय विकसित किए जिससे इस परिदशा को प्राप्त किया जा सके। ये तरीके सांस्कृतिक प्रतिमान बन गए। संस्कृतियों की बुद्धिमत्ता मांगों और पूर्तियों के बीच संतुलन बनाए रखने में और लगातार अनुकूलन सुनिश्चित करने में निहित होती है।

संस्कृति उन उपायों, जिनसे पर्यावरण के साथ किस तरह व्यवहार किया जाए कि नकारात्मक संतुलन से बचा जा सके, का निर्धारण करती है। इस तरह संस्कृति तथा पारिस्थितिकी सभ्यता के विकास में पूरक भागीदार रहे हैं। वर्तमान इतिहासकारों के प्रेक्षण से पता चलेगा कि वर्तमान पारिस्थितिक संतुलन भंग अनिवार्यतः

सभ्यता-भंग ही है। संस्कृति की संकल्पना तथा इसकी भूमिका और प्रासंगिकता का खंड 1 में अधिक विस्तार से विवेचन किया गया था।

ऐतिहासिक प्रक्रियाओं, विकास और पारिस्थितिक संतुलन का ज्ञान समाज के सभी वर्गों में समान नहीं है। हमारी शिक्षा प्रणाली पाठ्यक्रम को जीवन की वास्तविक समस्याओं से संबद्ध करने में असफल रही है। किसी न किसी स्तर पर पढ़े गए इतिहास अथवा अर्थशास्त्र से विद्यार्थी इन समस्याओं का सामना करने में समर्थ नहीं हो पाता। पर्यावरण विषय को अभी तक स्कूलों और कालेजों में उचित महत्व नहीं मिला है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण और पारिस्थितिकी के क्षेत्र में व्यापक अनभिज्ञता के कुछ और विशिष्ट कारण भी हैं। इनमें से कुछ नीचे दिए जा रहे हैं :

i) चिकित्सा, इंजीनियरी, प्रौद्योगिकी, कृषि, अर्थशास्त्र के विकास के पाठ्यक्रम के पर्यावरण संबंधी विषयों की जानकारी प्रदान करने में कुल मिलाकर, असफल रहे हैं।
ii) विकास की योजना बनाने वालों को इस बात का प्रशिक्षण अथवा शिक्षा नहीं मिली होती है कि वे अपने निर्णयों के पर्यावरण संबंधी परिणामों का पूर्वानुमान कर सकें। यह बात प्रशासकों और राजनीतिज्ञों दोनों पर समान रूप से लागू होती है। संभवतः यही कारण है कि यूनियन कार्बाइड के नाशक जीवनाशी संयंत्र की स्थापना भोपाल में अत्यधिक आबादी वाले क्षेत्र के इतने पास हुई।
iii) कभी-कभी राजनीतिज्ञ, अभिमत नेता या प्रशासक कुछ खास कारणों से जानबूझकर जनता से सूचना छिपाते हैं, अथवा उन्हें गुमराह करते है। यह आजकल नर्मदा घाटी परियोजना के मामले में देखा जा सकता है। पहले, स्वतंत्रता के तुरंत बाद, खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि को प्राथमिकता दी गई थी। उर्वरकों और नाशक जीवनाशी रसायनों के प्रयोग को इनके अंधाधुंध अनुप्रयोग के प्रतिकूल परिणामों पर विचार किए बिना प्रोत्साहन दिया गया।
iv) जो लोग अपना व्यापार अथवा उद्योग शुरू करते हैं, उन्हें मात्र अपने आर्थिक लाभ का ही ध्यान रहता है। वे समाज अथवा पर्यावरण के हितों के प्रति अपनी निर्दय उपेक्षा के कारण पर्यावरण संबंधी चिन्ताओं के विषय में सूचनाएं नहीं देते। आसपास की नदियों में जहर उगलने वाले अनेक रासायनिक संयंत्रों के मामले में ऐसी ही अवस्था है।

24.2.2 आम गलत धारणाएं और उनके कारण

पर्यावरण के विषय में व्यापक अनभिज्ञता से इस क्षेत्र में अनेक गलत धारणाओं और अंधविश्वासों से प्रश्रय मिलता है। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

1) बीमारियां देव अथवा दानवों की देन हैं और ये संक्रमण से नहीं होती हैं।
2) अकाल, सूखा अथवा बाढ़, स्थानीय लोगों के पापों के लिए भगवान द्वारा दिए गए दण्ड के स्वरूप हैं।
3) वर्षा भगवान के अनुग्रह पर निर्भर है।
4) शहर तो प्रदूषित हैं, पर गांव नहीं है। वास्तव में, गोबर और लकड़ी जलाने से जो धुंआ होता है उससे उतना ही प्रदूषण होता है।
5) शहर के प्रदूषित होने का कारण औद्योगिक कचरा है। वास्तव में, शहरों के वायु प्रदूषण के लिए स्वचालित वाहन जिम्मेदार हैं।
6) ऐसा माना जाता है वन औद्योगिक और शहरी जरूरतों के कारण लुप्त हो रहे हैं।
7) इस विषय में भी गलत धारणाएं हैं कि वास्तव में दोषी कौन हैं। उदाहरण के लिए, भोपाल में यूनियन कार्बाइड के मामले में दोषी उद्योगपति (कम्पनी) था अथवा मध्य प्रदेश सरकार थी, अथवा भोपाल नगर निगम था या कोई अन्य था अथवा वे सभी उत्तरदायी थे। भिन्न-भिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न राय हैं।

सही सूचना के अभाव में गलत धारणा पनपती हैं। जब तक सभी स्तरों पर शैक्षिक कार्यक्रयों में इस विषय को उचित महत्व नहीं दिया जाता, ऐसी गलत धारणाएं जारी रहेगी।

बोध प्रश्न 1

क) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :
   i) विकासशील देशों में पर्यावरण के विषय में अनभिज्ञता ..... और ..... के कारण हैं।
   ii) पर्यावरण के विषय में गलत धारणाएं ..... और ..... के कारण हैं।
   iii) हमारी शिक्षा प्रणाली में पर्यावरण के संबंध में मुख्य कमी ..... है।
   iv) पर्यावरण संबंधी चेतना जगाने के लिए ..... और ..... का ज्ञान जरूरी है।

ख) नीचे पर्यावरण के संबंध में कुछ कथन दिए जा रहे हैं इनमें से कुछ गलत धारणाएं हैं और कुछ तथ्यात्मक विवरण हैं। इन्हें तदनुसार वर्गीकृत करें।
   i) वर्षा भगवान के अनुग्रह पर निर्भर है। .....
   ii) कुछ बीमारियां दानवों की देन हैं, ये संक्रमण से नहीं फैलती। .....
   iii) शहर के वायु प्रदूषण का मुख्य स्रोत मोटरगाड़ी यातायात है। .....

iv) अकाल, सूखा और बाढ़ लोगों के पापों की सजा है। .....

v) गोबर और लकड़ी जलाने से धुंआ पैदा होता है जिससे प्रदूषण फैलता है। .....

24.3 पर्यावरण प्रबंध के लिए सामाजिक चेतना में सुधार की आवश्यकता

एक चीनी कहावत है कि "यदि आप एक वर्ष के लिए योजना बनाते हैं तो चावल उगाएं और यदि 10 वर्ष के लिए योजना बनाते हैं तो वृक्ष लगाएं, यदि 100 वर्ष के लिए योजना बनाना चाहते हैं तो लोगों को शिक्षित बनाएं।" यदि स्थिति में सुधार लाना है तो पर्यावरण प्रबंध के लिए सामाजिक चेतना उत्पन्न करने के लिए कार्य की इस नीति को अपनाना होगा। अब तक पर्यावरण ऐसा विषय रहा है जिस पर प्रचार माध्यमों द्वारा बहुत अधिक चर्चा की गई है और कयामत के दिन का खाका खींचा गया है। ऐसे सनसनी-खेज़ दृष्टिकोण पत्र-पत्रिकाओं में मुख्य स्थान प्राप्त करते हैं तथापि पर्यावरण के पुनर्त्थान और परिरक्षण के विषय में चेतना को जगाने के लिए आवश्यक मनोवृत्ति का अभाव है।

पर्यावरण प्रबंध के लिए एक कार्य नीति विकसित करने की आवश्यकता है। यह ऐसी भाषा में व्यक्त होनी चाहिए जो आम जनता को पर्यावरण संबंधी शिक्षा की प्रासंगिकता उनकी रोजमर्रा की जिन्दगी के साथ स्थापित करते हुए रचनात्मक तरीके से प्रभावित कर सके। आदमी की मुख्य जरूरतें हैं रोटी, कपड़ा, मकान और मनोरंजन। खाद्यान्न उत्पादन, जीविकोपार्जन के उन्नत तरीके, रोजमर्रा की जिन्दगी पर प्रौद्योगिकी के प्रभाव तथा इन सभी विकासों का स्वास्थ्य पर प्रभाव के संबंध में पर्यावरण संबंधी शिक्षा आम आदमी के लिए अधिक प्रासंगिक होगी।

24.3.1 कृषि उत्पादकता के संबंध में

पर्यावरण के अनुरक्षण में वनों की भूमिका निर्विवाद है, लेकिन कृषि की आवश्यकता पर भी कभी किसी ने विवाद नहीं उठाया है वर्तमान सभ्यता की विकास प्रक्रिया में कृषि सबसे पहला कार्य था। पर्यावरण के संबंध में आज चिन्ता का मुख्य कारण वनों और कृष्य भूमि के बीच तेजी से बदलता जा रहा संतुलन है। आज भारत में कृष्य भूमि 1,450 लाख हैक्टेयर है जबकि संरक्षित वन क्षेत्र 350 लाख हैक्टेयर है। जब मानव ने कृषि कार्य शुरू किया था, तब पर्यावरण पर इसके प्रतिकूल प्रभाव की बहुत कम आशंका थी। पारम्परिक कृषि अधिकतर ऊर्जा के समाप्त न होने वाले नवीकरणीय स्रोतों, सौर ऊर्जा, वर्षा, पशु अवशिष्ट पदार्थ और उस पर सूक्ष्मजीवी क्रिया जिससे उसका अपघटन होता है, पर आधारित रही है।

कृषि में औद्योगिक निवेषों जैसे रासायनिक उर्वरक, पीड़क जीवनाशी दवाओं, और कृषि मशीनरी की संकल्पना बिल्कुल नहीं थी। आज की बढ़ती खाद्यान्न की जरूरतों के कारण मनुष्य कृषि को आधुनिक बनाने और इसे औद्योगिक निवेषों पर निर्भर और बड़ी मात्रा में ऊर्जा पर निर्भर बनाने के लिए बाध्य हो गया है। इस स्थिति के साथ-साथ अधिकतर विकासशील देशों में, जिसमें भारत भी शामिल है, जनसंख्या में वृद्धि भी हुई है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि यदि कृषि के नए तरीकों से समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं तो पारस्परिक प्रणाली फिर से अपना ली जाए। संभव समाधान की चर्चा करने से पहले उस प्रक्रिया पर विचार कर लेना चाहिए जो आज की स्थिति के लिए उत्तरदायी है।

1) भूमि उपयोग स्वरूप : भारत में भूमि उपयोग की नीति अर्थ तंत्र से निर्देशित हुई है। बढ़ती हुई जनसंख्या के दबाव के कारण भूमि पर अधिक से अधिक गहन खेती करनी पड़ती है। जिससे उत्पादकता को खतरा पैदा होता है। असावधानी से लिए गए उपयोग से भूमि को हानि पहुंची है और इसके परिणामस्वरूप वनभूमि और वनों की गुणता और उपलब्ध मात्रा में कमी आई है। भूक्षरण और वनोन्मूलन से समस्या और अधिक गम्भीर हो गई है। अनेक कारणों के मृदा भी वर्ष दर वर्ष समाप्त अथवा खराब होती जा रही है। कृषि उपादेयता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

भूमि उपयोग के संबंध में सुनियोजित नीति भी शुरू करने के लिए आज कोई समेकित और विश्वस्त आंकड़े अथवा सूचना उपलब्ध नहीं है।

2) जल संसाधन : पानी मुख्य जीवन रक्षी तंत्र होने के साथ-साथ कृषि उत्पादकता में एक अभिन्न निवेष भी है। इसके गलत प्रयोग से भूक्षरण और निम्नकोटिकरण हो सकता है जिसका लोगों के जीवन और फसलों की उपज पर दुष्प्रभाव पड़ सकता है।

भारत में जल संसाधनों की विविधीकृत स्थिति है। उत्तर भारत की अधिकतर नदियों में जल की मात्रा बर्फ पिघलने से बढ़ती है, पर दक्षिण भारत की नदियों को यह लाभ नहीं मिला है। वे भू-धरातल प्रबंध पर निर्भर हैं। भारत में लगभग 70% क्षेत्र जल से प्रभावित है अर्थात् पानी की कमी अथवा बाढ़ से। निम्नलिखित कारणों से यह समस्या और गंभीर हो जाती है।

i) राष्ट्र की जल क्षमता के संबंध में अनभिज्ञता केवल आम-आदमी में ही नहीं है। प्रबुद्ध और प्रमुख व्यक्ति भी यही मानते हैं कि पानी प्रचुर और असीमित मात्रा में है।

ii) जल संरक्षण और जल प्रबंध की संकल्पना अभी हमसे कोसों दूर है।

तमिलनाडु में हाल के वर्षों में पानी की चिरकालिक कमी आने वाले वर्षों के लिए चेतावनी का संकेत है।

3) सिंचाई के स्वरूप : भारत में वर्षा का स्वरूप ऐसा है जिसका पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता। इस समस्या के हल के लिए सिंचाई योजनाएं विकसित की गई हैं। आज लगभग 447 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध हैं। एक ओर तो, उपज के रूप में इनके प्रतिफल अर्थात् पूंजी के अनुरूप वित्तीय लाभ के संबंध में हमें पूर्ण विश्वास नहीं है दूसरी ओर, जो विशाल क्षेत्र जलाशयों के कारण जलग्रस्त हो गए थे, वे सड़कें और बस्तियां बनने से नष्ट हो गए। ये ऐसी परियोजनाओं के उप प्रभाव हैं। इससे कृष्य भूमि में कमी हुई है, स्थानीय लोगों का विस्थापन हुआ है और वह स्थान छोड़ने को विवश होना पड़ा है।

4) सामाजिक चेतना का प्रश्न : उपरोक्त विवेचन से पता चलता है कि बढ़ती हुई कृषि उपादेयता का विषय-वस्तु होना इसके प्रभावों और संबंधित लोगों के वर्गों की दृष्टि से बहुत व्यापक है। एक किसान अथवा ग्रामीण, जो प्रभावित होने वाला आसन्न व्यक्ति है, विनाश और विकृति की प्रक्रिया में उतना ही अंतर्ग्रस्त है जितना राष्ट्रीय स्तर पर योजनाकार अंतर्ग्रस्त है। इसलिए चिन्ता विश्व स्तर पर भी दिखाई देती है और सूक्ष्म स्तर पर भी।

24.3.2 उद्योग के संबंध में

हरित क्रांति एक तरीके से औद्योगिक विकास का परिणाम है। बढ़ती हुई खाद्यान्न की मांग के कारण अधिक उपज के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया गया। उर्वरक, रसायन, फाउंड्री आदि जैसे संबद्ध उद्योग अस्तित्व में आए। यद्यपि तकनीकी प्रक्रिया कुछ ही लोगों के हाथों में पूंजी और प्रौद्योगिकी के संकेंद्रण पर निर्भर है, पर इसके बाह्य प्रभाव बहुत व्यापक है। इस विकास से एक ओर तो बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों का तेज गति से दोहन होता है और दूसरी ओर प्रदूषकों का उत्पादन हुआ है। परिणाम यह है :

1) जैसे-जैसे औद्योगीकरण में वृद्धि होती है, प्रदूषणकारी सामग्री तेजी से बढ़ती है। विकासशील देश प्रदूषणकारी उत्पादों के कु-प्रबंध की समस्या से ग्रसित रहते हैं। विकसित देशों पर कारखानों, वाहनों आदि से निकलने वाले प्रदूषणकारी अपशेषों के निस्राव आदि का दुष्प्रभाव पड़ता है। इसका उदाहरण है, सड़कों पर दौड़ने वाले बड़ी संख्या में वाहन, अपशिष्ट औद्योगिक उत्पादों का नदियों में फेंका जाना, विषैले पदार्थों के संबंध में क्या कार्यवाई की जाए इसके लिए कोई उपयुक्त प्रणाली न होना, और प्लास्टिक के तथा टिन के डिब्बों आदि जैसी अवशिष्ट सामग्री का अत्यधिक मात्रा में जमा होना।

2) प्रदूषण की लागत : प्रदूषण केवल जन स्वास्थ्य की दृष्टि से ही एक समस्या नहीं है, अपितु प्रदूषण कम करने पर जो व्यय होता है और संसाधनों की गुणता तथा मात्रा में ह्रास होता है, उस दृष्टि से भी यह अनेक समस्याएं उत्पन्न करता है। यह आम अनुभव है कि औद्योगिक क्षेत्रों के चारों ओर बनाई गई हरी पट्टियां विलासिता बनती जा रही हैं। लोग या तो पारिस्थितिक असन्तुलन से पीड़ित होते हैं अथवा दुर्लभ पशु पक्षियों के लुप्त होने से या फिर पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने के लिए वन्य जीवन विहार और राष्ट्रीय पार्कों के अनुरक्षण पर खर्चा करना पड़ता है।

औद्योगीकरण से मनुष्य को पर्यावरण में अधिस्थानिक धात्विक अपद्रव्यों का सामना करना पड़ रहा है। दूसरे शहरीकरण भी हुआ है, जिससे तंग बस्तियां बन रही हैं। इनका केवल लोगों के आम स्वास्थ्य पर ही दुष्प्रभाव नहीं पड़ा है अपितु सभी नगर निवासियों के जीवन की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

24.3.3 स्वास्थ्य के संबंध में

उपर्युक्त तर्क पर आगे विचार करें तो हम देखेंगे कि स्वास्थ्य संबंधी चिन्ता एक ओर तो औद्योगिक विकास के कारण उत्पन्न हुई है और दूसरी ओर अधिक कृषि उत्पादकता की आवश्यकता से उत्पन्न पारिस्थितिक असन्तुलन से उत्पन्न हुई है। यद्यपि लक्ष्य (साध्य) बुरे नहीं है, तथापि उन्हें प्राप्त करने के लिए जो साधन बनाए गए हैं वे सुयोजित और सुविचारित नहीं है। स्वास्थ्य के संबंध में कुछ चिन्ताएं प्रदूषित वायु, अस्वास्थ्यकर आवास, और खान-पान की अस्वास्थ्यकर वस्तुओं के कारण उत्पन्न हुई हैं। विकास, आधुनिकीकरण और शहरीकरण से जीवन में जटिलता और मानसिक तनाव बढ़ता है जिससे सामुदायिक स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

1) शहरीकरण : एक ही जगह भीड़ करने की संसार-व्यापी प्रवृत्ति से अनेक शहरों में जनसंख्या बहुत घनी हो गई है। लोग जीविका के वैकल्पिक स्रोतों की खोज में गांव छोड़कर शहरों की ओर भागते हैं। इस अनियोजित वृद्धि से जीवन की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। शहरों में जनसंख्या जिस तेजी से बढ़ी है, पानी, बिजली, मकान और खाद्यपदार्थों की सुविधा उतनी तेजी से नहीं सुलभ हो सकी है। पिछले वर्षों में बेरोजगारी से जीवन स्तर और भी अधिक अस्वास्थ्यकर हो गया है। शहरों की सीमाओं पर सांद्रित

अपशिष्ट पदार्थों के ढेर लग गए हैं जिन्हें प्राकृतिक तरीके से जलाया अथवा अपघटित नहीं किया जा सकता। इससे वायु प्रदूषण हुआ है तथा स्वास्थ्य के लिए अनेक खतरे पैदा हो गए हैं।

2) **बीमारियों का उच्च आपात** : पर्यावरण संबंधी सफाई में कमी और सुरक्षित पेय जल की अपर्याप्त पूर्ति शहरों में, खासतौर पर तंग बस्तियों में बीमारी का एक मुख्य कारण है। हाल ही में राजधानी दिल्ली को इस समस्या का सामना करना पड़ा था और देश के अन्य भागों से भी ऐसे समाचार मिले हैं। जो लोग गांवों से शहरों में रहने आते हैं, उन्हें अचानक ग्रामीण क्षेत्रों से अत्यधिक भिन्न परिवेशिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसा आपने इस पाठ्यक्रम के खंड 4 में पढ़ा है इससे कई भावनात्मक समस्याएं भी पैदा हो जाती हैं जिनके परिणामस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में अपराध, अपचार तथा मानसिक रोग होते हैं।

3) **कुपोषण** : जैसा पहले बताया जा चुका है, रहन-सहन की अस्वास्थ्यकर स्थितियों और आय के अनिश्चित स्रोत के कारण शहरी क्षेत्र में कुपोषण की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इनसे स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं भी उत्पन्न होती हैं। यह समस्या तब और भी गम्भीर हो जाती है जब विकासशील देशों में स्वास्थ्य की कोई राष्ट्रीय व्यवस्था नहीं होती। परिणामस्वरूप चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध नहीं होती अथवा अपर्याप्त होती हैं।

24.3.4 चिन्ता के अन्य क्षेत्र

कृषि, उद्योग और स्वास्थ्य क्षेत्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य क्षेत्र भी हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। ये क्षेत्र हैं : पर्यावरण संबंधी नैतिक सिद्धान्त, पर्यावरण संबंधी कानून, पर्यावरण संबंधी लोक प्रशासन, वन, वनभूमि और चरागाह का अनुरक्षण, वन्यपशु, पक्षी एवं सूक्ष्मजीवियों का परिरक्षण, गंदी शहरी बस्तियों का नियमन। इनमें से अधिकतर विषयों पर इस पाठ्यक्रम की पिछली इकाइयों में विवेचन किया जा चुका है। इन सब विषयों में विशेष चेतना की आवश्यकता है।

24.3.5 योजना हस्तक्षेप

जनसंख्या में वृद्धि बढ़ती हुई खपत और अपवर्ज्य अवशिष्ट सामग्री की बढ़ती हुई मात्रा के बीच जीवन की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए अनुशासनबद्ध मानव निर्णयों की आवश्यकता है। स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक सभी स्तरों पर मानव हस्तक्षेप अपरिहार्य हैं। यह हस्तक्षेप तदर्थ नहीं हो सकते। इस बात पर अवश्य बल दिया जाना चाहिए। इन्हें निम्नलिखित से निर्देशित होना जरूरी है :

1) मनुष्य के पर्यावरण से संबंध के नैतिक सिद्धान्त जिनमें अपने स्वार्थ की अपेक्षा सामान्य कल्याण पर बल दिया गया हो तथा दुरुपयोग के स्थान पर संरक्षण को महत्व दिया जाए।
2) हस्तक्षेप के प्रत्यक्ष लाभ भोगियों को निम्नकोटि कारण प्रभाव के नियंत्रण के लिए और अवक्रमित पर्यावरण के पुनरुद्धार के लिए उत्तरदायी ठहराया जाए।
3) सामान्य जनता को किसी भी ऐसे अपरिहार्य प्रभावों के प्रति जागरूक किया जाए जो पर्यावरण के अधिक्रमण के कारण हो सकते हैं और उनका सामना करने के लिए जनता की सहायता की जाए ताकि प्रतिकूल प्रभाव कम से कम हों।

ये रक्षोपाय तभी संभव हैं जब बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाया जाए और अधिक्रमिक राष्ट्रीय नेटवर्क के माध्यम से समाज के सभी वर्गों पर निर्देशित किया जाए।

बोध प्रश्न 2

क) पर्यावरण संबंधी चिन्ता के मुख्य क्षेत्र बताएं।

.....

.....

.....

ख) उद्योग से संबंधित दो प्रमुख समस्याएं कौन सी हैं?

.....

.....

ग) स्वास्थ्य से संबंधित दो मुख्य समस्याएं कौन सी हैं?

.....

.....

24.4 पर्यावरण संबंधी सूचना के प्रसार के तरीके

पर्यावरण संबंधी चेतना के लिए युवा पीढ़ी तथा वृद्ध पीढ़ी दोनों के लिए शिक्षा अनिवार्य है। साथ ही यह शहरी तथा ग्रामीण दोनों लोगों के लिए भी आवश्यक है। पर्यावरण संबंधी शिक्षा जहां आधार स्तर पर लाभभोगियों के लिए उपयोगी और आवश्यक है, वहीं यह नीति-निर्माताओं, निर्णायकर्ताओं और परियोजना को कार्यान्वित करने वालों के लिए भी उपयोगी और आवश्यक है। अतः पर्यावरण संबंधी शिक्षा इन विभिन्न श्रेणियों के लोगों को औपचारिक शिक्षा पद्धति तथा प्रचार साधनों के माध्यम से दी जानी चाहिए।

24.4.1 विद्यार्थियों के बीच शिक्षा के माध्यम से

भारत में शिक्षा मुख्यतः राज्य का विषय है और इस संबंध में उत्तरदायित्व केंद्र और राज्य सरकारों के शिक्षा मंत्रालयों का है। शिक्षा प्रणाली दो मुख्य चरणों में विभाजित हैं—स्कूल शिक्षा और विश्वविद्यालय शिक्षा। आइए, देखें पर्यावरण संबंधी शिक्षा का इन दो स्तरों पर क्या स्थान है।

स्कूल स्तर : स्कूल स्तर पर पर्यावरण संबंधी शिक्षा के विषय में सामाजिक चेतना के निर्माण के लिए चार घटक आवश्यक है। ये हैं—चेतना, जीवन की वास्तविक स्थितियों का ज्ञान, संरक्षण की संकल्पनाएं और धारणीय विकास। इन चारों को आगे प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर अपेक्षाओं की दृष्टि से समायोजित किया जा सकता है।

चेतना का अर्थ है—व्यक्ति को पर्यावरण के भौतिक, सामाजिक और सौंदर्य विषयक पहलुओं से जागरूक बनाना। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पृथ्वी पर असंख्य प्रजातियों में से मनुष्य ही अकेला ऐसा है जो जीवन रक्षी तंत्र के छः तथ्यों—वायु, जल, भूमि, वनस्पति, जंतु और सूर्य का प्रकाश—से संबद्ध है। ये तत्व मानव जाति तथा अन्य पशु-पक्षियों के कल्याण के लिए अनिवार्य हैं।

जीवन की वास्तविक स्थितियां मनुष्य को पर्यावरण के और निकट लाती हैं। ये स्थितियाँ अवस्थिति विशिष्ट हैं जिनमें भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न पर्यावरण पहलुओं पर बल दिया जाता है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे राज्यों में औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों के कारण वायु और जल प्रदूषण पर बल देने की आवश्यकता है, पर हिमालय पर्वतमाला में विद्यार्थियों को वनोन्मूलन और पशुओं की चराई के प्रतिकूल प्रभावों से संबंधित जीवन की वास्तविक स्थितियों का ज्ञान आवश्यक है। कृषि आधारित क्षेत्रों में कृषि पद्धतियों के कारण होने वाले प्रदूषण पर बल दिया जा सकता है।

जहां तक संरक्षण और धारणीय विकास का संबंध है, मुख्य सकेंद्रण संसाधनों के उपयोग पर होगा उनके दोहन पर नहीं। उपयोग का अर्थ है, संसाधनों की दीर्घावधिक धारणीयता। जल, भूमि और वायु जैसे संसाधनों के संबंध में जैसा पहले विचार था कि ये असीमित है, अब इसके विपरीत उनके परिमित स्वरूप पर और इस प्रकार जैव तंत्रों की वृद्धि की सीमाओं पर बल दिया जाएगा। सतत विकास के लिए यह जरूरी है कि संसाधनों का उपयोग केवल वर्तमान पीढ़ी द्वारा ही न किया जाए बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए उनका परिरक्षण भी किया जाए ताकि जीवन लम्बी अवधि तक चलाया जा सके। जनसंख्या वृद्धि और इसकी योजना भी इसी चिंतन के अंग हैं। प्राथमिक स्तर पर सबसे अधिक बल चेतना पर दिया जाएगा और इसके बाद जीवन की वास्तविक स्थिति और संरक्षण पर बल दिया जाएगा। इससे बच्चा बाद के चरण में सतत विकास की आवश्यकता समझ सकेगा। बच्चे को पर्यावरण के प्रति केवल संवेदनशील बनाने का प्रयास किया जाएगा। निम्न माध्यमिक चरण से आगे चेतना पर संकेंद्रण कम होता जाएगा और जीवन की वास्तविक स्थितियों, संरक्षण और धारणीय विकास के विषय में वर्धित जानकारी पर संकेंद्रण अधिक होता जाएगा और उच्चतर माध्यमिक चरण पर अनेक कारकों की अपेक्षा संरक्षण को प्राथमिकता दी जाएगी। कार्य प्रणालियों में प्रेक्षण से लेकर व्यावहारिक अनुभव और कार्योन्मुख प्रतिपुष्टि सम्मिलित होंगी। ख्रोशू ने (1986) पर्यावरण संबंधी स्कूल तथा कालिज शिक्षा का सार इस प्रकार तालिका 24.1 में प्रस्तुत किया है।

स्कूल स्तर के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने पाठ्यक्रम बनाने, उपयुक्त पाठ्यपुस्तकें और मार्गदर्शिका, चार्ट, वीडियो टेप जैसी समर्थक सामग्री विकसित करने के लिए काफी काम किया है।

विश्वविद्यालय स्तर : इस स्तर पर पर्यावरण संबंधी शिक्षा की व्यवस्था विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दी जा रही है। आजकल, पर्यावण की चर्चा केवल जीवविज्ञान के पाठ्यक्रमों में ही हो रही है और इसमें कोई समग्रतात्मक दृष्टिकोण नहीं है। विश्वविद्यालय शिक्षा के तीन मुख्य घटक हैं—शिक्षण, अनुसंधान और विस्तार। इनमें से विस्तार कड़ी का कमजोर अंश है। पर्यावरण संबंधी शिक्षा के जिन विभिन्न पहलुओं पर स्नातकोत्तर स्तर पर बल दिया जा सकता है, उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—पर्यावरण इंजीनियरी जिसमें वास्तुकला, सिविल इंजीनियरी, नगर योजना, मानव बस्तियां, गंदी बस्ती सुधार, औद्योगिक डिजाइन, संरक्षण और भूमि उपयोग संबंधी प्रबंधक वानिकी, कृषि, ऊर्जा आदि शामिल है। पर्यावरण स्वास्थ्य में लोक

स्वास्थ्य और स्वास्थ्य विज्ञान, सफाई और रासायनिक इंजीनियरी, व्यावसायिक स्वास्थ्य शामिल हैं, और जीव चिकित्सा विज्ञानों संबंधी सुरक्षा सामाजिक पारिस्थितिकी जिसमें मानव पारिस्थितिकी सामाजिक योजना, सामुदायिक संगठन, पर्यावरण के प्रभाव आदि शामिल होंगे।

तालिका 24.1: पर्यावरण संबंधी स्कूली और कालिज शिक्षा का सारांश

स्तर	उद्देश्य	विषय-वस्तु	शिक्षण कार्य नीति
प्राथमिक	चेतना	घर से बाहर की स्थितियों तक	दृश्य श्रव्य और बाहर दौरे कराना
निम्न माध्यमिक	वास्तविक जीवन के अनुभव, चेतना और समस्याओं की पहचान करना	ऊपर के अनुसार और सामान्य विज्ञान	कक्षा में शिक्षण, प्रयोग और बाहर के दौरे
उच्चतर माध्यमिक	संरक्षण, जानकारी का आत्म सात्करण, समस्याओं को पहचानना और कार्य के कौशल	विज्ञान पर आधारित और कार्योन्मुख कार्य	कक्षा में शिक्षण, प्रयोग और बाहर के दौरे
तृतीयक/ कालिज	धारणीय विकास, संरक्षण के अनुभव पर आधारित	विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित कालिज/विश्वविद्यालय	कक्षा में शिक्षण, प्रयोग और कार्योन्मुख

इन क्षेत्रों में उपयुक्त पक्ष समर्थन प्रणालियों के साथ नए पाठ्यक्रम तैयार करने की जरूरत है ताकि इस प्रकार की बहुविषयक शिक्षा की ओर अधिक से अधिक व्यक्ति आकर्षित किए जा सकें। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि यह जानकारी सारे समाज में प्रचलित की जाए।

24.4.2 आम जनता के बीच विभिन्न प्रचार माध्यमों के द्वारा

अब तक हमनें उन लोगों में शिक्षा प्रसार की चर्चा की है जो सुपरिभाषित हैं और औपचारिक शिक्षा पद्धति की सीमाओं में आते हैं। लेकिन निरक्षरता की सीमाओं से हट कर जन सामान्य तक पहुंचने की भी जरूरत है। यह केवल प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। यद्यपि प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम पहले से ही चलाए जा रहे हैं और नई शिक्षा नीति में भी उन पर उचित बल दिया गया है, तथापि समय आ गया है जब महिलाओं, आदिवासियों, कृषि मजदूरों, गंदी तंग बस्तियों में रहने वालों और सूखा प्रवण क्षेत्रों में रहने वालों जैसे वर्गों के लिए पर्यावरण संबंधी शिक्षा पर बल दिया जाना चाहिए। इन समूहों में से नव साक्षर व्यक्ति पर्यावरण संबंधी संदेश, आधार स्तर पर प्रसारित करने में सहायता करेंगे। प्रौढ़ और अनुवर्ती शिक्षा निदेशालयों के अतिरिक्त स्वैच्छिक एजेंसियों ने प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभायीं हैं। पर्यावरण संबंधी चेतना जागृत करने के कुछ तरीके नीचे दिए जा रहे हैं :

1) प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों की प्रवेशिका (प्राथमिक पुस्तक) में क्षेत्रीय भाषाओं में और स्थानीय बोलियों में प्रसंग शामिल करना।
2) पोस्टर, स्लाइड और दृश्य-श्रव्य सामग्री जैसी संक्षिप्त सूचना सामग्री जिसका प्रौढ़ शिक्षा केंद्रों द्वारा तथा कृषि विस्तार सेवाओं और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों जैसे अन्य विकास एजेंसियों द्वारा उपयोग किया जा सके।
3) ग्रामीण क्षेत्रों में मेलों और त्यौहारों के समय विशेष प्रदर्शनियां।

हमारा समाज आज भी ऐसा है जहां सूचनाएं आपसी भेंट तथा मौखिक रूप से फैलती हैं। हमारे जैसे समाज में दृश्य श्रव्य प्रचार माध्यम की कुछ सीमाएं हैं। लेकिन प्रचार माध्यमों द्वारा सामुदायिक नेताओं और अभिमत निर्माताओं के समाचार और विचार प्रदान किए जाते हैं और वे आगे दूसरों के विश्वासों और अभिवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। औपचारिक तथा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में पर्यावरण संबंधी शिक्षा का प्रचार माध्यमों द्वारा समर्थन जरूरी है। साक्षर लोगों के लिए समाचार-पत्र तथा पत्रिकाओं जैसा मुद्रण माध्यम एक विकल्प है। "विरासत" पर दूरदर्शन के हाल के कार्यक्रम में लोगों को विकास और पारिस्थितिक असन्तुलन के प्रतिकूल प्रभाव दिखाए गए थे और पर्यावरणीय अपकर्ष के कारण तथा समाधान की दृष्टि से शैक्षिक जानकारी दी गई थी। हाल ही में "रैस टु सेव द प्लैनट" (Race to Save the Planet) कार्यक्रम प्रसारित किया गया है जिसमें पर्यावरण की विश्वव्यापी झांकी दी गई है। आज प्रचार माध्यमों की ऐसी नीति की जरूरत है जिसमें निम्नलिखित के लिए संकल्पित प्रयास हों—

i) पर्यावरण संबंधी मामलों के विषय में चेतना जगाना,
ii) जीवन की वास्तविक स्थितियों में इनका प्रदर्शन,
iii) संरक्षण की जरूरतों, समस्याओं और प्रयासों की जानकारी, तथा
iv) सतत विकास के सिद्धांत और व्यवहार की जानकारी।

एक अन्य समस्या है, भाषा। इनमें से अधिकतर कार्यक्रम या तो अंग्रेज़ी में होते हैं या हिन्दी में और बहुत से लोग इन्हें आसानी से नहीं समझ पाते। लेकिन ऐसा तब संभव हो सकता है जब राष्ट्रीय माध्यमों के इन

कार्यक्रमों के अतिरिक्त स्थानीय भाषाओं में विशिष्ट कार्यक्रम भी आयोजित किए जाएं जिससे आम जनता को शिक्षा दी जा सके।

24.4.3 पर्यावरण प्रबंध से जुड़े कार्यकर्ताओं और अभिमत नेताओं के बीच

पर्यावरण प्रबंध में अनेक प्रकार के लोग कार्यकर्ताओं के रूप में जुड़े है। वे सिंचाई, विद्युत, कृषि उद्योग, स्वास्थ्य, नगर योजना आदि जैसे विभिन्न विभागों में विभिन्न स्तरों पर सरकारी अधिकारी हो सकते हैं। इन क्षेत्रों में स्वैच्छिक संगठन भी सक्रिय रूप से काम कर रहे हैं। राजनीतिज्ञ और सामाजिक कार्यकर्ता भी समय-समय पर पर्यावरण संबंधी मामलों में समन्वय के नाम पर हस्तक्षेप करते हैं। ऐसे कार्यकर्ताओं और नेताओं को, जिनका व्यावहारिक निणर्यों से संबंध है, उनको प्रशिक्षण संस्थाओं में और विशिष्ट संस्थाओं में सुविचारित पाठ्यक्रमों के माध्यम से समय-समय पर आवश्यक अभिविन्यास तथा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान ग्रामीण कार्यकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

पर्यावरण संबंधी अध्ययन/विज्ञानों के विश्वविद्यालय विभाग भी विशिष्ट समूहों के लिए इस प्रकार के अभिविन्यास कार्यक्रम तथा प्रशिक्षण शिविर आयोजित कर सकते हैं। सभी राज्य सरकारों के अपने कर्मचारी प्रशिक्षण कालेज और कार्यक्रम हैं। पर्यावरण संबंधी शिक्षा उनकी पाठ्यचर्या का आवश्यक अंग होना चाहिए। सरकार के पर्यावरण विभाग के पास सुव्यवस्थित अभिविन्यास के लिए सेवार्थी स्वयंसेवी समूहों की सूची होनी चाहिए। इस विभाग को इन लोगों को नियमित रूप से डाक द्वारा भेजने के लिए प्रकाशन माला की योजना बनानी चाहिए। कार्यकर्ताओं और अभिमत नेताओं का यह उत्तरदायित्व होनी चाहिए कि वे पहले इन विषयों में स्वयं शिक्षा प्राप्त करें और फिर यह सूचना अन्य स्तरों पर प्रसारित करें।

बोध प्रश्न 3

पर्यावरण संबंधी पाठ्यक्रम के उद्देश्यों और विषय-वस्तु में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर भिन्नता है। निम्नलिखित तालिका में शिक्षा के विभिन्न स्तर दिए जा रहे हैं। आपको उद्देश्य और विषय-वस्तु भरने हैं।

स्तर	उद्देश्य	विषय-वस्तु
क) प्राथमिक		
ख) निम्न माध्यमिक		
ग) उच्चतर माध्यमिक		
घ) तृतीयक (कालिज)		

बोध प्रश्न 4

क) ऐसे कौन-कौन से विभिन्न प्रचार माध्यम हैं जिनके द्वारा लोगों को पर्यावरण के विषय में शिक्षा दी जा सकती है? भारत की ग्रामीण जनता के लिए आपकी दृष्टि में जो सबसे अधिक प्रभावशाली माध्यम है, उस पर कुछ पंक्तियां लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख) पर्यावरण प्रबंध के संबंध में कार्यकर्ताओं और अभिमत नेताओं के मुख्य कार्य और उत्तरदायित्व कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

24.5 गैर-सरकारी संगठन

जहां तक पर्यावरण संबंधी शिक्षा का प्रश्न है, गैर-सरकारी संगठन जनसाधारण परिवर्तन के बहुत महत्वपूर्ण अभिकर्ता सिद्ध हो सकते हैं। गैर-सरकारी संगठन प्रतिपुष्टि के लिए उपयोगी सारणी है। कोई भी सरकार तब तक मूर्त परिणाम प्राप्त नहीं कर सकती जब तक इसकी नीतियों और कार्यक्रमों का स्वैच्छिक एजेंसियों द्वारा समर्थन नहीं किया जाता। लगभग 187 गैर-सरकारी संगठनों में से 129 संगठन पर्यावरण संबंधी शिक्षा और चेतना से जुड़े हैं। 56 प्रकृति संरक्षण में, 47 प्रदूषण नियंत्रण में, 46 वनरोपण में और सामाजिक वानिकी में, 28 वनस्पति और जीव-जन्तु अध्ययन में और 11 ग्राम विकास में लगे हैं। 10-10 संगठन वन्य-पशु संरक्षण और अपशिष्ट पदार्थ उपयोग में और 9 पारिस्थितिकी के विकास में लगे हैं। इनमें से अधिकतम शिक्षान्मुख हैं।

24.5.1 पर्यावरण संबंधी शिक्षा प्रदान करने में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

इस संबंध में स्वैच्छिक एजेंसियां निम्नलिखित तरीकों से सहायक हो सकती है :

- सरकार को सहायता और सलाह देना,
- सरकार के लिए महत्वपूर्ण कार्य करना,
- आम जनता को शिक्षित करना और संरक्षण के पक्ष में आम चेतना जगाना।

उदाहरण के लिए :

i) गैर-सरकारी संगठन सूचना का उपयोगी स्रोत बन सकते हैं और सरकारी एजेंसियों के लिए ऐसी सूचना के संग्रह उपलब्ध कराने और प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं।

ii) कार्य योजना के कार्यान्वयन में गैर-सरकारी संगठन केंद्र, राज्य, जिला और ग्राम स्तर पर सरकारी एजेंसियों की सहायता के लिए कार्य दल जुटा सकते हैं।

iii) जहां राजनीतिक अथवा प्रशासनिक तंत्र निष्क्रिय या अप्रभावी हैं, वहां गैर-सरकारी संगठन कार्रवाई के लिए मजबूर करने के लिए प्रभावक ग्रुपों के रूप में काम कर सकते हैं।

iv) गैर-सरकारी संगठन सरकार को वर्तमान कानून तथा प्रशासन की कमजोरियों पर परामर्श दे सकते हैं और इन तंत्रों अथवा इनके निष्पादनों को दृढ़ करने अथवा इनमें सुधार करने के लिए उपाय सुझा सकते हैं।

v) गैर-सरकारी संगठन वन्य-जन्तु संरक्षण के संबंध में आम जनता को शिक्षा दे सकते हैं और शैक्षिक तथा अभिप्रेरणात्मक सहायक सामग्री प्रदान करके तथा जनशिक्षा में प्रत्यक्षतः भाग लेकर महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

vi) अनुसंधान अथवा शोध—एक ऐसा अन्य क्षेत्र है जहां गैर-सरकारी संगठन उपयोगी योगदान दे सकते हैं। बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी इस दिशा में, खास तौर पर पक्षीगण पारिस्थितिकी के क्षेत्र में, महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है।

vii) इसी प्रकार गैर-सरकारी संगठन लोकप्रिय और वैज्ञानिक स्तरों पर उपयोगी प्रकाशन निकाल सकते हैं जिनके उदाहरण हैं—बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी जर्नल, डब्ल्यू-डब्ल्यू—एक न्यूजलैटर, चींतल, सैंक्चुएरी पत्रिकाएं आदि।

आइए, अब हम कुछ महत्वपूर्ण गैर-सरकारी संगठनों उदाहरणार्थ, चिपको आन्दोलन, अप्पिको आन्दोलन, बम्बइ नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी, केरल शास्त्र साहित्य परिषद, डब्ल्यू-डब्ल्यू एफ और कल्पवृक्ष की भूमिका पर विचार करें।

24.5.2 कुछ महत्वपूर्ण गैर-सरकारी संगठन

कल्पवृक्ष

दिल्ली के हरित क्षेत्रों को भ्रष्ट किए जाने के विरोध में यह संगठन एक आन्दोलन के रूप में 1979 में शुरू हुआ। कल्पवृक्ष का मुख्य कार्य है पर्यावरण संबंधी विषयों पर, खासतौर पर युवाओं में, ज्ञान और चिन्ता मन में बैठाना, पर्यावरण संबंधी विषयों के संबंध में अनुसंधान करना, समग्रतात्मक पर्यावरण परिप्रेक्ष्य विकसित करना। कल्पवृक्ष स्कूल स्तर के लिए पर्यावरण के संबंध में अभ्यास पुस्तकें तथा अन्य सामग्री विकसित कर रहा है, पर्यावरण संबंधी विषयों पर अनुसंधान कर रहा है, जैसे नर्मदा घाटी परियोजना, भारत

में नाशक जीवनाशी रसायनों का प्रयोग, दिल्ली में वायु प्रदूषण और देहरादून जिले में खदान कार्य के संबंध में प्रभाव निर्धारण अध्ययन। कल्पवृक्ष राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद तथा पर्यावरण संबंधी शिक्षा से संबंधित अन्य एजेंसियों के लिए ज्ञान साधन ग्रुप के रूप में कार्य कर रहा है।

केरल शास्त्र साहित्य परिषद

केरल शास्त्र साहित्य परिषद, पिछले तीन दशकों में, एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संस्थान बन गई है। इसके सदस्यों की संख्या 25,000 से अधिक है और केरल राज्य में इसकी लगभग 900 यूनिटें हैं। परिषद की प्रतिविधियों में परिस्थितिक विकास, जल और ऊर्जा संरक्षण के विषय में चेतना जगाना, गैर परम्परागत स्रोतों—जैसे धुंआरहित चूल्हे—के प्रयोग को प्रोत्साहन देना सम्मिलित है। विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए तथा जनता के सभी वर्गों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण जमाने के लिए यह कई पत्रिकाएं और पुस्तकें प्रकाशित करती है। इसने अपने कार्यक्रमों में लोक कलाओं का रचनात्मक उपयोग किया है। पर्यावरण की रक्षा के लिए इसके उत्कृष्ट कार्य की प्रशंसा में इसे 1988 का इन्दिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार भी प्रदान किया गया था।

वर्ल्ड वाइड फंड फार नेचर— भारत (WWF—India)

इसका पहले विश्व वन्य-जंतुनिधि नाम था। इसने बम्बई में 1970 में अपनी गतिविधियां शुरू कीं। इस संगठन की लगभग 200 स्वैच्छिक सह-समितियां हैं और 10,000 शुल्कदाता समर्थक हैं। इस संगठन की मुख्य गतिविधियां हैं—अनुसंधान क्षेत्र परियोजना, शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से देश की प्राकृतिक विरासत का संरक्षण और संरक्षण के लिए धन संग्रह।

बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी (Bombay Natural History Society—BNHS)

इसने बम्बई में सितम्बर, 1883 में काम शुरू किया। आज यह एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संस्था है। इसकी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति भी बहुत है। अपने सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययनों से इस सोसायटी ने हमारी स्तनपायी जीवों, पक्षियों, सरीसृपों तथा अन्य वनस्पतियों और सूक्ष्मजीवों के विषय में जानकारी बढ़ाने में बहुत अधिक योगदान किया है।

हमारी प्राकृतिक विरासत के संरक्षण के लिए अभियानों में इस सोसायटी ने सार्थक भूमिका निभायी है। केरल में साइलेंट वैली (Silent Valley) के बहुमूल्य उष्णकटिबंधीय वनों की रक्षा इसका उल्लेखनीय कार्य है। इस सोसायटी की उपलाब्धयों से प्रकृति के परिरक्षण की जरूरत के प्रति जनचेतना जागृत हुई है और इसने देश में वन्य जंतुओं की रक्षा के लिए कानून बनाने में भी सहायता की है।

प्रकृति शिक्षा, पर्यावरण का संरक्षण और अनुसंधान के लिए इसके उत्कृष्ट कार्यों के लिए इसे भारत सरकार ने 1987 का इन्दिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार प्रदान किया था।

चिपको आन्दोलन (Chipko Movement)

गोपेश्वर में दसोहली ग्राम स्वराज्य मंडल ने विश्व प्रसिद्ध चिपको आन्दोलन का श्रीगणेश किया था। इस ग्रुप ने विकास कार्य से प्रगति की और सक्रियतावादी बन गया। यह सर्वाधिक विकसित ग्रुपों का एक नमूना है। पर्यावरण के क्षेत्र में चिपको आन्दोलन का वनरोपण कार्य सरकार के सभी स्तरों पर सराहा गया है। चिपको आन्दोलन से विकास के लिए वनों और वृक्षों के संरक्षण के महत्व के प्रति देश भर में आम जागरुकता पैदा हुई। चिपको आन्दोलन में वस्तुतः पांच एफः फूड (खाद्यान्न), फॉडर (चारा), फ्यूल (ईंधन), फर्टिलाइजर (उर्वरक) और फाइबर ट्री (वृक्ष) उगाने का नारा था। इससे समाज को सभी बुनियादी जरूरतों के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाना था।

अप्पिको आन्दोलन (Appiko Movement)

यह आन्दोलन 1983 के अंत में कर्नाटक में शुरू हुआ। अप्पिको का अर्थ है चिपटाना या लिपटना। पहला अप्पिको सिरसी जिले में सलकाने वन में वन विभाग द्वारा वृक्ष काटने के विरोध में 8 सितंबर, 1983 को हुआ। अप्पिको का उद्देश्य है वृक्षों की रक्षा करने के लिए और उन्हें लगाने के लिए लोगों की शक्ति का उपयोग करना और लोगों को समझाना कि वे वन संसाधनों का उपयोग कम से कम करें। अप्पिको स्वयं सेवक वृक्ष काटने पर पूर्ण प्रतिबंध की मांग नहीं करते। लेकिन इसके लिए नियम और प्रतिबंध होने चाहिए उदाहरण के लिए, जब वृक्षों को काटने के लिए उन पर निशान लगाए जाएं, स्थानीय लोगों से सलाह ली जाए और जल स्रोत के 100 मीटर क्षेत्र में और 30 डिग्री या इससे अधिक की ढाल पर वृक्ष काटे जाएं।

बोध प्रश्न 5

क) वे तीन महत्वपूर्ण तरीके बताइए जिनसे स्वैच्छिक एजेंसियां सरकार की सहायता करती हैं।

.....

.....

.....

ख) किन दो गैर-सरकारी संगठनों को इन्दिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार मिला है?

.....

.....

ग) कौन से दो आन्दोलन वनरोपण पर बल दे रहे हैं?

.....

.....

24.6 सारांश

पर्यावरण संरक्षण और **पुनःस्थापन** सभी के लिए अत्यन्त चिन्ता के विषय हैं। इन्हें किसी और का उतरदायित्व नहीं समझा जाना चाहिए। इसके परिणाम हम सभी के लिए, सभी आयुवर्गों के लिए और समाज के सभी स्तरों के लिए महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्र को आज पर्यावरण के संबंध में सुविकसित नीति की जरूरत है। इसका अर्थ है राष्ट्रव्यापी स्तर पर चेतना का निर्माण। इसका अर्थ सुयोजनाबद्ध कार्रवाई भी होगा। इसके लिए, यह आवश्यक है कि हम पर्यावरण के विषय में अनभिज्ञता और गलतधारणाओं के कारणों को समझें।

- **भारत में अनभिज्ञता और प्रचलित गलत धारणाओं का कारण है, बड़े पैमाने पर निरक्षरता, कार्यकर्ताओं और नेताओं के अनुपयुक्त अभिविन्यास और प्रशिक्षण की कमी, और इन समस्याओं को व्यवस्थित रूप से समझाने के लिए शिक्षा पद्धति में सुआयोजित प्रयास की कमी।**
- **पर्यावरण संबंधी महत्वपूर्ण मुद्दे कृषि उद्योग और स्वास्थ्य के क्षेत्रों से संबंधित हैं। इनके विषय में और ऐसे ही अन्य क्षेत्रों के विषय में जानकारी संबंधित व्यक्तियों को स्कूल में और कालिज स्तरों पर औपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ स्तर पर, अनौपचारिक शिक्षा और कार्यकर्ताओं और अभिमत नेताओं के विशेष अभिविन्यास और प्रशिक्षण जैसे विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के माध्यम से दी जा सकती है। इस विषय में प्रचार माध्यम महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। कार्यकर्ताओं को स्वयं इस बात की चिन्ता होनी चाहिए कि वे इन समस्याओं का सामना करने की प्रतीक्षा करने की बजाए इनकी जानकारी प्राप्त करें।**

24.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) **आम जनता में विशेषतः विकासशील देशों में, पर्यावरण के संबंध में अनभिज्ञता और उदासी के मुख्य कारण कौन से हैं ?**

.....

.....

.....

.....

.....

2) पर्यावरण के विषय में सामाजिक चेतना आवश्यक क्यों है? कृषि, उद्योग और स्वास्थ्य के क्षेत्रों से उदाहरण देते हुए उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) पर्यावरण संबंधी शिक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के सेवार्थियों की सूची बनाएं और पर्यावरण संबंधी शिक्षा प्रदान करने के विभिन्न तरीके सुझाएं।

.....

.....

.....

.....

.....

24.8 उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर

1 क) i) गरीबी और निरक्षरता
ii) अनभिज्ञता और सूचना का अभाव
iii) यह पाठ्यचर्या को जीवन की वास्तविक समस्याओं से जोड़ने में असक्षम हैं।
iv) ऐतिहासिक प्रक्रिया, विकास और पारिस्थितिकी

ख) i) गलत धारणा
ii) गलत धारणा
iii) तथ्यात्मक विवरण
iv) गलत धारणा
v) तथ्यात्मक विवरण

2 क) कृषि उत्पादकता, उद्योग और स्वास्थ्य
ख) वर्धित अपशिष्ट पदार्थ उत्पादन और प्रदूषण की लागत
ग) शहरीकरण और कुपोषण

3 स्तर	उद्देश्य	विषय-वस्तु
क) प्राथमिक	चेतना	घर से बाहर की स्थितियों तक
ख) निम्न माध्यमिक	वास्तविक जीवन के अनुभवन, चेतना और समस्याओं की पहचान करना	ऊपर के अनुसार और सामान्य विज्ञान
ग) उच्चतर माध्यमिक	संरक्षण, समस्याओं को पहचानना और कौशल	विज्ञान पर आधारित और कार्योन्मुख कार्य
घ) तृतीयक (कालिज)	धारणीय विकास संरक्षण के अनुभव पर आधारित	विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित कालेज, विश्वविद्यालय

4 क) पोस्टर, स्लाइडें, पर्यावरण संबंधी सामग्री जिनका उपयोग प्रौढ़ शिक्षा केंद्रों द्वारा किया जा सकता है, ग्रामीण क्षेत्रों में मेलों और त्योहारों के समय विशेष प्रदर्शनियां। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रदर्शनियां, भारत में ग्रामीण जनता के लिए सबसे अधिक प्रभावी माध्यम हैं क्योंकि ये प्रदर्शनियां मेलों और त्यौहारों के अवसरों पर लगाई जाती हैं और ये पर्यावरण संबंधी समस्याओं का प्रत्यक्ष चित्र प्रस्तुत कर सकती हैं। इन प्रदर्शनियों से ग्रामीण जनता को अभिप्रेरित किया जा सकता है।

ख) i) राज्य संरकारों के कर्मचारी प्रशिक्षण कालेजों में पर्यावरण संबंधी शिक्षा उनकी पाठ्यचर्या का अनिवार्य अंग होनी चाहिए।
ii) सरकार के पर्यावरण विभाग के पास व्यवस्थित अभिविन्यास के लिए सेवार्थी समूहों की सूची होनी चाहिए।
iii) इन लोगों को डाक द्वारा प्रकाशनमाला भेजने के लिए उन्हें योजना बनानी चाहिए।

iv) कार्यकर्ताओं का उत्तरदायित्व है कि वे इनमें शिक्षण प्राप्त करें और फिर यह सूचना अन्य स्तरों पर प्रसारित करें।

5 क) i) सरकार की सहायता करना और इसे सलाह देना,
ii) सरकार के लिए महत्वपूर्ण काम करना,
iii) आम जनता को शिक्षा देना और संरक्षण के पक्ष में सामान्य चेतना जगाना।

ख) केरल शास्त्र साहित्य परिषद और बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी।

ग) चिपको आन्दोलन और अप्पिको आन्दोलन।

अंत में कुछ प्रश्न

1 क) भारत जैसे विकाशील देशों में आम जनता में अनभिज्ञता के दो प्रमुख कारण हैं—गरीबी और निरक्षरता। जो लोग अपनी रोजमर्रा की जरूरतें तक पूरी नहीं कर सकते वे पर्यावरण के बारे में कैसे सोच सकते हैं। तथापि पर्यावरण प्रबंध के संबंध में निर्णय सीमित व्यक्तियों द्वारा लिए जाते हैं जैसे—योजनाकार और समाज का संभ्रान्त वर्ग।

ख) पर्यावरण के विषय में सामाजिक चेतना इसलिए जरूरी है क्योंकि पर्यावरण के विषय में अनभिज्ञता और उदासीनता से गलत धारणाएं और अंधविश्वास उत्पन्न होते हैं। पर्यावरण के विषय में सामाजिक चेतना से कृषि उत्पादकता, औद्योगिक विकास और स्वास्थ्य के सुधार में सहायता मिलेगी।

2 **कृषि :** एक किसान अथवा ग्रामीण जो वास्तव में खेती करता है, वह भी विनाश और पुनर्जनन की प्रक्रिया से उतना ही जुड़ा है जितना राष्ट्रीय स्तर पर योजनाकार जुड़ा है। यदि आम जनता को भू-उपयोग संरूप जल संसाधन, सिंचाई संरूप, उर्वरकों और नाशक जीव नाशी रसायनों का प्रयोग, ऊर्जा के समाप्त न होने वाले स्रोतों के संबंध में जानकारी है, तो इससे कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

उद्योग : औद्योगीकरण के विषय में चेतना बहुत आवश्यक है। लोगों को औद्योगीकरण के लाभों और दुष्प्रभावों दोनों के विषय में जानकारी होनी चाहिए। एक ओर तो औद्योगिक विकास से "हरित क्रान्ति" हुई है और दूसरी ओर इससे प्रदूषण फैल रहा है। इससे लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

स्वास्थ्य: उच्च कृषि उत्पादकता और औद्योगिक विकास से स्वास्थ्य संबधी समस्याएं पैदा होती हैं। शहरीकरण से बीमारियां बढ़ गई हैं। रहन-सहन की अस्वास्थ्यकर स्थितियों और कुपोषण से अनेक बीमारियां फैलती हैं। अतः लोगों को अपने स्वास्थ्य की चिन्ता करनी चाहिए। यह तभी संभव है जब उन्हें रहन-सहन की स्वास्थ्यकर स्थितियों की तथा अस्वास्थ्य के दुष्परिणामों की जानकारी होगी।

3 पर्यावरण संबंधी शिक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के सेवार्थी और शिक्षा प्रदान करने के विभिन्न तरीके निम्नलिखित हैं :

सेवार्थी	शिक्षा प्रदान करने के तरीके
क) स्कूल और कालेज विद्यार्थी	स्कूल और विश्वविद्यालय स्तरों पर औपचारिक शिक्षा शिक्षण कार्य नीतियां हैं—कक्षा में शिक्षण, प्रयोग और क्षेत्र दौरे।
ख) आम जनता	रेडियो, दूरदर्शन, समाचार-पत्र जैसे विभिन्न प्रचार माध्यमों तथा विशेष प्रदर्शनी, स्लाइड, टेप और अन्य दृश्य श्रव्य सहायक सामग्री के द्वारा अनौपचारिक शिक्षा।
ग) पर्यावरण प्रबंध के क्षेत्र में कार्यकर्ता और अभिमत नेता	पर्यावरण अध्ययन के विश्वविद्यालय विभागों द्वारा चलाए जाने वाले विशिष्ट अभिविन्यास और प्रशिक्षण कार्यक्रम।

इकाई 25 पर्यावरण प्रबन्ध में समानताएं और असमानताएं

इकाई की रूपरेखा

25.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
25.2 भारतीय उपमहाद्वीप
भौगोलिक स्थिति
उपमहाद्वीप और पूर्व की दुनिया
उपमहाद्वीप में हमारे पड़ोसी
25.3 संस्कृतियों की विविधता और एकता के कारक
विविधता
अंतर्निहित एकता
टुकड़ों में बंटें उपमहाद्वीप में असमानता की स्थिति
25.4 उपमहाद्वीप में प्राकृतिक प्रणालियों की एकरूपता
पर्वतीय पारितंत्र
रेगिस्तानी पारितंत्र
तटीय पारितंत्र
25.5 संसाधन प्रबंध
जल
ऊर्जा
25.6 पर्यावरण प्रबंध के लिए कार्यनीति
संस्थागत और विधायी ढांचा
दक्षिण एशियाई सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम
25.7 सारांश
25.8 अंत में कुछ प्रश्न
25.9 उत्तर

25.1 प्रस्तावना

मानव पर्यावरण पाठ्यक्रम की यह अंतिम इकाई है। अब तक आपने भारत के पर्यावरण के बारे में पढ़ा। आपने पर्यावरण के सजीव और निर्जीव घटकों का अध्ययन किया। प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग का वैकल्पिक स्वरूप निर्धारित करने में सामाजिक और मानव-निर्मित पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका है। वनों की कटाई, मरुस्थलीकरण, शहरीकरण, संसाधनों के अंधाधुंध दोहन, वन्य-जीवन के विलाप और पर्यावास के विनाश जैसे मानवीय कार्यों का पर्यावरण और पारिस्थितिक संतुलन पर बड़ा असर पड़ता है। अपने अदूरदर्शी कार्यों का दंड मानव जाति को अक्सर भुगतना पड़ा है। प्रदूषण और विकिरण से मानव जाति को अनेक रोगों का खतरा पैदा हो गया है। इसलिए यह ज़रूरी हो गया है कि पारिस्थितिक प्रणालियों के उचित तरीके से चलने के तरीकों की समझ पैदा हो और उसी के अनुरूप पर्यावरण का प्रबंध किया जाना चाहिए। समुचित कानूनी उपायों और सामाजिक चेतना के बिना प्रभावशाली पर्यावरण प्रबंध नहीं हो सकता। आपने प्रदूषण नियंत्रित कर वायुमंडल, पानी और ज़मीन की गुणवत्ता बनाए रखने के बारे में इकाई 22 में पढ़ा। इस खंड में पर्याप्त आंकड़ों के अभाव की स्थिति और पारिस्थितिक तंत्र से जुड़ी रुकावटों का भी आपने अध्ययन किया।

अब तक आपने भारतीय संदर्भ में पर्यावरण का अध्ययन किया। इस इकाई में आप भारतीय उपमहाद्वीप में पर्यावरण प्रबंध की समानताओं और विषमताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे। इस उपमहाद्वीप के अनेक देशों की प्राकृतिक प्रणालियों में इतनी ज्यादा एकरूपता है कि एक देश की अनुकूल और प्रतिकूल पारिस्थितिक, आर्थिक और सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाएं, आंदोलन और प्रवृत्तियां दूसरे देशों को प्रभावित करती हैं। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि इन देशों के लोग और सरकारें पूरे उपमहाद्वीप के पर्यावरण संरक्षण के लिए समन्वित दृष्टिकोण अपनाएं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- इस क्षेत्र को भारतीय उपमहाद्वीप कहे जाने का औचित्य समझा सकेंगे,
- भारतीय उपमहाद्वीप की सीमाएं निर्धारित कर सकेंगे,
- उपमहाद्वीप के हमारे पड़ोसी देशों के नाम बता सकेंगे और उनमें अंतर्निहित सांस्कृतिक एकता के कारकों को समझा सकेंगे,
- भारतीय उपमहाद्वीप के देशों की प्राकृतिक प्रणालियों की एकरूपता को समझ सकेंगे,
- इस उपमहाद्वीपीय क्षेत्र के पर्यावरण संरक्षण के लिए समन्वित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर विचार कर सकेंगे।

25.2 भारतीय उपमहाद्वीप

ग्लोब पर सरसरी नज़र डालने से ही दक्षिण एशिया के संदर्भ में भारतीय उपमहाद्वीप के शब्द का महत्व स्पष्ट हो जाता है। यह विशाल और विविधतापूर्ण भूखंड हिमालय की बर्फीली गगनचुंबी चोटियों से लेकर हिन्द महासागर तक फैला है, जिसकी तरंगें इसकी हज़ारों किलोमीटर लंबी तटरेखा को निरंतर चूमती हैं। अगर अटलांटिक महासागर से घिरा विश्व के पश्चिम में स्थित इसी आकार के यूरेशिया प्रायद्वीप को **यूरोप महाद्वीप** कहा जा सकता है तो हिमालय पर्वत से हिन्द महासागर तक फैले इस प्रायद्वीप को कम से कम **उपमहाद्वीप** कहना निश्चित रूप से उचित है। इस उपमहाद्वीप के पश्चिम और पश्चिम-उत्तर-पश्चिम में किरथर-सलेमान की बंजर पर्वत-श्रृंखला और इससे जुड़ा पठारी इलाका है; पूर्वोत्तर क्षेत्र में भारी बरसात वाले घने वन और घाटियां हैं, जो बंगाल की खाड़ी तक चली गई हैं। बलूचिस्तान में मकरान से बंगलादेश में चटगांव तक फैले इस दक्षिण एशियाई क्षेत्र को पर्वत-श्रृंखला की दीवार स्पष्ट रूप से एक उपमहाद्वीप के रूप में सीमांकित करती है, जिसकी अपनी विशिष्ट भौगोलिक विशेषताएं हैं।

इस क्षेत्र की उष्ण कटिबंधीय भूमि को सूर्य का पर्याप्त प्रकाश और ताप मिलता है तथा मानसून की ज़ोरदार वर्षा यहां होती है। इन दो बातों का इस क्षेत्र के करोड़ों लोगों के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक और मानवीय प्रयास ने इस क्षेत्र के स्वरूप को एकरूपता दी है जो युग-युगांतरों में अविरल बनी रही है और आज भी इसके एक भाग के परिवर्तन दूसरे भाग के परिवर्तनों के इतने समरूप हैं, जितने बहुरूपदर्शी (Kalaeidoscope) में बने चित्र।

प्राचीन काल से ही हम प्रकृति पर बहुत अधिक निर्भर रहे हैं। प्रारंभ में हम प्रकृति जैसे थे। धीरे-धीरे हमने प्रकृति के रहस्यों को समझना और इसके सहयोग से जीना सीखा। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से अब प्रकृति से हमारी परस्पर क्रिया बढ़ती जा रही है। हम प्रकृति के नियमों को न तो तोड़ सकते हैं और न ही इसकी उपेक्षा कर सकते हैं, क्योंकि बच्चों की तरह हम प्रकृति की ही गोद में पलते हैं।

हमारे विकास की दिशा काफी हद तक प्रकृति से प्रभावित होती है। प्रकृति, विकास का बुनियादी ढांचा निर्धारित करती है। प्रकृति के उचित उपयोग में उसके सही रख रखाव के सूत्र सुराग भी निहित होते हैं। यह आपको बताती है कि एक विशेष दिशा में बढ़ने से आपको सर्वोत्तम परिणाम मिलेंगे। सभी की समृद्धि के लिए हमें प्रकृति के सुझाव पर पूरा ध्यान देना चाहिए।

25.2.1 भौगोलिक स्थिति

ग्लोब देखने से पता चलता है कि भारतीय उपमहाद्वीप एशिया के विशाल भू-खंड का दक्षिणी विस्तार है। भारतीय प्रायद्वीप संकरा होते हुए समुद्र में दक्षिण की ओर बढ़ता है तथा समुद्र को दो हिस्सों—अरब सागर और बंगाल की खाड़ी—में बांटता है। भारतीय प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर अरब सागर है और पूर्वी तट पर बंगाल की खाड़ी।

अफ्रीका तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के आसपास के क्षेत्रों से उपमहाद्वीप के लोगों के संपर्क स्थापित करने में इन दो सागरों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। समय-समय पर ये समुद्र इस क्षेत्र के लोगों के बीच और दक्षिण-पूर्व एशिया के द्वीप समूहों, पश्चिम एशिया तथा पूर्वी अफ्रीका के तटवर्ती देशों के सहज समुद्री संपर्क के साधन बने। लेकिन दूसरी ओर, ये समुद्र कई महत्वपूर्ण दृष्टियों से मानवीय संपर्क की बाधाएं भी रहे हैं। पूर्वी और पश्चिमी देशों में इस महाद्वीप के सांस्कृतिक प्रभाव के विस्तार में भी इन समुद्री मार्गों की भूमिका रही है। साथ ही, पड़ोसी देशों के नए सांस्कृतिक तत्वों का हमारे समाज पर प्रभाव और इस प्रकार हमारे समाज को नया रूप तथा सांस्कृतिक समृद्धि देने में भी इन समुद्र मार्गों की भूमिका रही है। इन समुद्रों ने इस क्षेत्र को काफी हद तक अन्य क्षेत्रों से अलग भी रखा है और सभ्यता में एक अनूठी एकरूपता के साथ-साथ विविधता को बनाए रखने में भी योगदान दिया है।

जैसा कि पहले भी बताया गया है, विशाल पर्वतों की लगभग अविच्छिन्न श्रृखला ने हज़ारों किलोमीटर तक उपमहाद्वीप को घेरा हुआ है, जिससे यह क्षेत्र एशिया के हिमालय के उस पार के क्षेत्र से जैसे एक दीवार से अलग-सा हो गया है। इन्हीं पर्वत-श्रृंखलाओं के कारण उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम से इस उपमहाद्वीप में आना हमेशा बड़ी कठिनाइयों-भरा कार्य रहा है। कुछ दर्रों के ज़रिए ही परस्पर संपर्क संभव रहा है और बंजारे कबीले तथा तीर्थयात्री इन्हीं से होकर उपमहाद्वीप में आते-जाते रहे हैं। उपमहाद्वीप के इस तरह कुछ हद तक बाहरी क्षेत्रों के संपर्क से बचे रहने से ही यहां के लोगों में सांस्कृतिक एकता बनी रही है।

एशिया के प्रमुख क्षेत्रों से घिरे इस उपमहाद्वीप का क्षेत्रफल बहुत अधिक है। पूरा उपमहाद्वीप उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। प्रायद्वीप का दक्षिणी छोर विषुवत (भूमध्य) रेखा से कुछ ही डिग्री उत्तर में है। कर्क रेखा इस महाद्वीप को करीब बीच से काटती है।

उत्तरी छोर के बर्फीले भाग की पर्वत श्रृंखलाएं विश्व की छत कहे जाने वाले पामीर के पठार से निकली हैं। पामीर, एशिया के मध्य में स्थित है। गर्म और नम कन्याकुमारी एशिया का सबसे दक्षिणी छोर है। यहां भारतीय प्रायद्वीप संकरा होते-होते समुद्र में विलीन हो जाता है। अगर कोई व्यक्ति उत्तरी छोर से दक्षिणी छोर की यात्रा करे तो उसे करीब 3,200 किलोमीटर का सफर तय करना होगा। इस दूरी में करीब 30° अक्षांश की दूरी तय होगी, जो उत्तरी ध्रुव से भू-मध्य रेखा के बीच कोणीय दूरी का एक-तिहाई है।

भारत के पूर्व से पश्चिम के बीच की दूरी भी करीब 3,000 किलोमीटर है, जो उत्तर से दक्षिण की दूरी के लगभग बराबर है। सबसे पश्चिमी छोर पर दलदली और लवणीय कच्छ का रन है। पूर्व के छोर पर बर्मा, चीन और भारत मिलते हैं। यहां घने, अगम्य वन हैं। पूर्व से पश्चिमी दूरी भी करीब 30° देशांतर है जो स्पेन, फ्रांस, बेल्जियम, हालैंड, जर्मनी और पोलैंड के कुल क्षेत्र के बराबर है। यह विश्व के संपूर्ण पृष्ठतल का बारहवां हिस्सा है। अरुणाचल प्रदेश में जब सूर्योदय हो चुका होता है, उस समय सौराष्ट्र में रात ही रहती है और काठियावाड़ का मेहनती किसान इसके दो घंटे बाद ही जागकर प्रातःकालीन सूर्य के दर्शन करता है।

25.2.2 उपमहाद्वीप और पूर्व की दुनिया

अब हम विश्व के पूर्वी क्षेत्र का मानचित्र देखें। वास्तव में, हिन्द महासागर पूर्वी अफ्रीका, पश्चिम एशिया, दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया को जोड़ता है। स्वेज़ नहर के खुल जाने से भूमध्य सागर, हिन्द महासागर से जुड़ गया है तथा दक्षिणी यूरोप और उत्तरी अफ्रीका भी इसी क्षेत्र में आ गए हैं।

हिंद महासागर क्षेत्र में भारत की स्थिति महत्वपूर्ण है। किसी भी अन्य देश की हिंद महासागर के साथ इतनी बड़ी तटरेखा नहीं है। दक्षिण का प्रायद्वीप हिंद महासागर में स्थित है और इससे भारत अपने पश्चिम तट से पश्चिम एशिया, अफ्रीका और यूरोप के साथ और पूर्वी तट से सुदूर-पूर्व क्षेत्र के साथ संपर्क कायम कर सकता है। श्रीलंका को छोड़कर अन्य देश हिंद महासागर के तटवर्ती हैं। भारत इस महासागर में स्थित है। अतः हिंद महासागर वास्तव में भारत का (हिंद) महासागर है।

इतिहास के बहुत बाद के काल में महासागर ने एकता बनाए रखने वाले कारक की भूमिका निभाई लेकिन इतिहास के प्रारंभ से ही इस भू-भाग की भूमिका बड़े महत्व की रही है। इन संबंधों को सही संदर्भ में समझने के लिए, उपमहाद्वीप के मानचित्र के उत्तरी और उत्तर-पश्चिम भागों को ध्यान से देखना ज़रूरी है। इस क्षेत्र में किले की प्राचीरों की तरह पर्वत-श्रृंखलाएं स्थित हैं। ऐसा लगता है कि इन पर्वत श्रृंखलाओं ने उत्तर और उत्तर-पश्चिम के उस पार के क्षेत्र से हमारा संपर्क समाप्त कर दिया है। लेकिन यह भ्रम मात्र है। विभिन्न रंगों वाला भौतिक मानचित्र कभी-कभी गलत जानकारी देता है। इसी क्षेत्र के विभिन्न दर्रों से होते हुए पशुपालक बंजारे इस उपमहाद्वीप की उपजाऊ घाटियों में पहुंचे। बौद्ध भिक्षु शांति का संदेश लेकर तिब्बत पार कर चीन, कोरिया और जापान तक पहुंचे। मकदूनिया के राजा सिंकदर की सेना इस उपमहाद्वीप में आई। इसके साथ ही, यूनानी मूर्तिकला का सौंदर्य यहां पहुंचा। लंबे काफिलों में हमारे व्यापारी इन बंजर ऊंचाइयों से होकर व्यापार करने मध्य एशिया, अफगानिस्तान और ईरान पहुंचे। उन्हीं के साथ पंचतंत्र की कथाएं इन क्षेत्रों तक पहुंची। मंगोल, तुर्क, अरब और ईरानी विजेताओं के रूप में यहां आए, परंतु फिर यहीं बस गए। इन लोगों के साथ स्थापत्य कला में गुंबद और मीनारों की सादगी भरी खूबसूरती आई। ये लोग भारत से अपनी मातृभूमि में भारतीय अंक-पद्धति-हिंदिसा, दशमलव प्रणाली और उपनिषदों का दर्शन ले गए। विचारों और वस्तुओं का यह आदान-प्रदान इसलिए संभव हो सका क्योंकि हमारी भूमि प्राचीन और मध्यकाल के प्रमुख मार्गों के नज़दीक स्थित थी। पश्चिम एशिया, पूर्व एशिया, मध्य एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया को जोड़ने वाली श्रृंखला की हम हमेशा से और आज भी मुख्य कड़ी रहे हैं।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित कथनों में से सही कथन के आगे कोष्ठक में ("स") लिखिए। इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) भारतीय प्रायद्वीप को उपमहाद्वीप कहने का औचित्य इस कथन में निहित है :

क) इसका विशाल भौगोलिक क्षेत्र है। ☐

ख) यह वीर सैनिकों की भूमि है। ☐
ग) इस प्रायद्वीप के लोग सांस्कृतिक रूप से परस्पर जुड़े हैं। ☐
घ) परिवहन के साधनों में सुधार से दूरियाँ कम हो गई है। ☐

ii) प्राचीन काल से ही भारतीय उपमहाद्वीप की प्रमुख विशेषता रही है :
क) मनुष्य ने कभी भी भौगोलिक सीमाओं को पार करने की कोशिश नहीं की। ☐
ख) हम हर काल में प्रकृति पर बहुत अधिक निर्भर रहे। ☐
ग) भौगोलिक बाधाओं से संस्कृतियों के मिलन में हमेशा रुकावटें आयीं। ☐
घ) हमने कभी भी प्राकृतिक घटनाओं के क्रम को बदलने का प्रयास नहीं किया। ☐

iii) भारतीय उपमहाद्वीप से जुड़े समुद्र की हमारी संस्कृति में यह भूमिका रही है :
क) समुद्र ने विदेशी संस्कृतियों के प्रभाव को फैलने से रोका है। ☐
ख) समुद्र के कारण भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रचार तो संभव हो पाया है, विदेशी संस्कृति का भारत में प्रसार नहीं हो पाता है। ☐
ग) समुद्र की वजह से एक तरीके अलगाव आया जिससे विशिष्ट भारतीय संस्कृति का विकास हुआ जिसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन संस्कृतियों के मिश्रण की वजह से आए तथा उसमें समुद्री मार्गों की भूमिका अहम रही है। ☐
घ) भारतीय उपमहाद्वीप से दूसरे क्षेत्रों में और दूसरे क्षेत्रों से इस उपमहाद्वीप में संस्कृति के आदान-प्रदान में समुद्र की कोई भूमिका नहीं रही। ☐

iv) भारतीय संस्कृति में हिमालय की भूमिका के बारे में सर्वोत्तम कथन है :
क) हिमालय की पर्वत श्रेणियां एशिया के उस पार के हिस्से को भारत से अलग करने में दीवार जैसी भूमिका निभाती हैं। ☐
ख) हिमालय से यह उपमहाद्वीप काफी हद तक दूसरे देशों से अलग हो गया, जिससे यहां की विविधता के बीच सांस्कृतिक एकता की शक्तियाँ मजबूत हुईं। ☐
ग) परिवहन के साधनों में सुधार के साथ ही अब हिमालय संस्कृतियों के मिश्रण में बाधा नहीं रह गया है। ☐
घ) भारतीय संस्कृति के विकास में हिमालय की कोई भूमिका नहीं रही। ☐

25.2.3 उपमहाद्वीप में हमारे पड़ोसी

प्राचीन सभ्यताओं वाले सभी देशों की तरह, भारत की सीमाएं प्राकृतिक और ऐतिहासिक रूप से निर्धारित हैं। हिंद महासागर दक्षिण में भारत की सीमा निर्धारित करता है। हमारी तटरेखा करीब-करीब पृथ्वी की त्रिज्या के बराबर है। हिंद महासागर में भारत के अनेक द्वीप हैं। बंगाल की खाड़ी में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह हैं। इस उपमहाद्वीप में पूर्व में हमारा पड़ोसी बंगलादेश है और दक्षिण-पूर्व में बर्मा, मलेशिया, इंडोनेशिया, थाईलैंड, कम्बोडिया, लाओस और वियतनाम हमारे पड़ोसी हैं। पश्चिम में हमारी भू-सीमा के पार पाकिस्तान है और खैबर दर्रे के उस पार अफगानिस्तान है। उपमहाद्वीप में हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान के पार समुद्र तट से जुड़े हमारे पश्चिम एशियाई पड़ोसी देश—ईरान, इराक़ और अरब देश—हैं। पश्चिम में समुद्र-तट पर हमारे अफ्रीकी पड़ोसी देश—मिस्र, सूडान, इथोपिया, सोमालिया, केन्या और तंजानिया हैं। दक्षिण में, समुद्र में स्थित श्रीलंका हमारा पड़ोसी देश है। हमारे लक्षद्वीप समूह के पश्चिम में मालदीव द्वीप-समूह हैं, जो एक ही माला में पिरोए मोती से लगते हैं।

हिमालय पर्वत श्रेणियां हमारे उत्तरी तट की पहरेदार हैं। इन पर्वतों की दीवार के पार चीन का सिनकियांग क्षेत्र है। यहीं तारिम बेसिन है, जहां प्राचीन काल में काशगर और खोतान की प्राचीन सभ्यताएं विकसित हुईं। भारत के उत्तरी तिकोने क्षेत्र का बड़ा सामरिक महत्व है। यहां पांच एशियाई देश—चीन, सोवियत संघ, अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारत—मिलते हैं। हमारे उपमहाद्वीप का मुकुट जैसा हिमालय वास्तव में एशियाई राजनीति के सबसे महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थान पर है।

दक्षिण-पूर्व और पूर्व की ओर हिमालय शृंखला नागा, मिशमी, पटकोई नामक कम ऊंची पहाड़ियों से मिलती है। सिंधु से ब्रह्मपुत्र तक 2,400 किलोमीटर लंबी हिमालय की बर्फीली चोटियां हमारे देश के पहरेदार-सी खड़ी हैं।

इन्हीं पर्वत शृंखलाओं के उत्तर में हिमालयी देश नेपाल है। भारत और नेपाल का इतिहास और भूगोल समान रहा है। सुंदर देश भूटान हमारे देश के उत्तर-पूर्व में स्थित है। भूटान के पूर्व में हिमालय की ऊंची चोटियाँ भारत को चीन से अलग करती हैं।

इसी सीमा-रेखा पर तिब्बत स्थित है। इसकी आध्यात्मिक तथा राजनीतिक राजधानी ल्हासा भारतीय सीमा से तीन सौ किलोमीटर दूर है। पूर्व की ओर भारतीय सीमा घने वनों से घिरी है। यहां बर्मा, चीन और भारत आपस में मिलते हैं।

हिमालय की सहायक पर्वत-श्रेणियों से हमारी पूर्वी सीमा घिरी है। मिशमी, पटकोई और नागा पहाड़ियों की शृंखला एक-दूसरे से करीब-करीब जुड़ी हैं। इसके बाद बरैल, लुशाई और फिर अराकान योमा पहाड़ियां हैं जो बंगाल की खाड़ी तक पहुँच कर समुद्र के पानी में छुप जाती हैं। यही पहाड़ी शृंखला फिर अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में फिर सतह पर आती है। इसी पहाड़ी शृंखला पर घने सदाबहार वनों के बीच भारत और बंगलादेश की सीमा मिलती है। बर्मा का मांडले नगर भारतीय सीमा से करीब 300 किलोमीटर दूर है।

हमारे पश्चिम में पाकिस्तान स्थित है। मोहनजोदड़ो और कालीबंगा के ज़माने से हमारा इतिहास समान रहा है। भारत के उत्तर में ही मज़बूत पठानों का इलाका—सीमांत गांधी खान अब्दुल गफ्फार खां की जन्मभूमि है। इसके दक्षिण में पांच नदियों का हरा-भरा इलाका पंजाब है जहां खूब गेहूं होता है। भारत के अमृतसर और जालंधर ज़िलों की सीमा पाकिस्तान से मिलती है। इसके दक्षिण में भारत के रेगिस्तान प्रदेश राजस्थान के पश्चिम हिस्से से पाकिस्तान का सिंध प्रांत जुड़ा है, जहां सिंधु नदी का मुहाना है।

हम लोग परंपरा से ही शांतिप्रिय रहे हैं। भारतीय सैनिक दस्तों ने कभी भी दूसरे देशों पर हमले नहीं किए। इतिहासकारों ने कम्बोडिया के भारतीय मंदिरों, चीन के बौद्ध विहारों में बौद्ध पांडुलिपियों और मध्य-एशिया के प्राचीन (परंतु अब विलुप्त) नगरों में निकली भारतीय व्यापारिक वस्तुओं का वर्णन किया है। लेकिन, कहीं भी उन्हें भारतीय विजय का स्मारक नहीं मिला। भारत का इतिहास ऐसे लोगों का इतिहास है जो पड़ोसियों के साथ शांति से रहते आए हैं। हमने बड़े संघर्ष के बाद एक शक्तिशाली सत्ता से स्वतंत्रता पाई है, अपनी इस स्वतंत्रता से हमें प्यार है और हम पूरे उत्साह से इस आज़ादी की रक्षा करते हैं।

परबत जो सबसे ऊंचा,
हमसाया आसमां का,
वो संतरी हमारा,
वो पासबां हमारा।
— इक़बाल

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस उपमहाद्वीप की सामाजिक मान्यताओं में विविधता के बीच जबरदस्त एकता है। हमारे राजनीतिक स्वरूप की इस अनूठी विशेषता के कारण ढूंढने कठिन नहीं हैं। हम इन मान्यताओं के मूल पक्ष की विवेचना करेंगे। इसके लिए हम क्षेत्रीय अंतरों और विविधताओं के कारणों की पहचान करेंगे और साथ ही एकता के आबंधों को भी समझने का प्रयास करेंगे।

बोध प्रश्न 2

i) रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए। इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।
   क) ग्लोब देखने से लगता है कि भारतीय उपमहाद्वीप एशिया के विशाल भूखंड का ..... विस्तार है।
   ख) पूरा उपमहाद्वीप ..... गोलार्द्ध में स्थित है।
   ग) भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर से भूमध्य रेखा (विषुवत रेखा) ..... डिग्री दूर है।
   घ) कर्क रेखा इस महाद्वीप के लगभग ..... से गुज़रती है।

ii) निम्नलिखित कथनों में से सही कथन के आगे कोष्ठक में "सही" और गलत कथन के आगे "गलत" लिखिए। इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।
   क) भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमी तट पर अरब सागर और पूर्वी तट पर बंगाल की खाड़ी है। ( )
   ख) हिमालय को पर्वत श्रेणियाँ उपमहाद्वीप की सीमा पर लगभग अविछिन्न शृंखला के रूप में हैं। ( )
   ग) एशिया के प्रमुख हिस्सों से घिरा भारतीय उपमहाद्वीप पृथ्वी का एक बड़ा भू-भाग है। ( )
   घ) पूरा भारतीय उपमहाद्वीप उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। ( )

25.3 संस्कृतियों की विविधता और एकता के कारक

25.3.1 विविधता

इस उपमहाद्वीप का विशाल भौगोलिक विस्तार सामाजिक जीवन की क्षेत्रीय विविधताओं के फलने-फूलने के लिए बड़ा अनुकूल है। भारत विश्व का सातवां विशाल देश है। इतने बड़े भू-भाग वाले उप-महाद्वीप में क्षेत्रीय विविधताएं होना स्वाभाविक है।

प्राकृतिक विविधताओं के कारण इस उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य तथा प्रकृति के बीच संपर्क के विविध रूप रहे हैं।

हज़ारों वर्षों से आसपास के अलग-अलग क्षेत्रों से लोग यहां आते रहे हैं। अलग-अलग मार्गों से गुज़रते हुए समय-समय पर विभिन्न जातियाँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आन बसीं और इस प्रकार इस उपमहाद्वीप में बहुमुखी सांस्कृतिक विविधता विकसित हुई।

करीब 3000 वर्षों के लंबे इतिहास में विभिन्न क्षेत्रों के विविध स्थानों में कृषक समुदायों ने अपनी

अलग-अलग क्षेत्रीय पहचान बनाई है। इससे संस्कृति के क्षेत्र में अनेक स्थानीय रूप विकसित हुए हैं। बुनियादी तौर पर कृषि-आधारित समाज में ऐतिहासिक परंपराओं की निरंतरता से भी ऐसे अलग-अलग क्षेत्रों का विकास हुआ है।

25.3.2 अंतर्निहित एकता

स्पष्ट है कि उपमहाद्वीप के सामाजिक भूगोल की प्रमुख विशेषता इसकी क्षेत्रीय विविधता नहीं है, बल्कि प्रमुख यह है कि सामाजिक विविधता समय के साथ-साथ विकसित होती अंतर्निहित एकता पर आधारित और पोषित हुई है। अब हम सामाजिक मूल्यों की इस एकता को मज़बूत बनाने वाले कारकों का अध्ययन करेंगे।

पहला तथ्य यह है कि विभिन्न क्षेत्रों के पर्यावरण में विविधता लाने वाले कारकों के बावजूद, मौसमों में मानसून का नियमित क्रम एकरूपता का महत्वपूर्ण सूत्र जुटाती है। बारी-बारी से सूखे और नम मौसम का आना तथा कुछ महीने की जीवनदायी वर्षा—मौसम का यह स्वरूप लगभग सारे उपमहाद्वीप में एक जैसा रहता है। वर्षा पर आधारित कृषि और ग्रामीण समुदाय, कई तरह से मानसून की देन है। स्थानीय विभिन्नताओं के बावजूद, मानसून की यह सर्वव्यापकता इस विशाल भूखंड में मनुष्य तथा प्रकृति के संबंधों में एकरूपता लाई है। इस उपमहाद्वीप की एकता का यह एक मज़बूत आधार है।

दूसरा तथ्य यह है कि देश के विभिन्न भागों की सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं के अन्य भागों में प्रसार से सांस्कृतिक मेल-मिलाप और अनुकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। इन एकरूप प्रवृत्तियों की छाप क्षेत्रीय विविधताओं पर पड़ी, जिससे एकता के बंधन मज़बूत हुए। इस प्रसार की विभिन्न समुदायों को एकीकृत करने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल और सार्थक रही कि इसने अपने आप में क्षेत्रीय परंपराओं को समा लिया है। इस उपमहाद्वीप का सांस्कृतिक स्वरूप इसी मिली-जुली परंपरा पर आधारित है।

तीसरा तथ्य यह है कि पिछले करीब दो सौ वर्षों में एक राष्ट्रीय घरेलू बाज़ार पनपा है और विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक संपर्क बने हैं। हालांकि, औपनिवेशिक सत्ता द्वारा किये गये शोषण का इस प्रवृत्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है फिर भी उपमहाद्वीप में आर्थिक संपर्कों के फैलाव में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ब्रिटिश शासन ने गांवों की आत्मनिर्भरता वाली अर्थव्यवस्था समाप्त कर दी जिससे भारत का ग्रामीण क्षेत्र एक विशाल, एकरूप उपमहाद्वीपीय बाज़ार के अंतर्गत आ गया। रेल और अन्य संचार साधनों के विस्तार से इस प्रक्रिया में और तेज़ी आई। अर्थव्यवस्था के दबाव में आकर बड़े पैमाने पर लोगों का दूसरे ज़िलों और राज्यों में आना-जाना बढ़ा। इस तरह पीढ़ियों से एक-दूसरे से कटे क्षेत्रीय समूहों का अलगाव समाप्त हुआ। इस प्रक्रिया में, गांवों के लोगों का शहरों में जाकर बसना एक विशेष महत्वपूर्ण परिघटना है। ये लोग शहरों के व्यापक फैलाव का अंग बन गए। इस प्रकार, विभिन्न भाषाओं और धर्मों को मानने वाले एक उभरते उपमहाद्वीपीय समाज के अंग बने।

25.3.3 टुकड़ों में बंटे उपमहाद्वीप में असमानता की स्थिति

दक्षिण एशिया के इस उपमहाद्वीप में दुनिया के 20 प्रतिशत से ज्यादा लोग रहते हैं। इस उपमहाद्वीप का बहुत प्राचीन इतिहास रहा है और ऐतिहासिक काल से वर्तमान काल तक हर काल में विश्व के प्रमुख क्षेत्रों से इसका संपर्क रहा है। प्रागैतिहासिक काल में दजला-फरात और नील नदी की घाटी की सभ्यताओं से इसका संपर्क रहा। प्राचीन काल में यूनान और चीन की सभ्यताओं से, मध्य काल में मध्य तथा पश्चिम एशिया से और आधुनिक काल में पश्चिम यूरोप से इसका संपर्क रहा। हालांकि मानव इतिहास लाखों वर्ष का है, लेकिन ईसा के पांच हज़ार वर्ष पूर्व के नव-पाषाण काल में एक जगह टिक कर खेती की शुरुआत से आज के हरित क्रांति के युग तक परंपराओं की एक अनूठी निरंतरता रही है।

औद्योगिक क्रांति और इससे मानवीय परिस्थितियों में आए जबरदस्त परिवर्तन से उपमहाद्वीप की किस्मत में भी भारी उथल-पुथल हुई। दुनिया के अनेक अन्य औपनिवेशिक साम्राज्यों की तरह, यह घनी जनसंख्या वाला क्षेत्र भी विकसित देशों के कच्चे माल का स्रोत और उनकी वस्तुओं का बाज़ार बनकर रह गया। दो शताब्दियों के विदेशी अधिपत्य के दौरान इस क्षेत्र के करोड़ों लोगों को भयानक गरीबी में रहना पड़ा। आज़ादी के बाद आए कुछ सकारात्मक परिवर्तनों के बावजूद, यह उपमहाद्वीप आज भी दुनिया के गरीबों, भूखों, अशिक्षितों और बीमारों की बड़ी समष्टि का घर है। उदाहरण के तौर पर, नेपाल बंगलादेश में प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद 160 डॉलर है, जबकि स्विटज़रलैंड में यह 21,000 डॉलर, अमरीका में 18,000 डॉलर है और जापान में 16,000 डॉलर है। प्रति व्यक्ति खाद्य पदार्थ की कैलोरी में उपलब्धता इस क्षेत्र में 1900 से 2400 कैलोरी प्रतिदिन है, जबकि अमरीका में 3600 कैलोरी और कनाडा में 3400 कैलोरी है। प्रति व्यक्ति वार्षिक ऊर्जा उपभोग (किलोग्राम में तेल की मात्रा के अनुरूप) नेपाल में 23 किलोग्राम है, जबकि कनाडा में 9000 किलोग्राम है। भारत में जीवन की प्रत्याशी 58 वर्ष और पाकिस्तान में 55 वर्ष है, जबकि जापान में यह 78 वर्ष और कनाडा में 77 वर्ष है। बाल मृत्यु दर नेपाल में 138 प्रति हज़ार है, जबकि जापान में यह मात्र 6 प्रति हज़ार है। विश्व के ज्यादातर निरक्षर लोग दक्षिण एशिया में हैं। विकसित देशों में निरक्षरता पूरी तरह समाप्त हो चुकी है, जबकि भूटान में 85 प्रतिशत और बंगलादेश में 74 प्रतिशत लोग अभी भी

निरक्षर हैं। दुनिया के निरक्षरों में करीब 43 प्रतिशत इस उपमहाद्वीप में रहते हैं। स्वतंत्रता की तरह विकास को भी टुकड़ों में अलग-अलग नहीं किया जा सकता। इसलिए इस उपमहाद्वीप में तेज़ आर्थिक विकास और इसके लाभों के न्यायपूर्ण वितरण की नीति पर ही बेहतर विश्व बनाने का आंदोलन आधारित होना चाहिए। तभी ज़्यादा न्यायपूर्ण नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था कायम हो सकती है।

इस तरह, इस उपमहाद्वीप में विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का मिश्रण होता रहा है और इस मिश्रण से जातियों तथा संस्कृतियों की व्यापक विविधता पनपी है।

औपनिवेशिक शासन से मुक्त होने के बाद से इस उपमहाद्वीप का हर देश—भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, नेपाल, श्रीलंका और भूटान—अपने सामाजिक-राजनीतिक जीवन को अपने राष्ट्रीय लक्ष्य के अनुरूप बनाने का प्रयास कर रहा है। इस प्रक्रिया में सफलताओं और असफलताओं के बड़े व्यापक अनुभव रहे हैं। ये अनुभव इस उपमहाद्वीप और सारे विश्व की भावी पीढ़ियों के लिए कीमती धरोहर होंगे।

यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि दक्षिण एशिया और अन्य विकासशील देशों के आत्मनिर्भर और स्वतंत्र बने रहने के प्रयासों में निरंतर रुकावटें आती रही हैं। ये रुकावटें दुनिया की महाशक्तियों, खास तौर पर पुरानी औपनिवेशिक शक्तियों के इस क्षेत्र की गतिविधियों में हस्तक्षेप के कारण आयी हैं। यह दृष्टांत इस उपमहाद्वीप के देशों के लिए महत्वपूर्ण सीख है। इसका लाभ उठाकर आगे गलत निर्णय लेने से बच सकते हैं और झूठे दिलासों को समझ सकते हैं। ऐसा करने से इस क्षेत्र के देश न केवल अपने आपको समझ सकेंगे बल्कि स्वयं विचार कर सकने की क्षमता में रुकावट खड़ी करने वाले ताकतवर देशों के प्रयासों का मुकाबला भी कर सकेंगे।

यह उल्लेखनीय है कि इस उपमहाद्वीप के देशों के बीच इतना घनिष्ठ संबंध है। किसी एक देश की अनुकूल अथवा प्रतिकूल, पारिस्थितिक और सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं, आंदोलनों और प्रवृत्तियों का दूसरे देशों पर प्रभाव पड़ता है। बंगलादेश तट पर आने वाला समुद्री तूफान अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं की परवाह किए बिना भारत में भी जान-माल का नुकसान करता है। इसी तरह, एक देश में साम्प्रदायिक तनाव होने का बुरा असर दूसरे देश के राजनैतिक माहौल पर भी पड़ता है। वर्षा लाने वाले बादल केवल भारत में ही या केवल पाकिस्तान में ही वर्षा नहीं करते और एक देश में विकसित ज्यादा फसल देने वाले बीज दूसरे देश में उत्पादकता बढ़ाने में भी सहायक होते हैं। यूं कहिए पर्यावरणीय परिघटनाएं राजनीतिक सरहदों की परवाह किये बिना सभी क्षेत्रों को प्रभावित करती हैं।

बोध प्रश्न 3

कॉलम "क" में दिए वाक्यांशों का कॉलम "ख" के वाक्यांशों से मिलान कीजिए। इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

कॉलम क	कॉलम ख
क) दक्षिण एशियाई देश के आत्मनिर्भर बनने में	क) भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न क्षेत्रों में विविध सामाजिक व्यवस्थाएं पनपीं।
ख) आसपास के क्षेत्रों के लोगों के आने से	ख) विकसित देशों को कच्चा माल पहुंचाने वाला क्षेत्र बन गया।
ग) पिछले दो सौ वर्षों में अंतर-महाद्वीपीय व्यापारिक संपर्कों	ग) अक्सर बड़ी शक्तियों द्वारा इस क्षेत्र में मामलों में दखल देने से रुकावट आई।
घ) औद्योगिक क्रांति आने से घनी जनसंख्या वाला यह क्षेत्र	घ) ने ग्रामीण भारत के बड़े हिस्से को एकीकृत उपमहाद्वीपीय बाज़ार से जोड़ दिया।

25.4 उपमहाद्वीप में प्राकृतिक प्रणालियों की एकरूपता

उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक स्वरूप की एकरूपता का एक प्रमुख कारण यहां की प्राकृतिक प्रणालियों का समान होना है। यह तथ्य एक तरफ इस उपमहाद्वीप के करोड़ों लोगों के बेहतर जिंदगी के लिए एक शक्तिशाली स्रोत है तो दूसरी ओर बड़ी चिंता का कारण भी है। चिंता इस बात की है कि उपमहाद्वीप के पर्यावरण का तेजी से अपकर्ष हो रहा है और प्राकृतिक संसाधनों का विनाश हो रहा है। ऐसी स्थिति में मिल-जुलकर प्रयास किया जाना जरूरी है ताकि हम अपने सीमित संसाधनों से विकास की कठिन मांगों को स्थायी तौर पर पूरा कर सकें। यह ध्यान देने की बात है कि विकास नीति और योजनाओं में पर्यावरण पर ध्यान देना ही ज़रूरी नहीं है परन्तु ऐसी नीतियों का कार्यान्वयन करके वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कारगर संस्थागत ढांचा बनाना भी आवश्यक है। सन् 1972 में स्टॉकहोम में हुए संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन में इसी बात पर ज़ोर देते हुए कहा गया था, "पर्यावरण संरक्षण के संस्थागत प्रबंध के तरीकों का निर्धारण और इसमें सुधार हर देश को अपने अनुभवों के आधार पर करना होगा। हर देश में विकास की प्रक्रिया के दौरान महसूस की गई विशेष ज़रूरतों और परिस्थितियों के आधार पर प्रबंध के ये तरीके निर्धारित किए जाने

चाहिए।" इस क्षेत्र के लोग और सरकारें निरंतर यह महसूस करती रही हैं कि इस समूचे उपमहाद्वीप में पर्यावरण संरक्षण के लिए सभी देशों को परस्पर तालमेल से काम करना चाहिए क्योंकि इस उपमहाद्वीप के प्राकृतिक भौतिकतंत्र परस्पर निर्भर और जुड़े हुए हैं और हमारी प्राकृतिक प्रणालियों में बड़ी एकरूपता है। उदाहरण के लिए, नेपाल में वनों के विनाश से उत्तर बिहार में बाढ़ आ सकती है। भारत में गंगा पर बनाया गया बांध बंगला देश में किंचित आशकाएं पैदा कर देता है। भारत की इंदिरा गांधी नहर और इससे जुड़ी हरित पट्टी से सीमा पार पकिस्तान में भी रेगिस्तान का फैलाव रुकता है। अथार्त् पर्यावरण एक सतत् तंत्र को निरूपित करता है। जरूरी हो जाता है कि इसके व्यवस्थापन की नीति भी समन्वित होनी चाहिए।

आइये, अब हम परस्पर निर्भरता वाली इस एकरूप प्रणाली के कुछ घटकों का अध्ययन करें।

25.4.1 पर्वतीय पारितंत्र

उत्तर और उत्तर-पश्चिम का पहाड़ी क्षेत्र काफी हरा-भरा है। यहीं से उपमहाद्वीप की हमेशा पानी से भरी नदियां निकलती हैं जिनके स्रोत बर्फीले ग्लेशियरों वाले हैं। सिंधु-सतलुज और गंगा-ब्रह्मपुत्र नदी प्रणालियों के स्रोत कैलाश पर्वत के नीचे, मानसरोवर के पास, काफी पास-पास स्थित हैं। मां की प्रेम भरी बांहों की तरह ये नदियां उपमहाद्वीप को घेरे हुई हैं।

अब यह बात बड़ी महसूस की जा रही है कि पश्चिमोत्तर, उत्तर और पूर्वोत्तर क्षेत्र के पर्वतों के पर्यावरण को खतरनाक सीमा तक नुकसान पहुंचाया गया है। खास तौर से हिमालय क्षेत्र में यह खतरा ज्यादा है और इस क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव भी ज्यादा है। वनों के विनाश और इस प्रकार वृक्षाच्छादित क्षेत्र में कमी होने से मिट्टी का कटाव होता है। इसका परिणाम पांचों हिमालयी देशों — भारत, भूटान, बंगलादेश, नेपाल और पाकिस्तान — में भूमि की उर्वरता कम होने और विनाशकारी बाढ़ों के रूप में सामने आता है। इस बिगड़ी स्थिति को देखते हुए सभी सम्बद्ध देशों का मिल-जुलकर अंतर-क्षेत्रीय सहयोग से काम करना जरूरी है ताकि विभिन्न परिस्थितिकीय परिस्थितियों की मानवीय आवश्यकताओं का बोझ झेल पाने की क्षमता का वैज्ञानिक तरीके से आकलन हो और इस क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों के टिकाऊ तौर पर इस्तेमाल किए जाने के लिए उचित नीति बनाई जाए। विभिन्न क्षेत्रों के बीच तालमेल न होने से, उनकी नीतियां परस्पर विपरीत दिशा में कार्य करती हैं। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। वानिकी और कृषि तथा वानिकी और सिंचाई के बीच सही तालमेल कायम करने के तरीके खोजे जाने चाहिए। कृषि और उद्योग के बीच ऊर्जा की बढ़ती मांग को लेकर जो प्रतिस्पर्धा है, उसका भी आकलन होना चाहिए। ये और अन्य जटिल मुद्दे पर्यावरण की समस्याओं को बढ़ाते हैं और उपमहाद्वीप की नाजुक पर्वतीय पारिस्थितिक प्रणाली को और नुकसान पहुंचाते हैं।

हिमालय पर्वत श्रेणी में वनों को फिर पनपाने और उनके वैज्ञानिक प्रबंध के लिए सभी सम्बद्ध देशों के सम्मिलित विराट प्रयास आवश्यक हैं। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि भारी गरीबी वाले इस क्षेत्र में पर्यावरण प्रबंध नीतियों का सीधा प्रभाव लोगों के रोज़गार और आमदनी पर पड़ता है। पर्यावरण संरक्षण की धुन में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मुरझाते फूलों की तुलना में भूखे बच्चे कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

भारत और पाकिस्तान के बीच सिंधु नदी के पानी के बारे में समझौता इस बात का अच्छा उदाहरण है कि जटिल समस्याओं को दोनों पक्षों के हित में किस प्रकार संतोषजनक तरीके से सुलझाया जा सकता है। आशा की जानी चाहिए कि पूर्वी क्षेत्र में स्थित हिमालयी नदियों के बारे में भारत, नेपाल और भूटान के बीच तथा भारत और बंगलादेश के बीच भी इसी प्रकार की उचित व्यवस्था हो सकेगी।

25.4.2 रेगिस्तानी पारितंत्र

विशाल भारतीय थार मरुस्थल भारत और पाकिस्तान में फैला हुआ है। इसके चारों ओर पाकिस्तान में सिंधु नदी का सिंचित क्षेत्र, भारत में पंजाब की सतलुज नदी के आसपास का क्षेत्र और राजस्थान की अरावली पहाड़ियां हैं। थार रेगिस्तान का क्षेत्रफल करीब एक लाख वर्ग मील है। भारत और पाकिस्तान, दोनों में ही फैले इस रेगिस्तानी इलाके में लगातार अपनी जगह बदलते रेतीले टीले हैं और बेचैन कर देने वाली गरम हवाएं चलती हैं। इस रेगिस्तान के फैलाव को रोकने और इन पूरी तरह या काफी हद तक शुष्क क्षेत्रों के सीमित जल-संसाधनों के कारगर और सर्वोत्तम उपयोग की समस्याएं भारत और पाकिस्तान, दोनों देशों की है और इनमें से किसी एक देश द्वारा अकेले ही या अलग से ये समस्याएं नहीं सुलझाई जा सकतीं।

रेगिस्तान को फैलने से रोकने के काम में दोनों ही देशों को बहुत कम सफलता मिली है। कारण स्पष्ट हैं। रेगिस्तान का फैलाव रोकने के लिए पर्यावरणीय और सामाजिक-आर्थिक उपाय मिलकर नहीं किए जा रहे हैं। दोनों देशों के संयुक्त प्रयासों की रफ्तार बहुत धीमी रही है।

रेगिस्तान का फैलाव रोकने के लिए निम्नलिखित उपायों पर विचार किया जाना चाहिए :

1) रेगिस्तान में फैलाव रोकने के पहले आधारभूत कदम के रूप में मिट्टी के वर्गीकरण के लिए सर्वेक्षण किए जाने चाहिए।

2) मिट्टी में लवणता और बाद में पानी जमा हो जाने की समस्याओं को रोकने के लिए सिंचित क्षेत्रों में पानी की उचित निकासी व्यवस्था पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

3) रेगिस्तान के फैलाव से जुड़े सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक कारणों के बारे में जागरुकता फैलाने के लिए विशेष कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। ऐसा नहीं किए जाने पर रेगिस्तान के फैलाव को रोकने के उपायों का लोग प्रतिरोध करेंगे और वांछित परिणाम नहीं मिलेंगे।

4) तकनीकी उपायों में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस क्षेत्र में सौर-ऊर्जा और पवन-ऊर्जा जैसे ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों में काफी क्षमता है और रेगिस्तान का फैलाव रोकने की कार्यनीति में इन स्रोतों का समुचित इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

25.4.3 तटीय पारितंत्र

इस उपमहाद्वीप की तटीय पारिस्थितिक प्रणाली आमाप में पूरी दुनिया के उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में सबसे बड़ी है। यह तट रेखा मकरान से चटगांव तक फैली है, इसलिए पूरे उपमहाद्वीप में इसकी प्रबंध-नीति का एक रूप होना ज़रूरी है। ऐसे क्षेत्र के पर्यावरण प्रबंध में तटीय प्रक्रियाओं के क्रम का नियमन, एक क्षेत्र के अनुरूप दूसरे क्षेत्र के भूमि-प्रयोग में परस्पर परिवर्तन, तटीय और मुहाना क्षेत्रों के दुर्लभ पेड़-पौधों वाली पारिस्थितिक प्रणाली के परिरक्षण, तटीय क्षेत्र में वन लगाने के काम में तेजी लाने, समुद्र में फेंके जाने वाले अपवर्ज्य के व्ययन को रोकने, फिर इस्तेमाल हो सकने वाले संसाधनों का नवीनीकरण करके विवेकपूर्ण इस्तेमाल और पर्यावरण की रक्षा करते हुए पर्यटन को बढ़ावा देने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। तटीय क्षेत्र में समुद्री प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं—शहरों की गंदगी, पेट्रोलियम साफ करने में निकलने वाला कचरा, हाइड्रोकार्बन, पेट्रो-रसायन, खाद्य और मदिरा आदि की प्रोसेसिंग में उत्पन्न होने वाला कचरा, धातु और रसायन उद्योगों के अपशिष्ट, ताप संयंत्रों से निकलने वाले व्यर्थ गर्म पदार्थ, समुद्र में से नमक निकालने के दौरान बचे अवशेष, कृषि में काम आने वाले कीटनाशक तथा उर्वरक और खेती की प्रक्रियाओं से निक्षालित होकर आई हुई गाद। उपमहाद्वीप के तटीय मैदानों, डेल्टा और नदियों के मुहानों के क्षेत्रों की घनी जनसंख्या के कारण इस उपमहाद्वीप में तटीय प्रदूषण की स्थिति काफी गंभीर है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू.एन.ई.पी.) के समुद्र संबंधी कार्यक्रमों में इस पूरे उपमहाद्वीप के सभी तटीय देशों—भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान, मालदीव और श्रीलंका—को एक ही क्षेत्र माना गया है और इस महाद्वीप के लिए संयुक्त कार्यक्रम की आवश्यकता पर बल दिया है। यह एक स्वागत-योग्य कदम है। इस इकाई के अगले भाग में हम इस उपमहाद्वीप मे संसाधनों के प्रबंध के बारे में पढ़ेंगे। इससे पहले आइये, आप निम्नलिखित बोध प्रश्न को हल कीजिए।

बोध प्रश्न 4

दिए गए स्थान में सही कथनों के आगे (√) और गलत कथनों के आगे (×) का निशान लगाइए। इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) हिमालय क्षेत्र पर पर्यावरण के बिगड़ने का असर नहीं पड़ा है। ☐

ii) भारत और पाकिस्तान के परस्पर जुड़े क्षेत्र में रेगिस्तान का फैलाव रोकने के कार्यक्रमों में कम सफलता मिली है। ☐

iii) इस उपमहाद्वीप के तटीय क्षेत्रों में कम घनी जनसंख्या होने से वहां तटीय प्रदूषण की स्थिति गंभीर है। ☐

iv) भारतीय उपमहाद्वीप के देशों की सरकारों को पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों में समन्वित कार्यनीति अपनानी चाहिए। ☐

25.5 संसाधन प्रबंध

आपने पढ़ा कि उपमहाद्वीप के सभी देशों की प्राकृतिक प्रणालियों में कितनी एकरूपता है। बढ़ती जनसंख्या की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए संसाधनों के अंधाधुंध दोहन और प्राकृतिक शक्तियों को नियंत्रित करने के कारण पर्यावरण की वर्तमान गंभीर स्थिति पैदा हुई है। संसाधनों के प्रबंध के लिए मिल-जुलकर समन्वित नीति अपनाने से इन देशों को निश्चित रूप से लाभ होगा। इस काम में संसाधनों का विवेकपूर्ण इस्तेमाल, संरक्षण और एक बार इस्तेमाल के बाद में उन्हें अन्य रूपों में उपयोगी बनाना शामिल है। कुछ समय तक ऐसी समन्वित प्रबंध नीति अपनाने से किसी एक संसाधन और बहुत से संसाधनों के समूह (जैसे नदी घाटी) से अधिकतम लाभ होगा और पर्यावरण पर मानवीय गतिविधियों का बुरा असर भी कम से कम पड़ेगा। इस भाग में हम दो प्रकार के संसाधनों—जल और ऊर्जा के प्रबंध के बारे में पढ़ेंगे।

25.5.1 जल

इस उपमहाद्वीप में विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा के मौसमी वितरण को देखते हुए, यहां की विकास प्रक्रिया में जल प्रबंध की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है—खास तौर से कृषि क्षेत्र में और ग्रामीण इलाकों में। इसलिए उपमहाद्वीप के जल-संसाधनों के नियोजन और प्रबंध में पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी के बारे में समन्वित दृष्टिकोण अपनाना सतत् विकास के लिए ज़रूरी है। प्रायद्वीप को छोड़कर, उपमहाद्वीप के शेष भाग की लगभग सभी नदियां दो नदी प्रणालियों—सिंधु, गंगा और हिमालय के पूर्वी क्षेत्र में इसकी सहायक नदी ब्रहमपुत्र—से सम्बद्ध हैं। सिंधु-गंगा के मैदान नदियों द्वारा निरंतर छोड़ी गई महीन मिट्टी से बने हैं और विश्व की जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा इन मैदानों में रहता है। हिमालयी नदियों के बारे में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि 1500 से ज़्यादा ग्लेशियरों से इन्हें पानी मिलता है और इसीलिए सारे वर्ष ये सिंचाई के लिए पानी का स्थायी स्रोत बनी रहती हैं। इनमें सारे साल पानी बने रहने के लिए मानसून की वर्षा के बहुत कम भरोसे रहना पड़ता है। नदियों के थाले आमतौर पर निचले मैदानी इलाके हैं, जहां बाढ़ का पानी फैलता है। ये थाले और नदियों के मुहानों के डेल्टा मैदानी क्षेत्र तथा तटीय मैदानी भाग बहुत ऊपजाऊ हैं और पूरे उपमहाद्वीप की अन्न की ज़रूरतें पूरी करते हैं। इस क्षेत्र की फसल प्राप्त करने की क्षमता 250 प्रतिशत तक है। उपमहाद्वीप के घनी जनसंख्या वाले अनेक नगर भी इसी क्षेत्र में स्थित हैं। कुल भू-क्षेत्र के 64 प्रतिशत इलाके में खेती हो रही है; हज़ारों साल से यह इलाका आबाद रहा है, शताब्दियों से यहां कई फसलें ली जा रही हैं; और इस समय यहां बड़े पैमाने पर खेती से जुड़े रसायन इस्तेमाल हो रहे हैं।

जल संसाधनों से जुड़ी कई समस्याएं सामने आ रही हैं और जल संसाधनों के प्रबंध और विकास योजनाओं में उनपर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। ये समस्याएं हैं—मानवीय स्वास्थ्य को देखते हुए पानी की स्वच्छता पर निगरानी, भूमि में लवणता बढ़ने और पानी जमा होने को रोकने के तरीके, बाढ़ों में होने वाले विनाश को रोकना, नदियों से मछलियों तथा विभिन्न वनस्पतियों की नियमित प्राप्ति सुनिश्चित करना, नदी मार्गों का विकास और भूतल पर पानी को बनाए रखने तथा जमा करने की व्यवस्था।

इस क्षेत्र में पानी की बदलती ज़रूरतों और इस्तेमाल के बदलते तरीकों को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण की निरंतर निगरानी और समीक्षा करके लंबे समय के लिए संबंधित आंकड़ों को जमा करना भी ज़रूरी है।

25.5.2 ऊर्जा

इस उपमहाद्वीप की कुल ऊर्जा खपत में विभिन्न स्रोतों का जो हिस्सा है, उससे इस क्षेत्र के विभिन्न देशों के ऊर्जा संसाधनों की विविधता का पता चलता है। भारत में व्यापारिक स्तर पर ऊर्जा के इस्तेमाल का सबसे बड़ा स्रोत कोयला है। इसके बाद खनिज तेल और प्राकृतिक गैस का स्थान है। बंगलादेश और पाकिस्तान में ऊर्जा के प्रमुख स्रोत, प्राकृतिक गैस और खनिज तेल हैं। नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका में पन-बिजली ऊर्जा के प्रमुख स्रोतों में हैं। भारत में भी ऊर्जा के क्षेत्र में पन-बिजली का योगदान बहुत अधिक है।

ऊर्जा उत्पादन और उपयोग के महत्वपूर्ण क्षेत्र में उपमहाद्वीप के विभिन्न देशों के बीच आपसी सहयोग की बड़ी आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, अगर दक्षिण एशियाई देश ऊर्जा के क्षेत्र में समझौता कर लें तो ईरान से भारत और बंगलादेश तक पाइप लाइन बिछाकर प्राकृतिक गैस पहुंचाई जा सकेगी। यह भी संभव हो सकेगा कि बंगलादेश में इस्तेमाल के बाद बची कुछ प्राकृतिक गैस पूर्वी भारत में पहुंचाई जा सके। बंगलादेश और पाकिस्तान में कोयले की कमी है, जबकि भारत में कोयले के विशाल भंडार हैं। इस प्रकार, ऊर्जा संसाधनों के मामले में, क्षेत्र के विभिन्न देश एक-दूसरे की ज़रूरतें पूरी कर सकते हैं। इसलिए, सभी देशों के लाभ और पूरे क्षेत्र के विकास के लिए उपमहाद्वीप के देशों के बीच आपसी सहयोग की बड़ी आवश्यकता है।

भारत में पिछले दो दशकों से परमाणु ऊर्जा संयंत्र काम कर रहे हैं। लेकिन इनसे अभी भी बहुत कम बिजली मिल रही है। इनका कुल बिजली उत्पादन 3000 मेगावाट से भी कम है, जबकि संयंत्रों की कुल क्षमता 55,000 मेगावाट है। परमाणु ऊर्जा से जुड़ी कई पर्यावरण संबंधी समस्याएं हैं। जैसे—परमाणु ऊर्जा उत्पादन के बाद बचे पदार्थों का लंबे समय तक भंडारण, परमाणु रिएक्टरों में होने वाली दुर्घटनाएं और परमाणु हथियारों का बनाया जाना।

ऊर्जा संसाधनों के प्रबंध में सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र ग़ैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का इस्तेमाल करना है। जैसे सौर ऊर्जा, पवन-ऊर्जा, समुद्री-ज्वार की लहरों से ऊर्जा और भू-तापीय स्रोतों से ऊर्जा प्राप्त करना। इन साधनों पर इस क्षेत्र में उचित ध्यान नहीं दिया जाता। यह क्षेत्र इन संसाधनों में बड़ा समृद्ध है। इनमें से ज्यादातर स्रोतों का अपना प्राकृतिक चक्र है और ये संसाधन कभी भी समाप्त होने वाले नहीं हैं। इसलिए, इनके इस्तेमाल पर ध्यान नहीं दिया जाना बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है।

दक्षिण एशिया में ऊर्जा स्रोतों को टिकाऊ बनाए रखते हुए इनका विकास बड़ा जरूरी है और इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों की ज़रूरतों के अनुरूप कई स्तरों पर प्रयास किया जाना चाहिए। पर्यावरण के जैव घटकों को संबद्ध ऊर्जा संसाधनों के व्यापक दुरूपयोग से नुकसान पहुंचता है। सभी जानते हैं कि खाना पकाने के ईंधन

के लिए दक्षिण एशियाई देशों में लकड़ी का बहुत इस्तेमाल होता है। इसलिए जनसंख्या में तेज वृद्धि के साथ-साथ ईंधन के लिए लकड़ी की मांग भी चिंताजनक रूप से बढ़ रही है। परिणाम यह है कि तेजी से वन समाप्त हो रहे हैं, जिससे पूरी पारिस्थितिक प्रणाली पर बुरा असर पड़ रहा है। इस क्षेत्र की पहाड़ी ढलानों से चट्टाने खिसकने, मिट्टी के कटाव, ऊपरी क्षेत्रों में भूमि की उपजाऊ ऊपरी पर्त के बह जाने, निचले क्षेत्रों में पानी के सरोवरों की तलहटी मे गाद जमा हो जाने और बाढ़ आने की स्थिति बड़ी चिंताजनक हो गई है। ईंधन के लिए लकड़ी की भारी कमी और पर्यावरण के नुकसान की स्थिति बड़ी विनाशकारी हो गई है। इन सब बातों को देखते हुए इस उपमहाद्वीप की विकास-योजनाओं में दुबारा इस्तेमाल किए जा सकने वाले ऊर्जा-संसाधनों के विकास को उच्च प्राथमिकता देना जरूरी हो गया है। सौभाग्य से, इस क्षेत्र में गैर-परंपरागत ऊर्जा-स्रोतों—सौर, पवन, ज्वार और भू-तापीय ऊर्जा स्रोतों—के विकास की भारी संभावना और क्षमता है।

बोध प्रश्न 5

पाठ्य-सामग्री के अनुसार खाली स्थानों में उचित शब्द भरिए।

i) भारतीय उपमहाद्वीप की सभी नदियां ..... और ..... नदी प्रणालियों से संबद्ध हैं।

ii) नदियों के थाले, डेल्टा क्षेत्र और तटीय मैदान उपमहाद्वीप के सबसे ..... क्षेत्र हैं।

iii) भारत में व्यावसायिक स्तर पर ऊर्जा का ..... स्रोत कोयला है।

iv) भू-तापीय ऊर्जा, ऊर्जा का ..... स्रोत है।

25.6 पर्यावरण प्रबंध के लिए कार्यनीति

इस उपमहाद्वीप में विकास-प्रक्रियाएं एक दुर्भाग्यपूर्ण त्रिकोण में फंसी हैं। इस त्रिकोण के तीन बिन्दु हैं—तेज़ जनसंख्या-वृद्धि दर, कुपोषण की भयानक स्थिति, और तेज़ी से बिगड़ता पारिस्थितिक तंत्र। यह तो निस्संदेह जरूरी है कि इस क्षेत्र के करोड़ों लोगों की मूलभूत आवश्यकताएं पूरी करने के लिए तेज़ आर्थिक विकास होना चाहिए, परंतु साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि विकास के साथ-साथ पर्यावरण की रक्षा करना भी आवश्यक है क्योंकि इसके साथ मानव-जाति का अस्तित्व जुड़ा है।

यह आवश्यक है कि विकास की प्रक्रिया के दौरान पर्यावरण संरक्षण का भी ध्यान रखा जाए। ऐसी ही नीति से सतत विकास हो सकता है। सतत विकास सुनिश्चित करने और इस क्षेत्र के पर्यावरण की प्राकृतिक प्रणालियों के समुचित प्रबंध का आधार तैयार करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं :

i) राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण नीति बनाना और इसे पूरी तरह से लागू करना;

ii) व्यापक आधार पर आंकड़े जमा करने और उनके विश्लेषण की क्षमता विकसित करना;

iii) विकास योजनाओं को शुरू करने से पहले पर्यावरण पर उनके असर का वैज्ञानिक आकलन करना;

iv) कारखानों से हवा में निकलने वाले, पानी में या ज़मीन के अंदर फेंके जाने वाले अपशिष्ट पदार्थों के मानक स्तर निर्धारित करना और ऐसे कानून बनाना जिनके अंतर्गत इन मानक स्तरों पर कड़ाई से अमल हो सके;

v) विषैले और खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों को जमा करने, लाने-ले-जाने, भंडारण और निपटान में पूरी सुरक्षा बरते जाने के लिए कानून बनाना;

vi) प्रस्तावित नई बस्तियों में पर्यावरण के बुनियादी मानदंड सुनिश्चित करने के लिए कानूनों का कड़ाई से पालन करवाना और पहले से मौजूद बस्तियों में बेहतर पर्यावरण बनाने की व्यवस्था करना;

vii) परमाणु ऊर्जा संयंत्र बनाने से पहले परमाण्विक अपशिष्ट के लंबे समय तक भंडारण की उचित व्यवस्था करना;

viii) कृषि में रासायनिक कीटनाशकों के इस्तेमाल को कम से कम करने, रोकने और नियंत्रित करने का प्रयास करना;

ix) भूमि उपयोग योजना और खास तौर से जल-विभाजक प्रबंध (watershed management) करना ताकि पर्यावरण को होने वाला नुकसान कम से कम हो सके और बाद में ऐसा नुकसान पूरी तरह रोका जा सके;

x) तटीय क्षेत्रों में पूरी सावधानी से सतत विकास कार्यक्रम चलाना;

xi) लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरुकता तथा पर्यावरण संरक्षण की भावना विकसित करना।

25.6.1 संस्थागत और विधायी ढांचा

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उपमहाद्वीप में विकास नीतियों के साथ पर्यावरण की समस्याओं को जोड़कर देखने पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। ऐसा मुख्यतः गरीबी और आर्थिक विकास नहीं होने के कारण हुआ है। स्वतंत्रता के बाद, शुरू के वर्षों में उच्च आर्थिक विकास दर प्राप्त करना ही प्रमुख लक्ष्य समझा गया और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव की अनदेखी की गई। उच्च विकास दर पाने की दौड़ में पर्यावरण पर ध्यान

देना जरूरी समझा गया। अब हम इस उपमहाद्वीप के तीन देशों द्वारा उठाए गए कुछ कदमों तथा इस क्षेत्र में किए गए संयुक्त प्रयासों पर एक नज़र डालते हैं।

भारत

स्टॉकहोम सम्मेलन के बाद भारत में पर्यावरण प्रबंध की व्यापक व्यवस्था किए जाने पर काफी ध्यान दिया जाने लगा। 1972 में राष्ट्रीय पर्यावरण नियोजन और समन्वय समिति बनाई गई, जो पर्यावरण संबंधी मामलों की शीर्ष संस्था है। इसी वर्ष वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम लागू किया गया। संविधान के बयालीसवें संशोधन में पर्यावरण, खास तौर पर वनों और वन्य जीवन का संरक्षण सरकार का दायित्व माना गया। वन-भूमि के अन्य उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल को नियमित करने के लिए 1980 में वन (संरक्षण) अधिनियम पारित किया गया। इसी वर्ष पर्यावरण विभाग बनाया गया। इसका कार्य-क्षेत्र बड़ा व्यापक है जिसमें पर्यावरण संबंधी नियोजन, नियमन, संरक्षण और समन्वय शामिल है। पर्यावरण मंत्रालय आमतौर पर कैबिनेट मंत्री के अधीन होता है। संसद ने 1986 में व्यापक पर्यावरण संरक्षण अधिनियम पारित किया। इसके अंतर्गत केन्द्र और राज्य सरकारों को विकास कार्यक्रमों में पर्यावरण संबंधी लक्ष्यों को शामिल करने के लिए पर्याप्त अधिकार दिए गए। पर्यावरण के विविध पक्षों से संबद्ध अस्थायी समितियां विभिन्न सरकारी एजेंसियों के बीच परस्पर संपर्क बनाए रखती हैं। इन समितियों में सरकारी अधिकारियों के साथ-साथ समाजवैज्ञानिक और तकनीकी विशेषज्ञ भी संबद्ध होते हैं।

पाकिस्तान

पाकिस्तान में छठी पंचवर्षीय योजना (1983-88) से पहले उच्च आर्थिक विकास दर को प्रमुख लक्ष्य माना गया। छठी पंचवर्षीय योजना में विकास नीति में लोगों के जीवन-स्तर बेहतर बनाने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण को भी जोड़ने पर ध्यान दिया गया। पाकिस्तान सरकार ने आवास और निर्माण मंत्रालय में पर्यावरण और शहरी मामलों का डिवीज़न गठित किया। इस डिवीज़न का पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण रखना और पर्यावरण को सुरक्षित रखने वाली योजनाओं को बढ़ावा देना है। इसके साथ ही, पर्यावरण संरक्षण अध्यादेश लागू किया गया। इस अध्यादेश में विभिन्न संस्थागत व्यवस्थाएं की गई है। इनमें पाकिस्तान पर्यावरण संरक्षण परिषद पाकिस्तान पर्यावरण संरक्षण एजेंसी गठित करना शामिल है। पर्यावरण संरक्षण परिषद को दिए गए महत्व का पता इसी तथ्य से लगता है कि राष्ट्रपति स्वयं इसके अध्यक्ष रहे हैं।

नेपाल

नेपाल में पर्यावरण संरक्षण का दायित्व किसी एक मंत्रालय का नहीं है। उनके संबद्ध विभाग और मंत्रालय मिल-जुलकर यह काम करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर संसाधन संरक्षण नीति लागू करने के लिए राष्ट्रीय संरक्षण और प्राकृतिक आयोग बनाया गया। इस आयोग का काम-काज वन और भू-संरक्षण मंत्रालय और भू-संरक्षण तथा जल-विभाजक प्रबंध विभाग के माध्यम से किया जाता है।

25.6.2 दक्षिण एशियाई सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम

राष्ट्रीय कार्यक्रमों का अपना महत्व है, लेकिन दक्षिण एशियाई देशों के बीच पर्यावरण प्रबंध के क्षेत्र में आपसी सहयोग विशेष महत्व का है। दक्षिण एशियाई सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम (SACEP) इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। यह दक्षिण एशिया के सभी देशों—अफगानिस्तान, बंगलादेश, भारत, ईरान, मालदीव, पाकिस्तान, नेपाल और श्रीलंका—का संयुक्त प्रयास है। 1981 में हुई मंत्री-स्तरीय बैठक में इस क्षेत्र के पर्यावरण के बारे में छह-सूत्री कोलंबो घोषणा स्वीकृत की गई। इसके अंतर्गत निम्न क्षेत्रों में मिल-जुलकर कार्यक्रम चलाने पर ध्यान दिया गया है :

i) पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों और परियोजनाओं की लागत तथा लाभों का विश्लेषण;
ii) पर्यावरण के प्रतिदर्शी मानदंडों का निर्धारण;
iii) नवीकरणीय (दुबारा इस्तेमाल हो सकने वाले) संसाधनों के प्रयोग की प्रौद्योगिकी विकसित करना और अनवीकरणीय संसाधनों का वैज्ञानिक उपयोग;
iv) पर्यावरण के बारे में समुचित कानून व्यवस्था बनाना;
v) पर्वतीय पारिस्थितिक तंत्र और जल-विभाजकों के संरक्षण के उपाय करना;
vi) सामाजिक वानिकी को बढ़ावा देना;
vii) वन्य जीवन और विभिन्न प्रजातियों के संरक्षण को बढ़ावा देना; खास तौर से मूँगा चट्टानों, समुद्र तटीय पेड़-पौधों, नदी मुहानों और पर्यावरण की दृष्टि से नाजुक अन्य तटीय क्षेत्रो पर विशेष ध्यान देना;
viii) द्वीपीय पारितंत्रों के संतुलन को बनाए रखना और उनका संरक्षण;
ix) पर्यटन के विकास में पर्यावरण का दृष्टिकोण समावेशित करना;
x) ऊर्जा और पर्यावरण की नीतियों में उचित सुधार लाना;
xi) वन्य जीवन प्रबंध पर विशेष ध्यान देते हुए पर्यावरण शिक्षण और प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना।

इस क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण के लिए जो विधायी उपाय किए गए हैं और संस्थागत ढांचा विकसित किया गया है, उन्हें देखते हुए पारिस्थितिक दृष्टि से उचित विकास प्रक्रियाएं अपनाकर बेहतर पर्यावरण बनाने की संभावनाएं अच्छी जान पड़ती हैं।

दक्षिण एशिया में मानव वैज्ञानिक और पर्यावरण की दृष्टि से परस्पर संपर्कों में बड़ी विविधता है। जनसंख्या का घनत्व ज्यादा है, परंतु ज़मीन भी बड़ी उपजाऊ है। यहां तीन प्रमुख भू-तंत्रीय प्रणालियां हैं—पर्वतीय, मैदानी और पठारी। इनमें विभिन्न अंतर्संबद्ध तरीकों से परस्पर संपर्क है। इस उपमहाद्वीप में सतत् विकास निश्चित रूप से हिमालयी क्षेत्र, सिंधु-गंगा, ब्रहमपुत्र के मैदानों और पठारी क्षेत्रों का परस्पर तालमेल से उपयोग किया जाए। यह क्षेत्र में काफी हद तक मानसून पर निर्भर है। क्षेत्र के सभी देशों में पर्यावरण के कुछ समान तत्व हैं। क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और उपमहाद्वीपीय स्तर पर इन तत्वों पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रभावी तरीके से द्विपक्षीय और बहुपक्षीय स्तर पर संयुक्त नीतियां और कार्यक्रम चला कर पूरे क्षेत्र के लिए मान्य उपायों पर ध्यान देना आवश्यक है।

बोध प्रश्न 6

कॉलम I की बातों का कॉलम II से मिलान कीजिए। इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

कॉलम I		कॉलम II	
i)	राष्ट्रीय पर्यावरण नियोजन और समन्वय समिति	क)	नियोजन, नियमन, संरक्षण को प्रोत्साहन और समन्वय।
ii)	पर्यावरण विभाग के विभिन्न कार्य हैं। जैसे —	ख)	इसका गठन 1972 में शीर्ष संस्था के रूप में किया गया।
iii)	पर्यावरण और शहरी मामलों का प्रभाग	ग)	राष्ट्रीय संसाधन संरक्षण नीति लागू करने के लिए विभिन्न विभागों और मंत्रालयों के काम में ताल-मेल रखता है।
iv)	राष्ट्रीय संरक्षण और प्राकृतिक संसाधन आयोग	घ)	पाकिस्तान सरकार ने गठित किया।
v)	दक्षिण एशियाई सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम	च)	दक्षिण एशियाई क्षेत्र के पर्यावरण के बारे में छह-सूची कोलंबो घोषणा स्वीकृत की।
vi)	1981 में हुई दक्षिण एशियाई देशों की मंत्रि-स्तरीय बैठक में	छ)	पर्यावरण की दृष्टि से उचित तरीकों से पर्यटन को बढ़ावा देता है।

25.7 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि :

- भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से भारतीय प्रायद्वीप को उपमहाद्वीप कहा जाना उचित ही है;
- भारतीय उपमहाद्वीप हमेशा ही और आज भी पूर्व, पश्चिम, मध्य और दक्षिण-पूर्व एशिया के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान का केन्द्र रहा है;
- भारत के साथ सांस्कृतिक संबंध बनाने की कलाकारों, हस्त-शिल्पियों और सुधारकों की इच्छाओं में आज भौगोलिक रुकावटें आड़े नहीं आतीं। लेकिन प्राचीन काल में भी, हालांकि कम स्तर पर, भारत और शेष विश्व के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा;
- भारतीय उपमहाद्वीप की प्राकृतिक संपदा प्रणालियों में बड़ी एकरूपता है। इसे देखते हुए आवश्यकता इस बात की है कि विकास-प्रक्रियाओं को चालू रख सकने के लिए क्षेत्र के सीमित संसाधनों का मिल-जुलकर इस्तेमाल किया जाए।
- किसी संसाधन या संसाधन-समूह के लाभ नियमित रूप से प्राप्त करने के लिए पर्यावरण प्रबंध के बारे में समन्वित दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए और पुराने दृष्टिकोण में सुधार लाया जाना चाहिए।
- विकास-नीतियों को संयुक्त प्रयासों से लागू करने से इस उपमहाद्वीप में स्थायी रूप से ज्यादा आर्थिक समृद्धि आ सकेगी।

25.8 अंत में कुछ प्रश्न

1) हिमालय पर्वत श्रेणी और हिंद महासागर जैसे प्राकृतिक अवरोधों का भारतीय उपमहाद्वीप की संस्कृति के निर्माण में क्या महत्व है? ज्यादा से ज्यादा 75 शब्दों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) अन्य संस्कृतियों से भारतीय संस्कृति को क्या उपहार मिले? भारतीय संस्कृति ने शेष विश्व को क्या दिया? ज्यादा से ज्यादा 75 शब्दों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारत पूर्व, पश्चिम, मध्य और दक्षिण-पूर्व एशिया के बीच सांस्कृतिक आधार पर केन्द्र क्यों बना?

.....

.....

.....

.....

.....

4) इस उपमहाद्वीप में हमारे पड़ोसी देश कौन-से हैं? एशिया के मानचित्र में इन पड़ोसी देशों की स्थिति. पता लगाइए और उसे अंकित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(संकेतः हमारा सुझाव है कि आप बाजार से एशिया का एक सादा नक्शा लेकर यह प्रश्न हल कीजिए।)

5) इस उपमहाद्वीप के सीमित संसाधनों के इस्तेमाल के लिए यहां के सभी देशों के मिले-जुले प्रयास क्यों जरूरी हैं? संक्षेप में समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

6) दक्षिण एशियाई सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम के कोई चार उद्देश्य बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

25.9 उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर

1 i क), ii ख), iii ग), iv ख)

2 i क) दक्षिणी, ख) उत्तरी, ग) कुछ ही, घ) मध्य
ii क) सही ख) सही ग) सही घ) सही

3 क) ग ख) क ग) घ घ) ख

4 i) × ii) √ iii) × iv) √

5 i) सिंधु, गंगा
ii) उपजाऊ
iii) सबसे बड़ा
iv) ग़ैर-परंपरागत

6 i ख) ii क) iii घ) iv ग) v छ) vi च)

अंत में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1) समुद्र और हिमालय पर्वत-श्रेणियाँ भारतीय संस्कृति के पड़ोसियों की संस्कृति के मिश्रण में बड़ी दीवारें रहीं। इससे हमारे क्षेत्र के लोगों की सांस्कृतिक एकता बढ़ी। लेकिन, इन दीवारों के बावजूद प्राचीन काल और मध्य काल में भारतीय संस्कृति और पश्चिम एशिया तथा पूर्व एशिया की संस्कृतियों का कुछ हद तक मिलन होता रहा।

2) मकदूनिया के शहजादा – सिकंदर भारत में यूनानी मूर्तिकला का सौंदर्य लाया। मंगोल, तुर्क और अरब अपने साथ भव्य गुंबद और मीनारें बनाने का स्थापत्य लाए। भारत ने श्रीलंका, तिब्बत, चीन, कोरिया और जापान में बौद्ध धर्म फैलाया। भारत ने विश्व को अंकों की धारणा, दाशमिक प्रणाली और उपनिषदों का दर्शन भी दिया।

3) भारत सांस्कृतिक आदान-प्रदान का केन्द्र इसलिए बन पाया क्योंकि इस उपमहाद्वीप को अलग करने वाले विराट अवरोध प्राचीन और मध्य काल के प्रमुख मार्गों के नज़दीक स्थित थे। प्राचीन काल में जो साहसी व्यक्ति इन भौगोलिक अवरोधों को पार कर पाते थे, वे अपने आपको बिल्कुल अलग ही दुनिया में पाते थे। ऐसे बहादुर कलाकारों, सैनिकों, व्यापारियों और संदेशवाहकों को सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए पर्याप्त सामग्री मिली।

4) उपमहाद्वीप में भारत के पूर्व में बंगलादेश और पश्चिम में पाकिस्तान है। पश्चिम में ही खैबर दर्रे से उस पार अफगानिस्तान है। हमारे देश के दक्षिण में मालदीव द्वीप समूह और श्रीलंका है। हमारे लक्षद्वीप समूह के साथ मिलकर ये माला के मोती जैसे लगते हैं। उत्तर में हिमालय हमारी सीमाओं का प्रहरी है। हिमालय के उस पार चीन है। उत्तर में ही हिमालयी क्षेत्र में नेपाल है। हिमालय के उस पार तिब्बत है। पूर्व की ओर भारत के सीमावर्ती क्षेत्र में मिशमी, पटकोई और नागा पहाड़ियाँ हैं।
(हमारा सुझाव है कि बाजार से एशिया का मानचित्र लाएं और विभिन्न देशों की स्थिति उसमें अंकित करें।)

5) इस क्षेत्र की प्राकृतिक प्रणालियाँ एकरूप और परस्पर निर्भर तथा संबद्ध हैं। उदाहरण के लिए, नेपाल में वनों के काटे जाने से उत्तर बिहार में बाढ़ आ जाती है। इसलिए इस क्षेत्र में संसाधनों के इस्तेमाल और पर्यावरण संरक्षण के लिए सभी देशों द्वारा मिल-जुलकर समन्वित दृष्टिकोण अपनाया जाना जरूरी है।
(विद्यार्थी अन्य उदाहरण भी दे सकते हैं।)

6) दक्षिण एशिया सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम के चार उद्देश्य निम्नलिखित हैं:
i) पर्यावरण के स्तर का परीक्षण
ii) पर्यावरण का संरक्षण करते हुए पर्यटन को बढ़ावा देना
iii) पर्यावरण की शिक्षा देने वाले कार्यक्रमों को बढ़ावा देना
iv) वन्य जीवन और जैव संसाधनों के संरक्षण को प्रोत्साहित करना।
(विद्यार्थी पाठ्य-सामग्री में से कोई भी चार उद्देश्य लिख सकते हैं।)

उपसंहार

मानव पर्यावरण का यह पाठ्यक्रम अब समाप्त हो रहा है। आइए, अब हम उन बातों पर विचार करें जो हमने इस पाठ्यक्रम में पढ़ी है। मानव के पर्यावरण के अन्य जैविक और अजैविक घटकों से विभिन्न प्रकार से परस्पर क्रियाएं और उनके परिणाम ही मानव पर्यावरण है। पर्यावरण के साथ परस्पर क्रियाओं के दौरान मानव गतिविधियों का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। जिससे भौतिक और जैविक प्रक्रियाओं का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाता है। इन विकृतियों से पर्यावरण संबंधी अनेक समस्याएं पैदा होती हैं, जैसे—प्रदूषण, जनसंख्या में भारी वृद्धि, संसाधनों का ह्रास, वन्य जीवों का विलोपन आदि।

इस पाठ्यक्रम में हमने प्राकृतिक, मानवनिर्मित और सामाजिक पर्यावरण तथा मानवीय गतिविधियों के कारण

होने वाली पर्यावरणीय आपदाओं का मोटे तौर पर अध्ययन किया है। हमने पर्यावरण के तेज़ी से बदलन क कारण होने वाली मौजूदा सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के बारे में भी विचार किया है।

प्रकृति के सभी तत्वों में मनुष्य में ही केवल ऐसी विलक्षण क्षमता है कि वह प्राकृतिक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप करके पर्यावरण को बदल सकता है। यह विशिष्ट क्षमता टेक्नोलॉजी इस्तेमाल करने की मनुष्य की योग्यता से आती है। टेक्नालॉजी का इस्तेमाल कुल्हाड़ी से लेकर लेज़र बीम (Laser beam) और बच्चों के गिनतारा (Abacus) से कंप्यूटर तक सीढ़ी-दर-सीढ़ी तेज़ गति से निरंतर बढ़ता रहा है। टेक्नोलॉजी तथा प्रोद्योगिकी के परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था में बुनियादी बदलाव जरूरी हो जाता है और ये दोनों परिवर्तन साथ-साथ आते हैं। जब कोई सामाजिक संस्था प्रौद्योगिकी के किसी परिवर्तन के मार्ग में रुकावट बन जाती है, तब उस संस्था को हटाकर प्रौद्योगिकी के परिवर्तन के अनुकूल नई सामाजिक संस्था जन्म लेती है। मनुष्य को छोड़कर अन्य सभी सजीव प्रजातियों की समष्टि संख्या (population), शिकारी-शिकार (Predator-Prey) अर्थात् उपभोक्ता-आहार अनुपात से पूरी तरह निर्धारित होती है। मान लिया कि किसी क्षेत्र विशेष में 100 सिंह और उनके भोजन के लिए 1000 हिरन हैं। अगर सिंहों की संख्या ज्यादा बढ़ जाती है, तो उन सबके लिए पर्याप्त भोजन (हिरन) नहीं होगा। इससे कुछ सिंह भूखे मर जाएंगे और कुछ भोजन के लिए आपसी लड़ाई में मारे जाएंगे। इस तरह प्रकृति में समुचित संतुलन बना रहता है। लेकिन मानव जाति ने कुछ सीमा तक इस प्राकृतिक व्यवस्था के नियंत्रण से स्वयं को मुक्त कर लिया है। माँग पक्ष में बीमारियों पर नियंत्रण करके मनुष्य जाति ने अपनी उम्र बढ़ा ली है और मृत्यु-दर में कमी ला दी है। पूर्ति पक्ष में, मनुष्य ने खाद्य की उपलब्धता में भारी वृद्धि कर ली है। इन कारणों से विकास के विभिन्न स्तरों पर पहुँचे विभिन्न देशों में जनसंख्या संबंधी अनेक समस्याएं पैदा हो गई हैं, जिनका विश्व के पारिस्थितिक तंत्र (global ecosystems) पर अनेक तरीके से असर पड़ता है।

दक्षिण एशिया के जनसंख्या के संकट को इसी जनसंख्या-संक्रमण (demographic transition) की स्थिति के आधार पर समझा जा सकता है। यह क्षेत्र इस समय ऐसी ही संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है, जिसमें मृत्यु-दर में जन्म-दर की तुलना में तेजी से गिरावट आ रही है। इससे जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हो रही है। ऐतिहासिक अनुभवों के आधार पर यह आशा की जा सकती है कि हम संक्रमण के अगले चरण में पहुँचने वाले हैं, जिसमें जन्म-दर में भी गिरावट आने लगेगी। परिणामस्वरूप, जनसंख्या स्थिर बनी रहेगी।

मानव जाति और प्रकृति के जैविक तथा अजैविक घटकों के बीच परस्पर संबंधों को शक्तियों के एक त्रिकोण के रूप में देखा जा सकता है। प्रकृति के मानवेतर (non-human) तत्व इस त्रिभुज के महत्वपूर्ण शिखर बिंदु हैं। ये तत्व प्रकृति के नियमों से ली जा सकने वाली छूट की सीमा तय करते हैं और उस दिशा की ओर भी संकेत देते हैं, जिसमें दीर्घकालीन अवधि के लिए संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग संभव है। प्रकृति में इन मानवेतर तत्वों के संकेतों की अनदेखी करने से मानव जाति और पृथ्वी को भारी नुकसान हो सकता है। इस त्रिभुज के बाकी दो कोण हैं: टेक्नोलॉजी और मानव-समाज द्वारा बनाई गई संस्थाएँ। मानव-विज्ञानी मनुष्य को यंत्रों का इस्तेमाल करने वाला प्राणी (Homo faber) मानते हैं। इस परिभाषा से ही स्पष्ट है कि मनुष्य के जीवन में टेक्नोलॉजी का आना स्वाभाविक ही है। यंत्रों के इस्तेमाल ने मानव-जाति को उसका वर्तमान स्वरूप दिया है। इस त्रिभुज में टेक्नोलॉजी की महत्वपूर्ण भूमिका है। पहली महत्वपूर्ण बात यह है कि इससे विकास प्रक्रियाओं में मदद मिलती है और एक सीमा तक प्राकृतिक प्रक्रियाओं की गति भी बढ़ती है। उदाहरण के लिए, हल चलाने से मिट्टी में हवा अधिक पहुँचती है। दूसरे, टेक्नोलॉजी प्राकृतिक प्रक्रियाओं की कुछ विशिष्ट कमियों को दूर करती हैं, जैसे—सिंचाई से पेड़-पौधों से समुचित विकास के लिए अतिरिक्त पानी मिलता है। तीसरे, टेक्नोलॉजी प्रकृति के मानवेतर तत्वों द्वारा पैदा की गई कठिनाइयों से समन्वयन के तरीके सिखाती है और इन बाधाओं को सही तरीके से समझकर उन्हें दूर करने के उपाय सुझाती है, जैसे—सूखे वाले इलाकों में होने वाली तिलहन की प्रजातियों से पानी के अभाव की बाधा दूर हो जाती है।

लेकिन अब यह लगातार महसूस किया जाने लगा है कि टेक्नोलॉजी के प्राकृतिक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप की अपनी सीमाएँ हैं और इन सीमाओं का उल्लंघन मानव-जाति और प्राकृतिक तंत्र के लिए बड़ा खतरनाक है। ये सीमाएँ बहुत कड़े तौर पर निर्धारित नहीं की गई हैं, लेकिन प्रकृति के नियमों की जानकारी बढ़ने के साथ-साथ ये सीमाएँ विस्तृत होती जाती हैं।

इस त्रिभुज के तीसरे शीर्ष पर सामाजिक संस्थाएँ हैं। लोगों के बीच परस्पर संपर्कों या क्रियाओं और पर्यावरण के साथ उनके संपर्कों या क्रियाओं के निर्धारण में इन संस्थाओं की बड़ी भूमिका है। ये संस्थाएँ या तो प्रकृति के मानवेतर तत्वों से परस्पर क्रियाओं में सहायक होती हैं या इन तत्वों से उचित तथा स्वस्थ संपर्कों या क्रियाओं में बाधक होती हैं। चिपको आंदोलन प्राकृतिक तत्वों से संपर्क में सहायक दृष्टिकोण का अच्छा उदाहरण है। इसमें मनुष्यों और वृक्षों के पूरे ताल-मेल के साथ-साथ रहने की भावना निहित है। इस संपर्क से दोनों को ही एक-दूसरे का सहारा मिलता है और दोनों ही स्वस्थ रहते हैं। लेकिन औद्योगिक प्रतिष्ठानों जैसे कुछ संस्थान पर्यावरण से स्वस्थ्य संपर्क में बाधक होते हैं। मानवीय इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि जब सामाजिक संस्थाएँ प्रकृति के साथ मानवीय संपर्कों में बाधक बन जाती है, तो ऐसे बंधन तोड़

दिए जाते हैं और ऐसी नकारात्मक भूमिका वाली संस्था का स्थान मानव-जाति और प्रकृति के बीच संपर्कों में सहायक नई सामाजिक संस्था ले लेती है। उदाहरण के लिए, औपनिवेशिक शासन द्वारा थोपी गई जमींदारी प्रणाली भारतीय कृषि को निष्प्राण बना रही थी, इसीलिए स्वतंत्र भारत में जमींदारी के स्थान पर ऐसे भूमि सुधार कार्यक्रम लाए गए जिनके अंतर्गत जमीन जोतने वाले किसान को जमीन पर काफी हद तक मालिकाना अधिकार मिला। जमींदारी के चंगुल से मुक्ति मिलने से किसानों और जमींदारों की उत्पादन-क्षमता बढ़ी। मानव जाति ने आखेट और अन्न संग्राहक समाजों के समय से आज के औद्योगिक समाज तक विकास की समूची प्रक्रिया के दौरान प्रकृति के कामकाज में बाधा डाली है। अंततः आज के आधुनिक समाज में लोग अधिकतम भौतिक उत्पादन और अधिकतम उपभोग के पीछे लगे हैं। इस मानसिकता से पर्यावरण का संकट पैदा हो गया है और मानव-जाति को अपनी विकास-नीतियों पर फिर विचार करने पर बाध्य होना पड़ा है।

इस प्रकार प्रकृति के नियम विकास पर अंकुश तो लगाते ही हैं, साथ ही सर्वोत्तम और सतत विकास की दिशा की ओर भी संकेत करते हैं। सतत विकास की अवधारणा, पर्यावरण और विकास संबंधी बर्टलैंड आयोग ने दी है। अब यह स्पष्ट रूप से समझा जाने लगा है कि निम्न दोनों धारणाएँ गलत हैं—पहली, कोई भी विकास नीति हर स्थिति में पर्यावरण को नुकसान पहुँचाती है। दूसरी, पारिस्थितिक प्रणाली को बनाए रखने के लिए विकास किया ही न जाए। पारिस्थितिक प्रणाली को विकास की गलत दिशा से बचाया जाना जरूरी है लेकिन उतना ही जरूरी गलत पर्यावरण नीतियों से विकास को बचाया जाना भी है।

विकासशील देशों के अभाव और भूख से जूझते करोड़ों लोगों को देखते हुए भी यह पहलू महत्वपूर्ण हो जाता है। प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता और उनके उपयोग के स्तर में विकसित और विकासशील देशों के बीच भारी असमानता है। उदाहरण के लिए, सोवियत संघ में प्रति व्यक्ति 3 हेक्टेयर और उत्तरी अमेरिका में 2 हेक्टेयर वन क्षेत्र (closed forest area) पड़ता है, जबकि एशिया में यह 0.2 हेक्टेयर और अफ्रीका में 0.4 हेक्टेयर है। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की स्थिति में और भी ज्यादा असमानता है। 1976 के आँकड़ों के अनुसार, कच्चे तेल का संचयी उत्पादन (cumulative production) उत्तरी अमेरिका में 112 मिलियन बैरल था, जबकि एशिया प्रशांत क्षेत्र में यह 9 मिलियन बैरल और लैटिन अमेरिका में 6 मिलियन बैरल था। उत्तरी अमेरिका में प्राकृतिक गैस का उत्पादन 500 ट्रिलियन घन फुट था, जबकि एशिया-प्रशांत क्षेत्र में यह 46 ट्रिलियन घन फुट और लैटिन अमेरिका में 21 ट्रिलियन घन फुट था। यह तथ्य विशेष रूप से चिंताजनक है कि जिन प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता विकासशील देशों में विकसित देशों से अधिक है, उनके भी वास्तविक उत्पादन और उपभोग का स्तर विकासशील देशों की तुलना में काफी कम है। उदाहरण के लिए, प्रति दिन जल के संसाधनों की उपलब्धता एशिया में 9,540 मिलियन गैलन उत्तरी अमरिका में 4,310 मिलियन गैलन और यूरोप में 2,290 मिलियन गैलन है। लेकिन उत्तरी अमरिका में प्रतिदिन 232 बिलियन घन मीटर, यूरोप में 176 बिलियन घन मीटर और एशिया में केवल 68 बिलियन घन मीटर पानी का बिजली बनाने में उपयोग होता है। कुल उपयोग की स्थिति और भी खराब है। कई ऐसे भी मामले हैं, जहाँ विकासशील देशों में ज्यादा प्राकृतिक संसाधन हैं, और उनके उत्पादन का स्तर भी ऊँचा है, लेकिन कुल उपभोग का स्तर विकसित देशों से कम है। उदाहरण के लिए, एशिया में समुद्रों से प्रतिवर्ष 30.7 मिलियन मीट्रिक टन, उत्तरी अमरिका में 4.8 मिलियन मीट्रिक टन और सोवियत संघ में 12.6 मिलियन मीट्रिक टन मछलियाँ पकड़ी जाती हैं लेकिन सभी विकासशील देशों में कुल मछली का उपभोग औद्योगिक देशों का दसवाँ हिस्सा भी नहीं है। औद्योगिक देशों में प्रति व्यक्ति उपभोग विकासशील देशों की तुलना में बीस गुना से भी अधिक है।

आज विश्व में देशों के बीच दूरियाँ सिमट आई हैं। विकास की असमानता की वर्तमान स्थितियों में विकास की उपेक्षा कर पूरी तरह पर्यावरण पर या पर्यावरण की उपेक्षा कर पूरी तरह विकास पर ध्यान दे पाना संभव नहीं है। ऐसा भी संभव नहीं है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा श्रम विभाजन हो जाए, जिसमें विकासशील देश तो पर्यावरण को बचाते रहें और समृद्ध देश विकास के लाभ उठाते रहें। यह अन्यायपूर्ण अनुचित और विश्व के लिए हानिप्रद होगा, क्योंकि स्वाधीनता की ही तरह विकास को भी नहीं बाँटा जा सकता। ऐसी दुनिया जहाँ कुछ लोग वैभव का भद्दा प्रदर्शन कर रहे हों और चारों ओर दुःखी दरिद्र लोगों को, जैसे—समुद्र फैला हो, जहाँ एक आदमी दूसरे आदमी का, एक देश दूसरे देश का, और सबसे बढ़कर आदमी प्रकृति के मानवेतर तत्वों का शोषण करते हों, ऐसी दुनिया अपने ही बोझ से ढह जाएगी। अगर इस संदर्भ में देखें तो ऐसा लगता है कि विकासशील देशों के करोड़ों निर्दोष गरीबों के कथित लाभ के लिए विकास परियोजनाओं पर जो प्रतिबंध लगाए जाते हैं, वास्तव में वे गरीब और अमीर देशों की खाई बढ़ाते हैं। इन प्रतिबंधों के पीछे यह दृष्टिकोण अपनाया जाता है कि मानवता के बड़े हिस्से की तकलीफें केवल प्राकृतिक निपत्तियाँ ही हैं।

पर्यावरण की सुरक्षा के हमारे प्रयासों का लक्ष्य विकास का सर्वोत्तम स्तर प्राप्त करना और लोगों को गरीबी और भुखमरी के दुष्चक्र से बाहर निकालना है। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि विकासशील देशों में प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण भूख है। भूख पारिस्थितिक तंत्र को नष्ट करने वाली भयानक शक्ति है। यह मानव-जाति को ही नष्ट कर देती है, जो आज पारिस्थितिक तंत्र के महत्वपूर्ण घटक हैं। कटे पड़े और मुरझाए फुल को देखकर चिंता से कुछ लोगों की रातों की नींद गायब हो जाना उचित है, लेकिन इन लोगों को खाली पेट, गड्ढे में धँसी आँखों और दुबले हाथों वाले भूखे बच्चों की भी चिंता करनी चाहिए।

पर्यावरण और विकास की उचित नीति में पारिस्थितिक तंत्र को बिगड़ने से बचाने के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक विकास की गति तेज़ करने पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इस दृष्टि से पर्यावरण-अनुरूप विकास (eco-development) की मुख्य विशेषता इसका सतत होना तथा निरंतर चलना है।

पर्यावरण-अनुरूप सतत विकास मूलतः परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें संसाधनों के दोहन, निवेश की दिशा, टेक्नोलॉजी का रुझान और संस्थागत परिवर्तनों के बीच पूरा तालमेल होता है। ये सब मिलकर वर्तमान तथा भावी मानवीय आवश्यकताओं और अपेक्षाओं की पूर्ति की क्षमता बढ़ाते हैं। पारिस्थितिकी और विकास दोनों ही धारणाओं में सतता के इस महत्व को देखते हुए हम इसके तात्पर्य तथा परिणामों पर ज्यादा गहराई से विचार करेंगे।

पहली बात यह है कि पर्यावरण-अनुरूप सतत विकास में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की विवेकपूर्ण नीति पर जोर दिया जाता है। थोरो ने कहा था—"दुर्गम प्राकृतिक स्थलों में ही विश्व सुरक्षित है" और मनुष्य को स्वयं को "प्रकृति की गोद में पलने वाला अथवा इसका अभिन्न अंग" समझना चाहिए। संरक्षण का महत्व हर प्राकृतिक क्षेत्र को वैसा ही बनाए रखना नहीं है। इसका मतलब है कि प्राकृतिक संसाधनों का ऐसे विवेकपूर्ण तरीके से इस्तेमाल हो, जिससे वर्तमान पीढ़ी को स्थायी रूप से अधिकतम संभव लाभ मिलें और भावी पीढ़ियों की जरूरतों के लिए संसाधन बढ़ें, अथवा कम से कम वर्तमान स्तर पर रहें। ऐसा अनुभव किया जा सकता है कि पर्यावरण तथा संसाधनों का संरक्षण तथा विकास साथ-साथ नहीं हो सकता क्योंकि दोनों एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं। वास्तव में ऐसी बात नहीं है। विकास का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों के वर्तमान में इस्तेमाल से मानवीय लक्ष्यों की प्राप्ति है, दूसरी ओर संरक्षण का उद्देश्य निरंतर इस्तेमाल के लिए इन संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करना है। जैविक संसाधनों के लिए संरक्षण नीति विशेष महत्व की है। इसके दो मुख्य लक्ष्य हैं—

— आवश्यक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं और जीवन के लिए आवश्यक प्रणालियों को बनाए रखा जाना चाहिए। इस समय कृषि, वन, समुद्र तटीय संसाधनों और पेय जल से संबद्ध प्रणालियाँ बड़े नाजुक दौर से गुजर रही हैं।

— जीव प्रजातियों की विविध अनुवांशिकता का संरक्षण किया जाना चाहिए। घरेलू वातावरण से जुड़े हुए तथा पालतू जीव-जंतु, जैसे—फसलों वाले पौधे, पेड़, मवेशी और पानी में रहने वाले छोटे-बड़े जीव तथ वन्य जीवों की प्रजातियों का बना रहना जरूरी है। इससे निरंतर अच्छी फसलें उगाने, उपज बढ़ाने, प्रजातियों के पोषक गुण और स्वाद बढ़ाने, टिकाऊपन लाने, कीटों और बीमारियों से प्रतिरोध-क्षमता बढ़ाने, अलग-अलग तरह की मिट्टी और जलवायु में अनुकूलन कर लेने की क्षमता बढ़ेगी।

दूसरी बात यह है कि पर्यावरण के अनुकूल सतत विकास के लिए प्रकृति में मुक्त रूप से उपलब्ध संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग पर जोर दिया जाता है। मुक्त रूप से उपलब्ध संसाधनों की मात्रा में, टेक्नोलॉजी के प्रयोग से उपयोगी बना कर प्राकृतिक संसाधनों से वृद्धि केवल तभी की जानी चाहिए, जब ऐसा करना जरूरी हो और वृद्धि की मात्रा भी उतनी ही हो, जितनी जरूरी है। उदाहरण के लिए, कृषि में पानी के इस्तेमाल को लें। वर्षा का पानी प्रकृति में मुक्त रूप से उपलब्ध संसाधन है। सिंचाई का पानी, टेक्नोलॉजी के जरिए उपयोगी बनाया गया संसाधन है। सतत विकास की नीति में मानव जाति की सभी उत्पादक गतिविधियाँ शामिल हैं। अब हम प्राथमिक उत्पादन के क्षेत्र से इसकी विशेषताओं को स्पष्ट करते हैं। प्राथमिक उत्पादन का कार्य चार प्रकार से होता है—

i) पशुओं की प्रजातियों के प्रजनन को बढ़ावा दिया जाए अथवा वनस्पति-प्रजातियों की वृद्धि को बढ़ावा दिया जाए। यह क्षेत्र विशेष में मुक्त रूप से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करता है कि वे पशुपालन के उपयुक्त हैं या पौधों के विकास के उपयुक्त हैं। अर्ध-शुष्क चरागाही जमीन पशुपालन के उपयुक्त होती है और गर्म तथा नम इलाके पेड़-पौधों के विकास के उपयुक्त होते हैं। मानव जाति इतिहास के प्रागैतिहासिक और प्राचीन काल में स्थायी रूप से एक स्थान पर बसने वाले कृषक समाजों और बंजारे चरवाहों के बीच संघर्ष और फिर तालमेल होता रहा। भारत के संदर्भ में तो यह तथ्य बिल्कुल सही है। सिंधु और इसकी सहायक नदियों के सिंचित भू-क्षेत्र में छह हजार वर्ष से भी ज्यादा पहले मातृदेवी की आराधना और प्रजनन से जुड़ी पूजा-पद्धतियों वाले कृषक समुदाय बसे थे। इनके विपरीत, मध्य-एशिया के अर्ध-शुष्क चरागाहों वाले इलाकों से आने वाले आर्य कबीले मूलतः बंजारे चरवाहे थे, जो अपने साथ दूसरी तरह के आध्यात्मिक विचार, पुरुष देवता और पितृसत्तात्मक संगठन लाए। स्थानीय कृषक समाज और आगंतुक चरवाहों के मिलने से इस उप-महाद्वीप में संस्कृतियों का उत्कृष्ट और सुंदर समन्वय हुआ।

ii) कृषि उत्पादन की क्षेत्रगत विशिष्टता होती है। किसान अपने क्षेत्र की मिट्टी और जलवायु के अनुरूप उत्पादन करता है। कृषि की क्षेत्रीय विशिष्टता मूलतः प्रकृति में मुक्त रूप से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के सिद्धांत पर आधारित है। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिम में गेहूँ और पूर्वी डेल्टा में धान की खेती के पीछे, दोनों क्षेत्रों में वर्षा तथा तापमान का अंतर है।

iii) कृषि उत्पादन की मौसमी विशिष्टता होती है। उदाहरण के लिए, उत्तर भारत में रबी और खरीफ की फसलों का अंतर विभिन्न मौसमों में पानी और ऊष्मा की उपलब्धता के अंतर से पैदा हुआ है। एक

ही फसल में अलग-अलग मौसमों में अलग-अलग किस्में पैदा होती हैं। बंगाल में होने वाली चावल की अमान, औस और बोरो किस्में, अलग-अलग मौसमों में एक ही खाद्यान्न की अलग-अलग किस्मों का अच्छा उदाहरण है। पिछले करीब एक हजार सालों से, अधिक उत्पादन के लिए एक ही जमीन पर बदल-बदल कर फसलें उगाने का तरीका अपनाया जा रहा है। इसके पीछे भी प्रकृति में मुक्त रूप से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग का दृष्टिकोण है, जो प्रकृति के मानवेतर तत्वों के साथ प्रकृति के संपर्क से पनपे सामाजिक अनुभव का परिणाम है। विभिन्न मौसमों में फसलों में बदलाव लाने का उद्देश्य जमीन की उर्वरता को नष्ट होने से बचाना भी है। कुछ मामलों में, जैसे—अरहर और विभिन्न दालें बोने से तो यह उर्वरता बढ़ती है।

iv) मुक्त रूप से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के सर्वोत्तम इस्तेमाल के लिए मौसमों की विविधता के साथ-साथ मनुष्य के विभिन्न क्षेत्रों में जाने की स्थिति को ट्रांसहयूमेंस (Transhumance) कहा जाता है। रबी और खरीफ की फसलें उगाने के उदाहरण में मनुष्य स्वयं एक ही स्थान पर रहता है और मौसम के अनुरूप फसलों को बदल देता है। ट्रॉसहयूमेंस में इसका एक दूसरा रूप भी है। भेड़ों और बकरियों को चराने वाले, मौसम बदलने के साथ-साथ घास की उपलब्धता की स्थिति को देखते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। इस मामले में "फसल" अर्थात् भेड़-बकरियाँ तो समान हैं, पर मनुष्य अपना स्थान बदल देता है।

तीसरी बात यह है कि पारिस्थितिक तंत्र के अनुरूप विकास के दृष्टिकोण से संसाधनों की उत्सर्जनीयता को ध्यान में रखते हुए प्राथमिकताओं के आधार पर संसाधनों के उपयोग की योजना बनाना जरूरी है। प्राकृतिक संसाधनों को पुनः पूर्ति किए जा सकने वाले (replenishable) और पूर्ति न किए जा सकने वाले (non-replenishable) स्रोतों के दो वर्गों की बजाय, चार वर्गों में बाँटना पारिस्थितिक तंत्र के अनुरूप विकास के दृष्टिकोण से ज्यादा उचित होगा। उत्सर्जनीयता की दर (degree of expendability) के आधार पर इन वर्गों को निम्नलिखित रूप में उच्च से निम्न क्रम में रखना उचित होगा—

i) कभी समाप्त न होने वाले संसाधन, जैसे—सौर-उर्जा
ii) आवर्तित होने वाले (cyclic) संसाधन, जैसे—जल आवर्तन
iii) नवीकरणीय संसाधन, जैसे—पेड़-पौधे और फ़सलें
iv) गैर-नवीकरणीय संसाधन जैसे—कोयला, पेट्रोलियम आदि।

संसाधनों के इस्तेमाल की उचित नीति इस सिद्धांत पर आधारित होनी चाहिए कि जब तक पूरी तरह यह जाँच न कर ली जाए कि उपयुक्त क्रम में ऊपर के संसाधन के इस्तेमाल करने की कोई संभावना नहीं है, तब तक इस क्रम में नीचे के संसाधन का इस्तेमाल न किया जाए। उदाहरण के लिए, ऊर्जा के मामले में सबसे पहले सौर ऊर्जा के इस्तेमाल के हर संभव प्रयास कर लिए जाएं। जब इसकी सभी संभावनाएँ समाप्त हो जाएँ, तभी क्रम में अगले संसाधन अपना ऊर्जा चक्र बनाने वाले संसाधन—अर्थात् जल-विद्युत के प्रयोग की संभावना देखी जाए। यदि इसका इस्तेमाल भी उचित न माना जाए तभी क्रम में तीसरे तरीके के (नवीकरणीय) संसाधन, अर्थात् जैव-संसाधनों से ऊर्जा प्राप्त करने की संभावनाएँ तलाशी जाएं। इन सभी संभावनाओं के विफल हो जाने पर ही, कोयले या पेट्रोलियम जैसे (गैर-नवीकरणीय) संसाधनों का इस्तेमाल किया जाए।

यह सर्वविदित है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू विज्ञान, टेक्नोलॉजी और औद्योगिक विकास के पक्षधर थे। उन्होंने 1957 में ही पर्यावरण के प्रति चिंता प्रकट की थी। उन्होंने लिखा था, "हमारे देश में अनेक नदी में घाटी परियोजनाएँ हैं, जिन्हें हमारे इंजीनियरों ने बड़ी सावधानी और लगन से तैयार किया है। लेकिन मैं इस बारे में भी सोचता हूँ कि परियोजना शुरू करने से पहले, क्षेत्रीय पर्यावरण की दृष्टि से सर्वेक्षण पर कितना ध्यान दिया गया है। इस बात पर कितना ध्यान दिया गया है कि इन परियोजनाओं द्वारा क्षेत्र से पानी की निकासी और जंतुओं तथा वनस्पतियों पर क्या असर पड़ेगा। परियोजना शुरू करने से पहले क्षेत्रों का ऐसा सर्वेक्षण जरूर किया जाना चाहिए ताकि प्रकृति के असंतुलन को रोका जा सके।"

यह एक उत्साहवर्धक तथ्य है कि भारत में चौथी पंचवर्षीय योजना में ही पारिस्थितिक तंत्र और विकास के बीच के संबंधों को समझ लिया गया था। चौथी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेजों में यह कहा गया था, "भौतिक पर्यावरण एक गतिशील, जटिल और आपस में जुड़ी हुई ऐसी प्रणाली है, जिसमें एक भाग में किए गए कार्य का असर दूसरे भाग पर भी पड़ता है। जीवित प्राणी भी परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं और उनके भूमि, पानी और हवा से संबंध भी परस्पर निर्भरता से जुड़े होते हैं। पर्यावरण के साथ-साथ विकास की योजना में प्रकृति और मनुष्य की इसी एकता को समझा जाता है। ऐसी योजना आर्थिक और पर्यावरणीय मुद्दों की व्यापक समझ के बाद ही बनाई जा सकती है। इसलिए यह जरूरी है कि हमारी योजनाओं और विकास-कार्यक्रमों में पर्यावरण के पक्ष को भी शामिल किया जाए। प्राकृतिक संसाधनों के कारगर तरीके से संरक्षण और विवेकपूर्ण इस्तेमाल के साथ ही मानवीय पर्यावरण का संरक्षण और विकास भी पूरे राष्ट्र के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण है। यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि विकास योजनाएँ बनाते समय तुरंत मिलने वाले निजी हानि-लाभों की बजाय दीर्घकालीन बुनियादी बातों, सामाजिक लागतों और लाभ को मानदंड मानना चाहिए।"

योजना आयोग के इस कथन में पारिस्थितिक परिस्थितियों और विकास की आवश्यकताओं के बीच विवेकपूर्ण तरीके से तालमेल बिठाते हुए भविष्य के प्रगति पथ पर आगे बढ़ने का महत्व निहित है। आजादी के पाँचवें दशक में योजना आयोग ने देश के विभिन्न कृषि आधारित जलवायु क्षेत्रों के आधार पर कृषि के विकास को संबद्ध करने की आवश्यकता पर जोर दिया है। यह स्वागत योग्य कदम है। आयोग ने सुझाव दिया है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना बनाते समय निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

1) भूमि की गुणवत्ता को नुकसान पहुँचाए बिना उत्पादकता में निरंतर वृद्धि की आवश्यकता,
2) पारिस्थितिक तंत्र में संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता,
3) खाद्य, चारे, रेशे, ईंधन और कृषि आधारित उद्योगों के लिए कच्चे माल की बढ़ती हुई मांगों को पूरा करना,
4) भूमि उपयोग नीति और जल संसाधनों के सर्वोत्तम इस्तेमाल की नीति के बीच तालमेल कायम करना,
5) अच्छी कृषि भूमि का खेती की बजाय अन्य कामों में इस्तेमाल किए जाने की समस्या का समाधान,
6) झूम खेती अर्थात् कृषि क्षेत्र में बदलाव, जनजातीय, रेगिस्तानी, क्षारीय, लवणीय या दलदली इलाकों, बंजर भूमि जैसी क्षेत्रीय समस्याओं को सुलझाना,
7) ज्यादा से ज्यादा फसल प्राप्त करने के उपाय, खास तौर से सूखे वाले/रेगिस्तानी क्षेत्रों में ऐसे उपाय करना, ताकि मिट्टी और उसकी नमी का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल हो सके,
8) भूमि उपयोग योजना को ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों से जोड़ना, और
9) भूमि उपयोग की योजनाओं को प्रभावी बनाने के लिए जरूरी आंकड़ों की बेहतर व्यवस्था—इसमें भूमि सर्वेक्षण और भू-संसाधनों की सूची बनाना शामिल है।

इस पाठ्यक्रम में हमने भौतिक और जैविक संसाधनों के संरक्षण और प्रबंध, पर्यावरण संरक्षण के लिए बनाए गए विविध कानूनों और सतत समाज बनाने के प्रति जागरुकता पैदा करने के उपायों की चर्चा की है। सतत विकास प्रक्रिया में हम पृथ्वी का दोहन नहीं करते, बल्कि हम प्रकृति से संसाधन लेने और उसे वापस लौटाने के चक्र में शामिल हो जाते हैं। इससे दीर्घकाल तक सामाजिक-आर्थिक विकास की निरंतरता बनी रहती है। इस प्रकार, सतत विकास के लिए निम्न बातें जरूरी हैं—

(i) ऐसी राजनीतिक प्रणाली, जिसमें नागरिकों को निर्णय की प्रक्रिया में भागीदार बनाया जाता हो,
(ii) ऐसी आर्थिक प्रणाली, जिसमें तकनीकी जानकारी के मामले में आत्म-निर्भरता बनी रहे और जिसमें निरंतर खपत से अधिक उत्पादन हो,
(iii) ऐसी सामाजिक प्रणाली, जिसमें तालमेल रहित विकास से पनपने वाले सामाजिक तनावों के समाधान निकल सकें,
(iv) ऐसी उत्पादक प्रणाली, जिसमें विकास के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारी पर पूरा ध्यान दिया जाए, और
(v) ऐसी टेक्नोलॉजी जिसमें समस्याओं के नए-नए समाधान निरंतर खोजे जाएँ।

शब्दावली

अधिनियम : पार्लियामेंट द्वारा पास किए गए कानून को अधिनियम कहते हैं, जबकि कानून, पार्लियामेंट के अलावा दूसरे निकायों जिनमें न्यायिक अदालत भी शामिल है, द्वारा बनाए जाते हैं।

कार्बूरेटर : किसी इंजन में तेल, भाप तथा वायु को मिलाने वाला उपकरण।

केन्द्राभिमुखी शक्तियां : संस्कृतियों को मिलाने वाली शक्तियां।

विद्युत चालकता : एक वर्ग सेंटीमीटर तथा एक सेंटीमीटर दूरी के इलेक्ट्रोडों के बीच संलग्न घोल का चालकत्व।

अधिकारी : मातहत कर्मचारी जो किसी कार्यक्रम के लिए कार्य करते हैं।

लवण जीवी वृक्षक : वे पौधे जो मृदा में नमक के अपेक्षाकृत उच्च केंद्रीकरण को सहन कर सकते हैं।

हस्तक्षेप : समस्या का सामना करने या उसमें सुधार करने के लिए उपचारी उपाय।

किलोलीटर : एक हज़ार लीटर (कि.लि.)।

स्थान अधिकारिता : कानून अदालत के सामने दृढ़ रहने या कानून अदालत में मुकदमा दायर करने का अधिकार।

कुपोषण : असंतुलित या अपर्याप्त मात्रा में भोजन ग्रहण तथा यह स्थिति लंबे समय तक रहना जिसके बाद में प्रतिकूल परिणाम हों।

माध्यम : संप्रेषण के साधन जैसे—समाचार-पत्र, रेडियो, टी.वी. आदि। ज्ञान का प्रचार करने वाला एक अकेला व्यक्ति भी माध्यम ही कहलाता है।

भ्रांतियां : किसी वस्तु के बारे में गलत धारणा।

अभिमत नेता : राजनीतिज्ञ, सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा अन्य जो जनता के मत को प्रभावित करते हैं।

पुनरूज्जीवन : फिर से सृजन या बिगड़ी हुई दशा सुधारना।

तृतीयक स्तर : हाई स्कूल शिक्षा के बाद अर्थात् कॉलेज या विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा।

क्षति कानून : व्यक्तिगत रूप से वैधानिक क्षतियों संबंधी मुआवज़ों से संबंध रखने वाला कानून।

समस्तरण : इंजन में पोषण के रूप में पेट्रोल/वायु का समायोजन (कार्बुरेटर)

उपयोगी पुस्तकें

भाटिया, एस.सी. (द्वारा संपादित) *एनवायर्नमेंटर कॉन्शसनेस एंड एडल्ट एजुकेशन,* दिल्ली, दिल्ली यूनिवर्सिटी एडल्ट एजूकेशन सेल, 1980.

सक्सेना, ए.बी. *एनवायर्नमेंट एजूकेशन,* आगरा : नेशनल साइकोलॉजिकल कॉरपोरेशन, 1986.

खुशशू, टी.एन. *एनवायर्नमेंटल प्रायॉरिटीज़ इन इंडिया एंड ससटेनेबल डेवलपमेंट,* प्रेसीडेन्शियल ऐड्रेस, न्यू दिल्ली, इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन, 1986 (पृष्ठ 189-206).